प्रकरणरत्नाकर

भाग १ लो

जिनवचनामृतमहोदधिजन्य

धुरंधर सुविहित गीतार्थेज्ञ पूर्वाचार्य वचन तरंग बिंदुरूप

विविध विषयक प्रकरणाख्य ग्रंथानो यत्किंचित् संग्रह करीने

श्री मुंबापुरीमध्ये

शा० भीमसिंह माणक नामाख्य श्रावके

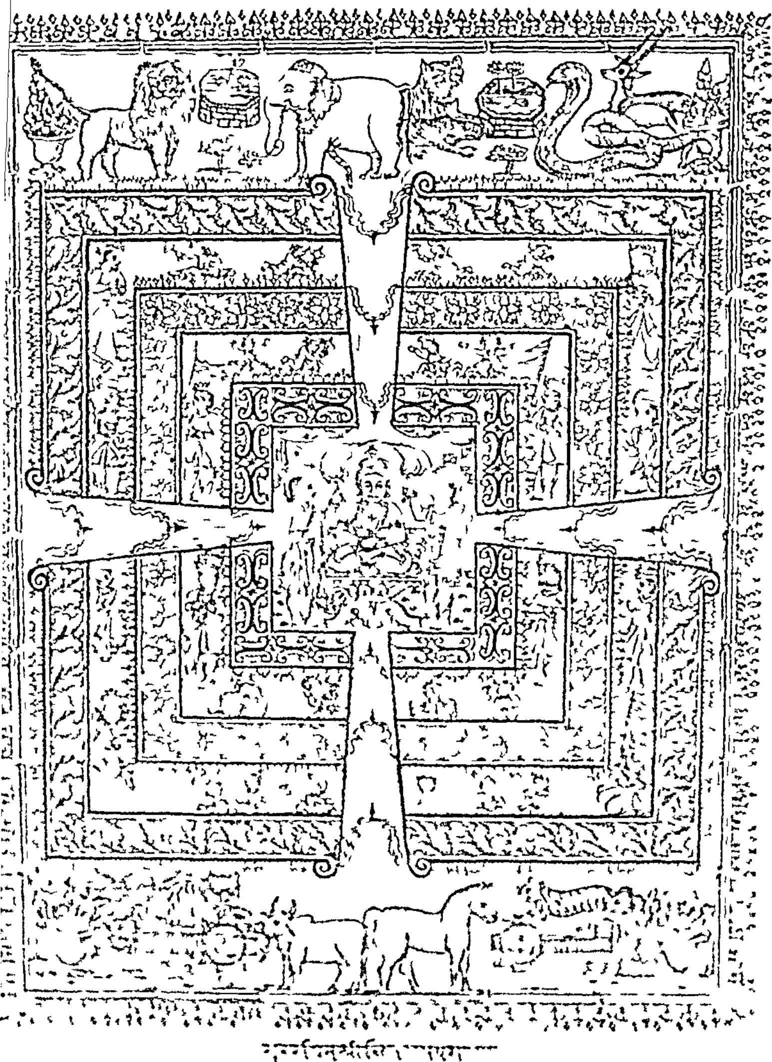
ज्ञान वृद्ध्यर्थे

आ पुस्तक छपावी प्रसिद्ध कर्यु छे

शके १७९८ संवत् १९३३

पोष शुद ३ सोमवार तारीख १८ डिसेम्बर सने १८७६

[illegible]



प्रस्तावना.

आ पंचमकाल समाप्तिना अवसरे छेला दूप्पसह्नामा आचार्य थशे तेमना निर्वाणसुधी जिनधर्मरूप मानससरोवरना साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका ए चतुर्विध संघरूप चार आरा खुला रहेवा जोयेछे एवु परमेश्वरनु वचन छे. कदाचित कालना प्रबल प्रनावथी कोई समये कोई आरो न्यूनता पाम्या जेवु थाय तोपण बाकीना चालु रहेला बीजा आराने प्रनावे समय पाम्याथी ते आरो पण सुधरी जाय छे

आ समयमा पूर्वना समयना करता घणी न्यूनता थई गएली दीठामा आवेछे चतुर्विधसंघमां साधु तथा साध्वी तो क्वचितज दीठामा आवेछे अने श्रावक तथा श्राविकाओनुं पण अल्प अस्तित्व छे तेओनी उपरज धर्मवृद्धि आधार राखे छे. धर्म वृद्धि ज्ञाननी वृद्धिथी थायछे. माटे ज्ञान वृद्धि अवश्य करवी जोयेछे ज्ञाननी वृद्धि ज्ञानना साधनोनी वृद्धि उपर आधार राखेछे ज्ञाननां साधनो पूर्वाचार्य कृत ग्रंथोनो जीर्णोद्धार तथा अवलोकन, विद्यान्यास, उत्सुकता, धर्मप्रीति, अनिरुचि, तथा उद्योग प्रमुख छे

पूर्वाचार्योकृत ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्याथी ते समयना पंमितोनुं पामित्य जाणामा आवेछे, मनुष्योनी धर्मउपर केवी रुचि हती ते जणायछे नूत कालथी ते आ वर्त्तमान कालसुधी वचगालामां धर्म तथा विद्वत्ता प्रमुखनी केटली अधिक न्यूनता थई छे ते दीठामा आवेछे पूर्वाचार्यो अति श्रम वेठी विद्यान्यास करी मोटा मोटा ग्रंथोनी रचना करता हता तेनो हेतु मात्र धर्मवृद्धि अथवा ज्ञानवृद्धि विना बीजो काई हतो के शु ते वात स्पष्ट देखाई आवेछे ग्रंथनी रचना कर्यामा केवल परोपकार विना बीजो काई पण स्वार्थ होयछे के शु ? ते कलाय छे पूर्व कालना करतां हालना वखतमां विद्यान्यासनो उद्योग केटलो अधिक अथवा न्यून थयोछे ? ते जणाई आवेछे इत्यादिक बीजा पण घणा हेतुउ दीठामा आवेछे माटे अवश्य प्राचीन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार करवो जोयेछे केमके, ए ज्ञानवृद्धिनुं मुख्य साधन छे जो पुरातन ग्रथोनो जीर्णोद्धार नही थाय, तो कालातरे विछेद थई जवानो संनव छे अने तेवु थएलु हाल दीठामां आवेछे, जुवो के हरिनद्रसूरिए चौद शे ने चुमालीश ग्रथो कर्या छे, ते बधानो जीर्णोद्धार नही थयाथी तेउमांना केटलाएक ग्रंथोनो हाल पत्तो पण मलतो नथी, एवा बीजा पण अनेक सुविहित आचार्योना करेला ग्रथोनो शोध मली शकतो नथी तेनु कारण पण एज छे ते केटलु लखियें ! यद्यपि मारु एम कहेवु नथी के आज दिवससुधी कोईए ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्योज नथी, मोटा राजाउ तथा सह्रुकारो वगेरे घणा ज्ञान

नंमारा करी गयाछे ते अद्यापि विद्यमान छे; अने तेथीज हाल केटलाएक पुरातन ग्रंथोनुं आपणने दर्शन थायछे. तथापि मात्र दर्शन करवाथीज कांई वलवानुं नथी, पण योग्यरीते उपयोग कर्याथी कार्यसिद्धि थवानो संजवछे. जेम पूर्वे धर्माजिमानी राजा वगैराउए ज्ञान नंमारा कर्याछे तेम पाछल थयुं नथी. ए मोटी दिलगीरीनी वात छे. जो एवो चालज पडी गयो होत तो एके ग्रंथ विछेद गयो न होत अने आटली ज्ञाननी न्यूनता पण थई न होत. जुवोके, देरासरनो जीर्णोद्धार करवानो चाल पडी गयोछे तो तेनी संतति विछेद गएली देखाती नथी. तेमज ग्रंथोविषे चाल पडवो जोयेछे. केमके ग्रंथोनो जीर्णोद्धार तो ज्ञाननी वृद्धिनुं एक मुख्य कारण छे.

हालना समयमां ग्रंथोनो जीर्णोद्धार करवाना जेवां साधनो मली आवेछे तेवां आगल कोई वखते पण नहोतां. पहेलां प्रथम ग्रंथोनो जीर्णोद्धार तालपत्र उपर थएलो देखायछे, ने त्यार पछी कागल उपर थयो छे ते अद्यापि सिद्ध छे. परंतु ते हस्तक्रिया विना यंत्रादिकनी सहायताथी थएलो नथी. ने हाल तो मुद्रायंत्रनी अति उत्कृष्ट सहायता मली आवेछे, तेनो उपयोग करवानुं मूकी दईने आलस करी वेशी रहेशुं तो ग्रंथो केम कायम रहेशे ? हाल विद्याज्यास करीने नवा नवा ग्रंथोनी रचना करवी तो एक कोरे रही, पण छतीशक्तिये पुरातन ग्रंथोनी रक्षा करवानो यत्न नही करशुं तो आपणेज ज्ञानना विरोधी ठरशुं. केमके जे जेनी रक्षा करे नही ते तेनो विरोधी अथवा अहितकर होयछे. ए साधारण नियम आपणी उपर लागु पडशे.

श्रावक जाईयो, पुरातन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्याथी ते ग्रंथोनुं अवलोकन थशे, प्रयाशविना केटलाएक विद्याज्यास थशे, रस उत्पन्न थईने ज्ञान संपादन करवानी अंतःकरणमां उत्कंठा थशे. शुद्ध धर्म उपर प्रीति वधशे, अजिरुचि एटले पुनःपुनः ज्ञान मेलववानी इछा थशे, अने उद्योग प्रमुख सर्व ज्ञाननां साधनोनो सहज प्राप्त थशे. उद्योग ए सर्व पदार्थ मेलववानुं अथवा वृद्धि करवानुं मुख्य साधन छे; परंतु अमस्ता उद्यमथीज कांई थई शकतुं नथी. तेनी साथे द्रव्यनी पण सहायता जोयेछे. द्रव्य जे छे ते सर्वोपयोगी पदार्थ छे. माटे द्रव्यवान पुरुषोए अवश्य ए काम उपर लक्ष देवो जोयेछे. केमके, तेउनी ए फरज छे के, जेम बने तेम ज्ञाननी वृद्धि करवी जोयेछे. ते आप्रमाणेः— सारा सारा पंमितोनी मारफते प्राचीन ग्रंथो सुधारी लखाववी अथवा छपावीने प्रसिद्ध करवा. तेनो जाविक लोकोने अज्यास करावववो. इत्यादिक शास्त्रोमां कह्या प्रमाणे सर्व प्रकारे ज्ञाननी वृद्धि करवी. एवा हेतुथीज में आ ग्रंथो छपाववानुं काम हाथमां लीधुं छे, परंतु कोईनी सहायता विना स्वतंत्र मारी मरजी प्रमाणे हुं ग्रंथो छपावी शकुं एवी मारीपाशे द्रव्यनी शक्ति नही

होवाने लीधे आ 'प्रकरण रत्नाकर' नामनुं मोटुं पुस्तक कहाडवानी आगमज मारा स्व धर्मी नाइयोनी मने मदत लेवी पडीछे मारा नाग्यजोगे योग्य रीते मदत पण मली आवी, तेथी आ पुस्तकनो प्रथम नाग समाप्त करी ते गया जेष्ट मासमां प्रसिद्ध कर्यो अने आ बीजो नाग पण हमणा पूर्ण थयो छे तेथी हुं मने कृतकृत्य समजुं छुं

आ ग्रंथ प्रसिद्ध करवाने मुख्य मदत करनार शेठ. केशवजी नायकछे.

हरेक पदार्थने सम योग्यतावान वा अधिक योग्यतावान रक्षण करी शकेछे एवुं बहु धा दीठामा आवेछे जेम ग्रीष्म ऋतुना तापथी तप्त थएला पर्वतने मेघज रक्षण करेछे, तेम ज्ञाननुं रक्षण ते उत्तम योग्यतावान पुरुषथीज थई शकेछे यद्यपि सकल चतुर्विध संघने ज्ञाननी रक्षा करवानो अधिकार छे, तथापि सर्वेने तेवु सामर्थ्य होतु नथी माटे योग्यतावानज रक्षण करी शके छे. तेवी योग्यता कोई विरलानेज होय छे, केमके बाह्य सर्व लक्ष्म्यादि समृद्धि छता अंतरनविषे जिन वचन श्रद्धानरूप समृ द्धि पण जोये छे तेमानी बाह्य समृद्धि तो घणाओने होयछे तेम छता जिनवचन श्रद्धान होतु नथी तो तेनाथी कोई पण एवुं शुन कृत्य थई शकतु नथी तेथी बाह्य संपत्ति सहित प्रवचनश्रद्धान पण जोये छे बाह्य उत्तम संपदा अने अंतर स्वधर्म निष्टा ए उत्कृष्ट पुण्यानुबंधीपुण्यनुं फल छे तेवु कोईएकनेज होय छे एनुं प्रत्यक्ष उ दाहरण आ वर्त्तमान छिशतकरूप कालनेविषे श्रेष्ट केशवजी नायक छे केमके, एवी योग्यतावान बीजो कोई पुरुष हाल दीठामा आवतो नथी एओ बाह्य लक्ष्म्यादि सं पत्तियुक्त छता आंतर धर्म सम्यक्त्व श्रद्धानरूप अत्युत्तम संपत्तिए करीने पण युक्त छे. जेनेविषे पंच प्रकृतिरूप अंतराय कर्मनो क्षयोपशम आधुनिक सर्व संघ जनोना कर्त्ताअ धिक दीठामां आवेछे, एमना जेवु आतप नाम कर्म तो कोई नृपने पण क्वचित् उदय थयलुं दृष्टि गोचर थशे। तेमज आदेय नामकर्म, अंगोपाग नाम कर्म, यश कीर्त्तिनाम कर्म, प्रमुख शुन प्रकृतिओनुं एमणे एवो तो उत्कृष्टबंध कर्योछे के, तेवो हाल दक्षणनरत्ता र्द्धमां कोई बीजानेविषे क्वचित् दीठामा आवसे एवा पुरुषने शु अशक्य होय ? अने कीयुं कार्य करवाने समर्थ न थाय। अर्थात् सर्व कार्य करवाने शक्तिमान छे पूर्वे थईगएला स प्रति राजा तथा वस्तुपाल तेजपाल अने कुमारपाल प्रमुख महत् प्रनाविक पुरुषोनी पठे एमणे पण वर्त्तमान कालानुसार धर्म दीपनार्थे तथा स्वश्रद्धान दर्शनार्थे श्री अर्हद्देवा लयो तथा अंजन शलाका प्रमुख उत्तम धर्म कृत्यो कर्या छे, ते बधाओथी पण अ

त्युत्तम ज्ञानवृद्धिनी उत्कंठा पूर्वक तद्युक्त पुरुषोने अतिशय आश्रय दियेछे; माटे नि श्चये करी एमने पूर्वभूत धर्म श्रद्धावान कुमारपाल राजा प्रमुखनी पंक्तिमां शासारुं न गणाय. किंतु तेमनी तुलना करे तेवाज छे. आ लखाणमां कोईए अतिशयोक्ति स मजवी नही, पण निर्पक्षपात बुद्धिथी विचार करी जोवुं के, शेठ केशवजी नायक ए सर्व उपमाने योग्य छे के नही! जुवो के अमे अंकित करवाने आरंभ करेला आ ए क लक्ष संख्याक महत् चतुर्भागात्मक पुस्तकना अंकनीय खर्चनेविषे एवी युक्तियो आश्रय आप्योछे के जेथकी केटलाएक समयोद्धरित पूर्व गीतार्थोंए करी रचित प्रकर णोनुं सुखरूप पुनः जीर्णोद्धार थई शकशे. माटे एमने जेटली उपमादेये तेटली थोडीछे.

रावबहादूर बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिंहजी छत्रपति सिंहजी.

शेठ केशवजी नायकविषे लखतां आ प्रसंगे श्रीमकुशुदावाद निवासी स्वप्रांत भूप समान, लक्ष्म्यादि बाह्य अमित समृद्धि युक्त, उत्तम यशःकीर्त्ति नाम कर्मोदयवान, ज्ञान वृद्ध्युत्कंठावान अतिशय, प्रतापी, स्वधर्म दीपक, पूर्वोक्त पंक्ति अभिराजनीय, सर्व संघ तिलक भूत तथा श्रावक गुण सहित्यादि अपूर्व कृत्यालंकार भूषित रावबहाडुर भूपतिदत्त पदक धारक बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिंहजी छत्रपति सिंहजी पोताना नाम प्रमाणेज योग्यतावान होवाथी अधुना अनुपमेयज छे.

जस्टिस् ऑव् धि पीसाख्य भूपतिदत्त पदक धारक शेठ केशवजी नायक तथा रा वबहाडुराख्य भूपतिदत्त पदक धारक शेठ लक्ष्मीपतिसिंहजी छत्रपतिसिंहजी जेवा प्रभा विक धर्म दीपक पुरुषो श्रावक मंमलनेविषे हमेश उत्पन्नथता रहो; अने आवा ज्ञान वृद्धिरूप धर्मकृत्यो कर्त्ता रहो एवो अमारो अंतःकरण पूर्वक आशिर्वाद छे.

आ ज्ञानवृद्धिक उत्तम कृत्यने सारो आश्रय आपनार प्रभाविक पुरुषोनी पंक्तिमां शोभित, अपेक्षा तथा उपेक्षा रहित, सारासार ग्राहक, परम रहस्यज्ञ, परोपकार म तिमान, करुणा, दया, कृपा तथा शीलादि शुभगुण युक्त, श्री वीतरागपद कमल मक रंद लालसाय भ्रमरायमान्, महात्मा सदृश मुनी महिमा सागरजी तथा सुमति सागर जी; एमनो अत्यंत प्रार्थना पूर्वक अत्युपकार युक्त नाम स्मरण अत्र गुंथित करुं छुं.

श्री मुंबईना श्रावक मंमलमांना श्रेष्ट हरजम नरसिंह; श्रेष्ट पेला भाई पदमसी, श्रेष्ट वर्द्धमान पुनसी, श्रेष्ट भोजराज देसल, एमणे ज्ञान वृद्धि विषयक पोतानी सारी उदारता दर्शावी छे माटे तेमना उपकार पूर्वक हुं नाम गुंथित करुं छुं.

श्रीमर्शुदाबाद निवासी परम ज्ञान प्रसारोद्युक्त मतिमान स्वज्येष्ट भ्राता तुल्य ल क्ष्मी तथा गुण युक्त नृप दत्तक रायबाहादूर पद धारक बाबुसाहेब धनपति सिंहजी छत्रपति सिंहजी एमने पण पोतानी उत्कृष्ट ज्ञान वृद्धिक कृत्यने सारी उदारता दर्शावी छे तेथी तथा बीजो पण ज्ञान वृद्धिने अर्थे पुस्तक अंकित करवानो हमेश उद्योग चालुं राखेछे तेथी अति सत्कार पूर्वक तथा मान्यता युक्त नामस्मरण गुंथित करुंछुं

श्री मुंबईना श्रावक मडलमांना शेठ परबत लधा, शेठ मूलजी देवजी, शेठ जादव जी परबत, सा. भोजराज नरपाल, तथा शेठ कीकाभाई फूलचद तथा शा गाकरसी देवजी एओए पण यथाश्रद्धान प्रमाणे आ ज्ञानवृद्धिना कृत्यने आश्रय आप्योछे तेथी तेओनुं उपकार सहित नामस्मरण गुंथित करुं छु.

श्री अहमदावादना श्रावक मंडल माहेला शेठ दलपत भाई भगुभाई, तथा शेठ मयाभाई प्रेमाभाई, एउनी ज्ञाननी प्रशस्ति थवानेविषे अति उत्कंठा जोईने मोटा आभार सहित नामस्मरण गुंथित करुं छुं;

श्री साणदवाला शेठ साकलचंद हुकमचंद तथा श्री भरूचवाला शेठ अनूपचद मलु कचद, एओए पोतानी धर्मप्रभावना अधिक दर्शाववाने अर्थे ज्ञाननी वृद्धि थवा सारु जे उत्सुकता बतावी छे ते जोईने मोटा उपकार साथे नामस्मरण गुथित करुं छुं

श्री कच्छ मुदराना रहेवाशी शेठ कस्तुरचद सिंघजी पारेख एमनी अद्भुत धर्म प्रीति, वैराग्यता तथा ज्ञानवृद्धिनी अतिशय चाहना जोईने मोटा आदर पूर्वक आ पुस्तकनी साथे नाम गुंथित करुं छुं

साधुमंडल मार्गमार्गित सवेगी साधु वर्य, अति विवेकी, ज्ञान पीयूष बुभुत्सुक जिनप्रवचन श्रवण श्रद्धावान श्रावक जन मन कर्णने परमामृत रहस्य पान कराव नार, साधु गुण भूषणालंकृत, ज्ञानवृद्धि कर्त्ता पुरुषरूप वृक्षोने मेघवृष्टि समान अत्युत्कृष्ट साधन भूत, महाराज श्री मूलचन्द्जी तथा जवेर सागरजीना, नामस्मरण प्रेम पूर्वक गुथित करु छु

साधु मंडलमा साधु गुण सपन्न, ज्ञानरूप सूर्यना प्रकाशने आवरण करनारा जे नाना प्रकारना सशयो, कुतर्को, द्वेष, मान, ईर्षा तथा कुसग प्रमुख वादल समूहरूप घनघटानो सम्यक् प्रकारे निध्वंश करवाने बलवान पवन समान, धर्म तथा धर्मांग ज्ञानादिकनी वृद्धि करवाने पूर्वना अत्युत्तम सुविहित शास्त्रपारग आचार्यादि आर्य जन तुल स्याद्वाद संज्ञीना जाण बहुधा पजाबाख्य देश निवाशी सवेगी साधु श्री आत्माराम समान आत्मारामजी एमनु अति भावपूर्वक नामस्मरण गुथित करुछुं

संवेगी साधु श्री नितीविजयजी महाराज एउनो ज्ञान वृद्धि अर्थे सारो उद्योग होवाथी प्रथम नागनी पठे नामस्मरण गुंथित करुं बुं;

संवेगी साधु साध्य वस्तु साधनोद्युक्त युक्त मतिमान; जिनवचन समुद्रमांथी जलद वत ग्रहीत धर्माकाशस्थित जलवृष्टि वत् ज्ञान वृद्धि कर्त्ता; संवेगी साधु शुद्ध सम्यक्त्व पदारथ, परम सुविहित सुसाधु मंमल माल प्रोहीत, ज्ञानादि शुद्ध जिनधर्मांगवृद्धि प्रयत्नवान. श्री शांति सागरजी महाराजनुं नामस्मरण गुंथित करुंबुं;

जन वृंद वंद्य अचल गन्नाचार्य नट्टारक श्रीविवेक सागर सूरि, एमनुं पूर्वनागनी पठे नाम स्मरण गुंथित करुं बुं;

मनुष्य पुंज पूज्य तप गन्नाधिपति नट्टारक श्री धरणेंद्रसूरि; एमनुं नाम स्मरण गुंथित करुं बुं;

श्री हुकमचंद्रजी महाराजनुं में प्रथम नागमां नाम स्मरण गुंथन कर्युं बे तेमज अत्रे पण गुंथित करुं बुं.

प्रवचन रहस्य ज्ञाता, कोविद मतिमान, अद्भुत चपल वक्तृत्वशक्तियुक्त, स्वरूपसा गरवित् श्रीरूपसागरजीनुं नाम स्मरण गुंथित करुं तुं;

शुद्ध वीतराग परुपित, जिनधर्म विनूति युक्त श्रीअहमदावाद नगर निवाशी सर्व श्रावक मंमल जन नृप समान अत्यंत लक्ष्मि संपत्तिवान पूर्वज परंपरा श्रेणि आगत श्रीमान उत्तम श्रद्धान सहवर्त्तमान तथा धर्मदीपक श्रेष्ट मयानाई प्रे मानाईनुं नामस्मरण पुनः गुंथित करुं बुं.

बीजा पण जे जे सद्बुद्धिमान पुरुपोए धर्म प्रनावना दर्शाववा निमित्ते स्वसामर्थ्या नुसार ज्ञानवृद्धि हेतुथी जे उदारता दर्शावी बे तेओनां नामस्मरणार्थे पुस्तकना अंत नेविषे गुंथित थशे.

क्षमापना.

प्रथम नाग मध्ये मतिदोषथी तत्वानुबोध नामनो ग्रंथ जे पृष्ट ७३१ थी ७५६ सुधीमां नाखवामां आव्युं बे ते स्थानकवासी रतनचंदनो करेलो बतां लखेली प्रतमां तेवुं न लणायाथी नूलथी बपाई गयो बे. एटला माटे हुं सर्व सुबुद्धिवान वाचको पाशे थी क्षमा मांगु बुं के अंकित ग्रंथना मुख पृष्टमां. सुविहित गीतार्थ रचित ग्रंथो ज नाखवानी मे प्रतिज्ञा करेली बे तेने कोई दूषण आपशो नही. केम के, हरेक

काम भूलथी थाय ते क्षमा करवा योग्य छे ढुंढिया यद्यपि जिनधर्मी नाम न
रा तो छे पण जाते मूर्खज होय छे तेथी तेओ जिनोक्त मार्गनी विपरीत परुपणा क
ता दरता नथी एवात सर्व सुज्ञ जनोने सम्मत छे माटे ते मूर्ख होवाथी गीतार्थ कहेवा
य नही तेथी ए ग्रथ अवश्य जैन सैलीथी विपरीतजछे एवु जाणी त्याग करवा यो
ग्य छे, कोईए सुविहित गीतार्थकृत जाणीने वाचवो भणवो नही ए वात हुं श्री भा
वनगरमा साधु श्री आत्मारामजी महाराजने मलवा गयो हतो त्यारे तेमणे मारी
पाछे कही ए रतनचद थानकवासी साथे आत्मारामजी महाराजनो मलाप थयलो
हतो इत्यादिक वहुवातो मे एमना मुखथी सानलीने तेथी में घणो पश्चात्ताप कर्यो पण
पछी थाय शुं? माटे मूलथी मारी प्रतिज्ञामा मे भूल कीधी तेनी मुनि श्री आत्माराम
जी महाराजना उपकार सहित सर्व सज्जनो पाछेथी क्षमापना मागु छु

शा भीमसिंह माणक.

विनती.

समस्त जैन धर्म रागी, नाना ग्रंथ विचार कुतुहलुक, जिनवचन पीयूषपान कर्त्ता, श
रल चित्तवाला जनोने अति प्रार्थना पूर्वक विनति करुं छु के, जेम जननी अथवा
जनक स्वपुत्रना दोषविषे रचमात्र विचार न करतां मात्र गुणपुंज ग्रहण करेछे तेम
आ अंकित पुस्तकनेविषे कोईने काई दोष दृष्टिगोचर थाय तो मज ऊपर रचमात्र रोष कर
वो नही केमके, सर्व प्रकारे निर्दोषता एक केवलीविना बीजा कोईनेविषे पण संभवे
नही एटला माटेज पूर्वे थई गयला महत् आचार्य प्रमुख श्रुतज्ञान पारग अत्युत्कृ
ष्ट पंडितो पण स्वरचित ग्रंथोमा बुद्धि दोषनेविषे क्षमा मागी गयला दीठामां आवेछे;
त्यारे आधुनिक साधारण जननी वात शु कहेवी? आ पुस्तकनुं शोधन करतां मति
दोष अथवा दृष्टिदोष अवश्य दीठामा आवशे, ते जोईने रोष न करतां क्षमा करवी
केमके, वाचता अथवा लखता भूल थायज छे एवो नियम छे एविषे जे गर्व करे ते
मूर्ख कहेवाय माटे ए विषे हु सर्व सत्पुरुषोनो विनय करुंछु के, आपनी हंसना चचू
जेवी मतिथी सारासार विचार पूर्वक जलरूप दोषनु निवारण करीने पयरूप गुणनुं
ग्रहण करवु अने असत् पुरुषोनो पण अधिक विनय करुं छु के, आपनी काकना
चचू जेवी मतिवडे गुण तजीने दोषनु ग्रहण करीने ते सुखेथी प्रसिद्ध करवो, तेथी हु

मोटो उपकार मानीश ? केमके, जो दोष दर्शावनार नही मले तो दोष दीठामां केम आवे? गुणग्राहकनी क्षमारूप अमृत धाराथी यद्यपि गुणनी पुष्टी थायछे, तथापि दोष ग्राहकनी कुमतिरूप कुठार धाराथी बुद्धि छिन्न भिन्न थइने तेने अदोषता करवाविषे घणा प्रयत्नमां प्रवृत्ति थायछे, तेथी तेनो पण उपकार मानवा योग्य छे. माटे सर्व सज्जन तथा दुष्ट पुरुषोनी विनति करुं छुं के, यथा स्वमति अनुसार गुणदोष विचार करीने क्षमादिक करवुं.

शा० भीमसिंह माणक.

प्रार्थना.



आ पुस्तक वांचनारा अने जाणनारा प्रमुख सर्व ज्ञानना रागी अने विवेकी सुज्ञजनोने अति नम्रतापूर्वक हुं याचना करुंछुं के, आ प्रकरण रत्नाकरमांना कोई प्रकरणमां अंतरवृत्तिजन्य दोषथी, बाह्यदृष्टि दोषथी अथवा अज्ञान प्रक्रियाने लीधे कांई जैननी शैलीथी विपरीतता अथवा सांशयिक दीठामां आवे तो तेविषे कोप न करतां सर्व लखी लईने ते मने मोकलावी देवुं, के जेथी ते सुधारीने कोई प्रसंगे विरोधनो परिहार करवामां आवे. जेम के, प्रथम भागमां नाखेला उपमितिभवप्रपंचनी कथामां अनुसुंदरने अवधिज्ञान उत्पन्न थया पछी अनंत काल निगोदमां रही आव्यो छतां ते सर्व वात स्मरणमां आवी छे. ए सांशयिक उक्ति छे; इत्यादिकनी पठे ज्यां ज्यां दीठामां आवे त्यां त्यांथी लखी लईने जो बने तो तेना विवेचनसुद्धां अथवा एमज मने सूचना करवी एवी हुं तेमनी प्रार्थना करुंछुं, अने एम कस्याथी मोटो उपकार मान्यामां आवशे.

शा० भीमसिंह माणक.

॥ श्री ॥

प्रकरणरत्नाकर नामाख्य पुस्तकना बीजाभाग माहेला ग्रंथोनी स्थूल विषयानुक्रमणिका प्रारंभ.

श्री जिनस्तोत्र संग्रह, श्री कल्याणसागर सूरिकृत.



विविधविषयिकस्तोत्र, जिनप्रनाचार्यकृत.





॥ अथ श्री महिम्नस्तोत्रप्रारम्भः ॥

महिम्नः पार ते परमजनमाना अपि विभो भवति स्तोतार समवसृतिभूमौ समु दिता. ॥ यदि ड्याद्यास्त्वां तज्जिनवृपजनतया स्तवयतो ममाप्येप स्तोत्रे हरनिरप वाद· परिकर ॥ १ ॥ स्वरूप चिद्रूपं किमपि तदरूपं भगवत श्रुतूरूपा ब्राह्मी यदि गदितुमीष्टे न भवत. ॥ तत· कस्य स्तुत्यं क्विमुपममिदं कस्य विपय पदे त्वर्वाचीने पतति न मन. कस्य न वच. ॥ २ ॥ यद्वा ॥ पद शैव केचित्परमम नपेक्षाक्षयसुखं स्तुवति त्वां राज्यादिकपदकृते मंदमतय· ॥ भवेद्वा तत्वार्थे रतिर तितरां नैव भवत पदे त्वर्वाचीने पतति न मन कस्य न वच ॥ ३ ॥ गुणाना मानत्यादविपयतया वाङ्मनसयो र्न शक्या तत्वज्ञै रपि तव विधातुं स्तुतिरियम् ॥ भवन्नामोच्चारात्पुनरपि ममैतां निजगिर पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यव सिता ॥ ४ ॥ यद्वा ॥ जटालंकारालंकृतमथ वृपांक च भगवन् पुनान विश्व त्वां प्रथमजिन मत्वा किमु तत ॥ जटां धृत्वा श्रित्वा वृषभद्दमपि क्ष्मातलमिदं पु नामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ५ ॥ न कोपस्याटोप स्वरिपुपु न च स्वे ष्वपि तथा प्रशांतिर्नो कांतादिकपरिकर कश्चिदिति ते ॥ त्रिलोक्यामालोक्याप्यह ह परमा प्रारभरमां विहतु व्याक्रोशी विदधत इहैके जडधिय ॥ ६ ॥ ध्रुव कश्चि त्कर्त्ता निखिलभुवनस्यापि स पुन र्विभुर्नित्यश्चैक सतनुरतनुर्वा स्ववशत ॥ स्वयं सिद्धेन्यस्मिस्तव मतमनाप्तान् हतधिय कुतर्कोयं कश्चिन्मुखरयति मोहाय जगत ॥ ७ ॥ विगुणैरागाद्यैरपि भवति किं सर्वविदहो विना वा सर्वज्ञं ननु जिन किमाप्तो पि स च किम् ॥ त्वदन्योपि क्वापि त्रिजगति वताप्तस्वविपये यतोमदास्त्वा प्रत्यमर वर संज्ञेरत इमे ॥ ८ ॥ त्वमेवार्हन् बुद्धो जगति परमेष्ठी च पुरुपोत्तमोलक्ष्म्या भा स्वान्विबुधगुरुरादीश्वर इति ॥ विभो नानाक्षानि समविपममार्गेपु चरता नृणामे कोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ९ ॥ प्रसादात्ते पुत्रा विपयसुखसाम्राज्यमभजन् न के वा सेवातस्तव भवनवामृद्धिमगमन् ॥ तृणे स्त्रैणे स्वर्णे दृपदि च सदृक्ष पु नरहो न हि स्वात्माराम विपयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ १० ॥ भवन्तत्ताहक्षातिशय महिमेक्षावशसमुद्भवद्भक्तिव्यक्त्या रणरणकितात करणत ॥ अधीरप्युद्युक्तोखिलजग दशक्यं स्तवमपि स्तुवन् जिन्हेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ११ ॥ न श स्यौ कस्यास्ता नमिविनमिपत्ती जिनपते त्वदेकस्वामित्वाक्रमकमलसेवासु रसिकौ ॥ प्रसादात्ते विद्याधरपतितति यत्सविनयं स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फल ति ॥ १२ ॥ तदा विद्या प्राप्य ध्रुवमखिलविद्याधरमहा स्वयं प्राज्ञभाव्य प्रथमम

य वैताढ्यविभुताम् ॥ यदेतौ दुःसाध्यौ सुरनरवराणामभजतां स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १३ ॥ अथावाप्तैश्वर्यं मदनमदविध्वंसि च महाव्रतित्वं सर्वज्ञत्वमसमविभूतिश्च परितः ॥ शिवासंगश्चांगः सततमिति नो कस्य कृतिनः स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १४ ॥ विवाहादौ नेतुर्मुहुरुपकृतो विप्रभिन्नवं त्वया पारंपर्यागतपरिचयान्मोहचरटः ॥ तथा दूरं नष्टः क्वचिदपि यथाकेवलक्ष्माप्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥ १५ ॥ भिक्षार्थी स्पर्धालुर्भरतविभुरासीन्मघवता यदाऽपत्तस्याधासनमथ सुखं केवलरमाम् ॥ तदेतस्मिन्सर्वं तव पदविनम्रे समुचितं न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १६ ॥ निनंसायां पूर्वं क्षणमलगणत्त्वां भरतराट् समं चक्रेणाहो तदिह विपर्यायाणां विषमता ॥ यदेतस्यार्चात्र प्रमितफलदैवाशिवसुखं न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १७ ॥ प्रभो त्वत्पुत्रस्यातुलबलवतो बाहुबलिनस्तपस्तीव्रं तादृक् शरदवधिमानादपि कृतं ॥ निदानं ज्ञानस्य ध्रुवमभवदाश्चर्यमथवा विकारोपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यमनिनः ॥ १८ ॥ न सुत्रामा यत्र प्रभवति विधातापि न विभुः स वैकुंठः कुंठः किमपि न भवश्चाभवदलम् ॥ जिगीषुः स त्वामप्यपरसुरमहुर्म्मतिरभूत् स्मरः स्मरभ्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥ १९ ॥ प्रयुंजानः स्वामिन्स्वयमखिलशिल्पान्यनुमतां कलाः पुंसां स्त्रीणामपि च सकलाः क्ष्मापतिरपि ॥ कुलालादींस्तांस्तान क्षणमपि नयन् शिक्षणविधौ जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥२०॥ प्रभो तैस्तैः सारैरणुभिरखिलैश्चामरवरैः कृतं रूपं सर्वोत्तमसुखगमंगुष्ठकमितम् ॥ त्वदंगुष्ठस्याग्रे भजति किल नांगारकइवेत्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥२१॥ प्रजाः प्राज्यं राज्यं स्थविरजननी स्वस्य तनुजांस्तपस्यन्नासत्तावपि च विहरन्बाहुबलिनः ॥ उपेक्षिष्ठा आत्तव्रतनृपसहस्राश्च चतुरो विधेयैः क्रीडंत्यो न खलु परतंत्राः प्रभुधियः ॥ २२ ॥ यदा नो रत्नानां त्रयमखिलदौर्गत्यहरणं निदानं संपत्तेस्त्रिभुवनजनानामनुदिनम् ॥ भवान् योगक्षेमावपि विरचयन्मन्मथजये त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्त्ति जगताम् ॥ २३ ॥ यथा पूर्वं मुग्धास्तवसदुपदेशाद्युगलिनः सदा स्वामिभोगाभिनिषित सदाचारचतुराः ॥ तथा कस्कः संप्रत्यपि न विशदेषु त्वदुदितश्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २४ ॥ तपस्तीव्रं ब्रह्मव्रतनियमनिष्ठा बहुविधाः क्रियाकष्टास्पष्टा अपि जिनप दुष्टाशयतया ॥ त्वदाज्ञावज्ञायां नियतमहितायै व भविनां ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २५ ॥ क्षमाभृन्मुख्याः केभिपनमभिमात्रानपि सदा स्वयंस्थान् शास्त्रौघान्दधतितरां यस्य हृतये ॥ अविघ्नं तं

निघ्नन्नसमसमयस्तामसमृगं त्रसंतं ते ऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरजस ॥ २६ ॥ परिभ्राम्य क्लेशार्जितमपि सहस्रेण शरदा मदाश्रिद्राजत्वं सपदि मरुदेव्यै तदपि चेत्॥ प्रभो निस्नेहं सा व्रतसमयसर्वावगणनादवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतय ॥ २७ ॥ महानदे यद्यप्यसि जिन दवीयस्यपि पदे न रुष्टस्तुष्टश्च त्रिभुवनजनेषु क्व चिदपि ॥ भवन्नाम स्वामिन्स्वमनसि महामन्त्रमनिशं तथापि स्मर्तॄणां वरद परम मंगलमसि ॥ २८ ॥ प्रभो प्राणायामाभ्यसनरसिकत्वान्निजमन समाधावाधाया खिलविषयतोक्षाणि युगपत् ॥ इतं प्रत्याहृत्य स्थिरनिहितनासाग्रनयना दधत्यंत स्तत्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्॥२९॥ सुरद्रु' स्व' कुलस्त्रिदशसुरभिस्त्वं सुरम णि पिता माता भ्राता विभुरपि सुहृत्त्व च सुगुरु ॥ परात्मा ब्रह्मापि त्वमसि पर मं दैवतमतो न विघ्नस्तत्तत्व द्व्यमिहहि यत्त्व न भवसि ॥ ३० ॥ अकाराद्यैर्वर्णै स्त्वयि परिणतान् पंच परमेष्टिन स्पष्टं पंचाक्षररचनया नामिनिगदन् ॥ कलाना दव्यक्तं किमपि परमब्रह्मविषयं समस्तं व्यस्तं त्वा शरणद गृणात्योमिति पदम्॥३१॥ न रागाद्यैर्ग्रस्तो न पुनरनुकम्प्यो मदपर कृपालु स्त्वत्तोन्यो न जगति न तेन्य पुनरलम्॥ स्वयं तेरत्यार्त्तै' किमितरसुरैश्चेति विमृशन् प्रियायास्मैधाम्ने प्रविहतनमस्योस्मि भवते ॥ ३२ नमो नासक्ताय क्वचिदपि विरक्ताय च नमो नम सबुद्धाय प्रशमद मरुद्धाय च नम ॥ नम 'सर्वज्ञाय स्मरणपरतन्त्राय च नमोनम सर्वस्मै ते तदि दमितिशर्वाय च नम ॥३३॥ दलितरजसे शश्वद्विश्वार्चिताय नमोनम प्रहततम से श्रीसर्वज्ञाधिपाय नमोनम ॥ जनहितकृते तुभ्यं सत्वाधिकाय नमोनम प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनम ॥३४॥ कुसुमवदुरिवाहं तद्गुतो किंचनार्हं कृतिभि रुरसि कंठे वा गुणत्वादधार्यम्॥ जिनवर जिनहर्षोत्कर्षतोकार्पमेव वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहार ॥ ३५ ॥ प्राग्श्रीसोमवशेऽजनिषत मुनयोमौक्तिकानीव शुद्धास्ते ष्वप्येकावली च प्रगुणगुणवती श्रीमदाचार्यपक्ति ॥ जीयाद्राज्य यदूनामिव गुरुज यचन्द्रान्हयश्रीमुनी इत्तस्यामप्येष चिंतामणिरुचिररुचिर्नायक कृष्णदेव ॥ ३६ ॥ निहितचरमपाद श्रीमहिम्न स्तवस्य त्रिभुवनमहितस्य श्रीयुगादीश्वरस्य ॥ भ्रमरइव सदा तत्पादपद्मोपजीवी रुचिरमलघुवृत्ते स्तोत्रमेतद्व्यधत्त ॥ ३७ ॥ एव शारदसो मसुदरयश स्तोम युगादीश्वरं चेतोभूजयचन्द्रमौलिभिरनिष्टत्यान्वह योगिभि ॥ ज्ञान प्राप्य विशालराजसदृशल्हादं समाश्रीपते मुक्त्यै मूर्द्धनि रत्नशेखररमा ब्रह्मैकतेजो मयी ॥ ३८ ॥ इतिश्रीयुगादिदेवमहिम्न. स्तोत्रं सपूर्णम् ॥

॥ अथ क्षमाकल्याणजीकृत चतुर्विंशतिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥

शार्दूल विक्रीडितछंदः ॥ अथ ऋषभस्तुति प्रारंभः॥ सद्भक्त्या नतमौलिनिर्जरवरभ्राजि ष्णुमौलिप्रभा संमिश्रारुणदीप्तिशोभिचरणांभोज द्वयःसर्वदा ॥ सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः सुच रितो धर्मार्थिनां प्राणिनां भूयाद्भूरिविभूतये मुनिपतिः श्रीनाभिसूनुर्जिनः ॥ १ ॥ सद्बो धोपचिताः सदैव दधताप्रौढप्रतापश्रियो येनाज्ञानतमोवितानमखिलं विक्षिप्तमंतः क्षणं ॥ श्रीशत्रुंजयपूर्वशैलशिखरं भास्वानिवोद्भासयन् भव्यांभोजहितः स एष जयतु श्रीमारुदेवप्रभुः॥ २॥ योविज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्यं सर्वलोकाश्रिताः सिद्धिर्येन वृता स मस्तजनता यस्मै नतिंतन्वते॥ यस्मान्मोहमतिर्गता मतिभृतांयस्यैव सेव्यं वचो यस्मि न्विश्वगुणास्तमेव सुतरां वंदे युगादीश्वरं॥ ३ ॥अथ अजितस्तुतिः प्रारंभः॥मालिनीछंदः॥ सकलसुखसमृद्धिर्यस्य पादारविंदे विलसति गुणरक्ता भक्तराजीव नित्यं ॥ त्रिभुवनज नमान्यः शांतमुद्राभिरम्यः स जयति जिनराजस्तुंगतारंगतीर्थे ॥ १ ॥ भवति किल भव्यो यस्यनिर्वर्णनेन व्यपगतदुरितौघः प्राप्तमोदप्रपंचः ॥ निजबलजितरागद्वेषविद्वेषिवर्गं तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥ २ ॥ नरपतिजितशत्रोर्वंशरत्नाकरेंदुः सुरपतिय तिमुख्यैर्नैकिदक्षैः समर्च्यः॥ दिनपतिरिव लोकेऽपास्तमोहांधकारो जिनपतिरजितेशः पातुमां पुण्यमूर्त्तिः ॥३॥ अथ संभवस्तुतिः ॥ स्रग्धराछंदः ॥ यद्भक्त्या सक्तचित्ताः प्रचु रतरभवभ्रांतिमुक्ता मनुष्याः संजाताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्यएव॥स श्रीमान्संभवेशः प्रशमरसमयोविश्व विश्वोपकर्त्ता सद्भर्त्ता दिव्यदीप्तिः परमपदकृते से व्यतां भव्यलोकाः ॥ १ ॥ शुक्लध्यानोदकेनोज्वलमतिशयितस्वच्छभावाद्भुतेन स्वस्मादा हृत्य वृत्तं शिवपदनिगमं कर्मपंकप्रपंचं॥ नीरंध्रं दूरयित्वा प्रकृतिमुपगतोनिर्विकल्पस्वरू पः सेव्यस्तार्क्ष्यध्वजोसो जगति जिनपतिर्वीतरागः सदैव॥ २॥ वार्द्धौ विद्योतिरत्नप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले यस्मिन्निःशेषदोषव्यपगमविशदे श्रीजितारेस्तनूजे ॥ दु प्रा पो दुष्टसत्वैः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः कल्याणश्रीनिवासः स भवतिवद ताऽभ्यर्चनीयो न केषां ॥३॥ अथ अभिनंदनस्तुतिप्रारंभः ॥ द्रुतविलंबितछंदः॥ विश दशारदसोमसमाननः कमलकोमलचारुविलोचनः॥ शुचिगुणः सुतरामभिनंदन ज य सुनिर्मलतांचितभूघन ॥ १ ॥ जगति कांतहरीश्वरलांछितक्रमसरोरुह कामकृपा निधे ॥ मम समीहितसिद्धिविधायकं त्वदपरं किमपीह न तर्कये ॥ २ ॥ प्रवरसंवर सं वरभूपतेस्तनय नीतिविचक्षण ते पदं ॥ शरणमस्तु जिनेश निरंतरं रुचिरभक्तिसुयुक्तिभृ तो मम ॥ ३ ॥ अथ सुमतिस्तुति प्रारंभः ॥ उपेंद्रवज्राछंदः॥ सुवर्णवर्णो हरिणासव

र्णो मनोवनं मे सुमतिर्बलीयान् ॥गतस्ततो डुष्टकुदृष्टिरागद्विषेंद्र नैव स्थितिरत्र कार्या ॥ १ ॥जिनेश्वरो मेघनरेंद्रसूनुर्घनोपमो गर्जति मानसे मे॥ अहो गुरुद्वेषहुताशन त्वा मसो शम नेष्यति सद्यएव ॥ २ ॥इत· सुदूरं व्रज डुष्टबुद्धे समं डुरात्मीयपरिच्छदेन ॥ सुबुद्धिभर्त्ता सुमतिर्जिनेशो मनोरम· स्वातमितो मदीयं ॥ ३ ॥ अथ पद्मस्तुतिप्रारंभ भुजंगप्रयातछंद ॥ उदारप्रभामंडलैर्भासमान कृतात्यंतडर्दांतदोषापमान· ॥ सुसीमांगजश्रीपतिर्देवदेव स्सदा मे मुदाभ्यर्च्चनीयस्त्वमेव ॥ १ ॥ यदीयं मन पंकजंनित्यमेव त्वयालंकृतं ध्येयरूपेण देव ॥ प्रधानस्वरूपं तमेवातिपुण्यं जगन्नाथ जानामि लोके सुधन्य ॥ २ ॥अतो धीशपद्मप्रभानंदधाम स्मरामि प्रकाम तवैवाग नाम ॥ मनोवांछितार्थप्रदं योगिगम्यं यथा चक्रवाको रवेर्धाम रम्यं ॥ ३॥ अथ सुपार्श्वजिनस्तुतिप्रारंभ तोटकछंद ॥ जयवतमनंतगुणैर्निभृत पृथिवीसुतमद्भुतरूपभृतं ॥ निजवीर्यविनिर्जितकर्मबलं सुरकोटिसमाश्रितपत्कमलं ॥ १ ॥ निरुपाधिकनिर्मलसौख्यनिधिं परिवर्जितविश्वडुरंतविधिं भववारिनिधे· परपारमिमं परमोज्वलचेतनयोन्मिलितं २॥कलधौतसुवर्णशरीरधर शुभपार्श्वसुपार्श्वजिनप्रवरम् ॥ विनयावनत प्रणमामि सदा हृदयोद्भवभूरितरप्रमुदा ॥ ३ ॥ अथ चंद्रप्रभाजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ वशस्थछंद·॥ अनंतकांतिप्रकरेण चारुणा कलाधिपेनाश्रितमात्मसाम्यतः॥ जिनेंद्र चंद्रप्रभ देवमुत्तमं भवतमेवात्महितं विभावये॥१ ॥उदारचारित्रनिधे जगत्प्रभो तवाननाभोजविलोकनेन मे ॥ व्यथा समस्तास्तमितोदितं सुख यथा तमिस्रादिवमर्कतेजसा ॥२॥ सदैव संसेवनतत्परे जने भवति सर्वेपि सुरा· सुदृष्टय·॥समग्रलोके समचित्तवृत्तिना त्वयैव सजातमनोनमोस्तु ते ॥ ३॥अथ सुविधिजिनस्तुतिप्रारंभ ॥ वसततिलकाछंद ॥ विश्वाभिवद्यमकराकितपादपद्म सुग्रीवजात जिनपुगव शातिसद्म॥भव्यात्मतारणपरोत्तमपानपात्र मां तारयस्व भववार्द्धिनिधेर्विरूपात् ॥ १ ॥ नि शेषदोषविगमोद्भवमोक्षमार्गं भव्या श्रयंति भवदाश्रयतो मुनींद्र ॥ ससेवित सुरमणिर्बहुधा जनाना किनाम नोभवति कामितसिद्धिकारी॥२ ॥ विज्ञं कृपारसनिधि सुविधे स्वयभूर्मत्वा भवतमिति विज्ञपयामि तावत्॥ देवाधिदेव तव दर्शनवल्लभोहं शश्वद्भवामि भुवनेश तथा विधेहि ॥ ३॥ अथ शीतलजिनस्तुतिप्रारंभ ॥शार्दूलविक्रीडितछंद ॥कल्याणांकुरवर्द्धने जलधरं सर्वांगिसपत्कर विश्वव्यापियश कलापकलितं कैवल्यलीलाश्रितं ॥ नंदाकुक्षिसमुद्भव दृढरथक्षोणीपतेर्नंदन श्रीमत्सूरतविदरे जिनवर वदे प्रभुं शीतलं॥१॥ विश्वाज्ञानविशुद्धतिद्धिपदवीहेतुप्रबोध·दधद्भव्याना वरभक्तिरक्तमनसा चेत सुमुल्लासयन् नित्यानंदमयप्रसिद्धसमय सद्भूतसौख्याश्रयो डुष्टानिष्टतम·प्रणाशतरणिर्जीयाज्जिन शीत

लः ॥ १ ॥ सद्भक्त्या त्रिदशेश्वरैः कृतनुतिर्नानाविधगुणालंकृतिः सत्कल्याणसमद्युतिः शुभ
मतिः कल्याणकृत्संगतिः ॥ श्रीवत्सांकसमन्वितस्त्रिभुवनत्राणे गृहीतव्रतो भूयाद्भक्ति
भृतां सदेष्टवरदः श्रीशीतलस्तीर्थकृत् ॥ ३ ॥ अथ श्रेयांसजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ हरिणी
छंदः॥ चिरपरिचिताऽगाढव्याप्ता सुबुद्धिपराङ्मुखी निजबलपरिस्फूर्त्योंदग्रा समग्रतया
मम॥व्यपगतवती दूरं दुष्टा स्वनिष्टकुदृष्टिता अपचितसहा सद्योभूत्वा यदीयसुदृष्टितः १
निरुपमसुखश्रेणीहेतुर्निराकृतदुर्दशा शुचितरगुणग्रामावासो निसर्गमहोज्ज्वला॥हृदय
कमले प्रादुर्भूता सुतत्त्वरुचिर्मम विदलितभवभ्रांतिर्यस्याप्यजस्रमनुस्मृतेः॥ २॥उपकृ
तिमतिर्दाने दक्षो निरस्तजगद्व्यथ. समुचितकृतिर्विज्ञानांशुप्रकाशितसत्पथः॥नृपगण
गुरोर्विष्णोर्वंशे प्रभाकरसन्निभः स भवतु मम श्रेयांसेनःप्रबोधसमृद्धये॥३॥अथ वासुपू
ज्यस्तुतिप्रारंभः ॥ रथोद्धताछंदः ॥ पूर्णचंद्रकमनीयदीधिति भ्राजमानसुखमद्भुतश्रि
यां॥शांतदृष्टिमभिरामचेष्टितं शिष्टजंतुपरिवेष्टितं परं॥१॥नष्टदुष्टमतिभिर्यमीश्वरं संस्मर
द्भिरिहभूरिभिर्नृभिः॥क्षीणमोहसमयादनंतरा प्रापि सत्यपरमात्मरूपता ॥२॥ पार्थिवे
शवसुपूज्यवेश्मनि प्राप्तपुण्यजनुषं जगत्प्रभुं ॥वासुपूज्यपरमेष्ठिनं विशः के स्मरंति न हि
तं विपश्चितः ॥३॥ अथ विमलजिनस्तुतिप्रारंभः॥मंदाक्रांताछंदः॥संसारेस्मिन्महतिम
हिमामेयमानंदिरूपं त्वां सर्वज्ञं सकलसुकृतिश्रेणिसंसेव्यमानं ॥ दृष्ट्वा सम्यग्विमलसद
सज्ज्ञानधाम प्रधानं संप्राप्तोहं प्रशमसुखदां संभृतानंदवीचिं॥१॥ येतु स्वामिन् कुमति
पिहितस्फारसद्बोधमूढाः सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रद्विषते विश्वपूज्यां॥द्वेषोद्भूतेः कलु
षितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं मन्ये तेषां गतशुभदृशां का गतिर्भाविनीति ॥ २ ॥ श्यामा
सूनो प्रतिदिनमनुस्मृत्य विज्ञानिवाक्यं हित्वानार्यं कुमतिवचनं ये भुवि प्राणभाजः॥पू
र्णानंदोल्लसितहृदयास्त्वां समाराधयंति श्लाघ्याचाराः प्रकृतिसुभगाः संति धन्या स्त एव
व॥३॥अथ अनंतस्तुतिप्रारंभः॥ स्रग्विणीछंदः॥यस्य भव्यात्मनो दिव्यचेतोगृहे सर्वदा
ऽनंतचिंतामणिर्द्योतते॥यांति दूरेस्वतस्तस्य दुष्टापदो विश्वविज्ञानवित्तं भवेदक्षयं॥१
यस्तु सर्वज्ञरूपं स्वरूपस्थितं वीक्ष्यसद्भावतः सिंहसेनात्मजं॥अद्भुतामोदसंदोहसंपूरि
तोमन्यतेधन्यमात्मीयनेत्रद्वयं ॥२॥ सोपवर्गानुगामिस्वभावोज्ज्वलां व्यूढमिथ्यात्ववि
द्रावणे तत्परां बंधुरात्माऽनुभूतिप्रकाशोद्यतां शुद्धसम्यक्त्वसंपत्तिमालंबते ॥ ३ ॥ यु
ग्मं ॥ अथ धर्मस्तुतिप्रारंभः ॥ कामक्रीडाछंदः ॥ भास्वज्ज्ञानं शुद्धात्मानं धर्मेशानं स
द्ध्यानं शक्त्यायुक्तं दोषोन्मुक्तं तत्त्वासक्तं सद्भक्तं॥शश्वच्छांतं कीर्त्या कांतं ध्वस्तध्वांतं वि
श्रामं हिंसावेशं सत्यादेशं श्रीधर्मेशं वंदध्वं॥१॥निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धेर्भर्त्ता संसर्त्ता
दुर्जीवानां दूरेहर्त्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्त्ता॥सद्भक्तेभ्योमुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्वाता स्तुत्यो

नत्या वाचोयुक्त्या चेतोवृत्त्या ध्येयात्मा॥ २॥सम्यग्दृग्नि साक्षात्दृष्टोमो ह्यस्पष्टो ना
कृष्ट स्त्रोतोयामै. संपज्ज्येष्ठ साधुश्रेष्ठ सत्प्रेष्ठ ॥श्रद्धायुक्तस्तातैर्जुष्टो नित्यंतुष्टो निर्दुष्ट
स्त्याज्यो नैवश्रीवज्राको नष्टातंको नि शंक'॥३॥ युग्म ॥ अथ शातिजिनस्तुतिप्रारंभ ॥
द्रुतविलंबितछंद ॥ विपुलनिर्मलकीर्त्तिभरान्वितो जयति निर्जरनाथनमस्कृत ॥ लघु
विनिर्जितमोहधराधिपो जगति यः प्रभुशातिजिनाधिप ॥१॥ विहितशातसुधारसमज्ज
न निखिलदुर्जयदोषविवर्जित ॥ परमपुण्यवतां भजनीयतां गतमनतगुणै सहित सतां
॥२॥तमचिरात्मजमीशमनीश्वर भविकपद्मविबोधदिनेश्वर॥ महिमधाम भजामि जग
त्रये वरमनुत्तरसिद्धिसमृद्धये॥ ३ ॥ त्रिभिर्विशेषक ॥ अथ कुंथुजिनस्तुतिप्रारंभ ॥गी
तपद्धतिमाह ॥ जयजय कुंथुजिनोत्तमसत्तम तत्वनिधान धर्मजनोज्वलमानसमानस
हंससमान ॥ ज्ञानाछादकमुख्यमहोद्धतकर्मविमुक्त विषमविषयपरिभोगविरक्त शुभाश
ययुक्त॥१॥ जयजय विश्वजनीन मुनिव्रजमान्य विशुद्ध चेतन चारुचरित्रपवित्रितलोक
विबुद्ध निरुपममेरुमहीधरधीर निरतरमेव गर्वविवर्जितसर्वसुपर्वविनिर्मितसेव ॥ २ ॥
जयजय सुरनरेश्वर नंदनचदनकल्प वासक विश्वविभावविनाशक वीतविकल्प॥ नि
र्मलकेवलबोधविलोकितलोकालोक प्रादुर्भूतमहोदयनिर्वृतिनित्यविशोक ॥ ३ ॥ अ
थारजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ रामगिरिरागेण गीयते ॥ दिव्यगुणधारकं भव्यजनतारक
दुरितमतिवारकं सुकृतिकांतं ॥ जिनविषमसायक सर्वसुखदायकं जगति जिननायकं
परमशातं दि० ॥१॥स्वगुणपर्यायसमीलत व्याहतं विगतपरभावपरिणतिमखड॥सर्व
सयोगविस्तारपारगतं प्राप्तपरमात्मरूप प्रचडं॥ २ ॥ दि० ॥ साधुदर्शनवृतं भाविकै
प्रस्तुतं ॥ प्रातिहार्याष्टकोभ्रासमान ॥ सततमुक्तिप्रद सर्वदा पूजितं॥शिवमपरसार्वभौ
मप्रधानं ॥ ३ ॥ अथ मल्लिस्तुतिप्रारंभ ॥ कुंभसमुद्भव समदाकर सगुणवरहेममल्लिजि
नोत्तम देव जयजय विश्वपते१ कृत्याकृत्यविवेकिता जिनसमुचिता हे त्वयि जागर्ति जि
नेश ज०॥२॥नित्यानदप्रकाशिका भ्रमनाशिका हे तव शुभदृष्टिरनीश ज०॥३॥शुद्धिनि
बंधनसन्निधे सद्गुणनिधे हे वर्जितसर्वविकार ज० ॥ ४ ॥ निजनिरुपाधिकसपदा शो
भित सदा हे निर्मलधर्मधुरीण ॥ ५ ॥१९ ॥अथ मुनिसुव्रतस्तुति प्रारंभ ॥अथान्या
गेयपद्धति ॥ उत्तमचेतनधर्मसमृद्धजगत्पते॥ नित्यानित्यपदार्थनिचयविलसन्मते॥नि
जविक्रमजितमोहमहोभटभूपते ॥ श्रीपद्मातनुजात सुजातहरिद्युते ॥१ ॥ श्रीमुनिसु
त सुव्रतदेशक सज्जना कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जना हे प्रणमति भवतमनंतसु
खाश्रितं ॥ केवलमुज्वलभावमखडमनिदितं॥ २॥ तेनि संशयमेव जगत्रयवदिता ॥
सद्भावेन भवति सुदृष्टयानंदिता ॥कृत्यं स्वोचितमेव यत किल कारण॥जनयति नात्म

विरुद्धमिहासाधारणं ॥ ३ ॥ अथ नमिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पंचचामरछंदः ॥ नमीश
निर्मलात्मभूप सत्यरूप शाश्वतं परार्द्धसिद्धिसौधमूर्ध्विसत्स्वभावतः स्थितं ॥ विधा
य मानसाब्जकोशदेशमध्यवर्त्तिनं स्मरामि सर्वदा भवंतमेव सर्वदर्शिनं॥१॥प्रफुल्लकांव
लांछन प्रभूततेजसो य ते दिवाकरस्य वा महेश्वरानिदर्शनेन मे॥प्रमादवर्द्धिनी सुदुर्म
तिर्निशेव दुर्भगा गता प्रणाशमाशु हृत्कजे विनिद्रिता भवत् ॥ २ ॥ निरस्तदोषदुष्ट
कष्टकार्यमर्त्यसंस्तवो भवे भवे भवत्पदांबुजैकसेवकः प्रभो ॥ भवेयमीदृशं भृशं म
दीयचित्तचिंतितं तव प्रसादतोभवत्ववंध्यमेव सत्वरं॥३॥ अथ नेमिजिनस्तुतिप्रारंभः॥
उपजातिछंदः ॥ विशुद्धविज्ञानभृतां वरेण शिवात्मजेन प्रशमाकरेण ॥ येन प्रयासे
न विनैव कामं विजित्य विक्रांतवरं प्रकामं ॥१॥ विहाय राज्यं चपलस्वभावं राजीम
तिं राजकुमारिकां च ॥ गत्वा सलीलं गिरिनारशैलं भेजे व्रतं केवलमुक्तियुक्तं ॥२॥ निः
शेषयोगीश्वरमौलिरत्नं जिनेंद्रियत्वं विहितप्रयत्नं॥ तमुत्तमानंदनिधानमेकं नमामि ने
मिं विलसद्विवेकं ॥३॥ अथ पार्श्वजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पंचचामरछंदः॥ श्रयाम तं जि
नं सदा मुदा प्रमादवर्जितं स्वकीयवाग्विलासतोजितोरुमेघगर्जितम् ॥ जगत्प्रकामका
मितप्रदानदक्षमक्षतं पदं दधानमुच्चकैरकेतवोपलक्षितं ॥ १ ॥ सतामवद्यभेदकं प्र
भूतसंपदां पदं वलक्षपक्षदक्षजापतीक्षणक्षणप्रदं ॥ स देव यस्य दर्शनं विशांविमेदि
तैनसां॥निहंत्यशातजातमात्मभक्तिरक्तचेतसां ॥२॥ युग्मं॥अवाप्य यत्प्रसादमादितः
पुरुश्रियो नरा भवंति मुक्तिगामिनस्ततः प्रभाप्रभास्वराः॥ भजेयमाश्वसेनिदेवदेवमेवस
त्पदं तमुच्चमानसेन शुद्धबोधवृद्धिलाभदं ॥ ३ ॥ अथ वीरजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पृथ्वी
छंदः ॥ वरेण्यगुणवारिधिः परमनिर्वृतः सर्वदा समस्तकमलानिधिः सुरनरेंद्र
कोटिश्रितः ॥ तथापि गुणवर्जितो विगतभावसौख्यो धनः सुमुक्तजनसंगमस्त्वम
सि वर्द्धमान प्रभो ॥ १ ॥ जिनेंद्र भवतोद्भुतं मुखमुदारबिंबस्थितं विकारपरिव
र्जितं परमशांतमुद्रांकितं ॥ निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितोस्मि यद्भावनां सदैव जग
दीश्वरोभवत सैव मे सर्वदा ॥ २ ॥ विवेकिजिनवल्लभं समदुरात्मनां दुर्लभं दुरंतदुरि
तव्यथाभरनिवारणे तत्परं ॥ तवांग पदपद्मयोर्युगमनिंद्यवीरप्रभो प्रभूतसुखसिद्धये
मम चिराय संपद्यतां ॥३॥इत्थं चतुर्विंशतिसंख्ययैव प्रसिद्धिभाजां वरतीर्थराजां॥श्री
जैनवाक्यानुसृतप्रबंधा वृत्तैरहीना प्रणुतिर्नवीना॥७५॥गणाधिपश्रीजिनलाभसूरिप्रभु
प्रसादेनविनिर्मितेयं ॥ जिनप्रणीतामृतधर्मसेविक्षमादिकल्याणबुधात्मबुध्यै॥ ७६॥यु
ग्मं॥यस्याःप्रसादात्परिपूर्णभावं भूतः सुनिर्विघ्नतया स्तवोयं॥ जगत्त्रयीजंतुहितैकनिष्ठा
वाग्देवता सा जयतादजस्रं ॥ ७७ ॥ इतिश्रीमच्चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः समाप्ता ॥

॥ श्रीसर्वज्ञायनमोनम ॥

अथश्री मुनिसुंदरसूरिकृत अध्यात्मकल्पद्रुमो बालावबोधसहितः प्रारभ्यते

॥ प्रथम अर्थकर्त्तानुं मंगलाचरण ॥

श्रीशंखेश्वरपार्श्वेशं प्रणताभीष्टदायकं ॥
प्रणमामि परमप्रेम्णा सर्वाभीप्सितसिद्धये॥ १ ॥
सर्वज्ञं सर्वभापाभि· सर्वसंसत्प्रबोधक ॥
सर्वसत्वहितं वंदे वर्द्धमानजिनेश्वरं ॥ २ ॥
अध्यात्मकल्पद्रुमसञ्ज्ञकस्य शास्त्रस्य संविज्ञहितावहस्य ॥
वार्त्ताभिरप्रौढमतिप्रतुष्टै बालावबोधां विदधे विवृत्ति ॥ ३ ॥

हवेग्रंथनेआदि ग्रंथकार प्रथमस्थापनानुं सूत्रकहेछे

अथायंश्रीमान् शांतनामा रसाधिराजः सकलागमादि सुशास्त्रार्णवोपनिषद्भूतसुधारसायमान ऐहिकामुष्मिकानंतानंदसंदोहसाधनतया पारमार्थिकोपदेश्यतया सर्वरससारभूतत्वाच्च शांतरसभावनात्माध्यात्मकल्पद्रुमाभिधानग्रथातरग्रंथननिपुणेन पद्यसंदर्भेण भाव्यते ॥

अर्थ ॥ पूर्वेश्री मुनिसुंदरसूरिये त्रिदशतरगिणी गुर्वावली प्रमुख ग्रंथकीधा ते वारपछी आग्रंथकीधो तेभणीइहां अथशब्दआण्यो तेमाटे अथकहेता एटलाथकी अनतर जेजेनशासननेविषे प्रत्यक्ष शातनामाजे रसाधिराज रसजे १ शृगार २ हास्य ३ करुणा ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ बीभत्स ८ अद्भुत ९ शात एनवमध्येअधिराजके० शिरोमणी तेहुं मुनिसुंदरसूरि पदके०काव्यतेहनो सदर्भजेरचना तेणेकरीने भाव्यतेके० विचारुंछुं एटलेपूर्वेमनमाथयोछे तेकाव्यबंधे प्रगटकरीकहुंछुं के हेवोछेते रसाधिराज श्रीके० मोक्षरूपिणीलक्ष्मी·तेछे फलजेहनु एहवो वलीकेहेवोछे

आगमजे श्रीजिनेश्वरप्रणीत सिद्धांत तेआदेंदेइने सकलजे सुशास्त्रकहेतां धर्मशास्त्र तेरूपीउं अर्णवजे समुद्र तेहनुं उपनिपद्भूतके० सारभूत एहवो सुधारसायमानके० अमृतरसतुल्यछे हवेअन्यशृंगारादिक रसतजीने केवलशांतरसनेज शावास्तेनावखुं तेहनोहेतुकहेछे एकतोऐहिकामुष्मिकके० इहलोकसंबंधी अने आमुष्मिकके० परलोकसंबंधी जेअनंतआनंदनो संदोहके० समूह तेनुंसाधनछे तेहेतुयेंकरीने वली बीजोहेतुकहेछे परमार्थिकजे मोक्षार्थी तेहनाजेजाणनार तेहनेउपदेशदेवायोग्यछेएटलेमोक्षार्थीनाउपदेशकजे तीर्थंकर गणधरादिक तेआशांतरसनोज उपदेशकरे तेणेकरीने. वलीत्रीजोहेतुकहेछे जेआशांतरसते सर्वरसनेविषे सारभूतछे तेहेतुयकी. हवे पद्यसंदर्भकहेवुंछे तेकेहेछे शांतरसभावनास्वरूप अध्यात्मकल्पद्रुम एहवेनामेजेग्रंथविशेष तेहनुं ग्रंथनजेरचना तेहेनेविषे निपुणछे मनइच्छित अध्यात्मज्ञान आपवाने कल्पवृक्षनीपेठेसमर्थ तेमाटेआग्रंथनुंनाम अध्यात्मकल्पद्रुम जाणवुं.

जयश्रीरांतरारीणां लेभे येन प्रशांतितः ॥
तं श्रीवीरजिनं नत्वा रसः शांतो विभाव्यते॥१॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनेआदें ग्रंथकर्त्ता मंगलाचरणकहेछे जेणेप्रशांतितके० उत्कृष्टशांतरसथी क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष ए छए अंतरंगशत्रुछे तेओनेजीतीने जयलक्ष्मीपामीछे एहवाते श्रीवीरजिनप्रतें हुंमुनिसुंदरसूरि नमस्कारकरीने शांतनामाजे रस तेने भावुंछुं एटले समुचितेष्टदेवताने नमस्कारलक्षण ग्रंथारंभेमंगलिककर्युं॥१॥

सर्वमंगलनिधौ हृदि यस्मिन् संगते निरुपमं सुखमेति ॥
मुक्तिशर्म च वशीभवति द्राक् तं बुधा भजत शांतरसेंद्रं॥२॥

अर्थ ॥ हवेशांतरसनुं महात्म्यकहेछे बुधाके० हेविवेकीजनो तमें आ सर्वमांगल्यनुं निधान एहवोजे शांतनामारसाधिराज तेप्रतेंभजो केमके एशांतरस जेनाहृदयमांआव्यो तेप्राणी अनुपम सर्वार्थसिध्यादिकनाजेसुख तेप्रतेपामें वलीजे हृदयमां आवेछके जेमोक्षसुखतेपण द्रागके० तत्काल थोडाकालमांज वशथाय ॥ २ ॥

समतैकलीनचित्तो ललनापत्यस्वदेहममतामुक् ॥ विषयकपायाद्यवशः शास्त्रगुणै र्दमितचेतस्कः ॥ ३ ॥ वैराग्यशुद्धधर्मा देवादिसतत्वविद्विरतिधारी ॥ संवरवान् शुभवृत्तिः साम्यरहस्यं भज शिवार्थिन् ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे साम्योपदेशयोग पुरुपनाविशेपण द्वारेंकरीने ग्रंथकर्त्ता ग्रंथमध्येक हेवाना सोल द्वारकहेछे हेमोक्षार्थिपुरुपतु साम्यरहस्यजे समतानुंसार तेप्रतेनज्ञ तेकहेवोथइनेनज जे एकतो समतासाथे लीनचित्तकरीने एटलेएपहेलुं द्वारपण कह्यु वली बीजुं ललनाजे स्त्रीनीममतामोचन द्वार त्रीजुं अपत्यजे पुत्रादिकसततिनी ममतामोचन द्वार चोथु स्वके० धननीममतामोचन द्वार पाचमुं देह तेहनीममतायेर हितथको एटलेपांचमुं देहममतामोचन द्वार छठुं विपयजे शब्दादिकनोनिग्रहकरवो सातमुं कषायजे क्रोधादिक तेनोनिग्रहकरवो इहां आदिशब्दथी राग द्वेप प्रमादादि क तेहुने अवश्यके० आधीननही एहवोथकोरहे तथा शास्त्रजे जैनागम तेहना गुणजे हेयोपादेयादिक तेणेकरीने दम्युंछेचित्तजेणे एटलेशास्त्रगुणते आठमुं द्वार अनेचित्तदमननामे नवमुं द्वार वली वैरागेंकरीने शुद्धनिर्दोपछे धर्मजेहनुं एमादस मुं वैराग्य द्वार अने इग्यारमुं शुद्धधर्मनामा द्वार तथा देवजेश्रीअरिहंत गुरुजेसु साधु अनेकेवलिप्रणीतधर्म एत्रण तत्वनो जाणथयीने एटले ए देवादिकस्वरूपनाज्ञा ननुं बारमुं द्वार तथा विरतिजे पंचाश्रवनुंविरमण तेहनुधारकथको एतेरमुंविरति धारी नामा द्वार वली संवरजेसत्तावनभेदें आश्रवनिरोधरूप तेणेकरीसहित तेचउद मुं संवर द्वार अने शुभउत्तम वृत्तिके० आचरणछेजेहनी एहवोथको तुसाम्यरहस्य नेभज एटलेइहां शुभवृत्तिनामापन्नरमुं द्वारथयुं अनेसोलमुं साम्यरहस्यनामा द्वार एग्रंथमांकहेवानासोल द्वारना नामबेश्लोकेकरीकह्या ॥ ३।४ ॥

इति पोडशाधिकारे शास्त्रोपदेशपदसंग्रहो यथा

चित्तबालक मात्याक्षी रजस्रं भावनौपधी ॥
यत्त्वां डुर्ध्यानभूता न छलयति छलान्विप ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथम समताना अधिकारआश्री उपदेशकहेछे हेचित्तरूपीयावाल क तु सदाय भावनाजे अनित्यादिकबार तथामैत्र्यादिकचार तेरूपणीऔपधीप्रतें छा मीलनही केमकेएभावनाने नछांमवाथी शोगुणथायछे तेकहेछे जेथकीताहराछलना जोनाराजे आर्त्तरौद्रादिडुर्ध्यान तेरूपीआ भूतपिशाचते तुजनेछलकरीशकशेनही॥५

यदिंद्रियार्थैः सकलैः सुख स्यान्नरेंद्रचक्रित्रिदशाधिपाना ॥
तद्विंदवत्येव पुरोहि साम्यसुधाबुधेस्तेन तमाद्रियस्व ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेएशुभभावना ते समताविना नहोय तेकहेछे सघला इंद्रियार्थैंजे शब्द रूप रस गंध अनेस्पर्श तेणेकरीने राजाचक्रवर्त्ती अनेत्रिदशाधिपकहेता इं

तेहनेजेसुखहोय तेसर्वसुख समतारूपीयुंजे सुधांबुधिकहेतां अमृतसमुद्रछे तेआ गल बिंदुबराबरदेखाय एटलेसंसारिकसुख सघलुंमलीने बिंदुतुल्यछे अनेसमतानुं सुखछेते समुद्रतुल्यछे तेमाटेमोक्षार्थिजीवते समतारूपीआ सुधासमुद्रनेआदरे॥६॥

अदृष्टवैचित्र्यवशाज्जगज्जने विचित्रकर्माशयवाग्विसंस्थुले ॥
उदासवृत्तिस्थितचित्तवृत्तयः सुखं भजंते यतयः क्षतार्त्तयः॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसमताआदर्यानुं फलकहेछे जगतजे त्रिभुवनतेमां जनजे देवमनुष्यादि तेमध्येयतीजेनिर्ग्रंथ तेजसुखीथाछे तेजगतजनकहेवाछे तेकहेछे अदृष्टजेपूर्वकृतकर्म तेहनुंविचित्रजे नानारूपपणुं तेहनावशथकी नानाविधकर्मना विपाकथी संसारीजीवना मननोअभिप्राय तथावचन अनेकायानीचेष्टापण नानाविधछे तेणेकरी व्याकुलछे. हवेयतीकहेवाछे उदासवृत्तिजे लाभालाभ सुखदुःख अने प्रियअप्रिय तेने विषेसमानवृत्तिछे तथाजेनी चित्तवृत्ति स्थिरतरहीछे वलीजेनीसर्वचिंता क्षयपामीछे ॥७

विश्वजंतुषु यदि क्षणमेकं साम्यतो भजसि मानस मैत्रीं ॥
तत्सुखं परममत्र परत्राप्यश्नुषे न यदभूत्तव जातु॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीसमतानुं विशेषफलकहेछे हेचित्त जोतुं समतायेंकरीने सर्वजीवने विषे एकक्षणमात्रपण मैत्रिता चिन्तवेतो तुं पूर्वेसंसारमांभ्रमणकरतां कोइवखतपाम्योनथी एवा इहलोक अने परलोकमांपण परमउत्कृष्टसुखप्रतेंपामें ॥ ८ ॥

न यस्य मित्रं न च कोपि शत्रुर्निजः परो वापि न कश्चनास्ते ॥
न चेंद्रियार्थेषु रमेत चेतः कषायमुक्तं परमः स योगी ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेएसमताने योग्यजीवकोणहोय तेकहेछे जेहनेकोइमित्रनथी तथा कोइशत्रुपणनथी तेमजजेहने पोतानुं तथापारकुंकांइनथी वलीजेहनुं चित्त कषाय रहितथको इंद्रियार्थजे शब्दादिविषय तेनेविषे रमेनही तेप्राणीपरमयोगवंतहोय एटले ते समतावंतजाणवो ॥ ९ ॥

भजस्व मैत्रीं जगदंगिराशिषु प्रमोदमात्मन् गुणिषु त्वशेषतः ॥
भवार्तिदीनेषु कृपारसं सदाऽप्युदासवृत्तिं खलु निर्गुणेष्वपि ॥१०॥

अर्थ ॥ हवेसमताआव्याना कारणउपदेशेछे हेजीव जगतना अंगीके० जेजीवते हनीराशिकहेतां समूहनेविषे एटलेसामान्यथकीसर्वजीवनेविषे मैत्रिताप्रत्यें भजस्वके० आदरीने वलीसमस्तप्रकारें जेकोइ ज्ञानादिकगुणयुक्तहोय तेहनेविषे प्रमोदप्रत्यें भजि

अनुमोदनाकर तथाभवके० संसारनी आर्त्तिजेपीडा तेणेकरीदीनके० दुखितप्राणिने विषेकृपारसप्रतेंभज वली निर्श्वेनिर्गुण प्राणीनेविषेपण उदासवृत्तिप्रतेंभज॥१०॥

मैत्री परस्मिन् हितधी समग्रे भवेत्प्रमोदो गुणपक्षपात.॥
कृपा भवार्त्ते प्रतिकर्त्तुमीहोपेक्षा च माध्यस्थ्यमवार्यदोषे॥११॥

अर्थ॥ हवेएमैत्र्यादि चारेभावनानुं स्वरूपकहेछे समस्तपोताथी व्यतिरिक्तजेबीजाजीव तेनेविषेजे हितचिंतववानीबुद्धि तेनेमैत्रीकहिये तथागुणीजे ज्ञानादिकगुणवत तेहनोपक्षपातजे प्रशंसा तेहनेप्रमोदकहिये तथाभवार्थीजे जन्ममरणादिक संसारनादुख प्रतिकारकरवानीवांछा कोइअज्ञानीजीवने पापथकीनिवर्त्तववानेअर्थे प्रतिबोधदेवो तेनेकृपाकहिये जेमश्रीवीरस्वामीये शूलपाणीयक्ष चंडकोशिकसर्पप्रतें अपराधउपरपण कृपाकीधी वलीजेप्राणीअवार्यदोषकहेता वारतांथकापण दोषनेनछांडे तथावारवायोग्यपणनहोय एहवोदोषवत जेपुरुष तेनेविषे मध्यमभावें रागद्वेषरहितपणे समभावेंरहेवुं तेउपेक्षाभावनाकहियें॥११॥

तथाचोक्तं तुर्यषोडशके॥परहितचिंता मैत्री परदुःखनिवारिणी तथा करुणा॥परसुखतुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा॥१२॥

अर्थ॥ तेमजवलीकह्युछे श्रीहरिभद्रसूरिये चोथाषोडशकमध्ये जे परनेहितचिंतववुंतेमैत्री तथापरनादुखने निवारणकरवानीभावना तेकरुणा अनेपरनुंसुखजे समतादिरूप तेदेखीने संतोषपामवो ते मुदिताके० प्रमोदभावना कहिये अने परनादोष देखी उवेखवु उदास रहेवु तेनेउपेक्षाभावना कहिये॥१२॥

तथाच योगशास्त्रे॥माकार्षीत्कोपि पापानि मा चाभूत्कोपि दुःखितः॥ मुच्यतां जगदप्येषां मतिर्मैत्री निगद्यते॥१३॥

अर्थ॥ वलीयोगशास्त्रमध्येपण श्रीहेमचंदसूरियेकह्युछे के कोइपापमकरो कोइदुखीथाओमा तथाजगतसर्व कर्मथीमुकाओ एवीजेमतितेने मैत्रीकहिये॥१३॥

अपास्ताशेषदोषाणां वस्तुतत्वावलोकिना॥ गुणेषु पक्षपातो य स प्रमोद· प्रकीर्तित.॥१४॥

अर्थ॥ सकलदोषरहित तथा वस्तुतत्वजे स्वभाव अने परभाव तथा द्रव्य गुण पर्यायनाजाण एवाजेगुणवत तथाउपलक्षणथकी सामान्यपणेपण जेगुणवतहोय तेहना गुणनेविषे जेपक्षपात तेनेप्रमोदभावनाकहियें॥१४॥

दीनेष्वार्त्तेषु भीतेषु याचमानेषु जीवितं ॥ प्रती
कारपरा बुद्धिः कारुण्यमभिधीयते ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ वलीदीन असमर्थ अनेआर्त्तपीडावंत तथा भयेंकरी आकुल अनेजी
वितव्यनेयाचतां एवाप्राणिनेविषेजे प्रतिकारकहेतां दुःख निवारवानीबुद्धि राखवी
तेने कारुण्यके० करुणाभावना कहियें ॥ १५ ॥

क्रूरकर्मसु निःशंकं देवतागुरुनिंदिषु ॥ आ
त्मशंसिषु योपेक्षा तन्माध्यस्थ्यमुदीरितं ॥१६॥

अर्थ ॥ तथा शंकारहित क्रूरकर्मनाकरनार अने देवगुरुनानिंदक पोतानीप्रशं
सानाकरनार एवाअधमपुरुषनेविषेजे उपेक्षा तेमध्यस्थभावनाकहियें ॥ १६ ॥

चेतनेतरगतेष्वखिलेषु स्पर्शरूपरवगंधरसेषु साम्यमे ॥
ति यदा तव चेतः पाणिगं शिवसुखं हि तदात्मन् ॥१७ ॥

अर्थ ॥ हवेवली मूलसूत्रकार समताआदरवाथी मोक्षनी सुलभताकहेछे हेआ
त्मन् जेवारें ताहारुंचित्त अखिलके० समग्रचेतनजे अनुक्रमें स्त्री देह स्त्रीकटाक्ष
कोकिलनाद कस्तुरी पशुमांसप्रमुख तथाइतरजे अचेतनपदार्थ अनुक्रमें शय्या
आभरणधरेणादिक कर्पूर वीणा शर्कराप्रमुख तेसंबंधी जेस्पर्श रूप रवके०श
ब्द गंध रस तेहनेविषेतुं साम्यताके० इष्टानिष्टनेविषे समवृत्तिप्रतेंपामशे तेवारेंजे नि
श्चेंकरीने मुक्तिसुखते ताहरेहस्तगतथाशे ॥ १७ ॥

के गुणास्तव यतः स्तुतिमिच्छस्यद्भुतं किमकृथा मदवान् यत् ॥
कैर्गता नरकभीः सुकृतैस्ते किं जितः पितृपतिर्यदचिंतः ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माजे स्तुतिनेवांछेछे तेनोमदनिवारवाने कहेछे हेआत्माऔदार्य धै
र्य गांभीर्य दान शील तप भावना उपशमादिक जेगुणछे तेमांहेलाताहरामां इयागुण
छे केजेहने माटेतुं स्तुतिकहेतां लोकनामुखें पोतानीप्रशंसा करावववांछेछे तथावली
तेंछुंसाधुआश्रीने राज्यादिमहर्द्धिकनेप्रतिबोध अथवासर्वशास्त्रप्रवीणता उग्रतप
युगप्रधानपणुं इत्यादिक अथवाश्रावकआश्रीने जीर्णोद्धार बिंबप्रतिष्ठा संघपतिपणुं
अमारपडह इत्यादिक अद्भुतके० आश्चर्यकारी कार्यइयांकीधा केजेनाथी तूं मद
वंतथायछे तथा कयासुकृतेंकरी ताहारीनरकनीबीकगइ अथवापितृपतिजे यम तेछुं

तेजित्यो जेमाटेतुअचिंतकहेता निश्चितथकोरहेछे एटले स्तुतिनीवांछा मदकरवो अने निश्चितरहेवु ए तने युक्तनथी ॥ १८ ॥

गुणस्तवैर्यो गुणिना परेषा माक्रोशनिंदादिभिरात्मनश्च ॥
मनः सम शीलति मोदतेवा खिद्येत च व्यत्ययतः स वेत्ता॥१९॥

अर्थ ॥ हवेजेवेत्तापणुते शातरसनुंकारणछे एमकहेछे जेप्राणी परके० अन्यजेगुणवतपुरुषहोय तेनागुणस्तवजे गुणवर्णन अनेआत्मन कहेता पोतानाआक्रोशजे गालप्रमुख तथानिंदादिक सांभळीने पोतानुंमन समपरिणामेराखे पण अमर्षधरेनही उलटो मोदतेकहेता हर्षपामे अनेएमविचारेजे गुणवतना गुणस्तववाजयटेछे तथा हेआत्मातु निर्गुणछो माटे निंदानेजयोग्यछो एमप्रमोदधरे तथाव्यत्ययकहेता उपरकह्याथीविपरीतजे बीजागुणवतपुरुषना आक्रोशके० निंदासांभळीअनेपोतानी प्रशंसादिकसांभळीने खेदपामे जेएएवागुणवतपुरुषनी निदाकाकरेछे तथामाहारामां तोगुणनथी तेमछताएछुंकहेछे एमचितवे तेहनेवेत्ताके० ज्ञानीकहिये ॥ १९ ॥

न वेत्सि शत्रून् सुहृदश्च नैव हिताहिते स्वं न परं च जंतोः ॥ दु
खं द्विषन् वांछसि शर्मचैत न्निदानमूढः कथमाप्स्यसीष्टं॥२०॥

अर्थ ॥हवेयथार्थने नहीजाणनारजीवनुं मूढपणुंकहेछे हेजीव तुशत्रूजेरागादिक तथामित्रजेउपशमादिक तेहनेनथीजाणतो तथाहितजेसवरादिक अने अहितजेआश्रवादिक तथावळीस्वभावजे ज्ञानदर्शनादिक अनेपरभावजे मिथ्यात्वरागादिक तेहने नथीओळखतो वळी दुःखजेपरिसहादिक तेहथीउभग्योछे अनेशर्मजे इहलोकतथा परलोकादिकनुंसुख तेनेवाछेछे तेवारे तु एसुखनुं निदानजे कारण तेहनुं तो मूढके० अजाणछो तेमछता शीरीतेंवांछित पदार्थप्रतेपामीश एटलेसुखनुंमूळ निदानते समछे तेविनाइष्टसुखनी प्राप्तिनथाय॥ २० ॥

कृती हि सर्व परिणामरम्यं विचार्य गृह्णाति चिरस्थितीह ॥
भवांतरे ऽनतसुखाप्तये तदात्मन्किमाचारमिम जहासि ॥ २१॥

अर्थ ॥ हवेजाणपणानुं फळदेखाडीने उपदेशछे कृतीजेमाह्योपुरुषहोय तेतोसर्ववस्तुमाजे वस्तुपरिणामेरम्य तथासुखदाइहोय अनेचिरस्थितिकहेता घणोकाळरहे एवुविचारकरीने तेवस्तुनेतेग्रहणकरे तोहेआत्मा भवांतरेअनतसुख आपवाने समर्थ एवाजेज्ञानादिक चारपदार्थ तेनेतुकेमत्यजेछे एचारेंवस्तुपरिणामेरम्यछे अने चिरस्थितिछे एटलेघणाकाळसुधी रहेएवीछे माटेतेतुजनेत्यजवीघटेनही ॥ २१ ॥

निजः परो वेति कृतो विभागो रागादिभिस्ते त्वरय स्तवात्मन् ॥
चतुर्गतिक्लेशविधानतस्त त्प्रमाणयन्नस्यरिनिर्मितः किं ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा रागादिकने वशथको पोतानुंअने पारकुंलेखेछे तेआश्रीउपदेशेछे हेआत्मा निजकहेतां स्वजन कलत्र पुत्रादिक अथवा परजेशत्रुप्रमुख एवोविभागजे भेदकरीजाणवो तेभेदसर्वरागादिकनुं करेलुंछे माटेताहरे जेप्राणीसाथें राग छे तेहनेतुं स्वजनकरीजाणेछे अनेजेनाथीद्वेषछे तेनेशत्रुकरीजाणेछे पणतेरागादिक तो चारगतिनाक्लेश कष्टनाकरनार ताराशत्रुछे तोअरिनिर्मितके० तेशत्रुनुंजनीपजाव्युं जेभेद तेने शुंप्रमाणकरेछे एटलेरागद्वेषनावशथी निजपराविभागकरवुंतेजूगेछे.

अनादिरात्मा न निजः परो वा कस्यापि कश्चिन्न रिपुः सुहृद्वा ॥
स्थिरा न देहाकृतयोणवश्च तथापि साम्यं किमुपैपि नेपु ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ हवेसर्ववस्तुनी अनित्यतादेखाडी आत्मानेसमतानी प्रेरणाकरेछे हेआत्मा तुंआदिरहितछो अनेकोइनेकोइ पोतानुं तथापारकुंनथी वलीकोइनोकोइशत्रु अनेमित्रपणनथी वलीहेआत्मन् देहजेपुरुष स्त्रीआदिकनुंशरीर तेआकारेंपरिणाम्या एवाअणुकहेतां पुद्गल तेपणस्थिरनथी केमके क्षणक्षणप्रत्यें उपचयके० शुक्लअशुक्लादिक अवस्थापालटेछे तेमछतां हेआत्मा आदेहाकारजे पुद्गलतेनेविषे तुंकेम साम्यताकहेतां रागद्वेषरहिततापणुं नथीपामतो हेआत्मा तुंतोअनादीछे अनेएदेहाकृती तो अस्थिरछे माटेसमतानेआदर ॥ २३ ॥

यथा विदां लेप्यमया न तत्वा त्सुखाय मातापितृपुत्रदाराः ॥
तथा परेपीह विशीर्णतत्तदा कारमेतद्धि समं समग्रं ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ वलीएजअर्थ दृढकरेछे आसंसारमांजेम लेपमयकहेतां चित्रादिलिखित जे माता पिता पुत्र दारा कलत्रहोय ते तत्वथकी विचारीजोतां विवेकीपुरुषने सुखदाइ नहोय एटलेतेहने देखीविवेकीसुखमानेनही तेम अपरेके० बीजापणजे साक्षातदृश्यमान माता पिता पुत्र कलत्रादिक तेपणतत्वथकी विवेकीने सुखदाइनथाय केमके तेना तेतेआकारभांगाथकी ते लिप्यमय जेचित्रितपुतला तथाप्रत्यक्षदृश्यमानजे मातापितादिक तेसर्वसरखाथाय माटेतेनेविषे ममत्वकरवुं तेमिथ्याछे ॥ २४ ॥

जानंति कामान्निखिलाः ससंज्ञा अर्थं नराः कर्म च केपि धर्मं ॥
जैनं च केचिद् गुरुदेवशुद्धं केचित् शिवं केपि च केपि साम्यं ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमताना धरनारप्राणिथोडाहोय तेकहेछे संसारमां समग्रसंज्ञाधार क जीवमात्र तेकामकहेतां शब्दादिकविषयजाणेछे एटले कामनाअर्थी सर्वजीवछे तेसर्वमनुष्य अर्थकहेता धनउपार्जन तथाकर्मकहेतांकाम एवेपदार्थजाणेछे केमके मनुष्यना कामभोगते धनने आधीनछे तेमांवलीकोइकमनुष्यते सामान्यथकी मिथ्या दृष्ट्यादिक धर्मनेजाणेछे वलीतेमापणकोइकज जैनधर्मनेजाणेछे वलीतेमापण को इकविरलाज शुद्ध अष्टादशदोषरहितदेव तथागुरु सुविहितसुसाधु एवोजैनधर्मजा णेछे वलीतेमांपण शिवजेमोक्षार्थ तेहनेतोकोइकज जाणेछे वलीतेमापणसमताना जाणतो कोइकविरलाजछे एटले ए सर्वथीअधिक तेसमताना जाणनेकह्यो ॥ १५॥

स्निह्यति तावद्धि निजानिजेषु पश्यंति यावन्निजमर्थमेभ्य· ॥
इमा भवेऽत्रापि समीक्ष्य रीतिं स्वार्थे न क प्रेत्य हिते यतेत ॥१६॥

अर्थ ॥ हवेस्वजनना सबंधते केवलस्वार्थनिष्ठितछे तेदेखाडेछे निश्चयथी निजके० पोतानास्त्रीपुत्रादिकतेसहु निजके० पोताना पतितादिक स्वजननेविषेतिहा लगे स्नेह धरे जिहा लगे ते स्वजनथी पोतानुंअर्थ जे भरण पोषणादिक थतुदेखे तिहालगे स्नेह धरेछे एम प्रत्यक्षआभवनेविषेपण स्वजनादिकनी एरीतछे तेजोइने प्रेत्यके० परलोक नेविषे हितकारी एवोस्वार्थजे आत्मार्थ सयमादिक तेहनेविषे कोणउद्यमनकरे॥१६॥

स्वप्नेन्द्रजालादिषु यद्वदाप्तै रोषश्च तोषश्च मुधा पदार्थैः ॥
तथा भवेऽस्मिन् विषयैः समस्तैरेवं विभाव्यात्मलयेऽवधेहि ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेजेरागद्वेषधरवो तेफोगटछे एमदेखाडेछे जेमस्वप्न तथाइन्द्रजालादिक विषे पाम्याजे अशुभ तथा शुभपदार्थ तेणेकरीने रोषकहेताद्वेष अने तोषकहेता हर्षकरवो ते मुधाके० निरर्थकछे एटले जेमस्वप्न इन्द्रजालादिकना पदार्थोथी अर्थसि द्धिकाइनथी तेमभवमापण अशुभतथा शुभविषयेकरीने रोषअनेतोषकरवो तेमुधाछे एमविचारीने हेआत्मातु आत्मसमाधिनेविषे अवधेहिके० सावधानरहे ॥ १७ ॥

एष मे जनयिता जननीयं बंधव पुनरिमे स्वजनाश्च ॥
द्रव्यमेतदिति जातममत्वो नैव पश्यसि कृतांतवशत्वं॥१८॥
नोधनै परिजनै स्वजनैर्वा दैवतै परिचितैरपि मंत्रै ॥
रक्ष्यतेऽत्र खलु कापि कृतांतान्नो विभावयसि मूढ किमेवं॥१९॥

अर्थ ॥ हवेबेकाव्यमा जीवने मृत्युनुं आधीनपणुं देखाडेछे हेआत्मा आमाह

रोपिता आमाहरीमाता आस्वजन आद्य एम ममत्वमां मग्नथयोथकोतुं स्वकहे तांपोतेज यमनेवशपड्युं नथीदेखतोछतो ॥ २८ ॥ तोहेमूढ एसंसारनेविषे निश्च येंकरीने धनतथापरिजन सेवकादिक तथा स्वजन पुत्र कलत्रादिक वलिदेवता त था परिचितकहेतां विधिथीउपार्ज्या जेमंत्रतेएसर्वेमलीनेपण कृतांतजेमृत्यु तेथी कोइप्राणीरखायनही एवुंहेमूर्खतुं केमविचारतोनथी ॥ २९ ॥

तैर्भवेपि यदहो सुखमिछं स्तस्य साधनतया प्रतिभातैः ॥ मुह्य
सि प्रतिकलं विषयेषु प्रीतिमेषि न तु साम्यसतत्वे ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ अहोआत्मा जेमाटेतुंसंसारमांपण तेपूर्वोक्तजेधनादिक तेणेकरीने सु खवांछतो छतो समयसमयविषे विषयमां मोहपामेछे पणतेधनादिक कहेवाछे तेतुज नेसुख साधन तयाके० कारणपणे प्रतिभास्यांछे पणतेधनादिक तोसुखनाकार णनथी मात्रतने एमभास्यांछे जे ए सुखनासाधनछे तेथी तुं समताना सतत्वस्वरू पनेविषे प्रीतिनथीपामतुं ॥ ३० ॥

अर्थतोयुग्मं ॥ किं कषाय कलुषं कुरुषे स्वं केषु चिन्ननु मनोरिधि
याऽत्मन् ॥ तेपि ते हि जनकादिकरूपैरिष्टतां दधुरनंतभवेषु ॥३१॥

अर्थ ॥ हवेस्वजनादिकनुं अनेकांतिकपणुं देखाडेछे निश्चयथकी हेआत्मा कोइ कप्राणीनेविषे अरिधियाकहेतां एमाहाराशत्रुछे एवीबुद्धेंकरी पोतानुंमन कषायेंकरीक लुषितशुंकरेछे केमके तेप्राणीपण ताहरा पिता मातादिकस्वरूपेंकरीने अनंता भवमां अनंतासगपणोने धरताहवा तेमाटेतेओने केवल शत्रुकरीजाणवुं तेमिथ्याछे ॥३१॥

यांश्च शोचसि गताः किमिमेमे स्नेहला इति धिया विधुरात्मा ॥
तैर्भवेषु निहतस्त्वमनंतेष्वेव तेपि निहता भवता च ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवे जे स्वजनछे तेजशत्रुछे एवुंदेखाडेछे हेआत्मातुं एमाहारो स्नेहवंत स्वजन किहांगयो एवीबुद्धियें विधुरात्माके० दुःखेंव्याकुलथको मुवागयाजेस्वज नादिक तेप्रत्येंशोचेछे एमजेहनो शोककरेछे तेजस्वजनादिकें तुजनेअनंताभवनेवि षेहण्योछे वलीतेंपण तेहनेअनंताभवनेविषे हण्याछे तेटलामाटे स्वजनबुद्धियेंजे स्ने हराखवुं तेपणमिथ्याछे. ॥ ३२ ॥

त्रातुं न शक्या भवदुःखतो ये त्वया न ये त्वामपि पातुमीशाः ॥
ममत्वमेतेषु दधत् मुधात्मन् पदेपदे किं शुचमेषि मूढ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ हवेकोइकोइने राखवासमर्थनथी एवुदेखाडेछे जवके० ससारनाडुःख की जेप्राणीने तुं राखीशक्योनही अनेतेपण जवडुःखथीतुजने राखीशक्यानही तो जेजवडुःखथी राखवानेसमर्थनथी तेवारेहेमूर्खआत्मा स्वजनादिकनेविषे मुधाके० फोकटममत्वकरतोथको पगेपगेदुःशोकपामेछे माटेशोकतजीने समतानेजज ॥ ३३ ॥

सचेतना पुद्गलपिंडजीवा अर्थाः परे चाणुमया द्वयेपि ॥
दधत्यनंतान् परिणामजावान् तत्तेषु कस्त्वर्हति रागरोषौ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेजीवना पुद्गलसाथे नानाविध परिणामछे तेकहेछे पुद्गलपिंडके० पुद्गलनो समूहजेदेहलक्षण तेहनेआश्रीनेरह्या एवाजे सचेतनके० चेतनाधारक सर्व जीव अथवा अणुमयाके० पुद्गलमयजे बीजा अचेतन अर्थके० पदार्थ एटलेशरीरधारकजीव अने पुद्गल एबेपण अनतागमे परिणामजावके० पर्यायप्रत्येधरेछे तोते जीवअनेपुद्गलनेविषे रागअनेरोषकरवाने कोणयोग्य थाय निपुणपुरुषे तेउपर राग रोषकरवो युक्तनथी॥३४॥ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे साम्योपदेशाख्य प्रथमोधिकार,

---

अथस्त्रिय ॥ मुह्यसि प्रणयचारुगिरासु प्रीतित प्रणयिनीषु कृतिन् कि॥ कि न वेत्सि पततां जववार्धौ तान्नृणा खलु शिलागलबद्धा॥१॥
चर्म्मास्थिमज्जांत्रवसास्त्रमासामेध्याद्यशुच्यस्थिरपुद्गलाना ॥ स्त्री देहपिडाकृतिसस्थितेषु स्कंधेषु कि पश्यसि रम्यमात्मन् ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेबीजाअधिकारमा स्त्रीओनोममत्व त्यजवाआश्री उपदेशआपेछे हेकृतिन् प्रणयचारुके० स्नेहेकरीमनोहरछे गिराके० वाणीजेहनी एहवी प्रणयिनीके० स्त्री ओनेविषे प्रेमेकरीने सुंमोहपामेछे पण एमकानथीजाणतोजे जववार्धौके० संसारसमुद्रमा पडतापुरुषनागलामा स्त्रीओते शिलाउंवांधेछे ॥ १ ॥ हवेएस्त्रीओना शरीरनुं अपवित्रपणुंकहेछे हेआत्मन् चामडी हाड चरवी आत्रडा पासली मेद रुधिर मास विष्टा तथा आदिशब्दथी मूत्र कफ श्लेष्मादिक एहवाअपवित्र अने अस्थिरके० क्षणविनाशिक जे पुद्गल तेहना स्कधके० समूहथी बन्यो जेस्त्रीनुशरीर तेहनी पिंडाकृतिके० साइ सुघटआकार तेरूपेसस्थितरह्याछे तेमा सुंतुमनोहरपणुदेखेछे एटलेएसर्व अपवित्र अस्थिरपुद्गलनो पिंडछे तेमोकाइसारनथी ॥ २ ॥

विलोक्य दूरस्थममेध्यमल्प जुगुप्ससे मोटितनासिकस्त्वं ॥
जृतेषु तेनैव विमूढयोपावपुष्षु तत्कि कुरुषेऽजिलाप ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे हेआत्मन् अल्पके० थोरुकपण अमेध्यके० विष्ठादि कदेखीने मोटितनासिकाके० नाकमचकोडीनेतुं जुगुप्ससेके० दुगंछाकरेछे तोहे मूर्ख विष्टादिकेंजभरया एहवाजे स्त्रिओनाशरीर तेहनेविषे सुं अभिलाषकरेछे ॥ ३ ॥

अमेध्यमांसास्त्रवसात्मकानि नारीशरीराणि निषेवमाणाः ॥
इहाप्यपत्यद्रविणादिचिंतातापान् परत्रेप्रतिदुर्गतीश्च॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेएस्त्रीओनाशरीरते इहलोकें अने परलोकेंपण दुःखदायीछे तेकहेछे अमेध्यजे विष्टादिक ते मांस रुधिर मेद तेथीजबनेला तन्मय एहवाजे स्त्रीओनाश रीर तेहने सेवनाराजेपुरुष तेइहलोकेंपण अपत्यके० संतानपुत्रादिक तथा द्रविण के० धनइत्यादिकनी चिंतानासंतापप्रतें पामेछे अने परलोकेंपण दुर्गतिप्रतेंपामेछे४

अंगेषु येषु परिमुह्यसि कामिनीनां चेतः प्रसीद विश
च क्षणमंतरेषां ॥ सम्यक् समीक्ष्य विरमाशुचिपिंडके
भ्यस्तेभ्यश्च शुच्यशुचिवस्तुविचारमिच्छत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ वलीस्त्रीनादेहनी अपवित्रताकहेछे चित्तनीप्रसन्नतायेंकरीनेजे स्त्रीओनाअं गनेविषे मोहपामेछे तेहनेकहियेंछैयें जे तुं तेमांएकक्षणमात्र प्रवेशकरी एटलेसूक्ष्मद ष्टीयेंकरी तेहनुंसम्यक्प्रकारें स्वरूपविचारीने पवित्र अने अपवित्र एवेवस्तुनावि चारने वांछतुंथको होयतो जेजे स्त्रीनाअंगछे तेतेसर्व अपवित्रतानाज पिंमके० ढग लाछे तेहथीतुं विरमके० रागत्यजीने अलगोरहे ॥ ५ ॥

विमुह्यसि स्मेरदृशः सुमुख्या मुखेक्षणादीन्यभिवीक्षमाणः ॥
समीक्षसे नो नरकेषु तेषु मोहोद्भवा भाविकदर्थनास्ताः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेस्त्रीनाअंगनिरीक्षण तथाभोगनुंफलकहेछे हेआत्मातुं सुं मुखीके०चं द्रमुखी तथास्मेरके०विकसितछेनेत्रजेहना एहवीस्त्रीओनामुख तथाईक्षणजेनेत्र आ दिशब्दथी स्तन जंघादिक तेहनाउपर सरागपणेजोतोथको मोहपामेछे पणजे महादुःखमयनरक तेहुनेविषे तथाविध मोहथकी उपनीओ एहवी भाविके० आ गामिककदर्थनाजे महापीडाओ तेप्रतेंतुंकेमविचारतोनथी ॥ ६ ॥

अमेध्यभस्त्राबहुरंध्रनिर्यन्मलाविलोद्यत्क्रमिजालकीर्णा ॥
चापल्यमायानृतवंचिका स्त्री संस्कारमोहान्नरकाय भुक्ता॥७॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे विष्टादिकेंभरीयकी भस्त्राके० धमणीसरिखी तथाघ

णारध्रजे वारेद्वार तेह्थीनिकलता मलके० विष्टामूत्रश्लेष्मादिक तेणेकरी आविलके० मलिन तथा उद्यतके० उपजता रुमिजे योनीमांहेला सूक्ष्मजीव तेह्ना जालके० समूह्‌ तेणेकरी कीर्णके० व्याप्त वली चपलपणुं तथा कपटाइपणुं अने अनृतके० असत्यवचन तेणेकरी वंचिकाके० पुरुषनेठगनारी एह्वीजेस्त्री तेसंस्कार जे जन्मातरनोसंबंध तेह्नावशथकी अथवा संस्कारजे स्नान तिलक आभरणादिक तेह्थी उपनोजेमोह्‌ तेह्नावशेंकरी भोगवीथकी नरकायके०नरकनीदेवावालीथाय ७

निर्भूमिर्विषकदली गतदरी व्याघ्री निराह्वो महाव्याधिर्मृत्युरकारणश्च ललनाऽनभ्रा च वज्राशनिः ॥ बधुस्नेहविघातसाहसमृपावादादिसंतापभूः प्रत्यक्षापि च राक्षसीति विरुदैः ख्याताऽऽगमे त्यज्यतां ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीपणस्त्रीनुंज त्यजवुकहेछे श्रीसिद्धांतमां स्त्रीनेएह्वे विरुदेंकरीवखाणीछे तेमाटेस्त्रीनेत्यजवी तेकिह्नाकिह्नाविरुदेंत्यजवी तेविरुदोनानामकहेछे एस्त्रीतेभूमिविना विषनी कदलीके० नवाअंकुरनीलीखाछे तथा कदरीजेगुफाथीरहितथकीपण वाघणमरिखीछे वलीकोइ नामविनापण महारोगरूपछे वली अकारणके० अपथ्य सेवन अजीर्णादिक कारणोविनाज मृत्युके० मरणतुल्यछे वली अभ्रवादलरहितते वज्रसरिखी वीजलीछे अने बंधुके० स्वजननो स्नेह तेह्नो विघातके० नाशकरनारी छे तथा साहसके० अविचारितकार्यनुंकरवु असत्यबोलवु वली आदिशब्दथी अदत्त अब्रह्म परिग्रहादिक तेसंबंधी संतापनो भूके० उत्पत्तिनोस्थानकछे वली प्रत्यक्ष साक्षात्‌ राक्षसीपणजाणवी एरीते एसर्वेस्त्रीना एह्वा अशुभ विरुदजाणीने विवेकी पुरुषने स्त्रीसंबंधी ममत्वत्यजवु ॥ ८ ॥ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे स्त्रीममत्वमोचनो नाम द्वतीयो ऽधिकार संपूर्ण ॥

अथापत्याधिकार ॥ मा भूरपत्यान्यवलोकमानो मुदाकुलो मोहनृपारिणा यत्॥चिक्षिप्सया नारकचारकेऽस्मिन् दृढ निबद्धो निगडैरमीभि ॥१॥

अर्थ ॥ ह्वेत्रीजाअधिकारें पुत्रादिकनुं ममत्वमुकवाआश्री उपदेशकहेछे तेमा प्रथम संतानउपरें मोह्करवुनही तेकहेछे हेआत्मातु अपत्यजेपुत्रपुत्रीप्रमुख तेने जोतोथको मुदाके० हर्षआकुलथाऽस केमके मोह्राजारूप शत्रुयें नरकरूपजे चारकके० बंदीखानु तिहा चिक्षिप्साके० घालवानीइछायें अपत्यरूप निगडके० बिमियें दृढकरीने तुजने बांध्योछे ॥ १ ॥

आजीवितं जीव नवांतरेपि वा शल्यान्यपत्यानि न वेत्सि किं हृदि ॥
चलाचलैर्यैर्विविधार्तिदानतोऽनिशं निहन्येत समाधिरात्मनः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेउपमानंतरेंकरी संताननुं डुखदाइपणुंदेखाडेछे हेआत्मा आनव मां जावजीवलगें तथा नवांतरे परनवेंपण अपत्यजे संतानते शल्यके० शलरूप छे एमतुंताहराहृदयमां केमनथीजाणतो जेस्वल्पायुषवंत संतानादिक तेशोकरूप पीडाआपेछे अने दीर्घायुषवंतजे अपत्यते लग्नादिकड्व्यव्ययप्रमुख विविधप्रकारनी पीडाआपेछे तथा नरणपोषणादिकनी चिंता रूपजेआर्त्ति तेहनेउपजावेकरीने अह र्निशके०निरंतर हेआत्माताहरी समाधी सुस्थताने हन्येतके० हणीछे ॥ २ ॥

कुक्षौ युवत्याः कृमयो विचित्रा अप्यस्रशुक्रप्रनवा नवंति ॥
न तेषु तस्या न हि तत्पतेश्च रागस्ततोऽयं किमपत्यकेषु
॥ ३ ॥ त्राणाशक्तेरापदि संबंधानंत्यतोमिथोऽगवतां ॥
संदेहाच्चापकृतेर्माऽपत्येषु स्निहो जीव ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहीजकहेछे स्त्रीनीकुंखनेविषे अस्रजेस्त्रीनीयोनीनुंरक्त अने शुक्रजे पुरुषनुंवीर्य तेहनासंयोगथीउपना एहवाकृमीजे बेइंड्रियादिकजीव तेपणविचित्रप्र कारनाथायछे यडुक्तं इबीएजोणिमझे हवंतिबेंदियाउ जे जीवा ॥ इक्कोयदोवतिन्निव लरकपहुत्तं च उक्कोसा ॥ १ ॥ तथासंमूर्छिम अनेगर्नजपंचेंडीमनुष्यपणथायछे तो तेस्त्री तथानर्त्तार बेहुने किंनिश्चये स्युंके० तेकृमीजीवनेविषे केमरागस्नेहनथीहोतु अ नेअपत्यजेपुत्रपुत्रादिक तेहनाउपर रागकेमउपजेछे केमके एकजस्थानकनाउपना तेकृमी अनेअपत्य तेबेहुबराबरछे ॥ २ ॥ हवे अपत्यथकी कांइपणस्वार्थसिद्धिनी आशाराखवी जूठीछेतेदेखाडेछे हेआत्मातुं अपत्यउपर स्नेहकरीसनही शाहेतुमाटेके आपदाजे मरणरोगादिक आवेथके जेअपत्यते त्राणके० राखवानेसमर्थनथी तथाव लीपरस्परेंप्राणीने संबंधनुं अनित्यछे कारणकेनानाप्रकारना संबंधछे माटे उपकारनो पणसंदेहछे केमकेजोपुत्रादिकसाथें वैरानुबंधी संबंधहोयतो तेथकी उपकारकेमथा य श्रेणीकअने कोणीराजानीपरें तेमाटेस्नेहनुं धरवुंतेफोकटछे ॥ ४॥ इतिश्रीअध्या त्मकल्पद्रुमे पुत्रममत्वमोचनाख्यस्तृतीयोऽधिकारसमाप्तः ॥

अथधनाधिकारः ॥ याः सुखोपकृतिकृत्वधिया त्वं मेलयन्नसि रमा ममतानाक् ॥ पाप्मनोधिकरणत्वत एता हेतवो ददति संसृतिपातं॥१॥

अर्थ ॥ हवेचोथाअधिकारे धननीममत्वमूकवाआश्री उपदेशआपेछे तिहांपहेलुं धनथी सुखतथाउपकार नथाय तेकहेछे हेजीवतुं ममत्वने नजतोथको एममानेछे जे एलक्ष्मी ते मने तथामहाराकुटुंबने सुखकारीथासे तथा दिनादिकनो उपकारकरवा ने कामआवशे एहवीबुद्धियेजे रमाके० लक्ष्मीनेमेलवेछे तेएलक्ष्मीतोकर्मादानादिक सावद्यव्यापारने करवेकरी अधिकरणपणाथकी पाप्मन के० पापनीजहेतुछे तेमाटे संसृतिपातजे संसारमांभ्रमणकरवुं तेप्रतेजआपे एहवीछे तेभणी लक्ष्मीथकी सुख तथा उपकारनीवाछाते फोकटछे ॥ १ ॥

यानि द्विषामप्युपकारकाणि सर्प्पोंदुरादिष्वपि यैर्गतिश्च ॥
शक्या च नापन्मरणामयाद्या हंतुं धनेष्वेषु क एव मोह ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेधनथकी अनर्थनीपरंपराथाय तेकहेछे जेधनते द्विषाके० शत्रुनेपण उपयोगीथाय एटलेधनना संचयकरनारने हणीनेज शत्रुबलवतथाय अनेतेहना धननेज भोगवे वली जेधननेसच्यथका उंदिरइत्यादिकनीगतिप्राप्तथाय केमके धन नोलोभीजीव धननीमूर्छायेमरीने तेधनउपरे सर्प्प तथा उंदिर इत्यादिकथयी अवत रे वलीजे धनेकरीमरण तथारोगइत्यादिक आपदाओतेपण सुभुमचक्रवर्तिप्रमुखनी परे निवारीशकायनही तोएहवाधननेविषे मोहतेशीकरवी ॥ २ ॥

ममत्वमात्रेण मन प्रसाद सुखं धनैरल्पकमल्पकालं ॥
आरंभपापै· सुचिरं तु दु ख स्याद्दुर्गतौ दारुणमित्यवेहि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेएधनथकीसुखथोडुंछे अने दु खघणुंछे तेकहेछे केमके धनेकरी केव लममत्वना भन्मनोज प्रसादथाय कारणके महारापासेधनछे एमचितवीचितवी ने धननोलोभिप्राणी हर्षपामेछे पणतेधनेकरी सुखतो अल्प अल्पशमात्र थोडा काललगेजहोय पणतेहना अतिनिमित्तक आरंभनाफलरूपबंधन दुर्गतिनेविषे दारु णके० कठिणदु खहोयज एहवुं नवनंदराजाने दृष्टांते अवेक्षिहि जाण ॥ ३ ॥

द्रव्यस्तवात्मा धनसाधनो न धर्मोपि सारंभतया तिशुद्ध ॥
नि सगतात्मा त्वतिशुद्धियोगा न्मुक्तिश्रियं यच्छति तद्भवेपि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेधनविना द्रव्यस्तवरूपधर्मनथाय तेमाटेधनउपार्जवुं एहवुंविचारपण निश्चेथकी जोता अयुक्तछे तेदेखाडेछे धननेसाधियें एहवुंद्रव्यस्तवात्माके० द्रव्य स्तवरूप जिनभुवन बिंबप्रतिष्टा दानशालादिक जेधर्मकरणीछे तेपण सारंभके०

द्व्यारंभसहितपणेकरीने अतिनिर्मलनथी पणमात्रस्वर्गादिकगतिनाहेतुछे माटेतेथ र्मनेपण मुक्तिनुंपरंपरा कारणजाणवुंनही अने निःसंगतारूपजे धर्मते अतिशुद्धके० निर्मलता निरवद्यतानायोगथी तेहिजभवमांपण मोक्षरूप लक्ष्मीने आपे ॥ ४ ॥

क्षेत्रवास्तुधनधान्यगवाश्वैर्मेलितैः सनिधिभिस्तनुभाजां ॥
क्लेशपापनरकाभ्यधिकः स्यात् को गुणो यदि न धर्मनियोगः ॥५॥

अर्थ ॥ हवेघणुंपरिग्रहते पापनुंमूलछे तेकहेछे क्षेत्र क्यारडाप्रमुख तथावस्तुते घरप्रमुख धनधान्य गायो अश्वइत्यादिक तथानिधिजे भंडारतेणेसहित एहवोपरि ग्रहमेलवेथकेपण जो एक धर्मनियोगके० जिनबिंबादिक शातक्षेत्रमां ववरायन ही तो तेवारें तेपरिग्रहथकी क्लेश पाप अने नरक एत्रणविना अभ्यधिकके० व्यति रेकबीजोशोगुणहोय एटले परिग्रहथकी अनुक्रमें कष्ट पाप अने नरक एत्रणवा नाजथाय पणबीजोगुणकोइनथाय ॥ ५ ॥

आरंभैर्भरितो निमज्जति यतः प्राणी भवाम्भोनिधावीहंते कुनृपादय श्च पुरुषा येन छलाद्बाधितुं ॥ चिंताव्याकुलताकृतेश्च हरते यो धर्म कर्मस्मृतिं विज्ञा भूरि परिग्रहं त्यजत तं भोग्यं परैः प्रायशः ॥ ६॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहथकी इहलोकें तथा परलोकें दुःखथायतेकहेछे जेपरिग्रहमे लववाथकी प्राणी आरंभेके० आरंभेभर्युंथको संसारसमुद्रमांबुडेछे वलीतेपरिग्रहेंकरी दुष्टराजा तथाआदिशब्दथी मंत्रीप्रमुख अधिकारीओ अनेचोरादिक तेपुरुषने छले करी बाधितुंके० पीडवानेवांछेछे केमकेबहुधनवंत उपरखोटोपण गुनाहनो आरोप करीनेदंडकरे वलीपरिग्रहनी चिंतायें व्याकुलताने करवेकरीने धर्मकर्मस्मृतिके० धर्मकार्यनुं संभारवुं तेहनोहरणकरीलिये माटेहेविवेकीजनो एधनते प्रायेंबाहुल तायें परनाजनेभोगमांआवे एटले एकेंसंच्योहोय अनेबीजोभोगवे एहवोजेए भूरिके० घणुंपरिग्रहतेहत्यादिक आवे छे कं कीटिकासंचितंधान्यं मक्षिकासंचितंमधु ॥ कृप णैः संचितंवित्तं परैः संभुज्यते॥ जेमयोगियें घणाकष्टेकरी सिद्धिनारसनो संग्रह कर्यो अने वलभिपुरमां रांकाशेठनाभोगमांआव्यो तेमकोइनुंसंच्युंधन कोइकभोगवे ६

क्षेत्रेषु नो वपसि यत्सदपि स्वमेतद्यातासि तत्परभवे किमिदं गृहीत्वा ॥
तस्यार्जनादिजनिताघचयार्जितात्ते भावी कथं नरकदुःखभराच्च मोक्षः ७

अर्थ ॥ हवेअर्थांतरकहीने सातखेत्रें धनवावरवानुं उपदेशकहेछे हेधनवंत जे तुं छतुंपोतानुंस्वके० धन तेहनेसातक्षेत्रनेविषे नथीवावरतुंतो एधननेतुंसुं परभवेंसा

थलेइजनारछे एटलेहमणातोतु लोजननावशथकी धननेसुमार्गे खरचतोनथी पणते धन परजवेताहरीसाथे नऽजआवे वलीतेधनना उपार्जनकरवाथी उपनुंजे अघ के० पापनो चयके० समूह तेथी अर्जितके० उपजाव्यो एहवोजे नरकसबंधीउ ख तेहनो नरके० जारतेहथी मोक्षके० छूटवुतेकेमथाशे ॥ ७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्प द्रुमे धनममत्वमोचनोनामचतुर्थाधिकार समाप्त ॥

अथ देहाधिकार ॥पुष्णासि यं देहमघान्यचिंतयं स्तवोपकारं कमय विधा स्यति॥ कर्माणि कुर्वन्निति चिंतयायति जगत्ययं वंचयते हि धूर्त्तराट् ॥ १॥

अर्थ ॥ हवेपाचमेअधिकारे शरीरआश्रयी ममत्वमूकवो तेकहेछे तेमांप्रथम पा पकरीने देहनुंपोपणकरवुनही तेकहेछे हेआत्मातु अघके० पापने अणविचारतोथ कोदेहने पुष्णासिके० पोखेछे ते आ देह तुजने सुंउपकारकरशे वली आयतिके० आ वताकालनी चिताचितवी हिंसादिककर्मकरतोथकोप्रवर्त्तनारो एहवोजेताहरोदेहते धूर्त्तोनोराजाछे सर्वजगतने वचयतेके० ठगेछे तोतुपापकरीनेदेहने पुष्टकरेछेपण एछे हतेआखरतुजनेठगसे छेहदेहीजाशे ॥ १ ॥

कारागृहाद्बहुविधाशुचितादिदुःखा न्निर्गंतुमिच्छति जडोपि हि तद्विभिद्य॥ क्षिप्तस्ततोधिकतरे वपुपि स्वकर्मव्रातेन तद्दढयितुं यतसे किमात्मन्॥२॥

अर्थ ॥ हवेएशरीरते काराग्रहथीपणभुंडोछे तेदेखाडेछे हेआत्माजेप्राणी जड के० मूर्खहोय तेपण कारागृहजे वंदीखानु जेमा बहुविध अशुचिता अपवित्रता आदि शब्दथी क्षुधा तृषा वध वंधनादिउ खहोय एहवाकारागृहने भेदी खात्रादिकपाडी ने नीकलवावाछेछे तोतुजने स्वके० पोतानाकर्मने समूहे तेकाराग्रहथीअधिकुएह वुजे वपुके० शरीररूपवंदीखानु तेमाघाल्योछे तोएहवाकारागृह सरिखोजे ताहारो देहतेहने दृढकरवानेज सुउद्यमकरेछे केमके काराग्रहनुं बधनतोथोडुछे पणदेहनु बंधनतो जावजीवसुधी तथापरलोकेपणहोय तेमाटेदेहनुंबंधन अधिकजाणवु ॥२॥

चेद्वाछसीदमवितु परलोकदुःखभीत्या ततो न कुरुपे किमु पुण्यमेव॥शक्य न रक्षितुमिदं हि न दुःखभीति पुण्य विना क्षयमुपेति च वज्रिणोपि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेपरभवनाउःखथी वीहीतोथको घणुजीववानेअर्थेजे देहनेपोपेछे तेने कहेछे हेआत्मातोतु आशरीरने परलोकसबधीउःखनाबीकेकरी अवितुके०राखवावा छेछे तोतुपुण्यउपार्जन केमनथीकरतो केमकेपुण्येकरी एशरीरउःखनाभयथकी रखा यनही एमतोकाइनथी एटलेशरीरने उःखनाभयथी राखवानेपण पुण्यजसमर्थछे

अनेवलीपुण्यविनातु तो वह्निजेइंद्र तेह्नुंशरीरपण नाशपामेछे तेमाटेजोपरलोकें दुःखथीबीहेछेतो तुंपुण्यकर ॥ ३ ॥

देहे विमुह्य कुरुषे किमघं न वेत्सि देहस्थ एव भजसे भवदुःखजालं ॥
लोहाश्रितोहि सहते घनघातमग्नि र्बाधा न तेस्य च नभोवदनाश्रयत्वे॥४

अर्थ ॥ हवेजेशरीरनुंजेतुंपोषणकरेछे तेशरीरमांरह्योथकोज तुंदुःखपामेछे एहवुं देखाडेछे किंनवेत्सिके० हेआत्मातुं देहनेविषे मोहपामिने पापकरेछे अनेतेदेहमां रह्योथकोज भवदुःखना समूहप्रतेंपामेछे तेकेमनथीजाणतो एतोनिश्चेंथकी लोह नेआश्रीत मल्युंजेअग्नि तेजेम घणा घणोना प्रहारोनेसहनकरेछे तेमतुजने तथा ए शरीररूप अग्निनेपण नभवतुंके० आकाशनीपरें अनाश्रयत्वेके० निरालंबपणुंकरेतो बाधाके० पीडानहोय एटलेजोहाश्रित अग्नीनीपरें तुंपणदेहाश्रितथको दुःखपामेछे

दुष्टः कर्मविपाकभूपतिवशः कायाह्वयः कर्मकृत् बध्वा कर्मगुणैर्हृषी कचषकैः पीतप्रमादासवं ॥ कृत्वा नारकचारकापदुचितं त्वां प्राप्य चाशु छलं गंतेति स्वहिताय संयमभरं तं वाहयाल्पं ददत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेदेहकर्मकरनुं उपमानकहेछे हेआत्मा एदुष्ट निर्दय एहवोदेहनामे क र्मकरके ० राजसेवक तेतुजने कर्मरूप घणाबंधनेबांधीने नरकरूप बंदिखाना संबं धीआपदानो उचितयोगएहवोकरी पछेछलताकीने उतावलोजतोरहसे एकर्मकरक हेवुंछेके कर्मविपाकनामाजेराजा तेहनोवशवर्त्तिछे एटलेकर्मविपाकराजायें एहनेप्रे र्योछे माटेहेजीव तें रुषीकजे इंद्रियतेरूप चषकजे मद्यपाननापात्र त्रणेकरी पां चविधप्रमादरूप आश्रवनामामद्य पीधुंछे एहवोजाणीनेतुं पोतानाहितनेअर्थे तेकर्म करजे शरीरतेहने थोडुंपणअहार दोषरहितआपीने संयमरूपभारवहरावके जेथ कीताहरा आत्मानी सिद्धिथाय ॥ ५ ॥

यतः शुचीन्यप्यशुचीभवंति कृम्याकुलात् काकशुनादिभक्ष्यात् ॥
द्राग्भाविनो भस्मतया ततोऽगात् मांसादिपिंडात्स्वहितं गृहाण॥६॥

अर्थ ॥ हवेएअशुचिदेहथी बीजापदार्थपण अपवित्रथाय तेकहेछे शुचिके० प वित्रजेवस्तु एहवाखीरखांमप्रमुख तेपण एशरीरनासंगथी अपवित्रथाय तेमाटेएश रीरकहेवुंछे तेकहेछेकृमिजे उदरप्रमुखनाजीव तेणेकरीआकुलके० व्याप्त तथा का गडा कुतरा इत्यादिकजीवने भक्षवायोग्य अने प्राणगयापछि तत्काल भस्मथयी

राखयनारछे वली मांसादिकनुंपिंमछे एहवाए असारशरीरथकीतो जे स्वहितके० आत्मानेहितकारकएहवा संयमादिकतेप्रतेलेइने आत्मसाधनकर ॥ ६ ॥

परोपकारोस्ति तपो जपो वा विनश्वराद्यस्य फलं न देहात् ॥
सन्नाटकादल्पदिनाप्तगेहमृत्पिंममूढः फलमश्नुतेकिं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वलीयुक्तिविशेषे देहनुं सफलकरवुकहेछे जेपुरुषने एविनाशशील एहवुं जेदेह तेथकी परोपकार तथा तप जप प्रमुखनथाय तोतेपुरुष नाडेराखेलुं थोडा दिवससुधिपाम्युं एहवुजेघर तेसरिखो एमाटीनापिंमरूप देहउपरमूढछतो शोफ लपामे जेमन्नाडालुंघरते वापरियेतोजशारुं नहिकाजेनाडुंखरचियेते व्यर्थजाय अनेवली आखरपोतानुंपण तेघरथायनही तेमएदेहनेपण अहारादिकन्नाडुआपीने पोष्युंथको तपजपादिकेकरी वावरीये तोजसफलथाय नहिकानि फलजाणवु ॥७॥

मृत्पिंडरूपेण विनश्वरेण जुगुप्सनीयेन गदालयेन ॥
देहेन चेदात्महितं सुसाधं धर्मान्नकिं तद्यतसेऽत्रमूढ ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे जेमाटीनापिंमसरिखुं विनाशीआचारवत तथाडुगंछा करवायोग्य अनेरोगनुं आलयके० घर एहवोजेदेह तेणेकरीने धर्मकरवाथी आ त्महितसाधवुं तुजनेसुलनछे तोहेमूर्ख अत्महितसाधवाने केमउद्यमकरतोनथी माटे असारन्नूतदेहथी सारन्नूतआत्मानो हितसाधवाने सर्वथाउद्यमकरवु ॥ ८ ॥
इतिश्री अध्यात्मकल्पडुमेदेह ममत्वमोचनानामे पाचमोअधिकारसपूर्णथयो.

अत्यल्पकल्पितसुखाय किमिंडियार्थैस्त्वं मुह्यसि प्रतिपदं प्रचुरप्रमाद.॥
एते क्षिपंति गहने न्नवन्नीमकक्षे जंतून्न यत्र सुलन्नाशिवमार्गदृष्टि ॥१॥

अर्थ॥पूर्वेकह्युजेदेहनिग्रहकरवुतेकाइ विषयनीममतामूकवासीवाय थतुंनथी मा टेहवेछठेअधिकारे विषयप्रमाद त्यजवा आश्रयी उपदेशछे तिहा प्रथम इंडियार्थनुं मो हत्यजवु तेकहेछे हेआत्मातु घणुजप्रमादवतथको पण अतिशयेकरी अल्पके०थो रुपणकल्पनामात्र जेसुखतेपण परमार्थथीतोडुखजछे पणतेंसुखकरीमान्यु एहवु जेसुख तेहनाअर्थे प्रतिपदके० गामेगामें इंडियार्थजे शब्द रूप रस गंध स्पर्श तेणेक री मुंमुंजायछे एइंडियार्थते जतुके० प्राणीने गहनके० अपार एहवोसंसाररूपजे न्नी मके० रौड कक्षके० अटवीतेमा क्षिपतीके० घालेछे वलात्कारे तेमा प्रवेशकरावेछे जिहां शिवके० मुक्तिमार्गनु दृष्टिदर्शनतेजीवने सुलन्नथी जेमकोइबीजोपण गह नवनहोयतोतेंमाहें शिवके० निरूपद्रव्यमार्गनु जेदर्शनते डुर्लन्नहोय तेनीपरेंजा

एवुं ॥ १ ॥ इहांप्रमादना पांचप्रकार तथा आठप्रकारनी गाथाकहेछे. मज्जं विषय कषाया निद्दाविकहाय पंचमीभणिया ॥ एए पंच पमाया जिवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ तथाआठप्रकार कहेछे. पमाउयमुणिंदीहिं भणिउ अठभेयउ ॥ अन्नाणं संसऊ चेव॥ मिछानाणं तहेवय॥ १ ॥ रागो दोसो मइभंसो धम्मंमिय अणायरो॥ जोगाणं डुप्पणि हाण ॥ अठहावज्जियव्वउ ॥ २ ॥

आपातरम्ये परिणामदुःखे सुखे कथं वैषयिके रतोसि ॥ जमो पि कार्यं रचयन् हितार्थी करोति विद्वन् यडुदर्कतर्कं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसंसारिकसुखते प्रथमतोसुखदायीछे पण परिणामेंडुःखदायीछे तेकहेछे हेचतुरआत्मातुं आपातके० तत्कालमात्रतो रम्यमनोहरछे पणपरिणाम के० विपाककालें महाडुःखदाइरूप एहवा विषयसंबंधी सुखमां सुंराच्योछो केमके पोतानाहितने वांछनार एहवोजे जडके० मूर्खप्राणीहोय तेपण कोइकार्यकरेतो उदर्कके० जेआगामिककालनुंफल तेहनुं तर्कके० विचार करीने परिणामे अहितका रीहोयतेने त्यजेछे तोतुंचतुरछता परिणामें डुःखदायी एहवाजे विषयादिक तेप्रतें केमआचरेछे एआचरवा तुजने योग्यनथी ॥ २ ॥

यदिंद्रियार्थैरिह शर्मबिंदवद्यदर्णवत्स्वःशिवगं परत्र च ॥ तयो र्मिथोस्ति प्रतिपक्षता कृतिन् विशेषदृष्ट्यान्यतरद्गृहाण तत् ॥३॥

अर्थ ॥ हवेसंसारिकसुखनी अल्पतादेखाडेछे हेचतुरआत्मा.इहलोकनेविषे इं द्रियार्थजे शब्दादिक तेणेकरीने वेष्युंजे तुछसुख अनेवलीजे परलोकें अर्णवके०स मुद्रसरिखुं स्वःशिवगंके० देवलोक अनेमुक्तिसंबंधीजेसुख तेसुखने मिथःके० मा होमांहें प्रतिपक्षता एटलेशत्रुभावछे केमके जिहांइंद्रियार्थनुंसुखछे तिहांमुक्तिसुख नथी अनेजिहां मुक्तिसुखछेतिहां इंद्रियार्थसुखनथी तेमाटेविशेषदृष्टियेंकरी तेबेहुमां जेहनेतुंरुडोजाणे तेहने ग्रहणकर ॥ ३ ॥

भुंक्ते कथं नारकतिर्यगादि डुःखानिदेहीत्यवधेहि शास्त्रैः ॥ निवर्त्तते ते विषयेषु तृष्णा बिभेपि पापप्रचयाच्च येन ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेतेहिजविशेषें देखाडेछे हेआत्मा देहवंतप्राणी नरकतिर्यंचगतीनाडुः ख केवाप्रकारेंभोगवेछे एटलुंतुं शास्त्रमांथी जोइने अवधेहिके० निश्चयकर तोतुजने निश्चेंथकी विषयनेविषे तृष्णानीनिवर्त्तियासे अनेपापना संचवाथकीतुंबीहेतोरहिश.

गर्भवासनरकादिवेदना पश्यतोनवरतं श्रुतेक्षणै· ॥
नो कपायविपयेपु मानसं श्लिष्यते बुध विचितयेति ता· ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहीजकहेछे हेपमितप्राणी अनवरतंके० निरंतर श्रुतजे शास्त्रतेरूपी ईक्षणके० नेत्रेकरीनेगर्भावास तथानरक आदिशब्दथी निगोद एकेंद्रियादिक तेसंबंधीवेदनाउप्रतेंजोता थकां ताहरुं मानसके० चित्तते कपाय तथा विपयनेविपें नो श्लिष्यतेके० अशक्तनथाय एहेतुमाटे पूर्वोक्तवेदनाउने सम्यकरीतेंविचारीसतो ताहरुंचित्त विपयकपायथकी किंचितमात्र उद्विग्ननथाय ॥ ५ ॥

वधस्य चोरस्य यथा पशोर्वा संप्राप्यमाणस्य पदं वधस्य ॥
शनै शनैरेति मृति· समीपं तथाखिलस्येति कथं प्रमाद· ॥ ६॥

अर्थ ॥ वलीमृत्युनयदेखामी प्रमादत्यजवानु प्रतिबोधकरेछे जेमवधकरवाने काढ्या एहवाजे चोरतथा बोकडाप्रमुखजेपशु तेहनेवधनास्थानके लइजता जेमजेमवधना स्थानकतरफ पगलानरे तेमतेमथोडेथोडे मृत्युपणनजीकआवे तेहनीपरे सर्वप्राणीओने थोडेथोडे घडी पहोर दिवस मास वर्षादिकने जावेकरी मृत्युढुकडो आवेछे तेकारणमाटे आत्मानाहितसाधननेविपे विलवकेमकरिये अर्थात् प्रमादत्यजीने सर्वथाधर्मनेविपे तत्परथावु ॥ ६ ॥

विभेपि जतो यदिङ्खराशे स्तदिंद्रियार्थेपु रतिं कृथा मा ॥
तङ्भवं नश्यति शर्म यङाक् नाशे च तस्य ध्रुवमेव ङ ख ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसुखनो शीघ्रके० तुरतनाशपणुदेखाडीने जीवनेप्रतिबोधकरेछे हेजीवजोतु ङ खनासमूहथकी बीहेछे तो इंद्रियार्थजे शब्दादितेहनेविपे रतिके०रागकेमकरेछे केमकेइंद्रियार्थथीउपनुंजे शर्मके० सुखतेङाग्के० उतावलोज नाशपामेछे अनेतेहनानाशपछि ङ खतो ध्रुवके० निश्चल चिरकाललगे निश्चितछे जेमप्रकाशनेअंते अधकार निश्चेथकीहोय तेमसुखनेअंते ङ खपणनिश्चेथकीजहोय ॥ ७ ॥

मृत किमु प्रेतपतिर्डुरामया गता क्षय किं नरकाश्च मुद्रिता ॥
ध्रुवा· किमायुर्धनदेहवंधव सकौतुको यद्विपयैर्विमुह्यसि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारातरेजीवने सुखनाप्रतिबंधकदेखाडेछे हेआत्मा प्रेतपतिजे यममृत्युलक्षण तेसुंमुओ के जतोरह्यो तथाङुष्टकारी आमयके० रोग यङुक्तं रोगाणं कोडीउ हवति पंचेव लरकअडसठी ॥ नवनवइसहस्साइ उच्चसयाचेव पणयाली

१५६०९९५९६४५ खासे सासे जरे दाहे कुछिसूले नगंदरे ॥ अरसा अजीर्ण दीहि मुहसूले अरोयए ॥ १ ॥ अछिवेयण कंरु अकणवाधाजलोयरे ॥ कुडे एमाइवा रोगा पीलयंति सरीरिणं ॥ २ ॥ एसोजरोग महोटाकह्याछे तेदेहनेआश्रयीजरह्याछे ते सुंक्षयपाम्या तथासातनरक तेहनाबारणातेसुं मुड्तािके० ढंकाणा बंधथया तथा आयुप धन देह अनेस्वजनजे बंधुतेसुं ध्रुवके० निश्चलशाश्वताछे जेमाटेतुं सकौतुकके० सहर्षवंतथको विपयनेविषे मोहपामेछे एटलेमृत्यु रोग अने नरक एत्रण नयतो विद्यमानछे अने आयु धन देह स्वजन एतोअस्थिरछे तोतुंसहर्षपणुंते शा कारणथीधरेछे तेकांइसमजातुनथी ॥ ८ ॥

विमोह्यसे किं विपयप्रमादै र्भ्रमात्सुखस्यायतिदुःखराशेः ॥
तद्गर्धमुक्तस्य हि यत्सुखं ते गतोपमं चायतिमुक्तिदं तत् ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेविषयसुखते निदानदुःखरूपछे तेकही जीवनेप्रतिबोधेछे हेआत्मातुजने विपयनेप्रमादेंमिलीने निदान दुःखराशीके० दुःखनासमूह तेहने सुखनाभ्रमथकी विमोह्यसेके० मोहपमाडेछे एटलेदुःखनासमूहनेविषे सुखनीभ्रांतियें जेतुंमोहपामेछे तेमात्र विपयप्रमादना वशथकीजपामेछे एनावार्थछे तेमाटे गर्द्धमुक्तके० तृष्णारहित एहवोथकोतुजने उपशमलक्षणरूप गतोपमके० अनुपमसुखते आयतिके० निदानमुक्तिनुंदातारछे तेमाटे तृष्णारहित निरिहतासुखनेआदर ९ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे विपयावशतोपदेशः षष्ठोधिकारः ॥ ९ ॥

अथ कषयाः ॥ रे जीव सेहिथ सहिष्यसि च व्यथास्ता स्त्वं नारकादि पु पराभवभूः कपायैः ॥ मुग्धोदितैः कुवचनादि भिरप्य तः किं क्रोधान्निहंसि निजपुण्यधनं दुरापं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेसातमेंअधिकारें कपायादिक त्यजवाआश्री उपदेशकरेछे त्यांप्रथम कपायनुंफलकहेछे हेजीवतुं कपायजे क्रोधादिकतेनाहेतुथी नरकादिकनेविषे पराभव जेपीडा तेहनो भाजन थको तें माहा दुःसह वेदनाओ सहनकरी अनेवलीपण सहीश तेमाटेमुग्धजे अजाणलोकनाकहेला जे कुवचन गालप्रमुख इत्यादिकतुछकारणोनेवास्ते दुर्लभएवुंजेपोतानुं पुण्यरूपीयुंधन तेनेक्रोधथीशुंहणेछे एटलेअल्पकारण माटे कपायकरीने दुर्लभजेपुण्यरूप धनतेनेहरेछे तेमाटेकपायनकरवुं ॥ १ ॥

परानिभूता यदि मानमुक्ति स्ततस्तपोखंडमत शिवं च ॥
मानादृतिर्दुर्वचनादिभिश्च तप:क्षयस्तन्नरकादिदु:खं ॥ २ ॥
वैरादियात्रेति विचार्य लाभालाभौ कृतिन्नाभवसंभविन्या ॥
तपोऽथवा मानमवाभिभूताविहास्ति नूनं हि गतिर्द्विधैव॥३॥ युग्म॥

अर्थ ॥ हवेमानमुकवानुं अनेराखवानुं फलकहेछे हेआत्मा परजेअन्यजनतेथी अभिभूतिके० अपमान आक्रोशादिकउपजेथके मानजेअहंकार तेनेमुकीआप जेणे करीअखमतपथी मोक्षप्राप्तिथाय अनेडुरवचनादिकेकरी जोमानआदरीशतो तपनो क्षयथाय तेतपक्षयथके नरकादिकदुःखथाशे तथाआलोकेपण वैर धनहानि मरणा दिकदुःखथासे माटेहेनिपुणआत्मा एमपूर्वोक्तप्रकारे मानमुक्याथीलाभछे अनेमान आदरवाथीअलाभछे एवेवातोविचारीने आभवके० एकभवसबंधिनी अभिभूतिजेपरा भव तेउपजेछतेपण तपनेराख अथवामाननेराख केमकेएकार्यमा बेजउपायछे पण तेमाअभिभूतिनुंतो एकजभवनु दुःखछे अनेमानकरवाथीतो तपक्षयथाशे तेवारे भवो भवेदुःखछे तेमाटेमानत्यजीने तपनेराख एवेकाव्यनोअर्थएकठोछे ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रुत्वा कोशान् यो मुदा पूरित स्यात् लौष्टाद्यैर्यश्चाहतो लोमहर्षी ॥
यः प्राणान्तेप्यन्यदोषं न पश्यत्येष श्रेयो द्राग् लभेतैव योगी ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेकपायतज्याथी मुक्तिफलछे तेकहेछे जेयोगीसाधु आक्रोश गाल प्रमुख साभलीने आनंदपामी विचारेजे एगालिनुं अभिधेय मेअनतिवार अनुभव्युछे एमचित वी वलीजेलोह पाषाणादिके हणायोथकोपणजेनुं रोमांचित हर्षितथाय अनेएम चितवेजे आजमाहरे विशेषनिर्जराथइ एमजाणी वलीजेसाधुप्राणान्तेपण अन्यना दोष तथाअवगुणनदेखे पणपोतानोजदोषदेखे एहवोजेयोगीश्वर मन वचन अने का याथीशुभयोगवंत तेउतावलोज श्रेयजेमोक्ष तेनेपामे ॥ ४ ॥

कोगुणास्तव कदा च कषायै र्निर्ममे भजसि नित्यमिमान् यत् ॥
किं न पश्यसि च दोषममीषा तापमत्र नरकं च परत्र ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेयुक्तियेकरी कपायमा गुणनोअभाव देखाडेछे हेआत्मा कपायजेक्रोधा दिक तेणेतुजनेकोइवारे कोइपणगुणकर्योछेके जेथकीतुंएकपायने नित्यप्रत्येसेवेछे व लीआलोकेसताप अनेपरलोके नरकनादुःखआपनार एवोजे कपायनोदोष तेनेतुन थीदेखतोसुं जे तुंनिश्चितथको कपायनेसेवेछे॥ ५ ॥

यत्कषायजनितं तव सौख्यं यत्कषायपरिहाणि भवंति ॥
तद्विशेषमथवैतदुदर्कं संविभाव्य भज धीर विशिष्टं ॥ ६ ॥

अर्थ॥वलीप्रकारांतरें कषायत्यजवुं उपदेशेछे हेआत्मा तुजनेकषायथी उपनुंजेसुख अनेकषायना परित्यागथी उपनुंजेसुख एबेनुविशेषजे अधिकपणुं तथा उदर्कके० निंदानो विपाकजेफल तेसम्यक प्रकारें विचारीने पछे हेधीरपंमित एमांजेतुजने विशिष्टउत्तमजाणवामांआवे तेनेतुंआदरअंगीकारकर ॥ ६ ॥

सुखेन साध्या तपसां प्रवृत्ति र्यथातथा नैव तु मानमुक्तिः ॥
आद्या न दत्तेपि शिवं परा तु निदर्शनाद्बाहुबलेः प्रदत्ते॥७॥
सम्यग् विचार्येति विहाय मानं रक्षन् दुरापाणि तपांसि यत्नात्॥
मुदा मनीषी सहतेऽभिभूतीः शूरः क्षमायामपिनीचजातिः॥८॥

अर्थ॥हवेतपकरवाथी मानत्यागनी दुष्करता देखाडेछे हेआत्मा जेम तपनीप्रवृत्तितेसुखेसाध्यछे तेममानमुक्तिजे मानत्यजवुं तेसुखेसाध्यनथी तो आद्याके० पहेली कहीजे तपप्रवृत्तितेमुक्तिआपवा समर्थनथी अने बीजोजेमानमुक्ति तेयद्यपिदुःसाध्यछे तोपणते मुक्तिआपवाने समर्थछे बाहुबलनेदृष्टांतें जेमबाहुबलने मानमुक्तिविना मात्र तपथकीज केवलज्ञान उपनुंनही अनेमानमुक्युं तेवारें तत्कालज्ञानउपनुं एवुंसम्यग् विचारीने मानत्यजीनेयत्ने करीदुर्लभ एहवोजेतप तेनेराखतोथको क्षमानेविषे शूर एवोजे मनीषीके० पंमित ते नीच जननो करेलो अभिभूति जेपराभव तेनेपण मुदा के० हर्षेकरीनेसहेछे ॥ ७ ॥ ८ ॥ एबेकाव्यनोअर्थएकगोछे.

पराभिभूत्याल्पिकयापि कुप्यस्यघैरपीमां प्रतिकर्तुमिच्छन् ॥
न वेत्सि तिर्यङ्नरकादिकेषु तास्तैरनंतास्त्वतुला भवित्रीः ॥९॥

अर्थ ॥ वलीएपरिसह सहेवाआश्रीज उपदेशेछे हेआत्मातुं थोडीपण परनीकरेलीजे अभिभूति पीडादिक तेणेकरी अभिभूतिना करनारजे पुरुषतेउपर कोपेछे अने वली पापकरीने तेहना प्रतिकारने वांछेछे एटले पूर्वजन्मांतरना पापविपाकथकी पराभवपामेछे अनेवलीतेहनो प्रतिकारपण पापेकरीनेज वांछेछे परंतुतेपापेकरीने तुं अभिभूतिजेपीडाओ तेतिर्यंचनरकादिक गतिनेविषे अनंततथाअतुल मोहोटी एविभवित्रीकहेतां पीडाथाशे एवुंकांनथीजाणतो ॥ ९ ॥

धत्से कृतिन् यद्यपकारकेषु क्रोधं ततो धेह्यरिषट्कएव ॥
अथोपकारिष्वपि तद्भवार्तिकृत्कर्महन्मित्रबहिर्द्विषत्सु ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेक्रोधकरवो तेवैरीनेज वियुक्तछे तेकहेछे हेपमितआत्मा जोतु अपकारक शत्रुनेविषे क्रोधधरेछेतो तेनेबदलेताहरा अंतरगनाजे क्रोध मान माया लोभ राग अनेद्वेष मलीछशत्रुछे तेहनेविषेज क्रोधधर केमकेएछशत्रुथी बीजोकोइ तुझने वधारेदु खदाइनथी अथवा उपकारक मित्रनेविषे जोतुक्रोधधरतोनथी तेवारेतु स सारमा अर्तिकारी एहवाज्ञानावर्णादिक कर्म तेनोहरणकरनाराजे उपसर्गादिकना करनार शत्रु तेनाउपसर्गनेकरवेकरी बाह्यदृष्टियेतोते ताहराशत्रूछे पणकर्मक्षयकर वामा अनेपरलोकना अनतसुखनीप्राप्तिकरवामा साह्यकारीथया माटे तत्वदृष्टिये जोता अभ्यंतरपणे तेमित्रभावेज परिणम्या तेथी उपसर्गकारकशत्रुने तत्वदृष्टीये मित्रतुल्य जोइने तेमित्रनेविषे क्रोधनधरवो एभावार्थछे ॥ १० ॥

अधीत्यनुष्ठानतपःशमाद्यान् धर्मान् विचित्रान् विदधत्समायान् ॥
न लप्स्यसे तत्फलमात्मदेहक्लेशाधिकं तांश्च भवांतरेषु ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमायात्यजवा आश्रीउपदेशछे हेअत्मातु अधीतिके० भणवुं तथाअ नुष्टानजे क्रियाआवश्यकादिक तथातपउपशमादिक नानाविधधर्म ते मायाके० कपटसहित करतोथको मात्रतु पोतानादेहने कष्टजआपेछे पणतेथी व्यतिरिकके० बीजूंफलकाइ भवातरनेविषे पामीसनही वली भवातरनेविषे तेधर्मनेपणपामीसन ही केमकेमायावीने बोधीपामवीदुर्लभहोय ॥ ११ ॥

सुखाय धत्से यदि लोभमात्मनो ज्ञानादिरत्नत्रितये विधेहि तत् ॥
दुःखाय चेदत्र परत्र वा कृतिन् परिग्रहे तद्बहिरांतरेपि च ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हवेलोभत्यजवाआश्री उपदेशकरेछे हेआत्माजोतु पोतानासुखनेअ र्थे लोभकरेछे तोज्ञानादिक जे ज्ञानदर्शनअनेचारित्र एत्रणरत्ननेविषे लोभकर वी जीधनधान्यादिक असारवस्तुथी काहिंसुखनथाय माटेहेचतुरआत्मा तुआलोके दुखनेअर्थे बाह्यधीधनधान्यादिक अने अतरगथी क्रोधमानादिक परिग्रहनेविषे लोभ करिसनही ॥ १२ ॥

करोषि यत्प्रेत्य हिताय किंचित्कदाचिदल्पं सुकृतं कथंचित् ॥
माजीहरस्तन्मदमत्सराद्यैर्विना च तन्मा नरकातिथिर्भूः ॥ १३ ॥

अर्थ॥हवेजीवने सुकृतराखवाआश्रयी उपदेशछे हेआत्मातु कोइकाले कथचित् ध

ऐोंकष्टेकरीने काइएक अल्पके० थोमुंपणसुकृत जेदानादिक तथातपसंयमादिकने प्रेत्यके० परलोकना हितनेअर्थेकरेछे तेसुकृतने मद मत्सर क्रोध लोजादिकें करीने हारिसनही अनेवली तेसुकृतविना सातनरकनो अतिथिके० परोणो थइशनही एटले तेसुकृत खोयाथी नरकगतिथशे तेमाटे मदमत्सरादिकने निवारीनेसुकृतराखजे॥१३

पुरापि पापैः पतितोसि संसृतौ दधासि रे किं गुणिमत्सरं पुन.॥
न वेत्सि किं घोरजले निपात्यसे नियंत्र्यसे शृंखलया च सर्वतः ॥१४॥

अर्थ॥वली मत्सरत्यजवाआश्री उपदेशछे हेआत्मातुं पूर्वेपण पापेंकरीने संसारमां पड्योछे अनेवलीगुणवंतने विषे शुंमत्सरधरेछे एमकांनथीजाणतोजे एमत्सरतोमु जने घोरके० अगाधदुःखरूपियुं जेमां जलछे एहवा संसाररूपीया समुद्रमानांखेछे अनेवली ताहरा सर्वांगने निकांचित कर्मरूप सांकलेकरीबांधेछे ॥ १४ ॥

कष्टेन धर्मो लवशो मिलत्ययं क्षयं कषायैर्युगपत्प्रयाति च ॥
अतिप्रपन्नार्जितमर्जुनं ततः किमङ्ग ही हारयसे नजस्वता॥ १५ ॥

अर्थ॥हवेआत्मानेकष्टेंउपार्जितधर्म राखवानो उपदेशकहेछे हेआत्मातुंधर्मनुं एकल वलेशमात्रपण कष्टेंकरीने संचयकर केजेथकीताहरो कषायेकरीने युगपतके०समकाले घणाकालनो संचित करेलुंजेक्लेशते एकवारेंज क्षयपामे तेमाटेहेमूर्ख घणाउद्यमे उपा र्ज्युंएहवुं अर्जुनजे सुवर्ण ते वायुएकरीने हाइतिखेदे शुंहारी जायछे एटलेसुवर्णरस वायुयें हाय्यानीपरें कष्टेंउपार्ज्योजेधर्म तेनेकषायरूपवायुयें हरावेछेतेयुक्तनथी ॥१५

शत्रूजवंति सुहृदः कलुषीजवंति धर्मा यशांसि नि
चिता यशसीजवंति॥ स्निह्यंति नैव पितरोपि च बांध
वाश्च लोकद्वयेपि विपदो जविनां कषायैः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥हवेकषायथी श्याश्याअवगुणथायछे तेकहेछे संसारीजीवने कषायेंकरी ने मित्रतेशत्रूथाय वलीधर्मजे तपदानादिक तेमेलाथाय वलीचिरकालनोसंचेलोयश तेपण अपयशसरखोथाय वलीमातापिता तथा बीजास्वजनादिक तेपणकोइ स्नेह नकरे तेमाटेप्राणीने कषायेंकरी आलोकें अनेपरलोकेंपण आपदाथाय. ॥ १६ ॥

रूपलाजकुलविक्रमविद्या श्रीतपोवितरणप्रजुताद्यैः ॥
किं मदं वहसि वेत्सि न मूढानंतशः स्वजृशलाघवदुःखं ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेजीवने मदनिवारवाआश्री उपदेशकहेछे हेआत्मातुं रूप लाज कु ल पराक्रम विद्या लक्ष्मी तप दान ऐश्वर्य तथाआदिशब्दथी जाति परिवार स्त्री मं

दिर इत्यादिके करीने मद अहंकार शुंवहेछे? हेमूर्खअनंतिवार पोताना अतिशये लाघवपणानुजे दुःख तेकेमनथी विचारतो? तुंपोतेज अनतिवार कुरूप लाजरहित हीनकुल निर्बल मूर्ख दरिद्री तपकरवाने अशक्त कृपण दास किंकर एहवो अघतस्यो हतो त्यांपणसर्वेवातें हीनपणु अनुभव्युं तोआजइहा शुमदकरेछे ॥१७॥

विना कषायान्नभवार्त्तिराशि र्नभवेद्भवे ढेव च तेषु सत्सु ॥ मूलं हि संसारतरोः कषायास्तत्तान् विहायैव सुखी भवात्मन् ॥१८॥

अर्थ ॥ वलीफरीने कषायनुंत्यजवुज दृढेछे हेआत्मासंसारमा कषायविना संसार संबंधीनी आर्त्तिनोसमूह होयजनही अनेतेकषायेकरी विद्यमानछते भवार्त्तिनीराशि होयज केमके संसाररूपीया वृक्षनुमूल तेकषायजछे. माटेतेकषायनेछांडीनेसुखीथा शांतिसुखनेपाम. ॥ १८ ॥

समीक्ष्य तिर्यङ्नरकादिवेदनाः श्रुतेक्षणैर्धर्मदुरापतां तथा ॥ प्रमोदसे यद्विषयैः सकौतुकै स्ततस्तवात्मन् विफलैव चेतना॥१९॥

अर्थ ॥ हवेजेविषयने त्यजीशकोनथी तेप्राणीने शास्त्रभण्यो तेपणअफलछे ते आश्रीकहेछे हेआत्मा श्रुतजेसिद्धांत तेनेजोवेकरीने तिर्यंच नरक प्रमुखनी वेदनाने तथासर्वज्ञभाषित धर्मनुंदुर्लभपणुंछे एमतेंसम्यक्प्रकारेजाणीने पणजोतु कौतुकसहितथको विषयमांराचेछे तेवारे ताहारो चेतनाजे ज्ञानदृष्टि तेनिस्फलछे केमके तु नरकादिकनादुःखने जाणतोछतोपण दुर्लभधर्मपामिने धर्मकरतोनथी ॥ १९ ॥

चौरैस्तथा कर्मकरैर्गृहीते दुष्टैः स्वमात्रेप्युपतप्यसे त्व ॥ पुष्टैः प्रमादैस्तनुभिश्च पुण्यधनं न किंवेत्स्यसि लुठ्यमानं॥ २० ॥

अर्थ॥ हवेधर्मरूपधन तेलुंटातुनथी तेआश्रीजीवने उपदेशकहेछे हेआत्माचोर लोको तथा दुष्टकुलक्षणकर्मकर जेदासादिकतेणे स्वमात्रके० मात्रबाह्यधनने अपहरयाछतां तुपरितापकरेछे पणपोतानापोष्या एवाजेप्रमाद तथा तनुके० शरीर तेणेचोरनीपेठें लुटयुं एहवुजे ताहरुं पुण्यरूप धन तेसर्वेलुटाइजायछे माटेतेहनी रक्षाकर केजेथीतु भवातरेसुखीथाय ॥ २० ॥

मृत्यो कोपि न रक्षितो न जगतो दारिद्र्यमुत्त्रासितं रोगास्तेननृपादिजा न च भियोनिर्णाशिता षोडश॥ विध्वस्ता नरका न नापि सुखिता धर्मैस्त्रिलोकी सदा तत्कोनाम गुणोमदश्च विभुता का ते स्तुतीछा च का॥२१

अर्थ ॥ वलीआत्माने गुणरहितपणुंदेखाडी मदछांडवा उपदेशकरेछे हेआत्मा जोतें मृत्युनामुखथी कोइप्राणीराख्योनथी तथा जगतजेविश्वतेनुं दारिद्रनाशपमाड्युंनथी वलीसोलेरोगजे कासादिक तथाराजाअने चोरप्रमुखनाजय तेनाशपमाड्यानथी वलीसातजेनरक तेपणनिवार्यानथी तथाधर्मेकरीने त्रिजुवनने सदासुखीकीधुनथी इत्यादिकगुणमाहेलो एकगुणजोताहरामानथी तेवारेंताहारोगुणतेस्यो, अनेतेगुणविना मदतेश्यो, तथा विज्ञुलाके० मोहोटाइतेशी, तथास्तुति प्रशंसानीवांछा तेपणशी, एटलेपूर्वोक्त तथाविध कोइगुणजोताहरामांहोयतो मदकरवोपणघटेछे पण तेविना तोजेमदकरवोतेसर्वे निरर्थकछे तेमाटे मदमत्सरादिकत्यजवा ११ इतिश्री अध्यात्मकल्पद्रुमेविषयकषायाद्यवशताधिकारः सप्तमः संपूर्णम्मः ॥

अथशास्त्राभ्यासोपदेशः॥शिलातलाने हृदि ते वहंति विशंति सिद्धांत रसा न चांतः॥यदत्र नो जीवदयार्द्रता ते न नावनांकूरततिश्च लन्या॥१॥

अर्थ ॥ हवेआठमेंअधिकारे शास्त्रगुणकेहेछे त्यांप्रथमउपमानेशिद्धांतरेचित्तनुकठिणपणुंदेखाडेछे हेआत्माशिलाना तलियासरखा ताहराहृदयमां सिद्धांतरूपिया रसवहेछे पणतेथीतारोअंतःकरण जिगारेनेदातोनथी केमकेएहृदयमां जीवदया रूपणीकोमलता तथाजावनाजे अनित्यत्वादिक तेरूपीयाअंकूरनी श्रेणी देखातीनथी कोमलपृथ्वी जेम जलप्रवाहनेयोगें आर्द्रतापामे तथात्यां अनेकअंकुरादिप्रगटे तेमआसनसिद्धिकजीवने सिद्धांतनायोगथी हृदयमां कोमलताथाय तथाजावनाप्रमुख शुनपरिणामपणउपजे अनेडूरसिद्धिकजीवने तोए शिलातलनुंदृष्टांतजाणवुं.

यस्यागमांनोदरसैर्न धौतः प्रमादपंकः स कथं शिवेच्छुः ॥
रसायनैर्यस्य गदाः क्षता नो सुडुर्लनं जीवितमस्य नूनं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेउक्तिविशेषेकरी सिद्धांतनुं माहात्म्यकहेछे जेप्राणिने आगमजेसिद्धांत तेरूपीया मेघनेरसेंकरी प्रमादरूपीयो पंकजेकचरो तेधोवाणोनथी तेवाप्राणिमुक्ति छुंवांछेछे एटले जेने सिद्धांतजाणवाथीपण प्रमादमट्योनही तेप्राणिपछे ज्याथीप्रमादरहितथइ मुक्तिपामशे केमके सिद्धांतथीअधिक बीजोकोइ प्रमाद परिहारनो उपायनथी तेउपरदृष्टांतकहेछे जेपुरुषने रसायनजेपारदादिक तेथीपण रोगक्षयनपाम्यो तेनेजिवतव्य तेघणुजडुर्लनछे एमइहांपणजे सिद्धांतजाणीने प्रमादरहितनथाय तोतेनेमुक्तिपामवी घणीज डुर्लनछे ॥ २ ॥

अधीतिनोर्चादिकृते जिनागम. प्रमादिनो दुर्गतिपापतेर्मुधा॥
ज्योतिर्विमूढस्य हि दीपपातिनो गुणाय कस्मै शलभस्य चक्षुषी॥३॥

अर्थ ॥ हवेजेपुरुषसिद्धातजणिनेपण प्रमादवतछे तोतेहनुंजणवु वृथाछेते कहे छे जेपुरुषप्रमादवत सर्वथा दुर्गतिनोपडनार तेअर्चादिके० केवलपूजासत्कारादिक नेजअर्थे सिद्धांतजणे एवोहोयतेहनु जण्युं मुधाके० निष्फलजाणवु तेउपर दृष्टा तकहेछे ज्योतिके० प्रकाशेंकरीनेज मुंझाणोथकोदीवामाजइपडे एवोजे शलभके० पतंग तेहनाच क्षुजेनेत्र तेकेवागुणनाअर्थेहोय एतोउलटाअवगुणकारीजथाय तेमप्र मादिजीवरूपजे पतगते अर्चासत्कारादिक ज्योतिमा मुंझाणोथको दुर्गतिरूप दीप ज्वालामापडेछे त्यासिद्धातरूपचक्षुतेकाईकामनआवे सामोमोहकारीथाय ॥ ३ ॥

मोदंते बहुतर्कतर्कणचणा केचिज्जयाद्वादिनां काव्यै केचन कल्पि तार्थघटनैस्तुष्टा' कविख्यातित' ॥ ज्योतिर्नाटकनीतिलक्षणधनुर्वे दादिशास्त्रै'परे ब्रूम प्रेत्य हिते तु कर्मणि जडान् कुक्षिभरीनेव तान्॥४॥

अर्थ ॥ हवेतत्वज्ञानविना घणुंभण्योपण व्यर्थछे तेदेखाडेछे केटलाएकपुरुष घ णातर्कजेप्रमाण प्रमेयादिन्याय तेहनातर्कविचारनेविषे चणके० प्रतिष्ठित एवाछतां प रवादिने जीपवाथकी हर्षपामेछे तथावलीकेटलाक चितव्याअर्थनी रचनाएरच्या एहवेकाव्येकरीने कवीपणानीप्रसिद्धिथकी सतोषपामेछे वलीकेटलाएक ज्योतिष नाट क नीतिके० व्यवहार शास्त्र लक्षणके० सामुद्रिक तथाअश्व गजलक्षणादिक धनुर्वे दके०आयुध अभ्यासनाशास्त्र आदिशब्दथी शकुन गारुडि इत्यादिक शास्त्रेकरीने स तोषपामेछे पणपरलोकनेविषे हितकारीएवाजे सयमादिककर्मतेहनेविषेजो जडके० अज्ञानछेतोतेसर्वेने अध्यात्मशास्त्रने अनुसारे अमेपेटभरा कहिये छैये एटलेअध्या त्मशास्त्रनेमूकीबीजासर्वजे पापश्रुतादिशास्त्र तेपेटभराइनाजछे ॥ ४ ॥

किं मोदसे पंडितनाममात्रात् शास्त्रेष्वधीती जनरंजकेषु ॥ तत्किं चनाधीष्व कुरुष्व चाशु न ते भवेद्येन भवाब्धिपात ॥५॥

अर्थ ॥ वलीतेद्विजहढछे हेपंडिततुं जनके० लोकनेरजनना करनार एहवाजे शृंगार नाटककाव्यादिशास्त्र तेहनेविषेप्रवीणथको नाममात्रपंडितपणाथी शुहर्षपा मेछे एलोकरजकशास्त्रथी काइआत्मार्थनीसिद्धिनथी पणतुशास्त्रनेजाणिने शीघ्रपणे काइकएहवीकरणीकर केजेणेकरीने तुजनेससार समुद्रमा बुडवुनथाय एटलेजिनाग मजाणिने तेहनेअनुसारे सयमआराध ॥ ५ ॥

धिगागमैर्माद्यसि रंजयन् जनान् नोद्यच्छसि प्रेत्य हिताय संयमे ॥
दधासि कुक्षिंभरिमात्रतां मुने क्व ते क्व तत् क्वैष च ते भवांतर ॥६॥

अर्थ ॥ हवेक्रियाविना केवल आगमनुंभणवुं तेपण अर्थसाधकनथी तेकहेछे हेमुनितनेधिःकारछे केमकेतुं आगमसिद्धांत तेणेकरीने लोकने रीझवेछे पणपरलो कना हितनेमाटे संयमनविषेउद्यमवंत नथीयातो तेमाटेतुंकेवल पेटभराइजकरेछे पणताहरेयादराखवुंके भवांतरनेविषे तेजिनागमकिहां अनेलोकनुंरीझववुंपणकिहां तथासंयमपणकिहां एटले भवांतरेएवीगतिपामिश केजिहांएमाहेलोएकेतुजनेनहोय.

धन्याः केप्यनधीतिनोपि सदनुष्ठानेषु बद्धादरा दुःसाध्येषु परोपदे
शलवतः श्रद्धानशुद्धाशयाः ॥ केचित्त्वागमपाठिनोपि दधतस्तत्पु
स्तकान् येऽलसा अत्रामुत्र हितेषु कर्मसु कथं ते भाविनः प्रेत्यहाः॥७॥

अर्थ ॥ हवेथोडोभणवाथीपण किहांक क्रियानो उत्कर्षदेखाडेछे केटलाकप्रा णी अल्पश्रुतवंतछतांपण श्रद्धानजे सम्यक्ततेणेकरीने शुद्धाशयके० निर्मलपरिणा मवंतहोयतेनेधन्यछे केमकेतेपारकाउपदेशना लेशमात्रथीपण दुःखेंसाध्य एवांजे भलाअनुष्ठान तपसंयमादिक्रियाविशेष तेहनेविषे आदरवंतछे अनेहाइतिखेदेंकेट लाकतो आगमना भणनारछतां तथाआगमना पुस्तकधरतांछतांपण आलोक अने परलोकनेविषे हितकारीकर्म जेसंयमादिक तेहनेविषे निरादरकरेछे तेपुरुषनेपरभवने विषेशुंथाशे एटलेपरभवेतेनी शीगतीथाशे अर्थात् ते माहादुःखपामशे ॥ ७ ॥

धन्यः समुग्धमतिरप्युदितार्हदाज्ञारागेण यः सृजति
पुण्यमदुर्विकल्पःपाठेन किं व्यसनतोस्य तु दुर्विकल्पै
र्यो दुःस्थितोत्र सदनुष्ठितिषु प्रमादी॥८॥ इतिवापाठः ॥

अर्थ ॥ वलीअर्थांतरें एहिजइढेछे जेअल्पश्रुतवंतथको पणकदाग्रहरहितहोय ते हने मुग्धमतिकहियें तेपणभलुंजाणवुं केमकेजे उदितके० सिद्धांतोक्त एहवीजे अ रिहंतनी आज्ञातेना रागेकरीने रखेजिनाज्ञानोभंगथाय एवीबुद्धियें कुविकल्परहित थको पुण्यकरेछे अनेजेपवितथकोपण कदाग्रहेंग्रस्तहोयतो तेनेघणुभण्येपण शोगुण जेलोकनेविषे द्यूतादिव्यसनथी कुविकल्पेंकरी दुःषितछे एटलेकांइक पूजासत्कारादि कना लोभेंभण्युंथकुं पण व्यसनादिकें आसक्तपणेकरी कुविकल्पचिंतवे एटलेकेहनेरी झवुं केहनेमोहपमाडुं केमकरि परीग्रहमेलवुं एवीबुद्धियें रात्रदिवस दुःखितथको रहे

अनेनलाअनुष्ठान जेशुनक्रियातेनेविषे प्रमादवततछे तोतेहनुंनणुपण निष्फलछे आ काव्यपेहेलाकाव्यनुं पाठांतरछे ॥ ८ ॥

अधीतिमात्रेण फलंति नागमा· समीहितैर्जीवसुखैर्भवांतरे ॥
स्वनुष्ठितै किंनु तदीरितै खरो न यत्सिताया वहनश्रमात्सुखी॥९॥

अर्थ ॥ वलीतेजहढकरेछे हेआत्मा केवलनणवामात्रथकीज आगमसिद्धांतते नवांतरनेविषे वांछितसुखेकरी फलेनही इष्टफलदायकनहोय पणतेसिद्धांतनेविषे कह्याजे स्वनुष्ठितके० नलाअनुष्ठान तपसंयमादिक तेनेआराध्येछते आगमफलदायक होय तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमखरजेरासन तेसाकरनोनार उपाडवामात्रथी सुखीउं नहोय साकरनापरिभोगनुं सुखनपामे तेम आगमनणवामात्रथीज आगमोक्त क्रिया जनित फलपामेनही॥९॥इतिश्री अध्यात्मकल्पद्रुमे शास्त्रगुणाधिकारोऽष्टम संपूर्ण ॥

अथचतुर्गत्याश्रितोपदेश ॥ दुर्गंधतो यदणुतोपि पुरस्य मृत्युरायू पिसागरमितान्यनुपक्रमाणि ॥ स्पर्श· खर क्रकचतोतितमामित श्च दुःखावनंतगुणितौ भृशशैत्यतापौ ॥१॥ तीव्रा व्यथा· सुरकृता विविधाश्च यत्राक्रंदारवैः सततमभ्रभृतोप्यमुष्मात् ॥ किं नाविनो न नरकान् कुमते बिभेषि यन्मोदसे क्षणसुखैर्विषयैः कषायी॥२॥युग्म

अर्थ॥हवे एपूर्वोक्तशास्त्रधारातर्गत चतुर्गत्याश्रीत उपदेशकहेछे तेमांप्रथम शास्त्रोक्त नरकगतिनादुःखकहेछे निश्चेकरी नरकना एकपरमाणुमात्रना दुर्गंधथी पुरवासिस मस्तलोकनुं मृत्युथाय एहवामहादुर्गंधमय नरकनापुजलछे वलीजिहां निरुपक्रमके० अपवर्तनरहित निकाचित् अने सागरोपमेप्रमित एकसागरोपमथी मांमीने तेत्रीस सागरोपम पर्यंत एहवाआउखाछे केमके देवताअने नारकीनाआउखा सदाइ निरु पक्रमहोय वलीजिहां स्पर्शतेपण करवतनीधाराथी कर्कशछे वलीइहांथकी अनंत गुणदुःखदायी महाशीत तथा महातापछे एमक्षत्रवेदनाकहीने हवेपरमाधामीनी करेलीवेदनाकहेछे वलीजिहां देवताजे पन्नरभेदे परमाधामीतेहुनीकरेली अतितीव्र कठोरजे वेदना तेविविधप्रकारना छेदन विदारणादिकहोय एप्रकारे निरंतर आक्रंद रुदनने शब्देंकरी आकाशनेपुरतो एहवोजे नविष्यमाण नरक तेहथकी हेकुमतिव तआत्मातुं केमनथीबिहितो जेमाटे कषायसहितथको क्षणमात्रसुखनाकारक एह वाविषयजे शब्दादिक तेणेकरी हर्षनेपामेछे एबेकाव्यनो अर्थएकठोछे ॥ १ ॥ २ ॥

बंधोऽनिशं वाहनताडनानि क्षुत्तृड्दुरामातपशीतवाताः ॥
निजान्यजातीयन्नयापमृत्यु दुःखानि तिर्यक्ष्विति दुःसहानि॥३॥

अर्थ ॥ हवेतिर्यंचगतिआश्री दुःखदेखाडेछे अनिशके० नित्यबंधन तथा वाहन के० नारनुउपाडवुं तथापराणादिकना प्रहारेंकरी ताडन वली क्षुधा तृषा दुरामके० दुष्टरोग आतप तडको तथाटाढय वायुइत्यादिक तथावलीस्वजातीनोन्नय जेम म हिषने महिषनोन्नय तथाहस्तिने हस्तिनोन्नय तथाअन्यजातीयन्नय ते जेम मृगादि कने व्याघ्रादिकनोन्नय तथाअपमृत्युजे कुमरण खड्गप्रहारथी तथाआहेडीप्रमुख थी तथाजल दावानल विषमादिकयोगथी क्षुधातृषादिक गाढवेदना आक्रांतपणे अकालमृत्यु इत्यादिकप्रकारें तिर्यंचगतिमां न्नयंकरकठीन दुःखहोयछे ॥ ३ ॥

सुधान्यदास्याभिन्नवान्यसूया न्नियोंतगर्न्नस्थितदुर्गतीनां ॥
एवं सुरेष्वप्यसुखानि नित्यं किंतत्सुखैर्वा परिणामदुःखैः॥४ ॥

अर्थ ॥ हवेदेवगतिआश्रीदुःखकहेछे नित्यप्रतें मुधाके० फोकट अन्यके० पारकी सेवा करवी केमकेमनुष्यतो धननालोन्ने तथाआजीविकादिक कारणथी परनीसेवा करे अनेदेवतानेतो तेवोकोइनिमित्तनथी तोपणसदाकालें इंद्रादिकनीसेवाकरवी त थाआन्नवेंवज्रप्रहारादिकनी पीडा अने अनिसूयाके० परस्परें ईर्षा द्वेषादिकमां वलि अंतके० चवननुंन्नय केमके सरवार्थसिद्धिना देवतानेपण चवननुंन्नयछे तथागर्न्न वासनुन्नय वलीदुर्गतिजे चांमालादिककुलें अथवातिर्यंचनुंअवतारलेवुं तेसंबंधीन्नय इत्यादिक प्रकारें देवतानान्नवमांपण घणाप्रकारें असुखछे तेमाटेपरिणामें दुःखकारी एहवाजे देवतासंबंधीसुख तो तेसुखेंसुंथाय माटेतेसुखनेपण असुखकरीजाणवा॥४॥

सप्तन्नीत्यभिन्नवेष्टविश्लवानिष्टयोगगददुःसुतादिन्निः ॥
स्याच्चिरं विरसता नृजन्मनः पुण्यतः सरसतां तदानय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेमनुष्यगतिआश्री दुःखकहेछे धुंवके० निश्चेंकरीने सातन्नीतिजे १ इह लोक २ परलोक ३ आदान ४ आकस्मिक ५ आजीविका ६ मरण ७ अपयश एसातन्नय तथा अभिन्नवके० राजा चोर दुर्जनादिकथी परान्नव तथा इष्टजे वह्न न्नजन स्त्री पुत्रादिकनोवियोग शत्रुप्रमुखनो योगके० संबंध तथा गदके० रोग वली दुःसुतके० कुपुत्र आदिशब्दथी कुनार्याप्रमुख इत्यादिकप्रकारेकरीने मनुष्यजन्मनु पण विरसपणुथाय तेकारणमाटे पुण्येकरीने मनुष्यजन्मनु सुरसपणुकरवुं ॥ ५ ॥

इति चतुर्गतिडुःखततीः कृतिन्नतिन्नयास्त्वमनंतमनेहसं ॥ हृदि विन्नाव्य जिनोक्तकृताततः कुरु तथा न यथास्युरिमास्तव ॥६॥

अर्थ ॥ हवे उपसंहारकहेछे हेपंडितआत्मा एप्रकारे अनतकालसुधी अतिशय नयनीकरनार एहवीचारगतिसबंधीजे डुःखनीश्रेणी तेप्रते जिनोक्त श्रीसर्वज्ञप्रणित कृतातजे सिद्धात तेथकी ह्रदयमा विचारीने जेम ए चारगतिना डुःखनीश्रेणीओ तुजने कोइवारे प्राप्तनथाय तेवो उपाय कर ॥ ६ ॥

आत्मन् परस्त्वमसि साहसिकः श्रुताक्षैर्यद्भाविनं चिरचतुर्गतिडुःखराशिं पश्यन्नपीह न बिन्नेषि ततो न तस्य विच्छित्तये च यतसे विपरीतकारी॥७॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा चारगतीना डुःखजाणतोथकोपण धर्मनेविषे तत्परथातु नथी तेवास्तेपरमअविचारीपणुं देखाडेछे हेआत्मातु अविचारमाहेमुख्यछो केमके आससारमा चिरकाललगें नावीएहवोजे चारगतिनाडुःखनोसमूहतेहने श्रुतसिद्धात रूपनेत्रेकरी देखतोछतोपण बीकपामतोनथी वलीतेडुःखना समूहनोविछेद करवा नेपण उजमालथातुनथी माटेतु उपराठाकर्मनुकरनारछो केमके डुःखछेद कर्मकर वानेबदले डुःखवृद्धिकारीकर्मकरेछे॥७॥इति शास्त्रोपदेशातरगतचतुर्गत्याधिकारसमाप्त

अथमन ॥ कुकर्मजालैः कुविकल्पसूत्रजैः निबध्य गाढं नरकाग्निन्निश्चिरं॥ विसारवत्पक्ष्यति जीव हे मन कैवर्त्तकस्त्वामिति मास्य विश्वसीः ॥१॥

अर्थ ॥ हवेचित्तदमन नामानवनमो अधिकार कहेछे तेमाप्रथम आत्माने मनरूपशत्रु नु विश्वासकरवुनिषेधेछे हेजीवतुजने मनरूपी धीवर तेकुविकल्परूप सूत्रेगुथ्या ए हवाजे कुकर्मरूपी जालो तेणेकरीगाढोबाधीने नरकरूप अग्नियेकरी मत्सोनीपरे चि रकाललगे पचावसे जेमधीवरपण मत्सने सूत्रनीजाले गाढोबाधीनेपछे अग्नीमाप चावे तेमइहापण एउपनयजाणवु माटेतुंताहरामनरूप धीवरनोविश्वासकरीसनही जेम ते मनरुप धीवरनाबनावेला कुकर्मरूपजालमापडेनही एवीरीतेवर्त्तजे ॥ १ ॥

चेतोऽर्थये मयि चिरत्नसख प्रसीद किं डुर्विकल्पनिकरैः क्षिपसे न्नवे मां॥ बद्धोंजलिः कुरु कृपां न्नज सद्विकल्पान् मैत्रीं कृतार्थय यतोनरकाद्बिन्नेमि॥२

अर्थ ॥ हवेआत्माबीहितोथको मनरूपमित्रने विनतीकरेछे हेचिरकालनामित्रतु चेतहृंयामाहे हेघणाकालना सहचारीतु महाराउपर प्रसादकरीने एमाठा विकल्पने समूहेकरीने मुजने आससारमा सुंनमावेछे तुजनेहु हाथजोमीने कहुंछु जेतुमहारा

उपर कृपाकरीने शुभविकल्पजे धर्मध्यानलक्षण तेहनी भजनाकरी आपणीमैत्री स फलकर केमकेहुं हवे नरकना दुःखथी बीहुंछुं ॥ २ ॥

स्वर्गापवर्गौ नरकं तथांतर्मुहूर्त्तमात्रेण वशावशं यत् ॥
ददाति जंतोः सततं प्रयत्नाद्वशं तदंतःकरणं कुरुष्व ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने मनवशकरवाआश्री उपदेशआपेछे हेआत्माजे अंतःकरण वशतथा अवशथको जीवने अंतरमुहूर्त्तमात्रमांज स्वर्गमोक्षादिकना सुखप्रतेआपे अनेनरकनी प्राप्तिपणकरावे एटलेमनवशथको जीर्णशेठ तथाप्रश्नचंद्रराजर्षि इत्या दिकनीपरें स्वर्गमोक्षादिकआपे अने मनअवशथको तंदुलमत्स्यादिकनीपरें अंतर मुहूर्त्तमात्रमां नरकप्रतेआपे तेमाटेतुंतादृश अंतःकरणनेज सर्वथाप्रकारेंवशकर ॥३॥

सुखाय दुःखाय च नैव देवा न चापि कालः सुहृदोरयो वा ॥
भवेत्परं मानसमेव जंतोः संसारचक्रभ्रमणैकहेतु ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेतेहिजकहेछे जीवने देवता तथा वर्षा शीत ग्रीष्मादिककाल तथा मित्र शत्रुतेकोइपण सुखदायी तथादुःखदाइनहोय पणएकमन तेहिजजीवने सुख दायी तथा दुःखदायीहोय हवे तेमनकहेवुंछे तेकहेछे संसारसमुद्रमां भ्रमणजे ज न्ममरणादिक तेहनुंएकहेतुछे एवचन संज्ञीपंचेंद्री आश्रीजाणवुं अन्यथा असंज्ञीने मनना अभावें पण संसारमां भ्रमण देखायछे ॥ ४ ॥

वशं मनो यस्य समाहितं स्यात् किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च॥
हतं मनो यस्य च दुर्विकल्पैः किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ॥५॥

अर्थ ॥ जेप्राणीनेपोतानुंमन समाधिवंतछतो वशवर्त्तिहोय तेहने नियमजे १ शौच २ संतोष ३ स्वाध्याय ४ तप ५ देवताप्रणिधानादिक लक्षण तथायमजे प्राणातिपात विरमणादिक पांचमहाव्रत तेहनुंसुंकार्यछे केमकेतेतोसर्वे मनवशकर वाना उपायछे अनेजेवारेंते मनवशथयुं तेवारेतो ते सर्वेगुण प्रथमजआव्या अनेजे प्राणीनुं मन माठाविकल्पेंकरी हतप्रहतछे तोतेहने नियमयमें करीने पणसुंथवानुंछे जेमछालीना गलाना स्तनधाव्याथी कांइ अर्थसिद्धि नथाय तेमज मनवश थयाविना यम नियमादिक पण व्यर्थ जाणवा ॥ ५ ॥

दानं श्रुतध्यानतपोर्चनादि वृथा मनोनिग्रहमंतरेण ॥ कषाय
चिंताकुलतोज्झितस्य परो हि योगो मनसोवशत्वं ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जीवनेएक मनवशथयाविना दानतथा श्रुतसिद्धांतनुंभणवुं तथाध्यान तथा अर्चनजे देवपूजा आदिशब्दथी प्रासाद देवप्रतिष्ठादिक क्रिया तेसर्वेवृथाजा णवी पण तेमोक्षफलनी देनारनथाय केमके कषायजेक्रोधादिक तेसंबंधीनीचिंता थकी उपनीजे असाता तेणेकरीरहित एहवुजेमन तेहनुंवशवर्त्तिपणु तेहिजपरम योगछे अने तेहिज अष्टांग योगनु सर्वस्वछे ॥ ६ ॥

जपो न मुक्त्यै न तपोद्विभेदं न संयमो नापि दमो न मौनं ॥
न साधनाद्यं पवनादिकस्य किं त्वेकमंतःकरणं सुदांतं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जीवने नवकारादिकनोजप तथा बाह्य अभ्यंतर बेप्रकारनुंतप तथासंयम चारित्र तथा दमजे इंद्रियदमन तथामौनजे वचननुंसवर तथा पवनादिकनुंसाधन आदिशब्दथी चोरासी योगासनप्रमुख तेकांइमुक्तिना देवावाला थायनही तेवारे तुजने किंतुके० मुक्तिप्राप्तिनो शोउपायछे तेकहेछे जेणेरुडीरीते पोतानुंअंत करणजे मनतेहने वशकर्युं तोतेहिज एकमुक्तिनु दातार होय ॥ ७ ॥

लब्ध्वापि धर्मं सकलं जिनोदितं सुदुर्लभं पोतनिभं विहाय च ॥
मनःपिशाचग्रहिलीकृतः पतन् भवाम्बुधौ नायतिदृग्जडो जनः ॥८

अर्थ ॥ जडके० हेअज्ञानीप्राणी अतिशयेंकरीपामवुदुर्लभ प्रवहणसरिखो एह वोएसर्वज्ञप्रणीत संपूर्णधर्म तेप्रतेंपामिने वलीतेहनेछांडिने मनरूपिओ पिशाचके० भूततेणेग्रहेलोकस्योथको संसारसमुद्रमापडता आयतिदृग्के० उत्तरकालनो विचार करतोनथी एटलेएमनथी विचारतोजे प्रवहणरूप धर्मनेछांडी संसारसमुद्रमा जपापा तखाउंछु तेथी आगलें हवे महारी शीगति थासे ॥ ८ ॥

सुदुर्जयं ही रिपवत्यदोमनो रिपूकरोत्येव च वाक्तनू अपि ॥
त्रिभिर्हतस्तद्रिपुभिः करोतु किं पदीभवन्दुर्विपदां पदे पदे॥ ९॥

अर्थ ॥ हेआत्माअतिशय दुर्जयएहवुजे तादृशंमन तेपोतेंशत्रुपणु आचरेछे अ नेवली वचनतथाकायानेपण शत्रुकरेछे मनदुष्टथके वचनतथा कायानाव्यापारपण दुष्टथाय तेकारणमाटे मन वचन तथाकाया एत्रणेशत्रुये पराभव्यो एहवोतुपगेपगे दुष्ट विपदा जे नरकादिक तेहनुं भाजनथातोथको तुसुकेरे एटलेतादृशोकांइचालतु नथी॥९

रे चित्त वैरि तव किं नु मयाऽपराद्धं यद्दुर्गतौ क्षिपसि मां कुविकल्पजालैः॥जा
नासि मामयमपास्य शिवेऽस्ति गंता तत्किं न संति तव वासपदं ह्यसंख्याः १०

अर्थ ॥ हेचित्तरूपवैरी में ताहरोशो अपराधकीधोछे केतुंमुजने विकल्परूपजाळें बांधीने दुर्गतिमांनाखेछे जोतुंएमजाणतोहोयजे एजीवमुजनेपरिहरीने मुक्तिजनारछे तोपणताहरे वशकरवानास्थानक वळीमहाराशिवाय बीजाअसंख्याता संसारीजी वसुंनथी एटले एकहुंजतोरह्यो तोपण ताहरेबीजानीशीखोटछे ॥ १० ॥

पूतिश्रुतिःश्वेव रतेर्विदूरे कुष्ठीव संपत्सुदृशामनर्हः ॥
श्वपाकवत्सद्गतिमंदिरेषु नार्हेत्प्रवेशं कुमनोहतोंगी ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमननाअवशपणाथकी बहुप्रकारना अवगुणथायछेतेदेखाडेछे दुष्ट मनेकरीसंतापपाम्यो एहवोजेप्राणी तेकुंह्याकाननां कुतरानीपरें रतिजेनिवृत्तितेहथी वेगळोहोय जेम कीमेंखाधो एहवोजे कुतरोते किहांपणक्षणमात्र रतिपामेनहीतेम कुविकल्पचित्तनोधणी तेपणरतिरहितहोय वळीकोढीआनीपरें संपदारूपणीजे सुद्द शाओरूप उत्तमकन्याओ तेहनेवरवाअयोग्यहोय जेमकोढीआनेकोइपण उत्तमक न्यावरवावांछेनही तेमदुष्टचित्तवंतप्राणीने सौभाग्यादिक कोइपणसंपदाआश्रयेनही वळीसद्गतिरूपजेमंदिर तेहनेविषे श्वपाकके० चंडाळनीपरें प्रवेशकरवानपामे॥ ११

तपोजपाद्याः स्वफलाय धर्मा न दुर्विकल्पैर्हतचेतसः स्युः ॥
तत्खाद्यपेयैः सुभृतेपि गेहे क्षुधातृषाभ्यां म्रियते स्वदोषात्॥ १२॥

अर्थ ॥ माटेविकल्पेकरी जेहनुंचित्तपीडाणुंछे एहवाप्राणीने तपजपप्रमुखजेधर्म तेपोतपोताना फळनुंदेवावाळोनथाय अने कुविकल्पचित्तनोधणी धर्मक्रियाकरतोथ कोपण मोक्षफळपामेनही तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमकोइ अपुण्यवंतप्राणी खानपाना दिकें भरेलाघरमांपण पोताना कृपणताद्यादिकदोषथी भुखतृष्णायेंपीडाय तेमइहां पण कुविकल्पचित्तवंतप्राणीते छतेधर्मेपण परभवेंसीदाय ॥ १२ ॥

अकष्टसाध्यं मनसो वशीकृतात् परं च पुण्यं न तु यस्य तद्वशं ॥
स वंचितः पुण्यचयैस्तदुद्भवैः फलैश्च हीही हतकः करोतु किं॥ १३॥

अर्थ ॥ एकमनना वशकरवाथी बीजुंसर्वपुण्यते सुखेंसाध्यछे अनेते मन जेहनेव शनथी तेप्राणी पुण्यनेसमूहें तथातेपुण्यजनितफळेंकरीने वांछितछे तेफोकटछे एट लेमनवशविना पुण्यनी तथापुण्यजन्यक फळनी फोकट आशाराखेछे तेमाटे हीही इतिखेदे एवापडो प्राणी शुंकरे पछे तेहने एके गतिनथी ॥ १३ ॥

अकारणं यस्य सुडुर्विकल्पैर्हतं मन· शास्त्रविदोपि नित्यं॥
घोरैरघैर्निश्चितनारकायुर्मृत्यौ प्रयाता नरके स नून ॥१४॥

अर्थ ॥ यद्यपिसिद्धांतनोजणनारछे तथापिजेह्नुंमन अकारणके० उपसर्गादिककारणविना पण नित्ये अतिशयेकुविकल्पेकरी पीमितछे तेपुरुपमहारौद्रपापेकरीने दृढकीधुंछे नरकायुजेणे एहवुथकोते सर्वथा मुआपछी नरकमाजजशे ॥ १४ ॥

योगस्य हेतुर्मनसः समाधि परं निदानं तपसश्च योगः॥
तपश्च मूल शिवशर्मवल्या मन·समाधि भज तत् कथंचित्॥१५॥

अर्थ ॥ मननीसमाधिजे एकाग्रता तेहिज योगनुंहेतुछे अनेवलीयोगजे अष्टांग लक्षण तेतपनुंपरम उत्कृष्टकारणछे अनेतेतपतो मोक्षसुखरूपणी वेलीनुंमूलछे माटेहेआत्मा जेतेउपाय करीने मननीसमाधिनेआदर केमके मननीसमाधिथी योग अने योगथी तप तथा तपथीमोक्षसुख एमपरपराये सर्वसिद्धिपामे ॥ १५ ॥

स्वाध्याययोगैश्चरणक्रियासु व्यापारणैर्द्वादशभावनाभि ॥
सुधीस्त्रियोगी सदसत्प्रवृत्ति· फलोपयोगैश्च मनो निरुंध्यात् ॥१६॥

अर्थ ॥ हवेमनसमाधिना उपायकहेछे स्वाध्यायजे जिनागमतेहनायोगनुं वहेवु आंबिलादिक तपविशेष तेणेकरीने तथाचारित्रसंबंधीनी क्रियानेविपे प्रवर्त्तवेकरी वलीअनित्यादिक बारभावनायेकरीने वली त्रियोगीजे मन वचन कायानायोग ते होनी सदसद्प्रवृत्तिके० भलोअने भूंडोव्यापार तेहना फलनुं उपयोगजे विचारणा एटलेत्रियोगना शुभव्यापारनो शो फलछे एहवीविचारणा अने अशुभव्यापारनोशो फलछे एहवाजे उपयोगदेवा इत्यादिक प्रकारेकरी मननेवशकरवुं ॥ १६ ॥

भावनापरिणामेपु सिंहेष्विव मनोवने ॥
सदा जाग्रत्सु दुर्ध्यानसूकरा न विशत्यपि ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेवली एसर्वप्रकारमां पण भावनापरिणामने विशेपदेखाडेछे मनरूपी आवननेविपे सिंहसरिखाजे भावनाना परिणाम तेमासर्वदासावधानरहेथके डुर्ध्यानजे आर्त्तरौद्रध्यान तेरूपजे सूअरोते प्रवेशपणकरीशकेनही तोतिहां तेसूअरो वासकरवानेतो सर्वथानजपामे ॥ १७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे चित्तदमनाभिधानो नाम नवमोऽधिकार सपूर्ण थयो ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतो वैराग्यधर्मोपदेशः ॥ किं जीव माद्यसि हसस्य यमीहसेऽर्थान् कामांश्च खेलसि तथा कुतुकैरशंकः ॥ चिक्षिप्सु घोरनरकावटकोटरे त्वा मभ्यापतल्लघु विभावय मृत्युरक्षः॥१॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी वैरागोपदेशनामा दसमोअधिकारकहेछे तेमांप्रथमजीवने मरणसंबंधीजयदेखाडेछे हेजीवतुं मदशानोकरेछे तथासुंहशेछे वली अर्थजेसुवर्णरूपादिक तेहनेसुंवांछेछे तथावली निःशंकछतो कौतुकेकरीने कामजे शब्दादिक विषय तेप्रतेसुंरमेछे तुजनेतो नयंकर नरकरूपजे खाइ तेमांनाखवावांछतो एवो मृत्युरूपजे राक्षस तेउतावलुं तारेसन्मुखआवतुं सांजलीने निःशंकरहिशनही॥१॥

आलंबनं तव लवादिकुठारघाताश्छिंदंति जीविततरुं न हि यावदात्मन् ॥ तावद्यतस्व परिणामहिताय तस्मिन् छिन्ने हि कः क्व च कथं नविता स्वतंत्रः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेआउखुंविद्यमानछते-जीवनेधर्मकरवुं उपदेशेछे हेआत्माताहरो आलंबनआधारभूत एहवोजे जीवितव्यरूपवृक्ष तेप्रते लवादिकजे लव लेश क्षण घडी मुहूर्त्तप्रमुखकालमान तेरूपीया कुहाडानाघाव जाहांलगेंछेदेनही तेहथीपहेलां ज परिणामहितजे निदानहितकारी तपसंयमादिक तेहनेअर्थेउद्यमकर जेथकीताहरो जीवतव्यरूप वृक्षछेद्यापछि फरीतेहने नवपल्लवकरवाने किहांक कोइकप्रकारें पण मंत्रउपायथासे जेणेकरीतुं जीवतव्यरूपतरुने नवपल्लवकरीस एटलेक्षणेक्षणे जीवतव्यरूप वृक्षछेदातुंजायछे तेछेदाइगयापछि फरीसज्जकरवानु कोइउपायनथी तेमाटे आत्महितनेविषे तत्परथावुं एहिजश्रेष्ठउपायछे ॥ २ ॥

त्वमेव मोग्धा मतिमान् त्वमात्मन्नेष्टाप्यनेष्टा सुखदुःखयोस्त्वं ॥ दाता च भोक्ता च तयोस्त्वमेव तच्चेष्टसे किं न यथाहिताप्ति ॥३॥

अर्थ ॥ हवेसर्वकरणीते आत्मानेआधीनछे एहवुंकहिने विशेषेंप्रेरेछे हेआत्मातुं मोग्धाके० मूढतासहितछो अने मतिमान्के० ज्ञातापणतुंछो वलीसुखनुं वांछक अनेदुःखनुंअवांछकपणतुंछो तथासुखअनेदुःखनुंदाता अनेभोक्तापणतुंजछो केमके सुखदुःखते स्वकृतकर्मथीजथायछे यदुक्तं श्रीउत्तराध्ययने अप्पानईवेअरणि अप्पामे कूडसामली अप्पाकामदुघाधेणुं अप्पामेनंदणंवणं अप्पाकत्ताविकत्ताय इत्यादिक माटे जेरीतें ताहरीआत्माने हितनीपजे तेमजकांनथीकरतो ॥ ३ ॥

कस्ते निरंजन चिरं जनरंजनेन धीमन् गणोस्ति परमार्थदृशेति पश्य ॥
त रजयाशु चरितैर्विशदैर्भवाब्धौ यस्त्वां पतंतमबलं परिपातुमीष्टे ॥४॥

अर्थ ॥ हवेलोकनेरीजवतोथको आत्मापोतानुं हितकाइकरतोनथी तेआश्रयीउ पदेशछे हेनिरजन हेनिरलेपआत्मा हेबुद्धिवत हेहिताहितविवेकनाजाण चिरकाल जावजीवलगे लोकनुंरीजववु एटलेमलीनवस्त्र धारणकरी बाह्यक्रिया देखाडीने शू न्यचित्ते गामेगामे उपदेशआपीने लोकनुंमनरीजववुं तेथीतुजने शोगुणछे एटलुंत त्वदृष्टे विचारी परमार्थदृष्टीयेजोता लोकरीजव्याथी आत्माने अर्थसिद्धिकांइनथी तेमाटे लोकरंजनत्यजीने उतावलोथयी विशदके० निर्मलजे चारित्र तपसयमादिक आचरण तेणेकरीने श्रीवीतराग तथातेमनाजापेलाधर्मनेरीजव जेथकीतुजने अ बलंके० परभवे संबलेंरहित संसारसमुद्रमांपडताथका राखवानेसमर्थथाय केमके संसारमांपडता एकधर्मजआधार आपशे पणलोककोइ आधारआपशेनही ॥४॥

विद्वानहं सकललब्धिरहं नृपोहं दाताहमद्भुतगुणोहमहं गरीयान्॥
इत्याद्यहंकृतिवशात् परितोषमेषि नो वेत्सि किं परभवे लघुता भवित्री॥५

अर्थ ॥ हवेअहंकारनिवारवा उपदेशछे हेआत्मा हुंपण्डितछुं हुंसर्वलब्धीये स हितछुं हुराजाछु हुंदातारछुं हुंअद्भुतगुणवतछुं तथाहुंमहोटोछु इत्यादिकजे पोता नामनकल्पित अहकार तेहनावशथकी तु परितोषके० हर्षपामेछे पणजन्मातरे भाविनी एहवीतेपदार्थोनी लघुताप्रते काविचारतोनथी जेजेपदार्थनेतु आभवमा हुंपदेकरेछे तेतेपदार्थनीतु परभवेहीनतापामिस इतिभाव ॥यदुक्तं योगशास्त्रे॥जाति लाभकुलैश्वर्य बलरूपतप श्रुतै ॥ कुर्वन् मदं पुनस्तानि हीनानि लभ्यते जन इति ॥५॥

वेत्सि स्वरूपफलसाधनबाधनानि धर्मस्य त प्रभवसि
स्ववशश्च कर्तुं॥तस्मिन् यतस्व मतिमन्नधुनेत्यमुत्र
किंचित्त्वया हि नहि सेत्स्यति भोत्स्यते वा ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने इहभवेधर्मकरवानी प्रेरणाकरेछे हेबुद्धिवतप्राणी तुधर्मनुं स्वरूपजे क्षांत्यादिकदशविध लक्षण तथाधर्मनुफलजे मोक्षादिक तथाधर्मनुंसाधन जे मनुष्यजन्म आर्यक्षेत्रादिक तथाधर्मना बाधकजे कुजन्म कुक्षेत्र प्रमाद मिथ्या त्व इत्यादिकसर्वप्रकारने वेत्सिके० जाणेछे अनेवली स्ववशके० पोतानेवशेथयको ध र्मकरवाने समर्थपणछो पणतिर्यंच नारकीनीपरे परवश तथाधर्मकरवाने असमर्थ

नथी तेमाटे आनवमांज धर्मनेविषे उद्यमकर केमकेफरी परनवेंते कांइ सीजेनही तथा तुजने तेवा धर्मनुं फरीकांइ जाणपणुपण नहीथाशें माटे ॥ ६ ॥

धर्मस्यावसरोस्ति पुज्जलपरावर्त्तैरनंतैस्तथा यातः संप्रति जीव हे प्रस हतो दुःखान्यनंतान्ययम् ॥ स्वल्पाहः पुनरेष दुर्लनतमश्चास्मिन् य तस्वार्हतो धर्मं कर्त्तुमिमं विना हि नहि ते दुःखक्षयः कर्हिचित् ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने धर्मनुंअवसरजणावेछे हेजीवअनंताङःख सहित तुजने अनंते पुज्जलपरावर्त्तें संसारमांनटकतां संप्रतिके० हमणा आनवमां धर्म करवानुंअव सरआव्योछे अनंतउत्सर्प्पिणी अने अवसर्प्पिणी प्रमाण एकपुज्जलपरावर्त्त थाय ते हनुंस्वरूप ग्रंथांतरथीजाणवुं एधर्मनुंअवसरते थोडाजदिवसलगणछे फरीपामवुं घ णुंडुर्लनछे तेमाटेएअवसरें श्रीजिनोक्तधर्म करवाने उद्यमकर केमके एजिनोक्तधर्म विना ताहरे किवारेंपण जन्ममरणादिकना डुःखनो क्षयथवानुंनथी माटेजोडुःख नुं अंतकरवाने वांछतोहोयतो एअवसर पामिने धर्मकरवाने तत्परथा ॥ ७ ॥

गुणस्तुतिर्वांछसि निर्गुणोपि सुखप्रतिष्ठादि विनापि पुण्यं ॥ अष्टांगयोगं च विनापि सिद्धिर्वातूलता कापि न वा तवात्मन् ॥८॥

अर्थ ॥ हवेअयुक्तवांछकपणाथी जीवनुंबाहुलापणुंदेखाडेछे हेआत्मातुंज्ञानदर्शन चारित्रादिकगुणेरहितथकोपण गुणस्तुतिजे पोतानीप्रशंसा लोकनामुखथी कीर्त्तिना वरणनने वांछेछे तथापुण्यविनापण सुखने तथा प्रतिष्ठाके० गौरवपणानेवांछेछे व ली अष्टांगजेयोग यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि एआठयोगविना पण सिद्धिअष्टकर्मक्षयलक्षण सिद्धनाआठगुण अथवा सिद्धिते अष्टमहासिद्धि लघिमा वशिता ईशिता प्राकाम्य महिमा अणिमा यत्नकामावसायि ता प्राप्ति तेप्रतेंतुंवांछेछे माटेहेआत्मा एताहरो बाहुलापणुंते कोइअपूर्वनवुंजदेखा यछे केमके कारणनी सामग्रीविनाज कार्य नीपजाववानी अनिलाषाकरेछे ॥ ८ ॥

पदे पदे जीव पराभिनूतीः पश्यन् किमीर्ष्यस्यधमः परेन्यः ॥ अपुण्यमात्मानमवैषि किं न तनोषि किंवा न हि पुण्यमेव ॥९॥

अर्थ ॥ हवेबीजानाकरेला अपमानथी जीवईर्षाकरेछे तेआश्रीउपदेशकरेछे हे जीवतुं पुण्यरहितपणाथी अधमके० नीचअवस्थापाम्योथकोपण पगेंपगें बीजानी करेली जे अनिनूतिके० अपमान आक्रोशादिकते देखीने परेन्यःके० तेलोकउपरें सुं ईर्षाके० क्रोधकरेछे पणपोताना आत्मानेज पुण्यहीन केमजाणतोनथी जेपुण्यर

हितहोय तेहनेतो पगेंपगें पराजवथाय तेमासुं महोटीवातछे एमकांविचारतोनथी अ थवानिश्चेथी पुण्यजकेमकरतोनथी केजेथकी कोइपराजवनथाय ॥ ए ॥

किमर्दयन्निर्दयमंगिनो लघून् विचेष्टसे कर्मसु हि प्रमोदत· ॥
यदेकशोप्यन्यकृतार्दन· सहत्यनंतशोप्यंग्ययमर्दनं जवे ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माप्रते परनेपीडानुं फलकहेछे हेआत्मातु निर्दयपणेकरी ताहरा थकी लघुके० निर्बल एहवाजे अंगीके० प्राणी तेहनेपीडतोथको तु प्रमोदत·के० हर्षेकरी पापकर्मविषे सुंप्रवर्त्तेछे केमके एकवारपण जेप्राणिये अन्यजीवने पीडाउ पजावीहोय तेप्राणीअनतिवार ससारमापीडासहे यडुक्तं तिव्वयरेउपउसे सयगुणि उसयसहस्सकोडिगुणा ॥ कोडाकोडिगुणोवाहुज्ज विवागो बहुतरो वा इति ॥१०॥

यथा सर्पमुखस्थोपि जेको जतूनि जक्षयेत् ॥
तथा मृत्युमुखस्थोपि किमात्मन्नार्दसेऽगिन ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेतेउपर दृष्टांतकहेछे जेम जेकजे मेडको तेसर्पनामुखमा रह्यो अर्द्धग्रसित थको पण जतुजेन्हाना क्षुद्रजीवतेप्रतेखाय तेम हेआत्मा तुपणमृत्युना मुखमा र ह्योथको पण अन्यप्राणीओने सुंपीडाआपेछे ॥ ११ ॥

आत्मानमल्पैरिह वंचयित्वा प्रकल्पितैर्वा तनुचित्तसौख्यै ॥
जवाधमे किं जन सागराणि सोढासि ही नारकदुखराशीन् ॥ १२॥

अर्थ ॥ हवेइहजवे हिसाजनित अल्पमात्रसुखथी परजवे अनतादुख सहेवा पडशे तेकहेछे हेजन हेससारीप्राणी प्रकल्पितके० तेताहरी कल्पनामात्रथी दुख नेज सुखकरीमान्या तेपणवली अल्प तुछ क्षण स्थायी एहवाजे मनवचनकाया सबधीसुख तेणेकरी इहजवे तुठगायेछतो हाहाइतिखेदे जवजे चारगतिरूपसंसार तेमा अधमजे नरकतेहनेविषे घणाक सागरोपमसुधी नारकीनाजेदुखसमूह तेसहे वाने सुंतत्परथायछे ए विषय सुखते दुखजछे पणकल्पनामात्रथी एनेजीवसुख करीमानेछे ॥१२॥ यदाह जर्तृहरि ॥ तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरनि क्षुधार्त सन् शालीन् कवलयति मासाज्यकवलान् ॥ प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढतरमा श्लिष्यति वधूं प्रतीकारो व्याधे सुखमिति विपर्यस्यति जन ॥ १ ॥

उरभ्रकाकिण्युदबिंदुकाम्र वणिक्त्रयीशाकटजिक्षुकाद्यै· ॥
निदर्शनैर्हारितमर्त्यजन्मा दुखी प्रमादैर्बहु शोचितासि ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजअर्थ उत्तराध्ययनसूत्रना दृष्टांतेकरी दृढकरेछे हेआत्मातुं प्रमादजे मद्यादिकपांच तेनावशथकी मनुष्यअवतारहारीने पछेपरनवेंदुःखीथोथको उरभ्रजेबोकडो कागिणी उदकबिंदु आम्रवातकीराजा वणिकत्रयीजे त्रणव्यापारी शाकटजे गामावाहक निक्षुकजेरांक इत्यादिकोनादृष्टांतेतुंपण घणुंशोचनाकरीस॥१३

इहांसंक्षेपथी उरभ्रादिकना दृष्टांतलिखेछे तेमांप्रथम उरभ्रनुंदृष्टांतकहेछे जेम कोइगाममां कोइकनाघरमध्ये एकबोकडोहतो तेकोइक प्राहुणोआवसें तेवारें एहनुंमांस काममांआवशे एमचिंतवीने तेघरनामाणसो तेबोकडाने अन्नादिकेंपोषेछे अनुक्रमेंते बोकडो घणुपुष्टशरीरथयो हवेतेहनेतेहवोदेखीने एकवाछडो मनमांखेद पाम्योथको क्रोधधरीने दोहतांशेपरह्युंजे पोतानीमातानुंदुध तेहनेधावेनही तेवारें मातायें क्रोधनुंकारणपुछेथके कहेवालागो हेमाताजूओने आबोकडो यथेष्ट अन्नादिकखायछे तेथीकहेवो पुष्टथइरह्योछे एहनेपुत्रनीपरेंपालेछे नानाप्रकारना अलंकारपहेरावेछे अनेमुजनेतो पोतानीमातानुंदुध तेपणकोइ पीवादेतोनथी तथासुका तृणतेपण वखतउपर पूरामलतानथी एहवुंसांभली मातायेंकह्युं आउरचिणाइं पया जाइंचरसिनंदिउ॥सुक्कतिणेहलांछेहि एयं दीहाउलरक्कणं.॥१॥हेवत्स जेमरोगीउ मरवापड्योहोय तेहनेजेकांइ खावामांगे तेआपे तथाफुलनीमाला प्रमुखपहेरावे तेम एबोकडानेपण वध्यमंडननीपरें शृंगारादिककरेछे पोषेछे पणकोइप्राहुणाआवसे तेवारेपरीक्षाजणासे तेसांभली वत्सछानोरह्यो पछेकोइकदिवशें तेहनेघरेंप्राहुणाआव्या तेवारेंतेबोकडानेबांधी उंचूकरी घणुतडफडतो जीभकाढतो दीनस्वरे आरडतो मृत्युपमाड्यो तेहनामांसनें खंडोखंडकरी पचावीने प्राहुणासहितसकुटुंबें घरधणियें भक्षणकीधुं तेवृत्तांतदेखीने वाछडो भयपाम्योथको त्रुख्योतरस्योथकोपण मातानुंदुधपीयेनही तेवारेंमातायें पुछेथके वत्सबोल्यो हेमातामें बोकडानीएहवी भूंडीअवस्थादीठी तेथीमुजने धाववानीपण वांछाथातिनथी एमइहांपणएउपनय जोडवो जेमतेबोकडोजीवतव्यनीवांछायें निर्भयपणे यथेष्टपुष्टथातुंथको प्राहुणाआवे मृत्युपाम्यो तेमहेआत्मातुंपण प्रमादेपुष्टथको यथाइच्छायेंविचरेछे पणमृत्युआवेथके मनुष्यजन्महारीनरकादिकना दुःखपामि घणुशोचपामीस.

हवेबीजुंकांगणीनुंदृष्टांतकहेछे जेमकोइकरांक परदेशेजइ मजूरीकरीने एकहजार सोनैया कमायो पछेपोतानादेश तरफचाल्यो तेवारेरस्तामांखरचीसारुं एकरूपकवटावी तेहनी (८०) कागणीसाथेराखी बीजासर्वेद्रव्यनी वांसलीभरी सीवीनेराखी एक दिवसें किहांकमार्गेमां विश्रामस्थानकें एककांगणीवीसरी ते सथवारासाथें आगलें

जातारााजरी तेवारेंराकेविचार्युंजे एककागणीनीखोटे रखेनेवीजुरूपक वटाववुंपडे इमचिंतवी सथवारोमूकी इव्यनीवासली किहाकगोपवीने तेकांगणीलेवा पाछोव ट्यो आवीनेजूएछेतो कागणीकोइकलइगयु अनेपाछोफरीनेजूएतो वासलीपण को इकलेइगयु पछेनिराशथयी अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्टथको घणुशोच करवालागो जेमतेरां के एककागणीनालोभथी हजारसोनैयानीवांसली अनेतेकांगणी वेन्हे खोइने घ णाशोचनुंभाजनथयो तेमआत्मापणपूर्व अप्राप्तकामभोगथको बहुमूलचारित्रपा मिने वलतुकागणीतुल्य कामभोगनीलालसाये चारित्रत्यजीने कामभोगगवेषतोथको कामभोगपणनपामे अनेचारित्रपणनपामे एमउभयभ्रष्टथयोथको तेराकनीपरे घ णुशोचपांमे इहा कागणी ते एक मासानुं चोथोभाग अथवावीसकोडी अथवा एकरूपैयानुं (८०) मुंभागजाणवो

हवेत्रीजु उदकबिंदुनुंदृष्टांतकहेछे कोइकवनमा कोइतृषातुरने कोइकदेवताये क रुणाकरीने क्षीरसमुद्रनेकांठेजइमुक्यो तेमूर्खतिहांपाणीपीधुंनही अनेदेवतानेकह्युजे हेस्वामि महारागामनीसीममाकुवछे तेहनेडपकाठे माननेअग्रेलवमान एकजलबिं दुछे तेखरीपडशे माटेमुजनेतिहामूकोतो बिंदुओपीउं तेसांभली तेहनेमूर्खनिर्भाग्य जाणी देवतायेतिहामूक्यो देवतापोताने स्थानकेगयो पछेतेबिंदुओपण खरीपडयो तेदेखीतेमूर्ख उभयभ्रष्टथयो थको शोचकरवालागो तेमइहातृषातुरतेजीवक्षीरसमु द्रतेचारित्र देवतातेसद्गुरु जलबिंदुआरूप कामभोगनासुख एम उपनयजाणवु

हवेचोथुंआम्रदृष्टांतकहेछे कोइकराजाने आंबानाफलघणुंज वह्लभहता एकदिव शे घणाआम्रफलनाखावाथकी अजीर्णविशुचिकाथयी पछेवैद्येअनेक औषधेकरी घ णीकष्टेनिरोगीकीधो वलतुवैद्येकह्यु हवेजोआम्रफलखासोतो मरणपामसो एमकही सर्वथावार्यो राजायेपणपोतानादेशमाथी आंबानासर्वेवनछेदावीनाख्या हवेकोइक दिवसेराजा आहेडेनिकल्यो तिहांदुष्टअश्वे अपहर्या एहवाप्रधान अनेराजाबेहुजण घणुदूरपंथे किहाकअटवीमाजइपहोता सैन्यसर्वपाछलरह्यु राजाप्रधान बन्नेजण श्र मथीउतरी आंबानीछायायेबेठा तेआंबानीचेफलपडयादेखी राजानेघणादिवसे अ भिलाषथयो प्रधानेघणुवार्यो तोपणतेफलखाधु एटलेतत्काल मृत्युअवस्थातुल्यथ योथको घणुशोचवालागो जेमतेराजा आम्रनास्वादेलुब्ध्योथको प्रधानेवार्योथकोप ण ते फलखाइ राजा जीव्यत्वनी आशातजीने मरतामहाशोकपाम्यो तेमइहापण विषयलुब्धकजीव विषयने परवशथको जिनाज्ञाअणमानतो कामभोगासक्तथयो संयम अने मनुष्यजन्म नेहुहारीने पछे पश्चात्ताप करशे

हवेपांचमुंवणिकनुं दृष्टांतकहेछे एकवणिकनेत्रणपुत्रहता तेत्रणेनेहजार हजार सौनैया आपणआपीनेकह्युंजे एटलाद्रव्येंतमेव्यापारकरीने अवधिउपरेंआववुं हवे तेत्रणेजण नीमे नीमे मूललेइने जूदेजूदेनगरेंचाल्या तेमांपहेलोजाइसर्वव्यसनरहित अल्पव्ययकरतो थको व्यापारकरवालागोतेमां घणोकमाणुं अनेबीजो हजारसौनैयाकायमराखीने लाभआवेतेवावरे एरीतेंते मूलद्रव्यनेराखीरह्युं अनेत्रीजेव्यापारकीधुंनही अनेवेश्यादिकनाव्यसनमां सर्वमूलद्रव्यवावरीनाख्युं अनुक्रमेंतेत्रणेजण पोतानाघरेंआव्या तेहोनुंव्यतिकरजाणीने त्रीजापुत्रनें मूलनीमेंपणनराख्योमाटे पितायें घरथीबारकाढीमूक्यो लोकमांनिंदनिकथयो दासपणुंपाम्यो जेमतेत्रीजोपुत्र नीमेंमूलनेहारीने निंदाअवस्थापाम्यो तेमआत्माविषयलुब्धथको पूर्वजन्मपुण्यरूप मूल नीमेंहारीने जन्मांतरेंदुर्गतिना दुःखपाम्योथको घणुंशोचपामेछे.

हवेछठो शाकटनुं दृष्टांतकहेछे जेमकोइक गाडानुवाहक सम विषम मार्गेजाणतो थको पण विषममार्गें गाडानेलेइगयो पछेधुसरूभांगेथके शोचकरवामांमंड्युं तेमइहांपण जीवपुण्यपापादिक मार्गनेजाणतोथको पण प्रमादना परवशपणाथकी कुमार्गें चालतो कुगतीमांपडसे तेवारेंशोच पामसे.

हवेसातमुं भिक्षुकनुं दृष्टांतकहेछे कोइकगामडीआनो रहेवासी पुरुषदालिद्रेंपराभव्योथको देशांतरेंजइ भिक्षामांगे पणपुण्यरहितपणाथकी भिक्षानपाम्यो तेवारे फरीपोतानां घरतरफचालवानिकल्यो मार्गमांकोइकगामे पाण पाटकपाशे एकदेवलछे तेमां रात्रेजइसुतो तेदेवलमांथी एकसिद्धचित्रेलुंकामकुंभहाथमांलेइ निकल्यो पछेएक बाजुयेंउभोरही घडानेकहेवालागो हेकुंभइहांमंदिरकर एटलेतिहां मंदिरथयुं एम तिहांशय्यादिक भोगसामग्रीसर्वकीधी पछेस्त्रीसहित रात्रेभोगभोगवी प्रभातेंसर्व संहर्युं तेदेखीने भिक्षुकेचिंतव्युं जेआजलगणहुं फोकट पृथ्वीमांभम्यो हवेजोहुंएसिद्धनेसेवुंतो माहरीसर्वआश्याफले एमचिंतवीते पाणनीसेवाकरी एकदिवशेते पाणप्रसन्नथइबोल्यो जेतुंसुंमागेछे तेवारेभिक्षुंबोल्युं जेताहरापशायथीहुंपण एहवोभोगपामुं पाणेकह्युंतुजने गमेतो एकुंभलेइजा अनेगमेतो एकुंभप्रतिष्ठानी विद्यालेइजा तेवारे भिक्षुकबोल्यो जेहेस्वामीविद्यातो कष्टकरीसाधुं तेवारेंफले तेमाटेविद्यासिद्धकुंभछे तेहिजमने आपो तोकष्टकिधाविनाज भोगसिद्धिपामु पछेतेपाणेघमोआप्यो हवेतेगामडीओघटलेइने घरेंआव्यो घटनेप्रतापें उज्वलघरनीपजावी विविधभोगसामग्री मेलवी पोतानासर्वकुटुंबसहित मनोवांछित विलास भोगववालागो पोताना सज्जनादिकने खेतीप्रमुख आजीविकाना उपाय सर्वमूकाव्या ढोरप्रमुखचतुष्पद सर्वेगो

डीमूक्या एकदिवशे ते ग्रामीणमद्यपाने छाकटोथइने मनमांदर्पधरतो तेविद्याकुंभ खानाउपरलेइने नाचवालागो मद्यपानना परवशपणाथकी घटपडीने भांगीगयो तेथी विद्याये करेलुं वैभव सर्वेमटीगयो पछेग्रामीणकुटुंबसहित आजीविकायें दुःखीथयोथको शोचकरवालागोके हाहाइतिखेदे जोमेघटसिद्धिनी विद्यालीधीहत्ती तोसुखीथात एरीते जेमतेग्रामिकभिक्षु परिभ्रमणकरता दैववशात् कामकुंभपामिने वलीमद्यपाननी परवशताथकी कुंभभांगीनाखीने विद्यानुशोचपाम्यु तेमएजीवपण दुर्लभ जिनधर्म पामिने प्रमादपरवशताथी धर्महारीने कुगतीयेगयोथको धर्मसा मग्रीविना शोचपामे एसातदृष्टांतना सर्वंधजाणवा तेमापहेलापाचदृष्टांततो श्रीउ त्तराध्ययनना सातमा अध्ययनथी तथाछठोदृष्टात पाचमांअध्ययनथी अने सा तमोदृष्टात छठाअध्ययनथी लख्युछे श्लोकमा आद्यशब्दकह्योछे तेथीबीजापण द रिद्रिकुटुंबादिक एहवादृष्टात घणाछे तेग्रंथांतरथी जाणवा.

पतंगभृंगेणखगाहिमीनद्विपद्विपारिप्रमुखाः प्रमादैः ॥ शोच्या यथा स्युर्मृतिवधदुःखैश्चिरायभावी त्वमपीति जंतो ॥ १४ ॥

अर्थ॥हवेवली ग्रंथकार प्रमादीजीवने दृष्टांतेकरी भावीदुःखदेखाडेछे हेआत्मा जेम पतंगीयो तथा भमरो मृग तथा खगके० पारेवाप्रमुखपक्षी तथासर्पअने माछलो तथा हस्तिव्याघ्रइत्यादिक सर्वेजीवते प्रमादजे शब्दादिकविषय तेहनावशथकी मरणसंबं धीदुःखेकरीने शोचनीयथायछे तेमांपतंगते नेत्रनाविषयथी दीपशिखायेमोह्योथको मृत्युपामेछे अने भमरोघ्राणेंद्रियनाविषयथकी कमलमध्येमुझाइमरेछे मृगशब्दविष यथी नादनुमोह्यो पाराधीथकी मरणपामेछे पक्षीशालप्रमुखकणनेलोभे रसनेंद्रियना वशथकी जालमापडेछे सर्पकाननाविषयथी मदुअरनानादनोमोह्यो बधनपामेछे अने मत्स बडिशनामासनीलालचे रसनेंद्रियना वशथीमरेछे हस्तिहस्तणीनामोहथी स्प र्शनेंद्रियनावशे बंधनमरणादिपामेछे व्याघ्रपिंजरामारहेला बोकडानामांसनीला लचे रसनेंद्रियनावशेमृत्यु बंधनादिकपामेछे इत्यादिकबीजापण चित्राप्रमुखना दृ ष्टांतजाणवा तेमाटेहेआत्मा तुपणतेपतंगादिकनीपरे प्रमादनावशथकी चिरकालल गे शोचनीय थाइस ॥ १४ ॥

पुरापि पापैः पतितोसि दुःखराशौ पुनर्मूढ करोपि तानि ॥ मज्ज न्मदापंकिलवारिपूरे शिला निजे मूर्ध्नि गले च धत्से ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादनु पापरूपपणुंदेखाडी तेहनोपरिहारकरेछे हेमूर्खतुपूर्वेपण पा

पेकरीनेजदुःखसमूहमांपड्योछे अनेफरीपण तेहिजपापनेकरेछे तेथीतुंवणाकदिवस हितजलनापूरमां बुडतोथको पोतानामस्तकनेविषे अने गलानेविषे शिलाधरेछे॥ १५

पुनःपुनर्जीव तवोपदिश्यते बिभेषि दुःखात् सुखमीहसे चेत् ॥
कुरुष्व तत्किंचन येन वांछितं भवेत्तवास्तेऽवसरोयमेव यत् ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ हवेजीवने प्रमादपरिहारनुएहिजअवसरछे तेकहेछे हेजीवतुजने फरीफरीने उपदेशकहुंछुं केजोतुंदुःखथीबीहेछे अनेसुखनेवांछेछे तोतुं एवुंकांइक सुकृत करके जेथकीताहरुं वांछेलुंसुख तुजनेमिले अनेतेसुकृतकरवानो अवसर एहिजछे इहांफरीनेउपदेशदीधो माटेपुनरुक्तदोपनही यडुक्तं सज्झायझाणतवज्ञे सहेसुउवएस थुईपयाणेसु ॥ संतगुणकित्तणेसु न हुंति पुणरुत्तदोसाउ ॥ १६ ॥

धनांगसौख्यस्वजनानसूनपि त्यज त्यजैकं न च धर्ममार्हतं ॥
भवंति धर्माद्धि भवे भवे र्थिता न्यमून्यमीभिः पुनरेप दुर्लभः ॥ १७॥

अर्थ॥हवेधर्मनीदुर्लभतादेखाडीने धर्मावसरनेज दृढकरेछे हेजीवतुं धनतथाशरीर अनेसुख तथास्वजनकुटुंब तथाप्राणजे जीवितव्यपणुं तेसर्वनोत्यागकर पणएकश्रीसर्वज्ञप्रणीतजे धर्म तेहनेकोइवारेंपण त्यजीशनही केमकेएधनादिक सर्ववस्तुतेधर्मथकी जतुजनेभवभवनेविषे वांछितमलशे पणधनादिकेकरी जिनोक्तधर्ममलवुं दुर्लभछे १७

दुःखं यथा बहुविधं सहसेप्यऽकामः कामं तथा सहसि चेत्करुणादिभावैः॥
अल्पीयसापि तव तेन भवांतरेस्या दात्यंतिकी सकलदुःखनिवृत्तिरेव १८

अर्थ॥हवेआत्माने अकामदुःखनासहेवाने बदले सकामदुःखसहेवुंते भलुंएमकहेछे हेआत्मातुंजेम अकामके० इछारहित परवशथको बहुविध क्षुधा तृषा वध बंधनादिकदुःखप्रतेसहेछे तेमज जोकरुणादिक जेमैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ एपरिणामेकरीने सकामके० निर्जरानीबुद्धियें तुंदुःखसहनकरे तो तेवाथोडापणदुःखने सहवेकरीने भवांतरनेविषे आत्यंतिकीके० पुनःप्रादुर्भावेंरहित एहवी समस्तदुःखनी निवृत्तिते निश्चयथाय एटले मोक्षपद पामे ॥ १८ ॥

प्रगल्भसे कर्मसु पापकेष्वरे यदाशया शर्म न तद्विनानितं ॥
विभावयंस्तच्च विनश्वरं कृतं बिभेषि किं दुर्गतिदुःखतो न हि॥ १९॥

अर्थ ॥ हवेधर्मत्यजीने आत्मापापकर्ममां निपुणताकरेछे तेआश्रीकहेछे अरेमूर्खजीवतुं सुखनीआस्थायेंकरी पापनाउत्पादकजेकर्म तेहनेविषे प्रगल्भसेके० डाह्यपणकरेछे पण ते धनस्वजनादिकनासुख तो प्राणितके० जीवतव्यविना भोगवायनही

अने ताहरो जीवतव्यतो शीघ्रके० उतावळुं विनाशशीलछे एवीरीतेजाणतोथकोपण तु दुर्गतीनादुःखथी केमबीहितोनथी ॥ १९ ॥

कर्माणि रे जीव करोपि तानि यैस्ते भविव्यो विपदो ह्यनंताः ॥
ताभ्यो भिया तद्दधसे ऽधुना किं संभाविताभ्योपि भृशाकुलत्वं॥२०॥

अर्थ॥वळीप्रकारांतरेतेहिजकहेछे हेजीवजोतु तेहवाज हिंसा मृषावादादिककर्म करेछे जेकर्मकरीतुजने अनंतिआपदाओथाशे तेवारेहमणाजते आपदाओसंभारेथके पण अतिशेभयेकरीने आकुळताकेमपामेछे जोपापनाफळजाणतोथकोपण तुपापकर्मकरवानेप्रवर्त्तेछे तेवारेवळी नरकादिकनादुःखसांभळीनेसावास्ते भयपामेछे निश्चेतु जनेतेदुःखभोगवाजपडशे एमासशयसुछे एभावार्थछे ॥ २० ॥

ये पालिता वृद्धिमिता सहैव स्निग्धा भृशस्नेहपदं च ये ते ॥
यमेन तानप्यदयं गृहीतान् ज्ञात्वापि किं न त्वरसे हिताय॥२१॥

अर्थ ॥ वळीजीवने हीतार्थेनेविषेप्रेरेछे हेजीवजेस्वजन मित्रादिक तथापुत्रादिक तेपाळ्यापोप्या तथाजे तुजसाथेंवृद्धिपाम्या महोटाथया वळीतेताहरा अतिशयस्नेहपात्रथया तेहुनेपण यमराजाये निर्दयपणेग्रस्या तेजाणीनेपणतु आत्महितकरवानेके मउजमाळथतुनथी केमके तेहुनेजो यमेग्रस्यतो तुशीरीतेस्थिररहिस एभावार्थ ॥२१॥

यैः क्लिश्यसे त्वं धनबंध्वपत्य यशःप्रभुत्वादिभिराशयस्थैः ॥
कियानिह प्रेत्य च तैर्गुणस्ते साध्यः किमायुश्च विचारयैवं ॥२२॥

अर्थ ॥ हवेजेतुक्लेशसहेछे तेहथीतुजने काइगुणनथी तेकहेछे हेआत्मन्तु आशयस्थके० केवळकल्पितमात्र एहवाजेधन बंधु स्वजन अपत्यके० संतान तथा यश कीर्ति अने प्रभुत्व स्वामिपणु इत्यादिकनिमित्तेकरी क्लिश्यसेके० कष्टभोगवेछे ते धनस्वजनादिकेरी तुजनेइहभवे तथा परभवे केटलुंक गुणसाधवुछेएटले ते तुजने सुगुणकरसे अनेआकथोते केटलुंकछे एमविचारी धनादिकनु ममत्व करता करताज आयुष पुरोथइजासे अने भवांतरेकोइपण ताहरेकामेआवसेनही ॥ २२ ॥

किमु मुह्यसि गत्वरैः पृथक् कृपणैर्बंधुवपुःपरिग्रहैः ॥ विमृश
स्व हितोपयोगिनो ऽवसरेऽस्मिन् परलोकपांथ रे ॥ २३ ॥

अर्थ॥ हेपरलोकेजनार पंथीजीव तु कृपण दीन सरणदेवाने असमर्थ एहवा अने पृथगत्वरके० जूदाजूदावेराइजासे एहवाजे बंधु स्वजन तथा वपुजेशरीर तथा धनधान्यादिक परिग्रह तेणेकरी सुमुजायछे एकोइपण ताहरासाथें आवेनही एभावा

थईछे माटेएधर्मकरवायोग अवसरनेविषे पोतानाहितोपयोगी परलोकना सहायभूत एहवाजे ज्ञानादिकगुण तेहोने चित्तमांराख ॥ २३ ॥

सुखमास्से सुखं शेषे भुंक्षे पिबसि खेलसि ॥ न
जाने त्वग्रतः पुण्यैर्विना ते किं भविष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवे हमणातुंसुखेविलशेछे पण आगलताहरी सीगतिथासे तेकहेछे हेआत्मातुं हमणापूर्वोपार्जित पुण्यफलना उपायथी सुंसुखेबेशीरहेछे तथासुखेभोजनकरेछे सुखेंमद्यादिकपानकरेछे सुखेंद्यूतादिकेंरमेछे पणआगल परभवें तुजनेपुण्यविना सुंथवानुछे तेसुंनथीजाणतो एटलेपुण्यविना घणुजदुखीयइस ॥ २४ ॥

शीतात्तापान्मक्षिकाकत्तृणादि स्पर्शाद्युत्थात्कष्टतोल्पाद्बिभेपि ॥ ता
स्ताश्चैभिः कर्मभिः स्वीकरोपि श्वभ्रादीनां वेदना धिग् धियं ते॥२५॥

अर्थ ॥ हवेथोडाकष्टथी बीहतोथको घणुकष्टअंगीकारकरेछे तेकहेछे हेआत्मातुं टाढथी तापथी तथामांखीप्रमुख तृण माल्लप्रमुखना स्पर्शादिकथी उपनुंजे अल्पमात्रकष्ट तेथीबीहेछे कायरथायछे अनेएवापापकर्मेंकरीने श्वभ्रके० नरकादिकना प्रकारनीजे महावेदनाओ तेप्रतेअंगीकारकरेछे तोताहरीबुद्धिने धिःकारछे ॥२५॥

क्वचित्कषायैः क्वचन प्रमादैः कदाग्रहैः क्वापि च मत्सराद्यैः ॥ आ
त्मानमात्मन् कलुषीकरोपि बिभेपि धिङ् नो नरकादधर्मा ॥२६॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे हेआत्मातुं किहांक परीषहादिकमां कषायेंकरीने वली किहांक क्रियानुष्ठानादिकनेविषे प्रमादेंकरीने वलीकिहांक उपदेशादिकमां कदाग्रहेंकरीने किहांकगुणवंतनी अनुमोदनानेविषे मत्सरादिकेंकरीने पोतानीआत्माने मलीनकरेछे पणतुंधर्मरहितथको नरकथीबीहितोनथी माटेतुजने धिःकारछे ॥ २६ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे सामान्यतो वैराग्योपदेशाख्यो दशमोधिकार समाप्त.

अथधर्मशुध्युपदेशः ॥ भवेभवापायविनाशनाय तमज्ञधर्मं कलुषीकरोपि किं ॥ प्रमा दमानोपधिमत्सरादिभिर्न मिश्रितं ह्यौषधमामयापहं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेधर्मशुद्धिउपदेशनामें इग्यारमो अधिकारकहेछे तिहांप्रथम धर्मनीशुद्धताज थापेछे जेधर्मते भवके० संसारसंबंधी अपायजे जन्ममरणादिक तेहनो विनाशकरवाने समर्थथाय एहवाधर्मने हेमूर्खआत्मा प्रमादजे मद्यादिक तथामान अहंकार उपधि कपट तथामत्सर इत्यादिकेंकरीने सुं मलीनकरेछे हवेतेउपर दृष्टांतकहेछे हियस्मात्के० मिश्रितऔषध आमयापहंनस्यात् एटले विरुद्धद्रव्येंमिश्रित

जे औषध तेकांइरोगनिवारकनहोय अनेतेमजतेऔषधनीपरे धर्मपणजोप्रमादादि के मिश्रितहोयतो संसारना अपायजे दुःखतेनो निवारकनहोय ॥ १ ॥

यत ॥ शैथिल्यमात्सर्यकदाग्रहक्रुधोनुतापदंभाविधिगौरवाणि च ॥
प्रमादमानौ कुगुरु कुसंगतिः श्लाघार्थिता वा सुकृते मला इमे ॥२॥

अर्थ ॥ हवेधर्मनेविषे मलसरिखाजेटलादोषछे तेटलापूर्वाचार्यना वचनथीदेखाडे छे सुकृतजेधर्मकार्यतेमां शैथिल्यके० धर्मनेविषे अनादरता मात्सर्यके० गुणवंतनेविषे द्वेषनुंरखवुं तथाकदाग्रहके० जूगवचननुंहठ क्रुधके० क्रोध वली अनुतापके० सुकृतकरीनेपछे हाइतिखेदेमें फोकटदानदीधुं फोकटतपस्याकीधी इत्यादिकपश्चात्तापनुं करवुं तथादंभके० कपट अने अविधिके० शास्त्रोक्तविधिये रहित क्रियानुंकरवुं तथागौरवके० हुंमहाधार्मिष्ट इत्यादिक महोटाइनुंचितववुं वलीप्रमादजे धर्ममा असावधानपणुं अने मानजेअहंकार वलीकुगुरुजे लोहशिलातुल्य अने कुसंगतिजे उत्सूत्रभाषी एहवामिथ्यात्वी प्रमुखनोसंग तथा श्लाघार्थिताके० लोकनामुखथी पोतानी कीर्तिनुंवांछवुं एटलाप्रकारेकरी धर्ममलीनथाय धर्मनुंयथोक्तफलनथाय ॥ २ ॥

यथा तवेष्टा स्वगुणप्रशंसा तथा परेषामिति मत्सरोज्झी ॥
तेषामिमां संतनु यल्लभेथास्ता नेष्टदानादिविनेष्टलाभं ॥३॥

अर्थ ॥ हवेआत्मापोतानागुणनी प्रशंसावांछेछे तेआश्रीउपदेशछे हेआत्माजेमतुजने पोतानागुणनी प्रशंसावल्लभछे तेमपरजे अन्यजन तेहनेपणपोताना गुणनीप्रशंसावल्लभछे एहवुंजाणीने मत्सररहितथको तेअन्यजननी इमाके० गुणनीप्रशंसाप्रतें विस्तारीनेकहे जेमतुंपणतेप्रशंसाप्रतेंपामे केमके कोइने वांछितदानदीधाविनापोताने पण वांछितलाभनथाय एटलेपारकागुणनी प्रशंसाकरीयेतो पोतेपण प्रशंसनीयथैये

जनेषु गृह्णत्सु गुणान् प्रमोदसे ततो भवित्री गुणरिक्तता तव॥गृह्णत्सु
दोषान् परितप्यसे चरे भवंतु दोषास्त्वयि सुस्थिरास्तत ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेकेटलाक काव्यनेविषे गुणप्रशंसानीवांछायकी अवगुणदेखाडेछे हे आत्माजोताहरागुण लोकेग्रहणकरवाथका तुंहर्षपामेछे तोतेहर्षपामवाथी ताहरे गुणनी रिक्ततायासे अनेजोलोके अवगुणबोलतेछते तुं परितापके० खेदपामेछे तो तेखेदपामवाथी ताहराविषे अवगुणते निश्चलथइरहेसे तेमाटे गुणकह्याथी हर्ष अनेदोषकह्याथी खेद एवेहुवाना तुंकरीसनही ॥ ४ ॥

प्रमोदसे स्वस्य यथाऽन्यनिर्मितैः स्तवैस्तथा चेत्प्रतिपंथिनामपि ॥
विगर्हणैः स्वस्य यथोपतप्यसे तथा रिपूणामपि चेत्ततोसि वित्॥५॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं जेमलोकनामुखें पोतानागुण स्तवसांभलीने प्रमोदपामेछे तेम शत्रुनापण गुणस्तवसांभलीने जोप्रमोदपामें अने पोताने विगर्हणैः के० अवर्णवादें करीने जेमपरीतापकरेछे तेमजजो शत्रुनापण अवर्णवाद सांभलीने तुंपरीताप करे तेवारें एम जाणियेंजे तुंज्ञाताछो ॥ ५ ॥

अथवा ॥ स्तवैर्यथा स्वस्य विगर्हणैश्च प्रमोदतापौ भजसे तथा चेत् ॥
इमौ परेषामपि तैश्चतुर्ष्वप्युदासतो वासि ततोऽर्थवेदी ॥६॥ इतिवापाठः

अर्थ ॥ वली पाठांतरेकरी एहिजअर्थकहेछे हेआत्मातुंजेम पोतानीस्तुतियेंकरीने तथापोतानेविगर्हणेंकरीने प्रमोदतापौके० हर्षअनेशोकप्रतेभजेछे तेमज पोतानी स्तवना तथा निंदा अने परनीस्तवना तथा परनीनिंदा एचारेनेविषेजो उदासताके० मध्यस्थभावनेभजे तेवारेंतुं अर्थवेदीके० परमार्थनुंजाणछो एमजाणियें एकाव्य पहेलाकाव्यनुं पाठांतरजाणवुं ॥ ६ ॥

भवेन्न कोपि स्तुतिमात्रतो गुणी ख्यात्या न वह्यापि हितं परत्र च ॥
तदिच्छुरीर्ष्यादिभिरायतिं ततो मुग्धाभिमानग्रहिलो निहंसि किं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेआत्माकेवल एकलीस्तुतिमात्रथीज कोइगुणवंतनथाय अनेवली जगतमां ख्यातिकीर्तिजोघणीहोय तोपण तेथी कांइपरभवनुं हितनथाय तेमाटेपरलोकें हितनुंवांछक एहवुंजेतुंते सुधाके० फोकट अभिमानेकरी घहेलोथयो थको ईर्षादिकेंकरीने आयतिजे उत्तरकाल तेहने सावास्ते बगाडेछे एटलेईर्षा करवाथी ताहरो परभवनुंहित विणसीजायछे इतिभाव ॥ ७ ॥

सृजंति के के न बहिर्मुखा जनाः प्रमादमात्सर्यकुबोधविप्लुताः ॥
दानादिधर्माणि मलीमसान्यमू न्युपेक्षशुद्धं सुकृतं चराण्वपि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेदानादिककर्मने जे मलीनकरेछे तेहनेकहेछे हेआत्मा प्रमादजे मद्यादिक पांचप्रकारें तथामात्सर्य एटले पारकीसंपदानी अदेखाइ तथाकुबोधजे मिथ्यादर्शननुं दृष्टिराग तेणेकरी विप्लुतके० पराभव्या एहवा बहिरमुखजे स्वचित्तकल्पित मार्गनास्थापक कुतीर्थकलोकते मलीमसके० महाआरंभादिकें दूषत एहवादानप्रमुख ते धर्मकार्यमां कोणकोणनथीकरता अर्थात्मिथ्यात्वीलोकपण सर्वपो

तपोताना मननीरुचिये दानप्रमुख धर्मकार्यकरेछे पण तेप्रमादादिके दूषितथका य थोक्तफलदायकनथाय तेमाटेतेमलीन धर्मकार्य ऊवेषीने थोडुपण शुद्धधर्मकर ॥८॥

आच्छादितानि सुकृतानि यथा दधंते सौभाग्यमत्र न
तथा प्रकटीकृतानि ॥ व्रीडानताननसरोजसरोजनेत्रा
वक्षःस्थलानि कलितानि यथा दुकूलै ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रशंसारहितधर्मनुं विशेषफलदेखाडेछे इहांश्रीजिनशासननेविषे आ छादितके० प्रशसानेढांक्याथका एटलेजेप्राणी प्रशसायेरहित थका एहवाजे सुकृत के० धर्मकार्य तेथीजेहवी सुजगतानेपामे तेहवी प्रकटितके० जेसुकृतकरीने लोक आगलें प्रशंसाकरावे ते सुजगतानेनपामे तेहनुंदृष्टांतकहेछे जेम व्रीडाजेलज्जा ते णेकरीने नतके० नम्रछे आननसरोजके० मुखकमलजेहनुं एहवीजे सरोजनेत्राके० कमलनयना एटले उत्तमस्त्री तेहना वक्षःस्थलजे स्तनमडलते डुकूलजे वस्त्रतेणेकरी सहितथका जेहवी सुजगताप्रतें पामे तेहवा उघाडाथका सुजगताप्रतेंनपामे ॥९॥

स्तुतैः श्रुतैर्वाप्यपरैर्निरीक्षितै र्गुणस्तवात्मन् सुकृतैर्न कश्च न ॥
फलति नैव प्रकटीकृतैर्भवो द्रुमा हि मूलैर्निपतंत्यपि लध ॥१०॥

अर्थ ॥ हेआत्मा ताहरासुकृतजे धर्मकार्य ते अन्यलोके स्तुतके० वखाणेथके तथा अन्यलोके सानलेथके तथा अन्यलोकेदेखेथके तेथीतुजने कोइगुणनथी तेउ परदृष्टातकहेछे जेमभूमीमाहेथी मूलप्रगटकरेछते डुमजेवृक्षतेफलेनहीपण उलटाहे ठापडे तेम सुकृतपण उघाडाकरयाथका फलदायक न थाय ॥ १० ॥

तपःक्रियावश्यकदानपूजनै शिवं न गता गुणमत्सरो जनः ॥
अपथ्यभोजी न निरामयो भवेद्रसायनैरप्यतुलैर्यदातुरः ॥११॥

अर्थ ॥ हवेगुणवतनुं मत्सरकरवुनिषेधेछे गुणजेपारका तपसंयमदानादिक तेह नेविषे मत्सरनुकरनार एहवोजे मनुष्यते तपतथाक्रिया जे आवश्यक दान तथापूजन जे जिनबिंब पुस्तकप्रमुखनीपूजा इत्यादिक सर्वप्रकारेंकरीपण मोक्षपामेनही तेउपर दृष्टांतकहेछे जेम आतुरजे रोगीपुरुषते अपथ्यभोजन करतोथको अनोपम महामू ला एहवाजे रसायन पारदादिक औषध तेणेकरी रोगरहितनथाय इहां रोगीतेआ त्मा अने तपप्रमुखते रसायण अनेगुणवतउपर मत्सरते अपथ्यभोजन तथा मुक्ति ते निरोगता जाणवी एउपनयकहु ॥ ११ ॥

मंत्रप्रभारत्नरसायनादि निदर्शनादल्पमपीहि शुद्धं ॥ दाना
र्चनावश्यकपौषधादि महाफलं पुण्यमितोन्यथाऽन्यत् ॥१२॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरे तेहिजकहेछे इहांश्रीजिनशासनमां दान देवपूजा आवश्य क पोसहप्रमुखजे पुंण्य तेथोडुंपण शुद्ध दोषरहितकीधोहोयतो मंत्रजे जांगुलीप्र मुख तथा रत्नजे सूर्यकांत चंद्रकांतादिक तथा रसायनजे पारादिक तेहनीपरें म हाफलकारीथाय जेममंत्रथोडाअक्षरनुंहोय तोपण विषप्रहारादिकनेहरी महागुणक रे तथासूर्यकांतादिक रत्नन्हानुंहोयतोपण महाप्रकाशकरे अने रसायणथोडुंपण म होटारोगहरे तेमदोषरहितपुण्यजो थोडुंहोयतोपण महाफलदायकथाय अनेतेहथी विपरीतजे अशुद्धपुण्यकार्य तेअन्यथाके० घणुंहोयतोपण अल्पफलदायकथाय॥१२॥

दीपो यथाल्पोपि तमांसि हंति लवोपि रोगान् हरते सुधायाः ॥
तृणं दहत्याशु कणोपि चाग्नेर्धर्मस्य लेशोप्यमलस्तथांहः ॥१३॥

अर्थ ॥ जेमदीपक अल्पके० न्हानोहोयतोपण अंधकारटालेछे वलीजेम अमृ तनो एकबिंदुमात्रतेपण सर्वरोगनेहरे वलीजेम अग्नीनुंएककणीयुंमात्रतेपण तृणा नेबालीनाखे तेमनिर्मलदोषरहित एहवोधर्मनुं लेशमात्रतेपण पापनेटाले ॥ १३ ॥

भावोपयोगशून्याः कुर्वन्नावश्यकीः क्रियाः सर्वाः ॥
देहक्लेशं लभसे फलमाप्स्यसि नैव पुनरासां ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ हवेसर्वक्रियानी सफलताते भावसहितकरवाथीजहोय तेकहेछे हेआ त्मातुं भावजे श्रद्धा तेहनाउपयोगेंकरी शून्यके० रहित एहवासर्वए अवश्यकरवा योग्य जे पडिकमणुं पडिलेहणप्रमुखक्रिया तेप्रते करतोथको पणतेथीकेवल शरीरने क्लेशमात्रउपजाववुं तेहिजफलपामेछे पणतेक्रियानुं मुख्यफलजे मोक्षलक्षण तेसर्व थानहीजपामे केमके भावथकी शून्यक्रियाजो घणीकरीतोपण निःफलथाय ॥ १४

इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे धर्मशुद्ध्युपदेशाख्य एकादशोऽधिकार समाप्त ॥ ११ ॥

अथ श्रीदेवगुरुधर्मशुद्धिमधिकृत्य किंचिदुपदेशः ॥

तत्वेषु सर्वेषु गुरुः प्रधानं हितार्थधर्मा हि तदुक्तिसाध्याः॥
श्रयंस्तमेवेत्यपरीक्ष्य मूढ धर्मप्रयासान् कुरुषे वृथैव ॥१॥

अर्थ ॥ हवेबारमेंअधिकारें देव गुरु धर्म एत्रणतत्वनीशुद्धिकहेसे तिहांप्रथमतो जो शुद्धगुरुमले तोज शुद्धदेव तथाशुद्धधर्मपामियें तेमाटेप्रथम गुरुतत्वनी शुद्धि कहेछे हेआत्मासर्वतत्वमां मुख्यतत्वते गुरुछे केमके हितार्थीके० मोक्षनेअर्थें धर्म

साधवोह्योयतो ते गुरुनावचनथकीलधाय तेमाटेतुं मूढथको परीक्षाकर्याविनाज गुरुने आश्रयतोथको धर्मनेनिमित्तेजे प्रयासकरेछे तेवृथाके० फोकटछे ॥ १ ॥

भवी न धर्मैरविधिप्रयुक्तै र्गमी शिवं येषु गुरुर्न शुद्धः ॥
रोगी हि कल्पो न रसायनैस्तै र्येषां प्रयोक्ता भिषगेव मूढः॥२॥

अर्थ ॥ हवेगुरुअशुद्धहोयतोधर्मपण अशुद्धथाय तेकहेछे भवीजे संसारीजीव तेणे अविधियेकीधाएह्वाजे दानादिकधर्म तेह्थीजीव मोक्षगामीनथाय केमकेजे धर्मनेविषे शुद्धके० निर्दोषपणुं नथी तेधर्मवृथाछे तेउपरदृष्टांत कहेछे जेमरसायननुं करनार वैद्यते गुणागुणनुं अजाणमूर्खहोयतो रोगीपुरुष ते रसायनेकरी निरोगीन थाय तेमइहांरोगी तेआत्मा औषधतेधर्म मूर्खवैद्य ते कुगुरु जाणवो ॥ २ ॥

समाश्रितस्तारकबुद्धितो यो यस्यास्त्यहो मज्जयिता स एव ॥
ओघं तरीता विषमं कथं स तथैव जंतुः कुगुरोर्भवाब्धिं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुअने कुतारकनुंदृष्टांतकहेछे जेप्राणिये तारकबुद्धियेंकरीने तारकनेआश्रयोछे अनेतेतारकज आश्रीतप्राणीने बुडाडनारहोय तोतेप्राणी विषमदुस्तर एह्वो उघजे समुद्रनापाणीनो प्रवाह तेशीरीतेंतरसे तेमज जेथकी तरवानीआशाराखिये तेहिज जेवारें बोडे तिवारें समुद्रनुं पारते केमपामिये तेमज कुगुरुथी भवसमुद्रपण जाणवु केमके जेगुरुप्रतें तारकजाणीने ससारसमुद्र तरवानी आशायें तेहने आश्रयिये अनेतेगुरुतो उन्मार्गने देखाडवेकरी आश्रीतप्राणीने ससारसमुद्रमा बोडे तेवारे ते प्राणी ससारसमुद्रनो पारकेमपामे एभावार्थछे ॥ ३ ॥

गजाश्वपोतोक्षरथान् यथेष्टपदाप्तये भद्र निजान् परान् वा ॥
भजंति विज्ञाः सुगुणान् भजैवं शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान् ॥४॥

अर्थ ॥ तेमाटेशुद्धदेवगुरुधर्मने आदरवुतेकहेछे जेमविज्ञजे निपुणपुरुष तेवांछितस्थानके पहोचवानेअर्थें पोताना अथवापारका हाथी घोडा तथा वाहण उछ बलद रथ तेआपआपणेगुणेसहितसुलक्षणाजोइने आदरे केमकेजो निर्लक्षण वाहन होयतो तेहथीवांछित स्थानकेपहोचायनही माटेहेसरलप्राणी एरीतेंतुपण मोक्षस्थानक पामवानेअर्थे शुद्धगुणोपेत एवाजे देव गुरु धर्मतेप्रतेंभज जेथकीमोक्षपदपामे

फलाद्वृथाः स्युः कुगुरूपदेशात कृताहि धर्मार्थमपीह सूद्यमाः ॥
तद्दृष्टिरागं परिमुच्य भद्र हे गुरुं विशुद्धं भज चेद्धितार्थ्यसि ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुनाउपदेशयाधर्म फलदायकनहोय तेकहेछे इहांश्रीजिनशासनने

विषे कुगुरुनाउपदेशथकी धर्मनेअर्थेपणजे जलाउद्यमकरेलाहोय तेफलदायकनथाय माटेहेजइकजोतुं मोक्षफलनोअर्थीहो तोदृष्टिरागछांमीने शुद्धपरुपकगुरुनेजज ॥५॥

न्यस्ता मुक्तिपथस्य वाहकतया श्रीवीर ये प्राक् लयालुं
टाकास्लदृतेऽनवन् वहुतरास्त्वच्छासनं ते कलौ ॥ विभ्रा
णा यतिनाम तत्तनुधियां मुष्णंति पुण्यश्रियः फूत्कुर्मः
किमराजके ह्यपि तलारक्षा न किं दस्यवः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतेकरी कुगुरुनीदुष्टताकहेछे हेश्रीमहावीर पूर्वेतुमेजे सुधर्मास्वामिप्रमुख मोक्षमार्गना चलावनारामूक्याहता तेपछे कलियुगमां तुजविना ताहराशासननेविषे पट्टपरंपरा सुविहिताचार्यथी अलगाथइने पोतानाकुमतने प्रवर्त्तावेवेकरीने लूंटाकके० लूंटाराथया हवेतेहनुं लूंटारापणुंकहेछे जेजणी तेयतिनामधरावताथका स्वल्पबुद्धिलोक जेकुगुरुनीपरिक्षाकरीसकतानथी तेहोनी पुण्यरूपजे लक्ष्मीतेप्रतें लूंटेछे एहवातेउत्सूत्रनाषनार कुगुरुनीवाततो अर्थिजीव किहांजइपोकारे केमकेविशेषज्ञानीविना पोकारकयानुं कोइगामनथी एटले अराजकके० राजानेअनावें तलारक्षकजे कोटवाल तेपणचोरनथायसुं एटलेराजानंहोय तेवारेजे रखवालाहोय तेहिजचोरीकरे तेमइहांराजाते श्रीवीरपरमात्मा तेनोमार्गे प्रवर्त्तकतेसुधर्मादिकगणधर अराजकतेकलिकाल लूंटाकते कुमतना प्रवर्त्तक इत्यादिक उपनयजाणवुं ॥६॥

दमाद्यस्य शुद्धिर्गुरुदेवधर्मे धिंग् दृष्टिरागेण गुणानपेक्षः ॥
अमुत्र शोचिष्यसि तत्फले तु कुपथ्यनोजीव महामयार्त्तः॥७॥

अर्थ ॥ हवेअशुद्धदेवगुरुधर्मपामिने हर्षधरेनहीतेकहेछे हेआत्मातुं अशुद्धदेवगुरुधर्मप्रतेंपामवाथकी गुणनीअपेक्षारहितथयोथको दृष्टिरागेंकरी हर्षपामेछे तेमाटेतुजने धिःकारछे पण जेवारें तेहनुंफल उदयआवशे तेवारेंतुंनरकादिकनेविषे घणो शोचपामिस तेहनुंदृष्टांत कहेछे जेम महारोगीओ पुरुष स्वादना वशथकी कुपथ्यनोजन करीने पछेरोगवधेतिवारें घणु शोचकरे तेमतुंपण दृष्टिरागें करी कुगुरुकुदेवकुधर्म सेवीने पछे दुर्गति पामेयके घणुसोचपामिस ॥ ७ ॥

नाम्रं सुसिक्तोपि ददाति निंबकः पुष्टा रसैर्वंध्यगवी पयो न च ॥
दुःस्थोनृपो नैव सुसेवितः श्रियं धर्मं शिवं वा कुगुरुर्न संश्रितः ॥८॥

अर्थ॥ हवेकुगुरुनीसेवा शुनफलनीदेनारीनथाय तेकहेछे जेमलिंबडोजलीपरें सीच्योथकोपण आंबानुंफलनआपे तथारसजे घीतेलप्रमुख पुष्टकारीवस्तुथकीपणवांज

णीगायकांइ ऊधआपेनही वलीदेशभ्रष्टविषमअवस्थानेपाम्यो जेराजातेने नलीपरेसे व्योथकोपण लक्ष्मीनआपे तेमकुगुरुनेपण सेव्योथको धर्म अथवा मोक्षप्रतेनआपे ८

कुल न जातिः पितरो गणोवा विद्या च बंधुश्च गुरुर्धनं वा ॥
हिताय जंतोर्न परं न किंचित् किलादृताः सद्गुरुदेवधर्माः ॥९॥

अर्थ ॥ हवेसर्वपदार्थथी देवगुरुधर्मअधिकछेतेते कहेछे जतुके० जीवने कुलजेइ क्ष्वांगकुलप्रमुख तथाजातिजे मातानुंपक्ष पितरके० पितामहप्रमुख तथागणजे स रखासरखामित्रनीटोली तथाविद्याते षमंगीप्रमुख तथाबंधुजे स्वजन वलीगुरुजे कु लविद्यानुंअध्यापक अने धनतेसुवर्णादिक तथाबीजाजेकाइ देश ग्राम मदिरप्रमुख तेसर्व हितायके० परलोकना हितनेअर्थेकोइथायनहीपण सत्के० शुद्धएहवा देव गुरुअनेधर्म एत्रणनेआदरयाथका परलोकनाहितने अर्थेथाय ॥ ९ ॥

माता पिता स्वः सुगुरुश्च तत्वात् प्रबोध्य यो योजति शुद्धधर्मे ॥
न तत्समोरिः क्षिपते नवाब्धौ यो धर्मविघ्नादिकृतेश्च जीवं॥१०॥

अर्थ ॥हवेजेशुद्धधर्ममाजोमे तेपुरुषनीप्रशसाकरेछे जेपुरुपजेहने तत्वदेखाडी प्र तीबोधपमाडी अनेशुद्धधर्ममाजोडे तेहनेतेहिजपुरुप माता तेहिजपिता तेहिजस्वज न अनेतेहिज गुरुजाणवु अनेजेजीव हरेकप्राणिने धर्मनुंअंतरायादिक करीने संसा रसमुद्रमांनाखेतो तेसरिखोतेनोकोइ बीजो शत्रुनथी ॥ १० ॥

दाक्षिण्यलज्जे गुरुदेवपूजा पित्रादिभक्तिः सुकृताभिलाप ॥
परोपकारी व्यवहारशुद्धि नृणामिहामुत्र च संपदे स्यु ॥११॥

अर्थ ॥ हवेपुरुपने सपदानाकारण केटलाछे तेकहेछे दाक्षिणताजे अनुकूलता तयालज्जा अनेदेवगुरुनीपूजा तथापितामाता काकोकाकी महोटाभाई इत्यादिकजे कोइ गुरुस्थानकियाहोय तेहनीभक्ति तथापरनेउपकारनुं करवु तयाव्यवहारशुद्धते लहेणादेवामा साचापणुराखवु एटलाप्रकार तेपुरुषने इहलोके अथवापरलोके प ण सपदादेवाना कारणभूतथाय ॥ ११ ॥

जिनेष्वभक्तिर्यमिनामवज्ञा कर्मस्वनौचित्यमधर्मसंग ॥
पित्राद्युपेक्षा परवंचनं च सृजंति पुंसां विपद समतात्॥१२॥

अर्थ ॥ हवेपूर्वोक्तप्रकारेथी विपरीतपणे प्रवर्त्तता प्राणीने आपदाहोय तेकहेछे जिनभक्तिरहितपणु तथासाधुनीअवगणना अने कर्मजे साधुअने श्रावकनीक्रिया तेहनेविषे अनुचितपणु तथा अधर्मजे धर्मरहित एहवानष्टविष्ट नास्तिकप्रमुख अ

थवाविरुद्धधर्मिते मिथ्यात्वी कुमतिप्रमुख तेहनीमित्राइते विवाहव्यापार प्रमुखेंकरी परिचयकरवुं तथापिताप्रमुखनी अवगणना अनेपरने कुमालेख कुमानामा कुडा माप कुडातोलप्रमुखेंकरीने वगवुं एटलासर्वप्रकारेंकरी पुरुषनेआपदाउपजे ॥ १ २॥

भक्त्यैव नार्चसि जिनं सुगुरोश्च धर्मं नाकर्णयस्यविरतं विरतिर्न धत्से ॥

सार्थं निरर्थमपि च प्रचिनोष्यघानि मूल्येन केन तदमुत्र समीहसे शं१३

अर्थ॥ वलीप्रकारांतरेकहेछे हेआत्मातुं भक्तियेंकरी जिनपूजाकरतोनथी अने कदापिपूजेछेतोपण कुलकर्मादिक परवशपणाथकी पूजेछे पणभक्तिथीपूजतोनथी तथासद्गुरुपासेथी धर्मसांभलतोनथी तथानिरंतर अढारपापस्थानक पन्नरकर्मादान प्रमुखथीसंवरनुंकरवुं इत्यादिकविरतीपणुं तेपणनथीआदरतो तथासार्थकके० पोताने अथवाकुटुंबादिकनेअर्थे अनेनिरर्थकके०स्वार्थविनापण अपध्य अनाचरित पापोपदेश हिंसाप्रदान प्रमादाचरित एपांचप्रकारेंकरी कारणविना पापोमेलवेछे तोपरलोकें तुं शामूलेंकरी सुखनी वांछाकरेछे इहां मूलरूपते पुण्यजाणवु ॥ १३ ॥

चतुष्पदैः सिंहइव स्वजात्यैर्मिल न्निमांस्तारयतीहि कश्चित् ॥

सहैव तैर्मज्जति कोपि दुर्गे शृगालवच्चेत्यमिलन् वरं सः ॥१४॥

अर्थ ॥ हवेसुगुरुनेसिंहनीउपमा अनेकुगुरुने सीयालनीउपमाकहीने उपदेशछे पोतानीजातीनाजे चतुःपदमृगप्रमुख तेसाथेंमल्या सिंहनीपरें एसंसारमांजे सद्गुरु तेपोतानी जातीना भव्यपंचेंद्रियसंज्ञीमनुष्यइत्यादिकसाथें मल्योथको आश्रीतजीव नेतारे जेमसिंहनिजाश्रितचतुःपदने कूपगर्त्तादिकथीतारे तेमसुगुरुपण निजाश्रितभव्यजीवने संसारसमुद्रथीतारे अनेकुगुरुतेसीयालनीपरें स्वजातीयजे मनुष्यादिक अनेविजातीयजे चतुःपद तेहनेसाथेंलेइजइने दुर्गजेनरकप्रमुख वलीदुर्गजे कूपादिकते मांबुडाडे तेमाटेजेकुगुरुतेनमल्योथकोजसारो जेमपंचाख्यानमां कोइकवनमां बीजा वाघसिंहादिकनुंभयटालवाने अर्थे सर्वचतुःपदेंमली एकबलवंतसिंहने राजाकरी थाप्यो अनेसर्वचतुःपद तेहनीसेवाकरवालागा एकदिवसेतेवनमां अग्नीलागी तेवारें तेसर्वचतुःपद सिंहनेसरणेगया तेसर्वनेसिंहेपोताने पुंछडेवलगाडी एकफालेकरी कोइकमहानदी उतरीपहेलेपार पहोचाड्या वलीकेटलाकदिवसे दावानलमिटयो वन नवपल्लवथयुं तेवारेंतेसर्वचतुःपदने पाछापोतानेगामे पहोचाड्या एहवोते सिंहनोपराक्रमदेखी कोइकदुर्बुद्धिसीयालेंपण केटलाक हीनसत्व निर्भाग्य ससलाप्रमुखजीवने पोतानासेवककीधा वलीकालांतरें दवलागो तेवारे सीयाले निजाश्रित सर्वचतुःपदने

पुछडेवलगामी फालनरीनदी उतरवा लागो तेवारे सर्वजीवसहित पोतेपण अ गाधजलमाबुड्यो इहांसिंहते सुगुरु अनेसीयालते कुगुरु महानदीते दुर्गति अने आश्रितजीवते धर्मार्थी मनुष्य एमउपनयलेवो ॥ १४ ॥

पूर्णे तटाके तृपितः सदैव भृतेपि गेहे क्षुधित स मूढः ॥ क ल्पद्रुमे सत्यपि ही दरिद्रो गुर्वादियोगेपि हि य प्रमादी ॥१५॥

अर्थ ॥ हवेगुर्वादिकनु योगछतेप्रमाद करवुनही तेदृष्टांतदेइनेकहेछे निश्चेकरीजे प्राणी देवगुरुधर्मनुं योगछतेपण प्रमादवतथायछे तो हाहाइतिखेदेतेप्राणी भरयातला वेपण सदाइतरस्योछे वली ते पुरुष सुखडी प्रमुखे भरयायका घरमा पण भुख्योछे वली घरमाछते कल्पवृक्षे पण दरिद्रीछे तेमाटे गुर्वादिकनो योगछते प्रमादत्यजीने धर्मसाधनकरवु तेहिजसार्थकछे ॥ १५ ॥

न धर्मचिंता गुरुदेवभक्ति र्येषां न वैराग्यलवोपि चित्ते ॥ तेषां प्रसूक्लेशफलः पशूना मिवोद्भवः स्यादुदरंभरीणां ॥ १६ ॥

अर्थ ॥हवेप्रकारांतरेतेहिजकहेछे आजमेशु धर्मकीधो अनेहवे नित्य प्रत्येशोधर्म करवानुंछे एहवीजेने विचारणानथी यदुक्तं उत्थायोत्थाय चिंतेय किमद्य सुकृत कृत॥ आयुष खंडमादाय रविरस्तमयं गत ॥१॥ तथा जेने गुरुअने देवनीभक्तिनथी वली वैरागनुंलेशमात्रपणनथी एहवाजेपेटभराप्राणी तेहोनुंजन्मते पशु श्वान कुतराप्रमु खनीपरे केवल माताने गर्भधारणादिकक्लेश करवामात्रज फलहोय ॥ १६ ॥

न देवकार्ये न च संघकार्ये येषा धनं नश्वरमाशु तेषा ॥ तदर्ज नाद्यैर्वृजिनैर्भवाब्धौ पतिष्यतां किं लवलवनं स्यात् ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रकारांतरे सुपात्रेधनवावरवानी सफलतादेखाडेछे जेधनवतप्राणीनुं धन देवकार्यजे प्रासादकरावववा अथवाजीर्णोद्धार बिंबप्रतिष्ठा इत्यादिकनेविषे तथा संघकार्यजे चतुर्विधसंघनुंपोषवु तथासाधर्मिनीवत्सलताते हीन अने दीनजे साधर्मि कहोयतेनीचिंताकरवी तथा पुस्तकलखववा इत्यादिक कार्योमाउपयोगीनहोय तेप्रा णीनुं विनाशशील एहवुजेधन तेउपार्जनादिकनापापेकरी संसारकूपमापडताने तेधन सुंकाइ आधारभूतथाय अर्थातकाइनथाय एटलेसुपात्रेंव्ययविना अन्यथाकोइकामेना वे॥१७इ॥ति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमेदेवगुरुधर्मशुद्धीनामा द्वादशोधिकार समाप्त॥१२॥

ते तीर्णा भववारिधिं मुनिवरास्तेभ्यो नमस्कुर्महे येषां नो विषयेषु गृध्यति मनो नो वा कषायैः प्लुतं ॥ रागद्वेषविमुक्प्रशांतकलुषं साम्याप्तशर्माद्वयं नित्यं खेलति चात्मसंयमगुणाक्रीडे भजद्भावनाः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेयतिशिक्षोपदेशनामा तेरमोअधिकारकहेछे तेमांप्रथमयतिनुं स्वरूपकहेछे जेमुनीनुंमन विषयमां आसक्तपामतुंनथी तथाक्रोधादिककषायमां व्याप्तुं नथी एहवाजेमहानुभाव संसारसमुद्रथीतर्या तेहनेनमस्कारकरियेंछैयें जेमुनिराज रागद्वेषेंरहित थइने कलुषताजे पापाचरणतेहने शांतपमाड्योछे वलीसमतायेंकरी अनुपमसुखपाम्योछे एहवुंथइने पांचमहाव्रतनी पचवीसभावना तथा अनित्यादिक बारभावनानेभजेछे वलीजिनप्रणीतजे संयमनागुण क्षमादिकरूप उद्याननेविषे खेलेछे एहवुंजेहनुंमनहोय तेहनेज तत्वथकी मुनिकहियें एभावार्थछे ॥ १ ॥

स्वाध्यायमादित्ससि नो प्रमादैः शुद्धा न गुप्तीः समितीश्च धत्से ॥ तपोद्विधा नार्जसि देहमोहा दल्पे हि हेतौ दधसे कषायान् ॥२॥ परीसहान्नो सहसे न चोप सर्गान्न शीलांगधरोपि वाऽसि॥तन्मोक्षमाणोपि भवाब्धि पारं मुने कथं यास्यविशेषमात्रात् ॥३॥ युग्मं ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुनावेषमात्रथकीज अर्थसिद्धिनथाय तेकहेछे हेमुनितुंप्रमादेंकरीसिज्झायध्यानकरवा वांछतोनथी तथाशुद्धनिर्मल मनादिकत्रणगुप्ति अने ईर्यादिकपांचसुमतीने धारणकरतोनथी वलीशरीरनामोहथी बाह्यअभ्यंतर बेप्रकारेंतपपण करतोनथी तथाथोडोपण कषायनुंकारणउपनाथी कषायधरेछे ॥ २ ॥ तथाक्षुधादिक बावीसपरिसह अने देवता प्रमुखनाकरेला उपसर्ग तेप्रतेंनथीसहेतो तथा अढारसहस्रस्वरूप शीलांगरथने पणधरतोनथी अनेकेवल वेषमात्रथीज मोक्षनेवांछेछे पणएरीतेंतोतुं संसारसमुद्रनोपारकेमपामीस ॥ ३ ॥ एबेकाव्यनोअर्थ एकठोछे.

आजीविकार्थमिह यद्यतिवेषमेव धत्से चरित्रममलं न तु कष्टभीरुः॥ तद्वेत्सि किं न न बिभेति जगज्जिघृक्षुर्मृत्युः कुतोपि नरकश्च न वेषमात्रात् ४

अर्थ॥वलीतेहिजकहेछे हेसाधुतुंआसंसारमां आजीविकानेअर्थें जे यतिनोवेषधरेछे अनेकष्टकरवाथी बीहितोथको निर्मलनिरतिचार जेचारित्रतेप्रते धरतोनथी तो तेवारें तुं एमकांनथीजाणतो जे जगतनुंग्रासकरनार एहवोजेमृत्युते कोइथीबीहतोनथी वलीसाधुनोवेषमात्र धर्योथकी तो नरकपणबीहितोनथी एटले मृत्यु अने नरक एबेवाना सर्वथा तुजनेआवशेज पण ताहाराथी डरसेनही इतिभाव ॥ ४ ॥

वेषेण माद्यसि यते चरणं विनात्मन् पूजां च वांछसि जनाद्बहुधोपधिं च॥
मुग्धप्रतारणभवे नरके ऽसि गंता न्यायं बिभर्षि तदजागलकर्तरीयं॥५॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुचारित्रविना यतिनेवेषेकरीहर्षपामेछे अनेलोकथकी बहुप्रकार नीपूजा वंदन सत्कारप्रमुख तथाउपधिजे वस्त्रपात्र पुस्तकादिकप्रतेवांछेछे पणपछेतु एमुग्धलोकने प्रतारणके० कपटक्रियाये ठगाइकरी तेहथीउपार्ज्योजेनरकतिहांज रहीश तेमाटेतु अजागले कर्त्तरीना न्यायप्रतेधरेछे जेमकोइ खाटकिये एकबकरीहण वानेअर्थे वधकरवानेस्थानकेआणी कातीयेधारचडावी सज्जकरी तेबकरीनेपासेका तिमूकी एटलामांकोइकामनेअर्थे पोतेघरमांगयो पछवाडेबकरीये पोतानापगेकरीनू मीखोदितेमाकातिदाटी नेविचार्युजे रखेखाटकीआवेतिवारेदेखे एमजाणीतेहनाउ परसुती दैवयोगथी कवतलेकातीनीधारआवी तेथीगलुदवाइगयु अनेमृत्युपामि तेमहे आत्मातुंपण तेबकरीनीपरे अज्ञानीथइने कातीरूपनरकने ढांकिराखेछे पणतेअवश्य नाविपणाथी उदयआव्याविना रहेसेजनही तेमाटेप्रथमथीज अज्ञानत्यजीने साव धानरहेजे एन्यायग्रंथांतरे बीजेप्रकारेपण लख्युछे ॥ ५ ॥

जानेऽस्ति संयमतपोभिरमीभिरात्मन्नस्य प्रतिग्रहभरस्य न निष्क्रयोपि ॥
किंदुर्गतौ निपततः शरणं तवास्ते सौख्यं च दास्यति परत्र किमित्यवेहि॥६

अर्थ ॥ हेआत्माएलोकरंजन निमित्तेजे संयमतथातप तेणेकरीने गृहस्थोपा सेथी अहार औषध वस्त्रपात्रादिकनुंलेवुं ते तो संयमतपादिकना समूहनु वक्रयके० मूलपणनथयुं तेवारेतुजने दुर्गतिमापड़ता शरणतेसुंछे अनेपरलोके सुखतें कोणआ पसे तेविचारीजो एतोलोकोनाप्रतिग्रहनुं मूलमात्रपण ताहरुंसुकृतनथी माटेतुजने नरकेपडता उद्धार अनेपरलोकनेविषे सुखतेशाथकीथासे एभावार्थछे ॥ ६ ॥

किं लोकसत्कृतिनमस्करणार्चनाद्यै रे मुग्ध तुष्यसि विनापि विशुद्धयोगान्
कृंतन् भवांधुपतने तव यत्प्रमादो बोधिद्रुमाश्रयमिमानि करोति पर्शून्॥७

अर्थ ॥ हवेलोकसत्कारादिकदेखी राचवुनहीतेकहेछे हेमूढआत्मा शुद्धनिर्मल दोषरहित एहवाजे मनवचनकायानायोग तेविनालोकोनो सत्कारजे अभ्युत्थाना दिक तथानमस्कारवंदना अर्चना जेनवांगपूजा विलेपनादिक तेणेकरीने सुहर्षपामे छे केमकेएप्रमादते ताहरेसंसारकूपमा पडताबोधरूप वृक्षनाआलंबनने छेदवाने ए लोकसत्कारते कुहाडारूपछे एटलेताहरोप्रमादरूपवैरीते तुजने संसाररूपकुवामां

नारखवासारुं बोधआलंबनरूपवृक्षने लोकसत्काररूप कुहाडेकरीछेदेछे एटलेहमणा तो सत्कारपामिमनमां हर्षधरेछे पणआगले बोधपामवो दुर्लभथासे ॥ ७ ॥

गुणांस्तवाश्रित्य नमंत्यमी जना ददत्युपध्यालयभैक्ष्यशिष्यकान् ॥
विना गुणान् वेषमृषेर्बिभर्षि चेत् त तष्ठकानां तव भाविनी गतिः॥८॥

अर्थ॥हेसाधो धर्मार्थिलोकतो तहारागुणआश्रीने तुजनेनमेछे तथा उपधि वस्त्र पात्रादिक आलय वस्ति भैपज अन्नपानादिक अनेशिष्य तुजनेआपेछे अनेतुंजोगुण विनाज मात्र वेषधरेछे तेवारे ताहरीधूर्त्तनी गति थाशे जेमठगारा कृत्रिम नवानवा वेष करीलोकना धनठगीलिये पछेकोइकदिवसें तेहनाविपाकथी वध बंधनादिक पामे तेम ताहरा हवालपण तेहनीपरे थासे ॥ ८ ॥

नाजीविकाप्रणयिनी तनयादिचिंता नो राजभीश्च भगवत्समयं च वेत्सि॥ नो राजभीर्धरसि वाऽऽगमपुस्तकानि इत्यपि पाठः॥शुद्धे तथापि चरणे यतसे न भिक्षो तत्ते प्रतिग्रहभरो नरकार्थमेव ॥९॥

अर्थ ॥ हवेसाधुपणानुं सुखदेखाडेछे हेभिक्षुकतेंघरबारपरिग्रहतोमूक्या माटे आजीविका तथापुत्रादिकनी चिंतानथी तेमराजासंबंधीभयपणनथी वलीजिनप्रणीत सिद्धांतपणजाणेछे अथवाजैनसिद्धांतना पुस्तकधरेछे तोपणशुद्धचारित्रनेविषे उद्यमकरतोनथी तेवारेताहरुं वस्त्रपात्रादिकनुंलेवुं तेहनुंभारते नरकनेअर्थेंजछे ॥९

शास्त्रज्ञोपि दृढव्रतोपि गृहिणीपुत्रादिबंधोज्झितोप्यंगी यद्यतते प्रमादवशगो न प्रेत्य सौख्यश्रिये॥तन्मोहद्विषतस्त्रिलोकजयिनः काचित् परा दुष्टता बद्धायुष्कतया स वा नरपशुर्नूनं गमी दुर्गतौ॥१०

अर्थ ॥ हवेछतेयोगेपणजीव धर्मकरतोनथी तेहनाबेकारणदेखाडेछे लौकिकअने लोकोत्तरशास्त्रने जाणतोथको तथा पंचमहाव्रतधारीथको तथास्त्रीपुत्रादिकना प्रतिबंधेरहितथको पण जेप्राणीप्रमादवशे पड्योथको परलोकनासुखनी संपदारूप धर्मकार्यनेविषेउद्यम करतोनथी तोतिहां त्रणलोकनुं जीपनारजे मोहरूपशत्रु तेहनीज कोइक अलक्ष्यमहादुष्टताजाणवी अथवाते नररूपपशुबापडो पूर्वेंनरकादिकना आयुषाना बांधवाथकी दुर्गतिमांज जनारछे एमजाणीयेंछैयें ॥ १० ॥

उच्चारयस्यनुदिनं न करोमि सर्वं सावद्यमित्यसकृदेतदथो करोषि ॥
नित्यं मृषोक्तिजिनवंचनभारिता तत्सावद्यतो नरकमेव विभावये ते ११

अर्थ ॥ हवेयतिनावेषमा निर्त्यमृषावादिपणुं देखाडेछे जेयतिबीजा लोकोने नगवा सारुं हुंसर्वथासावद्यकरुंनही एहवुकहीनेपछे वारवार सावद्यकर्म सचितआरम्भप्रमु खकरेछे तेमाटेनित्यमृषावादेंकरी नारीथयुं एहवुंजे सावद्यआरम्भादिककर्म तेहथी तुजने नरकेजवुजसंनवेछे जुठुंबोलीने सावद्यकरवाथी निश्चेनरकगतिथाय ॥ ११॥

वेषोपदेशाद्युपधिप्रतारिता ददत्यनीष्टानृजवोधुना जनाः ॥
नुंक्षे च शेषे च सुख विचेष्टसे नवातरे ज्ञास्यसि तत्फलं पुनः॥१२॥

अर्थ ॥ वलीतेद्विजकहेछे हेसाधुहमणाआनवमातु कालामेलाकपडाप्रमुखना वेषे तथालोकरजवाप्रमुखनेअर्थे उपदेशआपी कपटवैराग्यपोषीने धर्मकथाकहेछे इ त्यादिककपटेकरी जेनोलालोकते तुजने वांछित अन्न पान वस्त्र पात्र वसति सिझ्या दिकआपेछे तेथीसुखेखायछे सुखेसुएछे सुखेरमतोफिरेछे पणते सुखनोगव्यानुं फल परनवें नरकादिकनाडुःखविना बीजोकांइजाणीसनही ॥ १२ ॥

आजीविकादिविविधार्त्तिनृशानिशार्त्ता कृच्छ्रेण केपि महतैव सृजति धर्मान्
तेन्योपि निर्दय जिघृक्षसि सर्वमिष्ट नो संयमे च यतसे नविता कथं ही१३

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरे तेद्विजकहेछे केटलाकश्रावको आजीविकाजे उदरवृत्ति आदिशब्दथी वस्त्र आनरण राजदम्ड पुत्रादिकविवाह इत्यादिकचितायेकरी सदा कालआकुलथका घणीकष्टेकरीने धर्मजेदानप्रमुख तेकरेछे अने हेनिर्दयवेषनाधरना र तुतेवापाशेथीपण अन्नपानादिक सर्ववांछितवस्तु लेवानेवांछेछे अनेसंयममां उ द्यमकरतोनथी माटे हाइतिखेदेंताहरी तेसीगतीथासे ॥ १३ ॥

आराधितो वा गुणवान् स्वयं तरन् नवाब्धिमस्मानपि तारयिष्यति ॥
श्रयंति ये त्वामिति नूरिनक्तिनिः फलं तवैषां च किमस्ति निर्गुण ॥१४॥

अर्थ ॥ एगुणवंतछे एसंयमगुणेसहितछे एमहानुनावछे एनेआराध्योथको पोतेस ारसमुद्रतरेछे तेम आपणनेपण तारसे एहवीबुद्धिये घणीनक्तियेकरी तेप्राणिये तु जनेआश्रयोछे अनेतुतोपोतेनिर्गुणछो माटेतुजने अथवाते आश्रयकरनारने एमाशो फलछे एटलेतुबुडतोथको तेप्राणीनेपण बोडेछे एनावार्थ ॥ १४ ॥

स्वयं प्रमादैर्निपतन् नवाबुधौ कथस्वनक्तानपि तारयिष्यसि ॥ प्र
तारयन्स्वार्थमृजून् शिवार्थिनः स्वतोन्यतश्चैव विलुप्यसेऽहसा॥१५॥

अर्थ ॥ हेमुनितुपोतें प्रमादेंकरीने बुडतोछतो पोतानानक्तजे सेवकलोक तेने शीरीतेंतारीश केमके पोताने अन्नपानादिकमले तेनेअर्थे सरलजे मोक्षार्थिलोक ते

हनेवंचतोथको तुंफरेछे एटलेपोताना प्रमादाचरणथी अनेबीजोलोकने ठगवाथी एबन्नेप्रकारना पापेकरीने तुंलोपायछे ॥ १५ ॥

गृह्णासि शय्याहृतिपुस्तकोपधीन् सदा परेभ्यस्तपसस्त्वियं स्थितिः॥
तत्ते प्रमादाद्भरितात्प्रतिग्रहै ऋणार्णमग्नस्य परत्र का गतिः ॥ १६॥

अर्थ ॥ हे वेषना धरनारयति तुं लोकोपासेथी शय्या वस्ति अहार तथापुस्तक ज्ञानोपकरण तथाउपधि वस्त्रपात्रादिकजे नित्यलियेछे तेतो तपसीलोकनी स्थिति छे परंतु तुंतो प्रत्यक्षप्रमादमां मग्नथको कांइपणतपस्यादिक करतोनथी तेमाटे प्रतिग्रहने निग्रवेकरी जारीथयुं एहवुंजेप्रमाद तेथकीउपार्ज्युंजे लेणो ते लेणानेविषे मग्नथको खुतोछोएहवुंछतो ताहरीपरभवें सीअवस्थाथासे एटलेप्रथमतुं चारित्रले इने प्रमादसेवेछे तेलेणोकरेछे तेवारपछे तपसंयमादिकविना लोकोपासेथीशय्यादिक प्रतेंलीयेछे तेबीजोलेणो एमएवेप्रकारना लेणामांखूतोथको ताहरीसी अवस्थाथासे अर्थात दुष्टअवस्थाज पामीस इतिभाव ॥ १६ ॥

न कापि सिद्धिर्न च तेतिशायि मुने क्रियायोगतपःश्रुतादि ॥ तथा
प्यहंकारकदर्थितस्त्वं ख्यातीच्छया ताम्यसि धिङ् मुधा किं ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेतथाविधगुणविना कीर्त्तिनेसुंवांछेछे हेमुनिताहरेविषेकोइ विद्यामंत्रादिक सिद्धिनथी वलीवांदणा खमासमणाप्रमुख उत्कृष्टक्रियानथी तथामनवचन कायाना योगनी शुभप्रवृत्तिनथी तथाबाह्याभ्यंतरतपनथीकरतो तथाश्रुतज्ञान आदिशब्दथी प्रभाविकपणुं राजाप्रमुखनुं प्रतिबोधवुं इत्यादिकगुणतेपणनथी तोपणतुं अहंकारे कदर्थितथको ख्यातिजे प्रसिद्धितेहनी वांछायेकरीने फोकटशोपरीतापकरे छे माटेतुजने धिःकारथाउताहरामां जो कोइ अतिशयगुणहोय तेवारेंतो ख्यातिनी वांछापणयुक्तछे अनेतेविनाज प्रख्यातीनेवांछेछे माटेतुं धिक्कारवायोग्यछो ॥ १७ ॥

हीनोप्यरे भाग्यगुणैर्मुधात्मन् वांछंस्तवार्चाद्यनवाप्नुवंश्च ॥
ईर्ष्यन् परेभ्यो लभसेऽतितापमिहापि यातो कुगतिं परत्र॥१८॥

अर्थ ॥ फरीतेहिजकहेछे अरेनिर्भाग्य निःपुण्यकआत्मातुं गुणरहितथको फोकटस्तवनापूजाप्रमुखने वांछतो जोपूजास्तवनानथायतो वलीलोकोउपरक्रोधकरतोथको इहलोकेपण अतिशय तापसंतापपामेछे अनेपरलोकेपणदुर्गतियेंजइश॥१८॥

गुणैर्विहीनोपि जनानतिस्तुति प्रतिग्रहान् यन्मुदितः प्रतीछसि ॥
लुलायगोश्वोष्ट्रखरादिजन्मभि र्विना ततस्ते भविता न निष्क्रयः॥१९॥

अर्थ ॥ हवेकुगतिमापडवाविषे उपदेशकरीने प्रतिबोधेछे हेयतिवेषनाधारक तु गुणरहितथको पणहर्षवतथयीने लोकथी नमस्कारादिक स्तवना वस्त्रपात्रअन्नादि कलेवावाछेछे तेहथीतुजने लुलायजे पाम्फोपाणीवहेवायोग्य अथवागोजेबलदीओ हल गाडा यंत्र कोल प्रमुख वहेवायोग्य अथवाअश्वते असवारीकरवायोग्य तथा उंट खररासन अनेकविधनारवहेवायोग्य इत्यादिकअवतार पाम्याविना तेप्रतिग्रहादि कनुं मूलनथाय केमकेगुणविनापण लोकोपासेथी प्रतिग्रहादिक कल्पेछे तेहनुंलेणो पाम्फाप्रमुखना अवतारपामि नारवहीनेछूटवुछे एनावार्थ ॥ १९ ॥

गुणेषु नोद्यच्छसि चेन्मुने तत प्रगीयसे यैरपि वंद्यसेऽर्च्यसे॥जु
गुप्सितां प्रेत्य गति गतो ऽपि तैर्हसिष्यसे चाऽन्निनविष्यसेऽपि
वा॥२०॥ दानमाननुतिवदनापरै र्मोदसे निकृतिरंजितैर्जनैः ॥
नत्ववैपि सुकृतस्य चेल्लव. कोपि सोपि तव लुठ्यते हितैः॥२१॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजप्रकारातरेकहेछे हेमुनिजोतुगुणनेविषे उद्यमकरतोनथी ते वारेइहनवेजे तुजने श्रावकादिक गीतन्नासप्रमुखेकरीगायछे तथावलीद्वादशावर्त्त वा दणायेकरीवादेछे सुगधलेपनादिकेकरीपूजेछे तेतुपरन्नवे निंदनीक कुरूप दरिद्रतादि क पाम्याथका तेहिजताहराउपर हससे तथानानाप्रकारनीपीमा उपजावसे एटले ते स्वामिपणे अवतरसे अनेतुदासपणेथाइस तिहा लातो लाठीप्रमुखना प्रहारेकरी तुजनेपीडसे ॥ २० ॥ हेमुनितु कपटक्रियायेकरी लोकरीजवीने तेहोने दानसन्मान स्तवन वदनानेविपे तत्परदेखीने हर्षपामेछे पण एम नथीजाणतो जे ताहरो लेश मात्रसुकृतछे तेहनेएलोकलुटेछे ॥ २१ ॥

नवेद्गुणी मुग्धकृतैर्नहि स्तवै र्न ख्यातिदानार्चनवदनादिन्निः ॥ वि
ना गुणान्नो नवड खसक्षय स्ततो गुणानर्जय किं स्तवादिन्निः ॥२२

अर्थ॥हवेस्तवनादिकनी वांछामूकीने गुणनुंपोषकरवुतेकहेछे हेमुनितु विशेषाविशे पनाअजाण एहवामुग्धलोकनीकरेलीजे स्तुतितथाख्याति प्रशसादिक तेणेकरीगुणव तनथाय वलीगुणजे ज्ञानादिक तेहनीप्राप्तिविना संसारनोविनाश अनेमुक्तिनीप्राप्तिन थाय तेमाटेकेवल गुणनेजउपार्जनकर पणस्तुतिकरावववाथी काइअर्थसिद्धिनथी॥२२

अध्येपि शास्त्रं सदसद्विचित्रा लापादिन्निस्ताम्यसि वा समा
ये ॥येषा जनानामिह रंजनाय नवातरे ते क्क मुने क्क च त्वं॥२३॥

अर्थ ॥ हवेलोकरीजववामाटेतु शास्त्रनणेछे पणन्नवातरेतुकिहां अनेरीजनारलो

कक्द्दिां तेदेखाडेछे हेमुनितुंजे लोकरीजववानिमित्तें सतुके० नलोजिनागम तथा असत्के० विरुद्धबौद्धादिकनुंशास्त्रते प्रतेंजणेछे अनेवली कपटसहित नानाप्रकार नाआलापसंलापादिक तेणेकरीने घणुंप्रयासकरेछे पणजवांतरें तेलोककिहांगतिमां जशे अनेतुं केइगतियेंजइश एटलेआजवें लावजीवशुद्धीजे जीव तें रीजव्याहशे तेपरजवेंकोइपण ताहरे कामेआवेसेनही ॥ २३ ॥

परिग्रहं लं व्यजहाकृहादे स्तत्किं न धर्मोपकृतिच्छलात्तं ॥
करोषि शय्योपधिपुस्तकादे र्गरोपि नामांतरतोपि हंता॥२४॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहत्यजवा आश्रीउपदेशछे हेमुनितेंपूर्वें घरप्रमुखनुंपरिग्रहछां डयुं अनेवली धर्मोपकरणने मीसेंकरीने शय्या वस्ति उपधि वस्त्र पात्रादिक पुस्त क आदिशब्दथी पाग चाबखी पोथी बांधणा जपमाला प्रमुखउपकरणनो परिग्रह सुंकरेछे धर्मोपकरणजेकांइ बहुमूलो ममतानावशथकी वधारेराखियेंते परिग्रहजजा णवो केमके० गरके० विष तेहनेंनामांतरकरवाथकी एटलेनामफेरवीनाख्याथीप ण हंताके० मृत्युकारकहोयज जोविषने साकर अमृत इत्यादिककहियेंतोपण खांधु थकुं प्राणहरणकरे तेमपरिग्रहने धर्मोपकरण निमित्ते राख्योथकोपण दुर्गतिआपे

परिग्रहात्स्वीकृतधर्मसाधनाभिधानमात्रात्किमु मूढ तुष्यसि ॥
न वेत्सि हेम्नाप्यतिभारिता तरी निमज्जयत्यंगिनमंबुधौ द्रुतं ॥२५॥

अर्थ ॥वलीतेहिजकहेछे हेमूर्खसाधोतुं स्वीकृतके० प्रमाणकिधुंछे धर्मसाधनके० धर्मोपकरण एहवुंनाममात्रजेहनुं एहवोपरिग्रह पाम्याथी सुंहर्षपामेछे हेमूर्खतुंन थीजाणतोजे अतिशयभारी एहवोजेसुवर्ण तेणेकरीभरी एहवीतरीजे होडी तेजेम अंगीनंके० बेशनारमनुष्यने बोडेछे तेमतुजनेपण धर्मोपकरणनेमीसें मल्योएहवो जे अतिपरिग्रहतेभवसमुद्रमां बोडशे इतिभावः ॥ २५ ॥

येंहःकषायकलिकर्मनिबंधभाजनं स्युः पुस्तकादिभिरपीहितधर्मसाधनैः॥
तेषां रसायनवरैरपि सर्पदामयै रार्त्तात्मनां गदहृतेः सुखकृत्तु किं भवेत्॥२६

अर्थ ॥ जेमुनियें हितके० वांछयुंछे धर्मनुंसाधनजेथकी एहवाजे पुस्तकादिकते णेकरीनेपण अंहजेपाप तथाकषायजे क्रोधादिक तथा कलिजेकजहतेना करवा थकी कर्मजे ज्ञानावरणियादिक तेनानिकांचित्बंधनुंभाजनथाय तेहनेबीजोकोइ सुखकार्य निवृत्तिनुंकरनारनथाय एटलेजेहनेधर्मोपकरणतेहिज ममत्वनावशथकी परिग्रहपणे परिणम्याछे तोतेहनेअर्थे क्लेशकषायादिकने करवेकरीकर्मवृद्धिकरेछे

तोतेहनेसंतोषपते पछे फरीबीजाशाथकीयासे एनावाथी तेहनुंदृष्टांतकहेछे जेम रसा यनजे मृगागपारादिक तेहनोसेवनकरवाथीज उलटोमांदापड्यो एटलेरसायनथ कीपण जेहनेरोगवध्यो तोपछेतेहनारोगनुं निवारकबीजोसुखकारी कोइनथी ॥२६॥

रक्षार्थं खलु संयमस्य गदिता येऽर्था यतीनां जिनै र्वासःपुस्तकपात्रकप्रभृतयो धर्मोपकृत्यात्मका. ॥ मूर्छन्मोहवशात्त एव कुधिया संसारपाताय धिक् स्व स्वस्यैव वधाय शस्त्रमधियां यद्दु.प्रयुक्त भवेत्॥२७

अर्थ ॥ निश्चेकरीनेजे वस्त्रपुस्तकप्रमुख पदार्थतेश्रीजिनेश्वरे साधुनेसंयमनी रक्षा नेअर्थे धर्मोपकरण स्वरूपेकह्याछे तोहाहा इतिखेदे तेहिजपदार्थ कुबुद्धिनाधणीने अतिशय मोहनावशथकी उलटासंसारमांबूडावनारनाकारण थइपडेछे तेहनुदृष्टांत जेम बुद्धिहीनपुरुषनुं पोतानुं अस्त्रजेखड्गादिक तेविपरीतपणे राख्युंहोय तोपोतानेजवधकारीथाय तेहनीपरे जाणवुं ॥ २७ ॥

संयमोपकरणच्छलात्परान् भारयन् यदसि पुस्तकादिभि ॥
गोखरोष्ट्रमहिषादिरूपभृत्तच्चिरं त्वमपि भारयिष्यसे॥२८॥

अर्थ ॥ हेमुनितु जे परप्राणीभारवाहक पोठी बलद उंटप्रमुखने संयमनाउपकरण नेमीसेकरी पुस्तकादिकनुं भारवहेवरावेछे तेमाटेतेप्राणीतुजनेपण बलद उंट रास न पाडाप्रमुखना अवतारपाम्याथका चिरकाललगे भारवहेवरावशे ॥ २८ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्तकादिन· शोभया न खलु संयमस्य सा ॥
आदिमा च ददते भव परा मुक्तिमाश्रय तदिच्छयैकिका॥२९॥

अर्थ ॥ हवेवस्त्रपात्रादिकथी संयमनीशोभानथीतेकहेछे हेमुनि वस्त्रपात्रतथाशरीर पुस्तकइत्यादिकनी शोभाकीधेथके निश्चेकरी संयमनीशोभानथाय एटलेवस्त्रादिकनीशोभाते सयमने अशोभाकारणीछे तेमापणवली आदिमके० पहेलीजे वस्त्रादिकनीशोभाते भवभ्रमणजआपे अने परके० बीजीजे सयमनीशोभाते मोक्षजआपे तेमाटेजोससारनी वाछाहोयतो वस्त्रादिकनी शोभाआदर अनेजो मुक्तिनीवाछा तुजने होय तो सयमनीशोभाआदर ॥ २९ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्कादिन· शोभया न खलु सयमस्य सा ॥ ता तदत्र परिहार्य संयमे किं यते न यतसे शिवार्थ्यपि ॥इतिचोत्तरार्द्धपाठ ॥३०॥

अर्थ ॥ वस्त्रपात्रेति एपाठांतर एश्लोकनुंपूर्वार्द्ध पूर्वनीपरेजाणवु अनेउत्तरार्द्धनी

व्याख्याकहेछे तस्मात्कारणात् तेकारणमाटेहेसाधो ते वस्त्रादिकनी शोभाछांमीने जोमुक्तिनोअर्थीहोतो जिनप्रणीत चारित्रनेविषे केमउद्यमकरतोनथी ॥ ३० ॥

शीतातपाद्यान्नमनागपीह परीषहाश्चेत्क्षमसे विसोढुं ॥
कथं ततोनारकगर्भवास दुःखानिसोढासि भवांतरे त्वं ॥३१॥

अर्थ ॥ हवेपरीषह सहेवाआश्री उपदेशआपेछे हेमुनिजोतुं संयमनेविषे टाढाउ तापप्रमुख थोडापणपरीषह सहेवानेसमर्थनथी अनेकायरथायछे तोभवांतरेनेविषे नरकतथा गर्भवासनादुःख केम सहीस एटले नरकादिकना दुःखसहेवाथीतो परीष हनादुःखतुं सहेवुंनजुंछे एमजाण ॥ ३१ ॥

मुने न किं नश्वरमस्वदेह मृत्पिंडमेनं सुतपोव्रताद्यैः ॥ निपी
डय भीतीर्भवदुखराशे र्हित्वात्मसाछैवसुखं करोषि ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुने तपप्रमुखनुं उद्यमकरवुंकहेछे हेसाधु एविनाशशील तथा आ खरपोतानुंनही एहवोजेदेहरूप माटिनुंपिंम तेहने भजाजिनाज्ञासहित तपव्रतप्रमुखे करी दमीने संसारनादुःखसंबंधी सर्वभयछांमिने मुक्तिसंबंधी सुखतें पोतानेवश केमनथीकरतो ॥ ३२ ॥

यदत्र कष्टं चरणस्य पालने परत्र तिर्यङ्नरकेषु यत्पुन.॥तयोर्मि
थः सप्रतिपक्षता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरं जहीहि तत् ॥३३॥

अर्थ ॥ हेसाधुजेइहां श्रीजिनशासनेविषें चारित्रपालवानीकष्टछे अनेपरभवे ति र्यंचनरकादिकनेविषेजे कष्टछे तेबेहुकष्टने परस्परें प्रतिपक्षपणुंरहेछे एटलेजिहां चा रित्रकष्टछे तिहांतिर्यंचनरकनुं कष्टनथी अनेजिहां तिर्यंचनरकादिकना कष्टछे तिहां चारित्र कष्टनथी तेमाटेविशेषदृष्टियें विचारी तेबेमांथी एककष्टनेमूक ॥ ३३ ॥

शमत्र यद्बिन्दुरिव प्रमादजं परत्र यच्चाब्धिरिव द्युमुक्तिगं ॥ तयोर्मि
थः सप्रतिपक्षता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरद्गृहाण तत् ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेसुखनुंग्रहवुंकहेछे हेसाधोइहां चारित्रमांप्रमादकरवाथीजे सुख ते बिंदुजेटलुंछे अनेसंयमना पालवाथकीजे देवलोकमुक्तिनासुख तेसमुद्रसरखाछे तेबन्हेसुखने परस्परप्रतिपक्षपणुंछे जिहांप्रमादसुखतिहां मुक्तिसुखनथी अने जिहां मुक्तिसुख तिहांप्रमादसुखनथी माटेविशेषेंविचारी बेमांथी सारजाणेतेने आदर॥३४॥

अथवा॥नियत्रणायाचरणेऽत्र तिर्यक् स्त्रीगर्भकुंभीनरकेषु या च ॥
तयोर्मिथ सप्रतिपक्षभावा द्विशेषदृष्ट्याऽन्यतरां गृहाण ॥३५॥

अर्थ ॥ हवेगुरुपारतत्र्यआश्चर्यीकहेछे हेसाधुइहाजिनशासनमां चारित्रनेविषेजे गुरुपारतंत्र्यादिकत्रणप्रकारनो परवशपणुछे अने तिर्यचनाअवतारमां तथास्त्रीनागर्भ मां तथा कुंभीतेघणोजसांकडामुखनुनारकीने उपजवानुस्थानकतेमां उपनाजेनार कीते खडोखंडथयी बाहेरनिकले तेहनेविषेजे परवशतापणुछे तेबेहुने परस्परेप्रति पक्षीपणुछे एटले जिहाचारित्रनी नियत्रणाहोय तिहातिर्यच स्त्रीअने नरकादिकनी नियंत्रणानहोय अनेजिहा तिर्यचस्त्रीनरकादिकनी नियंत्रणाहोय तिहां चारित्रनी नियंत्रणानहोय माटेविशेषदृष्टियेंविचारीने तेबेमाथी एकनियंत्रणानेआदर ॥३५॥

सहतपोयमसयमयत्रणां स्ववशतासहने हि गुणो
महान्॥शिवं गुण इति वा पाठ ॥ परवशस्त्वतिभूरि स
हिष्यसे न च गुणं बहुमाप्स्यसि कं च न ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ हवेपरवशेदु खसहेवाकरता पोतानावशेंदु खसहेवुभलुछे तेकहेछे हेसा धुतु चोथप्रमुखतप तथा नियमअभिग्रहादिक ते यम तथासत्तरभेदें सयमसबंधी एत्रण नियंत्रणाउछेतेनुंसहनकर केमके एत्रण नियंत्रणाओते पोताने स्वाधीनपणे सहनकरवीछेते महोटो गुणछे तथापाठातरे एथकी शिवगुणके० मुक्तिरूपीओगुण होय अने जे अतिपरवशपणे एकेद्रियादिकमां पराधीनथको घणीजनियंत्रणाओ सहीस तिहा अकामनिर्झरासिवाय अधिकुगुणमात्र काइपणपामीसनही ॥ ३६ ॥

अणीयसासाम्यनियंत्रणाभुवा मुनेऽत्र कष्टेन चरित्रजेन च॥ यदि
क्षयो दुर्गतिगर्भवासगा सुखावलेस्तत्किमवापि नार्थित॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकातरेतेहिजकहेछे हेसाधो आजन्ममा समतारूपनियंत्रणातेसं बंधीकष्ट तथाचारित्रसंबंधीजे अल्पमात्रकष्ट तेणेकरी दुर्गति अने गर्भावाससंबंधी असुखनासमूह क्षयथायछे तोतेथी सुवाछितपणुतुनपाम्यो अर्थात्पाम्योज ॥३७॥

त्यज स्पृहा स्व शिवशर्मलाभे स्वीकृत्य तिर्यङ्नरकादि दुःख ॥
सुखाणुभिश्चेद्विषयादिजातैः सतोष्यते सयमकष्टभीरु ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादवर्त्तने रीतेकरीकहेछे हेसाधुतु जो विषयादिकथीउपनोजे सुख नोलेश तेणेकरी सतोषपामेछे अने सयमनाकष्टथीबीहेछे एरीतेतो तें तिर्यच तथा

नरकनुंदुःखकबुलकरीने स्वर्गमोक्षनासुखपामवानी वांछामूकीदीधी एटलेअणुमात्र सुख उपर राच्योथको स्वर्गमोक्षनुं अतुल्यसुखहारेछे एन्नावार्थछे ॥ ३७ ॥

समग्रचिंतार्तिहतेरिहापि यस्मिन् सुखं स्यात्परमं रतानां ॥
परत्र चेंद्रादिमहोदयश्रीः प्रमाद्यसीहापि कथं चरित्रे ॥३८॥

अर्थ ॥ हवेचारित्रथी इहलोकेंतथा परलोकेंसुखछे तेकहेछे चारित्रमांरक्तथयला एहवाजेन्नावसाधु तेहने सर्वचिंताना निवारवाथकी इहलोकेपण परमअनुपमसुख होय अनेपरलोकेंपण इंद्रादिकनीसंपदा तथा मोक्षनीसंपदाहोय तोहेसाधो एहवुंजे चारित्रतेनेविषे रह्योथकोतुं सुंप्रमादकरेछे यतः देवलोकसमाणोअ परियाउमहेसिणं ॥ रयाणअरयाणंच महाणरयसारिसा ॥ १ ॥ पुनः नच राजन्नयं नच चोरन्नयं न च वृत्तिन्नयं न वियोगन्नयं॥इह लोकसुखं परलोकहितं श्रमणत्वमिदं रमणीयतरं॥ २॥

महातपोध्यानपरीषहादि न सत्वसाध्य यदि धर्तुमीश ॥ तन्नावनाः
किं समितीश्च गुप्ती धत्से शिवार्थिन् न मनःप्रसाध्याः ॥ ४० ॥
अनित्यताद्या न्नज न्नावनाः सदा यतस्व दुःसाध्यगुणेऽपिसंयमे॥जि
घत्सया ते त्वरते ह्ययं यमः श्रयन् प्रमादान्न न्नवाद्बिनेपि किं॥४१॥

अर्थ ॥ हवेजेबहुकष्टकरीशकेनहीतोते सुखसाध्यधर्मकरे तेकहेछे हेसाधु तुं पराक्रमवंतपुरुषने साधवायोग्य एहवाजे मासखमणप्रमुख महातप तथा प्राणायामादिक ध्यान तथाक्षुधादिकपरिसह धरवानेसमर्थनथी तोहेमोक्षनावांछक केवलमनेकरीज साधिसकीयेंएहवीजे अनित्यादिकन्नावनातेनुंसेवनकर ॥ ४० ॥ तथावलीप्रकारांतरेकहेछे हेसाधोतुंअनित्यताप्रमुख बारन्नावना ने सदान्नज अनेदुःखें साधवायोग्य मूलोत्तरगुणछे जेना एहवासंयमनेविषेपण सुकुमालपणुंछांडीउद्यमकर केमके मृत्युते तुजने ग्रासकरवानीवांछायें उतावलुंथायछे दिनदिनप्रतें ढुकडुंआवेछे माटेप्रमादसेवतोथकोपण मनेकरीसंसारथकी बीहितोरहेजे ॥ ४१ ॥

हतं मनस्ते कुविकल्पजालै र्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः ॥ लब्धी
श्च सिद्धीश्च तथापि वांछन् मनोरथैरेव हहा हतोसि॥४२ ॥दग्धं
मनो मे कुविकल्पजालै र्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः॥लब्धीश्च सि
द्धीश्च तथापि वांछन् मनोरथै रेव हहा विहन्ये ॥ इतिवापाठः ॥४३॥

अर्थ ॥ हवेसामग्रीविनापण महोटामहोटा मनोरथकरवा अफलछे तेकहेछे हे

साधुताहरोमनतें मागविकल्पनासमूहे विणसाड्युं अनेवचनपण मृषाभाषणादि क पापेकरीविणसाड्युं वलीशरीरपण प्रमादजेमद्यादिकतेणेकरी विणसाड्युं एरीतें मनवचनकायारूप त्रणगुप्तिविणसाडी तोपण आमोसहीप्रमुखलब्धि तथामन्त्रवि द्यादिकसिद्धिने वांछेछे माटे हाइतिखेदे मनोरथेकरीज पीडायछे जेमशाली दुध खा ण्डप्रमुख सामग्रीविनापण कोइमूर्खक्षीरनाभोजननुं मनोरथधरतो अहर्निशविकल्पें ज पीडाय तेमतुपणपीडायछे ॥ ४२ ॥ तथावलीपागतरें माहरुंमन कुविकल्पजालें विणास्युं तथा अवद्यके० मृषाभाषणादिकपापे वचनविणास्युं अनेप्रमादेकरीशरीर विणास्युं तोपण लब्धि अने सिद्धि प्रतें वांछतो थको हाइतिखेदे हुं मनोरथमात्रें ज सुंपीडावुं इत्यादिक पहेलाकाव्यनुं पाठांतर काव्यजाणवुं ॥ ४३ ॥

मनोवशस्ते सुखदुःखसंगमो मनो मिलेद्यैस्तु तदात्मकं भवेत् ॥
प्रमादचौरैरिति वार्यतां मिलच्छीलांगमित्रैरनुपजयानिशं ॥ ४४ ॥

अर्थ ॥ हवेमननेसतसंगमांजोडवु तेकहेछे हेसाधुताहरे सुखअने दुःखनोजे मि लाप तेमननेवशछे केमकेमनजेहनीसाथेमिले तेरूपीथाय जेम तैलने जेहवाफूलनो संगमिले तेहवीवासनामयथाय माटेमननेप्रमादरूपचोरसाथेमलतो वारीने नित्ये शी लांगरथरूपजेमित्र तेनीसाथेमेलव जेथकीतुजने सर्वथासुखसाथेज मिलापथाय ॥ ४४

ध्रुव प्रमादैर्भववारिधौ मुने तव प्रपात परमत्सर पुन ॥ गले
न बद्धोरुशिलोपमोस्ति चे त्कथं तदोन्मज्जनमप्यवाप्स्यसि॥४५॥

अर्थ ॥ हवेयुक्तिविशेषेंकरी प्रमादनोपरिहारकहेछे हेसाधुप्रमादनाहेतुयेकरी तु जनेसंसारमापडवुतो निश्चय थकीछे केमकेप्रमाद अनेससारने अग्निधुमादिकनीपरें नित्यबंधछे अनेवलीजो गलेबांधिमोटी शिलासरिखुं परप्राणीउपरमत्सरतुजनेछे तेवा रे संसारसमुद्रमांथी तरीनिकलवु केमपामिस माटेप्रमादअने मत्सरबेहुत्यज॥४५॥

महर्षयः केपि सहंत्युदीर्या प्युग्रातपादीन्यदि निर्जरार्थं ॥
कष्ट प्रसंगागतमप्यणीयोपीछन् शिवं किं सहसे न भिक्षो॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ हवेकष्टसहेवाआश्री उपदेशआपेछे केटलाकमहाऋषी तेजइवाहुस्वा मी दीक्षितचार व्यवहारीपुत्रनीपरें शीतादिक परिसहनासहनारा वली उग्रके० घ णोकठिण आतपके० तडकाप्रमुख कष्टने उदरीनेपण निर्जरानेअर्थेसहेछे तेवारेंहे साधुतुं मुक्तिनेतोवांछेछे तेवारे प्रसंगथी उदयआव्युं एहवोस्वल्पमात्र कष्टप्रतेकान थीसहेतो अनेकष्टसह्याविना मुक्तिकेमपामिस एभावार्थ ॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ हवेडुर्लनचारित्रपामिने विषयप्रमादत्यजवा तेप्रकारांतरेकहेछे हेनिष्टु डुर्लनएहवुंजे चारित्रतेपामिने जोपोतानावांकथीउपना एहवाजे विषयप्रमाद तेणे करीतुंसंसारसमुद्रमांपमीश तेवारें ते अनंताकालसुधी चारगतिसंबंधीनाडुःखेकरीने पीडाइश तेमाटेधिःकारछेतुजने जेतुंचारित्रनेविषे उजमालथातोनथी ॥ ५३ ॥

कथमपि समवाप्य बोधिरत्नं युगसमिलादिनिदर्शनाद्दुरापं ॥
कुरु कुरु रिपुवश्यतामगच्छन् किमपि हितं लभसे यतोऽर्थितं शं॥५४॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतसहित बोधनुंडुर्लनपणुंकहेछे हेसाधुतुंयुगसमिलादिक दशदृष्टां तेंकरी डुर्लनएहवुं समकेतरूपरत्न तेघणेकष्टेंपामिने आगलेंवक्ष्यमाण विषयादिक शत्रु तेहनुंआधीनपणुंत्यजतुंथको कांइकआत्मानुंहितजे संयमादिकतेकर जेथकीवां छितसुखपामे. चुल्लग पासग धन्ने जूए रयणेय सुमिण चक्केअ ॥ चम्मजूगे परमाणु दस दिठंता मणुयलंभे॥१॥एदशदृष्टांतनानामजाणवा ॥ पुव्वं तेहुज्जुगं अवरं ते तस्स हु ज्जसमिलाउ ॥ जुगछिड्डंमि पवेसो इय संसइउ मणुअलंभो ॥१॥ इत्यावश्यके ॥५४॥

द्विषस्त्विमे ते विषयप्रमादा असंवृता मानसदेहवाचः ॥ असं यमाः सप्तदशापि हास्या दयश्चबिभ्यच्चर नित्यमेभ्यः ॥५५॥

अर्थ ॥ हवेनामथकी शत्रुदेखामीने तेथीदूररहेवानो उपदेशआपेछे हेसाधो वि षयजेशब्दादिकपांच तथाप्रमादजे मद्यादिक पांच अने असंवृतकहेतां मोकलामू क्या एवाजे मनवचनकायानायोग तथा प्राणातिपातादिक पांचअव्रत अनेपांचेंद्रि यनुं अणजीतवुं तथाक्रोधादिक चारकषायनो अपरिहार अनेमनवचनकाया एत्र णयोगने डुःप्रवर्त्तियेंप्रवर्त्तावबुं एसर्वमलीसत्तर असंयमनास्थानक तथावली हास्य रति अरति नय शोक डुगंछा ए हास्यषट्क एटलां ताहाराशत्रुछे तेमाटेएथकी सदाकाल बीहीतोथको विचरजे ॥ ५५ ॥

गुरूनवाप्याप्यपहाय गेह मधीत्य शास्त्राण्यपि तत्ववांचि ॥
निर्वाहचिंतादिनराद्यनावे प्यूषे न किं प्रेत्य हिताय यत्नः॥५६॥

अर्थ ॥ हवेसर्वसामग्री मल्याछतांपण आत्महितकांनथीकरतो तेकहेछे हेऋषितुं घरछांमीने गुरुजेधर्माचार्य तेहनेपामीने तथातत्वप्ररूपक शास्त्रजेसिद्धांत तेनणीने पण तथानिर्वाहजेआजीविका तेहनीचिंता अनेआदिशब्दथी वस्त्रपात्र वसतिप्रमुख नीचिंता अनेराजनय चौरनय इत्यादिकतेहनो नरजेसमूह तथावलीआदिशब्दथी गृह राज देशांतर जलपंथ प्रमुखव्यापार तेहनो अनावछतां पण परलोकना हितने

अर्थ काव्यमनर्थीकरतो एटले सकलसामग्रीने योगेपण जेआत्महितनथी साध तो तोपछे घणोज शोचकरीश एनावार्थछे ॥ ५६ ॥

विराधितैः संयमसर्वयोगैः पतिष्यतस्ते भवदुःखराशौ ॥ शास्त्रा णि शिष्योपधिपुस्तकाद्या भक्ताश्च लोकाः शरणाय नालं॥५७॥

अर्थ ॥ हवेसंयमग्रहीने संयमविराधनानकरवी तेकहेछे हेयतितेविराध्या एहवा जे संयमनासर्वयोग एटले मूलगुणउत्तरगुणादिकविराध्यातेहेतुयेकरीने संसारना दुःखसमूहमापडतातुजने शास्त्रजेआगमादिक तथाशिष्यजे उपधीपुस्तकप्रमुख तथा वलीभक्तलोकजे श्रावकश्राविकादिक तेकोइशरणआपवाने समर्थनहीथाय पण एक संयम मात्रज अविराध्यो थको शरणदाइथाशे ॥ ५७ ॥

यस्य क्षणोपि सुरधामसुखानि पल्यकोटीर्नृणां द्विन वती ह्यधिका ददाति ॥ किं हारयस्यधम संयमजीवि तं तत् हा हा प्रमत्त पुनरस्य कुतस्तवाप्तिः ॥५८॥

अर्थ ॥ हवेसंयमेजीवितनुं फलदेखाडी प्रमादनोपरिहार उपदेशेछे हेसाधो संय मजीवितनुं क्षणजेमुहूर्त्तमात्र तेपणपुरुषनेनिश्चयथी साधिक बाणोकोडिपल्योपमल गे देवलोकनासुखआपे यदुक्तं प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ सामाइयकुणतो समभावसा वउअघडियदुगं ॥ आउंसुरेसु बंधइ इत्तिय मित्ताइ पलियाइ ॥१॥ बाणवईकोडीउं लरकगुणसठिसहस्सपणवीस॥ नवसयपणवीसाए सतिहा अडभाग पलियस्स ॥२॥ इति बाणुकरोड ओगणसाठलाख पचीसहजार नवसेपचीश एटलापल्योपम अनेएक पल्योपमना नवभागकरीये एहवाआठनवमाग अनेतेउपरवली एकनवमाशनो एक तृतीयाश एटलुदेवायु बंधमीना एकसामाइकथीबंधाय ते आंके करी लिखियेछेये ९२ ५९ २५ ९ २५,८१ तो हाहाइतिखेदे हेअधमनीचप्राणी तु संयमेजीवितने के महारेछे हेप्रमादवतफरीनेतुजने एसंयमनीप्राप्ति क्याथीथाशे ॥ ५८ ॥

नाम्नापि यस्येति जनेऽसि पूज्यः शुद्धात्ततो नेष्टसुखानि कानि॥ त त्संयमेऽस्मिन् यतसे मुमुक्षो ऽनुभूयमानोरुफलेपि किं न ॥५९॥

अर्थ ॥हवे द्वारसमाप्तिना मंगलनेअर्थे संयमनाशुभफल देखाडी शिक्षाकहेछे हे मोक्षार्थीसाधु जेसंयमना केवलनाममात्रथीज एटलेसंयमी एहवुनाममात्र धराव्या थीज प्रत्यक्ष प्रकारें करी लोकनेविषे तु पूजनीकथयोछो तोशुद्धनिर्मल संयमथी शाशास्वर्गमोक्षादिक वांछितसुखनहोय एटलेसंयमथी अभीष्टसुख होयज तेमाटेप्र

त्यक्ष्यमान जेहनुं महाफलअनुभवायछे एहवाए संयमनेविषे तुं कांउद्यम नथी करतो सर्वथा उद्यमकरवोज युक्तछे ॥५९॥ इति श्री अध्यात्मकल्पद्रुमे यतिशिक्षानिधानोनाम त्रयोदशोधिकार. संपूर्णः ॥

अथ सामान्यतो यतीन् विशेषधर्मस्थगृहिणश्चाश्रित्य मिथ्यात्वादिसंवरोपदेशः ॥ मिथ्यात्वयोगा विरतिप्रमादा नात्मन्सदा संवृणु सौख्यमिछन् ॥ असंवृता यभवतापमेते सुसंवृता मुक्तिरमां च दद्युः ॥ १ ॥

अर्थ॥ हवे यतिने तथासम्यक्तमूलबारवृत्तधारक श्रावकने साधारण मिथ्यात्वाव्रतिकषाय योग निरोधोपदेश तथा संवरोपदेश नामा चौदमो अधिकारकहेछे तिहांप्रथमकर्मबंधनाहेतुजे मिथ्यात्वादिकतेहनुंसंवरकहेछे हेआत्मातुं सुखनेवांछतो होयतोमिथ्यात्वजे अभिग्रहिकादिकपांच तेमांअभिग्रहिक तेपोतानाशास्त्रादिकनां ममत्वथी कदाग्रहकरवो तेकुतीर्थिपाखंडादिक बीजुंअनाभिग्रहिक ते सर्वे देवाः सर्वे गुरुवः सर्वे धर्माश्च आराध्याः एहवोअभिप्राय जेसामान्यप्राकृतलोकोनोते त्रीजुंआभिनिवेशिक ते वस्तुनुं यथास्थित स्वरूपजाणेथके पण कोइदुष्टाभिनिवेशना वशथी पोतानुं मतथापवानेअर्थे गोष्टीमाहिलादिकनीपेठे असत्यरूपणानुंकरवुं चोथोसांशयिक ते देवादिकतत्वनेविषे आसाचुंके आसाचुं एमसंदेहधरवो पांचमुं अनाभोगिकते अनाभोगनावशथकी एकेंद्रियादिकनेविषे जीवादिकतत्वनुं अणजाणवुं ५ एपांचमिथ्यात्व तथा अशुभमनोयोगादिकत्रण अनेअविरतिते प्राणातिपातादिकपांच तथाप्रमाद जे मद्यादिक पांच एचारेनेसदाकालजगे संवरवुंकेमके एचारेने अणसंवस्याथका संसारनातापप्रत्ये आपे अने संवस्याथका मुक्तिरूपिणी लक्ष्मीनेआपे ॥ १ ॥

मनः संवृणु हे विद्वन्नसंवृतमना यतः ॥
याति तंदुलमत्स्यो द्राक् सप्तमीं नरकावनीं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमथी मननुंसंवरउपदेशेछे हेपंडितआत्मा तुंतारामननेसंवर केमके मनने संवरे रहित एवुंजे तंडुलमत्स्य तेउतावलुं थोडाकालमांज सातमांनरकपृथ्वीयें जइअवतरे एमत्स्यसमुद्रमाहेला महोटामत्स्योनी आखनीपांपणमांहे सूक्ष्ममत्तिने गर्भे सातमीनरकथीचवीनेअवतरेछे तेमत्स्य तंडुलप्रमाणगर्भजथाय पछेतेमहामत्स्यना मुखनाफाडमा पेसतांनिकलतां एहवाअनेकन्हाना मत्स्यादिकदेखीने तेतंडुलमत्स्यएहवुंचिंतवेजे हाहाइतिखेदेजो माहारी आवडीमोहोटी कायाथइहोतततो हुंआ सर्वजीवनाकोलियाकरुं पणएमांथीएकेनेजावानआपुं एवुंमहाउर्ध्यान चिंतवतोथको अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण आयुभोगवीने एकमुहूर्त्तने अंतरेवली सातमीनरकपृथ्वीयें जइ अ

वतरे एरीतेजीवते वचन तथाकायाये अशक्तथकोहोयतो पण मात्रएकमननाज अ संवरथकी तडुलमत्स्यनीपेरें डुर्गतिगामीथाय ॥ २ ॥

प्रसन्नचंद्रराजर्षे र्मन प्रसरसंवरौ॥ नरक
स्य शिवस्यापि हेतुभूतौ क्षणादपि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेउपरज दृष्टांतकहेछे हेप्राणि मननुंप्रसरजे डुर्ध्याननीप्रवृत्तिअने संवरजे डुर्ध्याननथीनिवृत्ति तेबेहु एकक्षणमात्रमाजेम प्रसन्नचंद्रराजर्षिनेनरकना अने मुक्तिनापण कारणथया केमकेतेने मननाडुर्ध्यानथी एकक्षणमात्रमा सातमानरकनुंद लमेलव्युं अने तेजमनना संवरथी एकक्षणमा केवलज्ञानपण उपार्ज्युं ॥ ३ ॥

हवेसंक्षेपथीतेप्रश्नचंद्रराजर्षिनोसंबंधलखीयेछेये क्षितिप्रतिष्टितपुरमां प्रसन्नचंद्रराजा राज्यकरताहता अन्यदातिहा श्रीवीरस्वामी समोसख्या प्रसन्नचंद्रराजा सह परिवारे वांदवाआव्यो देशनासांभली वैराग्यपाम्यो पुत्रनेराज्येस्थापी श्रीवीरपासे पोतेदीक्षालीधी अनुक्रमेगीतार्थथयो अन्यदाविहारकरतो राजगृहनगरेआव्यो तिहांजिनकल्पीनी तुल्यनानेअर्थे स्मशानमा काउसग्ग धरीरह्योछे एटलामांश्रीवीरस्वामीराजगृहनगरेसमोसख्याछे नगरलोकसर्व भगवतने वांदवाजायछे एटलामाकोइएक बेवणिक तेक्षितिप्रतिष्ठितनगरथीआव्याछे तेमाथीएकवणिक प्रसन्नचंद्रराजर्षिने जोइबोल्यो केधन्यछेआपणाराजानेजे राज्यलक्ष्मीतृणनीमाफकत्यजीने ध्यानाधिरूढथको उग्रतपकरेछे तेसांभलीबीजोवणिकबोल्यो केअहोधि कारछेएनातपने एनुंमुखजोवायोग्यनथी केमकेएवापडाबालकपुत्रने राज्यआपी मूढथइनिकल्यो अनेपाछलतो सीमाडेबीजाराजायेआवीनेबालकनुंराज्यहरीलेवानगरघेख्युछेनगरतथादेशनालोकसर्व अनाथथयाथका बहुतलपेछे माटेदेशनागसे घणुअनर्थथाशे तेथीएतेंशु धर्मआराधेछे ते सांभलीप्रसन्नचंद्रराजर्षि ध्यानथीचूकीने चितववालागो केअहोमुजबेठा माहारुं राज्यले एवोकोणछे एमरौद्रध्यानमा व्याप्तथइने मनसाथेज महासंग्रामकरवामांड्यो तेसमयेश्रेणिकराजा श्रीवीरने वांदवाजातामार्गमा तेकाउसग्गधरसाधुदेखी भक्तिपूर्वकवांदी तेहनीउग्रतपस्याने अनुमोदतो समोसरणेपहोतो त्याश्रीवीरनेवांदिनेपुछ्युं जेस्वामीएप्रसन्नचंद्रराजर्षि ध्यानाधिरूढअवस्थामा मेंवांद्यो तेअवस्थाने समये काल करेतो शीगतिपामे भगवतेंकह्यु सातमीनरकपामें तेसांभलिश्रेणिकसभ्रांतथइरह्यो हवेप्रसन्नचंद्रराजर्षियें मनथीसंग्रामकरता सर्वशत्रुहण्या अनेएककोइमहोटा शत्रुनीसाथेयुद्धकरता आयुधसर्वनष्टथयाछे त्यारेजाण्युजे माथेलोहनोटोपपहेखोछे ते लइनेशत्रूनेमारु एमचिंतवी माथेहाथनाख्यो एटलेमस्तकतत्कालनुं लोचितमुंडदेखी

ने मनमांसंवेगपाम्यो पश्चात्तापकरवालाग्यो हाहाआमेंशुंडुर्ध्यानचिंतव्युं मिछामिछक डदेवालागो एवामांफरीश्रेणीकें वीरनेपुछ्युं हेस्वामीआसमये राजर्षिकालकरेतोशीग तिपामे नगवंतेअनुत्तरविमानकह्युं तेसांनलीविस्मितथइने श्रेणिकेपुछ्युं कहोस्वा मी पहेलेप्रश्नेतोतमे नरककह्यो तेएतपस्वीनेकेमसंनवे अनेएकमुहूर्तनेआंतरे अनु त्तरविमानकह्युं तेपणअसमंजस अथवा न्रांतेकरीनेमें अन्यथासांनल्युं तेवारेंन गवंते यथास्थित सर्ववृत्तांतेंकरी श्रेणिकनोसंदेह टाल्यो एटलामां देवदुंदुनिनो नादसांनलीने श्रेणीके पुछ्युं हेस्वामि आमहोत्सवक्यांथायछे नगवंतेकह्युंजे प्रस न्नचंद्रराजर्षिने केवलज्ञानउपनुं त्यांदेवता महोत्सवकरेछे एमएप्रसन्नचंद्रराजर्षिने एकमुहूर्त्तनेअंतरे मननोव्यापार नरकहेते अनेमुक्तिहेतेपणथयो ॥

मनोऽप्रवृत्तिमात्रेण ध्यानं नैकेंद्रियादिषु ॥ धर्म्यं
शुक्लमनःस्थैर्यं नाजस्तु ध्यायिनः स्तुमः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेपवनसाधनादिकथी मननोरोधनिरर्थकछे तेकहेछे केवलमननीअप्र वृत्तिजे मनोव्यापाररहितपणुं तेणेकरीने एकेंद्रियादिकजे एकेंद्रिय बेंद्रिय तेंद्रिय चौ रेंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय तेहनेविषेध्यानजे मनोरोध लक्षण तेशुंनथी एटलेपवनसा धनादिक मनोरोधकरवाथी जोध्यानथायतो एकेंद्रियादिकनेविषेथाय केमकेतेहनेस्व नावथीज मननेअनावेंकरी मनोव्यापारनीप्रवृत्तिनथी तेथीपवनसाधनादिकतेकोइस मांधिलक्षण ध्याननोउपयोगीनथी श्वासरोधादिक क्लिष्टकर्मथी साहमुं मनआर्तियें व्याकुलथाय पणजेधर्मध्यान अनेशुक्लध्यान तेणेकरीने मननीस्थिरतानेनजे एवाजे ध्याननाकरनार तेनेज स्तवियेंछैयें एटलेध्यानते तेनुंजप्रमाणछे इतिनावः ॥ ४ ॥

सार्थं निरर्थकं वा यन्मनः सुध्यानयंत्रितं ॥ विरतं
दुर्विकल्पेभ्यः पारगांस्तां स्तुवे यतीन् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेध्यानेकरी जेहनुंमनसार्थकके०सफलछे अथवानिरर्थकके०निष्फलछे तोपण शुनध्यानेकरियंत्रित एटले सांकलूंथकुं दुर्विकल्पजे अशुनकार्यनामनोरथ ते हथीविरम्यूंछेतोतेसदाध्यानजछे एहवाजे संसारनापारगामी साधुतेहने हुंस्तवुंछुं ॥५

वचोऽप्रवृत्तिमात्रेण मौनं के के न बिभ्रते ॥ निर
वद्यं वचो येषां वचोगुप्तांस्तु तांस्तुवे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेवचनयोगनुं संवरउपदेशछे केवलवचननीअप्रवृत्ति एटलेमात्र वच ननेज अणउचरवेकरीने कोणकोणएकेंद्रियादिक तथा पंचेंद्रियमांपण रोगविशे

थी तथामनुष्यमापण मुंगाबोबडाप्रमुखप्राणी मौनपणानेनथीधरतासुं एटलेतेसर्वेमौ नपणोजधरेछे तोतेथी तेह्नने वचनगुप्तिवतनकह्यिे पण जेह्नुंवचन निरवद्यके० पाप रहितहोय एटलेवचनबोल्यानी शक्तिछतापण सर्वथासावद्यवचननबोले तेनेवचनगुप्ति वतकह्यिे तेवानेहुंस्तवुछु पणमात्रमौनपणोज धरवाथी वचनगुप्तिवतनकह्यिे ॥६॥

निरवद्य वचो ब्रूहि सावद्यवचनैर्यत. ॥ प्रया
ता नरकं घोरं वसुराजादयोद्रुतं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतेकरीने सावद्यवचननुं अनिष्टफलदेखाडेछे हेप्राणितु पापरहि तवचनबोल केमके सावद्यवचनेकरीने वसुराजा प्रमुख ते घोररौद्र एह्वोजे नरक तेने पाम्या तेवसुराजानोसंबंध श्रीहेमाचार्यकृत रामचरित्रमांथी विस्तारेजोइलेवो ए मजाणी असत्यवचन सावद्यवचननो परिहारकरवो ॥ ७ ॥

इहामुत्र च वैराय दुर्वाचो नरकाय च ॥ अग्निद
ग्धा प्ररोहंति दुर्वागदग्धा पुनर्नहि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे जेदुर्वचनो तेआजवमा अनेपरजवमापण वैरकारीथा य अनेवलीनरकदाइपणथाय जेमाटेअग्नियेकरीदाधाजेवृक्षादिक तेफरीनवपल्लवथा य पण दुर्वचननादाधाजेमनुष्य तेनवपल्लवनथाय एटलेस्नेहाकुर तेनेप्रगटेनही केम के दुरवचनथी उपनोजे वैरजाव तेजन्मातरेपणनमटे इतिजाव ॥ ८ ॥

अतएव जिना दीक्षा कालादाकेवलोभवं ॥ अव
द्यादिभिया ब्रूयु र्ज्ञानत्रयभृतोपि न ॥ ९ ॥

अर्थ॥ एटलामाटे दीक्षालीधापछे केवलज्ञानउपजेतिहालगे जिनजेतीर्थंकरदेव तेमति श्रुत अवधि एत्रणज्ञानना धारकछतापण अवद्यजेपाप तथाआदिशब्दथी वचनते ध्यानविघातादिकछे एमजाणी तेह्नाजयथी बोलेनही यद्यपि जगवतने छ द्मस्थपणे मनपर्यवज्ञाननी सत्ताहोय तथा पिइहात्रणज्ञानना धारककह्या तेजाणि येछैयेजे मनपर्यवज्ञानछतो मात्र मननो पर्यायजाणवानुंज साम्यर्थछे तेमाटेआ चार्ये इहाकह्युनही अनेउपाध्यायश्री रत्नचंद्रगणिकृत एजग्रंथनी टीकामापण एम जलख्युंछे वलीविशेषबुद्धिवंतेविचारवु ॥ ९ ॥

कृपया संवृणु स्वांग कूर्मा ज्ञाननिदर्शनात् ॥ सं
वृतासंवृतांगा यत् सुखदुःखान्यवाप्नुयु· ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेकायसंवरकहेछे हेप्राणि तुकरुणायेकरीने कांचवानादृष्टांतनानि

दर्शनथकी पोतानीकायानेसंवर केमके कायानासंवरवंत अने असंवरवंतते अनुक्रमे सुखअनेदुःखपामे एटलेकायाना संवरवंततेसुखपामे अनेअसंवरवंतते दुःखपामे जेमबेकाचबाहता तेमांथीएकेपोताना अंगसंवस्थातो पापीशीयालथीमृत्युनपाम्यो अने बीजेपोतानाअंगसंवस्थानही तो पापीशीयालथी अकालमृत्युपाम्यो एदृष्टांत सविस्तरपणे श्रीज्ञातासूत्रना चोथाअध्येनथी जाणवुं ॥ १० ॥

कायस्तंभान्न के के स्यु स्तरुस्तंभादयो यतः ॥ शि
वहेतुः क्रिया येषां कायस्तांस्तु स्तुवे यतीन् ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ केवलकायने स्थिरतामात्रथीतोतरुजे वृक्ष तथा अचेतनजे स्तंभादिक ते कोणकोणसंवरवंतनथी अर्थातजेकोइ कायव्यापारना असमर्थछे तेसर्वेकायसंवरवंतजछे पणजेहनीक्रियाजे कायव्यापार तेमोक्षनेअर्थेहोय तेहने कायगुप्तिवंत कहियें छैयें जेकायव्यापारने छतेसामर्थ्ये पण अशुभकायव्यापारने रुंधे अनेशुभक्रियानो खप करे तेहने कायगुप्तिवंतकहियें इतिभावः ॥ ११ ॥

श्रुतिसंयममात्रेण शब्दान्कान् के त्यजंति न ॥
इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १२ ॥

अर्थ॥हवेपंचेंद्रियनुं संवरकहेछे तेमांप्रथम श्रोत्रेंद्रियआश्री कहेछे केवलकानना व्यापारना निरोधथकीज कोणकोणएकेंद्रिय बेंद्रिय तेंद्रिय चोरेंद्रिय तथापंचेंद्रियतिर्यंच अनेमनुष्यमध्येपण बेहेराप्रमुखजे श्रोत्रेंद्रियेंविकल होय तेशब्दनाविषयने नथी त्यजतासुं अर्थातत्यजेजछे पणजेवारेंइष्टजे मृदंगादिवाजित्र तथास्त्रीकोयलप्रमुखना शब्द अनेअनिष्टजे खर तथाघूक प्रमुखनाशब्द नेविषे रागअनेद्वेषत्यजे तेवारेंमुनिथाय

चक्षुःसंवरमात्रात्के रूपालोकास्त्यजंति न ॥
इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ केवलनेत्रव्यापारनेज तजवाथकी कोणकोण एकेंद्रिय बेंद्रिय तेंद्रिय तथा अंध मनुष्यादिक तेदृष्टिविषयने नथीत्यजतासुं अर्थातत्यजेजछे पणइष्टजे स्त्रीनां कटाक्ष नाटकप्रमुख तथाअनिष्टजे अमेध्य बीभत्सप्रमुख एवाजेएदृष्टिनाविषय तेहनेविषे राग अने द्वेषने त्यजे तेवारें ते मुनिथाय ॥ १३ ॥

घ्राणसंयममात्रेण गंधान् कान् के त्यजंति न ॥
इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ केवलनाकना व्यापाररहितपणाथी कोणकोण शुभाशुभगंधने एकेंद्रिय

बेंद्रियादिक तथाबीजापण घ्राणेंद्रिये विकलथयेला प्राणि नथीत्यजता अर्थातत्य जेजछे पणइष्टजे फुलप्रमुख अनेअनिष्टजे अमेध्यादिक एवाजेगंध तेहनेविषे राग अने द्वेषत्यजे तेवारे तेमुनिथाय ॥ १४ ॥

जिह्वासयममात्रेण रसान्कान्के त्यजंति न ॥
मनसा त्यज तानिष्टान् यदीछसि तप फल ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ केवलजिह्वाना सवरमात्रथीज कोणकोणशुभाशुभ रसने पृथ्वीकायादिक एकेंद्रिय तथाबीजापण भावरसनेंद्रियथी विकलथयेलाप्राणी ते नथीत्यजतासुं अ र्थातत्यजेजछे पणहेआत्माजो तु तपनुंफलवांछेछे तो तेजेइष्टवाछित मधुरादिकरस तेने मनसाकहेता मनोयोगपूर्वक समता परिणामेकरीनेत्यज ॥ १५ ॥

त्वच·सयममात्रेण स्पर्शान् कान्के त्यजंति न ॥
इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनि ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ केवलत्वचाजे स्पर्शनेंद्रिय तेहनो सयमजे स्पर्शज्ञानना नलेवानी शून्यता तेणेकरीने कोणकोणप्राणी शुभाशुभस्पर्शने नथीत्यजता अर्थातत्यजेजछे यद्यपि एकेंद्रियादिक सर्वजीवने स्पर्शनु विषयहोयछे तथापिकुष्टादिक रोगनावशथकी त्वचानीबहिरिनाथणीने स्पर्शनुंज्ञाननजहोय एभावछे पणइष्टजेस्त्रीस्पर्शादिक तथा अनिष्टजे ताप शीत मास मसा प्रमुखनेविषे राग द्वेषनेत्यजे तेवारेजमुनिथाय॥१६

बस्तिसंयममात्रेण ब्रह्म के के न बिभ्रते ॥
मन सयमतो धेहि धीर चेत्तत्फलार्थ्यसि॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीस्पर्शनेंद्रियमा विशेषकहेछे बस्तिके० मूत्राशय एटलेगुह्येंद्रिय ते नासवरमात्रथीज ब्रह्मचर्यधारणनथीकरता सुं एटले नारकी समूर्छिमपचेंद्रिय प्रमुख तथा पुरुषरूपनपुसक अने स्त्रीरूपनपुसक इत्यादिक कोणकोणप्राणी मैथुननीअश क्तिथी शीलधारणनथीकरता एटलेतेसर्व ब्रह्मचर्यवतजछे पणपरिणामविना असक्ति थीपालवु तेनिष्फलछे माटेहेधीरआत्मा जो तुब्रह्मव्रतनाफलनो अर्थीहोयतो मनने सवरेकरीने छतीशक्ते ब्रह्मव्रतधारणकर ॥ १७ ॥

विषयेंद्रियसयोगा भावात्के के न संयता ॥ राग
द्वेषमनोयोगभावाद्येतु स्तवीमि तान् ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी सर्वइंद्रियादिक तेहनोसयोगजे एकत्रमलवुंते हनाअभा वथी कोणकोणसवरवतनहोय एटलेविषयनोयोग मल्याविनासर्वेसवरवतजछे पण

जेमहापुरुषछे ते तो विषयादिकनो योगछतांपण रागद्वेष अने मनयोगना अनावथी एटलेजेमनथकी रागद्वेषरहितपणे संवरवंतछे तेओनेहुंस्तवुंछुं ॥ १८ ॥

कषायान् संवृणु प्राज्ञ नरकं यदसंवरात्॥
महातपस्विनोप्यापुः करटोत्करटादयः॥१९॥

अर्थ ॥ एमइंद्रियआश्रित संवरकहीने हवेकषायआश्रितकहेछे प्राज्ञके० हेवि वेकीप्राणी कषायजे क्रोधादिक तेनुंतुंसंवरकर केमकेएकषायना असंवरथकी करट अने उत्करट प्रमुख महातपस्वी महानुनाव तेपणनरकनेपाम्या एकरड अनेउक्करड बे ब्राह्मणमासीयाइ नाइहता ते वैराग्यथकी दीक्षालइ उग्रतपकरी अन्यदाकुणालान गरियें कोटनाघरनाळामां चोमासुंरह्या तिहांनगरना जळप्रवाहनेपूरें साधुरखेतणा इजाय एमजाणीदेवतायें कुणालानगरीउपर वरसादथंनाव्यो कुणालाशिवायबीजे सर्वत्रवर्षादवरस्युं केटलेक दहाडे तेवातजाणी नगरलोकें ताडनातर्जनाकरी तेसाधु नेकाढ्या तेवारें क्रोधशेखर करटबोल्यो वर्षमेघकुणालायां तेवारें उकरटबोल्यो दि नानि दश पंच च वलीकरटबोल्यो मुशलप्रमाणधाराभिः वलीउक्करटबोल्यो यथा रात्रौ तथा दिवा तेवचनथी अहोरात्रमुशलधारायें कुणालानगरीउपर मेघवूठो तेहथीकु णालानगरी लोकसहिततणाइगइ महाअनर्थथयो तेवारपछे त्रीजेवर्षे साकेतपूरें ते पापनेअणआलोवेछते करटअनेउक्करडबेमरीने सातमीनरके कालनामा नरकावास मां बत्रीससागरोपमनेआयुषें नारकीपणे अवतर्या एमजाणी कषायनोसंवरकरवो.

यस्यास्ति किंचिन्न तपोयमादि ब्रूयात् स य त्तुदतां परान् वा ॥ य
स्यास्तिकष्टाप्तमिदं तु किं न तद्भ्रंशभीः संवृणुते स योगान् ॥२०॥

अर्थ॥हवेवलीमनोयोगादिकनो संवरकहेछे जेप्राणिनेकांइ तपसंयमादिकनथी अ विरतिछे तेप्राणिजेमतेम असंबंधबोले तथाअन्यजीवनेपीडाकरे एटले अव्रती जेजेअ कृत्यकरे तेतेघटेछे पणविरतिवंतप्राणितो एतपसंयमादिक घणुंजकष्टेंप्राप्तिथायछे ए मजाणी तद्भ्रंशभीःके० रखेमहारांतपसंयमनो विनाशथाय एमबीहीतोथको मनोयो गादिकने केमनसंवरे एटलेविरतिवंतने सर्वथासंवरकरवुंज एनावार्थछे ॥ २० ॥

भवेत्समग्रेष्वपि संवरेषु परं निदानं शिवसंपदां यः ॥ त्यजन्
कषायादिजदुर्विकल्पान् कुर्यान्मनःसंवरमिद्धधीस्तं ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीमननासंवरनुं आधिक्यतापणुंकहेछे जेमननो संवरछे ते बीजा जेटला संवरछे तेसर्वमां मोक्षसंपदानुं परमकारणछे ते माटे विशेषबुद्धिवंत

पुरुषतो कषायादिकथीउपनाजे कुविकल्पते त्यजतोथको मननोसंवरकरे एटले मु क्तिनुं मुख्यकारणजाणीने विवेकीपुरुषे प्रथममननुं संवरकरवु इतिनाव. ॥ २१ ॥

तदेवमात्मा कृतसंवर. स्यात् निःसंगताभाक् सततं सुखेन॥
नि संगभावादथ संवरस्तद्वय शिवार्थी युगपद्भजेत ॥२२॥

अर्थ॥हवे ए अधिकारनो उपसंहारकहेछे तेमाटे एमपूर्वोप्रकारें कृतसंवरके० संव रवतजे आत्मा तेसदाकाले सुखेकरीने नि संगपणानेनजे अथवा वली नि संगपणाथी संवरथाय एटले एबेहुनो अन्योन्यकार्यकारण नावजाणवो केमके कोइकनेनि संग पणाथी संवरआवे अनेकोइनेसंवरथी नि संगतापणुआवे माटेमोक्षार्थीपुरुष तेसंव र अनेनि संगता एबेनेसमकालेसेवे ॥ २२ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे मिथ्यात्वादि संवरोपदेशाख्य श्चतुर्दशोऽधिकार समाप्त ॥ १४ ॥

अथ शुभवृत्तिशिक्षोपदेश.॥आवश्यकेष्वातनु यत्नमाप्तो दितेषु शुद्धेषु त मोपहेषु ॥ न हत्यभुक्त हि न चाप्यशुद्धं वैद्योक्तमप्यौषधमामयापहं॥१॥

अर्थ ॥हवेशुभप्रवृत्तिशिक्षा एहवेनामे पन्नरमोअधिकारकहेछे एअधिकारमा य तियोग्यशिक्षा यतीनेजाणवी अनेश्रावकयोग्यशिक्षा श्रावकनेजाणवी इहांप्रथम आ वश्यक करवायोग्यजाणीने आवश्यकआश्रयी उपदेशकहेछे हेसाधु तथा हेश्रावक तु पापनानिवारक अनेसर्वज्ञनाषित एवाजेशुद्धनिर्मल आवश्यक सामायिकादिक तथाअवश्यकरणीय पोसह उपवास आलोयणादिक तेहनेविषेउद्यमकर तेनाउपर दृष्टांतकहेछे जेम वैद्यनुकह्युजेऔषध तेनखाधुथकुं तथाअशुद्धजेकाचु हरितालप्रमुख तेखाधुथकुपण रोगनिवारक नथाय तेम सर्वज्ञनाषित आवश्यकजाणीनेपण तेह नीक्रियानकरीये अथवाअशुद्धक्रियाकरिये तोतेहथीकर्मक्षयनथाय तेमाटेदोषरहित शुद्धक्रियायेकरी आवश्यकादिकनो उद्यमकरवो एउपनयछे इहांप्रसंगथी सामायिकना दोषलखियेछैये १ वस्त्रेतथाजुजायेकरीने पलांठीबांधे २ आसनआघुपाछुफेरवे ३ चपलपणेसर्वदिशायेजोवे ४ गृहसंबंधीसावद्यकर्मकरे ५ नितीस्थंनादिकेओठगीबे से ६ अंगोपांगमोडे ७ आलसमोडे तथाधर्मकार्येआलसकरे ८ हाथपगेकरकडा व जाडे ९ शरीरनोमेलउतारे १० खाजिखणे ११ विसामणकरावे १२ निद्राकरे ए बारदोषकायथकीजाणवा तथा १ कुवचन कोइनुमर्मनिंदादिकबोले २ सहसात्कारे अविचार्युबोले ३ आर्तिमयविसस्थलवचनबोले ४ आपछंदेंबोले ५ सूत्रनणतो अ

थवानवकारगुणतो वचनसंक्षेपकरे ६ कलहविवादकरे ७ राजकथादिकविकथाकरे ८ हास्यनावचनकहे ए संपदारहितसूत्रनणे १० जावाश्रावचानाश्रादेश आपे एद शदोषवचनथीजाणवा वली १ निर्विवेकीमनेकरे २ यशकीर्तिनीवांछायेंकरे ३ धनला ननेअर्थेकरे ४ गर्वथीकरे ५ नयथीकरे ६ धनपुत्रादिनेअर्थेनियाणुंकरे ७ सामायि कनाफलनो संदेहकरे ८ रीसधरीसामायिककरे ए विनयरहितसामायिककरे १० नक्तिरहितसामायिककरे एदशदोषमनथीउपजे एम मन वचन अने कायाना मलीने बत्रीशदोषसामायिकनात्यजवा तथावांदणाना ३२ दोष अने काउसग्गना १ए दो ष ते नाष्यादिक ग्रंथथी जाणीने त्यजवा ॥ १ ॥

तपांसि तन्याद्विविधानि नित्यं मुखे कटून्यायतिसुंदराणि ॥ वि
घ्नंति तान्येव कुकर्मराशिं रसायनानीव दुरामयान् यत् ॥२॥

अर्थ ॥ हवेतपप्रवृत्तिआश्रयीउपदेशछे मुखके० प्रथमकरतीवेलायेंतो क्षुधतृषादि कसहेवांपडे तेमाटे कडवाछे पण आयतिके० उत्तरकालें सुखनाकरनार एहवांजेवि विधप्रकारना छठ अठम दशमादिक तप तेनित्यंकरवां केमकेतेतपज कर्मनासमूहने निवारेछे तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमरसायन पारो हरिताल सुवर्णादिक औषधिओ तेहिज ज्वरअनेक्षयादिक दुष्टरोगोनेनिवारे तेम इहांपण उपनयलेवुं ॥ २ ॥

विशुद्धशीलांगसहस्त्रधारी नवानिशं निर्मितयोगसिद्धिः ॥
सहोपसर्गांस्तनुनिर्ममः सन् नजस्व गुप्तीः समितीश्च सम्यक् ॥३॥

अर्थ ॥ हवेतपकरनार प्रायेंशीलवंतजोइयें तेमाटेशीलआश्रयीउपदेशछे हेसाधु तुंविशुद्धनिर्मलएवाजे अढारसहस्त्र शीलांगरथतेने धरतोथको नित्यें निर्मित योग सिद्धिके० निपजावीछे अष्टांगयोगनीसिद्धिजेणे अथवायोगजे मनोयोगादिक तेह ना दुःप्रणिधानना निवारवारूप समाधिनी सिद्धिकर एटलेशीलांगधरतोथको मनव चनकायाना योगवशकर एनावार्थछे वलीदेहनेविषे ममत्वरहितथको देवादिकनाक रेला उपसर्ग तेनेसहनकर अनेपांचसमिति तथात्रणगुप्ती तेहनेनज ॥ ३ ॥

स्वाध्याययोगेषु दधस्व यत्नं मध्यस्थवृत्त्यानुसरागमार्थान् ॥
अगारवो नैक्षमटाविषादी हेतौ विशुद्धे वशितेंद्रियौघः ॥४॥

अर्थ ॥ हवेशीलवंतने मनस्थिरकरवानिमित्त जेसिद्धांतादिकनुं स्वाध्याय नणवुं

जणाववु तेहनुं योगजे मनवचनकायायेकरी नित्यअभ्यास करवानेविषे उद्यमकरे वलीआगमनाजे अर्थ तेमध्यस्थवृत्तिये कदाग्रहरहितपणे अनुसरे एटले कदाग्रहे करीने जिनवचननाअर्थनी परुपणाजूठीनकरे वली अगारवके० रुद्धिगारव रसगारव सातागारव तेणेरहितथकु अनेविशुद्धिनिर्मलहेतुजे मोक्षसाधन तेहनेविषे विषादरहितथकु एटलेशुद्धक्रियाकरता अविषिन्नचित्तथकु अनेवलीवशकीधोछे इंद्रियनोसमूहजेणे एहवुथकु नैक्षजेउचनीचकुल शुद्धमानआहारतेहनी गवेषणाकरे ॥४

ददस्व धर्मार्थितयैव धर्म्यान् सदोपदेशान् स्वपरादिसाम्यात् ॥
जगद्धितैषी नवभिश्च कल्पै र्ग्रामे कुले वा विहराप्रमत्त ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसज्झायनुफलते शुभउपदेशछे तेमाटेशुभोपदेशआश्रीकहेछे हेसाधो तुं पोताना अनेपारकानेविषे समानपणे उपदेशकर एटले आमाहारोभक्तछे दाताछे धनाढ्यछे एहवानेधर्मकहुं अथवा आ मिथ्यात्वी कृपणदरिद्रीछे एहवानेउपदेशको णकहे इत्यादिककल्पना त्यजी केवलधर्मार्थीपणेकरीनेज पण आहारवस्त्रादिकने अर्थेनही एप्रकारे नित्यधर्मसबंधीयाजे उपदेशते कहेतोरहे अनेवली सर्वससारीजीवने हितवाछतोथको नवकल्पेकरीने ग्रामनगरादिकनेविषे शुभ उपदेशकरतोरहे तथाविहारकरवानी अशक्तें कुलके० ग्रामनगरादिकनो एकप्रदेशतेनेविषे प्रमादरहितथकुं विहारकर इहांकल्पते मागसिरप्रमुख आठमास जेऋतुबद्धकाल तेहनाआठकल्प अनेश्रावणादिक चारमास चोमासना तेनोएककल्प एरीते सर्वमलीने नवकल्प जाणवा

कृताकृतं स्वस्य तपोजपादि शक्तीरशक्ती सुकृतेतरे च॥ सदा
समीक्षस्व हृदाऽथ साध्ये यतस्व हेय त्यज चाव्ययार्थी ॥६॥

अर्थ ॥ हवेशुभोपदेशनाकहेनारने कृत्याकृत्यनोविचारजोइये तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेसाधु तथाहेश्रावक तुपोतानुं तप जप प्रमुखजेकर्म ते कृत्याकृत्यकहेता एटलुंमेंकीधुं एटलुमेनथीकीधुं एहवुविवेचन तथाशक्ति अनेअशक्ति तथापोतानुसुकृत अनेदुकृत एटलांवाना पोतानामनसाथेसदायविचारीने तेवारपछे मोक्षार्थीथकु साध्यजे साधवायोग्य तपोनुष्ठानादिक तेहनेविषेउद्यमकर अनेवली हेयकहेता त्यजवायोग्य जेविषयकषायादिक तेहनेत्यज सत्पुरुषने चित्तरूपिणीभूमिनेविषे गुरुपदेश तेबीज वृद्धिरूपहोय पछेतेमा विचाररूप जलनासिचवाथी सुकृतरूपवृक्ष विस्तारपामेते माटे मोक्षार्थियें हेयउपादेयज्ञेयना विचारपूर्वक धर्मोद्यमकरवो ॥ ६ ॥

परस्य पीमापरिवर्जनात्ते त्रिधा त्रियोग्यप्यमला सदाऽस्तु ॥
साम्यैकलीनं गतदुर्विकल्पं मनोवचश्चाप्यनघप्रवृत्ति ॥ ७ ॥

अर्थ॥ हवेजेविचारवंतहोयतते त्रियोगीनिर्मलजोइयें तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेआत्मात्रियोगीजे मनवचनकायाना त्रणेयोगतेणेकरी सदाइंनिर्मलथा एटलेसर्वजीवउपरें हितबुद्धिराखीने मनवचनकायानायोग निर्मलकर एनावार्थछे केमके परनेपीडा वर्जवाथकी काययोगतो निर्मलथयोज अनेतेकाययोगनी निर्मलताथी मनपणसमतायेंलीन अनेदुर्विकल्परहितथाय तथावचनपण पापव्यवहाररहितथाय इहांआचार्यें काययोग सुगमछे माटे जुदोकरीने नकह्यो ॥ ७ ॥

मैत्रीं प्रमोदं करुणां च सम्यक् मध्यस्थतांचानय साम्यमात्मन् ॥
सद्भावनास्वात्मलयं प्रयत्नात् कृताविरामं रमयस्व चेतः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेएत्रियोगीनेनिर्मलताते मैत्र्यादिनावनाथीथाय तेमाटेतेकहेछे हेआत्मातुं मैत्रीतथाप्रमोद तथाकारुण्य अनेमध्यस्थता ए चारनावना तेआत्मानेविषे आण अनेवलीतेनावनायेंकरी सम्यक्प्रकारें समताआण वली प्रयत्नात्के० पंमितवीर्यफोरववाथी चित्तने आत्मलयके० ध्यानलीन अनेध्यानथी अविछिन्न एहवुं थयुं थकुं शुननावनाजे अनित्यादिक तेहनेविषेरमाड ॥ ८ ॥

कुर्यान्न कुत्रापि ममत्वनावं न च प्रनो रत्यरती कषायान् ॥ इहापि
सौख्यं लनसेप्यनीहो ह्यनुत्तरामर्त्त्यसुखानमात्मन् ॥ ए ॥

अर्थ ॥ हवेएनावनाओते ममत्वनात्यागथीहोय तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेसमर्थ आत्मा जोतुंकोइवस्तुनेविषे ममत्वनकरें अनेवली रति अरति अनेकषाय नकरे एहवोतुं वांछनारहितथको रहेतो आनवेंज अनुत्तरविमानवासी देवतानाजेवुं सुखपामें केमके अनुत्तरवासी देवतामां स्वामिसेवकनो व्यवहारनथी तेमाटे संसारिक सुख जोतां अनुत्तरविमाननो सुखते सर्वोत्कृष्टजाणवुं ॥ ए ॥

इति यतिवरशिक्षां योऽवधार्य व्रतस्थश्चरणकरणयो
गानेकचित्तः श्रयेत ॥ सपदि नवमहाब्धिक्लेशराशिं
स तीर्त्वा विलसति शिवसौख्यानंत्यसायुज्यमाप्य ॥१०॥

अर्थ ॥ हवेएअधिकारनो उपसंहारकहेछे एप्रकारें यतिवरजे नलासाधु उपलक्ष

णथी जलाश्रावकपणलेवा तेसबंधीनीजेशिक्षा तेनेचित्तमाधरीने एकाग्रचित्तथकुं चरणकरणयोगजे चरणसित्तरी अनेकरणसित्तरीनागुण तेनेजेसेवे तेसाधु तथा ते श्रावक शीघ्रके० उतावलु क्लेशड खना समूहरूपजे ससारमहासमुद्र तेथकीतरीने मोक्षसुखनुं अनंतपणुं तेह्नु साम्रुज्यके० जेसहचारीपणुं तेपामीने वलीमोक्षनाअविनाशीसुखनीपरे पोतेपणस्था अविनाशीजावपामी विलसतिके० सर्वदासुखनेअनुजवे ॥१०॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमेऽशुजप्रवृत्तिशिक्षोपदेशाख्य पचदशोऽधिकारसमाप्त

अथ ग्रथोपसंहाराय साम्यसर्वस्व ॥ एव सदाभ्या सवशेन सात्म्य नयस्व साम्य परमार्थवेदिन् ॥ यत करस्था· शिवसपदस्ते जवंति सद्यो जवन्नीतिभेत्तु·॥ १॥

अर्थ ॥ ह्वेग्रंथनाउपसंहारनेअर्थे साम्यसर्वस्वनामे सोलमोअधिकारकहेले हेपरमार्थनाजाण विवेकीपुरुष तुएमपूर्वोक्तप्रकारे अभ्यासवशेकरीने साम्यजेसमता तेह्ने सात्म्यकहेता आत्मासाथे ऐक्यपमाड जेसमताथी जवन्नीतजे ससारसवंधीजय तेह्नेजेदवावालो एवोजेतु तेतुजने मोक्षनी संपदाओ ते तत्कालमात्र करस्था कहेता हस्तप्राप्तथाय ॥ १ ॥

त्वमेव दु खं नरकस्त्वमेव त्वमेव शर्मापि शिवं त्वमेव ॥ त्वमेव कर्माणि मनस्त्वमेव जहीह्यविद्या मवधेहि चात्मन् ॥२॥

अर्थ ॥ ह्वेआत्माने अविद्यानोपरिहार अनेसमतानुंधरवु कहेले हेआत्मातुदुखनेकारणे प्रवर्त्त्यो माटे दु खतेतुजले एमआगलपण सगलीवस्तुनुं आत्माजकारणरूपजाणवु वलीनरकनुंकारणतेपणतुजले वलीसुखपणतुले अनेमुक्तिपणतुले वलीकर्मपणतुले अने मनोव्यापारना प्रकाशकपणाथी मनपणतुले तेकारणमाटे अवज्ञाजेधर्मकार्यनेविषे अनादरकरवो एटलेह्मणा धर्मनथीयातो तोपलेकरीश इत्यादिक कल्पना त्यजीने अवधेह्किकहेता धर्मकार्यनेविषे सावधानरहे ॥ २ ॥

नि संगतामेहि सदा तदात्मन्नर्थेष्वशेष्वपि साम्यजावात् ॥ अवेहि विद्वन्ममतेव मूलं शुचां सुखाना समतेव चेति ॥ ३॥

अर्थ ॥ ह्वेसर्वत्रपणे नि सगपणानुं प्राधान्यपणुकहेले हेआत्मा तेकारणमाटे सकलपदार्थनेविषे समताजावथी सदाय नि सगपणाने पाम अनेवली हेनिपुणप्राणि

सकलशोकनुंमूल ते ममताज छे अनेसकलसुखनुंमूलते समताज छे एहवुं जाणीने ममताने त्यज अने समताने आदर इतिभावः ॥ ३ ॥

स्त्रीषु धूलिषु निजे च परे वा संपदि प्रसरदापदि चात्मन् ॥ त
त्त्वमेहि समतां ममतामुक् येन शाश्वतसुखाद्वयमेषि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनिःसंगताते ममत्वमुकवाथीजथायछे तेमाटेममतात्यजवानुं उपदेशे छे हेआत्मा ते पूर्वोक्तकारणथी तुंममतारहितथको स्त्रीनेविषे अनेधूलिनेविषे वली स्वजननेविषे अनेपरशत्रूनेविषे तथा वलि संपत्तिनेविषे अने विस्तारपामतीआपदाने विषे समतानेपामवेकरीने सरखोपरिणामराखजे एटलेमोक्षसुखनोभोक्ताथाइश ॥४

तमेव सेवस्व गुरुं प्रयत्ना दधीष्व शास्त्राण्यपि तानि विद्वन् ॥ न दे
वतत्वं परिभावयात्मन् येभ्यो भवेत्साम्यसुधोपभोगः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतातेज सकलपदार्थनो सारकरीनेउपदेशेछे हेविद्वन् हेआत्मन् तुंउद्यमकरीने तेहिजगुरुनेसेव अनेगुरुसेवनाकरीनेशास्त्रपण तेहिजभण तथाशास्त्र भणीने तत्वरहस्यपण तेजचित्तमांचिंतव केजेगुरुथी अनेशास्त्रथी तथाजेतत्वथी समतारूपीयुं जेअमृत तेनोउपभोग आस्वादपामे एटलेजेजेपदार्थनेतुं समतानुंकारणजाणें तेतेपदार्थनुंस्वरूपकर केमकेबीजासर्वपदार्थ तेनिरर्थकछे ॥ ५ ॥

समग्रसच्छास्त्रमहार्णवेभ्यः समुद्धृतः साम्यसुधारसोऽयं ॥ निपी
यतां हे विबुधा लभध्व मिहापि मुक्तेः सुखवर्णिकां यत् ॥६॥

अर्थ ॥ हवेआचार्यग्रंथने उपसंहरतो ग्रंथनीउपादेयतादेखाडेछे हेपंडितजनो तमेसमग्र भलांजे धर्मशास्त्र तेरूपीयो जेमहासमुद्र तेहथीउधर्युंजे एसमतारूपियुं सुधारसके० अमृतरसतेप्रत्यें तुमें पीयतांकहेतां आदरसहितसांभलो तथाभणो जेथी तमेआलोकेपण मुक्तिनासुखनी वर्णिकाकहेतां वानगीनेपामो केमकेसमतारसमय जीवते आलोकेपण मुक्तिसुखने अनुभवेछे ॥ ६ ॥

शांतरसभावनात्मा मुनिसुंदरसूरिभिः कृतो ग्रंथः ॥
ब्रह्मस्पृहया ध्येयः स्वपरहितोध्यात्मकल्पतरुरेषः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनेछेडे आचार्यपोतानुंनाम अनेग्रंथनुंनाम जणाववाकहेछे स्वहेतां ग्रंथकर्त्ताने तथापरजेश्रोताप्रमुख एबेहुनेहितकारी एवोजेआअध्या

त्मकल्पद्रुमनामेग्रंथ तेतपगच्छाधिराज श्रीमुनिसुंदरसूरियेकीधो ते एग्रंथ पन्फितें ब्रह्मजेज्ञान तेहनी वाछाये नणवुं अथवा ब्रह्मजे मुक्ति तेहनीवाछाये चितववु ॥ ७ ॥

इममिति मतिमानधीत्य चित्ते रमयति यो विरमत्यय नवाडाक् ॥स च नियतमतो रमेत चास्मिन् सह नववैरिजयश्रिया शिवश्रीः॥८॥

अर्थ ॥ हवेफलोपदर्शन द्वारे मंगलगर्नित उपसंहार वाक्यकहेछे जेमतिवत पुरुष अध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनेनणि पोताना चित्तनेविषेरमाडे रात्रदिवसचितवे तेपुरुष ससारथकी थोडाकालमा विरक्तथाय अनेवलीएहनाज चितनथी तेपुरुषनेविषे संसाररूपीया शत्रुनीजे जयलक्ष्मी तेणेसहित शिवश्रीजेमोक्षलक्ष्मी तेमा रमिके० आश्रयीनेरहे एटलेतेससाररूप शत्रुनेजीतीने मोक्षरूपलक्ष्मीपामे इतिअध्यात्मकल्पद्रुमे साम्यसर्वस्वनामा षोडशोधिकार समाप्त ॥ १६ ॥

ए श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनो बालावबोधार्थे उपाध्यायश्री रत्नचंद्रगणिकृत तथाउपाध्यायश्री विद्यासागरगणिकृत एबेटीकाजोइने मे महारीबुद्धिने अनुसारे मुज सरखा स्वल्पबुद्धिवत प्राणिना उपकारने अर्थे लेशमात्र लख्योछे तेमा अनाभोगथी तथाअज्ञानथी तथाभ्रातिथी जेकाइसूत्रना तथाटीकाना अनुसारथी ओछुंअधकु अयुक्त लखाणुंहोय तेहनुं मिछामीदुक्कडं अथवाकिहाएक सुगमपणानेअर्थे किहांएक साहचर्यथी किहाएकरूढिथी जेकांइ विभक्ति वचन लिंग कारक अन्वय प्रमुखनो विपर्यास कीधो होय तेअपराध बहुश्रुत गीतार्थेखमवो तथा उपकारबुद्धे अशुद्धटालिने शुद्धकरवु

अथ प्रशस्ति ॥ श्रीमत्तपगणगगना गणनासनतरुणतरणिनिभ ॥श्रीराजविजयसूरिर्बभूव भुवि भूरि वितानयशा ॥ १ ॥ योत्यान्द्गीद्भिनव घन सुविहितानुष्टानवद्रादरो लोक कोकमिव प्रबोधमनयज्जोनिश्च गोस्वामिवत् ॥छित्वादीकिटदर्पमुज्ज्वलपटाश्चक्रे विशेषोज्ज्वलान् यो वाचालितमालवेश्वरसितछत्रप्रभावोज्वल ॥२॥ रत्नत्रयप्रथितसंयमभृत्तदीय पट्टेप्वरत्नविजयाव्हयसुरिरासीत् ॥ येन प्रशातरजसा प्रशमार्णवेन रत्नाकरायितमनल्पगुणौघरत्नै ॥ ३ ॥ तस्यान्वये निखिलभूतलगीतकीर्ति श्रीहीररत्न इतिसूरिवरो विरेजे ॥ स्वर्ग गतोप्यखिलनक्तसमीहितानि योद्यापि पूरयति नव्य इवामरद्रु ॥४॥ तत्पट्टभूषणमणिर्जयरत्नसूरि सर्वाग्रणीर्गुणिषु भूरिगुणाश्रयोऽभूत् ॥ श्रीभावरत्न इति भावविदा वरेण्य स्तत्पट्टभृज्जयति सप्रति सूरिराज ॥५॥ श्रीहीररत्नसूरे

मुख्याः शिष्याः सुनिर्मलाभिख्याः ॥ श्रीलब्धिरत्नविबुधाः शास्त्रार्णवपारदृश्वानः ॥६॥ श्रीसिद्धिरत्ननाम्ना पाठकवर्यास्तदन्वये तदनु ॥ श्रीहर्षरत्नवाचक, वरा वरीयोगुणैर्वं द्याः ॥ ७ ॥ लक्ष्मीरत्नगणीशा आसन् दुर्वादिदनुजलक्ष्मीशाः ॥ श्रीज्ञानरत्नगणयस्त दाश्रवाः सांप्रतं जयंतु चिरं ॥८॥ तच्चरणकमलसेवा भृंगस्तत्संगसमयतरंगः॥ सुविहि तकल्याणविमल गणिवरविहितार्थिनीनुन्नः ॥ ए ॥ बालावबोधवार्त्ता मध्यात्मसुरद्रु माख्यशास्त्रस्य ॥ मुनिहंसरत्न एता मतनोत्तनुबुद्धिसत्वहितां ॥१०॥ शोध्यं सुतत्ववि ज्ञैर्ग्रंथो ऽयं धीधनैः प्रवाच्यमानश्च॥ सद्भावसंपदाढ्यै राचंद्रार्कं चिरं जयतात्॥११॥

इति श्रीमुनिसुंदरसूरिकृतअऽध्यात्म
कल्पद्रुमो बालावबोधसहितः संपूर्णः

॥ अथ श्री सीतलनाथाष्टकं ॥

वृषभतुल्यगतिं वृषदं सदा व्यजितदर्प्पकदर्प्पकभेदकं ॥ अमितशंभवभीतिविवार्जितं जिनमहं प्रणमामि सुशीतलं ॥ १ ॥ दृढरथाख्यकुलागभिनंदनं सुमतिधाम विचक्ष णपुंगवं ॥ छविविनिर्जितपद्मप्रभं वरं जिनमहं० ॥ २ ॥ यमसुपार्श्वविभूषितविग्रहं विशदचंद्रप्रभाननबंधुरं ॥ सुविधिरंजितभव्यजनव्रजं जिन० ॥ ३ ॥ विबुधमोदकशि तलवाग्भरं सकलश्रेयसिकामकुटोपमं॥ सुवसुपूज्यपदं शिवदायकं जिन० ॥ ४ ॥ वि मलनीरजपत्रविलोचनं गृहमनतगुणस्य कृपापरं ॥ सदयधर्म्मप्रवृत्ति प्ररूपकं॥ जिन० ॥ ५ ॥ जगति शांतिवितानविपादकं धृतशमं किल कुंथ्वमनिंदितं ॥ विगतदो षमरं भविनौभिभं ॥ जिन०॥६॥युगकषायजयप्रतिमल्लभं कनकवर्णधरं मुनिसुव्रतं ॥ नमत दानवमानवराजितं ॥ जिन० ॥ ७ ॥ विततधर्म्मरथांगकनेमिकं निखिलविष्टप पार्श्वमदूषणं॥ सबलमोहविनाशनवीरकं ॥ जिन० ॥ ८॥ इति स्तुतः श्रीजिनशीत लाख्यः स्थितः पुरे रायधनाभिधाने॥ श्रीवीरचंद्रस्य मलूकचंद्र नाम्ना विनेयेन वशां श्रिये स्तात् ॥ ए ॥ इति श्रीमच्छीतलनाथाख्यदशमतीर्थाधिपतेरष्टकं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्री कल्याणसागरसूरिकृत, माणिक्यस्वामिस्तवनप्रारंभ ॥

नम सिद्धेभ्य ॥स्रग्धराछंद ॥स्वामी माणिक्यपूर्वस्त्रिभुवनतिलकश्रितितश्रीसुराद्रि स्त्रै लोकोद्योतकर्ता प्रथिततरयशा, श्रित्रकूटनाममत्र ॥ श्रीमल्लीनाभिभूपान्वयगगनरवि र्मजुकल्याणकाती राष्ट्रे सदक्षिणाख्ये निरुपममहिमा ख्यातिकारिप्रताप ॥ १ ॥ द्रुत विलंबितछंद ॥ प्रवरधर्मधनार्पणकामगौ रमृतवाग्गुणरंजितनागर ॥रिपुसमूहनिवार णसद्भटो वृषभचिन्हितपादकुशेशय ॥२॥ हरिणीछंदः॥ शुभमतिकरश्चंद्रादित्याधिको त्तरभास्वर स्त्रिभुवनमणि र्विश्वाधारो धरेश्वरकीर्तित ॥ उपशमरसासक्तस्वांतोप्यनंत चतुष्टयी गुणमणिखनिर्नष्टारिष्टामयाधिजराव्यथ, ॥ ३ ॥ पंचचामरछंद ॥ अखर्व देहराजितो यतीश्वरो घृणाप्रशीतमानस कलाधर ॥ अनेकलब्धिमडितो वृषाकर शिवाब्धिवृद्धिचद्रमा नतासुर ॥ ४ ॥ भुजगप्रयातछंद ॥ प्रभुर्मारुदेवश्चिदाल्हादली न, सदाचारलीलाविलासातिशाली ॥ महामोहमातंगपंचास्यकल्पो हितार्थी कलाशि ल्पविज्ञानजापी ॥ ५ ॥ मालिनीछंद ॥ जलधिनिभगनीर सारसारंगघोषो जितविष यविकारो ज्ञानबुद्धिप्रदाता॥ खलसमिरप्रदाकुर्देवदेवाधिराज समवसरणशोभासिंधु पूरौघमेघ ॥६॥ नाराचछंद ॥ श्वेतातपत्रचामरैर्युक्तो मनोज्ञपुण्यले ॥ भव्यांगिराशि वदितो धर्मार्थमोक्षसाधक ॥ ७ ॥ आर्याछंद ॥ देवैर्ध्येयो विमल सुंदरवशो नृपूत्तरा त्मापि ॥ मान्य सतामजस्रं सदोदयो वरातिशयधर ॥८॥ गीतिछद ॥ त्रैलोक्या वासविभु समस्तगुणरत्नकलितसाधुमना ॥ एनस्तमोनिशेशः सुश्लोकैर्धवलिता श आशाद ॥ ९ ॥ नगस्वरूपिणीछंद ॥ सदार्यमार्गदेशको प्यमेयभाग्यधारक ॥ प्रभूतसत्वपालको विवेकनीतिकारक ॥१०॥ माणवकछद ॥ दु खहरो नाकिनुत स्त्य क्तमहादोषभर ॥ पारगतस्तीर्थंकर शीलशाली ज्ञानधन ॥११॥ तोटकछंद ॥ कम लाननमोहितसभ्यजन समयार्थनिरूपणरम्यसुधी ॥ नृशिलीमुखखेलनतामरस पु रुषोत्तमपुण्यनिधिर्वरद ॥ १२ ॥ मणिमध्यछंद ॥ लक्षणपंक्तया सारतनु र्निर्जितमा यालोभकलि ॥ आदृतसाध्वाचाररति सादरदेवाधीशपति ॥ १३ ॥ चपकमालाछं द ॥ केवलयुग्मालोकितलोका लोकविभाग सयमिसेव्य ॥ इंद्रियबाणाभेदितचेता श्चपकमालामडितगात्र ॥१४॥ हसीछंद ॥ प्रासानदो भुवनमुकुट स्तीर्थस्वामी विस्तृत नयन, ॥ सश्रीकात्मा सुकृतनिलयो योगींद्रो वै विजितकपट ॥ १५ ॥ शालिनीछं द ॥ आदेयाख्यो मुक्तिजस्फारसौख्यो विश्वोत्तंसो दुष्टकर्मारिहंता ॥ चक्रेश्वर्याराधितो गोमुखेश कांताकारश्चोसधर्माधिकार ॥१६॥ केकीरवछद ॥जगतीशपूज्यो जयताज्जि

नेशः कुशलार्थिवल्लीततिवारिधारः ॥ विशदावदातावलिचित्तनामा नववार्द्धिपोतः कुलपाकनाथः ॥ १७ ॥ कुलकं ॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ एवं मया संस्तुत आदिदेवो नूयात् सदा संघगणस्य नूत्यै ॥ क्षेमंकरो विश्वजगत्सुदीपः कल्याणमांगल्यकलापकोशः ॥ १७ ॥

॥ अथ सूर्यपुरीयश्रीसंनवजिनस्तवनप्रारंनः ॥

वसंततिलकाछंदः ॥ कामं नमोऽस्तु सततं जिनसंनवाय चंडाननाय कमलामललोचनाय ॥ देहप्रनास्थगितलोकचमत्कराय डुर्ध्यानपादपविनेदनासिंधुराय ॥ १ ॥ देवैः स्तुताय नवसागरपारगाय कीर्तिप्रसूनसुरनीकृतविष्टपाय ॥ सन्मूर्तिकांतिततिरंजितमानवाय सेनांगकुक्षिवरशुक्तिकमौक्तिकाय ॥ २ ॥ अब्जोपमाय जिनशासनदीपकाय सूर्य्याख्यबंदरमनोरममंडनाय ॥ नव्याब्जकाननविनासननास्कराय नानार्थिदानहरिचंदनसन्निनाय ॥ ३ ॥ आदेयनामकलिताय शुनाशयाय सिध्यंगनामिलनसादरलोलुपाय ॥ राद्धांतहार्द्दकथनोत्तरकोविदाय तेजःप्रनावयशसामवनीश्वराय ॥ ४ ॥ अज्ञानमोहनयसंज्वरनेषजाय सौनाग्यनाग्यगुणरत्नकरंडकाय ॥ अष्टापदान्ततनुवर्णविराजिताय निर्लोनहंसरतिखेलनमानसाय ॥ ५ ॥ आव्हानमंत्रविनिवारितपातकाय कल्याणसागरतरंगकलाधराय ॥ डुष्टारिचक्रलवणांबुधरोपमाय वाचासुधाश्रवणहर्षितनागराय ॥ ६ ॥ सद्धर्म्ममार्गविधिदेशनदेशिकाय दुःखौघवारणमृगेंद्रपराक्रमाय ॥ लोकातिशायिमहिमाचलनूषणाय गंधर्वलंछनसुशोनितपत्कजाय ॥ ७ ॥ सस्यौघवृद्धिकरणाय जितेंद्रियाय शुद्धान्वयोन्नतिकराय कृपालयाय ॥ मिथ्यात्वतापशशिचंदनपादपाय डुष्कर्म्मवायुनुजगाय नरार्चिताय ॥ ८ ॥ संकल्पकल्पनविवर्जितमानसाय गांनीर्य्यधैर्य्यमणिसंनवरोहणाय ॥ सज्ञानबुद्धिवरदाय गुणाकराय कौशल्यवल्लिपरिवर्द्धनमंडपाय ॥ ए ॥ इंद्रवंशाछंदः ॥ स्तोत्रं चतुर्थ्यंतविनक्तिसंयुतं ध्यायंति ये संनवदेवरागिणः ॥ तिष्ठंति तद्धाम्नि शुनाः समृद्धयः कल्याणसंपादनकामधेनवः ॥ १० ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ लक्ष्मीकेलिगृहं सदावलिनतं श्रीसंनवाख्यं जिनं सन्मार्तंडपुरामलाचलवरोत्सीषे नवाब्धौ तटं ॥ देवाधीशनरेशशेषपटलैः संसेवितं कामहं मुक्तिस्त्रीसुखरंगलीनमनिशं सेवे मुदा सिद्धये ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीसुविधिजिनस्तवनप्रारंनः ॥

५. द्रुतविलंबितछंदः ॥ सुविधिनाथजिनं नयनामृतं सुविधिनाथजिनं महिमालयं ॥ जगल्लेनाथजिनं नररंजनं सुविधिनाथजिनं वरकेवलं ॥ १ ॥ सुविधिनाथजिनं कमश्रिये स्तात्सुविधिनाथजिनं नवदं परं ॥ सुविधिनाथजिनं द्युतिकीर्तिदं सुविधिनाथजिनं

सुविधिप्रदं ॥ २ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतद्भवि सुविधिनाथजिनं जडतापहं ॥ सुवि धिनाथजिनं मकरांकितसुविधिनाथजिनं जगदंचितं ॥ ३ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतां हित सुविधिनाथजिनं परमेश्वर ॥ सुविधिनाथजिनं श्रुतसूरिण सुविधिनाथजिन शि वपारगं ॥ ४ ॥ सुविधिनाथजिनं शुनदर्शन सुविधिनाथजिन जनतानतं ॥सुविधिना थजिनं वरद विन्नुं सुविधिनाथजिन नमितासुर ॥ ५ ॥ अनुष्टुप्छंद ॥ सितेतरपुरा धीश सुविधिर्नवमो जिन ॥ सघस्य सुखदो नूयात् कल्याणसूरिणा स्तुत. ॥६॥

॥ अथ श्रीशांतिनाथजिनस्तवनप्रारंन ॥

डुतविलंबितछंद ॥सकलदेवनरेश्वरवदित विबुधमानवसंस्तुतपूजितं॥कमललोचनरंजि तनागरनविकपातकतामसनास्कर ॥१॥ निखिलवांछितदानसुरागम विदितशास्त्रविचा रनयागम॥कठिनकर्मदवानलनीरद परमशांतिरदामृतशांतिदं॥२॥विविधलक्षणरजित संचर सुविधिमार्गप्रकाशनतत्पर॥चपलमत्तमतंगजगामिन कमलकोमलमासलपाणि नं॥३॥ दलितदन्नमहाधृतिविग्रह विहितमोहमहावलिनिग्रहं ॥ दृढपरीषहवाघुन्नुजग मं किन शुनंयुमनीष्टसमागमं ॥ ४ ॥ नविचकोरसुखाय कलानिधिं विनयधैर्यगुणो त्करशेवधि ॥ मुनिपडंह्निनिवासकुशेशयं विधुसुधामधुसारतराशयं ॥ ५ ॥ कुसुमस न्निनदतविराजित सुनगनाग्यसुखाकरशोनित ॥ निजनुजाबलसाधितराष्ट्रक जित विपक्षगण नतराजक ॥ ६ ॥ कुशलकेलिविलासनुव पर विशदकीर्त्तिविकाशिदिगंत र॥कुमतसिंधुरसिंधुरवैरिण सुमतिकामितसंततिकारण ॥७॥ वरसुवर्णसवर्णसुवर्णक जितहृषीकमधर्मनिवारक ॥ हरिणसेवितपादकज जिनं हितकर स्तुतनिर्जरसज्ज न ॥ ८ ॥ प्रवरवार्षिकदानगुणैर्वर हृतदरिद्रपर परमेश्वर ॥ समधरीकृतमेरुसुरडुमं प्रचुरसर्वगुणादधिकोत्तमं ॥ ९ ॥ विकटडुर्जयमन्मथशंकर जनकलापिघन विगता तर ॥ लपननिर्जितचंद्रमस नृश विगतदोपकलि च महौजस ॥ १० ॥ अशिवविघ्न घनाघनमारुत विपयतापवश जनतामत ॥ शिववधूपरिरंनणलोलुप विमलकेवलि साधुकुलाधिप ॥ ११ ॥ नजत शांतिजिन तु शिवकर कुशलसागरवृद्धिकलाधर ॥अ तुलरूपवशीकृतमानव प्रणतसादरकिन्नरदानव ॥ १२ ॥ द्वादशभि कुलकम् ॥ मा लिनीछंद ॥नुवननलिननानो शांतिदेवस्य नर्तुर्नवजलनिधिसेतो र्ड खदारिद्र्यहर्त्तु॥ निजहृदयविशुद्ध्या स्तोत्रमेतत्पठति प्रतिदिनमपि ये ते संपद प्राप्नुवंति॥१३॥

॥ अथ श्रीशांतिजिनस्तवनप्रारंन ॥

स्रग्धराछंद. ॥ दयाच्छ्रीशांतिदेवो वरकनकतनु सारसौख्यानि शश्वद्भक्तानां नक्ति

नाजां त्रिभुवननगरे स्फारकोटीरहीरः ॥ चार्वाकारेः प्रणेता प्रणतहितकरः काम
दो मारिवारः सर्वज्ञाख्यातनामा प्रकटितमहिमा प्राप्तकर्मारिपारः १ ॥ तोटकछंदः॥
सुरमानवपूजितपाणिकजः कमलोदयकारकधर्म्मधनः ॥ विगतामयदूषणजन्मततिः
शुभसागरसोमनिभो विमलः ॥ २ ॥ इति प्रथमांतविभक्तिकाव्ययुग्मं ॥ भुजंगप्रयात
छंदः ॥ अजय्यं विभुं विश्वपूज्यं प्रसन्नं जिनं सत्प्रभं शंकरं देवदेवं ॥ सदाज्ञानव
ल्लीततौ मेघमेकं स्तुवे शांतिनाथं कलौ कामकुंभं॥३॥ हरिणीछंदः॥ कमलवदनं प्रा
प्तानंदं नताभुवनचंचनं गजपतिगतिं विश्वाधारं सुरेश्वरवंदितं॥सदयहृदयं त्यक्तातंकं वि
निर्जितशोचनं परमपददं ज्ञातार्थौघं त्रिकालविदंचितं ॥ ४ ॥ इंद्रवंशाछंदः ॥ अर्चं
ति देवा भवपारगं जिनं कल्याणकारं मुनिवृंदसेवितं ॥ छत्रादिसल्लक्षणलक्षितं क्षि
तावानंदसंदोहकरं सुधामयं ॥ ५ ॥ इति द्वितीयांतविभक्तिकाव्यत्रिकं ॥ शालिनीछं
दः॥ प्राज्यं राज्यं चक्रवर्तित्वसंगं त्यक्त्वा दत्वा स्वर्णरूप्यादिदानं॥श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्म
लोकांतिकानां येनावाप्तं संयमं मुक्तियोग्यं ॥ ६ ॥ द्रुतविलंबितछंदः ॥ अमितपुण्य
वता जनतावता कुगतिवारणतत्परसजिरा ॥ नतनरामरकिन्नरशालिना भगवता
भुवि शमे विधायिना॥७॥इति तृतीयांतविभक्तिकाव्य द्वयं॥इंद्रवज्राछंदः॥श्रीशांतिदेवाय
नमोऽस्तु नेत्रे विघ्नौघहर्त्रे शिवमार्गदात्रे ॥ चक्रांकहस्ताय समस्तभर्त्रे शंखेंदुहारोज्ज्व
लशुक्लकर्त्रे ॥ ८ ॥ रथोद्धताछंदः ॥ दर्शनामृतनिलीनजंतवे विश्वशास्त्रनयनीतिहेत
वे॥लोभसागरसुवेलसेतवे द्वापरावलितमिस्त्रभानवे ॥९॥ इति चतुर्थीविभक्तिकाव्ययु
ग्मं ॥ उपेंद्रवज्राछंदः ॥ अघानि नश्यंति पुराकृतानि प्रशस्तनाम्नातिशयप्रसक्तेः ॥
अनेकसंसारनिबंधितानि प्रगाढबंधस्थितिसंचितानि ॥ १० ॥ मालिनीछंदः ॥ भव
ति सुखमनंतं शांतिनाथप्रसादाद्धरिणशरणदातुर्विश्वसेनांगजातात् ॥ नतभविकज
नानां प्रीतिराजात्प्रकामं निरवधिजिनरागे लग्नसन्मानसानां ॥ ११ ॥ इति पंचम्यं
तविभक्तिकाव्यद्वयं ॥ शिखरिणीछंदः ॥ सदा ध्यानं शांतेरखिलगुणधाम्नः शुभवतो
धरंति श्रीकारं सुमतिमतिकारं भयहरं ॥ नरा भव्याः शक्त्या विगतमदतंद्राः श्रुतप
रास्त्रिसंध्यं सद्ध्यानं प्रबलतरभाग्योदयमतः ॥१२॥ विद्युन्मालाछंदः ॥ शांतेः शांतेः
पादद्वंद्वं नत्वा नत्वा सश्रीकाः स्युः॥ भोभोः श्राद्धा आयुष्मंतस्तुष्ट्यानंदं कृत्वा कृत्वा॥
१३ ॥ इति षष्ठीविभक्तिकाव्यद्विकं ॥ वसंततिलकाछंदः ॥ चेतोस्ति चेद्भवपयोनिधि
५. प्राप्त तीर्थंकरे जिनपतौ किल शांतिदेवे ॥ भक्तिं कुरुष्व सततं विपुलामुदारां
लाख्य प्रमादमपि कर्मविशेषजन्यं ॥ १४ ॥ दोधकछंदः ॥ दुर्गतिसागरपोतसमुद्रे नि
श्रिये स्तात्गलनमेरौ ॥ शारदशुद्धसुधाकरवक्त्रे शंखसमाननिरंजनचित्ते ॥ १५ ॥ ना

राघछंद ॥ कारुण्यरंगरजिते कार्पण्यदोषवर्जिते ॥ देवाधिपेऽचिरासुते लोकोपकारक मेते ॥ १६ ॥ इति सप्तमीविभक्तिकाव्यत्रिकं ॥ वशस्थछंद ॥ स्वकीयवशांबरभास्कर प्रभो विशालगंगाजलशुभ्रकीर्त्ते ॥ अपारसंसारभयाब्ध सत्वर कृपापरस्त्वं परिरक्ष सेवकान् ॥ १७ ॥ इति संबोधनविभक्तिकाव्यमेक ॥ मंदाक्रांताछंद ॥ कल्याणोक्तं कुशलजनन सर्वसंघस्य नित्य नानावृत्ते. प्रकलितमिदं स्तोत्रमेतत्रिकालं॥मुक्त्वाऽऽल स्यं भणति मनुजो भाविनाभावितात्मा गेहे लक्ष्मीर्भवति दृढता तस्य दीर्घायुष श्च ॥ १८ ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ कल्याणोदधिवर्द्धन कलिहर कौशल्यमालास्पदं सौभाग्यौघकर, विभक्तिकलित कार्यैर्विभिन्नै पर ॥ श्रीशांतेः स्तवन पठति भविन स्तपुण्यपण्यालयास्तेषा, धाम्नि शुभे निवासमतुला कुर्वंति संपत्तयः ॥ १९ ॥

॥ अथ श्रीअंतरिक्षपार्श्वस्तवनप्रारंभ ॥

इंद्रवज्राछंद ॥विश्वेश्वर विश्वजनेशपूज्यं सर्वार्थनिष्पादनकामकुंभं॥ प्रख्यातिमंतं महिमौघलक्ष्म्या पार्श्वं भजे संस्थितमंतरिक्षे ॥१॥ कल्याणमालागृहमंगिदेव विद्या धराधीशनुतान्हिपद्म ॥ सर्वत्र राष्ट्रेषु विशालकीर्त्तिं पार्श्वं०॥२॥ रोगाधिचितार्त्तिसमू हतापभेपज्यमाचारविचारसारं ॥ सन्नीलरत्नछविभूषितांगं पार्श्वं०॥३॥ संसारसिंधौ वरयानपात्रं मुक्त्यंगनासक्तहृदं शरण्यं ॥ वामांगजातं जगतीप्रदीपं पार्श्वं०॥ ४ ॥ श्री पार्श्वयक्षाधिपमद्वितीयं श्रीशालिनं सेरपुरावतंसं ॥ वाचासुधाकर्पितसभ्यलोक पा र्श्वं० ॥ ५ ॥ त्रैलोक्यकोटीरमनाथनाथं दारिद्र्यवातात्हिमनंतशक्ति ॥ शास्त्रार्थनैपु ण्यनिधिं दयालु पार्श्वं० ॥६॥ पद्मावतीसेवितपादयुग्म महोभरध्वांतदिनेशमाशु ॥ लावण्यसौभाग्ययशोभिराढ्य पार्श्वं० ॥ ७ ॥ ज्ञानादिधर्माभरण वरेण्यं सद्बोधदाना दिकमार्गपांथ आनंदवल्लीततिवारिधार पार्श्वं० ॥ ८ ॥ कलश ॥ स्रग्धराछंद इत्थं ये देववर्यं विविधसुखकर चांतरिक्षाख्यपार्श्वं नित्यं ध्यायंति भक्त्या. हृदयरति युजो भाग्यवतो नरोपि ॥लक्ष्मीस्तेषा निकाय्ये वसति दृढतया सर्वदा कामकर्त्री क ल्याणश्रेणिकर्त्तुर्भुवि विदिततरा सर्वसंपत्तिकांता ॥९॥

॥ अथ श्रीगौडिकपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

शार्दूलविक्रीडितछंद ॥वामेय मरुदेशभूपणतरं श्रीपार्श्वयक्षार्चितं कल्याणावलिवल्लि सिंचनघनं श्रीइक्ष्वाकुवंशोद्भव॥आराडाप्रसमागतैर्नरवरैः संसेवितं नित्यश श्रीमच्छ्रीकर गौडिकाभिधधर पार्श्वं सुपार्श्वं भजे॥१॥नानासाधुजनौघपंकजवने मार्त्तंडबिंबायितं वि घ्नव्यूहनिवारकं कलियुगे प्राप्तप्रतापालयं॥ विश्वस्यां प्रथितावदान॥.. सौपपुण्यो

ज्वलं श्रीमह्री०॥२॥संपद्भैरणिसुदानकामकलशं त्रैलोक्यचिंतामणिं सद्धचामृतरंजि तामरनरं सद्धर्म्मबोधप्रदं ॥ सौभाग्याद्भुतकांतकीर्त्तियशसा संपूरिताशांतरं श्रीमह्री० ॥३॥ मार्गे चांतरजीतिवारिनिचिते क्षेमंकरं सर्वदा दारिद्र्याद्रिनिपातनाच्चकुलिशं चिंतार्त्तिरोगापहं ॥ दुःखत्रासससमीरणौघभुजगं नागांकमंह्रोमथं श्रीमह्री०॥ ४ ॥ कारुण्यांचितचारुचित्तकमलं सत्वेषु संसारिषु सद्धैर्यादिगुणैरलंकृततनुं लावण्यलीलास्पदं ॥ संसारार्णवपीतवारिधिसमं मुक्त्यंगनावल्लभं श्रीमह्री० ॥ ५ ॥ त्रैलोक्ये तिलकायितं निरुपमं भव्यैर्नृभिः पूजितं दुष्टानां निजसत्वदर्शनपरं क्षिप्रं सतां कामदं ॥ नाम्ना ध्वस्तसमस्तवैरिनिचयं राद्धांतनिर्देशकं श्रीमह्री० ॥ ६ ॥ भूयिष्ठामलभक्तिशक्तिकलितैर्देवैश्चतुर्द्धा नतं सर्वाशाकरणैककल्पफलदं सर्वांगिचूडामणिं ॥ शिष्टानंतचतुष्टयीवरतरं श्रीमेरुतुंगं जिनं श्रीमह्री० ॥ ७ ॥ स्फाराकारनिराजितांगमतुलं सद्वर्णहेमाकरं विश्वव्याप्ततरं प्रवाससदनं गंभीरतासागरं ॥ भासोद्योतितविश्वविश्वमवनौ कल्याणसिंधौ विधुं श्रीमह्री० ॥ ८ ॥ अष्टभिः कुलकं ॥ अनुष्टुप्छंदः ॥ भिन्नमाले सदाश्रेष्ठे गुणवद्भव्दभूषिते॥पुष्पमालेऽतराभिख्ये नेकवीहारसंयुते ॥ ए ॥ श्रीमतः पार्श्वनाथस्य स्तवनं जगतोऽवनं॥कल्याणसागराधीशैः सूरिभी रचितं मुदा॥१०॥ ॥स्रग्धराछंदः ॥ ध्येयं श्रीपार्श्वदेवं भजत किल जना गोफिकग्रामराजं शश्वत्सर्वार्थसिद्ध्यै विहितशुभहितं विष्टपे चैत्रपूर्वे॥सानंदोल्लासलष्टाः कुशलगविबुधाः सर्वलोके विशिष्टानिर्दोषाचारपुष्टा जिनपपतिषु रता आप्तकल्याणतुष्टाः ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीगोफीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः॥

मालिनीछंदः॥जयति जगति चंद्रः पार्श्वनामा जिनेंद्रो विकचकमलदृष्ट्या नंदितामर्त्यमर्त्यः ॥ अकलितमहिमौघस्तीर्णसंसारसिंधुर्भुजगकलितपादः पुण्यपीयूषपुष्टः ॥१ स्रग्धराछंदः॥ श्रीपार्श्वं गोडिकाख्यं भजत भविगणे कल्पवृक्षं सुगोत्रं नानादेशेषु लब्धातिशयमहितताव्यूहवारं सुमूर्त्तिं॥श्रीमंतं नीलरत्नाधिकतरवपुषं स्फारलावण्यशालं मोहांभोराशिकुंभोद्भवममरनुतं पार्श्वयक्षार्चितांह्रिं ॥ २ ॥ पंचचामरछंदः ॥ नमंति पार्श्वमंगिनो नरालसा धृतातपत्रचामरैः सुरैः स्तुतं ॥ अनंतशक्तिमालिनं गतामयं विवेकरत्नरोहणं दयाकरं ॥३॥ वसंततिलकाछंदः॥ करीकृतं व्रतमनुत्तरमंगिनेत्रा दत्वाऽशु येन वरवार्षिकदानराशिं॥वामोद्भहेन मुनिनायकनायकेन कल्याणकेलिनिलयेन शुभाशयेन ॥ ४ ॥ द्रुतविलंबितछंदः ॥ मम नमोस्त्ववते परमात्मने भगवते शिवशर्म्मविधायिने ॥ अमितशौर्य्यतिरस्कृतमेरवे शुभदशोरकमंडलमौलये ॥५॥ हरि

णीछंद ॥ अमृतरसताधिक्यान्नीष्टान्नरोत्तमसंगताद्भुवनसुनगात्पार्श्वान्निरव्याद्धिनश्यति पातक ॥ प्रसरति च वै कीर्त्तिर्दिक्षु प्रसूनवडुज्वला प्रनवति पुन शीघ्रं लीलाजयोन्नतिवर्द्धनं ॥६॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ आकृत्या नरदेवदेवमनुपा संतुष्टिकर्तुस्सदा चेतोवल्लनकामसार्थददत कर्मारिहर्तुर्नृशं ॥ आनंदौघसर प्रवृद्धिकरणे पानीयदातुर्मुदा पार्श्वस्यास्ति नति समृद्धिजननी कल्याणविस्तारिणी ॥७॥तोटकछंद ॥नरलक्षणनूपितवल्पुपुरे मुखनीरजरंजितविश्वजने॥श्रुतदेशनदर्शितधर्मपथे जिननेतरि तिष्ठति नाग्यरमा॥८॥नुजगप्रयातछंद ॥ सुराधीशचक्रैं स्तुत ज्ञानसिंधो जगन्नाथ नेत रुपालोकबंधो ॥ विनो पाहि मां सर्वदा नक्तिनाज स्मर त चिर त्वत्पदाजोजनृंगं ॥ ९ ॥ शार्दूलविक्रीडतछंद ॥ स्तोत्रं पार्श्वजिनेश्वरस्य सतत ये प्राणिनो नावत सद्भक्त्यापि पठति हृद्यमनसस्तेषा गृहे संपद ॥ स्युर्नित्यं स्थिरनावशोन्नतरा धर्मार्थनिष्पादिका कल्याणार्णवसूरिनिर्विरचित मांगल्यमालाकर ॥१०॥ शिखरिणीछंद ॥ सदा धार्य्यं चित्ते स्तवनमनवद्यं नयहर नरैर्नूनं सिद्ध्यै कुशलवनराजौ घननिन्नं ॥ अवश्यं नक्ताना जिनगुणरतानां स्मृतिमतां समेषां नव्यानां प्रमुदकरण कामितकर ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीदादापार्श्वनाथस्तवनप्रारंनः ॥

॥ इन्द्रवज्राछंद ॥ कल्याणगेहं गुणरत्नराज सद्देहकांत्याजितनीलरत्नं ॥ स्तोष्ये मुदाशंकरमगिवंद्यं दादाभिधं श्रीवरपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ सद्धर्मलीनाशयमाशु विघ्नं कर्माष्टदावानलवारिधारं ॥ संसारपाथोनिधिकर्णधार दादा० ॥ २ ॥ आचारवल्लीततिवृद्धिनीर सत्कीर्त्तिपुष्पडुतवासिताशं ॥ नानार्थराद्धांतविचारदक्ष दाद० ॥ ॥ ३ ॥ वैराग्यरंगार्पितचारुचित्तं सद्बोधिदातारमनीहसेव्यं ॥ नागेंद्रसंसेवितपादपद्मं दादा० ॥ ४ ॥त्रैलोक्यचूडामणिमृद्धिशोन सौनाग्यनाग्यावलिपूर्णदेहं ॥ नव्यौघराजीवदिनेशमेकं ॥ दादा० ॥ ५ ॥ सर्वांगिनेतारमनीष्टवाच विश्वेश्वरं रंजितसन्यलोकं॥ लोकार्त्तिचितानयहु खचारं दादा० ॥६॥ हृद्याकृति कृत्तजराधिदोषं नरामरेंद्रैः स्तुतमर्त्यसर्पं॥ सन्नागचिन्हं कुशलार्थकारं दादा० ॥७॥ सर्वत्र विख्याततरप्रताप कारुण्यसत्रं नुवि शिष्टगोत्रं ॥ अज्ञानमिथ्यात्वतमिस्त्रदीप दादा० ॥ ८ ॥ अष्टनि कुलक ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ श्रीमच्छ्रीवटपद्रनद्रनगरे शृंगारहारोपम कल्याणांबुजनानुचंद्रमसमं वामांगजातं परं ॥ दादाख्यं जिनपार्श्वदेवमनघं ध्यायंति ये नित्यशस्तेषां धाम्नि रमा निवासमनिश कुर्वंति कल्याणत ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीकलिकुंडपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

॥ विबुधादिराजैर्नतपादपद्मं बहुभाग्यसौभाग्यलतांघमेघं ॥ कमठोपसर्गाचल धैर्यभित्तिं कलिकुंडपार्श्वं सुचिरं भजेऽहं ॥ १ ॥ कमलाप्रदाने हरिचंदनांगं सपयोधिदेशाद्भुतलब्धकीर्त्तिं ॥ रुचिराकृतौ रंजितविश्वविश्वं कलिकुंड० ॥ २ ॥ महिमावदातोत्तमनाममंत्रं समताभिरामं कमलाभिनेत्रं ॥ अभिलापदं सिद्धि विलासयंत्रं कलि० ॥ ३ ॥ दुरितांधकारारुणसन्निकाशं करुणाशयं दुःखवने षु दावं ॥ नरदेवपूज्यं सुखदं सुमूर्त्तिं कलि० ॥ ४ ॥ कनकादिदातारमनंतशक्तिं वरनीलरत्नाधिकदेहवर्णं ॥ शिवशर्मराजं जनताभिवंद्यं कलि० ॥ ५ ॥ अनघं सदा सद्गुणकेलिपात्रं शुभलक्षणालंकृतवर्यगात्रं ॥ कुलभूषणं शत्रुतृणौघदात्रं कलि० ॥ ६ ॥ जगतीश्वरं कर्मविमुक्तसंगं विषमायुधालग्नमनःस्वरूपं ॥ धरणेंद्रपार्श्वार्चित पादयुग्मं कलि० ॥ ७ ॥ शुभसिंधुवृद्धौ शशिनं वरेण्यं वचसा सुधाभेन सदर्पस न्यं ॥ श्रुतसूरिणं पुण्यविराजमानं कलि० ॥ ८ ॥ अष्टभिः कुलकं ॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ एवं स्तुतः श्रीकलिकुंडपार्श्वः कल्याणनाम्ना मयका नितांतं ॥ ये प्राणिनः स्तोत्रमिदं पठंति तद्धाम्नि लक्ष्मीर्विलसत्यवश्यं ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीरावणपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ देवाधिदेवं कृतपार्श्वसेवं नागाधिराजेन नतांह्रिपद्मं ॥ पद्मावतीसंस्तुतनामधेयं सेवे सदा रावणपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ आनंदकंदोदय वृद्धिमेघं मेघध्वनिध्वानविशेषराजं ॥ जितारिवृंदं विगताधिमोहं सेवे० ॥ २ ॥ वामांगजातं कुलनंदिकारं ध्वस्तोपसर्गोत्कटदुष्टरोगं ॥ प्रख्यातिमंतं भुवने प्रभा वैः सेवे०॥ ३ ॥ सन्नीलनासा हसितेंद्रनीलं सत्कांतकांत्या रमणीयरूपं ॥ प्रावीण्यना नातिशयैः प्रधानं सेवे० ॥ ४ ॥ संभीतिहर्त्तारमनंतसौख्यं विश्वेश्वरं द्योतितविश्व लोकं ॥ पद्मार्थदाने सुररत्नवृक्षं सेवे० ॥ ५ ॥ अज्ञानमिथ्यात्वतमिस्रभानुं नामं मलालंकृतमौलिपृष्ठं ॥ वाणीसुधामोदितसन्यसंघं सेवे० ॥६॥ कौशल्यमांगल्यनिवा सगेहं पूर्णीकृताभीष्टपदार्थराशिं त्रैलोक्यदीपं वरसिद्धिभाजं सेवे० ॥ ७ ॥ संसार रत्नाकरयानपात्रं निःशेषदोषोज्झितधर्ममार्गं ॥ आदेयसौभाग्ययशःसुपात्रं सेवे० ॥८॥ अष्टभिः कुलकं॥ मालिनीछंदः ॥ अलवरपुररत्नं रावणं पार्श्वदेवं प्रणतभुवनसमुद्रं कामदं देवदेवं ॥ अमितगुणनिधाना ये नरः संस्तुवंति जगति विदितसारा भा ग्यवंतो भवंति ॥ ९ ॥

॥ अथ श्री गोडीपुरपार्श्वजिनस्तवनप्रारंभ. ॥

रागेणगीयते॥गौडिपुरप्रभुपार्श्वममंद दर्शनदर्शनपरमानंद नमितसुरासुरवृंद॥१॥ श्रीजिनशासनचारुशृंगार अंतरगरिपुवृंदकुगार सकलजगदाधार॥२॥निरुपमरूपविराजितदेह विदलितनानाजनसंदेह अमितगुणधनगेह॥३॥दुरितकाननछेदनदात्रं रुचिरलक्षणविभूषितगात्रं वारितकुमतकुपात्रं ॥४॥ अनघजिनवरगोत्रसुगोत्रं कामकुनमणिनिर्जरगोत्रं संयमदृढतागोत्रं ॥५॥छेदितभवभयमरणारिष्टं प्रकटितमहिमातिशयवरिष्ठं जगदैश्वर्यगरिष्ठं ॥६॥ विहिताखिलभविजनकल्याण पालितयथाख्यातकल्याण दत्तमार्गेणकल्याण ॥ ७ ॥ आधिबंधवधगदहर्त्तार वाञ्छितकुशलसौख्यकर्त्तार भुवनत्रयभर्त्तार ॥ ८ ॥ विकटकष्टनिवारणशूर आगमनयप्रकाशनसूर भारतीगंगापूर ॥ ९ ॥ धृतिकीर्त्तिबुद्धिलक्ष्मीगणविश्व केवलयुगलालोकितविश्व प्राप्तजनेप्सितविश्व ॥ १० ॥ सेवकमनोभीष्टदातार रजितदेवनरनेतार अनुभूतकुलत्रातार ॥ ११ ॥ इन्द्रनीलमणिवर्णसुवर्ण निखिलदेशविख्यातसुवर्ण वाक्सुधासारसुवर्ण ॥ १२ ॥ मुक्तिसीमतिनीसंगमलुब्ध चचलविषयसुखसंगालुब्ध कर्मपराविप्रलुब्ध ॥१३॥ वंदितामरमौलिकुटीर विषमकषायदवानलनीर उत्कटपरीषहवीर ॥१४॥ अचलगणनीरधिसारंग कीर्तिलतावर्द्धनसारंगं दुर्जनशलभसारंग ॥ १५ ॥ वंदेऽनंतचतुष्टयिराज पूजितसुरपतिमानवराज प्रवरतीर्थाधिराज॥१६॥षोडशभि कुलकं॥ शिवतातिपार्श्वं वरदवरपार्श्वं मोहतमिस्रसवितार नागराजराज त्रिभुवनपूज्य लब्धभवोदधिपार ॥ शुभसागरनित्यप्रथितगरिमाण ये ध्यायति विभु मुदा लक्ष्मीस्तान् समुपैति सत्वरमतुला सर्वार्थसिद्धिप्रदा ॥ १७ ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वजिनस्तवनप्रारम्भ ॥

तोटकछंद ॥ भविकाम्बुजभासनभानुनिभं भवतापसमापनवारिधर ॥रचितागमशास्त्रविचारनय जय मंगलकीर्तियशोनिचय ॥ १ ॥ कमलामलकेलिगृह विमललसदाशयमुज्झितसतमस ॥ शुभसागरवर्द्धनचन्द्रमसं सकलामरपूजितपादकज ॥२॥ विकटोत्कटकर्म्ममृगेन्द्ररिपु खगनागनरेश्वरदेवनत ॥ तरसा जितमोहरिपुं विनयं यमसंवरसंहितसाधुहित ॥ ३ ॥ शुभलक्षणलक्षितहस्तयुग गजराजगति गतविघ्नरुज ॥ जडतामयभेषजमीशवर दशनद्युतिद्योतितचारुमुख ॥४॥ कनकाचलधीरमभीष्टतर रसनारसरजितसर्वसभ ॥भुवनत्रयमंडलमोघतर रुचिराकृतिमोहितदेवजन ॥५॥अरिहंतमनुत्तरतीर्थकर रचित वरबुद्धिधनं जिनप ॥पुरुषोत्तममस्मरमर्थनिधि धृ

तिकांतिनिकेतनमंगिनुतं ॥६॥ निजवंशवतंसकमार्तिहरं रवनिर्जितमेघनदं शिवदं॥ दयितं भुवि विश्वजनीनतमं नतभूतगणं जितभोगनटं ॥ ७ ॥ शरणाश्रितपालकमु क्तिपदं दधतं वरशांतरसं नवमं ॥ महसेंद्रमणिप्रभदेहधरं धरणेंद्रनिषेवितपार्श्वयुगं ॥८॥ अममं नुतपार्श्वजिनं सततं तपसा हतसिद्धमनंतबलं ॥ जननाजनसंगविरक्त मलं मलवर्जितमुत्तरसौख्यधरं ॥९॥नवभिः कुलकं॥ सुरराजखेचरनागपुरंदरधरणिरा जसुसेवितं श्रीपार्श्वजिनेश्वरं नमितसुरेश्वरपद्मावतीसंस्तुतं॥ येऽनंतभक्त्या विशुद्धश क्त्या संस्तुवंति जिनं मुदा शुभसागरपठनाद्भविकरमासमेतं ते भजंति सुखं सदा॥१०॥

॥ अथ श्रीमद्धुरपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

द्रुतविलंबितछंदः ॥ विबुधमानवमानसनंदनं विभवदानविधौ हरिचंदनं ॥ निखिलसभ्यजनैः कृतवंदनं भजत पार्श्वजिनं मद्धुराभिधं ॥ १ ॥ युगलकौशिकसा म्यतराशयं भुवनभानुनिवासघनाश्रयं ॥ विषयिवारणकेसरिसन्निभं भजत० ॥२॥ अरुणकोटिविभाधिकभास्वरं कुमुदबांधवशुभ्रतराननं ॥ वरगभीरगुणोत्तमसागरं भजत० ॥३॥ भविकपद्मविभासनभास्करं जगति भावप्रकाशनदीपकं ॥ नयनपाटव पावनतंत्रकं भजत० ॥४॥ रचितकामठवारिदसंचयैरखिलधैर्यसमन्वितचेतसं॥ विकट कर्मसमीरणभोगिनं भजत० ॥ ५ ॥ कमठनिर्म्मितपांशुकदंबकैः स्थिरतरोत्कटभाव विराजितं ॥ जगति दुर्जनसर्पविषापहं भजत० ॥६॥ प्रशमभूषणभूषणभूधनं सुभग भाग्यगुणावलिमंदिरं ॥ धवलकीर्तियशोंबरधासितं भजत० ॥ ७ ॥ सकलसंघसमीहि तकर्तृकं निचितविघ्नपराभवहर्तृकं ॥ अतिशयाद्भुतचारुचरित्रकं भजत० ॥ ८ ॥ हरिणीछंदः ॥ मद्धुरजिनपं नित्यं वंदे शिवोदधिवर्द्धनं शशिनमनिशं क्लिष्टध्वांते दिनेश महोदयं ॥ स्तवनभणने चिताल्हादैः कृतादरसेवके विविधधनदं विश्वे विश्वे जिनेश नताननं ॥९॥ द्रुतविलंबितछंदः ॥ मद्धुरपार्श्वजिनेश्वरसंस्तवं पठति यः सुधियोषसि नित्यशः ॥ वसति तस्य गृहे कमला ऽखिला स्थिरतरासुमता वरदायिनी ॥ १० ॥

॥ अथ सत्यपुरीय श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभः ॥

द्रुतविलंबितछंदः ॥ त्वमसि सद्गुणनंदनमंदरस्त्वमसिमेरुलतावलिमंडपः ॥ त्वमसि खेचरनाकिनरस्तुतस्त्वमसि रूपवशीकृतविष्टपः ॥ १ ॥ त्वमसि योगिजनौ घशिरोमणिस्त्वमसि कांतिविकाशितदिग्गणः ॥ त्वमसि भाषितरंजितनागर स्त्वम सि सिद्धिवशारतिमोहितः ॥ २ ॥ त्वमसि भद्रकरः करुणालयस्त्वमसि भक्तचकोर निशाकरः॥ त्वमसि दर्शनहर्षितमानवस्त्वमसि संसृतिसागरपोतकः ॥ ३ ॥ त्वमसि मोहमहीरुहमुद्गरस्त्वमसि धर्मधनो धनकामदः ॥ त्वमसि संशयवायुभुजंगम

स्त्वमसि दर्शितजीवदयापथ ॥ ४ ॥ त्वमसि धारितशीलविभूषणस्त्वमसि कामि
तदामसुरद्रुम ॥ त्वमसि देवनराधिपवंदितस्त्वमसि जाड्यतमिस्रनभोमणिः ॥ ५ ॥
त्वमसि कर्मवनावनिपावकस्त्वमसि सेवकपूजितपंकज ॥ त्वमसि जन्मजरामृतिवा
रणस्त्वमसि शाश्वतमोक्षपदस्थित ॥ ६ ॥ त्वमसि मञ्जुलसत्कुलदीपकस्त्वम
सि सर्वपदार्थविशारद ॥ त्वमसि लोकनतो नतवत्सल स्त्वमसि देवशिलीमुख
पुष्कर. ॥ ७ ॥ त्वमसि नाथमनोहरलक्षणस्त्वमसि समतजीवगण सदा ॥ त्वमसि
सवरमार्गविधायकस्त्वमसि दानगुणालिपितकल्पक ॥ ८ ॥ त्वमसि चित्रकराति
शयांचितस्त्वमसि सूरितती‍श्वरसेवित ॥ त्वमसि दु खिजनावनतत्परस्त्वमसि हारनि
न क्षितिमडले ॥ ९ ॥ त्वमसि शिष्टनरामरसगतस्त्वमसि लोकचमत्कृतनिर्म
म ॥ त्वमसि केवलिसाधुनतो मुदा त्वमसि कुग्रहदोषनिवारक ॥ १० ॥
त्वमसि सद्व्रतभारवृषोपमस्त्वमसि वीतमदो विशदाशय ॥ त्वमसि तीर्थपते रु
चिराह्वयस्त्वमसि गुप्तिपवित्रितमानस ॥ ११ ॥ त्वमसि बुद्धिपराजितगी प
ति स्त्वमसि हाटकसन्निभविग्रह ॥ त्वमसि भाग्यविनाशनिकेतनस्त्वमसिलोभ
महीधरवज्रक ॥ १२ ॥ त्वमसि सप्तभयार्णवतारकस्त्वमसि दुर्घटसत्यनयाध्व
ग ॥ त्वमसि सम्मदसंततिकारकस्त्वमसि सिद्धिकरो वरदायक ॥ १३ ॥ त्वमसि विश्व
जगज्जनवल्लभस्त्वमसि रक्षितभूतकदंबक ॥ त्वमसि दुर्नयदुस्थहरोनिश त्वमसि वि
स्तृतलोचनरजक ॥ १४ ॥ त्वमसि विश्वपति श्रितबांधवस्त्वमसि वक्रतिरस्कृतषंड्
मा ॥ त्वमसि वैरिसमुद्भघटोद्भवस्त्वमसि तीर्थकर प्रतिबोधक ॥ १५ ॥
त्वमसि भव्यशिखंडिबलाहकस्त्वमसि बंधुरमूर्तिधरोऽजर. ॥ त्वमसि सर्वविशुर्विग
तातुरस्त्वमसि संयममडनमंडित ॥ १६ ॥ त्वमसि शांतरसाश्रितचेतनस्त्वमसि
पौरुषनिर्जितकार्मण ॥ त्वमसि दुर्लभबोधिनिबंधनस्त्वमसि कामदुघाधिकदानद
॥ १७ ॥ त्वमसि सचितपुण्यनिधि परस्त्वमसि विघ्नसरीसृपगारुड ॥ त्वमसि शु
भ्रयशोभरमंदिरस्त्वमसि सघजयोन्नतिहर्षद ॥ १८ ॥ त्वमसि सत्वहितो मतिव
र्द्धनस्त्वमसि धर्म्मसरोजसर सम ॥ त्वमसि चक्रिनतो भविशेखरस्त्वमसि पारग
त परमेश्वर ॥ १९ ॥ त्वमसि सत्यपुरामलभूषणस्त्वमसि सश्रितपादमृगाधि
प ॥ त्वमसि केवलयुग्मविराजितस्त्वमसि वीरजिनो जिननायक ॥ २० ॥
त्वमसि शासनपोतनियामकस्त्वमसि साधुदयाकुलनामक ॥त्वमसि सौख्यकरस्त्रिश
लांगजस्त्वमसि विश्वगुरु गुणसागर ॥ २१॥ हरिणीछंद ॥ जयति सततं वीर श
द्धर्नबोदधिपारगो जगति तिलक पापध्वांते गभस्तिरनुत्तर ॥ कुशलनिलयस्तीर्थसा

मी सुरासुरसंस्तुतो विदितमह्निमां विश्वे विश्वेश्वरार्चितपत्कजः ॥ २२ ॥ वंशस्थछंदः ॥ कुलावतंसं यतिधर्म्मदेशकं कलादिकापारगमंगिपालकं ॥ नवीमि वीरं मतिदं हिता वहं मनोर्थसंपादनकामकुंभकं ॥ २३ ॥ भुजंगप्रयातछंदः ॥ प्रभुं देववंद्यं जिनं वि श्वनाथं जगद्भारुचूडामणिं वीरनाथं ॥ स्तुवेऽहं जितारिं नतस्वर्गिनाथं सदा शांति कारं नरेंद्राधिनाथं ॥ २४ ॥ स्त्रग्धराछंदः ॥ श्रीराजं वीरदेवं प्रणतसुरमणिं देवमर्त्या धिराजं कल्याणांभोधिवृद्धौ विमलशशधरं भाग्यसौभाग्यकारं ॥ ये भव्याः संस्तुवं ति प्रतिदिनमनघं चारुभक्तया त्रिसंध्यं प्रख्यातिं ते लभंते त्रिभुवनविदितां कीर्तिप्रा ग्भारकर्त्रीं ॥ २५ ॥ तुभ्यं नमः समयधर्म्मनिवेदकाय तुभ्यं नमस्त्रिभुवनेश्वरशेख राय ॥ तुभ्यं नमः सुरनरामरसेविताय तुभ्यं नमो जिनजनार्चितपत्कजाय ॥ १ ॥ तु भ्यं नमोऽभिलपते हरिचंदनाय तुभ्यं नमो वरकुलांबरभास्कराय ॥ तुभ्यं नमः प्रणतदे वनराधिपाय तुभ्यं नमः प्रवररूपमनोहराय ॥ २ ॥ तुभ्यं नमो हरिणनायकना यकाय तुभ्यं नमो यतिततिप्रतिपालकाय ॥ तुभ्यं नमो विकचनीरजलोचनाय तुभ्यं नमस्तनितनादविराजिताय ॥ ३ ॥ तुभ्यं नमः कुशलमार्गविधायकाय तुभ्यं नमोवि कटकष्टनिषेधकाय ॥ तुभ्यं नमो डुरितरोगचिकित्सकाय तुभ्यं नमस्त्रिजगतो हृदि भूषणाय ॥ ४ ॥ तुभ्यं नमो दलितमोहतमोभराय तुभ्यं नमः कनकसन्निभभूधना य ॥ तुभ्यं नमोप्यखिलसद्गुणमंदिराय तुभ्यं नमो मुखकलादिऽतचंडिकाय ॥ ५ ॥ तुभ्यं नमोऽतिशयराजिविभूपिताय तुभ्यं नमः कुमतितापसुभंजनाय ॥ तुभ्यं न मो मुखपयोधिवहित्रकाय तुभ्यं नमो विगतकैतवमत्सराय ॥ ६ ॥ तुभ्यं नमो विदि तभव्यजनाशयाय तुभ्यं नमो निखिलसंशयवारकाय ॥ तुभ्यं नमः प्रथितकीर्त्तिय शोन्विताय तुभ्यं नमो जितहृषीकमुनीश्वराय ॥ ७ ॥ तुभ्यं नमोप्रमितपुणलनिर्मि ताय तुभ्यं नमः सकलवाङ्मयपारगाय ॥ तुभ्यं नमो भविकचातकनीरदाय तुभ्यं नमश्चरणवैभवदायकाय ॥ ८ ॥ कुलकम् ॥ वीराष्टकं पठति यः सततं त्रिसंध्यं त्य क्त्वा सदा प्रबलमीहजडःप्रमादं ॥ तद्धाम्नि मंक्षु कुरुते कमला निवासं कल्याणसा गर भुवामसतामभीष्टं ॥ ए ॥

॥ अथ श्रीलोडणपार्श्वनाथस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीकरं कष्टहर्त्तारं विधिवादप्रकाशकं ॥ धिया तर्जितवागीशं परमात्मानमन्वहं ॥ १ ॥
क्षमागारं कृपापात्रं गताधिव्याधिदूषणं ॥ भेकं तु सर्वकार्येषु श्रीप्रदं दलितामयं ॥ २ ॥
धनधान्यकरं लोके रमाकेलिपदं परं ॥ ममतामदमानौघमूर्खतादोषवर्जितं ॥ ३ ॥
आर्त्तिसंतापभेत्तारं सूरिश्रेणिशिरोमणिं ॥ रिपुसारंगसारंग मंगिनाथनिषेवितं ॥ ४ ॥

तेजसां मंदिर रम्यं वारिताशेषदुर्जनं ॥ नि सीमं सर्वगोत्राणा श्रीमतं गुणसागर ॥ ४ ॥ कथिताचारमार्गौघं कल्याणकमले विधुं ॥ प्रणताशेषदेवेश शासन कातनूघ न ॥ ६ ॥ गदितागमसदोहं रसनामृतसुंदर ॥ सूराधिकप्रतापाज्ञि रिक्थद दमितेडि थ ॥ ७ ॥ नागेद्रविबुधै सेव्यं लोकाना शातिकारक॥ जडताया विछेत्तार नयनाल्हा दकारण ॥८॥ पालकं सर्वसत्वाना पार्श्वयक्षेण पूजित ॥ नाकिमानववद्यान्हि नाथ नाथं जगत्प्रभुं ॥ ९ ॥ क्रियासंततिनेतार त्रासितानेकदोषक ॥ कृतातार्थविचारज्ञं तारतारुण्यराजित ॥ १०॥ ससारसागरे पोत घस्मरायिविवर्जित ॥ सर्वज्ञं मेघगजी र हित विश्वस्य सर्वदा ॥ ११ ॥ तेजोनिधि मुदा पार्श्वं नवीमि लोमणानिध ॥ क ल्याणसागराख्येन सस्तुत ह्यादिमाक्षरै ॥ १२ ॥ द्वादशभि कुलक ॥ श्रीमल्लोडण पार्श्वनाथमवनौ विख्यातगोत्रानिधं ये भव्या वरभावभक्तिसहिता पूजति सौख्या र्थिन.॥ ते सत्वा सुखमानकीर्त्तिकलिता कल्याणतुगा परा जायते भुवने प्रतापरु चिरा आदेयवाच सदा ॥ १३ ॥

॥ अथ श्रीसेरीशपार्श्वाष्टकप्रारंभ· ॥

कामौघकर्त्तारमशेषदेवाधीशैस्सदार्चितपादपद्मं॥ कल्याणकार वरनीलवर्ण सेरी शपार्श्वं नुथ लोडणाख्य ॥ १ ॥ सत्पुण्यवल्लीवनवारिधार नि शेषभव्यावलिपूरिता श ॥ त्रैलोक्यछत्रं भुवनाधिनाथ सेरी० ॥२॥ सारगवाणीजितचित्तदार्ढ्य सारगगजी रनिनादकांत ॥ सारगसारागकयुग्मराज सेरी० ॥३॥ विश्वेषु सत्वेषु कृपानिधान स म्यक्त्वरत्नाभरणाकितागं॥ दु स्वागपशुं दलितारिवर्ग सेरी० ॥४॥ अपारससारसमुद्र पोतं सर्वज्ञमाचारपवित्रवशं॥राद्धांतशास्त्रार्थरहस्यदक्ष सेरी०॥५॥ वाणीरसानदितवि श्वविश्व तीर्थंकर नागपुरेशपूज्यं ॥ सर्वत्र विख्यातयशोभिराम सेरी० ॥६॥ तेजोनिधि कामितकामकुभ सौजन्यसौहार्दविलासपात्रं ॥ कल्याणसूर्यादिवितानहेतु सेरी० ॥ ॥ ७ ॥ आदित्यचद्राधिकदेहभास सत्प्रातिहार्य्याष्टकराजिराज ॥ स्फारारुती मोहि तदेवदेव सेरी० ॥८॥ कलश ॥ एव कल्याणवद्य त्रिभुवनतिलक लोडणाह्न सुपार्श्व रुत्वकाव्य स्वचित्ते भवसफलरुते ज्ञानसपत्तिलिब्ध्यै॥नित्य ध्यायति भव्याजिनसमय रता शुभ्रलेश्यानिरामास्तेषा हर्षात्प्रकाम भवति च सदने मजुपद्मानिवास ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीसभवनाथाष्टकप्रारंभ ॥

लावण्यगेह कलहेमवर्ण ह्मोभित सुंदरवाहचिन्ह ॥ लक्ष्मीकलापार्णवधि ष्ण्यनाथ देवैर्नतं सभवनाथमीडे ॥ १ ॥ श्येनागज दारुणकर्मगत्रो वीर वर पू तच्चरित्रशोभ ॥ क्षेमास्पद सद्गुणरत्नखानि देवै० ॥२॥ इक्ष्वाकुवगं वरतिग्मरश्मि

राकेंडुवक्त्रं गतवक्रमाद्यं ॥ अज्ञानवैश्वानरशांतिनीरं देवं० ॥ ३ ॥ डुःखोदधो पोत समुड्रमिद्धं ॥ सत्प्रातिहार्याष्टकराजिराजं ॥ क्षमानिधिं विस्तृतपुण्यमूर्त्तिं ॥ दे वे० ॥ ४ ॥ नव्यैर्मुदा सेवितपादपद्मं सज्ञानवज्राहतमोहनूधरं ॥ संसारदावाक्कुल मर्त्यमेघं देवै०॥५॥सत्कीर्त्तिपात्रं डुरितारिसेव्यं जगज्जनानंदकरं शरण्यं ॥ कारुण्यसं युक्तपवित्रचित्तं देवै० ॥६॥ कुंदार्द्धदंतं कजलोचनं वै वपुःश्रियातर्जितसूर्यकांतिं ॥ पापांधकारे ऽमलदीपकं तं देवै० ॥ ७ ॥ प्रसादनात्तत्परसेवकस्येप्सितार्थदाने सुर देववृक्षं ॥ सुखैरनेकैर्युतचारुदेहं देवै० ॥८॥ कलशः ॥ इत्यष्टकं श्रीजिनसंनवस्य पठंति ये मंजुलनावयुक्त्या॥तेषां गृहे पुण्यनिधानन्नव्याः कल्याणकाराश्च नवंति ऋ ध्यः॥ए॥इति श्रीमज्जिननायकस्य श्रीसूर्यपुरनूषणस्य श्रीसंनवनाथस्याष्टकं संपूर्णं॥

॥ अथ श्रीसूक्तमुक्तावली प्रारंनः॥

मालिनी छंदः ॥ सकलसुकृतवल्लीवृंदजीमूतमालां निजमनसि निधाय श्रीजि नेंड्स्य मूर्त्तिं ॥ ललितवचनलीलालोकनाषानिबद्धैरिह कतिपयपद्यैः सूक्तमालां तनोमि ॥ १ ॥ अथक्रमसंग्रहकाव्यं ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ तत्त्वज्ञानमनुष्य सज्जनगुणान्यायप्रतिज्ञाक्षमा चित्ताद्यं च कुलं विवेकविनयो विद्योपकारोद्यमाः ॥ दानक्रोधदयादितोषविषयाः साक्षात्प्रमादस्तथा साधुश्रावकधर्मवर्गविषये ज्ञेया प्रसंगाद्यमी ॥ २ ॥ अथदेवतत्वविषेः मालिनीछंदः ॥ सकल करमवारी मोक्षमार्गा धिकारी ॥ त्रिनुवनउपगारी केवलज्ञानधारी ॥ नविजन नित सेवो देव ए नक्तिना वे ॥ इहिज जिन नजंतां सर्व संपत्ति आवे ॥ ३ ॥ जिनवरपदसेवा सर्वसंपत्तिदा ई ॥ निशिदिन सुखदाई कल्पवल्ली सहाई ॥नमि विनमि लहीजे सर्व विद्या वडाई ॥ क्षषन जिनह सेवा साधतां तेह पाई ॥ ४ ॥ अथगुरुविषेः ॥ स्वपरसमयजाणे ध र्मवाणी वखाणे ॥ परम गुरुकह्याथी तत्व नीशंक माणे॥ नविककज विकाशे ना नुज्यूं तेज नासे ॥ इहज गुरु नजो जे शुद्धमार्गं प्रकाशे ॥ ५ ॥ सुगुरुवचनसंगे निस्तरेजीवरंगे ॥ निरमल नर थाए जेम गंगाप्रसंगे ॥ सुणिय सुगुरु केशी॥ वाणि रायप्रदेशी ॥ लहि सुरनव वासी जे हसे मोक्षवाशी ॥ ६ ॥ अथधर्मविषे ॥ जलनि धि जलवेला चंड्थी जेम वाधे ॥ सकल विनवलीला धर्मथी तेम साधे ॥ मनुअ जनमकेरो सार ते धर्म जाणी ॥ नजिनजि नवि नावे धर्म ते सौख्य खाणी ॥७॥ इह धरम पसाये विक्रमे सत्य साध्यो ॥ इह धरम पसाये शालिनो साक वाध्यो॥ जस नर गज वाजी मृत्तिकाना जिकेई ॥ रणसमय थया ते जीव साचा तिकेई ॥ ॥ ८ ॥ अथज्ञानविषेः ॥ तन धन ठकुराई सर्व ए जीवनेछे ॥ पण इक डुहिलूं

ज्ञान संसारमां छे ॥ नवजलनिधि तारे सर्व जे दुःख वारे ॥ निजपरहित देते ज्ञान ते कां न धारे ॥ ९ ॥ यवक्रुपि इक गाथा बोधथी जै निवाख्यो ॥ इक पदथि चिलातीपुत्र संसार वाख्यो ॥ श्रुतजणत सुज्ञानी मास तुंगादि यावे ॥ श्रुतथि अन्न य हाथे रोहिएयो चोर नावे ॥ १०॥ अथमनुष्यजन्मविषे ॥ नवजलनधि नमतां कोइ वेला विशेषे ॥ मनुजजनम लाधो डुल्लहो रत्न लेखे ॥ सफल कर सुधर्मा जन्म ते धर्मयोगे ॥ परजवसुख जेथी मोक्षलक्ष्मी प्रज्ञोगे ॥ ११ ॥ मनुजजनम पामी आलसे जे गमेछे ॥ शशिनृपतिपरे ते शोचनाथी नमेछे ॥ डुलह दश कथा यूं मानुखोजन्म ए छे ॥ जिनधरम विशेषे जोडतां सार्थ ते छे ॥ १२ ॥ अथसज्जन विषे ॥ सदयमन सदाई डुःखियां जे सहाई ॥ परहित मतिदाई जास वाणी मिठाई ॥ गुणकरि गहराई मेरुज्यू धीरताई॥ सुजनजन सदाई तेह आनददाई ॥१३॥ जइ डुरजन लोके दूहव्या दोष देई ॥ मनमलिन न थाए सज्जना तेह तेई ॥ डुपदजनकपुत्री अजना कष्टयोगे ॥ कनकजिम कशोटी ते तिसी शील जोगे ॥ १४ ॥ अथगुणविषे॰ ॥ गुणगहि गुण जेमां ते वहू मान पावे ॥ नर सुरनिगुणे ज्यू फूल शीशे चढावे ॥ गुणकरि बहु माने लोक ज्यूं चड्माने ॥अति कृश जिम माने पूर्णने त्यूं न माने ॥ १५ ॥ मलयगिरि कहे जे जबुलिवादि सोई ॥ मलयजतरु संगे चदना तेइ होई ॥ इम लहिय वडाइयूं कीजिये सग रगे ॥ गजशिरचडि वेठी ज्यूं अजा सिंहसगे ॥ १६ ॥ अथन्यायविषे ॥ जग सुजस सुवासे न्यायलक्ष्मी उपासे॥ व्यसन डुरित नासे न्यायथी लोक वासे ॥ इम हृदय विमासी न्याय अंगी करीजे॥अनय परिहरीजे विश्वने वश्य कीजे ॥ १७ ॥ पशु पण तस सेवे न्यायथी जे न चूके ॥ अनयपथ चले जे जाइ ते तास मूके ॥ कपिकुल मिलि सेव्यो रामने सीस नामी ॥ अनयकरि तज्यो ज्यू जाइए लकस्वामी ॥१८॥ हय गय न सहाई युद्ध कीर्त्ती सवाई ॥ रिपुविजय वधाई न्याय ते धर्मदाई॥ धरमनय धरे जे ते सुखे वैरि जीपे ॥ धरमनय विहूणा तेहने वैरि कोपे ॥ १९ ॥ धरमनय पसाये पामवा पंच तेई ॥ करि युधे जय पाम्या राज्यलीला लहेई ॥ धरमनय विहूणा कौरवा गर्व माता रणसमय विगूता पांमवा तेह जीत्या ॥ २० ॥ अथप्रतिज्ञाविषे ॥ सुजन अधन जिकांई आदखुं जे निवाहे ॥ रवि पण तम जोवा व्योम जाणी वगाहे ॥ करिगहन तिवाहे तास निस्सत आपे ॥ मलिन तनु परवाहे सिंधुमां सूर आपे ॥ २१ ॥ पुरुषरयण मोटा जे गणीजे धराये ॥ जिण जिम पडिवज्यूं ते न गंडे पराये ॥ गिरिश विष धख्यो जे ते न अद्यापि नाख्यो ॥ डुर

गति नर लेई विक्रमादित्य राख्यो ॥ २२ ॥ अथ उपशमविषेः ॥ उपशम हित कारी सर्वदा लोकमांही ॥ उपशम धर प्राणी ए समो सौख्य नांही ॥ तप ज प सुर सेवा सर्व जे आदरे छे ॥ उपशमविण जे ते वारि मंथा करे छे ॥ २३ ॥ उपशम रस लीला जास चित्ते विराजी ॥ किम नर भव केरी रिद्धिमां तेह रा जी ॥ गज मुनिवर जेहा धन्य ते ज्ञान गेहा ॥ तपकरि कृश देहा शांति पीयू ष मेहा ॥२४॥ अथ त्रिकरणशुद्धिविषेः ॥ जग जन सुखदाई चित्त एवुं सदाई ॥ मुखे अति मधुराई साच वाचा सुहाई ॥ वपु परहित हेते त्रण्य ए शुद्ध जेने ॥ तप जप व्रत सेवा तीर्थ ते सर्व तेने ॥ २५ ॥ मण वच तनु त्रण्ये गंगज्यूं शुद्ध जेने ॥ निज घर निवसंतां निर्जरा धर्म तेने ॥ जिम त्रिकरण शुद्धे डीप दी अंब वाव्यो ॥ घर सफल फलंतो शील धर्मे सुहाव्यो ॥ २६ ॥ अथ कुलविषे सहज गुण वशे ज्यूं शंखमां श्वेतताई ॥ अमृत मधुरताई चंद्रमां शीतलाई कुवलय सुरभाई इक्षुमां ज्यूं मिठाई ॥ कुलज मनुजकेरी त्यूं सुभावे भलाई ॥ ॥२७ ॥ जिण वर वर विद्या जो हुवे तो न ऋद्धि ॥ जिण घर उय लाभे तो न सौजन्य वृद्धि ॥ सुकुल जनम योगे ते त्रणे जो लहीजे ॥ अभय कुमर ज्यूं तो जन्म साफल्य कीजे ॥ २८ ॥ अथ विवेकविषे ॥ हृदय घर विवेके प्राणि जो दीप वासे ॥ सकल भव तणो तो मोह अंधार नाशे ॥ परम धरम वस्तु त त्व प्रत्यक्ष भासे ॥ करम भर पतंगा स्वांग तेने विधंसे ॥ २९ ॥ विकल नर कहीजे जे विवेके विहीना ॥ सकल गुण भर्या जे ते विवेके विलीना ॥ जिम सुम ति पुरोधा भूमि गेहे वसंते ॥ उगति जुगति कीधी जे विवेके उगंते. ॥ ३० ॥ अथ विनय विषे ॥ निशिविण शशि सोहे ज्यूं न शोभे कलाई ॥ विनयविण न सोहे त्यूं न विद्या वडाई ॥ विनयवहि सदाई जेह विद्या सहाई ॥ विनय विण न कांई लोकमां उच्चताई ॥ ३१ ॥ विनय गुण वहीजे जेहथी श्री वरीजे ॥ सुर नर पति लीला जेह हेलां लहीजे ॥ पर तणय शरीरे पेशवा जे सुविद्या ॥ विनय गुणथि लाधी विक्रमे तेह विद्या ॥ ३२ ॥ अथ विद्याविषे ॥ अगम म ति प्रयुंज्ये विद्यये कोन गंजे ॥ रिपु दल बल भंजे विद्यये विश्व रंजे ॥ धनथि अखय विद्या सीख एणे तमासे ॥ गुरुमुख भणि विद्या दीपका जेम भासे ॥ ३३ ॥ सुर नर सुप्रसंसे विद्यये वैरि नाशे ॥ जगि सुजस सुवासे जेह वि द्या उपासे ॥ जिणकरि नृप रंज्यो भोज बाणे मयूरे ॥ जिणकरि कुमरिंदो रीजव्यो हेम सूरे ॥ ३४ ॥अथउपकारविषेः॥ तन धन तरुणाई आयु ए चंचला छे॥

परहित करि ले जे ताहरो ए समे छे ॥ जब जनम जरा जां लागशे कठ साई ॥ कहि न तिण समे तो कोण थाशे सहाई ॥ ३५ ॥ नहि त रु फल खावे ना नदी नीर पीवे ॥ जस धन परअर्थे सो नले जीव जीवे ॥ नल कर्ण नरिंदा विक्रमा राम जेवा ॥ परहित करवा जे उद्यमी दक्ष तेवा ॥३६॥ ॥अथ उद्यमविषे ॥ रयण निहितरी ने उद्यमे लच्छि आणे ॥ गुरु नगति हरीने उ द्यमे शास्त्र जाणे ॥ डुख समय सहाई उद्यमे छे नलाई ॥ अति अलस तजी ने उद्यमे लाग नाई ॥ ३७ ॥ नृपशिर निपतंती वीज जात्कारकारी ॥ उदम क रि सुबुद्धी मंत्रिए ते निवारी ॥ तिम निज सुतकेरी आवती डुर्दशाने ॥ उदम करि निवारी ज्ञानगर्ने प्रधाने ॥ ३८ ॥ अथ दानविषे ॥ थिर नहि धन राख्यो तेम नाख्यो न जाए ॥ इणि पर धन जोतां एव गत्या जणाए ॥ इह सुगुण सु पात्रे जेह दे नक्ति नावे ॥ निश्चि जिम धन आगे साथ तेहीज आवे ॥ ३९ ॥ नल बलि हरिचंदा नोज जे जे गवाए ॥ प्रह समय सदा ते दानकेरे पसाए ॥ इम हृदय विमासी सर्वथा दान दीजे ॥ धन सफल करीजे जन्मनो लाहु ली जे ॥ ४० ॥ अथ शीलविषे ॥ अशुन करम घाले शील शोना दिखाले ॥ गुणगण अजुआले आपदा सर्व टाले ॥ तस नर बहु जीवी रूप लावण्य देई ॥ परनव शि व होई शील पाले जिकेई ॥ ४१ ॥ इण जग जिनदास श्रेष्ट शीले सुहायो ॥ ति म निरमल शीले शील गंगेव गायो ॥ कलि करण नरिंदा ए समा छे जिकोई ॥ परनव शिव पामे शील पाले तिकोई ॥ ४२ ॥ अथ तपविषे ॥ तरणि किरणथी ज्यूं सर्व अधार जाए ॥ तपकरि तपथी त्यूं डुख ते दूर थाए ॥ वलि मलिन थ यूं जे कर्मचमाल तीरे ॥ किम तनु न पखाले ते तपस्वर्ण नीरे ॥ ४३ ॥ तपविण नवि थाए नाश डु कर्म केरो ॥ तपविण न टले जे जन्म संसार फेरो ॥ तप व लि लहि लब्धी गोतमे नंदिखेणे ॥ तप बलि वपु कीधुं विष्णु वैक्रीय जेणे ॥४४॥ अथ नावविषे ॥ मनविण मिलवो ज्यूं चाववो दंतहीणे ॥ गुरुविण नणवो ज्यूं जीमवो ज्यूं अलूणे ॥ जसविण बहु जीवी जीव ते ज्यूं न सोहे ॥ तिम धरम न सोहे नावना जो न होहे ॥ ४५ ॥ नरत नृप इलाची जीरणश्रेष्ठि नावे ॥ वलि वलकल चीरी केवल ज्ञान पावे ॥ बलनद हरिणो जे पंचमे स्वर्ग जाए ॥ इहज गुण पसाये तास निस्तार थाए ॥ ४६ ॥ अथ क्रोधविषे ॥ तृण दहन द हतो वस्तु ज्यूं सर्व वाले ॥ गुण करण नरी त्यूं क्रोध काया प्रजाले ॥ प्रसम ज लद धारा वन्हि ते क्रोध वारो ॥ तप जप व्रत सेवा प्रीतिवल्ली वधारो ॥ ४७ ॥

धरणि परशुरामे क्रोधि निक्षत्रि कीधी ॥ धरणि सुभूमराये क्रोधि निर्ब्रह्मि साधी ॥ नरकगति सहायी क्रोध ए दुःख दाई ॥ वरज वरज भाई प्रीति दे जे वधाई ॥ ४८ ॥ अथ मानविषे ॥ विनय वनतणी जे मूल शाखा विमोडे ॥ सुगुण कनककेरी शृंखलाबंध तोडे ॥ उनमद करि दोडे मान ते मत्त हाथी ॥ निजवश करि ले जे अन्यथा दूर एथी ॥ ४९ ॥ विषद विष समो ए मान ते सर्प जाणो मनुज विकल होवे एण फंके जडाणो ॥ इह न परिहरयो जो मान दुर्योधने तो ॥ निज कुल विणसाड्यो मानने जे वहंतो ॥ ५० ॥ अथ मायाविषे ॥ निपुणपणु निवारी हीयडे हेज धारी ॥ परिहर बल माया जे असंतोपकारी ॥ मधुर मधुर बोले तोहि विश्वास नाणे ॥ अहि गिलण प्रमाणे मायिने लोक जाणे ॥ ५१ ॥ म कर म कर माया दंभ दोषह्न छाया ॥ नरय तिरिय केरा जन्म दे जेह माया ॥ बलि नृप छलवाने विष्णु माया वहंतां ॥ लघुयपण लह्यूं जे वामनारूप लेतां. ॥ ५२ ॥ अथ लोभविषे ॥ सुण वयण सयाणे चित्तमां लोभ माणे ॥ सकल व्यसनकेरो मार्ग ए लोभ जाणे ॥ इक खिण पण एने संग रंगे म लागे ॥ भव भव दुख दे ए लोभने दूर त्यागे ॥ ५३ ॥ कनकगिरि कराया लोभथी नंदराये ॥ निज अरथ न आया ते हस्या देवताये ॥ सयल निधि लही जे स्वाय ते विश्व कीजे ॥ मन तनह वरीजे लोभ तृष्णा न हीजे ॥ ५४ ॥ अथ दयाविषे ॥ सुकृत कलप वेली लब्धि विद्या सहेली ॥ विरतिरमण केली शांति राजा महेली ॥ सकल गुण भलेरी जे दया जीव केरी ॥ निज हृदय धरी ते साधिए मुक्ति सेरी ॥ ५५ ॥ निज सरण परेवो श्येनथी जेण राख्यो ॥ षट दशम जिने ते ए दया धर्म दाख्यो ॥ तिह हृदय धरीने जो दया धर्म कीजे ॥ भवजलधि तरीजे दुःख दूरे करीजे ॥ ५६ ॥ अथ सत्यविषे ॥ गरल अमृत वाणी साचथी अग्नि पाणी ॥ सूज सम अहिराणी साच विश्वास खाणी ॥ सुपसन सुर कीजे साचथी ते तरीजे ॥ त्रिण अलिक तजीजे साचवाणी वदीजे ॥ ५७ ॥ जग अपजश वाधे कूडवाणी वदंतां ॥ वसु नृपति कुगत्यें साख कूडी भरंतां ॥ असत वचन वारी साचने चित्त धारी ॥ वद वचन विचारी जे सदा सौख्यकारी ॥ ५८ ॥ अथ चोरीविषे ॥ पर धन अपहारे स्वार्थपें चोर हारे ॥ कुल अजस वधारे बंध घातादि धारे ॥ पर धन तिण हेते सर्प ज्यूं दूर वारी ॥ जग जन हितकारी होय संतोष धारी ॥ ५९ ॥ निशिदिन नर पामे जेहथी दुःख कोडी ॥ तज तज धन चोरी कष्टनी जेह ओरी ॥ पर विभव हरंतो रोहिणी चोर रंगे ॥ इह अभय कुमारे ते ग्रह्यो बुद्धि संगे ॥ ६० ॥

अथ कुशीलविषे ॥ अयश पमह वागे लोकमा लीह लागे ॥ डुरजन बहु जागे जे कुले लाज लागे ॥ सजन पण विरागे मा रमे एण रागे ॥ परतिय रस रागे दो पनी कोडि जागे ॥ ६१ ॥ परतिय रसरागे नाश लकेश पायो ॥ परतिय रस त्यागे शील गगेव गायो ॥ द्रुपद जनक पुत्री विश्व विख्वे विदीती॥ सुर नर मिलि सेवी शीलने जे धरती ॥ ६२ ॥ अथ परिग्रहविषे ॥ शशिउदय वधे ज्यूं सिंधु वेला नलेरी॥ धनकरि मन लाए तेम वाधे घणेरी ॥ डुरित नरग सेरी तू करे ए परेरी ॥ ममकर अधि केरी प्रीति ए अर्थकेरी॥ ६३ ॥ मनुज जनम हारे ॥ डुखनी कोडि धारे ॥ परिग्रह ममता ए स्वर्गना सौख्य वारे ॥ अधिक धरणि लेवा धातकी खंम केरी॥ सुछुम कुगति पामी चक्रिराये घणेरी ॥ ६४ ॥ अथ सतोषविषे ॥ सकल सुख नराए विश्व तावश्य थाए ॥ नवजलधि तराए डुख दूरे पलाए ॥ निज जनम सुधारे आपदा दूर वारे ॥ निज धरम वधारे जेह सतोष धारे ॥ ६५ ॥ सकल सुखतणो ते सार सतोष जाणे ॥ कनक रमणिकेरी जेह इच्छा न आणे ॥ रजनि कपिल वाध्यो स्वर्णनी लोलताए ॥ नमर कमल वाध्यो ते असतोषताए॥ ६६ ॥ अथ विषयविषे ॥ शिवपद यदि वाले जेह आनंद दाई॥ विषसम विषया तो छांमि दे डुखदाई ॥ मधुर अमृत धारा दूधनी जो लहीजे ॥ अति विरस सदा तो काजिका सग्रही जे ॥ ६७ ॥ विषय विकल ताणी कीचके नीम नार्या ॥ दशमुख अपहारी जानकी रामनार्या ॥ रति धरि रहनेमी क्रीडवा नेमि नार्या ॥ जिण विषय न वर्ज्या तेह जाणो अनार्या ॥ ६८ ॥ अथ इंद्रियविषे ॥ गज मगर पतगा जेह नृंगा कुरंगा ॥ इक इक विषयार्थे ते लहे डुख चगा ॥ जस परवश पावे तेहनुं शूं कहीजे ॥ इम हृदय विमासी इंद्रि पाचे दमीजे ॥ ६९॥ विषय वन चरता इंद्रि जे उंटडा ए ॥ निज वश नवि राखे तेह दे डुखडा ए॥अवश करण-मृत्यू ज्यू अगुप्तेंद्रि पामे ॥ स्ववश सुख लह्या ज्यू कुर्म गुप्तेंद्रि नामे ॥ ७० ॥ अथ प्रमादविषे ॥ सहु मन सुख वाले डुखने को न वाले॥ नहि धरम विना ते सौख्य ए सपजे छे ॥ इह सुधरम पामी का प्रमादे गमीजे ॥ अति अलश तजीने उद्यमे धर्म कीजे ॥ ७१ ॥ इह दिवश गया जे तेह पाछा न आवे ॥ धरम समय आले कां प्रमादे गमावे ॥ धरम नवि करे जे आयु आले वहावे ॥ शशि नृपतिपरे त्यु सोचना अत पावे ॥ ७२ ॥ अथ साधुधर्मविषे ॥ शार्दूल विक्रीडितछद ॥ जे पच व्रत मेरु नार निवहे, नि सग रगे रहे ॥ पचाचार धरे प्रमाद न करे, जे डु परिस्सा सहे ॥ पाचे इंद्रि तुरगमा वश करे, मोक्षार्थेने सग्रहे ॥ एवो डुष्कर साधु धर्म धन ते, जे

ज्यूं ग्रहे त्यूं वहे ॥ ७३ ॥ मालिनीछंद ॥ मयण सरव मोमी कामिनी संग लोमी॥ तजिय कनक कोडी मुक्तिसूं प्रीति जोडी ॥ नव नव नय वामी शुद्ध चारित्र पामी ॥ इह जग शिवगामी ते नमो जंबु स्वामी ॥ ७४ ॥ अथ श्रावकधर्म विषे ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ जे सम्यक्त लही सदा व्रत धरे, सर्वज्ञ सेवा करे ॥ संध्या वश्यक आदरे गुरु भजे, दानादि धर्माचरे ॥ नित्ये सद्गुरु सेवना मनधरे, एवो जिनाधीशरे ॥ भाख्यो श्रावकधर्म दोय दशधा, जे आदरे ते तरे ॥ ७५ ॥ मालिनी छंद ॥ निशिदिन जिनकेरी जे करे शुद्ध सेवा ॥ अणु व्रत धरि जे ते काम आनंद देवा॥ चरम जिन वरिंदे जे सुधर्मे सुवास्या ॥ समकित सतवंता श्रावका ते प्रसंस्या ॥ ७६ ॥ इम अरथ रसाला जे रची सूक्तमाला ॥ धरम नृपति बाला मालिनी छंद शाला ॥ धरम मति धरंतां ए इहां पुण्य वाध्यो ॥ प्रथम धरम केरो सार ए वर्ग साध्यो ॥ ७७ ॥ इति श्रीमत्सूक्त मुक्तावल्यां धर्मवर्गः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ अथ अर्थवर्ग प्रारंभः ॥

उपेंद्रवज्राछंदः ॥ अथार्थवर्गे हितचिंतनं श्रीर्मितंपचार्थ्यस्व महीशसेवा ॥ खलादिमैत्री व्यसनादि चैव; मिहावधार्याः कतिचित्प्रसंगाः ॥ १ ॥ अथ अर्थ विषेः मालिनी छंद ॥ अरथ अरजि जेणे स्वायते विश्व होवे ॥ जिण विण गुण विद्या रूपने कोण जोवे ॥ अभिनव सुखकेरो सार ए अर्थ जाणी ॥ सकल धरम एथी साधिए चित्त आणी ॥ २ ॥ अरथ विण कवन्नो जेह वेश्याइ नाख्यो ॥ अरथ विण वसिष्टे राम जातो उवेख्यो ॥ सुकृत सुजस कारी अर्थ ते ए उपार्जो ॥ कुवणज उपजंतो अर्थ ते दूर वर्जो ॥ ३ ॥ अथ हित चिंतनविषेः॥ परहित करवा जे चित्त उच्छाह धारे ॥ परकृत हितहीये जे न कांई विसारे ॥ प्रति हित परथी ते जे न वांछे कदाई ॥ पुरुष रयण सोई वंदिए सो सदाई ॥४॥ निज दुख न गणीने पारकूं दुःख वारे ॥ तिहतणि बलिहारे जाइए कोडि वारे ॥ जिम विपन्नर जेणे झंक पीडा सहीने ॥ विषधर जिनवीरे बूझव्यो ते वहीने ॥ ५ ॥ अथ लक्ष्मीविषेः॥हरि सुत रति रंगे जे रमे रात सारी ॥ शिवतनय कुमारो ब्रह्म पुत्री कुंमारी ॥ हितकरि दृगलीला जेहने लछि जोवे ॥ सकल सुख लहे सो सोहि विख्यात होवे ॥ ६ ॥ लखमि बलि यशोदा नंदने विश्व मोहे ॥ लखमि विण विरूपी संभु भिक्षू न सोहे ॥ लखमि लहिय रांके जे शिलादित्य नांख्यो ॥ लखमि लहिय शाके विक्रमे विश्व रंज्यो ॥ ७ ॥ अथ कृपणविषेः ॥ कण

कण जिम सचे कीटिका धान्यकेरो ॥ मधुकर मधु संचे नोगवे को अनेरो ॥ ति
म धन कृपणकेरो नोपकारे दिवाये ॥ इमहि विलय जाए अन्यथा अन्य खाए ॥
७ ॥ कृपण पणु धरंता जे नवे नंद राया ॥ कनक गिरि कराया ते तिहां अर्थे
नाया ॥ इम मनत करता डुःख वासे वसीजे ॥ कृपण पणु तजीजे मेघज्यूं दा
न दीजे ॥ ८ ॥ अथ याचनविषे ॥ निरमल गुण राजी त्या लगे लोक राजी ॥
तब लग कहि जीजी त्या लगे प्रीति फाजी ॥ सुजन जन सनेही त्या लगे मि
त्र तेही ॥ मुख थकि न कहीजे ज्या लगे देहि देही ॥ १० ॥ जइ वडपण वाले
मांगजे तो न कांई ॥ लहु पण जिण होवे केम कीजे तिकांई ॥ जिम लघु थइ सोने
वीरथी दान लीधूं ॥ हरि बल नृप आगे वामना रूप कीधूं ॥ ११ ॥ अथ नि
र्धनविषे ॥ धनविण निज बंधू तेहने दूर छंडे ॥ धनविण गृह नार्या तेह सेवा न
मंडे ॥ निरजल सरजेवो देह निर्जीव जेवो ॥ निरधन तृण जेवो लोकमे ते गणे
वो ॥ १२ ॥ सरवर जिम सोहे नीर पूरे नरायो ॥ धन करि नर सोहे तेम नीते
उपायो ॥ धनकरिय सुंहतो माघ जे जाण दूतो ॥ धनविण पग सूजी तेह दीठो मर
तो ॥ १३ ॥ अथ राज सेवाविषे ॥ सुजनसु हित कीजे डुर्जना सीख दीजे ॥ जग
जन वश कीजे चित्त वाछा वरीजे ॥ निज गुण प्रगटीजे विश्वना कार्य कीजे ॥ प्रनु
सम विचरीजे जो प्रनूसेव कीजे ॥ १४ ॥ नगतिकरि वहानी सेव कीजे जिकांई
॥ अधिक फल न आपे कर्मथी ते तिकांई ॥ जलधि तरिय लंका सीत सदेस
लावे ॥ हनुमत करमे ते राम कछोट पावे ॥ १५ ॥ अथ खलताविषे ॥ रस विर
स नजे ज्यूं अंब निंब प्रसगे ॥ खल मिलण हुवे त्यूं अतरग प्रसगे ॥ सुण सु
ण ससनेही जाणि ले रीति जेही ॥ खल जन निसनेही तेहशूं प्रीति केही ॥ १६
मगर जल वसंतो ते कपीराय दीठो ॥ मधुर फल चखावी ते कखो मित्र मीठो
॥ कपि कलिज नखेवा मत्स खेली खलाई ॥ जलमहि कपि बुद्धी ढाकि दे ते नला
ई ॥ १७ ॥ अथ अविश्वाशविषे ॥ उपजाति छद ॥ विश्वासिसाथे न छले रमीजे ॥ न
वैरि विश्वास कदापि कीजे ॥ जो चित्त ए धीर गुणे धरीजे ॥ तो लच्छि लीला ज
गमा वरीजे ॥ १८ ॥ इन्द्रवज्राछद ॥ चाणायके ज्यूं निज काज साख्यो ॥ जे राज नागी नृप
तेह माख्यो ॥ जो घूअडे काक विश्वास कीधो ॥ तो वायसे घूकने दाह दीधो ॥ १९ ॥
अथ मैत्रीविषे ॥ मालिनीछद ॥ करि कनक सरीसी साधु मैत्री सदाई ॥ घसि कसि
तप वेधे जास वाणी सवाई ॥ अहव करहि मैत्री चद्रमा सिधु जेही ॥ घट घट
वध वाधे सारखा वे सनेही ॥ २० ॥ इह सहज सनेहे जे वधे मित्रताई ॥ रवि प

रि न चले ते काजज्यूं बंधुताई ॥ हरि हलधर मैत्री कृष्णने जे नमासे ॥ हलधर निज खंधे ले फिस्यो जीवि आसे ॥ २१ ॥ अथ व्यसन विषे ॥ नलिन मलिन शोना सां जथी जेम थाए ॥ इह कुवसनथी त्यूं संपदा कीर्त्ति जाए ॥ कुविसन तिण हेते सर्वथा दूर कीजे ॥ जनम सफल कीजे कीर्त्ति कांता वरीजे ॥ २२ ॥ अथ द्यूतविषे ॥ डुतविलंबित छंद ॥ सुगुरु देव जिहां नवि लेखवे॥धनविणा सहुए जिण खेलवे ॥ जव जवे जमवूं जिण कवटें ॥ कहिनि कोण रमे तिण जूवटें ॥ २३ ॥ अथमांस जक्षण विषे ॥ उपजातिछंद ॥ जे मांस लुब्धा नर ते न होवे॥ते राक्षसा मानुषरूप सोवे ॥अथ चोरीविषेः॥ जे लोकमां नर्ग निवास करी॥ निवारीए ते परड्व्यचोरी ॥ २४ ॥ अथ मद्यविषेः॥ जुयंगप्रयातछंद ॥ सुरापानथी चित्त संज्रांत थाये ॥ गले लाज गंजीरता शील जाये ॥ जिहां ज्ञान विज्ञान सूजे न बूजे ॥ इशू मद्य जाणी न पीजे न दीजे ॥ ॥२५॥ अथ वेश्याविषेः ॥ कहो कोण वेश्या तणो अंग सेवे ॥ जिणे अर्थनी लाजनी हाणि होवे ॥ जिणे कोश सिंहा गुफाये निवासी ॥ छल्यो साधु ने पालग्यो कंबलासी ॥२६॥ अथ खेटकविषेः॥ छंद ॥ मृगयाने तज जीव घात जे ॥ सघले जीव दया सदा जजे ॥ मृगयाथी डुख जे लह्या नवां ॥ हरि रामादि नरेंड जे हवा ॥ २७ ॥ परस्त्रीविषेः चौपाईछंद ॥ स्वर्ग सौख्यजणि जो मन आशा ॥ छांडे तो परनारि विलासा ॥ जेण एण निज जन्म डुःखए ॥ सर्वथा न परलोक सूखए ॥ २८ ॥ अथ ए विषयोना उदाहरणो ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ जूवा खेलण पांमवा वन जम्या, मद्ये बली द्वारिका ॥ मांसे श्रेणिक नारकी डुख लह्या, बांध्या नरे चोरिका ॥ आखेटे दशरत्थपुत्र विरही, केवन्न वेश्या घरे ॥ लंकास्वामि परत्रिया रस रमे, जे ए तजे ते तरे ॥२९॥ अथ कीर्त्तिविषेः ॥ मालिनी छंदः ॥ दिशिदिशि पसरंती चंड्मा ज्योति जैसी ॥ श्रवण सुणत लागे जाण मीठी सुधासी ॥ निशिदिन जनगाये रामराजिंद जेवी ॥ इणि कलि बहु पुण्ये पामियें कीर्त्ति एवी ॥३०॥ अथ प्रधानविषेः॥सकल व्यसन वारे स्वामिसूं जक्तिधारे ॥ स्वपरहित वधारे राज्यना काज सारे ॥ अनय नय विचारे क्षुड्ता दूर वारे॥ निजसुत जिम धारे राज्य लक्ष्मी वधारे ॥ ३१ ॥ अथ कलाविषे ॥ चतुर कर कलानो संग्रहो सौख्यकारी ॥ इण गुण जिण लाधी डाँण संपत्ति सारी ॥ त्रिपुर विजय कर्त्ता जे कलाने प्रसंगे ॥ हिमकर मनरंगे ले धस्यो उत्तमांगे ॥३२॥ अथ मूर्खताविषेः॥ वचन रस न जेदे मूर्ख वार्त्ता न वेदे ॥ तस कुवचन खेदे तेहने सीख जे दे ॥ नृपशिर रज नाखी जेण मूर्खे वहीने ॥ हित कहत हणीज्युं वानरे सुग्रहीने ॥३३॥ अथ लज्जाविषेः ॥ निज

वचन निवाहे लाज ग्युराज्य वाले ॥ व्रत नय कुलरीते मातज्यूं लाज पाले ॥ सक ल गुण सुहावे लाजथी नावठेवे ॥ व्रत नियम लह्यो जे नाऽ लज्जा प्रनावे ॥३४॥ शालिनी छंद ॥ एवा जे जे रूयडा नाव राजे ॥ एणेविश्वे अर्थथी तेह छाजे ॥ एवु जाणी सार ए सौख्य केरो ॥ ते धीरा जे अर्थ अर्जे नलेरो ॥ ३५ ॥ इतिश्री सूक्त मुक्तावल्या अर्थवर्गो द्वितीय समाप्त ॥ २ ॥

॥ अथ कामवर्ग प्रारंन ॥

उपजाति छंद ॥ ग्राह्या कियत किलकामवर्गे कामो नूनाया गुणदोषनाज ॥ सुलक्षणे योगवियोगयुक्तं समातृपितृप्रमुखा प्रसगा ॥ १ ॥ अथ कामविषे ॥ कदर्प पचानन तेज आगे ॥ कुरग जेवा जगजीव नागे ॥ स्त्रीशस्त्र लेई जग जे व दीता ॥ तिएण देवा जनवृंद जीता ॥ २ ॥ मालिनी छद ॥ मनमथ जगमाहे दु र्जयी जे अयापी ॥ त्रिनुवन सुरराजी जासशस्त्रे सतापी ॥ जलज विधि उपासे वा द्विजा विष्णु सेवे ॥ हर हिम गिरिजाने जेण अर्द्धांग देवे ॥ ३ ॥ शार्दूलविक्रीडित छंद ॥ निल्लीनाव चल्यो महेश उमया, जे काम रागे करी ॥ पुत्री देखि चल्यो चतुर्मु ख हरी, आहेरिका आदरी ॥ इन्द्रे गोतमनी त्रिया विलसिने. सन्नोग ते ओलव्या ॥ कामे एम महंत देव जग जे, ते नोलव्या रोलव्या ॥ ४ ॥ मालिनी छद ॥ नल नृ पद वदती देखि चारित्र चाले ॥ अरह नरहनेमी ते तपस्या विटाले ॥ चरम जिन मुनी ते चिल्लणारूप मोहे ॥ मयण सर व्यथाना एह उन्माद सोहे ॥ ५ ॥ अथ गुणदोषोद्भावनविषे ॥ रथोद्धताछद ॥ उत्तमा पण नरा न सनवे ॥ मध्यमा तिम न योषिता हुवे ॥ एह उत्तमिक मध्यमी पणो ॥ वेदुमाहि गुणदोषनो गिणो ॥६॥ तत्र पुरुषगुणा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ जे नित्ये गुण वृंद ले परतणा, दोषा न जे दाखवे ॥ जे विश्वे उपगारिने उपकरे, वाणीसुधा जे लवे ॥ पूरा पूनिम चद जेम,सुगुणा, जे धीर मेरूसमा॥उन्ना जेह गन्नीर सायर जिस्या, ते मानवा उत्तमा ॥७ ॥ अनुष्टुप् छद ॥रूप सौन्नाग्य सपन्ना सत्वादिगुणशोनना ॥ ते लोके विरला धीरा श्रीराम सदृशा नरा ॥ ८ ॥ अथ पुरुष दोषा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितछद ॥ लकास्वामि हरति राम तजि जे, शीतातणी एवकी ॥ स्त्रीवेची हरिचंद पांमव नृपे. रु ष्णा न राखी सकी ॥ रात्रे छमि निज स्त्रिया नल नृपे, ए दोष मोटा नणी॥ जोवो उत्तम माहि दोष गणना, का वात वीजातणी ॥ ९ ॥ अथ स्त्रीगुणा यथा ॥ उपजा तिछद ॥ सुसील आले प्रिय चित्त चाले ॥ जे शील पाले गृह चित टाले ॥ दाना

दि जेणे गृहधर्म होई ॥ ते गेहि नित्ये घरलछि सोई ॥ १० ॥ अथ स्त्रीदोषा यथा ॥ उपजातिछंद ॥ नर्त्ता हण्यो जे पति मारकायें ॥ नाख्यो नदीमां सुक मालिकायें ॥ सुदर्शनश्रेष्टि सुशील राख्यो ॥ ते आल देई अनयाय दाख्यो ॥ ११ ॥ वसंततिलका छंदः ॥ मार्यो प्रदेशि सुरिकांति विषयावलीए ॥ राजा यशोधर हण्यो नयनावलीए ॥ दुःखी कर्यो स्वसुर नूपुर पंडिताए ॥ दोषी त्रिया इम जणी इण दोषताए ॥ १२ ॥ अथ सुलक्षणी स्त्रीविषेः--शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ रूडी रूपवती सुशील सुगुणी, लावण्य अंगे लसे ॥ लज्जालु प्रियवादिनी प्रियतणे, चित्ते सदा जे वसे ॥ लीला यौवन उल्लसे उरवसी, जाणे नृलोके वशी ॥ एवी पुण्यतणे पसाय लहिये, रामे रमा सारशी ॥१३॥ उपजातिछंदः ॥ सीता सुनंदा नलराय राणी ॥ जे द्रोपदी शीलवती वखाणी ॥ जे एहवी शीलगुणे समाणी ॥ सुलक्षणा ते जगमांही जाणी ॥१४॥ अथसंयोगविषेः ॥ मालिनी छंदः प्रियसखि प्रिययोगे उल्लसे नेत्र रंगे ॥ हसित मुख शशीज्युं सर्व रोमांच अंगे ॥ कुच इक मुझ वैरी नम्रता जे न दाखे ॥ प्रिय मिलण समे जे अंतरो तेह राखे ॥ १५ ॥ अथ वियोगविषेः दिन वरस समाणे रैणि कल्पांत जाणे ॥ हिम रज कदली जे तेह ज्वाला प्रमाणे ॥ शशिरसिकरसो जे सूरसो सोइ लागे ॥ प्रिय विरह प्रियाने दुःख शूं शूं न जागे ॥१६॥ अथ माताविषे॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ जे मातनो बोल कदा न लोपे ॥ जे विश्वमां सूरज जेम ओपे ॥ ज्यां धर्म चर्या बहुधा परीखी ॥ त्यां मातपूजा सहुमां सरीखी ॥१७॥ जे मात मोहें जिन एम कीधो ॥ गर्भे वसंतां व्रत नेम लीधो ॥ जे मात नंदा वयणे प्रबुद्धो ॥ शीला तपंते अरहन्न सीधो॥१८॥अथपिताविषेः॥ जे बाल नावे सुतने रमाडे॥ विद्या नणावे सरसूं जमाडे॥ते तातनो प्रत्युपकार एही॥ जे तेहनी नक्ति हिये वहेही ॥ १९॥ मालिनीछंदः ॥ निषध सगर राया जे हरीनंद चंदा ॥ तिम दशरथ राया जे प्रसन्ना मुनिंदा ॥ मनक जनक जेते पुत्रने मोह नार्या ॥ स्वसुत हित करीते तेहना काज सार्या ॥२०॥ अथ पुत्रविषेः॥स्वागताछंदः मात तातपद पंकज सेवा ॥ जे करे तस सुपुत्र कहेवा॥जेह कीर्त्ति कुललाज वधारे ॥ सूर्य जेम जगि तेज सधारे॥ २१ ॥ शालिनीछंदः ॥ गंगापुत्रे विश्वमां कीर्ति रोपी ॥ आज्ञा जेणे तातकेरी न लोपी ॥ ते धन्या जे अंजनापुत्र जेवा ॥ जेणे कीधी जानकी नाथ सेवा ॥ २२ ॥तोटकछंदः ॥ इम काम विलास उलास तए ॥ रसरीति हदे अनुनावतए ॥ जिमचंदन अंग विलेप तए ॥ हिय होय सदा सुख संपतए ॥ २३ ॥ इति श्रीसूक्त मुक्तावल्यां काम वर्गस्तृतीयः समाप्तः ॥

अथ मोक्षवर्ग प्रारंभः

उपजातिछंद ॥ ग्राह्या कियत. किल मोक्षवर्गे कर्मक्षयासयमभावनाद्या ॥ विवेकनिर्वेदनिजप्रबोधा इत्येवमेते प्रवरप्रसगा ॥ १ ॥ मोक्षार्थविषे मालिनीछंद ॥ इह भव सुख हेते के प्रवर्ते भलेरा ॥ परभव सुखहेते जे प्रवर्ते अनेरा ॥ अवर अरथ छंमी मुक्ति पथा अराधे ॥ परम पुरुष सोई जेह मोक्षार्थ साधे ॥ २ ॥ तजिय भरत केरी जेण छे खंड भूमी ॥ शिवपथ जिण साध्यो सोलमे सांति सामी ॥ गजमुनि सुप्रसिद्धा जेम प्रत्येक बुद्धा ॥ अवर अर्थ छडी धन्य ते मोक्ष लुद्धा॥३॥ अथ कर्मविषे ॥ करम नृपति कोपे दुःख आपे घणेरा॥ नरय तिरय केरा जन्म जन्मे अनेरा ॥ शुभ परिणति होवे जीवने कर्म तेवे ॥ सुरनरपतिकेरी सपदा सोइ देवे ॥ ४ ॥ करम शशि कलंकी कर्म भिक्षू पिनाकी ॥ करम बलि नरेंद्रे प्रार्थना विष्णुराकी ॥ करम वश विधाता इद्र सूर्यादि होई ॥ सबल करम सोई, कर्म जेवो न कोई ॥ ५ ॥ अथ क्षमाविषे ॥दुरित भर निवारे जे क्षमा कर्म वारे ॥ सकल तप सधारे पुन्य लक्ष्मी वधारे ॥ श्रुत सकल अराधे जे क्षमा मोक्ष साधे ॥ जिण निज गुण वाधे ते क्षमा कां न साधे ॥ ६ ॥ सुगति लहि खिमाए खध सूरीस सीसा ॥ सुगति दृढ प्रहारे कूरगड्डू मुनीसा ॥ गज मुनिस खिमाए मुक्ति पथा अराधे ॥ तिम सुगति खिमाए साधु मेंतार्य साधे ॥ ७ ॥ अथ सयमविषे स्वागता छंद ॥ पूर्व कर्म सवि सयम वारे ॥ जन्म वारिनिधि पार उतारे ॥ तेह सयम न केम धरीजे ॥ जेण मुक्ति रमणी वश कीजे ॥ ८ ॥ तुग शैल बलदेव सुहायो ॥ जेण सिंह मृग बोध बतायो ॥ तेम सयम लहीय अरायो॥ जेण पचम सुरालय पायो ॥ ९ ॥ अथ द्वादश भावनाविषे ॥तत्र प्रथम अनित्य भावना ॥मालिनी छंद॥ खण खण तनु जीवी बीज झात्कार जेवी ॥ सुजन तरुण मैत्री स्वप्न जेवी गणेवी ॥ अहमत ममताए मूढता कांइ माचे ॥ अथिर अरथ जाणी एणशूं कोण राचे ॥ १० ॥ धरणि तरु गिरिंदा देखिए भाव जेई ॥ सुर धनुष परे ते भंगुरा भाव तेई इम हृदय विमासी कारमी देह छाया॥तजिय भरतराया चित्त योगे लगाया॥११॥ द्वितीय असरण भावना ॥ परम पुरुष जेवा सहस्रा जे कृतांते ॥ अवर सरण केहुं लीजिये तेह अंते ॥ प्रिय सुहृद कुटंबा पाश वेगा जिकोई ॥ मरण समय राखे जीवने ते न कोई ॥ १२ ॥ सुर गण नर कोडी जे करे जास सेवा ॥ मरण भय न छूटा तेह इंद्रादि देवा ॥ जगत जन हरतो एम जाणी अनाथी ॥ भव ग्रहिय वि छूटो जेह ससारमाथी ॥ १३ ॥ तृतीय ससार भावना ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥

तिर्यंचादि निगोद नारकितणी, जे योनि योनी रह्यां ॥ जीवे दुःख अनेक दुर्गतित णा, कर्मप्रनावे लह्यां ॥ या संयोग वियोग रोग बहुधा, या जन्म जन्मे दुखी ॥ ते संसार असार जाणि इहवो, जे ए तजे सो सुखी ॥ १४ ॥ इंद्रवज्रा छंदः ॥ जे हीन ते उत्तम जाति जाए ॥ जे उच्च ते मध्यम जाति थाए ॥ ज्यूं मोक्षमेतार्य मुनींद्र जाए ॥ त्यूं मंगु सूरी पुरयक्ष थाए ॥ १५ ॥ चतुर्थ एकत्वनावना पुण्ये अकेलो जिव स्वर्ग जाए ॥ पापे अकेलो जिव नर्क जाए ॥ ए जीव जा आ व करे अकेलो ॥ ए जाणिने ते ममता महेलो ॥ १६ ॥ उपजाति छंदः ॥ ए एकलो जीव कुटंब योगे ॥ सुखी दुखी ते तस विप्रयोगे ॥ स्त्री हाथ देखी वलयो अकेलो ॥ नमी प्रबोध्यो तिणथी वहेलो ॥ १७ ॥ पंचम अन्यत्वनावना ॥ जो आपणो देहज ए न होई ॥ तो अन्यको आपण मित्त कोई ॥ जे सर्व ते अन्य इहां नणीजे ॥ केहो तिहां हर्ष विषाद कीजे ॥ १८ ॥ देहादि जे जीवथकी अनेरां ॥ इयो दुःख कीजे तस नासकेरां ॥ ते जाणिने वाघणिने प्रबोधी ॥ सुकोसले स्वांगन सारकीधी ॥ १९ ॥ अथ अशुचिनावना ॥ काया महा एह अशूचिताई ॥ जिहां नव द्वार वहे सदाई ॥ कस्तूरिकर्पूर सुद्रव्य सोई ॥ ते काय संयोग मलीन होई ॥ २० ॥ अशूचि देही नर नारि केरी ॥ म राच जे ए मलमूत्र सेरी ॥ ए कारमी देह असार देखी ॥ चतुर्थ चक्रिय पण ते उवेखी ॥ २१ ॥ सप्तमी आश्रवनावना ॥ मालिनीछंदः ॥ इह अविरति मिथ्या योग पापादि साधे इण उण नव जीवा आश्रवे कर्म बांधे ॥ करम जनक जेने आश्रवा जे न रुंधे ॥ स मर समय आत्मा संवरी सो प्रबुद्धे ॥ २२ ॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ जे कुंडरीके व्रतछांडि दीधुं ॥ नाईतणूं तेवलि राज्य लीधुं ॥ ते दुःख पाम्या नरके घणेरा ॥ ते हेतु ए आश्रव दोषकेरा ॥ २३ अष्टमी संवरनावना जे सर्वथा आश्रवने निरुंधे ॥ ते संवरी संवरनाव साधे ॥ ते नाववंदो गुरुवज्र स्वामी ॥ जेणे त्रिया कंचन कोडि वामी ॥ २४ ॥ नवमी निर्जरा नावना ॥ मालिनी छंदः ॥ दुयदस तपनेदे कर्म ए निर्जराए ॥ उतपति थिति नाशे लोक नावा नराए ॥ दुरलन जग बोधी दुर्लना धर्मबुद्धी ॥ नव हरणि विनावो नावना एह शुद्धी ॥ २५ ॥ उपजातिछंदः ॥ बे निर्जरा काम सकाम तेही ॥ अकाम जे ते मरुदेवि जेही ॥ ते ज्ञानथी कर्मह निर्जरीजे ॥ दृढ प्रहारी परि तो तरीजे ॥ २६ ॥ दशमी लोकनावना ॥ मालिनी छंदः ॥ जिम पुरुष विलोये ए अधो लोक तेवो ॥ तिरिय पण विराजे थाल स्योवृत्त जेथी रे ॥ उरध मुरज जेवो लोकनालें प्रकास्यो ॥ तिमज नवन नानूं केवली ज्ञान सरीति रे ॥ २७ ॥ एकादश बोधिदुर्लननावना ॥ स्वागता छंदः ॥ बोधि बीज लहि संपतए ॥ थे ॥ ते इलासुत परे शिव साधे ॥ धर्म नावन लही नवि नावो ॥ राय

सम्प्रति परे सुख पावो ॥ २८ ॥ अथ रागविषे ॥ इद्रवज्रा छंद ॥ रागे म राचे भव बंध जाणी॥जे जाण ते राग वशे अनाणी॥गौरी तणे राग महेस रागी॥अर्धांग देवा निजबुद्धि जागी ॥ २९ ॥ अथ द्वेषविषे ॥ रे जीव विद्वेष मने म आणे ॥ विद्वेष संसार निदान जाणे ॥ सासू नणदे मिलि कूड कीधू ॥ जूवं सुभद्रा शिर आल दीधू ॥३०॥ अथ संतोषविषे ॥ वसततिलका छंद ॥ संतोष तृप्त जनने सुख होय जेवु ॥ ते द्रव्य लुब्ध जनने सुख नाहि तेवु ॥ संतोषवंत जनने सहु लोक सेवे ॥ राजेंद्र रंक सरिखा करि जेह जोवे ॥३१॥ अथ विवेकविषे॥ उपजाति छंद ॥ जो जेह चित्ते सुविवेक भासे ॥ तो मोह अंधार विकार नाशे ॥ विवेक विज्ञानतणे प्रमाणे ॥ जीवादि जे वस्तु स्वभाव जाणे ॥ ३२ ॥ इद्रवज्रा छंद ॥ बाला पणे संयम योग धारी ॥ वर्षाऋते काछलि जेण तारी ॥ श्रीवीरकेरो अयमत्त तेई ॥ सुज्ञान पाम्यो सुविवेक लेई ॥ ३३ ॥ अथ निर्वेदविषे॥शार्दूलविक्रीडितछंद ॥जे वधूजन कर्म बंधन जिसा, भोगा भुजंगा गिणे ॥ जाणतो विषसारिखी विषयता, संसारता ते हणे ॥ जे संसारह रागहेतु जनने, संसार भावा हुवे ॥ भावो तेइ विरागवंत जनने, वैराग्यता दाखवे ॥ ३४ ॥ वसततिलकाछंद ॥ निर्वेद ते प्रबल कुंजर वंदिखाणो ॥ जे छोडवा मनधरे बुध तेह जाणो॥ निर्वेदथी तजिय राज विवेक लीधो ॥योगींद्र भर्तृहरि संयम योग लीधो ॥३५॥ अथ आत्मबोधविषे॥ए मोहनींद तजि केवल बोध हेते॥ ते ध्यान शुद्ध हृदि भावनि एक चित्ते ॥ ज्यूं निःप्रपंच निज ज्योति स्वरूप पावे॥ निर्वाण जे अखय मोक्ष सुखार्थ आवे ॥ ३६ ॥ मालिनी छंद ॥ भवि विषयतणा जे चंचला सौख्य जाणी ॥ प्रियतम प्रिय योगा भंगुर चित्त आणी ॥ करमदल खपेई केवल ज्ञान लेई ॥ धन धन नर तेई मोक्ष साधे जिकेई ॥ ३७ ॥ इति मोक्षवर्ग चतुर्थ समाप्त ॥

उपजाति वृत्त ॥ इत्येवमुक्ता किल सूक्तमाला विभूषिता वर्गचतुष्टयेन ॥ तनोतु शोभा मधिक जनाना कण्ठस्थिता मौक्तिकमालिकेव ॥ १ ॥ शार्दूलविक्रीडित वृत्त ॥ आसीत्सद्गुणसिंधुपार्वणशशी श्रीमत्तपागच्छप सूरि श्रीविजयप्रभाभिधगुरुर्बुध्या जित स्वर्गुरु ॥ तत्पट्टोदयभूधरो विजयते भास्वानिवोयत्प्रभ सूरिश्रीविजयादिरत्नसुगुरुर्विश्वजनानंदभू ॥ २ ॥ आर्यावृत्तं ॥ विख्यातास्तद्राज्ये, प्राज्ञा श्रीशांतिविमलनामान ॥ तत्सोदरा बभूवु प्राज्ञा श्रीकनकविमलाह्वा ॥३॥ तेषामुभौ विनेयौ विद्वान् कल्याणविमल इत्याह्व ॥तत्सोदरो द्वितीय. केसरविमलाभिधो ऽवरज ॥४॥ तेन चतुर्भिर्वर्गै, रचिता भाषानिबद्धरुचिरेय ॥ सूक्तानामिह माला, मनोविनोदाय

बालानां ॥ ५॥ वेदेंद्रियर्षि चंद्र, प्रमिते श्रीविक्रमार्हते वर्षे ॥ अग्रंथि सूक्तमाला केसर विमलेन विबुधेन ॥ ६ ॥ इति श्रीसूक्तमुक्तावली संपूर्ण.

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

अथ

श्री विनयविजयजी उपाध्यायकृत शांतसुधारस ग्रंथ अर्थसहित प्रारंभः

शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ नीरंध्रे भवकानने परिगलत्पंचाश्र
वांभोधरे नानाकर्मलतावितानगहने मोहांधकारोद्धुरे ॥
भ्रांतानामिह देहिनां स्थिरकृते कारुण्यपुण्यात्मभिस्तीर्थे
शैः प्रथितास्सुधारसकिरो रम्या गिरः पांतु वः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ प्रथमग्रंथकर्त्ता ग्रंथनेआदें श्रीतीर्थंकरदेवनी वाणीनी स्तुतिकरी मंगलाचरणकरेछे हेभव्यो जेमां कोइछिद्रनथी एटलेनिकलवानो बारणोनथी वलीजेमां समस्तप्रकारें पांचआश्रवरूप मेघ वरसीरह्युंछे तथानानाप्रकारना ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनीप्रकृतिरूप वेलियेंकरीव्याप्त अनेमोहरूप अंधकारेंकरीयुक्त एहवोआसंसाररूपवन तेमांफिरनाराजे प्राणीओ तेने स्थिरकरवानेअर्थें करुणायेंकरीपवित्रछे अंतःकरणजेहनो एहवा चतुर्विधसंघरूप तीर्थनाईश्वरजे श्रीतीर्थंकरदेव तेणेउपदेसेली अमृतरसने वरसती एहवीरमणीयजेवाणी ते तमारुं रक्षणकरो ॥ १ ॥

द्रुतविलंबितं वृत्तत्रयं॥स्फुरति चेतसि भावनया विना न वि
दुषामपि शांतसुधारसः॥ न च सुखं कृशमप्यमुना विना
जगति मोहविषादविषाकुले ॥ २ ॥ यदि भवभ्रमखेदप
राङ्मुखं यदि च चित्तमनंतसुखोन्मुखं ॥ शृणुत तत्सुधि
यः शुभभावनामृतरसं मम शांतसुधारसं ॥ ३ ॥ सुम
नसो मनसि श्रुतपावना निदधतां द्व्यधिका दश भावनाः॥
यदिह रोहति मोहतिरोहिताद्भुतगतिर्विदिता समतालता॥४॥

अर्थ ॥ हवेजेशांतसुधारसते भावनाओविना स्फुरतोनथी तेकहेछे विद्वानलोको

ना अत करणमापण शातिरूपअमृतनोरस तेनावविना स्फुरतोनथी अने मोह तथा खेद तद्रूपविषेंकरीव्याप्त एह्वोजेजगत तेमा शांतसुधारसविना किंचित्मात्र थोमोपणसुखनथी ॥ २॥ माटेआशातसुधारसनामा ग्रंथसाम्भलवानो उपदेशकरेछे हेबुद्धिमतो जोतमारुंमन संसारभ्रमणकरवाना खेदेंकरी पराङ्मुख उपरावूं थयोहोय अनेजेमा अनतसुखछे एह्वोजेमोक्ष तेनासुखपामवानेविषे सन्मुखथयो होय तोजेमां मनोहरभावनानो रसभरेलोछे एवोमारो आशातसुधारसनामा ग्रथसांभलो ॥ ३ ॥ ह्वे भावनाथी समताप्रगटथायतेकहेछे हेपन्डितजनो आससारमा जेनुंश्रवणमा त्रकरवाथीज पवित्रतानेकरनारी एह्वीबारभावनाछे तो तेने धारणकरनारो जेजीव तेनाहृदयमा मोह्जेअज्ञान तेने आच्छादितकरनारी अनेजेह्नी अद्भुतगतिछे एह्वी प्रख्यात समतारूप वेलीप्रगटथशे ॥ ४ ॥

रथोद्धतावृत्त॥आर्तरौद्रपरिणामपावक प्लुष्टभावुकविवेकसौष्ठवे॥
मानसे विषयलोलुपात्मनां क्व प्ररोहतितमां समांकुर ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ह्वेसमतापामवाने जे अयोग्यहोयतेकहेछे जेनुंमन पाचेन्द्रियना त्रेवीस विषयोनेविषे लोलुपछे एह्वाप्राणीओने आर्त्त रौद्रध्यानेकरीने उत्पन्नथयेली एह् वीजे माठापरिणामरूप अग्नि तेणेकरीने भावनाना रसनेविषे जे चतुरपुरुषोछे तेना विचाररूप रूडापणुं जेमाथीबलीगयुंछे एह्वाप्राणीओना मनमा समतानोअंकुर किहांथी उत्पन्नथाय अर्थातनजथाय ॥ ५ ॥

वसंततिलकावृत्त ।।यस्याशयं श्रुतकृतातिशय विवेकपी
यूषवर्षरमणीयरमं श्रयते ॥ सभावना सुरलता नहि
तस्य दूरे लोकोत्तरप्रशमसौख्यफलप्रसूति ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ ह्वेसमतापामवाने योग्यहोयतेकहेछे सिद्धातश्रवणादिकेकरीने अत्य तपणे सपूर्णभरेला वृद्धिपामेला तथा विवेकरूप अमृतवृष्टीनी रमणीयजेक्रीडा ते णेकरीने रम्यके० मनोहर शोभायमान एह्वाजेना अत करणछे तेवाअत करणो मां सद्भावनाओ श्रयंतेके० प्रवेशकरेछे तेथीतेपुरुषने लोकोत्तरजे प्रशमके० शातर सनासुख अर्थात्मोक्षसुख तेनाफलने प्रसवनारी एह्वीजे सुरलताके० कल्पलता ते दूरनथी अर्थात् तेह्ने मोक्षदूरनथी ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्तद्वयं॥ अनित्यताशरणते नवमेकत्वमन्यतां ॥ अशौच माश्रवं चात्मन् संवरं परिभावय ॥७॥ कर्मणो निर्जरां धर्मं सुकृतां लोकपद्धतिं ॥ बोधिदुर्लभतामेता भावयन्मुच्यसे भवात् ॥ ८॥

अर्थ ॥ हवेबे श्लोकेंकरी आग्रंथमांभाववानी बारभावनाओनां नामकहेछे १ अनित्यभावना २ अशरणभावना ३ संसारभावना ४ एकत्वभावना ५ अन्यत्वभावना ६ अशुचिभावना ७ आश्रवभावना ८ संवरभावना॥हेआत्मातुं एभावनाओनो विचारकर ॥ ७ ॥ ९ कर्मनिर्जराभावना १० धर्मभावना ११ रूडाप्रकारनी लोकस्वरूप भावना १२ बोधिदुर्लभ भावना॥हेआत्मातुं एबारभावनाओ नो विचारकरतोथको संसारथकीमुक्तथइस ॥ ८ ॥

पुष्पिताग्रावृत्तं ॥ वपुरवपुरिदं विदभ्रलीलापरिचितमप्यतिभंगुरं नराणां ॥ तदतिभिदुरयौवनाविनीतं भवति कथं विदुषां महोदयाय ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमअनित्यभावना भावतां शरीरनुं अनित्यपणुंदेखाडेछे हेविद्वज्जन आजगतमां अभ्रलीलानीपरें क्षणभंगुर अनेजेह्नो जयकरवो अत्यंतकठीणछे एह्वो तरुणअवस्थायेंकरी उन्मत्त मदनजे कामदेव तेनाजेह्वुं सुंदर एह्वुं जे मनुष्योनुंशरीरते विद्वानजे पंडितलोक तेनापण महोटा उदयकरवानुं कारण शीरीतेंथाय अपितुनहीजथाय ॥ ९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयं॥ आयुर्वायुतरत्तरंगतरलं लग्नापदः संपदः सर्वेपींद्रियगोचराश्च चटुलाः संध्याभ्ररागादिवत्॥ मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेंद्रजालोपमं तत्किं वस्तुभवे भवेदिह मुदामालंबनं यत्सतां ॥ १० ॥ प्रातर्भ्रातरिहावदातरुचयो ये चेतनाचेतना दृष्टा विश्वमनःप्रमोदविधुरा भावाः स्वतः सुंदराः॥तांस्तत्रैव दिने विपाकविरसात् हा नश्यतः पश्यतश्चेतः प्रेतहतं जहाति न भवप्रेमानुबंधं मम॥११॥

अर्थ ॥ हवेबेकाव्येंकरी संसारनो अनित्यपणुंदेखाडेछे हेप्राणी आसंसारमां वायरेंकरी चंचलथयला एह्वाजे पाणीनातरंग तेह्नीपरें आयुषपणचंचलछे वली विचित्रप्रकारनी संपत्तिओछे तेपण विपत्तियेंकरीयुक्तछे अने समस्त रूपरसादिकजे

विषयछे ते संध्याकालना आकाशजेवासुंदरछे एटले संध्याना अभ्ररागनीपरे सुंदर तोछे पण अभ्ररागनीपरे थोडीवारपछि विनाशशीलछे तथा मित्र स्त्री स्वजन इत्या दिकोनोजे समागम तेणेकरीने थयेलुंजेसुख तेस्वप्नसरीखु किंवाइंद्रजालसरखुंछे ते वारे आसंसारमा सत्पुरुषोने आश्रयकरवायोग्य कइवस्तुछेवारुं, अर्थात्कोइजनथी सर्वविनाशशील अनित्यछे इतिभाव ॥ १० ॥ वली प्रातके० हेनाई आजगतमा जे प्रभातसमये स्वच्छकांतिवान तथा अत्यंतपणे जगतने आनंद आपनारा अने स्वतासुंदरजे चेतनपदार्थ अने अचेतनपदार्थना भावदीठाहोय तेपदार्थोनो काल परिपाक थयाथी तेहिजदिवसे शोभायेकरी हीन थईजायछे अने नाशपामेछे ए हवापदार्थोने जोनारो एहवो महारुं हतके० नष्टथयलु जे अंत करण ते संसार संबंधने मूकतुनथी ए कहेवी महोटी खेदनीवातछे ॥ ११ ॥

॥ प्रथमभावनाष्टक रामगिरिरागेण गीयते ॥

मूढ मुह्यसि मुधा ॥ मूढ मुह्यसि मुधा ॥ ध्रुवपदं ॥ विभव
मनुचिंत्य हृदि सपरिवार ॥ कुशशिरसि नीरमिव गलद
निलकंपित ॥ विनय जानीहि जीवितमसारं ॥ मू०॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषे अनित्यभावना भावतोथको संसारनुं अनित्यपणु देखाडे छे हेमूर्खशिष्य तु परिवारसहित पोतानीसंपत्तिनुं चिंतनकरीने शुव्यर्थमोहपामेछे वायुये हलाव्योथको कंपायमानथयीने गलीजनारो एहवो दर्भनाअग्रभागे रहेना रोजे पाणीनुं बिंदुओ तेनीपरे हेविनय आ तहारुंजीवितव्य असारछे एमजाण एरीतें विनयविजयजीउपाध्याय पोतेपोताने प्रतिबोधकरतो बीजानेपण उपदेशकरेछे॥१॥

पश्य भंगुरमिदं विषयसुखसौहृदं पश्यतामेव नश्यति सहासं ॥
एतदनुहरति संसाररूपं रयाज्ज्वलज्जलदबालिकारुचिविलासं॥मू०॥२

अर्थ ॥ वलीहेमित्रतु जो के आविषयसुखते क्षणभंगुरछे जेमकोई हाथतालीदेई ने हसताहसताज नाशीजायछे तेनीपरे विषयसुखपण जोताजोताज नष्टता एह वाथईजायछे वली आ ससारनु स्वरूपते वेगेकरीने जनारी एहवीजे वीजली तेना जबुकानी कांतीनुं अनुकरण करेछे एटले एससारनु स्वरूपते वीजलीनीपरे चंचलछे॥२

हत हतयौवनं पुछमिव शौवनं ॥ कुटिलमति तदपि लघु दृष्टनष्टं ॥ तेन
बत परवशा परवशा हतधियः ॥ कटुकमिह किं न कलयति कष्टम्॥मू०॥३

अर्थ ॥ आ एकमहोटी खेदनीवातछे के दुष्टतारुण्यपणुंते कुतरानी पुछडीसरिखो वांको अने जेहने जोतावारज तुरतनहीएवोथईजायछे अर्थात् नाशपामीजायछे एह वा तारुण्यपणाने परवशाके० पराधीनथयला हतधियके० नष्टबुद्धिवंतजे पुरुषोछे ते संसारमां परवशाके० स्त्रीओ ते कष्टकारी कडवाफलनीआपनारीछे एहवुं जाण तानथी माटे बतइतिखेदे एपणएकमहोटुं खेदनोज कारणछे ॥ ३ ॥

यदपि पिण्याकतामंगमिदमुपगतं ॥ भुवनदुर्जयजरापीतसारं ॥ तदपि गतलज्जमुज्झतिमनो नांगिनां वितथमतिकुथितमन्मथविकारं॥मू०॥४॥

अर्थ ॥ जोपण त्रणेलोकना प्राणीओ जेने जीतवाने अत्यंतअसमर्थ एहवीजे जराअवस्था तेणेकरीने जेपुरुषनुं सारके० सत्वपणुं जतुरह्युंछे एटले जरायेंकरी शरीरक्षीणथईगयुंछे एहवुं एशरीर दुर्बल थयुं होय तोपण निर्लज्जप्राणीओनां मन निष्फल बुद्धिथी उत्पन्नथयला कामविकारने मूकतानथी ॥ ४ ॥

सुखमनुत्तरसुरावधि यदतिमेदुरं ॥ कालतस्तदपि कलयति विरामं॥ कतरदितरत्तदा वस्तु सांसारिकं॥स्थिरतरं भवति चिंतय निकामं ॥मू०५

अर्थ ॥ जुओके पांचअनुत्तरविमाननां घणाज पुष्टकारीसुखछे तेनीपण मर्यादा छे ते पणकालेंकरी मर्यादापुरीथयाथी विरामपामेछे तो पांच अनुत्तरविमान करतां एवी बीजीकईवस्तुछे जेसंसारमां वधारेस्थिरीभूतथसे एवातनो तुं महोटोविचारकर ५

यैः समं क्रीडिता ये च भृशमीडिता यैः सहाकृष्महि प्रीतिवादं॥तान् जनान्वीक्ष्य बत भस्मभूयंगतान्निर्विशंकाः स्म इति धिक्प्रमादं॥मू०६

अर्थ ॥ जेनीसाथें आपणे हरहमेस रमता खेलता क्रीडाकरता तथा जेनीआ पणे अत्यंत स्तुतिकरतां अने जेनीसाथें आपणेंप्रीतीयेंकरी बोलताहता तेहिजप्रा णीने भस्मभूत थईगयला देखीने पण जोअमें निशंक रहियेंछयें तो बतइतिखेदे एवोजे अमारो प्रमाद तेप्रमादने धिःकारहोजो ॥ ६ ॥

असकृदुन्मिष्य निमिषंति सिंधूर्मिवच्चेतनाचेतनाः सर्वभावाः ॥ इंद्रजालोपमाः स्वजनधनसंगमास्तेषु रज्यंति मूढस्वभावाः ॥ मू० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेम समुद्रना कल्लोल वारंवार उत्पन्नथयीने नाशपामेछे तेमज जगत मां स्थावर अने जंगमपदार्थोना भावछे एमजाणवुं अने जगतमां द्रव्यादिकनो जेसं बंधछे तेसर्व इंद्रजाल सरिखोछे तो एहवा पदार्थोउपर हेमूर्खप्राणीतुं शूंरीजपामेछे ७

कवलयन्नविरतं जगमाजंगम जगदहो नैव तृप्यति कृतांत ॥ मुखग
तान् खादतस्तस्य करतलगतैर्न कथमुपलप्स्यतेऽस्माभिरंत ॥ मू० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वली स्थावर अने जगमात्मक जगतने निरतर नक्षणकरनारो एहवोजे कृ
तांतके० यमते तृप्तथातोनथी एमहोटोआश्चर्यछे तोमुखमा आव्याप्राणीनो नक्षणक
रनारोजे काळतेनाजहाथमा रहेनारा अमेछैये ते अमारोमृत्यु केवीरीतेनथाय॥८॥

नित्यमेकं चिदानदमयमात्मनोरूपमभिरूप्यसुखमनुनवेय ॥
प्रशमरसनवसुधापानविनयोत्सवो नवतु सतत सतामिह न
वेऽय ॥ ९ ॥ इतिमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपा
ध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचिते शांतसुधारसगेयकाव्ये
अनित्यनावनाविनावनो नाम प्रथम प्रकाश ॥

अर्थ ॥ तेमाटे नित्य एकचिदानदमय जे महारोआत्मा तेहनुं स्वरूपजोईने सु
खनो अनुनव हुकरीश इहा विनयविजयजी उपाध्यायकहेछेके आ मनुष्यनवमा
शातिरसरूपजे नूतनअमृत तेहनेपानकरवानो उत्साह सत्पुरुषोने निरतरहोजो॥९
इतिश्रीमन्महोपाध्याय श्रीकीर्त्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय श्रीविनयविजयगणि
विरचिते शातसुधारसेगेयकाव्ये अनित्यनावनाविनावनोनाम प्रथम प्रकाश ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्त॥ये षट्खडमहीमहीनतरसा निर्जित्य बभ्राजिरे ये च
स्वर्गनुजो नुजोर्जितमदा मेदुर्मुदामेदुरा. ॥ तेपि क्रूरकृतातवक्त्ररदनैर्निर्द
ल्यमाना हठादत्राणा शरणाय हा दश दिशः प्रेक्षत दीनानना ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेबीजी अशरणनावना नावेछे आससारमा मृत्युआवेथकेकोईने को
ईनुं शरणनथी एमदेखाडेछे हाइतिखेदे जेपुरुष महोटापराक्रमेकरी छखमृपृथवी
जीति शोनानेपाम्या एहवा चक्रवर्त्ती तथा जेहर्षकरीपुष्टथयला अने जेहनी नु
जाओमा उत्कृष्टबलछे एटले स्वर्गनासुखनोगवीने आनदपाम्याछे एहवा देवताओ
नेपण जेवारे क्रूरहृदयवत जे यम तेपोताना मुखमालेई दातोनाबलात्कारेकरी न
क्षणकरे तेवारे तेअशरण थयाथका दीनमुखकरी कोईनुशरणलेवानेअर्थे दशे
दिशाये जुएछे तोपणतेने काळनादालमाथी मूकाववाने कोई समर्थनथाय ॥ १ ॥

स्वागतावृत्त ॥ तावदेव मदविभ्रममाली तावदेव गुणगौरवशा
ली ॥ यावदक्षमकृतातकटाक्षैर्नेक्षितो विशरणो नरकीट ॥ २ ॥

अर्थ ॥ माटेजेनो रक्षणकरनार कोईनथी एहवो एमनुष्यरूपीओ कीटजेकीडो ते हनेजिहांसुधि सहनकरवाने दुर्लभ एहवोजेकाल तेणे पोताना कटाक्षेंकरी जोयुंन थी तिहांसुधी मदजे अहंकार तेनाविलासेकरी शोभेछे अने तिहांसुधीज गुणोनो गौरवपणुं धारणकरेछे ॥ २ ॥

शिखरिणीवृत्तं ॥ प्रतापैर्व्यापन्नं गलितमथ तेजोभिरुदितैर्गतं धैर्योद्योगैः श्लथितमथ पुष्टेन वपुषा॥प्रवृत्तं तद्द्रव्यग्रहणविषये बांधवजनैर्जने कीनाशेन प्रसन्नमुपनीते निजवशं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पण जेप्राणीने जेवारें यमराजायें पोताने स्वाधीनकर्यो तेवारें तेप्राणी नो प्रतापपण नाशपाम्यो अने उदितथयलुंजेतेज हतुं तेपणगलीगयुं तथा धैर्य अ ने उद्योग पण जतुंरह्युं वली शरीरपुष्टहतो तेपण शिथिलथईगयुं अनेतेपुरुषनुं एकठुं करेलुं द्रव्य लेवाने अर्थें बांधवजन जे भाईओ प्रमुख हता ते प्रवर्त्तथया ॥ ३ ॥

द्वीतीयभावनाष्टकं मारुणीरागेण गीयते

स्वजनजनो बहुधा हितकामं प्रीतिरसैरभिरामं॥मरणदशावशमुपगत वंतं रक्षति कोपि न संतं ॥१॥ विनय विधीयतां रे श्रीजिनधर्मः शरणं॥ अनुसंधीयतां रे शुचितरचरणस्मरणं ॥ वि० ॥ २ ॥ ध्रुवपदं ॥

अर्थ ॥ फिरि सम्यक्दृष्टीजीवें विशेषेंकरी अशरणभावनाने आवीरीतें भाववीते कहेछे जेपोताना स्वजनलोकछे तेघणुंज हितनावांछक तथा प्रीतिनाराखनार इत्या दिकरीते घणाप्रकारें रूडाछे पणतेसर्व स्वार्थनिमित्तेजाणवा ए तात्पर्यछे परंतु हेस त्पुरुषो जेवारें जीव मरणअवस्था पामवाने तैयारथयो तेवारेंतेनुं संरक्षण करना र कोईनथी ॥ १ ॥ तेमाटेग्रंथनाकर्त्ता श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहेछे के हेवि नय तुं श्रीजिनधर्मनुं शरणकर अने पवित्र एहवुंजे चारित्रतेनुं स्मरणकर ॥ २ ॥

तुरगरथेभनरावृतिकलितं दधतं बलमस्खलितं ॥ हर ति यमो नरपतिमपि दीनं मैनिकइव लघुमीनं ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ घोडा रथ हाथी पायदल एचतुरंगणी सेनायेंकरीयुक्त तथा पोतेंपण अस्खलित बलने धारणकरनारो एटलेकोईकालें स्खलनापामेनही एहवो महापरा क्रमवंत राजा तेनेपण जेरीतें मैनिकके० माछलानोमारनार जटदेईने लघुमी नके० न्हाना दीनमाछलाओने पकडीलियेछे तेरीतें यम पकडीलियेछे॥ ३ ॥

प्रविशति वज्रमये यदि सदने तृणमथ घटयति वदने ॥
तदपि न मुंचति हतसमवर्ती निर्दयपौरुषनर्ती ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ॥जो वज्रमय एटले वज्रनाज परमाणुये बनावेला घरमाप्रवेशकरे अथवा मुखमा तृणपलाधारणकरे परतु निर्दय अने पराक्रमेंकरी नाचनारो तथाजेहनी सर्वेनेविषे समानघातकरवानीजवृत्तिछे एहवोजेयम ते तेनेपण मूकतोनथी ॥४॥

विद्यामंत्रमहौषधिसेवा सृजतु वशीकृतदेवां ॥ रसतु
रसायनमुपचयकरणं तदपि न मुंचति मरणं॥ वि० ॥ ५॥

अर्थ ॥ हेप्राणी जो देवतानुंसाधनकरी पोतानेस्वाधीनकरो अथवा महोटीम होटी विद्याओ साधनकरो मत्रसाधनकरो तथा महोटी औषधिओसाधी शरीरपु ष्टी करवानेअर्थें आरोगो तोपण मरण मूकतुनथी ॥ ५ ॥

वपुषि चिरं निरुणद्धि समीरं पतति जलधिपरतीरं ॥ शिर
सि गिरेरधिरोहति तरसा तदपि स जीर्यति जरसा॥वि०॥६॥

अर्थ ॥हेनव्यो जो समाधीचडावी शरीरने घणाकालसुधी वायुनोरोधकरो अथ वा समुद्रने पहेलाकांठे जईबेशो अथवा बलात्कारे पर्वतनाशिखरउपर चडीबेशो तोपण जराअवस्थाथी क्षीणथवु ते काईबंधथतुनथी ॥ ६ ॥

सृजतीमसितशिरोरुहललित मनुजशिरोवलिपलितं ॥ को
विदधानां नूघनमरसं प्रनवति रोद्धुं जरसं ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ कालाकेशेकरीने घणोजसुंदर एहवो मनुष्यनो कालोमस्तक तेने सपेतप णानी करनारी तथा शरीरना मासनोनाशकरनारी खोखरासरीखोकरी नशोनसने जूदी करीदेखाडनारी पृथवीउपर मेघसमान शरीरतेने शुष्ककरीनाखनारी एहवीजरा अवस्था जेवारे प्राणीने आवशे तेवारे तेनोरोधकरवाने कोण सहायनूतथसे अ र्थात् कोईपण वृद्धावस्थानो रोधकरवाने समर्थनथाय ॥ ७ ॥

उद्यत उग्ररुजा जनकायं क स्यात्तत्र सहायः ॥ एकोऽ
नुनवति विधुरुपरागं विनजति कोपि न नागं ॥ वि० ॥ ८॥

अर्थ ॥ हेआत्मा जेवखतें तादृशशरीर उग्ररोगेकरी व्याप्तथाशे तेवखतें तुजने कोणसहायथाशे ? जुओ जेमचद्रमा एकलोपोतेज राहुना ग्रहणनी पीडानोगवेछे प

रंतु नक्षत्र अथवा ताराकोईपण तेनाडुःखमांविज्ञागलेतानथी तेम तुजनेपण जेवारें रोगादिक डुःखप्राप्तथशे तेवारें ताहरोकोईपण संबंधी तेडुःखमांविज्ञागलेनारनथी ॥ ५

शरणमेकमनुसर चतुरंगं परिहर ममतासंगं ॥ विनय रचय शिव सौख्यनिधानं शांतसुधारसपानं ॥ वि० ॥ए॥ इति श्रीशांतिसुधारस गेयकाव्ये अशरणज्ञावनाविज्ञावनो नाम द्वितीयः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ माटे दान शील तप अने ज्ञाव एचार अंग जेहनाले एहवाएक धर्मनुंज तुं शरणकर अने ममत्वनो संग परिहर हेविनय तुं शिवसुखनो निधान एहवो जे शांतसुधारस तेनुंपानकर ॥ ए ॥ इति श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये अशरणत्वज्ञावना विज्ञावनोनाम द्वितीयः प्रकाशः ॥

शिखरिणीवृत्तत्रयं ॥ इतो लोजः क्षोजं जनयति डुरंतो दवइवो ल्लसल्लाज्ञांज्ञोजिः कथमपि न शक्यः शमयितुं ॥ इतस्तृष्णाऽक्षा णां तुदति मृगतृष्णेव विफला कथं स्वस्थैः स्थेयं विविधज्ञयज्ञी मे ज्ञववने ॥ १ ॥ गलत्येका चिंता ज्ञवति पुनरन्या तदधिका मनोवाक्काये हा विकृतिरतिरोषात्तरजसः ॥ विपज्ञर्तावर्ते जटिति पतयालोः प्रतिपदं न जंतोः संसारे ज्ञवति कथमप्यार्तिविरतिः ॥ ॥ २ ॥ सहित्वा संतापानशुचिजननीकुक्षिकुहरे ततो जन्म प्राप्य प्रचुरतरकष्टक्रमहतः ॥ सुखाज्ञासैर्यावत्स्पृशति कथमप्यार्तिविरतिं जरा तावत्कायं कवलयति मृत्योः सहचरी ॥ ३ ॥

॥ हवे त्रीजी संसारज्ञावना ज्ञावेछे आ संसारमां डुरंतके० घणोमहोटो जेहनो अंतनथी अनेदावानल सरिखो अर्थात् वनअग्नीसरखो एहवोजेलोज तेनेकोईपणरीतें उदयनेपामनारो जे लोजरूप अंज्ञोजिःके० उदकते शांतकरी शक्तोनथी पणउलटो क्षोजने उत्पन्नकरेछे वलीइहां संसारमां मृगतृष्णा जेवीरीतेविफलछे तेवीरीतेइंद्रियोनी तृष्णा प्रेरणाकरेछे तेपणविफलछे तोएहवा अनेकप्रकारना नानाविधज्ञयेंकरी बिहामणा संसाररूप अरण्यमां शीरीतें स्वस्थपणे रहिशकियें ॥ १ ॥ आसंसारमां एक चिंतामटिजायछे तोफरी तेकरतांपण अधिक बीजीचिंताआवी उत्पन्नथायछे वली मन वचन अने कायानाव्यापारेंकरी विकारथायछे तथाअत्यंतक्रोधना योगेंकरी रजोगुणने पामवापणुंप्राप्तथायछे एरीतेंसंसारमां विपत्तिरूप खाईनापाणीनी ज्रमरीमां

पगलेपगले पडनारा प्राणीओने कोईवाते सुखनो अंतआवतोनथी ॥२॥ वली पहे लातो अपवित्रमाताना उदरनेविषे नानाप्रकारना उदरसंबंधी संतापोने सहनकर तो कष्टनीपरंपरायेकरी तामनतर्जनायेयुक्तथको रहेछे अने जन्मपाम्यापछे जेटलामां सुखविलास करवानेअर्थे कोइपणपोताने थतीपीमाओ दूरकरेछे परंतु एटलामातो मृ त्युनी सहचारिणी एहवीजे जराअवस्था ते आवीने प्राणीनादेहनो ग्रासकरेछे ते वारे संसारमां सुखतेसुंछे अर्थात् कांईजनथी ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्त ॥ विभ्रांतचित्तो बत बभ्रमीति पक्षीव रुद्धस्तनु पंजरेऽगी ॥ नुन्नो नियत्याऽतनुकर्मतंतुसंदानितः सन्निहितांतकौतुः ॥ ४ ॥ अनुष्टुब्वृत्त ॥ अनंतान् पुद्गलावर्तानंनंतानंतरूपभृत् ॥ अनंतशो भ्रमत्येव जीवोऽनादिभवार्णवे ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ प्रारब्धें प्रेरणाकरेलो महोटाकर्मरूप तंतुयेकरी बांधेलो कालरूप बिल्ला डानीपासे बेठेलो एहवोप्राणी बतइतिखेदे शरीररूप पिंजरामा पक्षीनीपरें रुंध्योथ को भ्रांतिवंत चित्तेकरीफिरेछे ॥ ४ ॥ एरीतेअनंतानंत शरीरोनोधारणकरनारो एजी वअनंतीवार अनादिकालनो संसारसमुद्रमां अनंता पुद्गलपरावर्त्तरूप पाणीनी भ्र मरीमा प्रतिभ्रमण करतोथको फिरेछे ॥ ५ ॥

॥ तृतीयभावनाष्टक केदारारागेण गीयते शांतसुधारसकुंभेमां एदेशी ॥

कलय संसारमतिदारुणं जन्ममरणादिभयभीत रे ॥ मो हरिपुणेह सगलग्रह प्रतिपदं विपदमुपनीत रे ॥ क०॥ १ ॥

अर्थ ॥ वलीविशेषप्रकारे संसारभावनाभावतो संसारनीभीकदेखाडेछे मोहरूप शत्रुये गलोथोदेइने पकडयुंछे तेणेकरी पगले पगले विपत्तीनेपामेला अरेजीव आ संसारते जन्ममरणादिकना भयेकरी अत्यंतभयकरछे एवु तु जाण॥ १ ॥

स्वजनतनयादिपरिचयगुणैरिह मुधा बध्यसे मूढ रे ॥ प्रति पद नवनवं रनुभवैः परिभवैः रसकृदुपगूढ रे ॥ क० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हेमूर्खआत्मातुं स्वजन अने पुत्र इत्यादिकोना परिचयगुणेकरीने वृथा संसारमां व्यर्थबंधायछे वली पगलेपगले नवानवा अनुभवेकरी अने नवानवा परा भवेकरी वारंवारतुं आलिंगितछो एटले युक्तछो ॥ २ ॥

घटयसि क्वचन मदमुन्नतेः क्वचिदहो हीनतादीन रे ॥ प्र
तिभवं रूपमपरापरं वहसि बत कर्मणाधीन रे ॥ क० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं किहांकतो राजलक्ष्मीप्रमुख संपत्तीनामदने धारणकरेछे वलीकिहांकतो हीनतापामी रांकजेवो भीखारीथई दीनतापणाने धारणकरेछे एवाआश्चर्य हेजीवतुं कर्माधीनथको जन्मजन्मप्रतें अपरअपरके० नवानवाज रूपधरेछे कोईभवेभीखारी कोईभवेराजा कोईभवेतिर्यंच कोईभवेंनारकी वलीएकभवमांपण राजारंकपणुंप्रमुख अनेकरूपधारणाकरेछे ए केहेवो महोटो खेदनोहेतुछे ॥ ३ ॥

जातु शैशवदशापरवशो ॥ जातु तारुण्यमदमत्त रे ॥ जातु
दुर्जयजराजर्जरो ॥ जातु पितृपतिकरायत्तरे ॥ क० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतुं एकजभवमांपण कोईकवारेंतो बालकअवस्थाने आधीनरहेछे अने कोईकवारेंतो तारुण्यअवस्थाना मदेकरी उन्मत्तथायछे वलीकोईकवारें दुर्जय जरा अवस्थायें करी दुःखवंतथायछे अनेकोईकवारें यमराजाना हाथमां सपडाईजायछे एहवी अवस्थाओने पामेछे ॥ ४ ॥

व्रजति तनयोपि ननु जनकतां ॥ तनयतां व्रजति पुनरेष रे ॥ भाव
यन् विकृतिमिति भवगते ॥ स्त्यजतमां नृभवशुभशेष रे॥क०॥५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मा आसंसारमां कोईभवमांतो दीकरोते बापथायछे फरीकोईकभवमां बापतेदीकरो थायछे एहवी संसारी पुरुषोनी गतिओनी फजेतीजोईने मनुष्यजन्ममां जेना पुण्यशेषरह्याछे एहवो तुं आसंसारने मूकीआप ॥ ५ ॥

यत्र दुःखार्तिगददवलवैरनुदिनं दह्यसे जीव रे॥ हंत
तत्रैव रज्यसि चिरं मोहमदिरामदक्षीब रे ॥ क०॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आसंसारमां दुःख तथा आरतिजेचिंता अने रोगरूप दावानलेंकरीने तुं नित्यनित्यप्रते दाजेछे तोपणमोहरूप मदिराना मदेकरी उन्मत्तथईने तेमांजघणाकालसुधी अनुरक्तथायछे माटेबतइतिखेदे मोहनाफंदेज जीवदुःखीथायछे॥६

दर्शयन् किमपि सुखवैभवं ॥ संहरंस्तदथ सहसैव रे ॥ विप्र
लंभयति शिशुमिव जनं ॥ कालवटुको ऽयमत्रैव रे ॥क०॥७॥

अर्थ ॥ अरेजीव जेमकोइलघुबालकने ठगवासारुं कोइकचीजतेनाहाथमां आपीपाछी लीनवीलइयें तेम हंतइतिखेदे आजगतमां कालरूपीओ बटुकके० चोर ते

तुजने कांइकसुख ऐश्वर्यादिक देखाडीने अकस्मात् तेसुखने जाणेनजहता तेवा करीनाखेछे एम भोकराने भगवानी रीते कालरूपवटुक लोकोने भगेछे. ॥ ७ ॥

सकल संसारभयभेदक ॥ जिनवचो मनसि निबधान रे ॥
विनय परिणमय नि श्रेयसं ॥ विहितशमरससुधापान रे ॥८॥
इति श्री शांतसुधारस गेयकाव्ये संसारभावना विभावनो
नाम तृतीय· प्रकाश· ॥

अर्थ ॥ तेमाटे अरेविनयतु शांतिसुधारसनुंपानकरी समस्तसंसारिकभयना नाशकरनार एहवा जिन श्री वीतरागनावचनने मनमांधारणकर अने मोक्षपाम एरीते विनयविजयजीउपाध्याय पोतेजपोताना आत्मानेसीखामण आपेछे ॥ इतिश्रीशातसुधारसगेयकाव्ये संसारभावना विभावनोनाम तृतीय प्रकाश ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्त॥एक एव भगवानयमात्मा ज्ञानदर्शनतरंगसरंग ॥
सर्वमन्यदुपकल्पितमेतत् व्याकुलीकरणमेव ममत्वम् ॥ १ ॥

अर्थ॥ हवेचोथी एकत्वभावना भावेछे एकज भगवानते आत्माछे अने ज्ञानदर्शन तथा चारित्ररूप तरगेकरीने सरगके० विलासीछे पणते आत्मासिवाय बीजाजे कांई कल्पितपुद्गलादिकछे तेसर्व ममतास्पदमाज व्याकुलकरनाराछे ॥ १ ॥

प्रबोधतावृत्तत्रय॥अबुधै परभावलालसालसदज्ञानदशा
वशात्मभि ॥ परवस्तुपु हा स्वकीयता विपयावेशवशाद्वि
कल्प्यते ॥ २ ॥ कृतिना दयितेति चितन परदारेपु यथा
विपत्तये॥विविधार्त्तिभयावह तथा परभावेपु ममत्वभावन॥
३ ॥अधुना परभावसवृतिं हर चेत परितोवगुंठितं॥ क्षण
मात्मविचारचदनद्रुमवातोर्मिरसा स्पृशतु मां ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ परवस्तुउपर रहेलीअत्यतइछाना योगेकरी उपनीजे अज्ञानअवस्थानी आधीनत्ता ते जेना अत करणमां व्यापीछे एहवामूर्खोने जे परकीयवस्तुउपर स्वकीयपणुकल्पेछे तेमात्र शब्द रूप रसादिकविपयोना आवेशेंकरीजकल्प्योजायछे ए एक महोटु खेदनुंकारणछे ॥ २ ॥ पुण्यवानपुरुपे परस्त्रीने पोतानीस्त्रीकरी चितवनकरवु तेजेमविपत्तीनुं कारणथायछे तेमज परकीयवस्तुउपर जे ममत्वकरवु तेपण नानाप्रकारनीपीडानु अने अनेकप्रकारना भयनुं कारणथायछे ॥ ३ ॥ माटेहेआ

त्मा हवे चारेबाजुयेंविंटेली परवस्तुनी संवृति जे आछादन तेनेतूंदूरकर अने आत्मवि चाररूप चंदनवृक्ष उपरना वायुनीलहेरीनुंजे रस तेनुंएकक्षणमात्र स्पर्शकर ॥४॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ एकतां समतोपेतामेनामात्मन् वि
भावय ॥ लभस्व परमानंदसंपदं नमिराजवत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आसमतायेंकरीयुक्त एहवुंजे एकत्वपणुं तेने तुं पोताना आत्मामां विचारीजोईशतो नेमिराजऋषीनाजेवी परमानंद संपदानेपामिश ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थभावनाष्टकं परजीयारागेणगीयते ॥

विनय चिंतय वस्तुतत्वं जगति निजमिह कस्यकिं ॥ भवति
मतिरिति यस्य हृदये दुरितमुदयति तस्य किं ॥ वि० ॥ १ ॥
एक उत्पद्यते तनुमानेक एव विपद्यते ॥ एक एव हि
कर्म चिनुते ॥ सैककः फलमश्नुते ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषें एकत्वभावनाभावेछे इहांश्री विनयविजयजी उपाध्याय पोतेज पोतानीआत्माने उपदेशेछे के हेविनय तुं वस्तुतत्वजे आत्मज्ञान तेनुं चिंतवनके० विचारकर आजगतमां कोइनोस्वकीयपणुंछेकेशुं एहवीबुद्धि जेनाहृदयमां उत्पन्नथायछे तेप्राणीने दुरितपापादिक उदयपामेछेसुं अपितुतेने पापोदयपामतुंज नथी ॥ १ ॥ हेआत्मा ताहरोजीव एकलोज उपजेछे एकलोज मरणपामेछे एकलोज कर्मनेबांधेछे अने तेबंधायला कर्मोनाफलनेपण एकलोज भोगवेछे ॥ २ ॥

यस्य यावान्परपरिग्रहः ॥ विविधममतावीवधः ॥ जलधि
विनिहितपोतयुक्त्या पतति तावद सावधः ॥ वि० ॥ ३ ॥
स्वस्वभावं मद्यमुदिते भुवि विलुप्य विचेष्टते ॥ दृश्यतां
परभावघटनात्पतति विलुठति जृंभते ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी जेप्राणीनेमाथे परपरिग्रहउपर नानाप्रकारनी जे ममत्व तद्रूपभारपड्योछे तिहांसुधी तो पत्थराप्रमुख वजनदारवस्तुयेंभरेलो जिहाज जेम समुद्रनातलियामां जइबेसेछे तेम तेप्राणीपण संसाररूप समुद्रना तलियामां पडेलोजाणवुं ॥ ३ ॥ जेम मदेकरी उन्मत्तथयलो पुरुष स्वकीयस्वभाव एटले मूल स्वभावने लोपी जमीनउपरपडी चेष्टाकरेछे तेमज परवस्तुनी घटनायेंकरी उन्मत्तथयलो पुरुष संसाररूप जमिनमांपडेछे लोटेछे अने जंभायमान थयोथकोरहेछे ॥ ४ ॥

पश्य कांचनमितरपुद्गलमिलितमंचति कां दशां ॥ केवलस्य तु तस्य रूपं विदितमेव नवादृशां ॥वि० ॥५॥ एवमात्मनि कर्मवशतो नवति रूपमनेकधा॥कर्म मलरहिते तु नगवति नासते कांचनविधा॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ जेमसुवर्णमा बीजाधातुनी मिश्रताथवाथी विपरीतदशानेपामेछे अने तेसुवर्णना शुद्धस्वरूपनीतो हेजीव तह्याराजेवाने खबरजछे ॥ ५ ॥ तेमजआत्मा नेविषे कर्मरूप अन्यधातुना बशेकरी नानाप्रकारना रूपथायछे पणकर्ममलरहित शुद्धज्ञानस्वरूपी आत्मातो सुवर्णसरखो देदीप्यमाननासेछे ॥ ६ ॥

ज्ञानदर्शनचरणपर्यवपरिवृत परमेश्वर ॥एक एवानुनवसदने स रमतामविनश्वर.॥वि०॥७॥इति रुचिरसमतामृतरस क्षणमुदितमास्वादय मुदा॥विनय विषयातीतसुखरसरतिरुदंचतु ते सदा॥वि०॥८॥इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये एकत्वनावनाविन्नावनोनाम चतुर्थ प्रकाश

अर्थ॥तेआत्मा ज्ञान दर्शनअने चारित्रना पर्यायेकरीयुक्त एह्वो अविनाशीजे एकपरमेश्वर तेमह्यारा अनुनवगृह्मा रम्यमाणथजो॥७॥माटेहेआत्मा प्राप्तथयलो एह्वो अतिसुंदर समतारूप अमृतरस तेनोएकक्षणमात्र पण संतोषेकरी आस्वादनकर अने हे विनय सर्वकाल विषयसुखथी अतीत एटलेजूदा एह्वाजे शांतिसुख रस तेनाउपर ताहरेप्रीतिहोजो॥८॥ इ०शांतसुधारसगेयकाव्येएकत्वनावनाविन्नावनोनामचतुर्थ प्रकाश

उपजातिवृत्तं॥ परः प्रविष्ट कुरुते विनाश लोकोक्तिरेषा न मृषेति मन्ये॥ निर्विश्यकर्माणुन्निरस्य किं किं ज्ञानात्मनो नो समपादि कष्ट॥ १ ॥

अर्थ॥ हवे पांचमी अन्यत्वनावना नावतोथको श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहेछे एकनाघरमा बीजायेप्रवेशकर्यो एटले पहेलानोनाशकरेछे एह्वु लोकोनुं बोलवु मने खोटुंलागतुंनथी केमके मह्यारोआत्मा ज्ञानस्वरूपीछे तेमा कर्मरूप परमाणुये प्रवेशकरीने आत्माने कोणकोण कष्टोनथीआपी अर्थात् सर्वकष्टोआपीजछे ॥ १ ॥

स्वागतावृत्तम्॥खिद्यसे ननु किमन्यकथार्त सर्वदेव ममतापरतंत्र ॥ चिंतयस्यनुपमान्कथमात्मन्नात्मनो गुणमणीन्न कदापि ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतुं सर्वकाल ममताने स्वाधीनथई अन्यजे पुद्गलादिक तेनीज गोष्टीये पीडितथको कांखेदपामेछे अने जेह्नीकोइउपमाजनथी एवा तारी आत्माना गुणरुपजे मणीरत्न तेनुकोइवारेंपण चिंतन केमकरत्तोनथी एकेटलुं अयुक्तछे २॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयम् ॥ यस्मै त्वं यतसे बिभेपि च यतो यत्रा निशं मोदसे यद्यच्छोचसि,यद्दिदृक्षसि हृदा यत्प्राप्य पेप्रीयसे ॥ स्निग्धो येषु निजस्वभावममलं निर्लोठ्य लालप्यसे तत्सर्वं पर कीयमेव भगवन्नात्मन्न किंचित्तव ॥ ३ ॥ दुष्टाः कष्टकदर्थनाः क ति न ताः सोढास्त्वया संसृतौ तिर्यङ्नारकयोनिषु प्रतिहतश्छिन्नो विभिन्नो मुहुः ॥ सर्वं तत्परकीयदुर्विलसितं विस्मृत्य तेष्वेव हा रज्यन्मुह्यसि मूढ तानुपचरन्नात्मन् न किं लज्जसे ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं जेनेवास्ते घणीयत्नकरेछे अने जेनाथकी घणोबीहितोरहेछे तथा जेथकी सर्वकाल आनंदपामेछे वली जेनाअर्थेघणुंशोचकरेछे अथवा जेनेतुं ताहराहृदयमां हरहमेस इछेछे वली जेनादेखवाथी अत्यंतप्रीतिपामेछे जेनेविषे तुं घणुंस्नेहराखी पोतानानिर्मल ज्ञानादिक स्वभावनो नाशकरी लालनपालनकरेछे इ त्यादिकक्रियाते सर्वपरकीयजछे पण हेआत्मस्वरूपी भगवन् एमांस्वकीय ताहरोकां इनथी ॥ ३ ॥ अरेजीवतुंपूर्वोक्तप्रकारेंकरतोथको आसंसारमां तिर्यंच अने नारकीनी योनीमां अत्यंतदुष्ट एहवी अनेककदर्थनाओ तेंभोगवीनथीकेसुं अपितु भोगवीतोछे ज केमके मुहुके० वारंवार नरकादिकयोनीओमां हणाणुं छेदाणुं भेदाणुं एहवीएह वी तहारी अवस्थाओथइ तोपणहेमूर्ख तेसर्वे परकीय एटले स्वरूपविना पुद्गलनासंग थी दुर्विलासथया तेनेविस्मृतकरी फरितेनाउपरज प्रेमधरीने मोहपामेछे अनेतेहनुं ज सेवनकरतोथको केमलज्ञातोनथी माटे हाइतिखेदे एपणमहोटी खेदनीजवातछे

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रकेतनांचेतनां विना ॥
सर्वमन्यद्विनिश्चित्य यतस्व स्वहिताप्तये ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी आश्रयभूतजे चेतना तेविना बीजाजे विभाविक पदार्थोछे तेसर्वेने निश्चयथकी तहाराथी अन्यके० जूदाजाणीने पोताना हितने अर्थेयत्नकर ॥ ५ ॥

॥ पंचमभावनाष्टकं श्रीरागेण गीयते ॥ तुझगुणपारनहिसइअणोएदेशी ॥

विनय निभालय निजभवनं तनुधनसुतसदनस्वजनादिषु किं नि जमिह कुगतेरवनं ॥वि०॥१॥ येन सहाश्रयसे ऽतिविमोहादिदमहमि त्यविभेदं तदपि शरीरं नियतमधीरं॥त्यजति भवंतं धृतखेदं॥वि०॥२॥

अर्थ॥हवेविशेषें अन्यत्वभावनाभावता श्रीविनयविजयजी उपाध्याय पोतानेउप देशकरेछे के हेविनय तुतहारापोताना आत्मारूपघरने जो अने आससारमां शरीर द्रव्य पुत्र घर स्वजनादिकमा कोणतुजने दुर्गतिथी रक्षण करवालोछे अर्थातूकोइज नथी एटलेतु स्वजनादिकनेअर्थे माठाकर्मकरेछे तेकर्मनायोगथी जेवारे नरकादिक दुर्गतिमाजइस तेवारे तहारोहायपकमीने तुजने कोइदुर्गतिथी वारीराखशेनही॥१॥ बीजातोदूररह्या पणजेनीसाथे तु अत्यंतमोहनावशथकी ऐकपणुंकरेछे एहवुजे शरीरतेपण निश्चयथीअथीरोछे सेवट खेदकरावी तुजने मूकीचाल्योजसे अथवा खेद नोकरनारतुछो एहवा तुजनेमूकी चाल्योजसे ॥ २ ॥

जन्मनि जन्मनि विविधपरिग्रहमुपचिनुपे च कुटुंबं॥ तेपु भवं
तं परभवगमने नानुसरति कृशमपि सुंबं ॥ वि० ॥३॥ त्यज
ममतापरितापनिदानं ॥ परपरिचयपरिणामं ॥ भज निस्संगत
या विशदीकृतमनुभवसुखरसमभिराम ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेप्राणीतु जन्म जन्मने विषे विविधप्रकारना परिग्रहने संपादनकरेछे तेमज नानाप्रकारना कुटुंबने सपादनकरेछे परतु जन्मातरेंजाता ते पूर्वोक्तपरिग्रह माथी एकदोकडो पण ताहरीसाथेंआवतोनथी ॥ ३ ॥ माटे ममतानायोगेकरी अ त्यततीव्रतापनुं मुख्यकारण एवो परकीयवस्तुनो परिणाम तेनोत्यागकर अने नि सग त्वपणेकरी स्वछयथयलु आल्हादनोकरनार एहवुजेअनुभवसुख तेनुसेवनकर ॥ ४॥

पथि पथि विविधपथैः पथिकैः सह कुरुते क प्रतिबंधं ॥
निजनिजकर्मवशैः स्वजनैः सह किं कुरुपे ममताबंधं॥वि०॥५॥
प्रणयविहीने दधदभिपगं ॥ सहते बहुसतापं ॥ त्वयि नि·
प्रणये पुद्गलनिचये वहसि मुधा ममतातापं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेमपथीमाणसने जूदेजूदेस्थानके मार्गमार्गमा वाटालुलोकनु मिलाप थतोजायछे पणते वाटमार्गुनीसाथे कोइप्रतिबधकरतोनथी तेमजपोतपोताना कर्म नेवशे आवीमल्या एहवावाटमार्गुतुल्य जे तारास्वजनलोक तेनीसाथेतु ममत्वनो प्रतिबंधकाकरेछे ॥५॥ जेमकोइ स्नेहशून्यपदार्थहोय अथवामनुष्यहोय तेनाउपर स्नेहधरनाराप्राणी बहुसतापने सहनकरेछे तेमज तुपण ताहाराउपर निस्नेही ए हवोजे पुद्गलनोसमुदाय एटलेपोतानुशरीर तेपणपुद्गलछे अनेजेस्वजनादिक शरीरी

जीवछे तेपणपुद्गलजछे तथा नवविधपरिग्रह तेपणपुद्गलछे एहवापुद्गलना समुदायउप र व्यर्थ ममता रूप ताप धारण करीने संताप सहन करेछे ॥ ६ ॥

त्यज संयोगं नियतवियोगं ॥ कुरु निर्मलमवधानं ॥ नहिविद धानःकथमपि तृप्यसि॥मृगतृष्णाघनरसपानं ॥वि०॥७॥ ज्ज जिनपतिमसहायसहायं ॥ शिवगतिसुगमोपायं ॥ पिव गद शमनं परिहृतवमनं॥शांतसुधारसमनपायं ॥ वि० ॥ ८ ॥

इ०शांतसुधारसगेय काव्ये अन्यत्वभावनाविभावनो नाम पंचमः प्रकाशः

अर्थ ॥ माटेनिश्चयेंकरी जेहनो वियोगथवानोछे एहवापुद्गलादिकसाथे जे तें सं योगकर्युंछे तेनोत्यागकर अनेनिर्मल एहवोजेपोतानो शुद्धात्मभावतेनेविषे अवधान के० स्वस्थथइ एकाग्रपणेलक्षराख केमकेकोइपणप्राणी मृगतृष्णारूप जलनुंपानक रीने कदापिकालें तृप्तथवानोनथी तेमतुंपण परवस्तुउपर ममत्वराखी कोइकालें आत्मरतिमां तृप्तिपामनारनथी ॥ ७ ॥ माटेरेआत्मा तुं असहायने सहायनाकर नार एटलेअशरणने शरणभूत एहवातीर्थंकरदेव तेनुंसेवनकर अनेनिरदोष मोक्ष गतिमांजवानुं जे सुगमोपाय अथवा जेमांथी परिहृतके० नाशपाम्युंछे वमनंके० मोक्षनासुखनो वमवापणुं वली गदशमनके० संसाररूप रोगनो समावनार एहवो जे शांतनामा सुधारसके० अमृतरस तेनो पिबके० पानकर ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसु धारसगेयकाव्ये अन्यत्वभावनाविभावनो नाम पंचमः प्रकाशः

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ सच्छिद्रो मदिराघटः परिगलत्तल्लेश संगाशुचिः शुच्या मृद्यमृदा बहिः स बहुशो धौतोपि गंगो दकैः ॥ नाधत्ते शुचितां यथा तनुभृतां कायो निकायो महाबी भत्सास्थिपुरीषमूत्ररजसां नायं तथा शुद्ध्यति ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेछठी अशुचि भावना भावेछे जेम मदिरा गालवानुंयंत्र झारीनीमाफ क छिद्रेंकरी सहितथायछे तेछिद्रोमांथी मदिरागलावेछे तेथी तेछिद्रोमां मदिराना कणिआनुं अंशरहीजायछे तेलेशमात्र पण मदिरानासंगेकरीने अपवित्रथयलुं एहवोजे मदिराना भाजननो छिद्र तेनेपवित्रकरवाने अर्थें बाहिरथी माटीसाथें गसी ने पछे गंगानदीना पाणीयेंकरी घणावखत धोइधोइने साफकरवामांभ्यें तोपणते मदिरागालबाना छिद्रो कोइवारें पवित्र थायनही तेमज मनुष्यनो अत्यंत बीभत्स

दुगंछाकरवायोग्य हाम रक्त मल मूत्रनोस्थानकरूप शरीर तेने माटीयेगसवाथी अथवा गंगादिकनापाणीये नवराव्याथी पणपूर्वोक्त दृष्टांतेकोइवारे शुद्धथातुनथी१

मंदाक्रांतावृत्त॥स्नायं स्नायं पुनरपि पुनः स्नांति शुद्धाभिरद्भि र्वा रं वारं वत मलतनु चंदनैरर्चयंते॥ मूढात्मानो वय मपमला प्री तिमित्याश्रयंते नो शुद्ध्यते कथमवकरः शक्यते शोद्धुमेवं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ माटेजगतमा जेनुंअंत करण मूढथयुछे एहवालोक स्नानकरीने वारवार शरीरशुद्धि करवानेअर्थे फरिपण स्नानकरेछे तथा वारंवार मलनास्थानकरूप शरीरने चदनेकरीचर्चेछे अने अमेंनिर्मलथया एवुकहीने प्रीतिकरेछे पण एम न थी जाणताजे एशरीर तो किवारेपण शुद्धथातुनथी केमके खात्रनुं उकरडो तेको इरीते शुद्ध थायकेसुं अर्थातुनजथाय ॥ २ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ कर्पूरादिभिरर्चितोपि लशुनो नो गाहते सौरभं नाजन्मोपकृतोपि हंत पिशुन सौजन्यमा लंबते॥ देहोप्ययेप तथा जहाति न नृणां स्वाभाविकी विस्र तां नाभ्यक्तोपि विभूपितोपि बहुधा पुष्टोपि विश्वस्यते॥३॥

अर्थ ॥ जेमलसणमा कर्पूरादिकपदार्थोनो भेलकस्यो तोपण लसणकांइ सुगंधी वत थायनही तथा जन्मपर्यंत उपकारकस्योहोय तोपण दुर्जनपुरुप काइ सौजन्यता ने धारणकरतोनथी तो हंतइतिखेदे आमनुष्यनुंशरीर तेपण स्वभावसिद्ध दुर्गंधने मूकतुनथी आशरीरने विविधप्रकारनासुगधीतेलेकरीमसल्यो अनेवस्त्रालंकारेकरी भूपितकस्यो तथा खवरावी पीवरावीने अत्यतपुष्टकस्यो तोपण विश्वासनोपात्र था यनही एटले एशरीर हवेसारुंथयुं एहवोविश्वास कदापिआवेनही ॥ ३ ॥

उपेंद्रवज्रावृत्तं॥ यदीयससर्गमवाप्य सद्यो भवेच्छुचीनामशुचित्वमु च्चै ॥अमेध्ययोनेर्वपुपोस्य शौचसंकल्पमोहोयमहो महीयान्॥४॥

अर्थ ॥ शरीरनोसंबंधपामिने पवित्रपदार्थोने पण अपवित्रतापणु आवेछे केम के आशरीरने उत्तमजातिना चदनादिके मर्दनकरो तो तेचदनादिक थोडीजवारमा पोतानुं सुगंधतापणुमूकीने दुर्गंधतानेधारणकरेछे तेमज उत्तमप्रकारनाभोजन खव राव्याथी तेपण तुरत नरगमय थयीजायछे एवो आ अपवित्रवस्तुने उत्पत्तिनुकार ण जेशरीर तेनेपवित्रपणु करवाना सकल्पनो मोहराखवु एमहोटोआश्चर्यकारीछे४

स्वागतावृत्तं॥इत्यवेत्य शुचिवादमतथ्यं पथ्यमेव जगदेकपवित्रं ॥
शोधनं सकलदोषमलानां धर्ममेव हृदये निदधीथाः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एरीतें शरीरने पवित्रकरवानोवाद खोटोजाणीने जगतमां एकपवित्र पथ्य तो समस्तदोषरूपमलनो शोधक एहवोजेधर्म तेहनेहृदयमांधरो ॥ ५ ॥

॥ षष्ठभावनाष्टकं आसावरीरागेण गीयते कागारेतनुचुनिचुनिजावे एदेशी. ॥

भावय रे वपुरिदमतिमलिनं विनय विबोधय मानसनलिनं॥
पावनमनुचिंतय विभुमेकं॥परममहोमयमुदितविवेकं॥भा०॥१॥
दम्पतिरेतोरुधिरविवर्त्ते किं शुभमिह मलकश्मलगर्त्ते॥ भृशम
पि पिहितः स्रवति विरूपं को बहुमनुतेऽवस्करकूपं ॥भा०॥२॥

अर्थ ॥ हवेविनयविजयजी उपाध्याय पोतेंपोताने उपदेशकरतो अशुचिपणुं भावेछे हेविनय आशरीरनेतुं घणुजमलीनजाणीने पोतानुंमनरूपकमल प्रफुल्लित कर वलीजे परमतेजस्वी अनेजेनाथकी उत्तमविचार उत्पन्नथाय एहवो एकपवित्र परमात्मानुं चिंतवनकर ॥ १ ॥ स्त्रीनोरक्त अने पुरुषनो रेत तेनापरिणाम स्वरूपथी उत्पन्नथयुं एहवुं मलमयजे कश्मलके० चीखलतेनी गर्ताके० खाड रूप आ शरीर तेमांसुसारुंछे जोआशरीरने अत्यंतढाकीराखुं तोपणतेमांथी विरूपप णे माठोदुर्गंधज स्रवेछे तोएवांकचराना कूवाने कोणरुडोकरी माननारछे अर्थात् कोइपण उकरडारूप कचरायेंकरी भरेला कूवाने भलुंमानसेनही ॥ २ ॥

भजति सचंद्रं शुचि तांबूलं॥ कर्तुं मुखमारुतमनुकूलं ॥तिष्ठ
ति सुरभि कियंतं कालं॥मुखमसुगंधि जुगुप्सितलालं॥ भा०
॥३॥असुरभिगंधवहोंतरचारी॥आवरितुं शक्यो न विकारी॥
वपुरुपजिघ्रसि वारंवारं॥हसति बुधस्तव शौचाचारं ॥भा०४॥

अर्थ ॥ सुंदरतांबूलमां कर्पूरप्रमुखनाखीने मुखसंबंधीवायु अनुकूलकरवानेअर्थे खायछे परंतु निंदाकरवायोग्य अनेघणीज दुगछाकरवायोग्यछे लालजेनी वली अप वित्रजेनोगंध एहवा तहारामुखनी सुगंधीते केटलोक वखतरहसे ॥३॥ शरीरमांचाल नारो विविधप्रकारना विकारेकरीसहित असुरभिगंधनो वहेनारो जे ताहरामुखनो वा युतेने ढांकीमूकवाने तुंसमर्थथयोनही तोताहराअंगने सुगंधीपदार्थोनो लेपकरी वारं वार तेहनो सुवासलियेछे ए तारो पवित्रतानो आचारजोइने पंडितलोकोहसेछे ॥४॥

द्वादश नव रध्राणि निकामं ॥ गलदशुचीनि न यांति विरामं॥
यत्र वपुषि तत्कलयसि पूतं॥मन्ये तव नूतनमाकूतं॥भा०॥५॥
अशितमुपरकरसंस्कृतमन्नं जगति जुगुप्सां जनयति हन्नं॥ पुं
सवनं धैनवमपि लीढं भवति विगर्हितमति जनमीढं॥भा०॥६॥

अर्थ ॥ अतिशयेकरी जेमाथी रात्रदिवस अपवित्रवस्तुश्रवेछे पणकोइवारे विरामपामतिनथी एहवास्त्रीना बारछिद्र अने पुरुषनानवछिद्र तेछिद्रेकरीसहित एहवा शरीरने तुपवित्रपणेजाणेछे माटेए तादृशोकोइ नवोज आचारजणायछे ॥ ५ ॥ नानाप्रकारे वगारप्रमुखना संस्कारेकरी सस्कृतकरेलुं पचावेलुं एहवुजे अन्न तेपण आ शरीरमा आरोग्याथकी हन्नके० विष्टारूपथइजायछे तेणेकरी जगतमा जुगुप्सा के० दुगछाउत्पन्नकरेछे वली आशरीरने वीर्यनीवृद्धिकरनारुं गायनुंदुध प्राशनकरीने फरीतेपुरुषे मूत्रितकस्योथको तेपणअत्यत निंदाकरवायोग्य थइपडेछे ॥ ६ ॥

केवलमलमयपुद्गलनिचये अशुचीकृतशुचिभोजनसिचये ॥ वपुषि विचितय परमिहसारं शिवसाधनसामर्थ्यमुदारं॥ भा०॥७॥
येन विराजितमिदमतिपुण्यं तच्चिंतय चेतननैपुण्यं॥विशदागममधिगम्य निपानं विरचय शांतसुधारसपानं ॥ भा०॥८॥इतिश्री
शांतसुधारसगेयकाव्ये अशौचभावनाविभावनोनाम षष्ठ प्रकाश·

अर्थ ॥ माटे केवलमलरूप पुद्गलनोसमूह अने पवित्रभोजनने अपवित्रपणु आपनार एहवाशरीरमा मात्रएक मोक्षसाधन करवानुजे सामर्थ्यछे एहिजमहोटो सार भूतजाण ॥ ७ ॥ मोक्षसाधनेकरी भूषितकस्योथको ए शरीरपवित्रथायछे तेचेतनानीज चातुर्यताजाणवी पणजेमा निर्मलसिद्धातरूप जलमिलेछे एहवो जलस्थान कजोइने शातसुधारसनोपानकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शातसुधारसगेयकाव्ये अशुचिभावनाविभावनोनाम षष्ट प्रकाश

भुजंगप्रयात वृत्तं॥यथा सर्वतो निर्झरै रापतद्भि प्रपूर्येत सद्य· पयोभिस्तटाक ॥तथैवाश्रवै कर्मभि संभृतोंगी भवेद्व्याकुलश्चचल पकिलश्च ॥१॥

अर्थ ॥ हवेसातमी आश्रवभावना भावेछे जेम सर्ववाजुथी पडता पाणीना निजरणायेकरी तत्कालतलाव भराइजायछे पछे पाणीनातरंगेकरी चचलथायछे ते

मज कादववधेछे इत्यादिके व्याकुलथायछे तेम आश्रवेंकरीयुक्तप्राणी कर्मरूपपाणी थी नरपूरथई व्याकुल अने चंचलथको पापरूपकादवें सहितथायछे ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ यावत्किंचिदिवानुभूय तरसा कर्मेह निर्जीर्यते तावच्चाश्रवशत्रवोऽनुसमयं सिंचंति भूयोपि तत् ॥ हा कष्टं कथमाश्रवप्रतिभटाः शक्या निरोद्धुं मया संसा रादतिभीषणान्मम हहा मुक्तिः कथं भाविनी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ ते जेटलामां अनुभवलेइने बलात्कारेकरी महारा आत्मामांथी कांइकक मेने हुं शुष्ककरुंछुं तेटलामांवली आश्रवरूपशत्रु समयसमयप्रतें कर्मोने फरी सी चनकरेछे माटे हाइतिखेदे मने एवुं कवणलागेछे के हुं आश्रवरूपशत्रुने केवीरीते जीतिशकुं अने एरीतेंतो अत्यंतभयंकर संसारथकी महारोछूटको पण सीरीतेंथसे॥२॥

प्रहर्षणीवृत्तं॥ मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगसंज्ञाश्चत्वारः सुकृतिभिराश्रवाः प्रदिष्टाः ॥ कर्माणि प्रतिसमयं स्फुटैरमीभिर्बध्नंतो भ्रमवशतो भ्रमंति जीवाः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पुण्यवंतपुरुषोए १ मिथ्यात्व २ अव्रति ३ कषाय ४ योग एचारनाम ना चारआश्रवकह्याछे ते समयसमयप्रतें एचारआश्रवना योगेकरी कर्मोने बांध नारा जीवो ते भ्रमेकरी चारगतिरूप संसारमांभमेछे ॥ ३ ॥

रथोद्धतावृत्तं॥ इंद्रियाव्रतकषाययोगजाः पंच पंच चतुरन्वितास्त्र यः ॥ पंचविंशतिरसत्क्रिया इति नेत्रवेदपरिसंख्यया ऽप्यमी॥४॥

अर्थ ॥ पांचइंद्रियो तथा प्राणातिपातादिक पांचअव्रत अने क्रोधादिक चारक षाय वली मनादिक त्रणयोग तथा कायिकादिक पचीस असत्क्रिया एरीते सर्व मलीने आश्रव बेतालीस प्रकारनुंछे ॥ ४ ॥

इंद्रवज्रावृत्तं॥ इत्याश्रवाणामधिगम्य तत्वं निश्चित्य सत्वं श्रुतिसन्निधा नात्॥एषां निरोधे विगलद्विरोधे सर्वात्मना द्राग् यतितव्यमात्मन्॥५

अर्थ ॥ एहवुं आश्रवनुं तत्वजाणीने निश्चयथकी शास्त्रसन्निधानपणुं एटले आगम सिद्धांतरूप शास्त्रनुं छतापणुं तेजेनाथकी विरोधगयुंछे एहवा आश्रवरूप शत्रुनो निरोधकरवा विषे हेआत्मातुं तुरत यत्नकर ॥ ५ ॥

सप्तमभावनाष्टक धनाश्रीरागेण गीयते ॥ जोलीमारेहत्तारेविषयनराचिये एदेशी ॥

परिहरणीया रे सुकृतिभिराश्रवा हृदि शमतामवधाय॥प्रभवं
त्येते रे भृशमुच्छृंखला विभुगुणविभववधाय ॥ परि० ॥ १ ॥
कुगुरुनियुक्ता रे कुमतिपरिप्लुता ॥ शिवपुरपथमपहाय
प्रयतन्तेऽमी रे क्रियया दुष्टया प्रत्युत शिवविरहाय ॥ परि०॥२॥

अर्थ ॥ सुकृतवतपुरुषे हृदयमां समताधारणकरी आश्रवनोपरिहारकरवो अरे जीव आ लोखंडना शांकलनीपरे बांधीराखनारो जे आश्रव ते विभुजे परमात्मा तेनागुणरूप ऐश्वर्यतानो नाशकरवाने समर्थथायछे ॥ १ ॥ कुगुरुयेकरेलीप्रेरणा अने कुमतियेकरी युक्तथयला देहदृष्टजीव तु कायिकादिक दुष्टक्रियाउमा प्रवर्त्तवे करी मोक्षपुरीये जवानो मार्गमूकीने उलटोमोक्षमार्गनो नाशकरवानुज यत्नकरेछे॥२॥

अविरतचित्ता रे विषयवशीकृता विषहंते विततानि ॥ इह
परलोके रे कर्मविपाकजान्यविरलदुःखशतानि ॥ परि०॥ ३ ॥
करिझषमधुपा रे शलभमृगादयो विषयविनोदरसेन ॥ हंत
लभंते रे विविधा वेदना बत परिणतिविरसेन ॥ परि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनाचित्तमां वैराग्यनथी एहवा विषयने पराधीनथयलाप्राणी इहलोके तथा परलोकेपण निरंतरपणे कर्मनापरिणामोथी उत्पन्नथयला शेकमांडु खोनुं सहनकरेछे ॥ ३ ॥ हस्ति मत्स्य भ्रमर पतंग अने मृग एवा पांचजातना प्राणीओ अनुक्रमेस्पर्श रस गंध रूप शब्द ए एकेकाविषयना विनोदरसेकरी नानाप्रकारनी वेदनाओने एविषयोना परिणाम जे विरस एटले माठारस तेणेकरीपामेछे ए महो दुःखदनु कारणछे ॥ ४ ॥

उदितकषाया रे विषयवशीकृता याति महानरकेषु परिव
र्त्तते रे नियतमनंतशो जन्मजरामरकेषु ॥ परि० ॥ ५ ॥
मनसा वाचा रे वपुषा चंचला दुर्जयदुरितभरेण ॥ उपलि
प्यते रे तत आश्रवजये यतता कृतमपरेण ॥ परि० ॥६ ॥

अर्थ ॥ जेने क्रोधादिक कषाय उदयमांआव्याछे तेप्राणीओ पांचइंद्रिओना विषयोने स्वाधीनथयलाछे तेणेकरी महोटा नरकमां जायछे अने अनंतिवार जन्म जरामरणकरेछे ॥५॥ आश्रवेकरी चंचल थयला प्राणी मन वचन अने कायाना

योगें दुर्जय एहवुंजेपाप तेणेकरी युक्तथायछे माटे चतुरपुरुषें आश्रवने जीतवानुं प्रयत्नकरवुं अने नवा कर्म बांधवानहीं ॥ ६ ॥

शुद्धायोगा रे यदपि यतात्मनां स्त्रवंते शुभकर्माणि ॥ कांचन निगडांस्तान्यपि जानीयात् हतनिर्वृतिशर्माणि ॥ परि० ॥ ७ ॥ मोदस्वैवं रे साश्रवपाप्मनां रोधे धियमाधाय ॥ शांतसुधारसपानमनारतं विनय विधाय विधाय ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये आश्रवभावनाविभावनोनाम सप्तमः प्रकाशः

अर्थ ॥ जेणेपोतानुं मनस्वाधीनकर्युं तेनाशुद्धयोगजेछे ते शुद्धयोग जोपण शुभकर्मोनेज स्त्रवेछे एटले शुभकर्मोनीज प्राप्तिकरावेछे परंतु तेकर्मोपण मोक्षसुख ना नाशकरवाने शोनानीबेडीसरखा जाणवा ॥७॥ माटे विनयविजयजी उपाध्याय पोते पोतानेकहेछे के अरेविनय आवाप्रकारेंकरी आश्रवसहित जेपाप तेनोनि रोधकरवा उपर बुद्धिराखी वारंवार शांतिसुधारसनो पानकरीकरीने आनंदपाम॥८॥ इतिश्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये आश्रवभावनाविभावनो नाम सप्तमः प्रकाशः

स्वागतावृत्तद्वयं ॥ येन येन य इहाश्रवरोधः संभवेन्नियतमौपयिकेन ॥ आद्रियस्व विनयोद्यतचेतास्तत्तदांतरदृशा परिभाव्य ॥ १ ॥ संयमेन विषयाविरतत्वे दर्शनेन वितथाभिनिवेशं ॥ध्यानमार्तमथ रौद्रमजस्त्रं चेतसः स्थिरतया च निरुंध्याः ॥२॥

अर्थ ॥ हवेआठमी संवरभावनाभावेछे अरेविनय आजगतमां जे जे उपायेंकरी निश्चयथी आश्रवनोरोध थतोहोय ते ते उपाय तादृशी अंतरदृष्टियेंजोइ तेनेविषे चित्त लगाडीने तेनेस्वीकारकर ॥ १ ॥ एटले संयमेंकरीने विषयउपर वैरागकर सम्यक्त्व दर्शनेकरीने अभिनिवेशके० मिथ्यात्वनो आग्रहमूकीआप अने चित्तना स्थिरपरिणाम पणे करीने आर्त्त तथा रौद्र ए बे ध्याननुं निरंतर रुंधनकर ॥ २ ॥

शालिनीवृत्तं ॥ क्रोधं क्षांत्या मार्दवेनाभिमानं हन्या मायामार्जवेनोज्वलेन॥लोभं वारांराशिरौद्रं निरुंध्याः संतोषेण प्रांशुना सेतुनेव॥३॥

अर्थ ॥ क्षमायेंकरी क्रोधनो जयकर मार्दवेंकरी अभिमाननो जयकर सरलपणे आगम[illegible] मायाजेकपट तेने हणीनाख वलीसमुद्रजेवो दुष्कर जे लोभ तेहनो उंचो सेतु शत्रुनो नि[illegible] संतोष तेणेकरी रोधकर ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्त॥ गुप्तिभिस्तिसृभिरेवमजय्यान् त्रीन् विजित्य तरसाऽधमयोगान् ॥ साधुसंवरपथे प्रयतेथा लप्स्यसे हितमनीहितमिद्ध ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ एमज मनगुप्ति वचनगुप्ति अने कायगुप्ति एत्रण गुप्तियेंकरीने जे जीतवाने घणाजदुर्जन निंदनीक एहवा त्रण दुष्टयोग्य तेने जीती रुडासंवर मार्गनेविषे यत्नकर एटले प्रकाशवत्त देदीप्यमान अने कोइकालें विनाशने न पामनारा एहवा जे हितार्थ तेने पामीस अर्थात् मोक्षसुखने पामीस ॥ ४ ॥

मंदाक्रांतावृत्तं ॥ एवं रुद्धेष्वमलहृदयैराश्रवेष्वाप्तवाक्यश्रद्धाचंचत्सितपटपटु सुप्रतिष्ठानशाली ॥ शुद्धैर्योगैर्जवनपवनैः प्रेरितो जीवपोत स्त्रोतस्तीर्त्वा भवजलनिधेर्याति निर्वाणपुर्यां ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एवाप्रकारेंकरी स्वछहृदयवत्त पुरुषे आश्रवनो रोधकरवो पछे आप्तके० पोतानाहितवांछक तीर्थंकरादिक पुरुषोना वाक्योउपर जेश्रद्धाराखवी तेजाणीये वाहणनेविषे एकसुंदर अनेउज्वल वावटोचडाव्यो एहवो नूतनपीवबंध थयो थको शुद्धमनोयोग शुद्धवचनयोग शुद्धकाययोग एत्रणयोग तेहिज जाणिये कोइक वेगवानवायरो तेणेकरी प्रेर्योथको जीवरूपीओ जहाज तेसंसारसमुद्रनो प्रवाहतरीने तुरत मोक्षरूप नगरिये जइपहोचेछे ॥ ५ ॥

॥ अष्टमभावनाष्टक नटरागेण गीयते महावीरमेरो लालन एदेशी ॥

शृणु शिवसुखसाधनसदुपाय सदुपायं रे सदुपाय॥ शृणु शिवसुखसाधनसदुपाय ॥ ज्ञानादिकपावनरत्नत्रयपरमाराधनमनपाय ॥ शृ० ॥१ ॥ ॥ विषयविकारमपाकुरु दूरं क्रोधं मान सहमायं॥ लोभ रिपुंच विजित्य सहेल॥ भज संयमगुणमकषाय॥ शृ० ॥२॥

अर्थ ॥ हे विनय तु मोक्षसाधननो रुडोउपाय सांभल एकतो निर्दोषपवित्र ज्ञानादिक रत्नत्रयनुं आराधनकर बीजो पांचेइंद्रियोना विषयसंबंधीजे विकारोछे तेहनेदूरकर त्रीजोमायासहित क्रोध मान अनेलोभरूप शत्रुओनी हेलनाकरी सहेजमा श्रमविना एचारेकषायने हलकटजेवा जाणी जीतीलेइने कषायथी अन्यथयलो एहवोजे संयमरूप गुण तेनुसेवनकर ॥ २ ॥

उपशमरसमनुशीलय मनसा रोषदहनजलदप्रायं ॥ कलय
विरागं धृतपरभागं हृदि विनयं नायं नायं ॥ शृ० ॥ ३ ॥
आर्तं रौद्रं ध्यानं मार्जय ॥ दह विकल्परचनानायं ॥
यदियमरुद्धा मानसवीथी॥ तत्वविदः पंथा नायं ॥शृ० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ क्रोधरूपअग्नीने शमाववा मेघनीपरें शांतिनोकरनार एहवोजे उपशम रस तेहने तुं मनमां धारणकर हे विनय हृदयमां धारणकरेलोजे परपुजलादिक संबंधी नाग तेहने तहाराहृदयमांथी नीलानीलाकें० काढीकाढीने अत्यंत गुणवा नजे वैराग्य तेने धारणकर वली आर्त्तध्यान अनेरौद्रध्यानने धारणकरीसनही॥३॥ तथा संकल्प विकल्पनीजेजालने तेने वाली नस्मकरीनाख कारणके मनो योगना मार्गने रुंधी न राखवो एवोकांइ तत्व वेत्तानो मार्गनथी तत्ववेत्ता पुरुष नेतो मनोयोग मोकलो राखवुंज नही ॥ ४ ॥

संयमयोगैरवहितमानसशुद्ध्या चरितार्थयकायं ॥ नानामत
रुचिगहने भुवने निश्चिनु शुद्धपथं नायं ॥ शृ०॥५॥ ब्रह्म
व्रतमंगीकुरु विमलं बिभ्राणं गुणसमवायं ॥ उदितं
गुरुवदनादुपदेशं संगृहाण शुचिमिव रायं ॥ शृ० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ संयमनायोगथी थयलीजेमननीशुद्धि तेणेकरीने कांइपण कृतार्थकर नानाप्रकारनी रुचिसहीत विचित्रप्रकारना मतेंकरी गहन एटलेव्याप्त एहवो आज गतमां नयरूप शुद्धमार्ग एटले स्याद्वाद शैलीरूपजे जैनमार्ग तेनोशोधकर ॥ ५॥ वली गुणना समुदायने धरनार अत्यंतनिर्मल एहवाब्रह्मचर्यव्रत ने स्वीकारकर अने गुरुयेंकरेलाउपदेशने जेरीतें शुद्धद्रव्यनो संग्रहकरियें तेरीतेंसंग्रहकर ॥६ ॥

संयमवाङ्मयकुसुमरसैरति सुरभय निजमध्यवसायं ॥ चेतन
मुपलक्षय कृतलक्षणज्ञानचरणगुणपर्यायं ॥ शृ० ॥ ७ ॥ वदन
मलंकुरु पावनरसनं जिनचरितं गायं गायं ॥ सविनय शांतिसु
धारसमेनं चिरं नंद पायं पायं ॥ शृ० ॥ ८ ॥ इति श्रीशांतसुधा
रसगेयकाव्ये संवरभावनाविभावनो नाम अष्टमः प्रकाशः

अर्थ ॥ संयमना प्रतिपादन करनारा एहवा परमेश्वरनी वाणीमय जेपुष्प ते पुष्पोना रसनेसुगंधी पोताना अध्यवसायनेअत्यंतपणेकर अने ज्ञानादिक गुणपर्या

यरूप लक्षणनो करनारुं एहवोजे तहारुं चैतनछे तेने तु ओलख ॥ ७ ॥ पवित्र अने जलारसेकरी सहित एहवु परमेश्वरनाचरित्रोनुं गायन करीकरीने पोताना मुखने अलकृतके० शोभितकर (नूषितकर) वली विनयसहित आ शातिसुधारसनो पान करी करीने घणाकाल सुधी आनंद मग्नमा रहे ॥ इतिश्री शातिशुधारस गेयकाव्ये संवरजावनाविजावनो नाम अष्टम प्रकाश ॥

इडवज्रावृत्त॥यन्निर्जरा द्वादशधा निरुक्ता तत् द्वादशानां तपसां विजेदात्॥ हेतुप्रजेदादिह कार्यजेद· स्वातंत्र्यतस्त्वेकविधैव सा स्यात् ॥१॥

अर्थ ॥ हवे निर्जरा जावनाजावेछे निर्ज्जराजे बारप्रकारनी कहीछे तेबारप्रकारना तपने जेदेंकरीथाय इहा कारणनेजेदें कार्यनो जेदथाय तेणेकरी बारप्रकार कहेवाय नहीकां स्वतंत्रपणेतो निर्ज्जरा एकप्रकारनीजछे ॥ १ ॥

अनुष्टब्वृत्तद्वयं॥काष्ठोपलादिरूपाणां निदानानां विजेदत ॥वन्हिर्यथैकरूपोपि पृथग्रूपो विवक्ष्यते॥२॥ निर्जरापि द्वादशधा तपो जेदैस्तथोदिता ॥ कर्मनिर्जरणात्मा तु सैकरूपैव वस्तुत ॥ ३ ॥

अर्थ ॥जेम कारणरूप काष्ट अने पाखाणना जूदाजूदा जेदछे तेनाजेदेंकरी यद्यपि अग्निएकरूपछे तथापि जिन्नजिन्नरूप देखायछे एटले आ अमुक काष्टनीअग्नि अथवा आ अमुक पाखाणनी अग्नि इत्यादिक अग्निना जेदकहेवायछे ॥ २ ॥ तेमज तपनाजेदेकरी निर्ज्जरा बारप्रकारनीकहीछे पण वस्तुतत्वें विचारता कर्मनिर्ज्जरा स्वरूप जे छे तेतो एक रूपजछे ॥ ३ ॥

उपेडवज्रावृत्त॥ निकाचितानामपि कर्मणां यज्ञरीयसा नूधरडर्धराणां॥ विजेदने वज्रमिवातितीव्र नमोस्तु तस्मै तपसेऽद्भुताय ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पर्वतजेवा डर्धर एहवा महोटा निकाचितकर्मोनो जेदकरवाविषे वज्रनी परें अत्यंततीव्र एहवुअद्भुतजे तप तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ किमुच्यते सत्तपस प्रजाव· कठोरकर्मार्जितकिल्बिषोपि ॥ दृढप्रहारीव निहत्य पाप यतो ऽपवर्ग लजतेऽचिरेण॥५॥ यथा सुवर्णस्यशुचि स्वरूप दीप्त कृशानु प्रकटीकरोति ॥ तथात्मन कर्मरजो निहत्य ज्योतिस्तपस्तद्विशदीकरोति ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ तपना रूमाप्रजावनुं केटलुं वखाण करियें जेटलुं वखाणकरिये तेटलु

योभुंजछे केमके दृढप्रहारी जेवा पुरुषोए महोटा कगेर कर्म करीने अत्यंत पापोनो संपादान कर्युंहतो तेपण तपस्याना प्रनावें समस्त पापोनो नाशकरीने थोडाज कालमां मोक्ष प्रतें पाम्या ॥ ५ ॥ जेम प्रदीप्तअग्नि सुवर्णनुं पवित्रस्वरूप प्रगटकरेछे तेमज तपजेछे तेपण आत्मामांथी कर्मरूप रजनो नाशकरीने साक्षात् आत्मानुं ज्योतिस्वरूप प्रगटकरेछे ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तं॥ बाह्येनाभ्यंतरेण प्रथितबहुनिदा जीयते येन
शत्रुश्रेणी बाह्यांतरंगा नरतनृपतिवत् नावलब्धदृढिम्ना॥
यस्मात्प्राडुर्नवेयुः प्रकटितविनवा लब्धयः सिद्धयश्च वं
दे स्वर्गापवर्गार्पणपटु सततं तत्तपो विश्ववंद्यं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेना बाह्य अने अभ्यंतर नेदेकरी घणानेद प्रख्यातछे एहवा तपना उपर विशेषनावना योगेंकरी जेहने दृढपणुं लब्धके० प्राप्तथायतो ते तपेंकरी डुसमनादिक बाह्यशत्रु अने रागादिक अंतरंग शत्रु तेनीजे श्रेणीके० पंक्ति तेने नरत राजानीपरें जीतीजवायछे वली जेतपथकी ऐश्वर्यताने प्रगटकरनारी अठ्ठावीसलब्धीओ अने आठसिद्धिओ प्रगटथायछे तथा जे स्वर्ग अने मोक्षना सुखआपवामां कुशल वलीजगतने पूजवायोग्य एहवोजेतप तेहनेहुं निरंतर नमस्कारकरुंछुं ॥ ७ ॥

अथनवमनावनाष्टकं सारंगरागेण गीयते ॥ जिणंदरायसरण तिहारे आयोएदेशी॥

विनावय विनय तपोमहिमानं ॥ ध्रुवपदं ॥ बहुनवसंचितडु
ष्कृतममुना ॥ लनतेलघुलघिमानं ॥ वि० ॥ १ ॥ याति
घनापि घनाघनपटली ॥ खरपवनेन विरामं ॥ नजति त
था तपसा डुरिताली ॥ क्षणनंगुरपरिणामं वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ विनयविजयजी पोताने उपदेशकरेछेके अरेविनय तुं तपनामहिमानी नावनाकर जेनायोगथकी घणानवनुं संचितकरेलुं पाप तुरतज हलकापणुंपामेछे ॥ १ ॥जेम तीक्ष्णवायुयें करी महोटी महोटी मेघनीपंक्तिओ नाशपामेछे तेमज तपेंकरीने महोटीमहोटी पापनीपंक्तिओ एक क्षणमात्रमां नष्टथइजायछे ॥ २ ॥

वांछितमाकर्षति दूरादपि रिपुमपि व्रजति वयस्यं॥ तप इदमाश्र
य निर्मलनावादागमपरमरहस्यं॥३॥अनशनमूनोदरतां वृत्तिन्हा
सं रसपरिहारं नज सांलीन्यं कायक्लेशं तप इति बाह्यमुदारं॥४॥

अर्थ ॥ वली जे वांछितार्थ घणुंदूरहोय तेनेपण नजीकआणीआपेछे तथाशत्रु नेपण मित्रकरेछे एहवाएतपने शास्त्रनु परमरहस्य जाणीने निर्मलभावे आदर ॥ ॥ ३ ॥ तेतपनाबारभेदछे १ अनशन २ उनोदरी ३ वृत्तिऱ्हास एटले वृत्तिस ङ्क्षेप ४ रसपरिहार ५ सालीन्यता एटले इंद्रियोनोरोधवु एकांतेबेसवु ६ कायक्लेश एछप्रकारनु महोटु बाह्यतपछे तेनुं तु सेवनकर ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्त वैयावृत्यं स्वाध्यायं विनयं च ॥ कायोत्सर्ग शुभध्यानं आभ्यंतरमिदमंच॥वि०॥५॥शमयति ताप गमयति पाप रमयति मानसहंस॥हरति विमोहं दूरारोहं तप इति विगताशंसं ॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ १ प्रायश्चित्त २ वेयावच्च ३ स्वाध्याय ४ विनय ५ कायोत्सर्ग ६ शुभ ध्यान एछप्रकारना आभ्यंतर तपछे तेनेसेव ॥ ५ ॥ एतप अनेकप्रकारना संसारी कतापनी शातिकरेछे अनेपापनोनाशकरेछे तथा मनरूपहंसने रमाडेछे वली नि स शयपणे आजगतमा दु खोनेदूरकरवा असमर्थ एहवोजे मोहतेनो नाशकरेछे ॥६॥

संयमकमलाकार्मणमुज्वलशिवसुखसत्यकार चिंतितचिंतामणिमाराध य तप इह वारं वार ॥वि०॥७॥ कर्मगदौषधमिदमिदमस्य च जिनपति मतमनुपान॥विनय समाचर सौख्यनिधानं शांतिसुधारसपान॥वि०॥८

इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये निर्जराभावनाविभावनोनामनवम प्रकाश

अर्थ ॥ वलीएतपते चारित्ररूप लक्ष्मीने वशकरवानी विद्याछे तथा सुंदर मो क्षना सुखआपवाने विशारदछे वली चिंतितार्थ देवाने चिंतामणीरत्नसरखोछे एह वा तपने आजगतमा हेविनय तु वारवार अंगीकारकर ॥ ७ ॥ हेविनय कर्मरूप रोगनु ओषध अने तीर्थंकरोनो जे मत तेछे अनुपानजेहनु तथा समस्त सुखनु निधान एहवोजे शांतसुधारस तेनुंतुपानकर ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये निर्जराभावनाविभावनो नाम नवम प्रकाश

उपजातिवृत्त ॥ दान च शील च तपश्च भावो धर्मश्चतुर्धा जिनबां धवेन॥निरूपितो यो जगता हिताय स मानसे मे रमतामजस्त्र॥१॥

अर्थ ॥ हवेदशमी धर्मभावना भावेछे तीर्थंकरदेवे लोकहितार्थे दानशील तप अ ने भाव एरीतें चारप्रकारनो धर्मकह्योछे तेधर्ममारामनमां सर्वकालरहो ॥ १ ॥

इंद्रवज्रावृत्त त्रयं॥सत्यक्षमामार्दवशौचसंगत्यागार्जवब्रह्मविमुक्तियु
क्तः॥ यः संयमः किंच ततोपगूढश्चारित्रधर्मो दशधायमुक्तः॥ २ ॥ य
स्य प्रभावादिह पुष्पदंतौ विश्वोपकाराय सदोदये ते॥ ग्रीष्मोष्मभी
ष्मामुदितस्तडित्वान् काले समाश्वासयति क्षितिं च ॥ ३ ॥ उल्लो
लकल्लोलकलाविलासैर्नाप्लावयत्यंबुनिधिः क्षितिं यत् ॥ न
घ्नंति यत् व्याघ्रमरुद्दवाद्या धर्मस्य सर्वोप्यनुभाव एषः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ १ सत्य २ क्षमा ३ मार्द्दव ४ शौच ५ तपधर्म ६ संगत्याग ७ ब्रह्मचर्य ८ विशेषप्रकारें मुक्तिएटले निर्लोभतापणुं ९ संयम १० अकिंचनता तेणेकरीयुक्त ए रीतें दसप्रकारनुं चारित्रधर्म कह्युंछे ॥ २ ॥ जे धर्मनापसायेंकरी जगतमां चंद्रसूर्य पण सर्वप्राणीमात्रने उपकारकरवाने अर्थे नित्यउदयपणुं पामेछे वलीग्रीष्मऋतुमां नी अत्यंत तप्तथयली जमीनने वर्षाऋतुमां मेघ वर्षादकरीने ठंमिकरेछे ॥ ३ ॥ त था समुद्रपोताना महोटाकल्लोलेंकरी पृथ्वीनेबुडावतोनथी अने व्याघ्र तथा दावा नल अने पवन इत्यादिकोकोइने मारतानथी एप्रतापसर्व धर्मनोजछे ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयं ॥ यस्मिन्नेव पिता हिताय यतते
भ्राता च माता सुतः सैन्यं दैन्यमुपैति चापचपलं यत्रा
फलं दौर्बलं ॥ तस्मिन्कष्टदशाविपाकसमये धर्मस्तु संवर्मि
तः सज्जः सज्जन एष सर्वजगतस्त्राणाय बद्धोद्यमः ॥ ५ ॥
त्रैलोक्यं सचराचरं विजयते यस्य प्रसादादिदं योत्रामु
त्र हितावहस्तनुभृतां सर्वार्थसिद्धिप्रदः ॥ येनानर्थकदर्थ
ना निजमहःस्सामर्थ्यतो व्यर्थिता तस्मै कारुणिकाय ध
र्मविभवे भक्तिप्रणामोऽस्तु मे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेवखत पोतानाहितनेअर्थे बाप भाइ माता पुत्र अत्यंतउद्योगकरेछे तेपण धर्मनोजप्रतापजाणवो अनेवली धनुष्यनायोगेंकरी चपलथयलो जे सैन्यके० लशकर तेपण दैन्यके० दीनपणाने पामेछे तथा जेवखतपोतानी भुजाओनुंबल निष्फलथायछे एवी कष्टअवस्थाना परिणामकालें पण सज्जनएहवुंजे आधर्मरूप मित्रते पोतानाअंगमां बख्तरजेवुंथइ जाणे एक धर्मरूप बख्तरज पहेलुंहोयनी एट

छे आंगमां वस्तरपहेख्या नीपरेथयीने सर्वजगतना रक्षणार्थे उद्योगकरेछे ॥ ५ ॥ वळी जेहनापसायथकी स्थावर अने जगमसहित जगत शोचेछे तथा जे आलोके प्राणीओने हितकरवाने योग्यथयीने सर्वअर्थनी सिद्धताने पमाडेछे जेऐपोताना तेजस्वीसामर्थ्यकरी पापरूपविटबनानो नाशकरीनारछुछे एहवो जे दयावत धर्मरूप प्रभु तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ६ ॥

मंदाक्रांतावृत्तं ॥ प्राज्य राज्य सुभगदयिता नंदनानंदनानां रम्यं रूप सरसकविता चातुरी सुस्वरत्वं ॥ नीरोगत्वं गुणपरिचय सज्जनत्वं सुबुद्धि किंतु ब्रूमः फलपरिणति धर्मकल्पद्रुमस्य ॥ ७॥

अर्थ ॥ महोटुंराज्य सुंदरस्त्री पुत्र पुत्रीओ रमणीकरूप घणीज सरस कविता करवानी चतुराइ सुस्वरपणुं आरोग्यतापणुं गुणोनोपरिचय तथासज्जनपणुं अने रूडीबुद्धि एसर्ववाना ते धर्मरूप कल्पवृक्षना फलछे ॥ ७ ॥

॥ अथ दशमभावनाष्टकं वसंतरागेण गीयते भवितुमेवढोरेहीरविजयसूरिराया एदेशी॥

पालय पालय रे पालय मां जिनधर्म ॥ मगलकमलाकेलिनिकेतन करुणाकेतन धीर ॥ शिवसुखसाधन भवभयबाधन जगदाधार गभीर ॥ पा० ॥१॥ सिंचति पयसा जलधरपटलीभूतलममृतमयेन ॥ सूर्याचद्रमसावुदयेते तव महिमातिशयेन ॥ पा० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हे जैनधर्म तु महारुरक्षणकर महारुं रक्षणकर तु मागलिकरूप लक्ष्मीनुं क्रीडागृहछो वळीकरुणानो स्थानकछो तथा मोक्षसुखनु साधनछो अने ससारना समस्तभयनो नाशकरनारछो तेमज जगतना जीवोने आश्रयभूतछो अनेअतिगभीरछो ॥ १ ॥ जे मेघनो समूहत्ते पृथ्वीतलने अमृत सरखा पाणीये करीने सिंचन करेछे अने चद्र सूर्य जे नित्य उगेछे तेसर्व ताहरोज महिमाछे ॥ २ ॥

निरालंबमियमसदाधारा तिष्ठति वसुधा येन॥त विश्वस्थितिमूलस्तंभं त सेवे विनयेन॥पा०॥३॥ दानशीलशुभभावतपोमुखचरितार्थीऽकृतलोक ॥शरणस्मरणकृतामिह भविना दूरीकृतभयशोक ॥पा० ४॥

अर्थ ॥ निरालंब पृथ्वीनेकोइ आधार नछता जेनाआधारथकी रहेछे एहवो जगतनीस्थितीनो मूलस्तंभ जे धर्म तेने हु नित्यप्रते विनय एटले भक्तिये करी सेवुछु॥३॥ दान शील शुभभाव अने तप एचारप्रकारेकरी लोकोने चारित्रार्थनो करनारो अने

जे प्राणी आ जगतमां ए धर्मनो स्मरण करेछे तथा आश्रय करेछे ते प्राणीना भय तथा शोकने दूर करनारो एह्वो ए धर्मछे ॥ ४ ॥

क्षमासत्यसंतोषदयादिकसुभगसकलपरिवारः ॥ देवासुरनरपूजित शासन कृतबहुभवपरिहारः ॥पा०॥५॥बंधुरबंधुजनस्य दिवानिशमस हायस्य सहायः॥भ्राम्यति भीमे भवगहनेंगी त्वां बांधवमपहाय॥पा०६

अर्थ ॥ जेनो क्षमा सत्य संतोष दया आदेदेइने समस्तपरिवार सुंदरछे वली देवता दैत्य अने मनुष्योए जेनी आज्ञामान्यकरीछे तथा अनेक जन्म जरा मरण नो परिहार करनारो ते ए धर्मजछे ॥५॥ वलीहे धर्मतुं जेनेकोइ भाइनथी तेनोभा इ तथा जेनेकोइ सहायनथी तेने रात्रदिवस सहायनो करनार बांधव रूपछो तेम छता बांधवरूप तुजने मूकीने प्राणीओ संसाररूप अरण्यमां फिरेछे॥ ६ ॥

ॐगति गहनं जलति कृशानुःस्थलति जलधिरचिरेण॥तव कृपयाऽखिल कामितसिद्धिर्बहुना किंतु परेण ॥पा०॥७॥ इह यछसि सुखमुदितदशांगं प्रेत्येंद्रादिपदानि॥क्रमतोज्ञानादीनि च वितरसि निःश्रेयससुखदानि॥८

अर्थ॥हे धर्मरूपमित्र तहारीकृपाथकी आरण्य ते महोटा नगर जेवो थाय तथा अग्निते पाणीसरखीथाय अने समुद्रते स्थल सरखो तुरतथइजायछे वधारे सुं कहुं तहारी कृपाथकी प्राणीमात्रना सर्व मनोरथ पूर्णथायछे ॥ ७ ॥ आलोकमां जेना अंगनेविषे दयारूप धर्म उदयआव्योछे तो तेने इहांपण पूर्वोक्तप्रकारें सुखआपेछे अने परभवे इंद्रादिक देवताओनी पदवीआपेछे वली क्रमेकरी मोक्षसुखने आप नारा एह्वा ज्ञानादिक गुणआपेछे ॥ ८ ॥

सर्वतंत्रनवनीतसनातन सिद्धिसदनसोपान ॥ जय जय वि नयवतां प्रतिलंबितशांतसुधारसपान ॥पा० ॥ ९ ॥ इतिशांत सुधारस गेयकाव्ये धर्मभावनाविभावनो नाम दशमः प्रकाशः

अर्थ ॥ सर्वशास्त्रोमां नवनीत एटले माखणजेवो सारभूत अने सनातनके० शा श्वत तथा सिद्धिरूपगृहनो सोपान एटले निसरणीरूप अने जे विनयवंत शिष्यो ने शांतिसुधारसनुं पान करावेछे एह्वोजे धर्म ते जयपामो जयपामो ॥ ९ ॥

इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये धर्मभावनाविभावनो नाम दशमः प्रकाशः

मालिनी वृत्तं ॥ सप्ताधोधो विस्तृता या पृथिव्यश्छत्राकारा·संति रत्नप्रभाद्या ॥ ताभिः पूर्णो योस्त्यधोलोक एतौ पादौ यस्य व्यायतौ सप्तरज्जु ॥१

अर्थ ॥ हवे इग्यारमी लोकस्वरूप भावनाभावेछे सातअधोअधो एटले एकबीजाने नीचेनीचे विस्तीर्ण छत्राकारे रत्नप्रभादिक सातपृथ्वीओछे तेणेकरी परिपूर्ण एवा अधोलोकरूप सातरज्जुप्रमाणे जेना मह्योटाबेपगछे ॥ १ ॥

तिर्यग्लोको विस्तृतो रज्जुमेकां पूर्णो द्वीपैरर्णवांतैरसंख्यै ॥ यस्य ज्योतिश्चक्रकांचीकलाप मध्ये कार्श्यं श्रीविचित्रं कटित्र ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अने एक रज्जु प्रमाण विस्तारवत असंख्याता द्वीपसमुद्रेकरी व्याप्त एहवो तिर्यग्लोकमां कृशपणानी शोभायेकरी युक्तछे वली ज्योतिष चक्ररूप कांचीकलापाये युक्त जेनुं सुंदर कणदोरोछे ॥ २ ॥

लोकोऽथोर्ध्वं ब्रह्मलोके द्युलोके यस्य व्याप्तौ कूर्परौ पंच रज्जू ॥ लोकस्यांतो विस्तृतो रज्जुमेकां सिद्धज्योतिश्चित्रको यस्य मौलिः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ जेनो ऊर्ध्वलोके ब्रह्मनामा देवलोक पाचरज्जुप्रमाणे व्याप्त ते कोपरा सरखो कूरपरछे अने जेनुं लोकनेअंते एकरज्जुविस्तारपणेजे सिद्धशिला तेमस्तकछे॥३

यो वैशाखस्थानकस्थायिपाद श्रोणीदेशे न्यस्तहस्तद्वयश्च ॥ कालेऽनादौ शश्वदूर्ध्वंदमत्वाद्बिभ्राणोपि श्रांतमुद्रामखिन्नः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेना मथनकरवाना दडने स्थानकेपगछे एटले गासमथन करवाना दण्डनी परें जेना पगपसरेलाछे जेणे पोतानी कटीउपर बेहाथ राखेलाछे एहवोथको अनादिकालनुं निरंतर ऊर्ध्वदमपणे जितेंद्रियथको शांतमुद्रा धरीरह्योछे पण खिन्ननथी॥४

सोयं ज्ञेयः पूरुषो लोकनामा षड्द्रव्यात्माऽकृत्रिमोनाद्यनंतः ॥ धर्माधर्माकाशकालात्मसंज्ञै र्द्रव्यैः पूर्णः सर्वतः पुद्गलैश्च॥ ५ ॥

अर्थ ॥ षटद्रव्यरूप जेना आत्मानुं स्वरूपछे जेनेकोइये कर्योनथी जेनो जन्म अथवा मृत्युथयोनथी वली धर्म अधर्म आकाश काल जीव अने पुद्गल एपाचद्रव्येकरी सर्वस्थले परिपूर्ण एवो आ चउदराज लोकनामा पुरुषजाणवो ॥ ५ ॥

रंगस्थानं पुद्गलानां नटानां नानारूपैर्नृत्यतामात्मनां च ॥ कालोद्योगस्वस्वभावादिभावैः कर्मातोद्यैर्नर्तितानां नियत्या ॥ ६॥

अर्थ ॥ वली जे काल उद्योग स्वस्वभावादिकभावे कर्मरूपवाजित्रें नियतियेक

नमथायछे तथा परंपरायें अद्वैत ब्रह्मपदवी पमाडवामां जेनेकोइशत्रुनथी जेनीप्राप्ति पामवी अत्यंतकठीणछे एहवुंजे बोधरूपरत्न तेनोहेबुद्धिमंतो तमेसेवनकरो ॥ १ ॥

भुजंगप्रयातवृत्तत्रयं॥अनादौ निगोदांधकूपे स्थितानामजस्रं जनुर्मृत्युदुःखार्दितानां॥परीणामशुद्धिः कुतस्तादृशी स्याद्यया हंत तस्माद्विनिर्यांति जीवाः ॥ २ ॥ततो निर्गतानामपि स्थावरत्वं त्रसत्वं पुनर्दुर्लभं देहभाजां ॥ त्रसत्वेपि पंचाक्षपर्याप्तसंज्ञिस्थिरायुष्कवत्वं दुर्लभं मानुषत्वं ॥३॥ तदेतन्मनुष्यत्वमाप्यापि मूढो महामोहमिथ्यात्वमायोपगूढः॥ भ्रमन्दूरमग्नो भवागाधगर्ते पुनः क्व प्रपद्येत तद्बोधिरत्नं॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पण अनादि कालना निगोदरूप अंधकार तद्रूप कुवामां रहेनारा निरंतर जन्म मरणना दुःखेंकरी पीडायला प्राणीओने तेवी परिणामशुद्धि केमथाय केमके जेथकी महोटा आनंदे सहित जीव निगोद रूप अंधकार कुवामांथी बाहेरपडेछे ॥ २ ॥ ते निगोदमांथी नीकलीने पण स्थावरमां उपजवुंथाय केमके प्राणीने त्रसपणुं पामवुंतो दुर्लभछे वली त्रसपणामां पण पंचेंद्रियपणुं पामवुं दुर्लभछे तेमां वलीपर्याप्तिपणुं पामवुं दूर्लभछे तेमांपण संज्ञी पंचेंद्रियपणुं दीर्घायु अने मनुष्यपणुं पामवुंतो परमदुर्लभछे ॥३॥महामोह मिथ्यात्व तथा माया एणेकरी युक्तथको मूर्खप्राणी आ मनुष्यपणुं पामीने संसाररूप अगाध खाडामां फिरतो फिरतो बुडयोथको रहेछे तेप्राणीने बोधिरत्न फरीने शीरीतें प्राप्तथसे ॥ ४ ॥

शिखरिणीवृत्तं॥विभिन्नाः पंथानः प्रतिपदमनल्पाश्च मतिनः कुयुक्तिव्यासंगैर्निजनिजमतोल्लासरसिकाः॥ न देवाः सान्निध्यं विदधति न वा कोप्यरसिकस्तदेवं कालेऽस्मिन् य इह दृढधर्मा स सुकृती॥५॥

अर्थ ॥ धर्मोना भिन्नभिन्न मार्ग अने भिन्नभिन्न स्थानकें कुयुक्तिना व्यासंगें एटले अभ्यासें करीने पोतपोताना मतना उदयविषेरसिक एहवा घणामतवाला आ कालमांछे अनेजो देवतानेपूछवाजइयेंतो देव कांइ कोइपासें आवतोनथी एमजएहवो अतिशयवालोपण कोइनथीके जेने पूछि निर्णय करीयें तो एवा आ दुष्करकालमां जेप्राणी धर्मउपर दृढता राखेछे तेज प्राणी पुण्यवान जाणवो॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तं॥ यावद्देहमिदं गदैर्न मृदितं नोवा जराजर्जरं याव त्त्वक्षकदंबकं स्वविषयज्ञानावगाढक्षम॥ यावच्चायुरभंगुरं निजहिते ता वद्बुधैर्यत्यता कासारे स्फुटिते जले प्रचलिते पालिः कथं बध्यते ॥ ६॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी आशरीर रोगाक्रांत थयोनथी तेमज जिहांसुधी आशरीर जरायेकरी जर्जरीभूतथयोनथी तथा जिहांसुधी आ पांचेंद्रियनो समूह पोतपोता ना विषयो लेवाने समर्थछे अने जिहांसुधी आयुष्य क्षीणथयुनथी तिहांसुधी हेजीव तु पोताना कल्याणविषे यत्नकर केमके तलोफुटीने पाणी बाहेर नीकली जसे तोपछे पालते केवी बांधीस ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ विविधोपद्रवं देहमायुश्च क्षणभंगुरं ॥
कामालंब्य धृतिं मूढैः स्वश्रेयसि विलंब्यते ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ आशरीर नानाप्रकारना उपद्रवेकरी युक्तछे आयुष क्षणभंगुरछे एमछतां कोणमूर्ख तेनाउपर संतोष राखी पोताना कल्याणथवाना कार्यमां विलंब करे॥७

॥द्वादशभावनाष्टक धनश्रीरागेणगीयते ॥ हीचेरेहीचेरेपीआहिंडोलडेएदेशी॥

बुध्यता बुध्यतां बोधिरतिदुर्लभा ॥ जलधिजलपतितसुररत्नयु क्त्या सम्यगाराध्यतां स्वहितमिह साध्यतां ॥ बाध्यताम धरगतिरात्मशक्त्या ॥ बु० ॥ १ ॥ चक्रिभोज्यादिरिव न रभवो दुर्लभो भ्राम्यतां घोरसंसारकक्षे ॥ बहुनिगोदादिका यस्थितिव्यायते ॥ मोहमिथ्यात्वमुखचोरलक्षे ॥ बु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ जेम समुद्रनापाणीमां पडीगयलु चिंतामणीरत्न पाछोहाथमां आववु अतिदुर्लभछे तेम बोधिपामवीपण अतिदुर्लभछे माटेरूडीरीतें बोधिनुं आराधनकरी पोतानु हितसाधवु अनेपोतानी शक्तीयेकरी दुर्गतिनो बाधकरवो ॥ १ ॥ घणी निगोदादिक कायस्थितिये करी विशाल अने मोह मिथ्यात्वप्रमुख लाखोगमे चोरटा यें युक्त एहवो आ घोर संसाररूप अरण्यमां फिरनारा जीवोने चक्रवर्त्तिना भोजन सरखो मनुष्य जन्म पामवो दुर्लभछे ॥ २ ॥

लब्ध इह नरभवो ऽनार्यदेशेषु य स भवति प्रत्युतानर्थकारी ॥ जी वहिंसादिपापाश्रवव्यसनिनां माघवत्यादिमार्गानुसारी ॥ बु० ॥ ३ ॥

आर्यदेशस्पृशामपि सुकुलजन्मनां ॥ दुर्लभा विविदिषा धर्मतत्वे ॥ र
तपरिग्रहभयाहारसंज्ञार्तिभि र्हंत मग्नं जगद्दुस्थितत्वे ॥ बु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जो आ जगतमां प्राणी अनार्यदेशमां मनुष्यभव पाम्योतो उलटो अन र्थनुं कारणथायछे केमके जीवहिंसादिक पापाश्रवना व्यसनवाला जीवोतो माघव ति जे सातमी नरकादिकछे तेना मार्गनुं कारण थायछे ॥ ३ ॥ रूडाकुलमां जन्म पामेलो होय अनेवली आर्यदेशमां रहेनार होय तेनेपण धर्मतत्व जाणवानी इच्छा थवीदुर्लभछे कारणके रतके० मैथुन परिग्रह भय अने अहार ए चार नामना दु स्थितपणामां सर्वजगत बूडीपडयोछे ॥ ४ ॥

विविदिषायामपि श्रवणमतिदुर्लभं धर्मशास्त्रस्य गुरुसन्निधाने ॥ वित
थविकथादितत्तद्रसावेशतो विविधविक्षेपमलिनेऽवधाने ॥ बु० ॥
॥ ५ ॥ धर्ममाकर्ण्य संबुध्य तत्रोद्यमं कुर्वतो वैरिवर्गोऽतरंगः राग
द्वेषश्रमालस्यनिद्रादिको बाधते निहतसुकृतप्रसंगः ॥ बु० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कदाचकोइने धर्मतत्व जाणवानी इच्छाहोय अने गुरुसंनिध बेठोहोय तोपण वृथा विकथारसना आवेशथी नानाप्रकारना विक्षेपेंकरी जोतेनुंअंतःकरण मलीन थयुंहोयतो धर्मशास्त्रोनुं श्रवण दुर्लभहोय ॥ ५ ॥ वली जेप्राणी धर्मने सांभली धर्मनेपाम्यो अने धर्मनेविषे उद्योगपण करवाबेठो तेवा प्राणीनेपण पुण्य रूप प्रसंगना नाशकरनारा जे रागद्वेष श्रम आलस निद्रा इत्यादिक अंतरंग शत्रु नो समूहछे तेपीडाकरेछे तेथीतेने धर्मपामवुं दुर्लभथायछे ॥ ६ ॥

चतुरशीतावहो योनिलक्षेष्वियं क्व त्वया कर्णिता धर्मवार्ता ॥ प्राय
शो जगति जनतां मिथो विवदते ऋद्धिरससातगुरुगौरवार्ता॥बु०॥७॥
एवमतिदुर्लभात्प्राप्य दुर्लभतमं बोधिरत्नं सकलगुणनिधानं॥कुरु गुरु
प्राज्यविनयप्रसादोदितं ॥ शांतरससरसपीयूषपानं ॥ बु० ॥ ८ ॥
इ० शांतसुधारसगेयकाव्ये बोधिभावनाविभावनो नामद्वादशःप्रकाशः

अर्थ ॥ माटे अहोइति आश्चर्य हेजीव चोरासीलक्ष जीवा योनीमां किहां पण तें धर्मनीवात सांभली हसेके अर्थात् नहीज सांभली हसे केमके घणुकरीने आ जगतमां ऋद्धिगारव रसगारव सातागारव एत्रण महोटा गारवेंकरी पीडायला लोकोतो परस्पर एकबीजा साथे वादकरेछे पणधर्मनी वातोसांभली धर्ममार्गे प्रव

नेतानयी ॥७॥ एम अतिदुर्लन वस्तु करता पण विशेष डुर्लन अने समस्त गुणनुं निधानएवु जे बोधिरत्न ते पामीने गुरुनो अत्यंत विनयुकस्यो तेणेकरीने प्राप्तथयु ए हवु जे शातिसुधारस रूप जलोअमृत तेनु तु पानकर एमाकर्त्तायेपोतानुनाम पणसु चव्यु ॥ ८ ॥ इतिश्री शातसुधारस गेयकाव्ये बोधिन्नावनाविन्नावनोनाम द्वादश प्र काश एरीते अनित्यादिक बारन्नावनाओनो अधिकार संपूर्णथयो ॥

अनुष्टुव्वृत्तं ॥ सद्धर्मध्यानसध्यानहेतव श्रीजिनेश्वरै ॥ मैत्रीप्रन्नृतय प्रोक्ताश्चतस्रो न्नावना॰ परा ॥ १ ॥ तथाहु ॥मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्य स्थानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कर्तु तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे मैत्र्यादिक चारन्नावनाओ न्नावेछे श्रीतीर्थकरदेवे सत्यधर्मध्याननी धारानी हेतुन्नूत मैत्रीआदेदेइने बीजी चारन्नावनाओ कहीछे ॥१॥ तेश्रीतीर्थंकरदेवे कहीछे तेमज न्नावियेछैये १ मैत्री २ प्रमोद ३ कारुण्य अने ४ माध्यस्थ्य एचारन्नाव नाते धर्मध्यानना न्नूपणार्थे एटले धर्मध्याननी शोन्नानेअर्थे योजना करीथकी न्ना वनारने चारन्नावनायुक्त जे धर्म ते रसायन (औषधी) तुल्य थायछे ॥ २ ॥

उपजातिवृत्त॥मैत्री परेषा हितचितनं यत् न्नवेत्प्रमोदो गुणपक्षपात.॥ कारुण्यमार्त्तांगिरुजां जिहीर्षेत्युपेक्षण डुष्टधियामुपेक्षा ॥ ३ ॥सर्वत्र मैत्रीमुपकल्पयात्मन् चित्यो जगत्यत्र न कोपि शत्रु ॥ कियद्दिन स्थायिनि जीविते ऽस्मिन् कि खिद्यते वैरिधिया परस्मिन् ॥ ४ ॥ सर्वेप्यमी वंधुतया ऽनुन्नूता॰ सहस्रशोऽस्मिन्न्नवता न्नवाब्धौ ॥ जी वास्ततो वधव एव सर्वे न कोपि ते शत्रुरिति प्रतीहि ॥ ५ ॥ सर्वे पितृभ्रातृपितृव्यमातृपुत्रागजास्त्रीन्नगिनीस्नुपात्व ॥ जी वा प्रपन्नावहुशस्तदेतत्कुटुबमेवेति परो न कश्चित् ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जे बीजानाहितनु चितनकरवु ते मैत्रीन्नावना जाणवी गुणीनो पक्षपा तकरवु ते प्रमोदन्नावना जाणवी डुखीप्राणीना डुख डुरकरवानी इच्छाराखवी ते का रुण्यन्नावना डुष्टवुद्धीवत प्राणीउपर उपेक्षाकरवी ते उपेक्षणन्नावना ॥ ३ ॥ हेआ त्मातु सर्वत्र मैत्रीतापणुकर एटले आजगतमा कोइपण महारो शत्रुछे एहवो तु ताहरा मनमा बीजकुल जावीसनही केमके थोडादिवस रहेनारो अल्पमात्र ताह रो जीवतव्यपणुछे तेमां बीजाउपर शत्रुबुद्धि राखीने सु वृथा खिन्नथायछे ॥ ४ ॥

हेजीव आसंसारसमुद्रमां ए समस्तप्राणीसाथें हजारोवखत तें नाइपणो अनुन व्यो तेमाटे एसर्व ताहरा नाइओजछे पण कोइ तहारो शत्रुनथी एवीरीतें तुंजाण ॥ ५ ॥ सर्वजीवो मात्र, संसारमां माता पिता बंधु काको पुत्र पुत्री स्त्री, बहेन ओकरानीस्त्री इत्यादिकरीतें ताहरीसाथें शेकडो वखत सगपण करीचुकाछे तेमाटे एसर्व ताहारो कुटुंबजछे पण एमांकोइ परकीयनथी एमविचारी सर्वजंतु उपर मैत्रिता पणुं आदर ॥ ६ ॥

इंद्रवज्रावृत्तद्वयं॥ एकेंद्रियाद्या अपि हंत जीवा. पंचेंद्रियत्वाद्यधिगत्य सम्यक् ॥बोधिं समाराध्य कदा लनंते नूयो नवभ्रांतिनियां विरामं॥ ७ ॥या रागरोषादिरुजो जनानां शाम्यंतु वाक्काय मनोद्रुहस्ताः॥सर्वेप्युदासीनरसंरसंतु सर्वत्र सर्वे सुखिनोनवंतु॥८॥

अर्थ ॥ फिरी हेजीव तुं एवो विचारकर के आ संसारमां जे एकेंद्रियादिक जीवोछे तेपण रूडाप्रकारें पचेंद्रियादिकपणु पामीने ज्ञानाराधनाकरी कोइकालेंपण संसारमां नमवारूप नयनुं अंतकरसे एवुंजाणीने तेजीवोनी साथे पण मित्रता कर ॥ ७ ॥ वलीजे प्राणीओने रागद्वेषादिरूप पीडा मन वचन कायाना शुनयोगोनो द्रोहकरेछे तेसर्वप्राणी उदाशीनतापणुं पामीने सर्वलोक सुखीथाओ एवोमैत्रीपणुं तुं सर्वजीवो उपर राख ॥ ८ ॥

॥ अथ त्रयोदशनावनाष्टकं देशाखरागेणगीयते रेजीवजिनधर्मकीजियें एदेशी ॥

विनय विचिंतय मित्रतां ॥ त्रिजगति जनतासु ॥ कर्मविचित्रतया गतिं विविधां गमितासु ॥वि० ॥ १ ॥ सर्वेते प्रियबांधवा नहि रिपुरिह कोपि ॥ माकुरु कलिकलुषं मनो निजसुकृतविलोपि ॥ विन० ॥२॥

अर्थ ॥ हेविनय आ त्रणलोकमां कर्मनी विचित्रतायेंकरी नानाप्रकारनी तिर्यंचादिक गतिओने पामेलाप्राणी जे छे तेसर्वप्राणीमात्रना समूहउपर तुं मित्रतानाव राख केमके एसर्व ताहरा परमप्रिय बांधवजछे पण एमांकोइ तहारोशत्रु नथी माटे फोकट मनने क्लेशेकरी कलुषता मकर कारणके क्रोधजेछे ते तहारा पोतानाज पुण्यनो नाशकरनारोछे ॥ १ ॥ २ ॥ ए बेकाव्यनो अर्थएकगोछे.

यदि कोपं कुरुते परो निजकर्मवशेन ॥ अपि नवता किं नूयते हृदि रोषवशेन ॥ वि० ॥३॥ अनुचितमिह कलहं सतां ॥ त्यज समरसमीन ॥ नज विवेककलहंसतां॥ गुणपरिचयपीन॥वि०॥४॥

अर्थ ॥ माटे जो बीजोकोइ पोताना कर्माधीनपणाथकी ताह्राउपर क्रोधकरे छे तो तुपण तह्राराहृदयमा तेनाउपर क्रोध शावास्ते करेछे ॥ ३ ॥ अरेजीवतु समतारूप पाणीना तलावनुं मत्सथइने सत्पुरुषोने अयोग्य एह्वुजे कलह तेनेमूकीआप अनेगुणोनो परिचय करवाने पुष्ककारी एह्वोजे विवेकरूप सरोवर तेमा रमण करवाने हंस जेवो था ॥ ४ ॥

शत्रुजना सुखिन· समे मत्सरमपहाय ॥ सतु गंतुमनसोप्यमी शिवसौख्यगृहाय॥वि०॥५॥सकृदपि यदि समतालव हृदयेन लिहंति ॥ विदितरसास्तत इह रति स्वत एव वहति ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवतु समस्त शत्रुलोकोनी मंमलीउपर मत्सरताभावनो त्यागकरीने परमसुखीथा अने मोक्षरूप सुखना घरने जाणवाने ताह्रुं मनकर ॥ ५ ॥ जोएकवारपण समताना लवनुं ताह्रा हृदयमां आस्वादन करीस तो रसज्ञथइने सम्यक्उपर पोतानी मेलेज प्रीतिकरीस ॥ ६ ॥

किमुत कुमतमदमूर्छितां दुरितेषु पतंति जिनवचनानि कथंह हा न रसादुपयंति॥वि०॥७॥ परमात्मनि विमलात्मनां परिणाम्य वसतु ॥विनय समामृतपानतो जनता विलसंतु॥वि०॥८॥इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये मैत्रीभावनाविभावनोनाम त्रयोदश प्रकाश

अर्थ ॥ हे जीवतु शावास्ते कुमतायेकरी मूर्छितथइने नरकमांपडेछे अने शांतरसथीज भरेला श्रीतीर्थंकरदेवना वचनोनुं केम सरक्षण करतोनथी ॥ ७ ॥ निर्मलअत करणवाला जीवोनामन परमात्माना स्वरूपनेविषेज परिणत थइ रहो अने लोकोनासमूह ते समतारूपी अमृतना पानेकरी विनयनो विलासपामो॥८॥ इतिश्री शातसुधारस गेयकाव्ये मैत्रीभावनाविभावनो नाम त्रयोदश प्रकाश

स्रग्धरावृत्तं॥धन्यास्ते वीतरागा क्षपकपथगतिक्षीणकर्मोपरागास्त्रैलोक्ये गंधनागा सहजसमुदितज्ञानजाग्रद्विरागा ॥अध्यारुह्यात्मशुध्या सकलशशिकलानिर्मलध्यानधारामारान्मुक्ते· प्रपन्ना कृतसुकृतशतोपार्जितार्हंत्यलक्ष्मी ॥१॥तेषा कर्मक्षयोत्थैरतनुगुणगणै र्निर्मलात्मस्वभावैर्गायं

गायं पुनीमस्तवनपरिणतैरष्टवर्णास्पदानि ॥धन्यां मन्ये र
सज्ञा जगति भवतस्तोत्रवाणीरसज्ञामज्ञां मन्ये तदन्यां
वितथजनकथाकार्यमौखर्यमग्नां ॥ २ ॥ निर्ग्रंथास्तेपि ध
न्या गिरिगहनगुहागव्हरांतर्निविष्टा धर्मध्यानावधानाः
समरससुहिताः पक्षमासोपवासाः ॥ येन्येपि ज्ञानवंतः
श्रुतविततधियो दत्तधर्मोपदेशाः शांता दांता जिताक्षा
जगति जिनपतेः शासनं भासयंति ॥ ३ ॥ दानं शीलं
तपो ये विदधति गृहिणो भावनां भावयंति धर्मं धन्या
श्चतुर्धा श्रुतसमुपचितश्रद्धया राधयंति ॥ साध्व्यः श्राध्य
श्च धन्याः श्रुतविदशधिया शीलमुद्भावयंत्यस्ता न्सर्वान्
मुक्तगर्वाः प्रतिदिनमसकृद्भाग्यभाजः स्तुवंति ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे प्रमोद भावना भावेछे क्षपकश्रेणीना मार्गमां प्रवेशकरवाने कर्म रूपमलने जेणे क्षीणकर्युंछे अने त्रणलोकमां गंधहस्तिसरखा स्वस्वभावमां रमण करनारा सहजउदयने पामेला केवलज्ञानेकरी जागृतथयुंछे वैराग्यजेहनुं एहवा श्रीवीतराग एटले तीर्थंकरनेधन्यछे केमके जे आत्मशुद्धिकरीने पूर्ण चंद्रकलास रिखी निर्मल जे ध्यानधारा तद्रूप अनंतपुण्यना समूहेंकरी संपादनकरेली तीर्थं करनीलक्ष्मी तेनुं आराधनकरी मुक्तिनेप्राप्तथायछे ॥ १ ॥ श्रीविनयविजयजी उपा ध्यायकहेछे के हुं ते तीर्थंकरोना कर्मक्षयथकी उत्पन्नथयाजे घणा गुणना समूह तेनी स्तुतिकरवाविषे जेहना परिणामहोयछे एवा आत्माना निर्मलस्वभावें सहित तीर्थंकरनी स्तुति करीकरीने वरणना आठस्थानकोप्रतें पवित्रकरुंछुं अने आ जग तमां तीर्थंकरोनी स्तुतिना रसने जाणनारी जिव्हाने धन्यमानुंछुं तेविना बीजीजे निष्फल लोकवार्ता अने कार्योना वाचालपणामां वर्त्तनारी जिव्हाने मूर्खतुल्य मानुंछुं ॥ २ ॥ वली पर्वतमां अरण्यमां गुफागुहिरमां निवासकरीने धर्मध्यान उ पर एकाग्रचित्त राखनारा तथा सम्यक्तरूप रसेकरी संतुष्टथयला वली पक्ष मास विगेरेना उपवास करनारा एहवा जे निर्ग्रंथसाधु तेनेपण धन्यछे तथा वली बी जाजे ज्ञानीपुरुषो शास्त्रउपर पसरेली बुद्धियेंकरी धर्मोपदेशआपेछे अने शांतगुणी दांतगुणी जितेंद्रिय एहवा महापुरुष जे जगतमां प्रवर्त्ततायका श्री तीर्थंकरदेवना

शासनने प्रकाशितकरेछे तेनेपण धन्यछे ॥ ३ ॥ वलीजे गृहस्थावासमा रह्यायका पण सुपात्रने दानआपेछे शीलपालेछे तपकरेछे भावनाओ भावेछे तथा चारप्रकारे करी धर्मध्यानने आराधेछे अने पुष्टश्रद्धायें शास्त्रनु आराधन करेछे तेनेपण धन्यछे वलीजे साध्वी तथा श्राविकाओ शास्त्रथकी स्वछथयली बुद्धिये शीलपालेछे तेनेपण धन्यछे एरीते हे भाग्यवत भव्यपुरुषो तमे सर्वथा गर्वमूकीने ए पूर्वोक्त समस्त उत्तमपुरुषोनी नित्यप्रते निरतर स्तुतिकरो के जेथकी तमारु कल्याणथाय॥४॥

उपजातिवृत्त॥ मिथ्यादृशामप्युपकारसार सतोपसत्यादिगुणप्रसारं ॥ वदान्यतावैन यकप्रकार मार्गानुसारीत्यनुमोदयाम· ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ए पूर्वोक्त सम्यक् दृष्टी जीवनी स्तुति करवी ते तो श्रेष्ठजछे परतु अमे मिथ्यादृष्टीनो पण उत्तम उपकार जाणीयेछैये कारणके जो तेमनो सतोप सत्यादिक गुणनो प्रसार तथा दातारपणु अने विनयना प्रकार एटलावाना मार्गानुसारीछे तो एहवोजाणीने तेनीपण अनुमोदना करियेछे ॥ ५ ॥

स्रग्धरावृत्त ॥ जिव्हे प्रव्हीभव त्वं सुकृतिसुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना भूयास्तामन्यकीर्तिश्रुतिरसिकतया मेऽद्य कर्णौ सुकर्णौ ॥ वीक्ष्यान्यप्रौढलक्ष्मी द्रुतमुपचिनुत लोचने रोचनत्व संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति भवता जन्मनो मुख्यमेव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवो जो तमे सरलछो अने पुण्यवान पुरुषोना पुण्यनो उच्चार करवाने प्रसन्नछो एटले आज अमारा कान बीजा पुण्यवान पुरुषोनी कीर्त्ति श्रवणना रसिकपणे करी सुकर्णरह्यो अने बीजानी प्रौढ ऐश्वर्यताजोइने अमारी चक्षु प्रकाशपणाने धारणकरो एहवा जो तमारा विचारछे तो आ ससारमा एज तमारा जन्म सफल पणानो मुख्य फलछे ॥ ६ ॥

उपजातिवृत्त ॥ प्रमोदमासाद्य गुणै परेषा येषा मति सज्जति सा म्यसिधौ ॥ देदीप्यते तेषु मन प्रसादे गुणास्तथैते विशदीभवति॥७॥

अर्थ ॥ बीजाना गुणो सामली सतोषपामिने जेनीबुद्धि समतारसरूप समुद्रमा सज्जथायछे तेप्राणीना मननो प्रसाद देदीप्यमान-थायछे तेमज तेना पोताना गुण पण सर्व स्वछ थायछे ॥ ७ ॥

॥ अथ चतुर्दश भावनाष्टकं टोडीरागेणगीयते ऋषभकीमेरेमनभगतिवशीरीएदेशी ॥

विनय विभावय गुणपरितोषं ॥ ध्रुवपदं ॥ निजसुकृता
प्तवरेषु परेषु ॥ परिहर दूरं मत्सरदोषं ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हेविनय तुं गुणीपुरुषनागुण उपर संतोष करवुं मनमाभाव अने पोताना पुण्यप्राप्तिनावखतें बीजाउपर मत्सरकरवापणाना दोषने दूरकर ॥ १ ॥

दिष्ट्यायं वितरति बहुदानं वरमयमिह लभते बहुमानं ॥ किमिति
न विमृशसि परपरभागं ॥ यद्विभजसि तत्सुकृतविभागं वि०॥ २॥

अर्थ ॥ अमुक मनुष्य अत्यंत दानआपेछे एबहु कल्याणकारक कामकरेछे अथवा असुकपुरुष अमुकस्थानके बहुमानपामेछे एपणघणुजरूंछे एहवो रूडोविचार तुं केमकरतोनथी ठेकाणेठेकाणे लोकोना गुणोत्कर्ष करवा एहिज सुकृत विभागछे २

येषां मन इह विगतविकारं ॥ ये विदधति भुवि जगदुपकारं ॥
तेषां वयमुचिताचरितानां ॥ नाम जपामो वारंवारं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ आ जगतमां जेना मननेविषे कोइप्रकारनो विकारनथी एटले निर्विकारीछता पृथ्वीनेविषे लोकोनो उपकारकरेछे एहवा पवित्र सदाचारी पुरुषोना नाम अमें वारंवार जपियेंछैयें ॥ ३ ॥

अहह तितिक्षागुणमसमानं ॥ पश्यत भगवति मुक्तिनिदानं॥ येन
रुषा सह लसदभिमानं ॥ झटिति विघटते कर्मवितानं ॥वि० ॥४॥

अर्थ ॥ जेनीबराबरी करवाने कोई समर्थनथी एहवो मुक्तिनुं कारणजे क्षमागुण ते श्रीतीर्थंकरदेव नोजूओ के जेणेकरी क्रोधसंहित अभिमानेकरी शोभनारो एहवोजे कर्मनो समूह ते तुरत नाशपामेछे ॥ ४ ॥

अदधुः केचन शीलमुदारं ॥ गृहिणोपि परिहृतपरदारं ॥ यश इह
संप्रत्यपि शुचि तेषां ॥ विलसति फलिताफलसहकारं ॥ वि०॥५ ॥

अर्थ ॥ जेगृहस्थो परस्त्रीनुं त्यागकरी महोटुं शीलव्रतपालेछे ते हमणापण आ जगतमां पवित्र यशें फलीभूत थयाथका सफल आंबाना वृक्षसरिखाशोभेछे ॥५॥

या वनिता अपि यशसा साकं कुलयुगलं विदधति सुपताकं ॥
तासां सुचरितसंचितराकं ॥ दर्शनमपि कृतसुकृतविपाकं॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ वलीजे स्त्रीओपण शील पालीने पोताना मावित्र तथा सासरा बन्ने कु

लोने यशनी सुपताकके० ध्वजाकरेछे एवीस्त्रीओनो पुण्य परिपाके करी प्राप्तथ येलुं जेदर्शन ते पण पुण्यरूप धननुंज संपादकछे ॥ ६ ॥

तात्विकसात्विकसुजनवतंसा. ॥ केचन युक्तिविवेचनहंसा ॥ अलम कृषत किल भुवनाभोगं ॥ स्मरणमनीषां कृतशुभयोगं ॥वि०॥ ७ ॥

अर्थ ॥ खरेखरा सत्वगुणने धारणकरनारा सज्जनलोकोना मस्तकना भूषणस मान अने जेम हंस दूध तथापाणीनो विवेचनकरेछे तेनीपरे युक्तियेकरी विवेचन नाकरनारा एहवा जे सर्वोत्कृष्टप्राणीछे ते आ त्रणेभुवनने शोभायमान करवाने तत्परछे तो तेवापुरुषोनुं स्मरणकरवु ते पण शुभयोगनो करनारथाय ॥ ७ ॥

इति परगुणपरिभावनसार ॥ सफलय सततं निजमवतारं ॥ कुरु सुविहितगुणनिधिगुणगानं॥विरचय शांतसुधारसपानं॥वि०॥८॥ इति श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदभावनाविभावनोनामचतुर्दश. प्रकाश

अर्थ ॥ हे आत्मा एपूर्वोक्तरीते परनागुणनो विचार करवु एहिज जेमां सार छे एवु आ तह्यारो पोतानो अवतार तेने तु निरंतर परनागुणो स्मरणकरीने सफ लकर तथा शुद्धगुणोना निधि एह्वाजे मनुष्यो तेना गुणोनुं गायनकर अने शां तसुधारसनुं पानकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदभावना वि भावनो नाम चतुर्दश प्रकाश ॥

मालिनीवृत्तं॥ प्रथममशनपानप्राप्तिवांछाविहस्ता स्तदनु वस नवेश्मालंकृतिव्यग्रचित्ता ॥ परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेंद्रि यार्थान्सततमभिलषन्त स्वस्थतां क्वाश्नुवीरन् ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवे कारुण्यभावना भावेछे प्रथमतो अशनपान प्राप्तिकरवानी इछा ये व्याकुलथयला तदनंतर वस्त्र घर अलंकार इत्यादिकोनी प्राप्ति करवाने विषे जे मनुचित्त व्यग्रथयुछे तेवारपछि लग्नकरवानी इछा तेपछि पुत्रपुत्री प्राप्त करवानी इछा अने इंद्रियार्थजे पाचइंद्रियोना त्रेवीस विषयोतेप्रते इछनार एह्वाजे ससार वासी जीवो तेकेवीरीतें स्वस्थ थाय ॥ १ ॥

शिखरिणीवृत्त ॥ उपायाना लक्षै कथमपि समासाद्य विभव भवा भ्यासात्तत्र ध्रुवमिति निबध्नाति हृदयं॥ अथाकस्मादस्मिन्विकिर ति रज क्रूरहृदयो रिपु र्वा रोगो वा भयमुत जरा मृत्युरथवा॥२॥

अर्थ ॥ हे प्राणी तुंआ जगतमां लक्षावधि उपायोकरीने कोइपणरीतें ऐश्वर्य ता मेलवी जन्मोजन्मना अभ्यासेंकरी तेहनाउपरज मनने स्थिर राखेछे पण एना उपरतो एथीअनंतर जे अकस्मातिक क्रूर हृदयवंत शत्रु किंवा रोगप्राप्ति नय जरा अथवा मृत्यु एटलावाना धुलनाखेछे ॥ २ ॥

स्रग्धरावृत्तं ॥ स्पर्धंते केपि केचिद्दधति हृदि मिथो मत्सरं क्रोधदग्धा युध्यंते केरुध्येद्धा धनयुवतिपशुक्षेत्रपद्मादिहेतोः॥ केचिल्लोभाल्लभंते विपदमनुपदं दूरदेशानटंतः ॥ किं कुर्मः किं वदामो नृशमरतिशतैर्व्याकुलं विश्वमेतत् ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ कोइ क्रोधेकरी दग्धथयाथका द्वेषकरेछे कोइ परस्पर हृदयमां मत्सर धरेछे केटलाक कोइना रुंध्यानछता स्वछंदपणे द्रव्य स्त्री पशु खेत्र गाम इत्यादिकोने वास्ते लडेछे वली कोइक लोभेंकरी विपत्तिये भोगित थयाथका दूर देशांतरोमां रटन करीकरीने व्यामूढथायछे तो हवे सुं करियें अने सुं बोलियें आ जगत तो अत्यंत शोकडा दुःखेकरी व्याकुलछे ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्तत्रयं ॥ स्वयं खनंतः स्वकरेण गर्तान्मध्ये स्वयं तत्र य था पतंति ॥ तथा ततो निष्क्रमणं तु दूरे ऽधोदः प्रपाताद्विरमंति नैव ॥ ४ ॥ प्रकल्पयन्नास्तिकतादिवादमिदं प्रमादं परिशीलयंतः ॥ मग्ना निगोदादिषु दोषदग्धा दुरंतदुःखानि हहा सहंते ॥ ५ ॥ शृण्वंति ये नैव हितोपदेशं न धर्मलेशं मनसा स्पृशंति ॥ रुजः कथंकारमथापनेयास्तेषामुपायस्त्वयमेक एव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ प्राणीपोतें पोतानेहाथें खाडोखोदीने तेमां एवीरीतें पडेछेके फरीकोइ प्रकारें तेमांथी नीकलवुंतो दूररह्युं परंतु उलटो नीचेनीचें जइपडवुं तेनुं किवारे अंतज आवनार नथी एटलो उंडोखाडो खोदेछे ॥ ४ ॥ जे नास्तिकादिक वादक ल्पीने प्रमादनो अभ्यासकरनारा दोषेकरी दग्धथयीने निगोदादिकमां बुमारह्या थका जेनोअंत घणुंलमागो एहवा महा क्लेशकारी दुःखोने सोसेछे तो हाहा इतिखे दे एवात केटली खेदभरेलीछे ॥ ५ ॥ जेप्राणीहितोपदेश सांभलतोनथी अने धर्म लेशयाने तो मनेकरीपण स्पर्श करतोनथी तेप्राणीना दुःखो सीरीते दूरकरीयें तेनो आ एकज उपायछे तेआगलना श्लोकमां कहेछे ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्त ॥ परदुःखप्रतीकारमेवं ध्यायंति ये हृदि ॥
लभंते निर्विकारं ते सुखमायतिसुंदरं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेप्राणी पूर्वोक्तप्रकारे बीजाना दुःखोनो प्रतीकार हृदयमां धरेछे तेणे करी जेना परिणाम सुंदरथायछे तेने निर्विकारी सुख प्राप्तथाय ॥ ७ ॥

॥ पंचदशभावनाष्टक रामकुलीरागेण गीयते ॥ हमारो अंबरदेदुमुरारी एदेशी ॥

सुजना भजत मुदा भगवंतं सुजनाभजत मुदा भगवंत ॥ ध्रुवपद ॥
शरणागतजनमिह निष्कारणकरुणावंतमवंतंरे ॥ सुज० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हेसज्जनो आ जगतमा कारणविना दयाना पालनारा अने जे पोताने शरणे आव्यो तेनीरक्षाना करनारा जे भगवतछे तेने तुमे हर्षकरी भजो ॥ १ ॥

क्षणमुपधाय मन स्थिरताया पिबत जिनागमसार ॥ का
पथघटनाविकृतविचारं त्यजत कृतांतमसारं रे ॥ सुज० ॥२॥

अर्थ ॥ एकक्षणमात्र पोतानो मनस्थिरकरी जैनागमना सारनुं पानकरो अने जे रुत्योमा कुत्सित मार्गनी घटनाये करी आपणो विवेक विकारवंत थायछे एवा असार निंदनिक कृत्यनो त्यागकरो ॥ २ ॥

परिहरणीयो गुरुरविवेकी भ्रमयति यो मतिमंदं ॥ सुगुरुवच
सकृदपि परिपीत प्रथयति परमानंदं रे ॥ सुज० ॥ ३ ॥

अर्थ॥अविचारितगुरुनो संगमूको केमके जे गुरुओ मंदबुद्धिवंत पुरुषोने भ्रांति सहित करेछे अने सुगुरुना वचनो जो एक वखत सांभल्या तोपणपरमानंद उत्पन्नकरेछे ३

कुमततमोभरमीलितनयनं किमु पृच्छत पथानं ॥ दधिबुध्या
नर जलमथन्या किमु निदधत मथान रे ॥ सुज० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ कुमतरूपी अंधारेकरी जेनी आखोढकाइ गयलीछे तेवाप्राणीने मोक्ष मार्गनो रस्तोसुं पूछवु हेलोको तमे दहीनी बुद्धिये पाणीनेविषे मथनिकाने केम नाखोछो केमके ए पाणीमाथी काइ माखण निकलवानु नथी ॥ ४ ॥

अनिरुद्ध मन एव जनाना ॥ जनयति विविधातंक ॥ सप
दि सुखानि तदेव विधत्ते ॥ आत्मारामम शंक रे ॥ सुज० ॥५॥

अर्थ ॥ पोतानुमन पोताने स्वाधीन न राख्यो छता तेहिज पोताने नानाप्रकार

नाडुःखो उत्पन्नकरेछे अने तेहिज मनपोताने स्वाधीन राख्योछता आत्मारामने निशंकपणे विविध प्रकारना सुखआपेछे ॥ ५ ॥

परिहरताश्रवविकथागौरवं मदनमनादिवयस्यं ॥ क्रियतां सांवरसाप्तपदीनं ॥ ध्रुवमिदमेव रहस्यम् रे॥ सुज० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हे सज्जनो तमे आश्रव अने विकथानुंजे गौरवपणुं तथा अनादिकालनुं मित्रजे कामदेव तेनी साथें मित्रतानो त्याग नाव करीने संवररूप सन्मित्रकरो ए हिज एक गुप्त तत्वछे ॥ ६ ॥

सह्यत इह किं न्नवकांतारे ॥ गदनिकुरंबमपारं ॥ अनुस रताहितजगडुपकारं जिनपतिमगदंकारं रे ॥ सुज० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेजीव आ संसाररूप अरण्यमां रागद्वेषादिक अपाररोगना समूहने तुं सोसेछे तेनो त्यागकरी ने जगतना उपकार करनार अने संसारीजीवोने राग द्वेष मद मत्सर इत्यादिक रोगोनो निवारणकरी निरोगताना आपनार एहवा श्री तीर्थंकरदेवरूप औषधनी सेवनाकर ॥ ७ ॥

शृणुतैकं विनयोदितवचनं नियतायतिहितरचनं ॥ रचयत सुकृत सुखशतसंधानं शांतसुधारसपानं रे ॥सुज०॥८॥ इति श्रीशांतसु धारसगेयकाव्ये कारुण्यन्नावनाविन्नावनो नाम पंचदशः प्रकाशः॥

अर्थ ॥ माटेहे न्नव्यो विनयविजयजीना कहेला अथवा विनयेंकरीने कहेला आ ग्रंथमांहेला वाक्यो तेने एक नियमें करी एटले तदाकार वृत्तियें करी बराबर ध्यानराखीने सांन्नलो ए वचनो सांन्नलवाथी उत्तरफलनी प्राप्तिथवाना कालनेविषे हित रंजनना करनाराछे एहवुंजाणीने ए वाक्यो ते एकनियमथी सांन्नलो॥८॥ इति श्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये कारुण्यन्नावनाविन्नावनो नाम पंचदशः प्रकाशः ॥

पंचापि शालिनीवृत्तानि॥श्रांता यस्मिन् विश्रमं संश्रयंते रुग्णाः प्री तिं यत्समासाद्य सद्यः॥ लभ्यं रागद्वेषविद्वेषिरोधादौदासीन्यं सर्व दा तत्प्रियं नः॥१॥लोके लोका न्निन्नन्निन्नस्वरूपा न्निन्नैर्भिन्नैः कर्म न्निर्मर्मन्निद्भिः॥रम्यारम्यैश्चेष्टितैः कस्य कस्य तद्विद्वद्भिस्तूयते रुष्यते वा ॥ २ ॥ मिथ्याशंसन्वीरतीर्थेश्वरेण रोद्धुं शेके न स्वशिष्यो जमा लिः ॥ अन्यः कोवा रोत्स्यते केन पापात्तस्मादौदासीन्यमेवात्मनी

न ॥ ३ ॥ अर्हंतोपि प्राज्यशक्तिस्पृश किं धर्मोद्योग कारयेयु प्र सह्य ॥ दद्यु शुद्ध कितु धर्मोपदेश यत्कुर्वाणा दुस्तरं निस्तरंति॥४ तस्मादौदासीन्यपीयूषसार वारंवारं हत संतो लिहंतु ॥ आनंदा नामुत्तरंगत्तरंगैर्जीवद्भिर्यद्भुज्यते मुक्तिसौख्य ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवे सोलमी माध्यस्थ जावना जावेछे जेमकोइप्राणीने थाकचडेलो होयते प्राणी विश्रांतिनास्थानके विश्रातिलेछे तेमज उदासीनता जेछेते संसार रूप अरण्यमा ज्रमणकरनारा प्राणीने विश्रातिलेवानु स्थानकछे अने जेनेजोइ रोगीपुरुष तत्काल प्रीतिवतथायछे एटले गमेतेवा रोगेकरी पीडितहोय तथापि जेने उदासीनता पण प्राप्तथयुं तो तेने ते रोगनी व्याधि काइपण जाणवामा न आवता उलटो हर्षवधेछे वली जेनीप्राप्ति राग अने द्वेषरूप शत्रुनो रोधकरवाथी थायछे एहवीजे उदासीनता ते अमोने सर्वकाल प्रियछे ॥ १ ॥ आजगतमांना लोको अंतरना आशयेकरी मर्मनाजेदे जिन्नजिन्न कर्मकरी अने रम्यारम्य व्या पारेकरी जिन्नजिन्न स्वरूपवतछे पण बधाप्राणीनी एकप्रकृति तो नथीज तिवारे हवे विद्वानपुरुषे केनीकेनी रम्यारम्य चेष्टा उपर सतुष्टथावु किंवा रुष्टथावु अर्था त् विद्वान पुरुषेतो सर्वप्राणी उपर संतुष्ट अथवा रुष्टनथता समदृष्टीज राखवी जलीछे ॥ २ ॥ जूओकेश्री वीरजगवान पोते तीर्थकर छता मिथ्यासहित बोलना रो पोतानो शिष्य जमाली तेने रुधीशक्यानही तो वीजो कोण कोइने पण पाप थकी रुंधीराखनारछे माटे उदासीनपणुं राखवुतेहीज आत्मानु हितकारीछे एम जाणवु ॥ ३ ॥ जूओके श्रीतीर्थंकरदेव अत्यंत शक्तिना धरनारहता तथापिते कोइने बलात्कारेकरी धर्मोद्योग करवाने प्रवर्तावताहता केसु ते तो जेणेकरी ज व्यपुरुषो दुस्तर ससार समुद्रमाथी तरी पारपामे एहवो केवल शुद्धधर्मनोज उपदेश मात्र आपताहता ॥ ४ ॥ तेकारणे हेसत्पुरुषो तमेवारवार हर्षसहित औदासीन्य तारूप सारजूत अमृतनो आस्वादनकरो के जेथकी जीव आनदना वहेनारा मो जायेकरी सहित मोक्षसुख जोगवे ॥ ५ ॥

॥ षोडशजावनाष्टक प्रजातिरागेण गीयते ॥ आदरजीवक्षमागुणआदर ॥ एदेशी

अनुजव विनय सदासुखमनुजव ॥ औदासीन्यमुदार रे ॥ कु शलसमागममागमसार ॥ कामितफलमदार रे ॥ अनु० ॥ १ ॥

परिहर परचिंतापरिवारं ॥ चिंतय निजमविकारं रे ॥ वदति को पि चिनोति करीरं ॥ चिनुतेऽन्यः सहकारं रे॰॥ अनु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ वली विशेषप्रकारें माध्यस्थपणुं नावेछे हे विनयतुं सर्वकाल सुखनो अनुनवकर जेम वांछित पदार्थों आपवामां कल्पवृक्षमुख्यछे तेम वांछित मोक्षसुखनी पमाडनारी अने सर्वशास्त्रोमां महोटी सारनूत एहवीजे उदासीनता तेनुंज तुंसेवनकर ॥ १ ॥ अरेजीव तुं बीजा विकारीपदार्थोनी चिंतवनानो करावनारोजे ताहरो परिवार तेनोत्यागकर अने पोताना अविकारि स्वरूपनुं चिंतनकर ॥ २ ॥

योपि न सहते हितमुपदेशं ॥ तडपरि माकुरु कोपं रे॥ निष्फलया किं परजनतृप्त्या॥ कुरुषे निजसुखलोपं रे॥ अनु० ३॥ सूत्रमपास्य जडा नापंते ॥ केचन मतमुत्सूत्रं रे ॥ किंकुर्मस्ते परिहतपयसो यदि पीयंते मूत्रं रे ॥ अनु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जोपणकोइ हितकारी उपदेश सांनलतो नथी तोपण तेनाउपर क्रोधकरीसनही निष्फल लोकोउपर संतापकरी पोताना सुखनो लोपकांकरेछे ॥ ३ ॥ केटलाक मूर्ख सूत्र त्यजीने बोलेछे केटलाक उत्सूत्र नाषणकरेछे एवीरीतना बोलनारा जोनिर्मलपाणीनेमूकी लघुनीतनुं पान करवालागा तोतेने अमेसुंकरियें ॥ ४ ॥

पश्यति किं न मनःपरिणामं निजनिजगत्यनुसारं रे॥ येन जनेन यथा नवितव्यं तद्भवता डुर्वारं रे ॥ अनु० ॥ ५ ॥

रमय हृदा हृदयंगमसमतां ॥ संवृणु मायाजालं रे ॥ वृथा वहसि पुद्गलपरवशतामायुःपरिमितकालं रे॥अनु०॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीव पोतपोतानी गत्यनुसारें सर्वजीवोनामननो परिणाम जूदोजूदो छे तेतुं केमजोतोनथी केमके जेप्राणीने जेवी नवितव्यताछे तेना मननो परिणाम पण तेहवोजछे तो ते तहाराथी डुर्वारछे एटले तहाराथी वारीशकाय तेमनथी॥५॥ माटे हृदयने आनंद आपनारीएवीजे समतातेने मनमां धारणकरी आनंदनेपाम अने मायाजालने त्यागकर व्यर्थ पुद्गलने परवश कांथायछे केमके तहारोआयुष परिमितकालछे एटले प्रमाणसहितछे तेनेत्रूटतां वारलागसेनही ॥ ६ ॥

अनुपमतीर्थमिदं स्मर चेतनमंतस्थितमनिरामंरे॥ चिरंजीव विशदपरिणामं॥ लनसे सुखमविरामं रे ॥ अनु० ॥७॥ परब्रह्मपरि

णामनिदानं ॥ स्फुटकेवलविज्ञानं रे ॥ विरचय विनय विवेचित ज्ञानं ॥ शांतसुधारसपानं रे ॥ अनु० ॥८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये माध्यस्थ्यभावनाविभावनो नाम षोडश प्रकाश ॥

अर्थ ॥ हेभव्यो तमे मनमां रहेनारुं आनदनुं कारण एहवु अनोपम उदासीनपणारूप तीर्थनुं स्मरणकरो अने जे कोइकालेपण विराम पामतानथी एहवा मोक्षसुखपामि चिरकाल स्वछपरिणामेरहो ॥ ७ ॥ अने परब्रह्मतारूप परिणामोनुं जे निदान तद्रूप विज्ञानने जे प्रगटकरेछे एहवुं विवेचननुकरनारुंजेमा ज्ञान छे एहवा शांतसुधारसनुं पान ते हे विनयतु निरतरकर ॥ ८ ॥ इति श्रीशातसुधारस गेयकाव्येमाध्यस्थ्यभावना विभावनोनाम षोडश प्रकाश ॥

स्रग्धरावृत्तद्वयं ॥ एव सद्भावनाभि सुरभितहृदया सशयातीतगीतोन्नीतस्फीतात्मतत्त्वास्त्वरितमपसरन्मोहनिद्राममत्वा ॥ गत्वा सत्त्वा ममत्वातिशयमनुपमा चक्रिशक्राधिकानां सौख्यानां मंक्षु लक्ष्मी परिचितविनया स्फारकीर्ति श्रयते ॥ १ ॥ दुर्ध्यानप्रेतपीडा प्रभवति न मनाक् काचिदद्वद्वसौख्यस्फाति प्रीणाति चित्त प्रसरति परित सौख्यसौहित्यसिधु ॥ क्षीयते रागरोषप्रभृतिरिपुभटा सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मी स्याद्वश्या यन्महिम्ना विनयशुचिधियो भावनास्ता श्रयध्व ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे श्रीविनयविजयजी उपाध्याय आग्रथ समाप्तकरीने उपदेशरूप पोताना आभिप्रायनु कथनकरेछे आवीरीते पूर्वोक्तप्रकारे सद्भावनाओनी सुगधिये जेनाहृदयमा सशयरहित गायनकरवाथी तार्किककखुंछे स्पष्ट आत्मतत्वजेणे अने जेना मोह निद्रा अने ममत्व तुरत नाशपाम्या छे एवाप्राणी ममतानुं अतिशय पणु मूकीने चक्रवर्त्ति तथा इन्द्रादिकोनासुखोथकी पण अधिक एवा विनयधरनारा अनुपम सुखोनी पुष्कल कीर्त्तिवत्त लक्ष्मीने पामेछे ॥ १ ॥ जेहना महिमायेंकरी दुर्ध्यानरूप प्रेतनीपीडा लगारमात्रपण थातीनथी पण कोइएक अपूर्व अद्वद्व सौख्यनी वृद्धिथायछे अने चित्तप्रीतिवतथायछे अने आत्माने चारे बाजुथी सौख्य तृप्तिनी नदीपसरेछे वली रागद्वेषरूपशत्रु क्षीणथइजायछे सिद्धिरूप साम्राज्यलक्ष्मी

वशथायछे एहवीजे नावनाओ तेने हे नव्य लोको तमारी विनयेंकरी पवित्रबु द्धिथइछता ते नावनाओनुं आश्रयकरो ॥ २ ॥

पथ्यावृत्तं ॥ श्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यौ सोदरावनूतां द्वौ ॥ श्रीसोमविजयवाचकवाचकवरकीर्तिविजयाख्यौ॥३॥

अर्थ ॥ श्रीहीरविजय सूरीश्वरना शिष्यवेनाइहता तेमां एक सोमविजयवाचक अने बीजा कीर्त्तिविजयवाचक ॥ ३ ॥

गीतिद्वयं ॥ तत्र च कीर्तिविजयवाचकशिष्योपाध्यायविनय विजयेन॥शांतसुधारसनामा संदृष्टो नावनाप्रबोधो ऽयं॥४ शिखिनयनसिंधुशशिमितवर्षे हर्षेण गंधपुरनगरे ॥ श्री विजयप्रनसूरिप्रसादतो यत्न एप सफलो ऽनूत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ तेमां कीर्त्तिविजय वाचकना शिष्य श्रीविनयविजयजी उपाध्याय तेणे आ शांतसुधारस नामा नावनानो प्रबोधकर्यो ॥ ४ ॥ आ प्रयत्न संवत सतरसोने त्रेवीसना वर्षे श्रीगांधार नगरमां श्रीविजयप्रनसूरिना प्रसादथकी हर्षसहित सफलथयुं ॥ ५ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ यथा विधुः पोडशनिः कलानिः संपूर्णतामेत्य जगत्पुनीते॥ग्रंथस्तथा षोडशनिः प्रकाशैरयं समग्रैः शिवमातनोतु॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेम चंद्रमा सोलेकलाये पूर्णतापामी जगतने पवित्रकरेछे तेम आ ग्रंथपण सोलकलारूप सोलप्रकाशेंकरी जगतनुंकल्याणकरोएवो महारोआशीर्वादछे६

इंद्रवज्रावृत्तं ॥ यावज्जगत्येप सहस्रनानुः पीयूपनानुश्च सदोदये ते ॥ तावत्सतामेतदपि प्रमोदं ज्योतिः स्फुरद्वाङ्मयमातनोतु॥७॥

अर्थ ॥ जेकालपर्यंत जगतमां चंद्रसूर्य उगेछे तिहांसुधी जेमांप्रकाशमान वाणी मयरूप ज्योतिछे एहवो आ शास्त्र ते सत्पुरुषोने आनंद आपो ॥ ७ ॥

इति श्रीमन्महोपाध्याय श्री कीर्त्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय श्री विनयविजयगणिविरचिते शांतसुधारसग्रंथे षोमशः प्रकाशोऽर्थसहितः समाप्तिमगमत्.

॥ अथ श्रीजिनप्रभसूरिकृतचतुर्विंशतिजिनस्तवन ॥

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ॥ अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नून नवपल्लवै स्वै ॥ १ ॥ गत्वा विजित्य द्विरदं स्वसेवा चिन्ह छलाछश्वदचीकरद्य ॥ यस्योदये हव्यभुजा नृणा वो बभूव भूमा भुवि सोऽजितोऽव्यात् ॥ २ ॥ सद्य स नियाद्भवसभव व श्रीशभवो यस्य पितुर्जितारे ॥ राजाधिराजत्वभुपोपि सेनापतित्वमेवाभिमत बताभूत् ॥ ३ ॥ जातोपि य सवरत स्वय यदजीजनत् सवरमद्भुतं तत् ॥ स कीशकेतुर्जितमीनकेतुर्जितोऽनिनद्यादभिनदनो व. ॥ ४ ॥ सुदुर्लभं मेघभवस्य यस्य मुक्ताफलस्येव न दर्शन कै ॥ चद्राव दात सुमति तमार्या सर्वश्रियामाश्रयमाश्रयध्व ॥ ५ ॥ न भेजिवान् वक्रगति कदाचित् नचातिचार सतत च सौम्य ॥ पद्मप्रभ शोणतनुप्रभोपि नव्यश्रिये कोपि धरांगजन्मा ॥ ६ ॥ पृथ्व्या प्रसूत सुमनोभिरर्च्य सुपर्णकातिर्वहुकव्युपास्य. ॥ श्रेय फलश्रीर्जयताद्धदभ्रस्कथ सुपार्श्वद्रुरपास्ततताप ॥ ७ ॥ चद्रप्रभोऽव्यात् वपुर शुजालैरालिंगितागीजनता यदीयै ॥ प्रसेननिर्वाणरमाविमुक्तकटाक्षलक्ष्मपितेव भाति ॥ ८ ॥ भावाहवे पुष्पशर विजित्य नश्यध्वज यो मकर गृहीत्वा ॥ आरोपयल्लक्ष्मपदे ध्रुव स स्वभृत्यता मे सुविधिर्विधेयात् ॥ ९ ॥ पित्रंगदाहप्रशमेन भाव दाहप्रमाथेपि खलु स्वशक्ति ॥ अजिज्ञपज्जन्मगतोपि विज्ञान् यस्तं स्तुम शीतलमब्धशील ॥ १० ॥ श्रेयान् श्रिये दोहदि मातृरुद्धात् गर्भस्थिते यत्र महार्हतल्पात् ॥ दुर्व्यंतरीद्राक् प्रणनाशमोहराजाय पूत्कर्तुमिवाहितोत्थ ॥ ११ ॥ भव्यागिना यस्य रुचिप्रपचैरगानि चेतासि च रजितानि ॥ स वासुपूज्यो जगदेकपूज्य सपूज्यता निर्जितदुर्जयारि ॥ १२ ॥ क्षमाभर धर्तुमशिक्षिताकलजेन सेवा प्रतिपद्य यस्मात् ॥ धत्ते ततस्तं स किलादिकोल कांपिल्यजन्मा विमल स जीयात् ॥ १३ ॥ अनत जिन्नतुरनतसौख्यप्रदोऽस्तु दोस्तनिततवैरिवार ॥ यल्लाछन श्येनमपि प्रदृश्य विश्वस्य नश्यंत्यथ वर्तिकौघा ॥१४॥ पापाद्रिभि द्वज्रमुदीक्ष्य दीप्रं यल्लक्ष्मण भक्तिचिकीरुपेत ॥ तद्ध्वंशगकी मुहुराखुलोके शक्र स्वपाणि स धिनोतु धर्म ॥१५॥ अरातिरम्ये प्यनरातिरम्ये सन्नाभियोगेऽपि हृढाभियोगे ॥ चक्रे स्थिता यस्य सुख जयश्री स पातु व पचमचक्रवर्ती ॥ १६ ॥ छाग ध्वज यस्य तनौ विलोक्य तत्प्रेमतो हव्यभुजा ध्रुव य ॥ सर्वांगमालिंगिसुवर्णवर्णभा सुपूरदभात्स मुदेऽस्तु कुथु ॥१७॥ सुदर्शना

ज्ञात इति प्रसह्य भेदं व्यधाद्यस्तमरसः खवृत्तेः ॥ पितुः क्रमं पालयितुं किलासौ स्तान्नः कलासौष्टवकृद्भिनोरः ॥ १७ ॥ यस्य प्रिया नो विहितारिलोपामुद्रा नव द्यो न पपौ नदीनं ॥ निस्तारकात्मा नयमालयस्यो नव्यः श्रिये कुंभभवः स मल्लिः ॥ १९ ॥ यस्यांगरोचिःपटलं समंतात्प्रसृत्वरं भृंगकुलाभिरामं ॥ उच्चाटनध्यानमिवास साक्षाद्भावद्विषां नंदतु सुव्रतोऽसौ ॥ २० ॥ यल्लोचनस्पर्द्धिविधेर्विदित्वा स्वं सापराधं जगदेकनाथः ॥ यो लक्ष्मलक्ष्याच्छरणं श्रितो द्राक् नीलोत्पलेनास्तु नमः स भूत्यै ॥ २१ ॥ यच्चक्रयोगात्सुभगं विदन् स्वं महाशयोत्पन्नतया कृतज्ञः ॥ यं कंबुरंकद्धांकमिपात्सिषेवे तं नेमिमध्येमि यदुप्रकांडं ॥ २२ ॥ यद्देहदीप्तिं तुलितेंद्रनील प्रभां चिरं चारुनिभालयंतः ॥ नैमैव्यकोटिं घटयंति दृष्टेः शिष्टा अनिष्टं स भिनत्तु पार्श्वः ॥ २३ ॥ प्राच्यं विमोच्यास्पदमुद्भवात्प्राक् स्थानांतरे रोपितवान् हरिर्यं ॥ प्राचीकसत्सद्गुणशालिभूयं यस्याघमस्यान्नमतां स वीरः ॥ २४ ॥ जयंति गर्भागम जन्मदीक्षा ज्ञानापवर्गोत्सववासराणि ॥ जैनानि नाकायितभूतलानि त्रैलोक्य लोकप्रमदप्रदानि ॥२५॥ यदाप्लवान्नः शिरसाऽभिवंद्य सुमेरुरद्धाऽजनि गोत्रमुख्यः ॥ तीर्थाधिनाथाः प्रथयंतु सेवाहेवाकिनां ते कुपथप्रमाथं ॥ २६ ॥ कुवादिचक्राद्भिदुहांतराभ्र प्रयोगघूकालिरलं निरेतुं ॥ यस्मिंस्तपत्यस्ततमःसमूहे श्रीवीरसिद्धांतरविः स जीयात् ॥ २७ ॥ व्यामोहभूपालवरं विजित्य तस्मादुपात्तं नु सितातपत्रं ॥ यस्याः करे राजति पुंडरीकं सा भारती यच्छतु वांछितं वः ॥ २८ ॥ इति जिनप्रभसूरिभिरीडिता जिनवराश्चतुरुत्तरविंशतिः ॥ भरतवर्षभवा भुवनेश्वराः स्वरससिद्धिसुखं वितरंतु नः ॥ २९ ॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ श्री वीतरागायनम ॥

॥ अथ श्री आस्तिक तथा नास्तिकनो सवाद प्रारंभ ॥

१ नास्तिक —आ जगत अने तेमांना पदार्थो सर्व शून्यछे, एने ससलाना शीगडा, आकाशना फूल तथा वाजणीना पुत्र वगैरे जे पदार्थोनी त्रणे कालमा सिद्धता थती नथी, तेवा पदार्थोनी उपमा देवाय कदाच तमे कहेशो के, जेम शशशृंगादिक देखाता नथी, तेम ए पदार्थो पण देखाया न जोइये, तेम तो नथी जगततो प्रत्यक्ष देखायछे, तेने ए उपमा केम देवाय, प्रत्यक्ष प्रमाणवडे सिद्ध पदार्थने शून्य केम कहेवाय? एनो उत्तर ए के, जे ए पदार्थोने देखे छे, ते भ्रमिष्ट छे जे पुरुषने भ्रम थयो होय, तेने एकनुं बीजुं भाशे, तेम तमने पण थयु कहेवाशे तमे ए दृष्टातोनो मर्म समजी शकता नथी, त्यारे तमारा ध्यानमा सहेज आवे एवो बीजो दृष्टात कहुं छुं ते साभलो, आ जगत स्वप्नसमान छे जेम स्वप्न असत्य छे, तेम जगत पण असत्य छे अने स्वप्नना पदार्थोनी पठे आ जगतना पदार्थो पण असत्य छे. जे देखाय छे ते स्वप्ननी पठे भ्रम मात्र छे, एमा सशय नथी

आस्तिक —अरे नास्तिक, हुं तने एटलुंज पुछुं छु के तारा सिद्धातनो कहेनार जीव छे के अजीव छे, एनो उत्तर ताराथी शु देवाशे? जीव अथवा अजीव कह्याविना चालशेज नही जो तु कहीश के ते भ्रमरूप छे, तो ते एक रीते व्यवहार दृष्टीए योग्य कहेवाशे खरुं, केम के जे पोते भ्रमरूप होय तेने वधुं भ्रमरूप भाशे जो एम होय तो अमारो काई वाधो नथी, पण जो तारो सिद्धाती भ्रमरूप ठरशे नही, तो जेवो ठरशे तेवा बीजा पदार्थो पण कबूल करवा पडशे, अने कबूल कर्याविना चालनार नथी, केम के, बीजु वधुं भ्रमरूप होय अने तारो सिद्धातीज मात्र अभ्रम होय एम सभवे नही त्यारे एक सिद्धाती ने एक सिद्धात ए वे पदार्थ मानवा जोइये छे ए वे पदार्थ जो तु माने, तो जीव अने अजीवपणुं सिद्ध थाय छे के नही! एज रीते जगतमा पण घटपटादिक जे वस्तु छे ते वस्तुज छे अवस्तु नथी तेमज घट ते घट छे, ने पट ते पट छे घट पट नथी, ने पट घट नथी एक पदार्थमा बीजा पदार्थनो अभाव होय छे, पण घट घटपणे भावरूपे छे, ने पट पटपणे भावरूपे छे इत्यादिक सर्व पदार्थोविषे जाणी लेवु जे भावरूप होय ते सत्यज होय छे ए रीतें आ जगत भावरूप होवाथी सत्य छे केम के सर्व वस्तु पोतपोताना रु

पें अनादि सिद्ध छे, अने जेनो अंत नथी तेने शशलाना शिंगडां प्रमुखनी उपमा देवी ए केवी मूर्खता छे वारु ! माटे ए बोलवुं बालकना जेवुं कहेवाय.

जो स्वप्नजेवुं जगत मानशो, तो तमारा पोताने महोडे पोते बंधाशो. स्वप्न जे छे ते स्वप्नपणे नावरूप छे अने जाग्रतपणे अनावरूप छे; तेम जागृत जे छे ते जागृतपणे नावरूप छे अने स्वप्नपणे अनावरूपछे; पण केवल अनावरूपें कोई पदार्थ कहेवाय नही. ज्यारे स्वप्ननावरूप छे त्यारे तेना जेवो जे जगत तमे कहोछो ते केम अनावरूप कहेवाय, अने स्वप्नने जो अनावरूप कहेशो तो देखाय छे केम ? जे अनावरूप ते तो देखाय नही; अने स्वप्न तो रात्रे दीठुं ते रात्रे दीठुं कहेवायछे. अने दिवसें दीठुं ते दीवसें दीठुं कहेवायछे; माटे जे वखते स्वप्न देखाय छे ते वखते ते देखावारूपे अने संप्राप्तरूपें सत्य छे. अने जागृत असत्य छे. तेमज ज्यारे जागृत देखाय छे त्यारे स्वप्न असत्यछे एम नावानावरूप पदार्थ होय ते साद्यंत होय छे. वली विशेष एवुं समजवुं जोइये छे के, यद्यपि स्वप्न तो साद्यंत छे पण स्वप्नो जे विकल्प छे ते आद्यंतरहित शाश्वत छे. तेमांथी कोईक समये स्वप्न उद्भव थाय छे. माटे स्वप्ननुं देखवुं कोई काले छे तेमज यद्यपि जगतमांना पदार्थोने पलटवापणे उत्पाद व्ययनी अपेक्षायें पर्यायपणे साद्यंत छे. तथापि द्रव्यरूपे सदा शाश्वत ध्रुव छे. केमके पर्यायपणे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव अने पुद्गल ए छए द्रव्य शाश्वत छे; जो पण छेला त्रण द्रव्यना पर्याय अशाश्वत कहेवाय छे, तो पण स्वरूपें द्रव्यपर्याय सदा शाश्वतज छे; तेने असत्य केम कहेवाय ?

अरे भ्रमिष्ठ, तमे जीवने मानो छो के नही ? जो ना कहेशो तो आ बोले छे ते कोण छे ? अने जगत असत्य कोण ठेरावे छे ? जे पोतेज असत्य होय ते बीजाने शुं सत्यासत्य कहेवानोछे ? जे पोतेसत्य होय ते बीजाने सत्य अथवा असत्य कहेवाने समर्थ थाय. माटे जीव पदार्थ नथीज एम जो कहेशो तो तमे पोतेज कांईक पदार्थ छो ए वात तमाराथी ना कहेवाशे नही. अने जगतने असत्य मानो छो तेवारे तमें पोते तो सत्य ठरशोज; केमके जे पोताथी अतिरिक्त वस्तुने असत्य माने ते पोते तेना जेवो असत्य होतो नथी, किंतु तेनाकरतां विपरीत स्वभाववालो सत्य होयछे. तेनो आ प्रत्यक्ष दाखलो छे के, जगतने तमे स्वप्नजेवुं गणोछो, त्यारे तमे पोते जागृत छो के नही ? केमके तमे पोते जागृत अवस्थामां न हो तो स्वप्नने स्वप्न कहो नही स्वप्नावस्थानो तमे पोते अनुभव करेलो छे, त्यारेज तेनाविषे कथन करी शको छो, ते

मज जगतविषे पण तमे अनुनव करीने कथन करो गो, तेथकी जगतथी जुदा अनुनव कर्त्ता गो माटे जीव गो

अने जो जीव न होय तो गतागतनाग, नाव, नापा, कार्य तथा कारण इत्यादिक विषयोनो अनुनव करवो, पाच इंद्रिओनो निग्रह करवो, त्रणयोगे शरीरनी चालना करवी इत्यादिक चेष्टा करनारो कोण ठे? ए चेष्टा चेतन्य शक्तिथी थाय ठे एथी चेतना लक्षणवान जीव जाणवो ज्यारे शरीरमाथी चेतना नीकली जाय ठे त्यारे चेष्टा थती दीठामा आवती नथी, माटे ते अजीव कहिये एवी रीते जीव अने अजीव ए बन्ने पदार्थ ठे एम सिद्ध थाय ठे

सर्व वस्तुना बे प्रकार थाय ठे, एक पक्षने बीजो प्रतिपक्ष जीव पक्षी ठे अने अजीव प्रतिपक्षी ठे अथवा अजीव पक्षी ठे ने जीव प्रतिपक्षी ठे अर्थात् जीव तथा अजीव ए बे पदार्थो सदा शाश्वत अविनाशी ठे, एवु केवलीनुं वचन ठे, ते अवश्य मान्य करवु जोये दोहा, खरी शीख ए मानजो, मनमा राखी नाव, सद्दहाण जिन वचननुं, करो धरी चित चाव. १

२ नास्तिक – जीव अने अजीव नही मननारा मूर्ख ठे केमके, जीव तो पांच महानूतोना समेलनथी उत्पन्न थाय ठे ज्यारे पाच माहानूतोनुं प्रथककरण एटले जुडुंथवापणुं थाय ठे त्यारे जीवनो नाश थाय ठे ए वात साची ठे

आस्तिक – पाच महानूतोथी तो तमारा मतप्रमाणे पाच जुदाजुदा पदार्थोनी उत्पत्ति थाय ठे ते आप्रमाणे – पृथ्वीथी अस्थि, जलथकी रुधिर, अग्निथकी जठराग्नि, वायुथकी श्वासोश्वास अने आकाशथकी शून्यता थाय ठे ए बधाथी जीव तो जुदो ठे, ते शाथकी उत्पन्न थायठे वारु? चैतन्यने उत्पन्न करवानी शक्ति कया नूतमा ठे? चैतन्य कयानूतना अंशथकी उत्पन्न थयु? ते कहो पाचे महानूत पोते जड ठे, ते चैतन्यने केम करी शकशे? माटे ए पाच महानूतनु समेलन जीवनी उत्पत्ति करे ठे एम तमे कह्यु ठे ते पण संनवे नही, केमके, समेलन कोई एवो पदार्थ नथी के जेथी कोई पदार्थ उत्पन्न थई शके. माटे जीवनो उत्पन्न करनारो कोई नथी, पण ए तो अनादि पच महानूतथकी जुदोज ठे दोहा, जिनवचनामृत पान करि, पामो अमर स्वरुप, जीव अनादी अनुनवो, ए ठे शीख अनूप २

३ नास्तिक – सर्व जाणे ठे के जीव ते शाश्वत पदार्थ ठे, तेनी उत्पत्ति केम संनवे? ज्यारे उत्पत्ति कहेशो त्यारे नाश पण थशे अने चेतन तो उत्पत्ति त

था नाश रहित छे; तो चेतनलक्षणवंत जीवने नूतथी उपनो कहिये ते युक्त नथी केमके पांच महानूतना अंसथी तो मात्र शरीरनी उत्पत्ति थाय छे.

आस्तिकः— ए वात पण कल्पित छे. यद्यपि जीवविषे तो तारा सारा विचार ज णाय छे, तथापि ज्हांगुधी जिनोक्त वचनजन्य ज्ञान नथी थयुं, त्हांगुधी सर्व मिथ्या छे. एक जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शुं थयुं! कोई अजाणना मुखथकी नवकार प्रमुख जेवा तादृश्य अक्षरोनो अचानक उच्चार थाय तेथी शुं तेने तेना फलनी प्राप्ति थाय छे! तेम तें जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शुं सम्यक्त ज्ञानवान कहेवाशे! कदी नही. अने शरीर पंच महानूतोथकी उत्पन्न थाय छे; एवुं जे तें कह्युं ते असत्य छे. शरीरनी उत्पत्ति तो पुद्गलथकी थाय छे. बीजा संवादमां अस्थ्यादिकनी उत्पत्ति महानूतथी कही छे ते पण मिथ्याछे; केमके, अस्थि जे छे ते पृथ्वीनो अंश नथी, पण पृथ्वीना जेवा कठण छे; रुधीर छे ते जलनो अंस नथी, पण जलनी पठे प्रवाही बिंदुधारा थाय छे; जठराग्नि जे छे ते अग्निनो अंश नथी, पण अग्नीनीपठे उष्ण छे, शाश्वोश्वास जे छे ते वायुनो अंश नथी, पण वायुनी पठे पुरुषनो विकार छे; आकाश ते आकाश नाजन छे. तेम छतां शरीर पंचमहानूतोथकी उत्पन्न थाय छे एम कहेशो तो ए पंचमहानूतोमांना पृथ्वी, अप, तेज अने वायु एनां शरीर शाथकी उत्पन्न थाय छे? ए पृथ्व्यादिकपण जीवरूप छे; अने तेओ शरीर सहित छे. जेम काची माटी सजीवन छे माटेज तेमां वनस्पति उगे छे; अने जे क्षार नूमि अजीव छे तेमां वनस्पति उत्पन्न थती नथी. तेमज ए पंच महानूत ते सर्व सजीव तथा निर्जीव ए बन्ने रूपें छे, माटे जो जगत उपजवानां कारण ए पांच महानूतने कहेशो तो पांचमहानूत शाथकी पेदा थया कहेशो? माटे एनाथी शरीर अथवा जगतनी उत्पत्ति संनवे नही. जीव अने जड ए बन्ने पदार्थोथी जगतनी प्रवर्त्ति छे एम जाणवुं. दोहा, आगम अगम अगाधकृत, ज्ञान लह्यो नर जेह; बेशि वचन जिनकल्पतरु, लहे चाह फल तेह. ३

४ नास्तिकः-- जीव तो ईश्वरना अंशथकी उत्पन्न थायछे एम जणाय छे.

आस्तिकः-- जो ईश्वरना अंशथकी जीव थाय छे तो ईश्वर पोते अखंड रूप छे ते घटघटप्रते खंडखंड नावने पामशे. ईश्वर निर्लेप छे तो कर्मलेप सहित केमथाय छे? जन्मरोग जरारोग अने मरणरोग रहित छे ते जन्मादिक सहित केमथाय छे? निरावरण छे ते सावरण केम थाय छे? एहवो मूढतो जगतमां कोई नथी जे प्रधानपद मूकी अधमपद आदरे! माटे परमेश्वरने एवी बुद्धि केम थई जे परमेश्वरपद मूकी

ने जगत वाशी जीव थयो केमके सर्वे मतमतांतर वाला परमपदनी वाछनाये पो तपोताना मार्गनी क्रिया करे छे पोताना आत्माने निर्लेपपणुं चाहे छे तो स्वमेव ईश्वरपद जन्म जरा मरण रहितपणुं पामीने वली जन्ममरण सहित उपाधिपणुं केमआदरे छे? माटे ए तमारा वचन विरुद्ध जणाय छे

५ नास्तिक -- काई नवी युक्ति कहाडीने बोले छे आ बीजाओनी मति तो मारी गई छे माटे गमे तेम बके छे जीवने कोईशाश्वतकहे छे, ने कोई अशाश्वत कहे छे वगेरे जेना मनमा जेम आवे छे ते तेम महोडेथी बोले छे पण मर्म कोई जाणतो नथी आपणे प्रत्यक्ष अनुभव करेछु छे ने आखे देखीए छैए के जीव पदार्थ उत्प त्तिवान छे, ने कोईक समये तेनो अत पण थाय छे स्त्रीपुरुषनो संयोग थयाथी ते ओना रज तथा वीर्यथी माताना उदरनेविषे शरीररूप एक पिण्ड बंधाय छे, ने पछी नियमित समये तेमा चेतना शक्ति आवे छे, तेने जीव कहे छे वली शरीर काई रो गादिकने वश मरण पामे छे, त्यारे जीव पण तेनी शाथे नाश थाय छे, ए प्रत्यक्ष वात छे. हाथना काकणने आरीशु शासारु जोये माटे जीव पदार्थ कोईकालें न वो पेदा थाय छे, तेथीजीवनी आदि छे एम जणाय छे

आस्तिक -- नाई, तु तो वली बधाथी डाह्यो देखाय छे! चेतननी उत्पत्ति तथा नाश संभवे नही कर्मना वशे जीवने जन्मातर थाय छे, तेथी नवु शरीर धारण करे छे, पण जीव नवु थतु नथी वली शरीरनो नाश थयाथी जीवनो नाश पण थतो नथी जीव तो बीजा शरीरने धारण करे छे तेम छता जो वधारे आग्रह करी श, तो आ मारा प्रश्ननो उत्तर आप के, जीव कई वस्तु पलटीने तेमाथी उत्पन्न थाय छे? अथवा कई वस्तुनो परिणाम छे? केमके कारण विना कार्यनी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम छे, एटलु समजाव्या छता पण जो नही मानीश, तो तु पोते जीव नथी पण जड छो एवु ठरशे. त्यारे जडनी साथे कोण माथाकूट करे!

६ नास्तिक -- कदाच जड वस्तुनो परिणाम जीव अने जीवनो परिणाम जड थाय छे, एम कहीए तो काई दोष आवे के? अघटितघटनापटीयशी माया छे, ते मा बधु संभवे छे माटे अमे तो एम मानीए छैए के, जड वस्तु बदलीने तेथी जी वनी उत्पत्ति थाय छे

आस्तिक -- नाई, ए तमारुं बोलवुं केवल अविचारतु छे, एम तो कोई अज्ञानी प ण माननार नथी जे जड वस्तुथी जीवनी उत्पत्ति थाय, एक स्वनाववाला पदार्थ थी बीजा स्वनाववाला पदार्थोनी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम छे जेम के, मा

टीना पिंमथकी पट थाय नही अने तंतुना पुंजथकी घट थाय नही. तेम अजीवथी जीव उत्पन्न थाय नही अने जीवथी अजीव उत्पन्न थाय नही. जे अचेतन होय तेने जड कहे छे अने जे चेतन होय तेने जीव कहे छे. ए बन्ने पदार्थ परस्पर स्वभावे अमिलित छे, तेम छतां जड वस्तुथकी जीवनी उत्पत्ति कहेवी, एना जेवी बीजी मूर्खता कई छे! शुं कोईक एवो मसालो हशे के जो ते जड वस्तुमां पडे तो तेमांथी चेतन पेदा थाय? एवी कांई चीज तमे शोधी कहाडी होय तो अमने देखमावो नी! माटे ए अज्ञानरूप अंधारुं हृदयमांथी कहाडी नाखो, ने शुद्ध धर्मने अंगीकार करो. दोहा शुद्ध धर्म जन जे लहे, ते पामे पद मोक्ष;प्रगट वस्तुने मूकिने, कां जन भ्रमे परोक्ष ४

७ नास्तिकः— स्वछंदीना जेवी मुखमुद्रा करीने बोलवा लाग्यो के, जीवने कर्म लागे छे के नही? ए विषे विचार करवो जोइये. अमारा मतप्रमाणे जीवने कर्म लागतां नथी.

आस्तिकः— तमे तो वली बधाना शिरताज थया जणाओ छो! पण कर्मविना कांई बनतुंज नथी; एम मान्याविना चालशे नही. कर्मने तो सर्व अंगीकार करे छे, एमां कोई वांधो कहाडे एवुं नथी. जो कर्म न होय तो पापपुण्यनुं फल थवुं न जोइये; ते तो प्रत्यक्ष दीठामां आवे छे; जेणे पाप कर्युं छे ते दुःखी छे, ने जेणे पुण्य कर्युं छे ते सुखी छे; वली जो एम होय तो, दान, ध्यान, स्नान तथा पूजा प्रमुख जे सत्कर्म छे, ते सर्व मतवालाओ शासारु करे छे? तमारा कह्याप्रमाणे तेनुं फल तो कांई थनार नथी; पण ते शुभ कर्म जाणीने लोको आदरे छे. ज्यारे कर्म नथी त्यारे जन्म धारण करवानुं शुं प्रयोजन छे? माटे जो जन्ममरण तथा सुखदुःख छे, तो कर्म पण होवां जोइये. कर्म छे ते जीवने रजरूप छे. रागादिकथी बंधाय छे, ने भोगव्यापछी छुटे छे. ज्हांलगि कर्म छे त्हांलगि संसारी जीव कहेवाय छे, कर्मोनो क्षय थवाथी मुक्त थयो कहेवाय छे. माटे तमारे निश्चय मानवुं जोइये छे के जीवने अवश्य कर्म लागे छे. दोहा, कर्मथकी आ जीवने, सुख दुःख सघलां थाय; कृत्य शुभाशुभ जेहथी, शफल थया कहेवाय.

८ नास्तिकः--तमे कहो छो के, जीव भवांतर थकी आवीने आहिं उपजे छे. त्यारे एक भवनी वात बीजा भवमां केम करतो नथी? जो भवांतर होय तो तेनी स्मृति जरूर थवी जोइये; ते तो कोईने पण थती नथी. त्यारे भवांतर छे एम शा उपरथी समजाय?

आस्तिकः--आगला भवनी स्मृति थती नथी ते उपरथी भवांतरनो अभाव छे ए

म जाणवु नही आगला नवनी वात तो रही, पण आ नवमाज मद्यादिक पदा र्थना योगे, गया दिवसनी वात पूछवाथी माणस बराबर कही शकतो नथी जु ओ के, कोई मनुष्य ताडनादिकना योगे मूर्छावान थयो होय, कोई पुरुषे सुरापान कर्युं होय, अथवा निद्रावश थयो होय, त्यारे गया दिवसनी स्मृति रहेती नथी, तेनु कारण मद्यादिक पदार्थोनु आवरण छे तेम जीवने ज्ञानावरणी कर्मना उदयथी पूर्व नवना वातनी स्मृति थती नथी वली जेम आ नवमाज माताना उ दरमा नाना प्रकारना दुःख सहन करेला होय, ते वात जन्म्यापछी काई कही शक तो नथी, तो नवातरनी वात केम कही शके ? माटे नवातरनी वात तो विशेष ज्ञा नीविना बीजो कोई जाणी शकेज नही, एम समजवु दोहा, ज्ञानावरणी कर्मथी न वविस्मृति थइ जाय, विशेष ज्ञानी कहि शके, पूर्व जन्म महिमाय ६

९ नास्तिक —अनिमानयुक्त मुद्रा करीने बोले छे-तमे एम मानो छो, के जीवने कर्मनो लेप लागे छे ने वली एम पण कहो छो के, जीव वास्तविक स्वरूपे शुद्ध छे त्यारे जे शुद्ध होय तेने लेप केम लागे? माटे जीव शुद्धज छे, तेने कोई कर्मनो लेप लागतो नथी एम मानवु जोइये

आस्तिक —टुंकामाज समाधान करे छे के, यद्यपि जीवनु वास्तविक स्वरुप शुद्ध छे, तथापि शुनाशुन कर्मने योगे तेने लेप लागे छे, तेथीज जीव बंध कहेवाय छे अने जेने कर्मनो लेप नथी, ते मुक्त कहेवाय छे मुक्ति तो सिद्धता पाम्याविना सन वेनही अने जहासुधी मुक्तिनो अनाव छे, तहासुधी बंधनी कल्पना अवश्य कर वी जोइये ते बंध जीवने अनादि कालथी चाल्यो आवे छे जेम धानने तूस ला गेलाज होय छे तेम जीवने कर्म अने कर्मजन्य शरीर लागेलुंज होय छे जेम धा नने तूस लागवानुं कारण छोतरा होय छे तेम जीवने कर्मबंध लागवानु का रण मिथ्यात्व तथा रागद्वेषादिक होय छे जेम धान्यमाथी तूस तथा तत्सबधी छो तरारूप बंध हेतु पदार्थना अनावथी शुद्ध कण देखाय छे, तेम जीवमाथी मि थ्यात्व तथा राग द्वेषादिक कर्मबंध हेतुनो अनाव थयाथी शुद्ध निर्मल थाय छे जेम अनाजनो शुद्ध थयलु दाणु उगे नही तेम जीवपण शुद्ध निर्मल थया थी जन्ममरण पामे नही दोहा, कर्म लेपना योगथी, बध जीवने होय, कर्म खपे मुक्ती लहे, जन्म मरण नहि कोय. ७

१० नास्तिक —अमा विचारमा पडेला जेवी मुद्राथी बोलवा लागे छे कर्म पोते तो जड पदार्थ छे तेओनो जीवनी साथे स्वतंत्र सबध सनवे नही कोई पण प्रेरक होवो

जोये. माटे ईश्वरेछाथी जीवने कर्म बंध थाय छे; अने तेज प्रेरक छे एम जाणवुं.

आस्तिकः– जगारेक हास्य करीने बोले छे. ईश्वरे पोताना अंशरूप जीवने उत्पन्न कर्या छे तेथी जीव ईश्वरनो अंश कहेवाय, ए उपरथी जीव तथा ईश्वरनो अंशांशीभाव संबंध तमारा कहेवा प्रमाणे ठरे छे. जो ईश्वर अंश छे एम मानीए,तो ईश्वरना जेवो जीव होवो जोये. केमके, अंशांअंशीमां भेद होतो नथी. तेथी ईश्वर नी पते जीव पण निर्मळ छे, एम मानवुं जोये. त्यारे एवा निर्मळस्वरूपी जीवने कर्म लगाडीने मळसहित करवानुं कारण शुं हतु! आपणे कोई शुद्ध वस्तु वाप रवाने अर्थे ज्यारे लावीए छेये, त्यारे जहांसुधी बने तहांसुधी तेने मळीन करवा देता नथी; अने स्वछ राखवानो घणो प्रयत्न कर्या करीये छे. त्यारे पोताना अंश रूप जीवने जाणी जोईने मेळ लगाडवुं ए ईश्वरनेविषे संभवे नही. एम तो कोई साधारण मूर्ख मनुष्य पण करे नही, त्यारे ईश्वर ते तेम करे! अने जे पोता ना अंगनो तिरस्कार अथवा नाश करे ते आत्मघाती कहेवाय. तेम ईश्वरपण आत्मघाती कहेवाशे. कदाच तमे एम कहेशो के, ईश्वर पोते पण कर्मकळंकसहित छे त्यारे जे पोते कळंकसहित होय, ते बीजानो कळंक शुं मटाडी शकवानो हतो! अने ते ईश्वर पण शानो! माटे गमे तेवी मनकल्पना करीने निर्दोषी ईश्वरने दोष लागु करवो ए केटली मूर्खता छे! माटे ईश्वरनी इछाथी कांई पण थतुं नथी. जे थाय छे ते कर्मथी थाय छे एम जाणवुं. दोहा, कर्मबंध आ जीवने, ईश्वर इछारूप; कहे एम ते मूर्ख छे, ईश अक्रीय अनूप. ८

११ नास्तिकः—आ जगतनी जे अद्भुत रचना देखाय छे, तेनो कर्त्ता कोई पण होवो जोये. केमके, एवी कृति स्वाभाविक थई शके नही. तेम कर्मादिक जड पदार्थोथी पण जगतनी उत्पत्ति संभवे नही. माटे जे जगतने उत्पन्न करे छे, तेनेज ईश्वर कहिये; अने एवी लोकवदंता पण छे, के जगत सर्व ईश्वर कृत्य छे.

अस्तिकः-- जगतनो कर्त्ता ईश्वर होय, तो सर्व प्राणीमात्रनुं ईश्वर कारण थ युं. ने सर्व पदार्थो ईश्वरना कार्य थया. पिता जेम पुत्रनी उत्पत्ति करे छे तेम ई श्वर सर्व प्राणी मात्रनी उत्पत्ति करे छे. त्यारे ईश्वर पितारूप अने सर्व पदार्थो पुत्ररूप मानवा जोये. पुत्रनी उपर पितानो प्यार होय ए स्वाभाविक सिद्ध छे. तेम ईश्वर नो पण सर्वनी उपर प्यार होवो जोये. जो एम होय तो सर्व प्राणीमात्र सुखी होवा जोये. तेम तो दीठामां आवतुं नथी. कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई पापी, कोई पुण्यवान, कोई नरकगामी, तथा कोई स्वर्गगामी वगैरे सर्व जीवो

नी वर्त्तणुक जुदी जुदी दीठामा आवे छे. एम केम कीधुं छे ? वली जगतना जी वोने प्रवर्त्तावनारो ईश्वर छे, एम पण तमारा कह्या उपरथीज सिद्ध थाय छे. त्यारे हिंदुए गायनी पूजा करवी, अने म्लेच्छे तेनो वध करवो, ए बुद्धि पण ईश्वरे आ पी कहेवाशे जो एवी बुद्धि देनारो ईश्वर मानशो नही, तो बीजो कोई मानवो जोइशे केमके तमारा मत प्रमाणे प्रेरणा करनारो कोई जुदोज होय छे, अने जे प्रेरणा करे छे ते ईश्वर छे त्यारे ते बीजो प्रेरणा करनारो ईश्वर मानवो पडशे ईवी रीते ईश्वरनो ईश्वर तेनो ईश्वर इत्यादिक मानशो तो अनवस्था दोष प्राप्त थ शे वली पोते पोताने दुःखी कोई पण करतो नथी सर्व पोताने सुखनी चाहना करे छे तेमज पोताना संबंधीओविषे पण सुखनी चाहना करे छे तमारा केहेवा प्रमाणे तो जे जीव नरके जाय छे तेपण ईश्वरनो अंश, अने जे स्वर्गे जायछे ते पण ईश्वर नोज अंश छे एटले सुखी तथा दुःखी थाय ते सर्व ईश्वर पोतेज छे एम ठर्युं ए प्रमाणे ईश्वर पोतेज संसारमा परिभ्रमण करेछे ते पोताना सेवकना जन्म मरणादिक दुःख केम टाली शके ! अने जीवोने नरकथी अथवा बीजी कुगतिथी केम बचावी शके ? इत्यादिक विचार करता जगतनो कर्त्ता ईश्वर नथी, किंतु स्वाभाविक सिद्धछे. दोहा, ज ग कर्त्ता ईश्वर कहे, ते विद्वान न होय, ईश्वरने कर्तव्यनहि, स्वभाव सिद्धज जोय ए

१४ नास्तिक — जगतनी उत्पत्तिकर्त्ता भले ईश्वर न होय, एमा हुं कशो वांधो लेतो नथी पण ईश्वर सर्वव्यापक छे के नही ?

आस्तिक — जो ईश्वर सर्वव्यापक होय, तो जीव शिवाय बीजो कोई पदार्थ ज होवो न जोये केमके, ईश्वरतो चेतनवंत छे, ते सर्वमा व्यापक होय, तो चेतना विना कोई जगा खाली न जोइये, के जे ठेकाणे बीजो पदार्थ रही शके, अने जगतमा तो जीव अजीव पदार्थो जुदा जुदा दीठामा आवे छे एथी स्पष्ट सिद्ध थाय छे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी. वली ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ए चार वर्ण अनुक्रमे श्रेष्ठता तथा कनिष्टता केम पाम्या छे ! जेम के, ब्राह्मण सर्वथी श्रेष्ट, तेनाथी क्षत्रिय कनिष्ट, क्षत्रियथी वैश्य, अने वैश्यथी शूद्र कनिष्ट छे, अने सर्वथी कनिष्ट चमालादिक जाति छे, तेओमां श्रेष्ट कनिष्टता न थवी जोइये के मके, ईश्वर तो सर्वमां एक अने समान छे, तेमा उत्तम मध्यमता प्रमुख संभवे नही, अने उत्तम मध्यम तो प्रत्यक्ष दीठामा आवे छे वली बीजा पण उदाहर ण अनेक छे, जेम के, कोई पुरुष शुभ कृत्य करे छे, ने कोई पुरुष अशुभ कृत्य क रे छे,एम न थवु जोइये ईश्वर तो बधामा व्यापक छे, तेथी शुभाशुभ कृत्य शाना

रु करे छे ? ए उपरथी एवो निश्चय थाय छे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी. दोहा, व्यापक ईश्वर जे कहे, तेह न जाणे मर्म; नर्मे नूल्या सर्व मत, विना एक जिनधर्म. १०

१३ नास्तिकः— ईश्वर सर्व व्यापक हो के न हो, तेनी साथे अमारे जरूर नथी; पण आ जगतनो अधिपति ईश्वर छे; अने जगतरूप तेनुं ऐश्वर्य छे; तेथीज ईश्वरताने पाम्यो छे. जे ऐश्वर्यवाळो होय तेने ईश्वर कहिये.

आस्तिकः— जगतनुं आधिपत्य लेवानुं ईश्वरने शुं कारण हतुं! अने जगतरूप ऐश्वर्य पण तेने शासारु जोइतुं हतुं! शुं जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ते ऐश्वर्यने पाम्यो न हतो! ऐश्वर्यविना ईश्वरता संजवे नही. ए उपरथी जे जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे अनीश्वर हतो, ते उत्पत्ति करीने ईश्वरताने पाम्यो छे; एवो तमारो आशय जणाय छे नही वारु! पण ए बधुं खोटुं छे. ईश्वरनेविषे एवी कल्पना करवीज नही जोये. जुओ के, तमारा कहेवा प्रमाणेज जेम प्रजानी अपेक्षाये राजा कहेवाय छे, अथवा धननी अपेक्षाये धनाढ्य कहेवाय छे; तेम जगतनी अपेक्षाये ईश्वर कहेवाय छे. एटले जेवारे जगतने उपजावे तेवारे जगतनुं ईश्वरपणुं कहिये; एथी जगतनी पूर्वे ईश्वर न हतो एम थयुं; अने जेवारे जगतनो प्रलय थाय त्यारे ईश्वरनो पण अजाव थई जवो जोये. जो ए वात कबूल करशो तो जे कोई काळमां होय ने कोई काळमां न होय ते क्षणिक कहेवाशे. जो क्षणिक मानशो तो बीजा घणा दोष प्राप्त थशे; माटे ईश्वरने जगतनो एवी रीते अधिपति कहेवो ते योग्य नथी. दोहा, अधिपति जगनो जे कहे, ईश्वरने मतवादि ; ते एकांत कनिष्ट छे, उत्तम अनेक वादि. ११

१४ नास्तिकः— आटला संवाद थया, तेओमां ईश्वरनुं यथार्थ कारणपणुं कोइए कह्युं नथी. जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ईश्वरने एवो संकल्प थयो के, मारुं सामर्थ्य प्रगट करुं; ए वात वेदमां कही छे. ते आवी रीतेः- 'एकोहं बहुष्यामि' एटले एक हुं बहु रूपे थाउंः एवा कारणथी जगतनी उत्पत्ति करी छे; तेथी ईश्वरने कारण कह्यो छे.

आस्तिकः-- पोतानुं सामर्थ्य प्रगट करवानी इछा तो तेने थाय के, जेनेविषे अज्ञान होय. ईश्वरतो सर्वज्ञ छे, ते शुं पोतानुं सामर्थ्य जाणतो नहोतो! मारामां केटलुं सामर्थ्य छे, एवो जेने संशय होय, ते ईश्वर शानो! साधारण मनुष्य प्राणी पण पोतानुं सामर्थ्य जाणी शके छे, तो ईश्वर केम न जाणी शके!

माटे एम कहेवु ते मूर्खता छे दोहा, निज समर्थने जाणवा, कर्युं ईश जग एह, कारण वादी जे कहे, शतमूरख छे तेह १२

१५ नास्तिक -- ईश्वरे पोतानुं सामर्थ्य बतावबा सारु जगतनी उत्पत्ति करी छे, एम जाणवु जोइये

आस्तिक -- कोने बताववा सारु जगतनी उत्पत्ति करी छे ? जीव अने जड प पार्थो तो ईश्वरेज उत्पन्न कर्या छे, एम तमे कहो छो त्यारे बीजो कोण जगतनी पूर्वे हतो के, जेने देखाडवा सारु ईश्वरे आ जगतनी उत्पत्ति करी छे ! माटे ए वात पण असत्य छे दोहा, बीजाने देखाडवा, पोतानु सामर्थ्य, जग उपजा व्यु ईश्वरे, एम कहे ते व्यर्थ १३

१६ नास्तिक --जेम माणस सवारमा उठी वस्त्रादिक पहेरीने आरीसामा पोतानु स्वरूप देखे छे, ते सारु देखाय तो आनदित थाय छे, तेम ईश्वर पण पोते पोतानुं स्वरूप जोवासारु आ जगतरूप शृंगार करी पोतानुं रूप विस्तारीने देखे छे, एम जाणवु जोइये

आस्तिक --माणस पोतानुं रूप आरीसामा जुवे छे, तेनुं कारण ए के, मारु रूप सारु देखाशे नही, तो लोको हाशी करशे, अथवा कोई खोड काहाडशे, तेम ईश्वरे बीजा कोना नयथी पोताना रूपनो विस्तार कर्यो छे ? ईश्वरना जेवो बीजो ईश्वर कोई छे नही, त्यारे जोनारो कोण ! माटे ए वात पण जुठी छे दोहा, पोते जोवा आपने, रच्यो जगत आ ईश, कोना नयथी ते कहो, मतवादी तजि रीश १४

१७ नास्तिक --' एक एवहि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थित , एकधा बहुधा चेव, दृश्यते जल चन्द्रवत्' एवी रीते आत्मा एक छता सर्व प्राणीमात्रमा जुदो जुदो दीठामा आवे छे, जेम चन्द्रमा एक छता अनेक जलस्थानकोमा प्रतिबिंब रूपे जुदो जुदो दीठामा आवे छे, तेम ईश्वर एकज छे पण घट घटमा जुदो जुदो देखाय छे एटले ईश्वर बिंब छे ने सर्व जीव प्रतिबिंब छे, एम जाणवु

आस्तिक -- जेम एक चन्द्रमाना अनेक प्रतिबिंबो होय छे, ते जेवो चन्द्रमा होय तेवा देखाय छे तथा काचना भुवनमा एक मनुष्य छता अनेक प्रतिबिंब रूपे दीठामा आवे छे तेमा मूल आकृतिथी जुदी आकृति देखाती नथी जेमके, बीजथी ते पूर्णिमाशुधी गमे तेवी चन्द्रमानी आकृति होय, तेवो प्रतिबिंब देखाय छे, तथा काच भुवनमा मनुष्यनी जेवी आकृति होय तेवीज तादृश्य देखाय छे काणो होय तो काणो देखाय, आंधलो होय तो आंधलो देखाय, वगेरे

बिंबना जेवोज प्रतिबिंब देखाय छे. तेम ईश्वर सर्व प्राणीओमां सरखो देखातो नथी. कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई पापी, कोई पुण्यवान वगेरे अनेक प्रकारे देखाय छे. त्यारे ईश्वरना प्रतिबिंब केम संभवे? जे प्रतिबिंब होय, ते बिंबना जेवोज होय छे? तेम तो ए नथी. वली जेम चंद्रमानो उदय थतां प्रतिबिंब पण तेज वखते उत्पन्न थाय छे. अने चंद्रमां अस्त थयाथी प्रतिबिंब पण मटी जाय छे. तेम ईश्वर अने जीवोनेविषे थतुं नथी. ईश्वर उत्पत्ति नाश रहित छे; तेम जीव पण होवा जोये. ईश्वर जेम अक्रिय छे, तेम जीव पण कर्मविना होवा जोये. जेवो बिंब तेवा प्रतिबिंब होवा जोये. तेम तो ईश्वर अने जीव नथी; माटे चंद्रबिंबनो दृष्टांत सर्वथा असत्य छे; केमके सर्व जीव पोताना कर्मोदयथी उत्तम मध्यम पणुं पामेछे. दोहा, बिंब अने प्रतिबिंबता, ईश्वर जीव प्रमान; चंद्र बिंबवत ए नही, तेथी सत्य न जान. १५

१८ नास्तिकः– जीव वर्णादिके करी सहित छे; एम मानवुं जोये.

आस्तिकः– जीव वर्णादिके करी रहित छे, अने चेतन लक्षणवंत छे; अने कालुं, रातुं, नीलुं, पीलुं, तथा धोलुं ए पांच वर्ण; सुगंधि तथा दुर्गंध ए बे गंध; तीखुं, कडवुं, कशायलुं, खाटुं तथा मीठुं ए पांच रस; शीत, उष्ण, स्निग्ध, लूखुं, करकश, मृदु, गुरु, तथा लघु ए आठ फरस; अने परिमंमल, व्रत, त्र्यांश, चउरंस तथा आयतन ए संस्थान प्रमुख सर्व जड पदार्थना गुण छे; ते चैतन्यमां नथी. चेतननो आकार शरीरने आश्रये छे. जेम पाणीनो आकार जलाशयथी जणाय छे तेम चेतननो आकार पुद्गलथी जणाय छे.

१९ नास्तिकः– जीव कर्मोने केम ग्रहण करतो हशे वारु?

आस्तिकः– जेम वस्त्रना तंतु ते वस्त्रना अंश छे; तेम जीवना प्रदेश ते जीवना अंश छे; जेम वस्त्रांतर्गत तंतुना सूक्ष्म तंतु छे. तेम जीवना पर्यायछे. जेम वस्त्रनो वरण तेम जीवनुं सद्लक्षण छे. जेम वस्त्रने मेल लागवानुं कारण, तेमजीवने मिथ्यात्वादिक हेतुये राग द्वेष आश्रवे कर्मरूप मेल लागवानुं कारण छे. जेम वस्त्रनो मल टालनार धोबी तेम पोताना अंतरनो मल टालनार आत्मा पोते छे. जेम वस्त्रने साबुये करी मल टले छे, तेम जीवने शुक्लध्यानेकरी कर्मरूप मल टले छे. जेम वस्त्रने अग्नि, तेम जीवने तपस्या छे. इत्यादिक करवाथी कर्मनो क्षय थाय छे. जे जीव कर्म सहित होय तेने कर्म लागे, पण कर्मरहित होय, तेने नवां कर्म लागे नही. जेम सूत्रकातनारी नाडी काते, तेमांथी थोडी बाकी रहे, त्यारे तेनी साथे बीजी वलगा

छे, पण पहेली होयज नही, तो तेनीसाथे बीजो संबंध शाथी करे। तेम जीव प ण अनादिनो कर्मसहित छे, अनादि जीवनुं एहवुंज स्वरूप चाल्युं आवे छे, माटे जहांसुधी कर्म सहित छे तहांसुधी नवा कर्म पण ग्रहण करे छे, पण प्रथमथी अमुक वखतेज जीव नवा कर्म ग्रहण करी कर्ममल सहित थयो, एवी आदि नथी

२० नास्तिक --जीवने कर्म क्यारे लागां छे? कर्म लागवानी कोई पण आद्य जोये जे पदार्थनो अंत थतो होय, तेनी आदि पण होवी जोये. ज्ञाने करी क र्मोनो अंत थाय छे एम तमेज कहो छो त्यारे आद्य पण कबुल करवी पडशे, ते आदिनो समय कह्यो छेरवशो? केम के, जीव प्रथम निर्मल होय तोज तेने कर्मरूप मल लाग्यो कहेवाय.

आस्तिक --ए वचन दूषण सहित छे केमके, जीव प्रथम ज्यारे निर्मल हतो त्यारे तेने कर्म लागवाना परिणाम केम थया? जे निर्मल होय ते पोताने मल सहित थवानी इच्छा करे नही तेम छता जीवे कर्मोनी वांछा केम करी? माटे जीव अनादिनो कर्म सहित छे जीवनेविषे कर्म स्वभावे अनादिसिद्ध छे दोहा, आदि जीव निर्मल हतो, पछि वलग्या छे कर्म, एम कहे ते ना लहे, जिन वच नोनो मर्म १६

२१ नास्तिक --सर्वमा व्यापक आत्मा एक छे, अने शरीरो जुदा जुदां छे, एम मानवु जोइये.

आस्तिक --जो बधामां आत्मा एक होय तो माता, पिता, स्त्री, पुरुष, भाई, बेन, पुत्र, राजा, प्रजा, चोर, साहुकार, चमार, क्षत्रिय, उंच, नीच, नरक, देव ता, पुण्यवान, तथा पापी इत्यादिक भिन्न भिन्न केम देखाय छे? सर्वमा आत्मा एक होवाथी तेज देखावु जोइये, अने एके कीधेलु पाप सर्वने लागवु जोइये, ते मज एके कीधेला पुण्यना सर्व भागीदार थवा जोइये, एकना मुक्त थयाथी सर्व मु क्त थवा जोइये, प्रत्येक माणसनुं जुडुं जुड अनुष्टान निष्फल थवु जोइये, तेम तो थतु नथी जे करे छे ते भोगवे छे, ए कहेवत प्रमाणे बधा आत्मा भिन्न भिन्न दे खाय छे माटे सर्वमा एक आत्मा व्यापकपणुं कहेवुं ते समीचीन नथी, एम जाणवु दोहा, आत्म सर्वमा एक छे, भिन्न भिन्न आ देह, एम कहे एकात म त, असत कहीजे तेह १७

२२ नास्तिक --सर्व कार्य अने अकार्य ईश्वरनी इच्छारूप छे, अने ईश्वरनी इ च्छाथीज सर्व थाय छे, एम जाणवु जोइये.

आस्तिकः--जो एम होय, तो जन्म धारण करवामां मातापितानुं शुं काम छे ? अने विष खाधाथी मरण थाय छे, तेमां विषनुं सु वांक छे ? तेमज जो जनथी क्षुधानी निवृत्ति, पाणीथी तृषानी निवृत्ति, अग्निथी शीतनिवृत्ति, वली तापथी खेदोत्पत्ति, वर्षाथी धान्योत्पत्ति, द्वेषथी वैरोत्पत्ति, नम्रताथी स्नेहोत्पत्ति, चोरी कस्याथी ताडन, यारी थकी निर्लज्ज, पापथकी नरक, पुण्यथकी स्वर्ग, इत्यादि सर्व कारणो अने कार्यो व्यर्थ थशे. अने सर्व वस्तुओ स्वगुण रहित कहेवी जोइशे. राग करनारो स्नेही नही, तेम द्वेष करनारो वैरी नही कहेवाशे. उपकार प्रति उपकार करवानी कांई जरूर रहेशे नही. अने पाप पुण्य फलरहित थशे. केम के, सर्व कार्य करवानुं मूल कारण एक ईश्वर इच्छा थई; माटे सर्व ईश्वर इच्छारूप छे, एम कहेवुं ते समीचीन नथी. तमारा कहेवा प्रमाणे पुण्य पापनुं कर्त्ता पण ईश्वर अने भोक्ता पण ईश्वर थयो. दोहा, ईश्वर इच्छारूप आ, कृत्य सर्वे जगमांहि; एम कहे गुणता टले, सारासार न कांहि १७

१३ नास्तिकः-- आत्मा पंच भूतो थकी थयो छे; ए वात असत्य नथी, किंतु साची छे, एवुं अमने जणाय छे.

आस्तिकः - भूत शब्दनो अर्थ त्रणे कालमां अस्तित्व थाय छे. एटले जे छे छे ने छे, तेने भूत कहियें. भूतनो तो कोई काले छेद थतो नथी; माटे ए अस्तित्वरूप भूतनो अंश तो संभवे नही; तेम आकाशादिक पंच महाभूतनो अंश पण कही शकाय नही. वली पांच भूतना अंशे करी शरीरनी उत्पत्ति थाय छे, त्यारे ज्ञान अने चेतना कया अंशथी उत्पन्न थयां ? माटे भूत शब्द ए भ्रमजाल छे. अने चिदानंद ज्ञानरूप आत्मा तो शाश्वत छे. ते कोई समये जूनो तथा नवो थतो नथी. ते जीव पूर्वोपार्जित कर्मे करी शरीर बांधे छे. ते जड पुद्गलनुं ग्रहण छे. तेमां भूतनुं कांई प्रयोजन नथी; भूत केवी वस्तु छे ? जीव छे के जड छे ? रूपी छे के अरूपी छे ? ईश्वराश्रित छे के नवा प्रगट थाय छे ? छता रूप छे. के संयोगे थाय छे ? ए विषे कांई विचार करी शकातो नथी; माटे भूत ए शब्दज व्यर्थ छे. तेनाथी जीवनी उत्पत्ति केम मनाय ! दोहा, जीव ऊपजे भूतथी, ए मत छे भ्रमरूप; जीव चिदानँद सत्य छे, अनादि भाव अनूप. १ए

१४ नास्तिकः--तमारा कह्या प्रमाणे जीवने भवांतर थाय छे. भवनी प्राप्ति कर्मानुसार छे. जेवां कर्मो कस्यां होय तेवा भवनी प्राप्ति थाय छे. शुभ कर्मनुं फल सारो भव छे, अने अशुभ कर्मनुं फल नरशो भव छे. ते वात सत्य छे, परंतु को

ई जीवने एक खंडमा शरीर मूकीने बीजा खम्डमा बीजु शरीर धारण करवु पमे तो एटलो दूर जतां तेने केटलो वखत लागतो हशे ! अने कोई जीवने एक शरीर मूकी तरत तेज गाममा उपजवु होय, तेने कांई दूर जवु पडतु नथी, तेथी कांई वधारे वखत लागतो नही हशे, पण जेने दूर जवु पडतु हशे तेने रस्तामा चालता वधारे वखत लागतो हशे नी !

आस्तिक – नजीक अथवा दूर नवांतर करवामा वधारे वखत लागतो नथी, सरखोज वखत लागे छे. जेम घाणी, रहेंटीओ अथवा बारणु इत्यादिक ज्यारे फरे छे, त्यारे तेओना माहेला तथा बाहेरना जागने फरता सरखोज वखत लागे छे यद्यपि अंदरनो क्षेत्र थोडो होय छे, ने बाहेरनो घणो होय छे, तथापि फरता वखतमा वधघट थती नथी वली जेम दीपकने शलगावीए ते क्षणमाज प्रकाश करेछे वचमां कांई अंतर पडतो नथी, तेम जे वखते एक नव मूके के लागलोज बीजो नव पामे छे, तेमा लगार पण अवकाश रहेतो नथी ते नव पछी दूर देश धारण करवो होय, के नजीक देशमा धारण करवो होय, गमे त्या नव धारण करमावामा वखतनो वार फेर थतो नथी

२५ नास्तिक –जीवने कर्म केवी रीते लागे छे

आस्तिक –आत्माना शुनाशुन परिणामथी जीवने कर्म लागे छे जो शुन परिणाम होय, तो सारा कर्म लागे छे, अने अशुन परिणाम होय, तो नरशा कर्म लागे छे अने तेना फल पण तेवा थाय छे कर्मने कांई ज्ञान नथी. जे आ जीवे पाप कर्यु माटे हु एने पापरूप कर्म थई लागु

२६ नास्तिक –कर्म तो जड छे. तेथी तेओमा ज्ञान शक्ति नथी त्यारे जीवे नरशा अथवा सारा कर्मो कर्याथी पाप अथवा पुण्यरूप परिणाम केम थाय छे ? ए परिणाम तो ज्ञानविना थाय नही तेथी एवु जणाय छे के कर्म लागवामा ईश्वर हेतु छे. कर्म करवापणु जीवने छे, ने तेनु फल देवु ईश्वरने छे

आस्तिक –कर्म लागवामा ईश्वरनुं कांई काम नथी कर्मोनो एवो स्वनावज छे के परिणामने पामवु जेम कोई पुरुष विषमिश्रित नोजन करे, ते मरण पामे छे मरवु ए विषनो परिणाम छे, पण विष जम्ड पदार्थ होवाथी तेने एवु ज्ञान नथी के मने जे खाय छे, ते मरीजायछे, तेम छता तेथी तेवो परिणाम थायछे के नही ! वली जेम कोई पुरुष मिष्टान्न नोजन करे, तेथी पुष्ट थाय छे पण ते नोजन एम नथी जाणतु के, माराथकी आ शरीरनी पुष्टी थाय छे तेम छता तेनो परिणाम

तेवो थाय छे. एतो एनो स्वभाव छे. तेम शुभाशुभ कर्मोने यद्यपि ज्ञान नथी, तोपण तेओनो एवो स्वभावज छे, के फलरूपे पोते परिणामने पामवुं. कर्मो नो एवो स्वभावज छे के शुभ करवाथी पुण्यकर्म बंधाईने उत्तम गतिनी प्राप्ति थाय छे, तेमज अशुभविषे पण जाणी लेवुं. एवो कर्मोनो अनंत कालनो स्वभाव छे. वली जेम चमक पाषाण लोहने पोतानी तरफ खेंची लिये छे, तेनुं चमकने कांई पण ज्ञान नथी, के हुं लोहनुं आकर्षण करूंछुं; परंतु ते क्रिया स्वाभाविक थाय छे. तेम जीव शुभाशुभ परिणामना उपयोगे शुभाशुभ कर्म आकर्षण करी आत्मापणे लोलीभूत करे छे; एवो अनादि कालनो स्वभावज छे. एमां ईश्वरनुं कांई काम नथी.

२७ नास्तिकः— जीव एवो कोई पदार्थज नथी; बधुं शून्यज छे. त्यारे शुभाशुभ कर्मो ते कोने लागवाना हता! ए बधो भर्म छे. जीव कोई छेज नही.

आस्तिकः— भाई, तूं पाको बुद्धिनो देखाय छे. जीवनेज उराडी नाख्यो एटले बधी खटपट चूकी गई के नही वारु! अरे मूढमति विचार तो कर, के जो शरीरमां जीव न होय, तो शरीरनी चेष्टा केम थई शके? शरीर तो जड छे, तेमां चेतन शक्ति न होय तो क्रिया केम थाय? जो आत्मा न होय तो आ शरीर, हाथ, पग, कान, नाक, जीभ, आंख, मन, बुद्धि, धन, धान्य, राज्य, तथा संपत्ति प्रमुख सर्व पोताथी जुदा पदार्थोमां शरीर मारुं छे, धन मारुं छे, वगैरे एवो बोलनार कोण छे! मारुं छे, एवुं कहेनार पदार्थथी जुदो होय छे. एम तो कोई पण कहे तो नथी के हुं शरीर छुं, हुं मन छुं वगैरे, माटे शरीरादिक सर्व वस्तुनो भिन्न व्यवहार होवाथी जीव छे एवुं ठरे छे. शरीरमांथी जीव नीकली गया पछी विचार करवुं, बोलवुं, तथा चालवुं वगैरे कांई पण क्रिया थई शकती नथी. तेथी शरीर थकी जीव जुदो कोईक छे एम नकी जाणजे. वली शरीरमां ज्यारे जीव छे त्यारे बोले छे, ने घट पटादिक पदार्थोमां जीव नथी त्यारे बोलता नथी. तेथी जीवद्रव्य ते शरीर थकी भिन्न छे एवुं सिद्ध थयुं. तेने छेज नही एम तुं केम माने छे? जो जीव न होय तो व्यवहार केम चाले? माटे जीव अवश्य छे एम जाणवुं.

२८ नास्तिकः— जीव समय समयनेविषे नवो थाय छे. हमेश एक जीव रहे तो नथी.

आस्तिकः— ए वात तदन जूठी छे. जीवत्व नवुं कोई समये थतुंज नथी. जीवना पर्याय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तथा उदय भावाश्रित तो जुदा जुदा

होय छे, पण जीवपणुं नवु होतु नथी जीव समय समय प्रत्ये जो नवो थतो होय, तो बालपणनी वात यौवनावस्थामा सांभलवी न जोये. तथा गत समयनुं सांभलेलु, दीठेलुं, भोगवेलु, लीधेलु, तथा दीधेलुं प्रमुख काई पण स्मरणमा आव्यु न जोये तेनी स्मृति तो थाय छे तेथी जीव तेह्निज छे जो जीव नवो थतो होय तो एक जीवनुं करेलुं कार्य बीजो जीव केम जाणी शके ? ए तो प्रसिद्ध वात छे तेथी जीव द्रव्य सदा सरखु छे, एमा कोई काले पण फेर पडतो नथी, एम जाणवु

२९ नास्तिक – जीव जे नाना प्रकारनां कर्मों करे छे, तेओनो करावनार ईश्वर छे ईश्वरनी प्रेरणा विना जीव थकी कर्म थाय नही, एम जाणवु

आस्तिक – जो जीवने कर्म ईश्वर करावतो होय, तो कर्मनो कर्त्ताज ईश्वर ठरशे, केमके जे क्रीयानो प्रेरक होय छे, तेज कर्त्ता होय ने जो ईश्वर कर्त्ता ठेरावशु तो जे कर्त्ता होय छे, तेज भोक्ता होय छे ए रीतथी ईश्वरने भोक्तापणु पण आवशे भोक्ता ईश्वर थयाथी पापपुण्य ईश्वरनेज लागे छे, एम मानवु पडशे जेम कोई पुरुष पोताना हाथमा खड्ग लईने बीजाने मारे तेनुं पाप खडगने लागतु नथी, पण ते खडगना मारनारने लागे छे तेम पुरुषे कीधेलु पाप पण ईश्वरने लागनार छे कर्मनो करनार तो खडगना जेवो छे, तेने कर्म लागवा न जोईए तेथी कर्म ईश्वरने लागे छे एम सिद्ध थयु एम माननारने एटलुज पूछवु जोये के, कर्मनो कर्त्ता तु नथी, तेम कर्मनो भोक्ता पण तू नथी, कर्त्ता भोक्ता ईश्वर छे त्यारे सर्व मनुष्यो पोतपोताना मत प्रमाणे क्रिया करवानी बुद्धि केम करेछे ? मद्य मांसनो त्याग, अने स्नान, संध्या स्तोत्र, तप, जप, वगेरे शासारु करेछे ? पोताने काई पाप प्रमुख लाग्युहोय तो तेनु निवारण शासारु करे छे ? अकार्य शासारु करता नथी ? पाप थकी शासारु बीहेछे ! कर्त्ता शो भोक्ता एम शामारु कहे छे ? पोते करे छे, ते भोगवे छे, तेम छता वली कहे छे के हे प्रभु, मारा पाप टालो पण एम नथी कहेतो के प्रभु तमारा पाप टालो जे चोरी करे तेने दंड थाय ने जे छेद करे तेना प्राण जाय अने हिंसा करे ते अवश्य नरक गामी थाय वगेरे ए सर्व व्यर्थ मानवा जोइशे माटे कर्त्ता जीव छे ईश्वर नथी एम मानवु जोये

३० नास्तिक – अमे मान्य करेलु ईश्वर सर्वज्ञ छे एम जाणवु अने शास्त्रोमा पण "सर्वज्ञो ईश्वर" एवा घणा वाक्यो ठीगामा आवे छे, माटे ईश्वर बधु जाणे छे

आस्तिक—यद्यपि तमे कहोछो के ईश्वर सर्वज्ञ छे, ए वात सत्य छे. तथापि ते सर्वज्ञतानी रीत कांईक जूदीज छे. जे तमे मानो छो ते ईश्वर सर्वज्ञ नथी. अमे एटलुंज पूछीए छैए के, ज्यारे ईश्वर सर्वज्ञ छे, त्यारे पोताने दुःख देनारा रावणादिकने तेणे शा सारु उत्पन्न कर्या! ज्यारे ए राक्षसोनी उत्पत्ति पोते कीधी त्यारे पोतानेज युद्ध करवुं पड्युं. ए उपरथीज विचार करो के जो ईश्वर सर्व जाणतो होय, तो एवी भूल केम करे? जो एम कहिये, के राक्षसादिक प्राणीओ ईश्वर थकी अजाणमां उत्पन्न थया जणाय छे; तो ईश्वरनेविषे अज्ञानरूप दूषण प्राप्त थशे. अने जो एम कहीशुं के जाणी जोईने उत्पन्न कर्या छे; तो ईश्वरना भक्तने पण संग्राम उचित नथी; तो ईश्वरने ते केम संग्राम कार्य उचित थयो? माटे एम कहेवुं तदन असंभवित छे.

३१ नास्तिकः—ईश्वर ज्यारे जगतनो संहार करेछे, त्यारे पोते प्रागवडनां पांदडांपर पहोढे छे; अने ज्यारे जगतनी उत्पत्ति करवानो संभव होय, त्यारे जागृत थाय छे; ए वात तो साची छे के नी?

आस्तिक.—ए वात ते वली जूठी होय! पण हुं तमने पूछुं छुं के ते प्रागवड अधर आकाशमां रहे छे के, पृथ्वी उपर होय छे? तेमां अधर रहे छे, एम तो तमे कबूल करशो नही, केम के तमे वली एम पण मानो छो के, बधुं जलमय थई जाय छे; ने तेनी उपर मात्र प्रागवड देखाय छे; त्यारे पृथ्वी पण कबूल करवी पडशे. जो पाणी, पृथ्वी, तथा प्रागवड ए बधा पदार्थ महा प्रलय थया पछी पण रहे छे, त्यारे संहार ते शानो कर्यो कहेवाय? जो एम होय तो सर्व पदार्थो शाश्वत थया एम जणाय छे. फरी ज्यारे ईश्वरे सृष्टि उत्पन्न करी, ते पहेलां कह्या प्रमाणे पांच महा भूत तथा, प्रागवड हतो त्यारे नवुं ते शुं कीधुं ए वगैरे विचार कर्याथी एम जणाय छे के, ए बधा गपाटा छे. जेना मनमां जेम आव्युं, तेणे तेम शास्त्रोमां लखी नाख्युं जणाय छे.

३२ नास्तिकः—ब्रह्मा, विष्णु, अने महेश ए त्रणे सर्वज्ञ ईश्वर छे; एम अमे मानिये छैये.

आस्तिकः—तमे गमे तेम मानो तेमां अमारुं शुं गयुं! अमे तो जेम हशे तेम मानशुं. तमे कह्या ते त्रणे जो सर्वज्ञ होय तो अज्ञानने केम अंगीकार करे! जुवो के, महादेवे पोताना पुत्र गणेशनुं माथुं कापी नाख्युं तेनी खबर पोताने केम न पडी? रावण सीतानुं हरण करी गयो ते वखते राम सर्वज्ञ छतां

पशु, पक्षी, तथा वृक्ष प्रमुखने केम पूजतो हतो ? अने ब्रह्मा पासेथी राक्षसो वेद केम चोरी लई गया ? ए रीते ब्रह्मा, विष्णु अने शिव अज्ञानी ठरे छे एवा अज्ञानी तेने ईश्वर केम कहिये ?

३३ नास्तिक —सर्व योनिओमा मनुष्य योनि उत्तम छे एवु शास्त्रोमा कह्यु छे ते सत्य छे अने वळी अनुभव सिद्ध पण छे

आस्तिक —ना कोणे कह्यु छे ? मनुष्य योनि तो उत्तमज छे परतु तमे तेम अत करण पूर्वक मानता नथी देखाता महोडाथीज मात्र कहो छो केम के तमारे तो एथकी पण बीजी उत्तम योनिओ मानवी जोइये छे जे योनिने ईश्वरे अगीकार करी छे, ते योनि तमारे पण सर्वोत्कृष्ट मानवी जोइये मत्स्य, कच्छ, तथा वराह, प्रमुख योनिओमा ईश्वरे अवतार लीधो छे, ते योनिओ मनुष्य योनिकरता उत्तम मानवी जोइये. जो मनुष्य योनिज उत्तम होय तो ईश्वर पोते बीजी योनि केम धारण करे ? माटे तमारा बोलवा प्रमाणे तो मनुष्य योनि करता वराहादिक योनि उत्तम जणाय छे. ईश्वर ज्यारे पशुमा अवतार लिये छे, त्यारे पशुमुखी, पशुवाही, तथा पशुरूपी होय छे तेने देव मानवो ते अयोग्य छे आहार, अस्ति, आयुध, असवारी, तथा आवाश ए पांच पदार्थ ईश्वरना भक्तने पण त्याग करवा कह्यु छे, तो ईश्वर पोते तेनु केम ग्रहण करे ? माटे वराहादि योनि धारण करनारो ईश्वर मानो, तो मनुष्य योनि करता ते योनि उत्तम कहेवी जोइशे, जो तेम नही कहेशो तो ईश्वरने अपमान लागशे

३४ नास्तिक —शरीरनो त्याग करीने जीव परलोके गया पछीपाछो आ लोकमा केम आवतो नथी ? जे छे तेने तो आव्यु जोइये

आस्तिक —आ ससारनो सबंध मटी गया पछी जीवनुं फरी आववु थतु नथी, तेनु कारण कर्म छे जीवनुं आववु जवु कर्माधीन छे ज्यां कर्म लई जाय त्या जीव जाय छे. अने जे जे भव पामे छे ते ते भवना कार्य करे छे आ भवमा पण हमेश एक रीत रेहेती नथी जेम के बालपणानी प्रीति होय ते कोई काळे मटी जाय छे. घणा काळ लक्ष्मीनो सबध छता कोई काळे तूटी जाय छे त्यारे दारिद्र आवे छे कोई कर्मना योगे प्राणी बदीखानामां पडे, ते वारे तेनो अत्यत स्नेही होय ते पण पासे आवतो नथी कोई पुरुष एक स्त्रीउपर बीजी करे त्यारे प्रथम स्त्रीनी उपर प्रीति रहेती नथी, अने पूर्वनो सबध पण तूटी गया जेवु थाय छे तो पूर्व जन्मना सबध ते केम याद आवे ? ज्ञानावरणी कर्मना यो

गे बीजा नवनुं स्मरण पण थतुं नथी. ए विषयने मलती प्रदेशी राजा अने केशी गुरुनी प्रश्नोत्तररूप चर्चा बे ते कहुं बुं.

प्रदेशी राजाः— मारो अधर्मी दादो नरकमां गयो बे, ते तमारा मतप्रमाणे त्यांथी आवीने मने अधर्म करतो वारे त्यारे हुं मानुं, के वात साची बे.

केशी गुरुः— तारी स्त्रीनी साथे कोई पुरुषने कामनोग करतो तने दीठामां आवे, ने ते तारा हाथमां आव्या पढी ते तारी वीनती करे के, मने थोडीक वार रजा आपो, तो हुं मारा कुटंबने कही आवुं के, कामनोग कर्याथी आवुं डुःख थाय बे तो ते वात कबूल करीने तेने तूं रजा आपीश?

राजाः— ना तेने एक क्षण पण बुटो मूकुं नही.

गुरुः— तेमज तारो दादो पण पापसंची, गुनेहगार थई, नरकमां गया पढी, परमाधामी तेने केम मूके? तेथी ते आवी शके नही.

राजाः— मारी दादी स्वेलाचारी थई, जैनधर्मने अंगीकार करीने स्वर्गे गई, ते पाबी केम कहेवा आवी नही; ने आवे तो तेने शुं हरकत बे?

गुरुः— कोई पुरुष स्नानकरी, कुशुम तथा धूप प्रमुख लई देवनी पूजा करवा जेतो होय, तेने कोई चांमाल संमाशमां जवाने कहे तो ते त्यां जाय के? एवी कदी इला पण करे?

राजाः— ना ते एवा खराब स्थले केम जाय? कदी पण जाय नही.

गुरुः— तेम तारी दादी स्वर्गलोकमां गई बे, ते सेतखाना तुल्य आ मनुष्य लोकमां केम आवे! आ लोकमां आववानी इला पण थाय नही.

राजाः— एक चोरे चोरी करी, तेनो इन्साफ करीने तेने लोहानी कोठीमां घाली दीधो. तेनुं मुख बंध करीने उपर सारी रीते कलई करावी. तेमां पवन पण प्रवेश करी शके नही एवुं कर्युं. पढी ते चोर कोठीमां मरी गयो. तेनो जीव ते कोठीना क्या रस्तेथी नीकली गयो? तेमां तो कोई बिड दीठामां आव्यो नही. हवे जीव ते केम मनाय?

गुरुः— मोटी शालामां एक पुरुषने नेरी सहित घालीने तेने चोतरफ बंध करी लीधी होय, तेमां ते नेरी वगाड्याथी तेनो अवाज बाहार शंनलाय बे. ते बिडविना बाहार केम आवे बे? तेम जीव पण बिडविना बाहार निकली जाय बे.

राजाः— एक चोरना कटका करी एक कुंनमां मेंनरी राख्याहता. तेनुं महोडुं उपरथी सारी रीते बांधी लीधुं हतुं, के जेमां पवन पण प्रवेश करी शके नही. ते

केटलाक काल पछी उघाडी जोयुं, तो तेमां अनेक क्रम पडेला देखायां ते छिद्र विना क्यांथी आव्या ?

गुरु – अग्निमा लोहनो गोलो नाख्यो होय तेमा छिद्र विना अग्नि केम प्रवेश करेछे। जे वस्तु अग्निमा नाखीए तेमा छिद्र नहोय, तो पण अग्नि प्रवेश करे छे तेम जीवनो प्रवेश थवामा छिद्रनु काई काम नथी

राजा – एक चोरने मे ते जीवतो हतो त्यारे तोल्यो, अने मरी गया पछी पण तोल्यो, त्यारे जीव नीकली गयो छता भारमा काई फेर पड्यो नही तेनु शु कारण होवु जोये ?

गुरु – जेम खाली मशक तथा पवनथी भरेली मशक तोली जोता वजनमा फेरफार थतो नथी तेम जीव वायुरूप होवाथी ते शरीरमाथी नीकली गया पछी काइ तोलमा फेर पडतो नथी

राजा – बालक अने यौवनना शरीरमा फेर छे पण जीवमा कांई फेर नथी बन्ने वाणी सरखी बोले छे ने तेनुं शब्द पणे कानमा सरखी रीते स्वर जाय छे, तेम छतां उपयोग सरखो केम थतो नथी ? युवान जे क्रिया करी शके छे ते बालकथी थती नथी तेनुं कारण शुं ते कहो

गुरु – जेम जूनु धनुष्य होय तेथी बाणनो उपयोग जुदी रीते थाय छे ने नवु धनुष्य होय तो तेथी बाणनो उपयोग जुदी रीते थाय छे, धनुष्यमा फेर होवाथी बाणनी क्रियामा फेर पडे छे तेम बालक अने युवानना शरीरमा फेर होवाथी जीवनी क्रिया सरखी थाय नही एटले बल वीर्य प्रमुखमा पण फेर फारथाय छे

राजा –युवान अने वृद्ध माणशना शरीरमा जीव सरखो छता युवाननी पठे वृद्ध केम भार उपाडी शकतो नथी ?

गुरु –जेम कावडवडे भार उपाडनारो पुरुष सारी नवी कावड होय तो वधारे भार उपाडी शके छे, ने जूनी कावड होय तो काईक थोडो भार उपाडी शके छे. तेम जीव तो तेज छे पण युवान शरीर होय तो वधारे भार उपाडी शके. ने वृद्ध शरीर थाय तो थोडो भार उपाडी शके छे

राजा –एक चोरने मारीने तेना अनेक खम्ड कीधा, पण जीव तथा जीवना रहेवानुं ठेकाणु दीठामा आव्यु नही, माटे जीव कोई छेज नही

गुरु –जेम काष्टमा अग्नि रही छे, तेम शरीरमा जीव रह्यो छे, ते देखाय केम ? जो काष्टमा अग्नि देखाय तो शरीरमा जीव देखाय काठीआरो हमेश लाकडा

कापे छे पण तेने अग्नि कोई वखते पण दीठामां आवती नथी. ने ते अग्निनुं रहेवानुं ठेकाणुं पण दीठामां आवतुं नथी तेम जाणी लेवुं.

राजाः—मने प्रत्यक्ष जीव देखामी आपो के जेथी हुं जीवने जाणुं.

गुरुः—तमे बादर वायु कायना जीवने जोई शकशो के? तेने पण जोई शकशो नही तो जे अरूपी जीव छे तेने केम जोई शकशो?

राजाः—हाथीमां अने कीमीमां जीव केम सरखो होय छे?

गुरुः—हाथीनुं तथा कीमीनुं शरीर महोटुं नानुं छे, पण जीवमां अधिक न्यूनता नथी जीव बन्नेमां सरखो छे.

राजाः— लोकमां जीव अने जड एक क्षेत्र अवगाही निरंतरपणे निराबाध केम रह्या छे?

गुरुः— जेम दूधनी भरेली कडाईमां साकर, एलची, अने केशर नाखी होय ते केम समाई जाय छे? दूधशुद्धां चारे वस्तु एक क्षेत्र अवगाही निरंतरपणे केम रहे छे? एकज ठेकाणे चारे वस्तु अभिन्न भावे रहेली छे. एना वर्ण, गंध, रस, फरश निरंतर निराबाधपणे छे. तेम जीव अने जड जगतमां निरंतर एक क्षेत्र अवगाही निराबाधपणे रह्या छे.

३५ नास्तिकः— सर्व लोकमां जीव भरपूर छे त्यारे देखाता केम नथी?

आस्तिकः— जेम सूक्ष्म जीव सर्वत्र पूर्ण छे. ते ज्यारे दिवशे तडको पडे त्यारे घरमांना कोई छिद्रद्वारायें थोडोएक तडको घरमां आवे छे. ते तडका तरफ जोतां केटला एक परमाणु जेवा दीठामां आवे छे, ते बधा सूक्ष्म जीवो छे. ते छायमांमां तडको आवे त्यारे उडता देखाय छे, बीजी रीते देखाता नथी. तेम जीव अने जड सर्व लोकमां भरपूर छतां छद्मस्थने देखाय नही; किंतु केवल ज्ञानरूप आतपना योगे देखायछे. अर्थात् केवल ज्ञानीज जाणी शकेछे.

३६ नास्तिकः— चंद्र, सूर्य, छाया, आतप, माता, पिता, स्वर्ग, नरक, जीव, जड, घट, पट, स्तंभ, तथा कुंभ प्रमुख सर्व भ्रममात्र छे; वस्तुरूप कंईजनथी.

आस्तिकः— जेम अंधकारमां आकाशनेविषे कोई पुरुष चाल्यो जाय, ते निराबाधपणे जई शके छे; पण वचमां जो भिंत आवीजाय तो आगल चलातुं नथी ने ते कार्यमां अपरबाधक थायछे. ए प्रत्यक्ष भ्रम के सत्यछे? तथा कोई कोईने मारे, कूटे, दानदिये, ए वस्तु गत्ये सत्यछे; असत्य अने भ्रमजाल तो स्वप्न अने संकल्पने कहिये.

३७ नास्तिक —सर्व जगतमा एकज ईश्वर छे ईश्वर विना बीजुं काई नथी, एम जाणवु जोये.

आस्तिक.— जो सर्व जगतमा एक ईश्वर होय, तो दाननो देनार पण ईश्वर, अने लेनार पण ईश्वर कहिये. लेनार अने देनारमा काई भेद थयो नही ईश्वरे पोते पोतानी पाशेथी दान लिधुं त्यारे दान दीधानुं पुण्य कोने थयु ? एथी दान तथा पुण्य व्यर्थ गया. वली मारनार पण ईश्वर ने मरनार पण ईश्वर कहेवो जोये, तो ईश्वरे ईश्वरने मार्यो तेनुं पाप कोने लाग्युं ? धणी पण ईश्वर ने चोर पण ईश्वर, तो ईश्वरनो माल ईश्वरे चोर्यो कहेवाय, त्यारे चोरीनी तपाश शासारु करवी जोयेछे ? पुण्ये करी स्वर्गमा गयो ते पण ईश्वर, तथा पापे करी नरकमां गयो ते पण ईश्वर, त्यारे स्वर्गमा पुण्यवान जाय अने नरकमा पापी जाय, एम कहेवु व्यर्थ छे. ए उपरथी तमारु बोलवु असंगत छे जगतमां एकज ईश्वर छे एम जे कहेवु ते असत्य छे घटघटप्रत्ये जीव जुदा जुदा छे, अने तेओनी करणी पण जुदी जुदी जाणवी

३८ नास्तिक —घट पटादिक सर्व पदार्थोमां ईश्वर एकज छे, एम जाणवुं जोये

आस्तिक — जो सर्वमा एक ईश्वर होय तो जात, कुल, राजा, तथा चडालनी भिन्नता कही न जोये, कोई श्रेष्ट तथा नष्ट कहेवाय नही एक पुण्य करे तेनुं फल सर्वने थवु जोये, तेमज कोईएक पाप करे तेनुं फल पण सर्वने थवु जोये एके भोजन कर्याथी सर्वनी तृप्ति थवी जोये, एक नरकगामी थयाथी सगला नरके जवाजोये, एक स्वर्गगामी थयाथी सर्व स्वर्गमा जवा जोये, एकनो भोग सर्वने भोगव्यो जोये, कर्म जुदा जुदा भोगववा न जोये, तेम तो देखातु नथी, जे करे ते भोगवे एवु स्पष्ट देखाय छे त्यारे सर्वमा एक ईश्वर केम कहेवाय ? माटे एम कहेवु ते समीचीन नथी, वधा जीव जुदा जुदा छे, एम कहेवु योग्य छे

३९ नास्तिक —स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, चंद्र, सूर्य, नदी, समुद्र, द्वीप, नर, नारी, नगर, ग्राम, तथा माता, पिता इत्यादिक चोराशी लक्ष जीवयोनि प्रमुख सर्व असत्य छे, एओमा सत्य पदार्थ कोई नथी

आस्तिक —सर्व पदार्थ सत्य छे जलनी बुंद पण असत्य कहेवाय नही, तो स्वर्गादिक पदार्थो केम असत्य कहेवाय ? जे वस्तु थाय त्यारे थई कहेवायछे,

અને વણશે ત્યારે નાશ થઈ કહેવાયછે. એ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણે સિદ્ધ છે; તે મૂઢ પણ જાણે છે તો હે નાસ્તિક તૂં કેમ જાણતો નથી!

૪૦ નાસ્તિકઃ—જગત ઈશ્વર રચિત છે.

આસ્તિકઃ—જો જગત ઈશ્વરકૃત હોય, તો જેટલા ઈશ્વરના ભક્ત છે, તે બધા સુખી હોવા જોયે; તેમ તો દીઠામાં આવતું નથી. હિંદુ તથા મુસલમાન બધા સુખી તથા દુઃખી દેખાયછે; તેને પણ પૂછિયે તેવારે એમ કહે જે સહુ પોતપોતાની કરણી પ્રમાણે પામેછે, એમ કહીછૂટે; ત્યારે તમારા કહેવા પ્રમાણે તો સુખ તથા દુઃખનો દેનાર કર્મવિના કોઈ બીજો હોવો જોયે તેનો તો વિચાર થઈ શકે નહી, માટે હે મૂર્ખબુદ્ધિ આ જગતનો કોઈ કરતા નથી; એ તો સ્વભાવ સિદ્ધ છે. અને જીવ જેવી કરણી કરે, તે પ્રમાણે સુખ તથા દુઃખ ભોગવેછે.

૪૧ નાસ્તિકઃ—સુખ દુઃખનો દેનારો ઈશ્વર છે, એમ માનવું જોયે.

આસ્તિકઃ—સુખદુઃખનો કર્ત્તા આપણો આત્મા છે, તેજ સુખદુઃખનો ભોક્તા જાણવો. માટે સુખદુઃખનો દેનારો બીજો કોઈ સમજવો નહી.

૪૨ નાસ્તિકઃ—(પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વાદી) પુણ્યથકી સારું થાયછે, ને પાપ થકી નરસું થાયછે; તે અમને પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટિએ દેખાડો તો માનીએ.

આસ્તિકઃ—પુણ્યપાપ તો સૂક્ષ્મ પુદ્ગલ સમૂહરૂપછે. જેમ શબ્દના પુદ્ગલ કાનપ્રત્યે આવેત્યારે શબ્દનુંજ્ઞાન થાયછે; માટે તે સત્ય છે. પણ આવતા દેખાતા નથી. તેમ સુગંધ, દુર્ગંધ, પ્રમુખના પુદ્ગલ ઇંદ્રિયો પ્રત્યે આવતા દેખાતા નથી; પણ તેનું જ્ઞાન થાયછે; તેથી અનુમાન પ્રમાણ વડે જણાય છે કે એ સત્ય છે. તથા શરીરમાં વાયુ અને ગરમી પ્રમુખ જે થાયછે, તે રોગના ઉદયથી જાણ્યામાં આવેછે, પણ પ્રત્યક્ષ દીઠામાં આવતાંનથી. તેમ પુણ્ય તથા પાપ પણ ફલ ભોગવ્યાથકી જાણ્યામાં આવેછે. તેઓના પુદ્ગલ છદ્મસ્થ દૃષ્ટિએ આવે નહી.

૪૩ નાસ્તિકઃ—બાલ્યાવસ્થા તથા તરુણાવસ્થામાં જીવ સરખો છે. તો તે બન્ને અવસ્થામાં વિજ્ઞાન, વિદ્યા, ભાષા, તથા પરાક્રમ સરખાં કેમ નથી દેખાતાં ?

આસ્તિકઃ—જેમ વૃક્ષના બીમાં અનેક વૃક્ષ, ફલ, ફૂલ પ્રમુખ રહેલાં છે; પરંતુ જેવા સાધનો મલેછે, તેવી ઉદ્ભવતાને પામેછે. જેમ કે, ક્ષેત્રની ભૂમિ સારી હોય ને પાણીની પણ બરાબર સાહ્યતા હોય, તો કૃષિ ફલરૂપ ધાન્યની ઉત્પત્તિ સારી થાયછે. તેમ સારા સાધનોવડે જેમ જેમ શરીરની વૃદ્ધિ થતી જાય, તેમ તેમ ભાષા પણ પ્રૌઢતાને પામતી જાયછે; પણ અવસ્થાંતર થયાથી બુદ્ધિ બાહેરથી આવતી નથી. કિંતુ

शरीरनी पठे बुद्धिनु अवस्थातर थायछे सर्व आत्मगुण आत्माने विषे सदा च खाज छे. पण योग्य समयमा उद्भव मात्र थायछे काई बाहेरथी नवा आवता नथी जेम मयूरना शरीरमा अनेक रग रहेलाछे, पण समय पामे प्रगट थायछे तेम बाल्यावस्थामा पण सर्व गुण सत्त्वभावे छे, परतु जेवी रीते पुरुष बलवान छ तां धनुष्यविना बाण चलाववामा समर्थ थाय नही, गलोला, गोफण, तथा खड्ग प्रमुख बधा शस्त्र तेओना उपकरणथी उपयोगी थायछे, ते विना थाय नही, तेम जीव पण शरीरोपकरण अवस्थारूप सामग्री थकी सर्व कार्य साधी शकेछे चेत नमा काई फेर नथी, चेतन सदासर्वदा सरखुंज छे.

४४ नास्तिक –जगत सर्व ईश्वरकृत होवाथी सर्व पदार्थमा तथा सर्व जीवमा ई श्वरनी कला छे

आस्तिक –जो एम होय तो घट, पट, स्तभ, कुभ, शास्त्र तथा भाषा इत्यादिक अनेक वस्तुनुं ज्ञान कोई एक जीवने छे, ने कोईएक जीवने नथी जे जीवने ज्ञेय पदार्थनुं ज्ञान छे, तेने तो हे मूढमति, तू ईश्वरनो अश मानेछे, त्यारे श्वान, शूकर, रासभ, माजर, व्याघ्र, प्रमुख श्वापद चोपद जीवोने घटादिक पदार्थोनुं ज्ञान नथी तेथी तेओमा शु ईश्वरनो अश नथी? तमे तो जीवमात्रने ईश्वरनो अश मानो छो तेने बाध आवशे जे ईश्वरनो अश होय ते अज्ञानी केम होय? एथी जगत नो कर्त्ता ईश्वर अविवेकी ठरेछे अने सर्वमा ईश्वरनी कला छे, ए बोलवु पण अ सत्य छे, केमके जो एम होय तो सर्व सरखा ज्ञानी होवा जोये तेम तो देखातु नथी, माटे ए वात पण मिथ्या छे तेम सर्व जीव ईश्वरना अशरूप छे, एम जे तमे मानो छो, ते पण अज्ञानी होवाने लीधे मानोछो माटे सभवे नही

४५ नास्तिक – ईश्वर भक्तवत्सल छे, अने स्वेछाथी जन्मधारण करेछे

आस्तिक –जो एम होय, तो भक्तोने शरीर मूकता वेदना केम थाय छे? अ ने स्वजनादिकना कोलाहल शब्दो साभलीने भक्तने वत्सलभावकारी आयुष्यवृद्धि केम नथी करतो? मरणादिक क्रिया तो सर्व ईश्वरना स्वाधीन छे ए आदि वि चार करता तमारुं बोलवु बधुं पोकल छे जीव तो कर्मने आधीन छे जेम के फ लीधेलो प्राणी तेनी लहेरने स्वाधीन थई जायछे, तेम जीवविषे पण जाणी लेवु जन्ममरण पण कर्माधीन छे, तेने जे धारण करे ते ईश्वर शानो! ते तो ससारीज कहेवाय ईश्वर तो कर्मथी मुक्त होयछे, माटे तमारु बोलवु बधुं व्यर्थछे

४६ नास्तिक –आ पच महाभूतोथी उत्पन्न थएलु जे विश्व, ते महा प्रलयना

समये पोताना कारण पंच महाभूतोमां लीन थशे; ने पंच महाभूतो ईश्वरमां लीन थशे.

आस्तिकः—जो एम होय तो ईश्वर जड मिश्रित थाय. अने ते समल तथा निर्मल ए बे अवस्थावालो कहेवाशे. त्यारे केवल ज्योतिस्वरूपपणुं क्यां गयुं? जे पंच महाभूतोथकी जगतनी उत्पत्ति थई कहोछो ते तो सदा शाश्वत छे. ते ओमां पृथ्वी, आप, तेज तथा वायु; ए चारे भूतो पोतपोतानी क्रिया करेछे, केम के, वनस्पति अने जंगम त्रसनी उत्पत्ति करेछे ते क्रियाविना थाय नही. एवी रीते तो जीवनी छ खान शाश्वत सदा काल छे, त्यारे प्रलय ते शानो थयो? जो एम कहेशो, के पंच महाभूतो जगत विनिर्मित क्रिया करता नथी, त्यारे तो ते भूतद्रव्यरूप कथन मात्रज ठरशे. अने हरेक वस्तु पोतपोताना गुणविना रहे नही एवो नियम छे. वली जो कहेशो के भूत तो अनंत कालना छे. त्यारे तो संसार पण अनंत कालनो ठरशे. तेनी उत्पत्ति तथा प्रलय केम कहेवाय? ए तो जेम छे तेम छे. वली ईश्वर मनसा वाचा कर्मणा करि रहित छे, अने एक थी अनेक थाउं एवी मननी इच्छा थई त्यारे जगतनी उत्पत्ति करी. ए बे वाक्यो नो परस्पर विरोध छे; केम के, प्रथम वाक्यप्रमाणे ईश्वर इच्छारहित ठरे छे; ने बीजा वाक्यमां इच्छासहित कह्यो छो; एवो पूर्वापर वचनविरोध होवाथी तमारुं बोलवुं सर्व असमीचीन छे.

४७ नास्तिकः— सर्व वस्तुनो ईश्वर अधिष्ठान छे. ईश्वरनी इच्छाथी कृत तथा अकृत सर्व थायछे.

आस्तिकः— जो एमछे तो घट ते पट केम थतो नथी? पण तेम थाय नही; केमके, घटनुं कारण मृत्तिकानुं पिंड छे, तेमांथी घटज थायछे. पण पटादि कार्य नथी थता. तेमज पटनुं कारण तंतु छे, तेथकी पटज थायछे; पण घटादिक बीजा कार्यनी उत्पत्ति थायनही. जो एम थतुं न होय तो कारणथी कार्य थायछे, ए प्रवृत्ति मिथ्या थाय. माटे ईश्वरना अधिष्ठितपणातले ईश्वरनी इच्छाथी कृत तथा अकृत सर्व थायछे ए तमारुं कहेवुं सर्व व्यर्थ छे.

४८ नास्तिकः— जीवने भवांतर थाय छे खरुं, पण वेदनो भेद थतो नथी. पुरुष वेद ते स्त्री वेद न थाय, स्त्रीवेद ते पुरुषवेद न थाय; तेम स्त्री तथा पुरुष ते नपुंसक वेद न थाय; अने नपुंसकवेद ते पुरुष तथा स्त्री वेद न थाय. एम जाणवुं जोये

आस्तिकः—पुद्गलना परिणामनो नियम नथी. एना पुनः पुनः रूपांतर थया क

रेछे मात्र अवस्तुपणुं पामता नथी, वस्तुपणे गमे ते रूपे थई जायछे जेम भेस ना शिगडाथी केल थायछे, काशथकी सेरडी थायछे, माखीना हिगारथकी कद लीनी भाजी थायछे, एवी रीते कर्मना परिणामे गत्यंतर थायछे आगामिक भव नेविषे कायवेद पलटाईने ते नवा भवरूपे परिणमेछे जेम सोनीना योगे सुव र्ण नाना प्रकारना आकाररूपे परिणामने पामेछे तेम जीव कर्मना योगे नाना विध गतिओ पामेछे. ते तो रह्यु, आ भवमा पण एकसरखी स्थिति रहेती न थी. जेम के, राजा ते रक थई जायछे, ने, रक ते राजा बनी जायछे, सुखी ते दु खी, तथा दु खी ते सुखवान थई जायछे इत्यादिक आ भवमा पण पर्याय पलटाई जायछे, तो भवातरमा केम एकरूपे रहे ? कर्मना बध सादि छे, माटे जेवो कर्म नो उदय तेवा फलनी प्राप्ति थायछे, एविषे कोई नियम थई शके नही गमे ते वेद बदली ने गमे ते वेद कर्मना योगे थायछे एम जाणवु.

४९ नास्तिक –एम कह्यु छे के ब्रह्माना मुखमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न थया, भुज थकी क्षत्रिय थया, तथा जघा थकी वैश्य थया, माटे ए त्रणे वर्ण उत्तम छे, अ ने पादथकी शूद्र उत्पन्न थया माटे अधम छे, एम जाणवु

आस्तिक – ए वात संभवित नथी जुवो के, उबराना वृक्षमां पेड, दाल, तथा पत्रनेविषे सरखां फल लागेछे ते सर्व फलोनुं रूप सरखु होयछे, तथा ते ओमा रस पण सरखोज होयछे. तेओमा कोई प्रकारे उत्तम तथा अधमता क हेवाय नही तेमज ब्रह्माना शरीर थकी उत्पन्न थया जे चार वर्ण, ते सर्व चेतन रूप होयाथी सर्व जीव सरखा जाणवा उत्तम मध्यम वगेरे सर्व लौकिक कार्य थकी कहेवायछे पण चेतनपणे तो सर्व सरखा छे एना उपर एक दृष्टात कहुं छु चारे वर्णना मनुष्य एक तलावने काठे बेशीने पाणी पिये छे, तेथी कोई वट लतो नथी पण ते तलावमाथी पाणी भरीने पोतपोताना वासणोमा लीधा पछी हलका वर्णना वासणनु पाणी उंचा वरणवालो माणस पीए तो वटले छे फरी चारे वर्णना भरेला पाणीना वासणो मानु पाणी ते तलावमा नाखीने पी तां कोई वटलतु नथी तेनु कारण शु ? माटे पाणीमा वटलवापणुं नथी ने वा सण तो सर्वना सरखा छे माटे वटलवु ए मननी मानीता छे, अने एवी लोक म र्यादा छे ज्या सुधी मननो मिथ्याभाव छे, त्या सुधी भिन्न पणु छे एम जाणवु

५० नास्तिक – समदृष्टीने विषे मिथ्याभाव होतो नथी, तेम छता ते भिन्न भाव केम राखेछे ?

आस्तिकः—लोक मर्यादा लोपवी नही ए नीति छे तेनो लोप करवो नही. जे कार्यनी जगत निंदा करे ते कार्य करवो नही एवुं श्रेष्टोनुं वचन छे तेनो पण लोप करवो नही. तेथीज समदृष्टि पण तेवुं आचरण करे छे पण मनथकी सम दृष्टिने कांइ नथी.

५१ नास्तिकः— सर्व कार्यनो कर्ता ईश्वर छे, एम मानवुं जोये के नही ?

आस्तिकः— एम मानवुं नही जोये. ए वचन प्रलाप छे. ईश्वरविषे कर्तृत्व होयज नही. घट, पट, कृषि, संग्राम, खान, पान, दान, मान, स्नान, तप क्रिया, विनय तथा व्यावच इत्यादिक सर्व पदार्थोनां कारण काल, स्वन्नाव, नियत, पूर्वकृत कर्म, तथा पराक्रम ए पांच छे. जेम के, तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्ति थवानो जे समय ते काल समजवो; तंतुना पुंजने पटनी उत्पत्ति करवानीजे योग्यता ते स्वन्नाव जाणवो; तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्तिनुं जे निमित्त थवुं ते पूर्व कर्म समजवुं, अने तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्ति करवानो जे उद्यम करवो ते पराक्रम जाणवो; ए पांचमाथी एक ओछुं होय तो वस्तुनी उत्पत्ति थई शके नही. ए पांचनां समुदायथी घटपटादिक सर्व कार्योनी उत्पत्ति थायछे; एशुद्ध मत जाणवुं.

५२ नास्तिकः— जो कुछ होता है, सो अल्लाहुतालाके हुकमसें होता है; और किसीका किया कुछ होता नही; यही बात रास्त है.

आस्तिकः— जो ऐसे होवै, तो अल्लाहुतालाने पैदा किये हुये, इमामे हसन औ हुसन, काफिरोंके हातसें कैसे मारे गये ? वे तो खुदाके प्यारे बंदे थे, तिनकूं काफिरोने मारे, ये बडी अजायबकी बात है. तिनकूं बचानेके वास्ते खुदा ना कौवत था ? इमाम किसीके गुनेहगारन्नी नही थे; वे क्यूं मारे गये ? इसवास्ते जो होता है, सो तकदीरसें होता है. जो जैसा करता है, सो तैसा पावता है, तामें अल्लाहुतालाका कुछ वास्ता नही है. यही बात रास्त है.

५३ नास्तिकः— अल्लाहुतालाने इमामोंका दिल देखनेके वास्ते आजाब दियाथा.

आस्तिकः— आजाब दिये शिवाय तिनोंके दिलकी वात खुदा नही जाणता था ! जो कहोगे की नही जाणताथा, तौ खुदामें खुदापना क्या रहा ! खुदा तो सब जानता है, ऐसे तुमारे कुरानेशरीफमें कहा है. एसै होके न्नी इमामोंकूं मारनेकी दयानत जो काफरोने करीथी सो खुदा जानके न्नी कैसे चुप रहा ! इसवास्ते ये बात न्नी गलत है.

५४ नास्तिक – आदमी मरगये बाद जीकूं फिरस्त लेजाते है ये बात तो सच्च है की नही ?

आस्तिक – इस बातकू कौन झूठ कहता है ? लेकीन समजमे कुछ फरक है तुम कहेते हो की कीयामततक जीकूं एक ठिकानेमे रखते है, पीछे खुदाके पाश ले जाके इन्साफ करवाते है, ऐसे नही होवै है लेकीन उसीवख्त जी अपनी त गदीरके लिये अछा या बुरा फल पावता हे तुमभी सुख, दुःख, बेहेस्त औ दोज क तो मानते हो । सो जैसी जीने करनी करी होवै तेसी गति उसकु मलती है

५५ नास्तिक – अल्लाहुतालाने असे फरमाया है की जो किसीकूं इजा देता है सो मारने लायक है

आस्तिक – कबू मावाप छोकरेकूं इजा देते है, आ कबु छोकरा मावापकूं इजा देता है, कबू पीर मुर्शिदकू इजा देता है, औ कबू मुर्शिद पीरकूं इजा देता है, कबू नोकर खाविदकू इजा देता है, कबू खाविद नोकरकू इजा देताहै, ऐसे खुदाकी खलकतमे जहांतके जी है, वे सब इजा देनेवाले होनेते जो सब मारने लायक हो वै तो खैर महिर कैसे रहेगी । औ रहम करने लायक कोई भी नही रहेगा और इमामोकू जब काफरोने इजा दी, तब तिनोकूं कायके वास्ते इमामोने मारे नही इस वास्ते जो होवै है सो तगदिरसे होवे एसे जानना चाहिये

५६ नास्तिक –मासाआहारी पापिष्ट कहे छे आ दुनीआमा जलचर, स्थलचर, तथा खेचर प्रमुख जे नाना प्रकारना जीव छे, तेओने बेशक मारी नाखवा, अने तेओनुं मास भक्षण करवु एम अमने साहेबे फरमाव्युं छे, ते प्रमाणे करवामा शुं गुनाह तथा पाप छे ?

आस्तिक –तमारा कह्या प्रमाणे जीवने मारवु ए खुदानो हुकम छे, ते कोई ए फेरववो जोये नही जो फेरवीए तो गुनेह्गार ठरीए, एम सिद्ध थायछे , त्यारे कोई वाघ अथवा सिंह प्रमुख मनुष्यनो आहार करनार जीव, तमने मारवा आ वेछे, तेथी डरीने तमे केम नाशी जाओछो ? अने ते प्राणीने नाना प्रकारना ह थीआर वगैरेनी सहायता वडे केम मारवा तैयार थाओछो ? अने जो ते जीव तमारा दावमा आवी जाए तो केम मारीनाखो छो ? जेम खुदाए तमने जीव मा रवाने फरमाव्युं छे तेम तेओने पण मनुष्य मारवाने फरमाव्युं छे । ते प्रमाणे तेओ पोतानु कृत्य करेछे , तेओने मारवु लायक नथी जो तेओने मारवानु त मने लायक दीशतु होय, तो जे जीवोने तमे मारोछो, तेओए अथवा तेओने वा

स्ते कोई बीजा प्राणीए तमने मारवुं पण नालायक नथी; लायकज छे. माटे जेम वाघ वगैरे प्राणीओ जीव घातक होवाथी मारवा योग्य छे. तेम तमे पण जीव घातक होवाथी मारवा योग्य छो. एम तमारे कबूल करवुं जोइशे. जो कबूल नही करशो, तो खुदाना गुनेहगार ठरशो. माटे हे महामदीयन मुसलमीनो वगैरे, जीव मारवामां खुदानो हुकम होयज नही. जो एम होय तो खुदा रहम विनानो ठरे. खुदा तो रहमदिल छे, एवुं तमारा रसूलिल्लाए कुरानेशरीफमां फरमाव्युं छेः तेने बाध आवशे. ए उपरथी एवुं जणाय छे के, कोई एक पुरुषने कोई कारणने लीधे अचानक मांसनो आहार मली गयाथी, तेने तेनो स्वाद लागो तेथी, व्यसन पडी गयुं, ने पछी लोकापवादसारु खुदाए फरमाव्युं छे, एम कहीने बचारा खुदाने हिंसक ठेरव्यो जणाय छे. तेमां केटलो गुनाह छे! एनो विचारतो करो! ते प्राणीओने मारवाने खुदा फरमावे त्यारे बीजी अन्नादिक वस्तुओ पेदा शावास्ते करे? ए उपरथी साफ जणायछे के, अन्नादिक वस्तु खावायोग्य छे, पण मांस खावायोग्य नथी. तेम छतां जे जीभना स्वादने अर्थे खायछे ते राक्षसतुल्य जाणवा.

वली मुसलमीन प्रमुखने बीजुं युक्तिथी समजावे छे के, तमारा कितावोमां आबने पाक वस्तु कहीछे, अने पिशावने नापाक वस्तु कहीछे, पाक वस्तुथी जे पेदाश थायछे, ते पाक कहेवायछे, अने नापाक वस्तुथी जे पेदाश थायछे ते नापाक कहेवायछे. जेम के, अन्न वगैरे पदार्थो जे पाणी थी पेदा थायछे, ते पाक छे; अने पिशावथी जे कीटकादिक पेदा थायछे, ते नापाक छे. एवुं तमे पण मानो छो. परंतु तेम चालता नथी. केमके मांसाहार करो छो. जुओके प्राणिमात्र पिशावनी पेदाश छे. ते पिशाब ज्यारे नापाक त्यारे तेथी पेदा थयेला प्राणीओ केम पाक होय! तेओना मांसने तमे पाक मानो छो, ए केटली बेवकूफी छे वारु! जो मांसने पाक मानशो तो पिशावने नापाक कहेवाशे नही; ने जो पिशावने नापाक मानशो तो मांसने पाक मानशे नही. जेवुं कारण तेवो कार्य एवो दुनीयामां नियम छे. ज्यारे पिशाब जेवो मांस छे, त्यारे तेनो आहार कर्याथी दोजकमां गयाविना केम रहेशो! एनो पाको विचार करीने मांस भक्षण मूकी द्यो; अने पाक पाणीनी पेदाश अन्न फल, तथा फूल वगैरे अनेक स्वादिष्ट पदार्थोनो आहार करोने! परंतु तमे मानशो नही. केमके एतो जन्मनी आदत पडीगई छे. कह्युं छे के, तहाड जाए रुए ने आदत जाय मुए; तेम तमारी आदत हमणा जनार नथी; पण याद राखजो के किया मतने दहाडे जबाब देवो पडशे त्यारे आंखो, फाटीने पडोला थशे हो!

५७ नास्तिक – याज्ञिक नास्तिको प्रश्न करे छे के, यज्ञनेविषे होम करवासारु जीवने मारवु योग्य छे केमके ए कृत्य शास्त्रविहित छे, माटे एमा पाप नथी, पण पुण्य छे यज्ञनेअर्थे जे जीव मरे छे ते स्वर्गमा जायछे, माटे ते केम न करवु ?

आस्तिक – यज्ञादिकने अर्थे जे जीवनी हिंसा करवी ते योग्य नथी केमके, हिंसानो परिणाम ते पुण्य होयज नही, किंतु पाप होयछे एवो नियम छे जे शास्त्रोमा पशु होमवानुं कह्यु छे, ते शास्त्र नही पण कुशास्त्र छे अने तेनी रचना करनारा मनुष्य नही पण मनुष्यरूपे राक्षस छे एम निश्चय जाणवु जे पापने पुण्य माने तेना करतां बीजो पापी कोण ! यज्ञमां होमायलुं जीव जो स्वर्गमा जतु होय तो यज्ञ करनारा तथा करावनारा पोते होमाईने केम स्वर्गमां जता नथी ! पोते एम करता नथी तेथीज जणाय छे के, ए कल्पित वचन छे, यज्ञमा पश्वादिकनो होम शिव, ब्रह्मा, अने विष्णु आदिक देवताओने अर्थे करेछे अने तेनो बली भोग ते देवताओ लियेछे ए वात जो साची होय, तो ते देवताओ मासाहारी ठरशे देवताओने जो मास भक्षण करवानी आदत होय, तो तेओ मनुष्यना हाथे शा सारु लीये ! शु तेओ पोते आहारने अर्थे मास मेलवी शकता नथी ? तेओ तो मोटा सामर्थ्यवान कहेवायछे ते सामर्थ्य केम फोरवता नथी ! जे जीवना मासनो बलिदान तेओने आपेछे, ते जीवोनी उत्पत्ति पण तेओ पोतेज करेछे, एम तमे मानो छो पोते जीवोने उत्पन्न करी तेने मनुष्यना हाथे मरावीने तेनो बलिदान पोते लेवो ए शु देवताओने योग्य छे ! एम तो कोई साधारण माणस पण करे नही, ते कृत्य देवताओने केम सम्भवे ? जो तें देवताओने मास भक्षण करवानी होस होय, तो पोताने माटे जुदीज जातना कोई जीव विनाना एवाज स्वादवाला पदार्थनी उत्पत्ति करी ते पदार्थनो आहार करवाने शु हरकत छे ? माटे ए वधी वात मनकल्पित छे, उत्तम देवताओनेविषे एवी कल्पना करवी योग्य नथी जो ए वात तमारा कह्या प्रमाणे साची होय, तो ते उत्तम देव नही, पण अधम कहेवाय याज्ञिक लोको होमादिकने अर्थे जीवघात करी, तेनो बलिदान दीधाथी पोताने भक्त समजे छे पण एहवु भक्तनुं लक्षण होय नही, देवभक्तनुं अंतःकरण शुद्ध होयछे तेमा मलिन वासना उत्पन्न थायज नही जो मलिन वासनावालाने भक्त कहिये, तो अभक्त कोने कहीशु ! माटे एवु हिंसारूप कृत्य करनारने भक्त मानवो नही, पण अभक्त मानवो अने ते निश्चय नरकगामी छे, एमा रंचमात्र संशय आणवो नही

५८ नास्तिकः– कोइ वेदधर्मी प्रश्न करे छे के, तमारा जैनमतमां जीवना स्वरूपादिकनेविषे केवीरीते वर्णन करेलुंछे ? तेने उत्तर दिये छे के, सर्वज्ञ केवलीए आवी रीते कह्युं छेः–सर्व लोकनेविषे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय तथा पुद्गलास्तिकाय ए छ द्रव्य जरपूर छे. ए छए द्रव्य पोतपोताना गुण तथा पर्याये करी पूर्ण छे. सदा जावरूप छे. जगतनी स्थिति जेम वर्त्तमान कालमां छे, तेमज जूत कालमां हती, अने जविष्य कालमां पण एवी रीतेज जाणवी. ते मध्ये जीव अने पुद्गल अनंत काल लोलुपजूत छे. एटले जेम क्षीर तथा पाणी अने मृत्तिका तथा धातुनुं मिश्रण थयाथी एक रूप बनी जाय छे. तेम जीव तथा पुंजलोपण एकरूपे रहे छे. समय समयने विषे नवां कर्म जीवबांधे छे. अने समय समयने विषे पूर्व कर्म निर्जरीने तूटी पण जाय छे. कर्मोनी उत्पत्ति तथा नाशमां ईश्वरनुं कांइ कारण पणुं नथी ईश्वर तो अकर्त्ता छे, तेने विषे कर्त्ता पणुं कल्पाय नही. माटे ईश्वर कोईनुं कारण नथी. काल, स्वजाव, नियत, पूर्व कर्म, तथा पुरुषाकार ए पांच कारणो उत्पत्तिना कह्यां छे. एणे करीनेज पुण्य पाप जन्य स्वर्ग नरकने विषे गमनागमन थाय छे. अने दंमकमां जे नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवतानी चोवीश गतिओ कही छे. ते प्रमाणे जवपरंपराने पामेछे. अने पोताना उपार्जेला शुजाशुज कर्म जोगवे छे. ते ते जवने विषे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मने अनुसारे वर्त्ते छे. जेम माटीनी जरेली तूंबी जलमां नाखीए तो ते माटीना जारने लीधे मूबी जाय छे. पछी जेम जेम ते माटी, तेमांथी ओछी थती जाय तेम तेम ते तूंबी उपर आवती जाय छे. ज्यारे बधी माटी नीकली जाय त्यारे पाणीनी उपर तरती रहे छे. पण पाणीथी उपर जाय नही तेवी रीते जीव पाप कर्मथी लेपायो थको अधोगतिने पामे छे. पछी जेम जेम ते कर्मनी न्यूनता थती जाय तेम तेम ते ऊर्ध्व गतिने पामतो जाय छे, ज्यारे बधा कर्मोनो नाश थई जाय छे. त्यारे ते जीव लोकाग्रने विषे प्राप्त थाय छे; पण तेनी उपर अलोकमां गमन करतो नथी, जेवी रीते तुंबी जलना योगे उंची आवे छे, तेम जीव धर्मास्तिकायना योगे लोकांत रूप ऊर्ध्व गति पामेछे.

वादी आशंका करे छे के, मनुष्य शाना बलथी सात राज लोक सुधी ऊर्ध्व गमन करे छे ? जीव तो चौदमे गुणगाणे अयोगी थाय छे. एनो उत्तर दिये छे के, जेम धनुष्यथी जे बाण छूटे छे. ते पूर्व जोरना बलथी चालेछे. तेने वचमां बीजो कोई चलावनारो जोई तो नथी. ज्यारे धनुष्यमांथी बाण छूटे छे, ते क्षणने विषेज नि

थमित ठेकाणे पहोतो एम समजवु ए विषय उपर बीजा पण त्रण दृष्टातो छे कुंभकारनो चक्र, अग्निनो धूमाडो, तथा एरंडीओ ए चार दृष्टांत वडे जाणी लेवु

५९ नास्तिक —कर्मक्षय थया पछी जीव अलोकनेविषे केम जतो नथी? जो जायतो वचमा तेने कोण रोकनारो छे?

आस्तिक —चलन शक्तिने सहाय आपनारुं जे धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेनु त्या आलंबन नथी धर्मास्तिकाय द्रव्य लोक प्रमाणेज छे ते थकी अधिक नथी. तेथी अलोकमा जवाने जीव तथा पुद्गलनी गति थती नथी

६० नास्तिक —कर्मोनो क्षय करीने सिद्धावस्थाने पामेला जे सिद्ध जीवो ते सिद्धक्षेत्रे समश्रेणीए जायछे पण स्थानांतरनेविषे जता नथी तेनुं कारण शु?

आस्तिक —ते समयनेविषे कोई प्रेरक नथी प्रेरणाविना चक्रभ्रमण थाय नही, तेथी सिद्धना जीवो समश्रेणीए सिद्धसिला उपर जायछे

६१ नास्तिक —सिद्धने शरीरनो अभाव थायछे त्यारे अवगाहना केम कही छे?

आस्तिक —जेम ढालनु वासण बनाववाने अर्थे प्रथम तेना जेवो मेणनो आकार करवो पडेछे तेमा ते रस ओत्याथी ते धातुनो तेवो आकार थायछे ते वासण मेणथी तूटूं कर्या पछी पण मेणनो आकार थायछे कदाच मेण गाली नाखीए तो पण ते आकारपणु जतु नथी, केमके वासणनो आकार जे कायम रहेछे ते पण ते मेणना आकार जेवोज छे, तेथी आकारपणु कायम रहेछे तेम जीव जे शरीराकारे थयोछे ते शरीरनो अभाव थया पछी पण सिद्ध पुरुषनो आत्मा ते शरीरनी अवगाहनारूपे रहेछे एटले आउखाने अंते जेवो सिद्धना शरीरनो आकार रहेछे तेवोज जीवना प्रदेशोनो अरूपी आकार रहेछे

६२ नास्तिक —जेम जलमा जल मले ते एकरूपे थई जायछे भिन्नता देखाती नथी, तेम अनंत सिद्ध एकरूपे थई रहेले के चेतन द्रव्यपणु जुदु जुदु छे

आस्तिक — ज्यारे जलना बिंदुओ मलीने एक जलनो पिंड थाय, त्यारे एक ज जल कहेवायछे पण ज्यारे जलना बिंदु जुदा जुदा होय त्यारे बिंदु कहेवायछे एक जल कहेवाय नही तेम सिद्ध पणे सर्व एकज छे, परंतु चेतन द्रव्ये करी सर्व भिन्न भिन्न छे ते उपर दृष्टांत, जेम अनेक शीपीओथकी उत्पन्न थएला अनेक मोतीओ जुदा जुदा होयछे, तेओमाना केटलाएक लईने एक मोटो ढगलो करिये ने पछी तेओ विषे विचार करिये के ए ढगलामा एकता अनेकता शु छे? तो तरत जणाशे के ते मोतीओ उज्वलता गुणरूपे सर्व एक छे पण

आकाररूपे सर्व जुदा छे. तेम सिद्धो सर्व सिद्धतारूपे तो एक छे. पण चेतन द्रव्य रूपे जुदा छे, एविषे धान्यना पुंज वगैरे घणा दृष्टांतो छे तेथी विचारी लेवुं. वळी सर्व सिद्धोनुं सिद्धरूपपणुं एक सरखुं होवाथी जाति वाचकपणे तेओ एकज कहेवाय; पण द्रव्यपणे अनंता कहेवायछे, माटेज जगतमां एवी वदंता छे के, "प्रभु एकमां अनेक छे, अने अनेकमां एक छे" कोई सिद्धमां मोटा नाहनापणुं नथी, सर्व समान छे. मोटामां मोटापणुं तेनी पोतानी अपेक्षा ए नथी थतुं पण बीजा नाहनानी अपेक्षा ए थायछे, मोटो पोताना स्वरूपे करी शुं मोटापणुं पामेछे, जो मोटो कहेशुं तो कोई काळे नाहानो थवानो संभव थशे! अने नहानो थयाथी स्वरूपमां अपूर्णता थशे, माटे सिद्ध बधा सरखा छे. एम जाणवुं. अने सिद्ध जनना कर्मना अंश सर्व क्षय थई गयाथी पुनरपि जगतमां आगमन थतुं नथी. जेम भुंजेला अन्नजना दाणाने पृथवीमां वावीए तो ते उगे नही; तेम सिद्ध पण पाछा संसारी जीव थाय नही. केमके संसारमां आववुं कर्म विना थतुं नथी.

६३ नास्तिकः— ईश्वर पृथ्वीनो भार उतारवाने अर्थे अवतार धारण करेछे ए वात सत्य छे के मिथ्या?

आस्तिकः— ईश्वरने तो कोई शत्रु मित्र भाव नथी. तेम छतां दानवने मारवासारु तथा देवताओने निर्भय सुखी करवासारु अवतार धारण करे तो दानव शत्रु अने देवता मित्र ठर्या के नी! जेने शत्रु मित्र भाव होय तो ते ईश्वर शानो! अने दानवोने प्रथम उत्पन्न शासारु कर्या के जेओने मारवासारु पोताने मातांना उदरमां आवी नाना प्रकारनी वेदनाओ सहन करी संग्रामादिक आपत्ति वेठवी पडी! वळी दानव अने देवताओनो ईश्वर तो एकज छे, सर्वमां तेज ईश्वरनी कळा छे. तेम छतां दानवनी उत्पत्ति करी तेथी ईश्वरमां अज्ञानपणुं आवशे संसारमां त्रण प्रकारना जीव होय छे. एक धर्मी, बीजा पापी, त्रीजा महापापी. जे कोईने मारे नही ते धर्मी कहेवायछे. जे बीजा जीवने मारे ते पापी कहेवायछे ने जे पोताना जीवनो घात करे ते महापापी कहेवायछे. ईश्वरे देव तथा दानव वगैरेनी उत्पत्ति करी तेमां पोते अंशरूपे प्रवेश कर्यो छतां तेओने मार्याथी आत्मघाती ठरशे ने तेम ठर्याथी महापापी कहेवाशे.

६४ नास्तिकः—स्नाने करीने शुद्ध थवुं ए मुक्तिनुं अंग छे.

आस्तिकः—पेटमां रोग होय ने शरीरनी बाहेर लेप लगाडीए तो ते रोग कदी मटे नही. तेम आत्माना कर्म विकार ते शरीर शुचिथी कोई काळे जाय नही. ए

उपर दृष्टांत कहुं बुं जेम कोई मोटी हवेलीमा बालक मूतर्यो होय ते शुध्द करवा ने जेटली नूमि बगमी होय तेटलीज धोवी जाइये तेम शरीररूप हवेली कर्मे करी मलीन थई होय तेटलीज तपसाये करी शुध्द करवी. पण आखा शरीरने स्नान, मज्जन, स्वछ वस्त्रादिक, तथा सुगंध्यादिक करवानुं काई काम नथी, स्नान तो सोल शृगारमानो प्रथम शृंगार छे ते सर्व शृगारनो त्याग करे त्यारे ब्रह्मचारी कहेवाय कर्म निर्जराने अर्थे मुनिने ब्रह्मचर्य व्रत पालवो कह्यो तेथी पण स्नान करवुं नही एवु सिध्द थाय छे

६५ नास्तिक —यह दुनिया सब खुदाने पैदा करी है

आस्तिक —यह दुनिया सब खुदाकी करी होवे तो जो खुदाका बंदा हरवखत खुदाकी बंदगी करै, कुरान बाचै, नमाज करे, औ रोजा रखै, तिसीकू दुनीयांकी नियामते जैसेकी आल औलाद औ पैसा वगैरा मिलना चाहिये, औ हिंदु वगैरा सब फकीरके माफक होना चाहिये तैसे तो नही होता है दूसरे भी अछी सल्तीनत वाले आखोके सामने मौजूद है इस वास्ते ये बात रास्त नही है जो होवै है सो सब तकदीरसे होवै है

६६ नास्तिक – आ ससार रामे उत्पन्न कर्यो छे.

आस्तिक – जो आ जगत रामनुं उपजावेलु होय तो जेओ हमेश रामनी भक्ति करेछे पुराण वाचेछे वदना करेछे तथा एकादशी आदिक व्रत राखेछे तेओने सर्व द्रव्यादिक संपत्ति मलवी जोये बीजाओने विपत्ति होवी जोये तेम तो दीठामा आवतु नथी बीजा मुसलमानादिक पण महा संपत्तिवान दीठामां आवे छे तेथी बधुं कर्माधीन छे

६७ नास्तिक – अगदान (कन्यादान) दीधाथी पुण्य थाय छे. केमके स्त्रीपुरुष हलीमली मैथुन क्रियाना सुखने पामे छे तेनुं फल दानदेनाराने थायछे

आस्तिक —भाई, तारा जेवो पूर्वपक्षी तो एके मल्यो नथी तें तो आडो आंक वाळ्यो पण भाई, मैथुन क्रिया तो सर्व थकी अशुध्द छे, यवन लोको पण इमामना दशरानी क्रिया करेछे, त्यारे मैथुन सेव्याना वस्त्र पहेरीने करता नथी केमके ते वस्त्रने तेओ नापाक कहेछे तेमज हिंदुओ देवपूजामा व्रतने दिवशे तथा तीर्थयात्रामा मैथुननो त्याग करेछे जे मुमुक्षु (मुक्तिनी इछा करतो होय) तेणे प्रथम मैथुननो त्याग करवो ए कृत्य नरकनो हेतु होवाथी सर्वथा निंदनीक छे

इति श्री आस्तिक नास्तिकनो सवाद सक्षिप्त रुपे समाप्त

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥

अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायकृत सम्यक्तना सडसठ बोलनी सज्झाय प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ ॥ सुकृत वल्लिकादंबिनी । समरी सरसति मात ॥ समकित सड सठ बोलनी । कहिशूं मधुरी वात ॥ १ ॥ समकित दायक गुरुतणो । पच्चुवयार न थाय ॥ भव कोडाकोडे करी । करतां सर्व उपाय ॥ २ ॥ दानादिक किरिया न दिये । समकित विण शिवशर्म ॥ तेमाटे समकित वडूं । जाणो प्रवचन मर्म ॥३॥ दर्शन मोह विनाशथी । जे निर्मल गुणगण ॥ ते निश्चय समकित कह्यो । तेहना ए अहिठाण ॥ ४ ॥ ॥ ढाल ॥ देइ देइ दरसण आपणू, एदेशी ॥ ॥ चउ सद्दहणा तिलिंग छे । दशविध विनय विचारोरे ॥ त्रिण शुद्धि पण दूषण । आठ प्रभाविक धारोरे॥५॥त्रूटक॥प्रभाविक अड पंच भूषण । पंच लक्षण जाणियें॥ षट् जयण षट् आगार भावन । छव्विहा मन आणियें ॥ ५ ॥ षट ठाण समकित तणा सडसठ । भेद एह उदार ए ॥ एहनो तत्व विचार करतां । लहीजे भवपार ए ॥६॥ ढाल ॥ चउ विह सद्दहणा तिहां । जीवादिक परमछोरे ॥ प्रवचनमां जे भाषिया । लीजे तेनो अछोरे ॥ ७ ॥ त्रूटक ॥ तेहनो अर्थ विचार करिये । प्रथम सद्दहणा खरी ॥ बीजी सद्दहणा तेहना जे । जाण मुनिगुण जवहरी ॥ संवेग रंग तरंग झीले । मार्ग शुद्ध कहे बुधा ॥ तेहनी सेवा कीजिये जिम । पीजिये समता सुधा ॥ ८ ॥ ढाल ॥ समकेत जेणे ग्रही वमिकं । निन्हव ने अहछंदारे ॥ पासछाने कुशीलिया ते । वेष विडंबक मंदारे ॥ ए ॥ त्रूटक ॥ मंदा अनाणी दूर छंडो । त्रीजी सद्दहणा ग्रही ॥ परदर्शनीनो संग तजिये । चोथी सद्दहणा कही ॥ हीणातणो जे संग न तजे । तेहनो गुण नवि रहे ॥ ज्यूं जलधि जलमां भल्यूं गंगा । नीर लूणपणू लहे॥१०॥ ॥ ढाल ॥ कपूर होवे अति ऊजलूं रे; एदेशी ॥ ॥ त्रण लिंग समकित तणारे। पहिलो श्रुतअभिलाष ॥ जेहथि श्रोता रस लहेरे । जेवो साकर द्राखरे। प्राणी, धरियें समकित रंग । जिम लहिये सुख अभंग रे । प्राणी, टेक ॥ ११ ॥ तरुण सुखी स्त्री परिवर्योरे चतुर सुणे सुरगीत॥ तेहथि रागे अति घणो रे। धर्म सुण्यानी रीत रे । प्राणी० ॥ १२ ॥ भूख्यो अटवी ऊतर्यो रे । जिम द्विज घेवर चंग ॥ इछे तिम जे धर्मने रे। तेहिज बीजूं लिंग रे । प्राणी० ॥ १३ ॥ वैयावच्च गुरु देवनूं

रे । त्रीजुं लिंग उदार ॥ विद्या साधक तणि परे रे । आलस नविय लगार रे । प्राणी० ॥१४॥ ॥ढाल॥ प्रथम गोवालातणे नवेजी, ए देशी॥ ॥अरिहंत ते जिन विचरता जी ॥ कर्म खपी हुआ सिद्ध ॥ चेइय जिण पडिमा कही जी । सूत्र सिद्धात प्रसिद्ध । चतुर नर, समजो विनय प्रकार । जिम लहिये समकित सार। चतुर० ॥ १५ ॥ धर्म खिमादिक भाखेओ जी । साधु तेहना गेह ॥ आचारय आचारना जी । दायक नायक जेह । चतुर० ॥ १६ ॥ उपाध्याय ते शिष्यने जी। सूत्र भणावण हार ॥ प्रवचन संघ वखाणिये जी । दरसण समकित सार । चतुर० ॥ १७ ॥ भगति बाह्य प्रतिपत्तिथी जी । हृदय प्रेम बहुमान ॥ गुण थुति अवगुण ढाकवा जी । आशातननी हाण । चतुर० ॥ १८ ॥ पाच भेद ए दश तणो जी । विनय करे अनुकूल ॥ सींचे तेह सुधा रसे जी । धर्म वृक्षनू मूल । चतुर०॥ ॥१९॥ ढाल॥ ॥धोबीडा तू धोए मननूं धोतीयू रे॥ ॥एदेशी॥ ॥त्रण शुद्धि समकिततणी रे । तिहाँ पहिली मन शुद्धि रे ॥ श्री जिनने जिनमत विना रे । कूड सकल ए बुद्धि रे॥ चतुर विचारो चित्तमा रे । टेक ॥ २० ॥ जिन भगतें जे नवि थयु रे । तेबीजाथि नवि थाय रे॥ एवु जे मुख भाखिये रे । ते वचन शुद्धि कहिवाय रे । चतुर० ॥ २१॥छेद्यो भेद्यो वेदना रे । जे सहतो अनेक प्रकाररे ॥जिण विण पर सुर नवि नमे रे । तेहनी काया शुद्ध उदाररे । चतुर० ॥२२॥ ॥ढाल॥ मुनि जन मारगनी, ए देशी ॥ ॥ समकित दूषण परिहरो । तेमां पहिली छे शंका रे ॥ ते जिन वचन मा मत करो ॥ जेहने समनृप रंका रे । समकित दूषण परि हरो ॥ टेक ॥ २३॥ करवा कुमतनी वाछना । बीजूं दूषण तजिये ॥ पामी सुरतरु परगडो । किमबाऊल भजिये ॥ समकित०॥ २४ ॥ संशय धर्मना फलतणो । वित्तिगिछ्छा नामे ॥ त्रीजूं दूषण परिहरो । निज शुभ परिणामे ॥ समकित० ॥ २५ ॥ मिथ्यामति गुण वर्णनो । टालो चोथो दोष॥ उन्मारगि थुणता हुवे । उनमारग पोष ॥ समकित० ॥ २६ ॥ पाचमो दोष मिथ्यामती । परिचय नवि कीजे ॥ इम शुभ मति अरविंदनी । भली वासना लीजे ॥ समकित० ॥ २७ ॥ ॥ ढाल ॥ भोलिडा हंसारे विषय न राचीये, ए देशी ॥ आठ प्रभाविक प्रवचनना कह्या । पावयणी धुरि जाण ॥ वर्तमान श्रुतना जे अर्थनो । पार लहे गुण खाण ॥ धन धन शासन मन्मन मुनिवरा । टेक० ॥ २८ ॥ धर्म कथी ते बीजो जाणिये । नदिखेण परि जेह ॥ निज उपदेशेरे रजे लोकने । भजे हृदय सदेह । धन धन० ॥२९॥ वादी त्रीजोरे तर्क निपुण भण्यो । मलवादी परि जेह ॥ राजद्वारेरे जयकमला वरे । गाजतो जिम

मेह । धन धन० ॥ ३० ॥ नद्रबाहु परि जेह निमित्त कहे । परमत जीपण काज ॥ तेह निमित्तीरे चोथो जाणिये । श्री जिनशासन राज । धन धन० ॥ ३१ ॥ तप गुण ऊपर रोपे धर्मने । गोपे नवि जिन आण ॥ आश्रव लोपेरे नविकोपे कदा । पंचम तपसी जाण । धन धन० ॥ ३२ ॥ छगो विद्यारे मंत्र तणो बलि । जिम श्रीवयर मुणिंद ॥ सिद्ध सातमोरे अंजन योगथी । जिम कालिक मुनि चंद । धन धन० ॥ ३३ ॥ काव्य सुधारस मधुर अर्थे नस्या । धर्म हेतु करि जेह ॥ सिद्धसेन परि नरपति रीजवे । अष्टम वर कवि तेह । धन धन० ॥ ३४ ॥ जब नवि होवे प्रनाविक एहवा । तव विधि पूरव अनेक ॥ जात्रा पूजादिक करणी करे । तेह प्रनाविक छेक । धन धन० ॥ ३५ ॥ढाल॥ सतीय सुनद्रानी । ए देशी ॥ ॥ सोहे समकित जेहथी । सखि जिम आनरणे देह ॥ नूषण पांच ते मन वस्यां । सखी मन वस्यां । तेमां नही संदेह । मुज समकित रंग अचल होयो । टेक० ॥ ३६ ॥ पहिलुं कुशलपणुं तिहां । सखी वंदन ने पच्चखाण ॥ किरियानो विधि अति घणो । सखी आचरे तेह सुजाण । मुज० ॥ ३७ ॥ बीजूं तीरथ सेवना । सखी तीरथ तारे जेह ॥ ते गीतारथ मुनिवरा । सखी तेहसूं कीजे नेह । मुज० ॥ ३८ ॥ नगति करे गुरु देवनी । सखी त्रीजूं नूपण होय ॥ किणहि चलाव्यो नवि चले । सखि चोथुं नूषण जोय । मुज० ॥ ३९ ॥ जिनशासन अनुमोदना । सखी जेहथी बहु जन हुंत ॥ कीजे तेह प्रनावना । सखी पांच नूपणनी खंत । मुज० ॥ ४० ॥ ॥ ढाल ॥ इम नवि कीजे हो, ए देशी ॥ ॥ लक्षण पांच कह्यां समकित तणा । धुर उपशम अनुकूल । सुगुण नर ॥ अपराधी सूं पण नवि चितथकी । चिंतवियें प्रतिकूल । सुगुण नर । श्री जिननापित वचन विचारिये । टेक० ॥ ४१ ॥ सुरनर सुख जे दुःख करि लेखवे । वंछे शिवसुख एक ॥ सु० ॥ बीजूं लक्षण ते अंगीकरे । सार संवेग सुटेक । सु० । श्रीजिन० ॥ ४२ ॥ नारक चारक समनव ऊनग्यो । तारक जाणिने धर्म । सु० ॥ चाहे निकलवुं निर्वेद ते । त्रीजूं लक्षण मर्म । सु० । श्री जिन० ॥ ४३ ॥ द्रव्यथकी दुःखियानी जे दया । धर्महीणानी नाव । सु० ॥ चोथुं लक्षण अनुकंपा कही । निज शकते मनल्याव । सु० श्रीजिन० ४४ ॥ जे जिन नाख्युं ते नहि अन्यथा । एहवो जे दृढ रंग । सु० ते आस्तिकता लक्षण पांचमुं । करे कुमतिनो ए नंग । सु० । श्रीजिन० ॥ ४५ ॥ ॥ ढाल ॥ जिन जिन प्रति वंदन दिसे, ए देशी ॥ पर तीर्थी परना सुर तेणे । चैत्य ग्रह्यां वलि जेह ॥ वंदन प्रमुख तिहां नवि करवुं । ते जयणा षट नेय रे ।

नविका, समकित यतना कीजे । टेक० ॥ ४६ ॥ वदन ते कर जोडन कहिये । न मन ते शीस नमाडे । दान इष्ट अन्नादिक देवू । गौरव नगति देखाडेरे । नवि का० ॥ ४७ ॥ अनुप्रदान ते तेहने कहिये । वार वार जे दान ॥ दोप कुपात्रे पात्र मतिये । नहि अनुकपा मान रे । नविका० ॥ ४८ ॥ अण बोलावे जेह ना खवूं । ते कहिये आलाप ॥ वार वार आलाप जे करवो । ते कहिये संलाप रे । नविका० ॥४ए॥ ए जयणाथी समकित दीपे । वलि दीपे व्यवहार ॥ एमा पण कारणथी जयणा । तेना अनेक प्रकार रे । नविका० ॥ ५० ॥ ढाल ॥ ललना नीदेशी ॥ शुद्ध धरमथी नवि चले । अति दृढ गुण आधार ललना ॥ तो पण जे नवि तेहवा । तेहने एह आगार । ललना ॥ ५१ ॥ बोल्यु तेहवु पालिये । दंति दत सम बोल । ललना ॥ सज्जनना डुर्जन तणा । कब्रप कोटिने तोल । ल लना॥बो०॥५२॥राजा नगरादिक धणी । तस शासन अनियोग । ललना । तेह्थी कार्त्तिकनी परे । नहि मिथ्यात संयोग । ललना ॥बो०॥५३॥मेलो जननो घण कह्यो । बल चोरादिक जाण । ललना ॥ पेत्रपालादिक देवता । तातादिक गुरु ठाण । ल लना॥बो०॥५४॥वृत्ति डुर्जन आजिविका । ते नीखण कतार । ललना ॥ ते हेते दू पण नही । करता अन्य आचार । ललना ॥बो०॥५५॥ढाल॥राग मल्हार॥ नाविजे रे समकित जेह्थी रुअडूं॥ते नावनारे नावो मनकरि परवडूं॥ जो समकित रे ताजूं साजूं मूल रे ॥ तो व्रत तरु रे दीये शिवपद अनुकूल रे॥५६॥त्रूटक॥ अनुकूल मू ल रसाल समकित । तेहविण मति अध रे ॥ जे करे किरिया गर्व नरिया । तेह फूगो धध रे ॥ ए प्रथम नावना गुणो रुअडी । सुणो बीजी नावना ॥ बारणू समकि त धर्मपुरनुं । एहवीतें पावना॥५७॥ढाल॥त्रीजी नावना रे समकित पीठ जो दृढ स ही ॥ तो मोटो रे धर्म प्रासाद डगे नही ॥ पाइये खोटे रे मोटो मडाण न शोनी ये ॥ तेह कारण रे समकितसू चित थोनीये ॥५८॥त्रूटक॥थोनीये चित नित एम नावी । चोथी नावना नाविये ॥ समकित निधान समस्त गुणनु । एहवु मन लावियें ॥ तेह विण छूटा रत्न सरिखा । मूल उत्तर गुण सवे ॥ किम रहे ताके जेह हरवा । चोर जोर नवे नवे ॥५ए॥ढाल॥ नावो पचमी रे नावना सम दम सार रे पृथवी परे रे समकित तस आधार रे ॥ छठी नावना रे नाजन समकित जो मि ले ॥ श्रुत शीलनो रे तो रस तेहमा नवि ढले॥६०॥त्रूटक॥नवि ढले समकित नाव ना रस । अमियसम सवरतणो ॥ षट नावना ए कही एहमा । करो आदर अ ति घणो ॥ इम नावता परमार्थ जलनिधि । होइ नितु ऊकझोल ए ॥ घन पवन

पुण्य प्रमाण प्रगटे। चिदानंद कल्लोल ए॥ ६१ ॥ढाल॥जे मुनिवेष सके नवी छंडी ए देशी॥ ठरे जिहां समकित ते थानक। तेहना षट विध कहिये रे॥ तिहां पहिलुं थानक छे चेतन। लक्षण आतम लहियें रे॥ खीर नीर परें पुग्गल मिश्रित। पण एहथी छे अलगो रे॥ अनुभव हंस चंच जो लागे। तो नवि दीसे वलगो रे॥ ६२॥ बीजूं थानक नित्य आतमा। जे अनुभूत संभारे रे॥ बालकने स्तन पान वासना। पूरव भव अनुसारे रे॥ देव मनुज नरकादिक तेहना। छे अनित्य पर्याय रे॥ द्रव्यथकी अविचलित अखंडित। निज गुण आतमराय रे॥ ६३ ॥ त्रीजूं थानक चेतन कर्त्ता। कर्मतणो छे योगे रे॥ कुंभकार जिम कुंभतणो जे। दंडादिक संयोगे रे॥ निश्चयथी निज गुणनो कर्त्ता। अनुपचरित व्यवहारे रे॥ द्रव्य कर्मनो नगरादिकनो। ते उपचार प्रकारे रे॥ ६४ ॥ चोथूं थानक छे ते भोक्ता। पुण्य पाप फल केरो रे॥ व्यवहारे निश्चय नय दृष्टें। भुंजे निज गुण नेरो रे॥ पंचम थानक छे परम पद। अचल अनंत सुख वासो रे॥ आधि व्याधि तन मनथी लहिये। तसु अभावे सुख खासो रे॥ ६५ ॥ छतुं थानक मोक्षतणू छे। संयम ज्ञान उपायो रे॥ जोसहिजे लहिये तो सघले। कारण निःफलथायो रे॥ कहे ज्ञान नय ज्ञानज साचूं। ते विण कूठीकिरिया रे॥ न लहे रूपू रूपू जाणी। सीप भणी जे फिरियारे॥ ६६ ॥ कहे किरियानय किरियाविण जे। ज्ञान तेह सूं करशे रे॥जल पेसी कर पद न हलावे। तारू ते किम तरसे रे॥ दूषण भूषण छे इहां बहुला। नय एकेकने वादे रे॥ सिद्धांति ते बेहु नय साधे। ज्ञानवंत अप्रमादे रे॥ ६७ ॥ इणि परे सडसठ बोल विचारी। जे समकित आराहे रे॥ राग द्वेष टाली मन वाली। ते समसुख अवगाहे रे॥ जेहनो मन समकितमां निश्चल। कोइ नही तस तोले रे॥ श्री नय विजय विबुध पय सेवक। वाचक जस इम बोले रे॥ ६८ ॥

॥ इति श्री सम्यक्त सडसठबोल सज्झाय समाप्तः

ॐ श्री जिनाय नम

अथ श्री शृंगारवैराग्यतरंगिणीप्रारंभ

संस्कृतटीकाना कर्त्ता आरंभमा मंगलाचरण करेछे

उपजातिवृत्तं ॥ श्रीपार्श्वनाथ प्रणिपत्य भक्त्या पुरि
स्थित श्रीफलवर्द्धिकायां ॥ शृंगारवैराग्यतरंगिणी या
व्याख्याननाव्या क्रियते मया सा ॥ १ ॥

अर्थ – श्रीफलवर्द्धिकानामनी पुरीनेविषे स्थित श्रीपार्श्वनाथ भगवानने भक्तिवडे प्रणाम करीने शृंगारवैराग्यतरंगिणी नदीनी नाविकारूप व्याख्या हु करुं
अवतरण–श्रीसोमप्रभाचार्य, वैराग्यनी वासनावडे शृंगारने दूषित करनार छता आ शृंगारवैराग्यतरंगणी नामनो ग्रंथ करवानी कामनाएकरी स्त्रीनुं रूप निंदा करवा योग्य छे एवु प्रतिपादन करेछे ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ धर्मारामदवाग्निधूमलहरीलावण्य
लीलाजुष स्तन्व्यंग्या यमितान्विलोक्य तदहो बालान्किमु
त्कठसे ॥ व्यालान् दर्शनतोपि मुक्तिनगरप्रस्थानविघ्नक्ष
मान् मत्वा दूरममून् विमुच कुशल यद्यात्मनो वाछसि ॥ २॥

अर्थ –अहो ! आ धर्मरूप वननेविषे दावाग्निना धुमाडानी पंक्तिना जेवा श्यामवर्णवाळा, सूक्ष्मअंगयुक्त शरीरवाळी स्त्रीओना बाधेला जे वाळो छे, तेने जोईने तू केम आनंदने पामेछे ? जो तू पोतानुं सारु थवानी इच्छा करतो हो तो, जेना दर्शनेकरी मुक्तिरूप नगरीना मार्गमा विघ्न थायछे, एवा वाळोने व्याल (सर्प) रूप मानीने दूरथी त्याग कर. एणेकरी वैराग्यरस दर्शावीने शृंगारने दूषित कर्योछे, जेम सर्प लाबा अने काळा होयछे, तेमज स्त्रीना वाळ पण लांबा अने काळा होवाथी, तेओनु सादृश्यपणुं कह्युछे, जेम सर्पने जोताज आपणे दूर नाशी जैये छैये, तेम ते वाळोने जोताज तेओनो तिरस्कार करवो जोइये शकुनशास्त्रमा कह्युछे के, कोई बाहेर गाम कामे जतो होय ते वखते जो मार्गमा साप मळे तो ते काममा विघ्न पडतां ते कार्यनी सिद्धि थाय नही, तेमज

मुक्तिरूप नगरीना मार्गमां स्त्रीना वालरूप सर्प जो आडे आवे एटले तेओमां मोह उत्पन्न थाय तो मोटो विघ्न थायछे, माटे ए सर्वथा त्याग करवा योग्य छे. उपर कह्युं के, स्त्रीओना बांधेला वालने व्यालरूप जाण; ए ठेकाणे कविए चमत्कार राख्यो छे के, वालशब्दमां यकार मळ्याथी व्यालशब्द थायछे; माटे वालने व्याल कहेवुं योग्य छे. एने श्लेषालंकार कहेछे.

आ वृत्तमां, सर्प चालती वखते जेम वांकोचूको थई जायछे; तेम स्त्रीना केश विंटडीआळा होय तेने कविलोको श्रेष्ठ कहेछे. अने जेम सर्पनो रंग अति कालो होयछे, तेम स्त्रीना अति काळा रंगवाळा वाल होय, तो ते श्रेष्ठ कहेवाय छे. एवी रीते वालनी जे श्रेष्ठता छे, ते विषयक शृंगार रस दर्शाव्योछे, अने जेम मार्गमां सर्प आमो आवे तो कार्यसिद्धि थाय नही; तेम गुणस्थानक निसरणी चडतां पुरुषने वचमां स्त्रीना केशनो मोह उत्पन्न थयो तो तेथी श्रेणी आरोहनी सिद्धि थती नथी; एवी रीते वालनी जे निर्भर्त्सना कीधीछे ते विषयक वैराग्य रस दर्शाव्योछे. ॥ १ ॥

ये केशा लसिताः सरोरुहदृशां चारित्रचंद्रप्रभाभ्रंशां
भोदसहोदरास्तव सखे चेतश्चमत्कारिणः ॥ क्लेशान्मू
र्त्तिमतोऽवगम्य नियतं दूरेण तानुत्सृजेर्नोचेत् कष्टपरंप
रापरिचितः शोच्यां दशामेष्यसि ॥ २ ॥

अर्थः- हे सखा, कमलपत्रना जेवां नेत्रोवाळी स्त्रीना देदीप्यमान केश, चारित्ररूप चंद्रनी ज्योतिनो नाश करवाविषे मेघजेवा छे; अने जे तारा अंतःकरणमां चमत्कार उत्पन्न करेछे, तेओ मूर्त्तिमान चक्षुरिंद्रियगम्य क्लेश छे; एम निश्चय जाणीने दूर नाखी दे. जो एओनो तुं त्याग करीश नही, तो तुं कष्टपरंपराए युक्त थयोथको शोक करवायोग्य अवस्थाने पामीश. आ श्लोकमां स्त्रीना केशने क्लेशनुं सादृश्य कह्युंछे, ते आवी रीते "लसित" ए शब्द मूलमां छे, एनो अर्थ लकारे करी सित केहेतां युक्त, केशशब्दनो क्लेश शब्द थायछे.

आ वृत्तमां, मेघना वर्णनी साथे स्त्रीना केशनी बराबरी करीछे. जेम आकाशने विषे मेघ अति शोभायमान दीठामां आवेछे, तेम स्त्रीना मस्तकनेविषे केश अति लसित एटले देदीप्यमान दीठामां आवेछे. स्त्रीनां केश जे चळकता होय ते श्रेष्ठ कहेवायछे. ए मुख्य केशनी श्रेष्ठतानो विषय कहेतां अंतरगत ते केश

धारण करनारी स्त्रीना नेत्रोने कमलपत्र जेवा कह्याछे, ए बधो शृंगार रस जाणवो अने स्त्रीना एवा केश जोईने पुरुषना अंत करणमा मदनादि विकाररूप चमत्कार उत्पन्न थायछे, माटे ते क्लेशरूप कह्याछे, केमके, कामादि विकारो क्लेशरूप कह्याछे, क्लेशो अंतरना विषय होवाथी चक्षुना विषय नथी, तेओएज जाणे केशरूप मूर्त्ति धारण करी होय नी! एवी उत्प्रेक्षा थायछे ए कारणथी स्त्रीना देदीप्यमान केशने क्लेशरूप जाणीने तेनो तु त्याग कर, एवडे वैराग्य रस दर्शाव्योछे ॥२॥

वसंततिलकावृत्तम्॥ ये शुद्धबोधशशिखडनराहुचंद्राश्चित्तं
हरंति तव वक्रकचा दृशाग्र्या ॥ ते निश्चित सुकृतमर्त्य
विवेकदेहनिर्दारणे ननु नवक्रकचा स्फुरति ॥ ३ ॥

अर्थ – हे पुरुष, निर्मल ज्ञानरूप चद्रनुं ग्रासन करवाविषे, स्त्रीना वांका केश, राहु जेवा क्रूर छे ते तारा अंत करणमा चमत्कार उत्पन्न करेछे अर्थात् राहु जेम चद्रनो ग्रास करेछे, तेम ए वांका केश तारा ज्ञाननो नाश करनारा छे अने ते जाणे सुरुतरूप मनुष्यना विवेकरूप देहनुं विदारण करवाने नवी कर्वतज होयनी! ए उत्प्रेक्षा छे एमा "वक्र कच" एटले वाका केश ते "नवक्रकच" एटले नवी करवतना जेवा छे एमकह्याथी श्लेषरूप चमत्कार जाणवो

आ वृत्तमां, स्त्रीना वाका केश होय ते श्रेष्ठ कह्याछे स्त्रीना वक्रकेश पुरुषना मनने मोहित करेछे, एथीज अंत करणमां चमत्कार उत्पन्न करेछे एम कह्यु छे, माटे ए शृंगार रस छे, अने स्त्रीना वाका केशनुं दर्शन थताज पुरुषनुं मन विव्हल थायछे, देहनी पण शुद्धि रहेती नथी, अने ज्ञाननो नाश थई जायछे तेथी तेओने राहुरूप कह्याछे तेमज विवेकरूप शरीरने कापवाने नवी कर्वत जेवा कह्याछे, एवा जाणीने तेओनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस जाणवो ॥३॥

उपजातिवृत्तम्॥अलकृतं कुंतलभारमस्या विलोक्य लोक कुरुते
प्रमोदम्॥वैराग्यवीरच्छिदुरं दुरंत ममु न किं पश्यसि कुतभारम्॥४॥

अर्थ –हे पुरुष, पुष्पादिकेकरी गुथेला स्त्रीना बाधेला केशोनो समूह एटले आंबोडो जोईने लोक आनदने पामेछे, परतु ए वैराग्यरूप वीरनु छेदन करणारु प्रास नामक दु सह शस्त्र छे एम तू का जोतो नथी? अर्थात् स्त्रीना अलंकृत "कुतलभार" एटले जे शणगारीने बांधेला केश छे, ते कुतभार एटले प्रास नाम

क शस्त्रज छे एम जाणवुं. आ ठेकाणे अलं एटले लकाररहित, कृत एटले करे लो, जे कुंतललनार शब्द, तेनो कुंतनार एवो शब्द थाय; ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, पुष्पादिकेकरी शृंगारेलो स्त्रीना केशोनो अंबोडो पुरुषने एवो रम णीय लागेछे के, ते जोईने वैराग्यवान पुरुषनो वैराग्य पण भगी जायछे; एवी श्रेष्ठता कहीछे, ते शृंगाररस छे. अने ते दुःखे करीने पण सहन न थाय एवा प्रास नामक शस्त्ररूप छतां वैराग्यनो नाशकरनारो छे; माटे तेनो त्याग कर; ए वैराग्य रस छे. ॥ ४ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ कस्तूरिकातिलकितं तुलिताष्टमींदु चित्ते विचिंतयसि सौख्यनिमित्तमेकम् ॥ वामभ्रुवां यदलिकं तदहो अलीकमित्याख्ययैव परया प्रवदंति रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थः—हे पुरुष, जेमां कस्तूरीनो तिलक कर्योछे, तेथी अष्टमीना चंद्र जेवी जेनी सुंदर भ्रुकुटी देखाय छे, ते अद्वितीय सौख्यनुं कारण छे, एवुं तुं अंतःकरण मां चिंतन करेछे, ते व्यर्थ छे. अहो इत्याश्चर्ये! ते स्त्रीओनुं अलिक एटले जे ल लाट छे, तेने पंडित लोको अलीक एटले मिथ्या कहेछे. अर्थात् अलिक एवां बे रूप ललाट वाचक छे; तेओमांना पहेला रूपने बीजा रूपे करी जाण, एटले ल लाटने मिथ्या जाण; ए पण श्लेषज छे.

आ वृत्तमां, अष्टमीनो चंद्र अर्धगोलाकार छतां बन्ने खूणाए सरखो देखायछे, तेना वचमां श्याम वर्णना चांदलाना जेवुं देखायछे, तेथी ते अति शोभित लागेछे, तेम स्त्रीनुं पण वांकुं ललाट छतां तेमां कस्तूरीनो तिलक कर्यो होय, तो अति म नोहर देखायछे, ते जोईने पुरुषना मननेविषे घणो आनंद थायछे; ते शृंगाररस छे. अने ए जे कस्तूरीना तिलक सहित स्त्रीनुं ललाट अति शोभायमान देखायछे, तेमां कांई अर्थ नथी, किंतु व्यर्थ छे; माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्यरस छे. ॥ ५ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ न भ्रूरियं पंकजलोचनायाश्चकास्ति शृंगाररसैकपात्रम् ॥ भ्रूः किंलसौ साधुतरा प्रसूते निबंधनं मोहविषद्रुमस्य ॥ ६ ॥

अर्थः—हे पुरुष, कमलपत्रना जेवां लोचनवाली स्त्रीनी शोभायमान भ्रुकुटी छे, ते जाण शृंगाररसनुं एक पात्रज छे; ते अतिशय श्रेष्ठ भूमि छे; केमके, एथकी मोह रूपविषना वृक्षनो प्रादुर्भाव उत्पन्न थायछे; अर्थात् भ्रू एटले भ्रुकुटी, ते साधुतरा

नू एटले नूमि थायछे, एम कह्यु, तेमा आवी रीते श्लेष छे.- सा एटले प्रसिद्ध, धुतरा एटले रेफरहित एवो, च्रू शब्द नूमिवाचक शब्द थयो ते योग्य छे

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जे शोनायमान च्रुकुटि, तेने शृंगार रसना पात्ररूपे कही छे, केमके, एने जोताज पुरुषने मोह उत्पन्न थायछे, माटे ए शृंगार रस छे, अने ए च्रुकुटि नथी पण मोहरूप विषना वृक्षने उत्पन्न करनारी सारी नूमि छे, एम कहेवाथी वैराग्य रस जाणवो ॥ ६ ॥

मालिनीवृत्तम् ॥ नवकुवलयदामश्यामलान् दृष्टिपातान् कृत
परमदनाशान् विक्षिपत्यायताक्षी॥ इति वहसि मुदं किं मोह
राजप्रयुक्तान् प्रशमन्नटवधार्थं विद्धमूनृष्टिपातान् ॥ ७ ॥

अर्थ.– हे पुरुष, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्रीना कुवलयनी माला जेवा श्यामवर्णवाला, अन्यमदना नाश करनारा जे कटाक्ष, ते मारा उपर नाखेछे, एम जाणीने तू शासारु हर्षित थायछे ? अरे, ए जे दृष्टिपात (कटाक्ष) छे ते प्रशम रूप शूरवीरनो वध करवा सारु मोह राजाए प्रेरणा करेला ऋष्टिपात एटले तलवारना पात (घा) छे, एम जाण, अंही दृष्टिपातनो ऋष्टिपात आवी रीते थयो छे.– दृष्टिपात शब्दनु विशेषण मूलमा " कृतपरमदनाशान् " छे, एनो श्लेष करी आवो अर्थ थाय छे.– कृत एटले कर्यो, परम एटले अत्यंत, दनाश एटले दकारनो नाश थयाथी ऋष्टिपात शब्द थाय छे ते योग्य छे

आ वृत्तमा, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्री कही छे, एथी स्त्रीना विशाल नेत्रोने कवीओए उत्तम कह्या छे, एम जाणवु, एवा विशाल नेत्रोना जे कटाक्ष, ते कुवलयनी माला जेवा, अने अन्य मदना नाश करनारा कह्या छे , एटले जे पुरुष उपर कुवलयनी मालाना जेवा कटाक्ष पमे ते पुरुष बीजा गमे तेवा मदवालो होय तो पण तरत ते स्त्रीनी उपर मोहित थईने तेना किंकर जेवो थई रहेछे, अने ते पोतानी उपर स्त्रीना कटाक्ष पडया जोइने अति आनंदित थायछे, माटे ए शृगार रस छे, अने एवो लुब्ध थएलो पुरुष मोहरूप राजाने वश थयो थको दुःखी थायछे, केमके. नेत्रकटाक्षरूप तलवारना घाएकरी तेना प्रशमरूप शूरवीरपणानो वध थायछे तेनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस छे ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ तस्या कोपपदं यदाननमहोरा
त्र स्मरन्नात्मनः संताप वितनोपि काननमहो झाला स

खे तत्यजेः ॥ एतस्मिन् वसता मनोज्ञवमहासर्पेण दष्टः पुमान् कार्याकार्यविवेकशून्यहृदयः कस्को न संजायते॥८॥

अर्थः-हे सखा, कोपनुं स्थान जे स्त्रीनुं आनन एटले मुख, तेनुं रात्रदिवस स्मरण करीने तूं पोताने संताप करीजे छे, अहो इति खेदे! ते आनन नथी पण कानन एटले वन छे; एम जाणीने मूकी दे, केमके, ए वनमां रहेनारो जे कामरूप सर्प, ते जे पुरुषने दंश करेछे, ते पुरुषनो हृदय कार्याकार्य विवेकथी शून्य थई जायछे, एवो कोण छे, के जे उक्त विवेकशून्य न थाय! किंतु सर्व थायज छे. सामान्य सर्पनाविषे करीने मूर्छित थएलो पुरुष पण शून्य हृदयवालो थई जायछे, तो जेने सर्प दंश कर्यो होय तेनुं शुं कहेवुं! अहीं कोपपद आनन कानन छे, एम कह्युंछे, तेथी कोपपद एटले ककार छे उपपद एटले समीपपद जेनो एवो आनन शब्द कानन शब्द थाय छे तें योग्य छे, एश्लेप छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनुं मुख कोपायमान कह्युं छे तेनुं कारण ए के, स्त्रीनी मुखमुद्रा यत्किंचित् कोपायमान पुरुषने दीठामां आवे तो तेने कामविकार उत्पन्न थायछे अथवा कोई कारणने लीधे स्त्रीने रीश आवीने पुरुपने पोतानी मुखमुद्रा कोपायमान करी देखाड्याथी तेने प्रीति उत्पन्न थायछे, अने विविध प्रकारे तेने समज्याव्यानी आतुरताने लीधे कामविकार उत्पन्न थायछे ते अहीं शृंगाररस जाणवो, अने स्त्रीना मुखने वन जेवुं कह्युं छे, ने तेमां कामरूप सर्प रहे छे ते दंश करीने पुरुषना हृदयने शून्य करे छे एटले सारासार विवेकरहित करे छे; अर्थात् मृतकतुल्य करे छे, तेथी तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्यरस जाणवो. ॥ ८ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ साकारमालोक्य मुखं तरुण्यः किं मुग्धबुद्धे मुदमादधासि॥इदं हि चित्तभ्रमनाटकस्य विचक्षणैरामुखमाचचक्षे ॥९॥

अर्थः- हेरूडीबुद्धिवान पुरुष, तरुण स्त्रीनुं साकार एटले सुंदर मुख जोईने तुं शासारु आनंदित थायछे! ए मुखने विद्वान पुरुष निश्चये करी चित्त भ्रमरूप नाटकनुं आमुख एटले आद्यारंभ कहेछे. अहीं साकार एटले आकार सहित जे मुख होय ते आमुख छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, तरुण स्त्रीनुं सुंदर मुख कह्युं छे, तेनुं कारण ए के मुखनी सुंदरता तारुण्यपणामां होयछे. ते गमे तेवी सारीबुद्धिवाला पुरुषनी बुद्धिने विभ्रम करे छे. एटले मोहित करेछे. ए शृंगार रस छे. अने तरुण स्त्रीनुं मुख चित्तविभ्रमरूप

नाटकनो आद्यारंभ छे एटले स्त्रीनुं मुख जोईने मोहनो आरंभ थाय छे जेम नाटकनो आद्यारंभ सूत्रधार अने नटीप्रमुखना गायन द्वारा थायछे, ते जानार पुरुषना चित्तने मोह उत्पन्न करेछे तेम ए पण जाणवु तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस छे ॥ ए ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ कामज्वरातुरमते तव सर्वदाऽऽस्यं वा
मभ्रुवां यदि कथंचिदवाप्तुमिच्छा ॥ यत्नं विनाप्यखिलज
न्मपरंपरासु तज्जातमेव भवतो ननु सर्वदास्यम् ॥ १० ॥

अर्थ – हे कामरूपज्वरथी पीडायमान थएली मतिवाला पुरुष, जो एटले सर्व काल सुंदर भ्रुकुटिवाली स्त्रीनु आस्य एटले मुख, कोई पण तने प्राप्त थवानी इच्छा होय, तो निश्चयेकरि यत्नशिवाय संपूर्ण विषे सर्वदास्य एटले सर्वनुं दासपणुं तने थयलुंज छे, एम जाणवु बे ठेकाणे " सर्वदास्य " ए शब्द आवेलो छे ते बन्नेनो अर्थ भिन्न भिन्न छे तेथी अहि यमक जाणवो

आ वृत्तमा, सुंदर भ्रुकुटीवालुं स्त्रीनुं मुख कह्यु छे, एथी जे स्त्रीनी भ्रुकुटि री होय, ते सुरूप दीगमा आवेछे तेनुं मुख कामी पुरुषने अति प्रिय लागेछे अने तेने जोताज कामीपुरुषनी मति कामज्वरथी पीडायमान थायछे, एज शृंगार रस छे अने एवा स्त्रीना मुखनी प्राप्तिनी इच्छा जे पुरुष करेछे ते जन्मने विषे पराधीन रहेछे माटे तेनो तू त्याग कर ए वैराग्य रस जाणवो.॥१

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ तस्या साधुरदं विलोक्य वद
नं य संश्रयत्यजसा मुक्त्वा मुक्तिपथ हहा प्रविशति भ्रा
त्या स दुर्ग वनम् ॥ तत्रात्यंतमचारुवद्धवसतिर्येनात्र रा
गादिभिश्चोरैर्धर्मधनापहारकरणात्कष्ट न किं प्राप्यते॥११॥

अर्थ – ते स्त्रीनुं " साधु रद " एटले सारा दातवालुं वदन एटले मुख इने जे पुरुष वेगे करी तेनो आश्रय करेछे, एटले तेमा लुब्ध थायछे ते हा हा इति खेदे ! मुक्तिमार्गने मूकीने, वसतिने अरम्य करीने दु खेकरि ण गमन न थाय एवा वनने विषे भ्रातिए करि प्रवेश करेछे ते वन त छे, तेमां गमन करनारा पुरुषनु धर्मरूप धन रागादिक चोरो हरण करी छे तेथी शु कष्टनी प्राप्ति थती नथी ? अहि साधुरद वदन जे छे ते वन छे

म कह्युं छे. ते आमः— साधुरदं ए शब्दनो पदछेद करिये तो साधुः अदं ए बे पद जुदा थायछे. एमांना अदं पदथकी दकार रहितपणुं थायछे, एम वदननुं वन थायछे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, सारा दांतवाळी स्त्रीनुं मुख जोतांज पुरुषनुं मन लुब्ध थई जायछे. मुक्तिनो मार्ग जे धर्मध्यानादिक तेने ते मूकी दे छे. जेने वसति सारी लागती नथी, मदनने वश थयो थको वनादिक एकांत स्थळमां ते स्त्रीसहित अथवा स्त्रीना आगमननी इच्छावान थयो थको वास करेछे, अने तेथी महाकष्ट सहन करेछे, एवो स्त्रीना मुख दर्शननो जे प्रभाव ते अहिं शृंगार रस छे. अने स्त्रीना मुखरूप जे वन तेमां जे पुरुष प्रवेश करेछे तेनुं धर्मरूप धन रागादिक चोर लूंटी लिये छे. माटे तेमां लुब्ध थवुं नही. ए अहिं वैराग्य रस छे. ॥ ११ ॥

पृथ्वीवृत्तम् ॥ यियाससि भवोदधेर्यदितटं तदेणीदृशामहीनमधरं धरं परिहरेः परं दूरतः ॥ इहास्फुलनतोऽन्यथाविशदवासनानौ स्तव व्रजिष्यति विशीर्णतां न भविता ततो वांछितम् ॥ १२ ॥

अर्थः—हे पुरुष, जो तुं आ संसार समुद्रनो पार लेवानी इच्छा करतो हो, तो हरिणी जेवां नेत्रोवाळी स्त्रीओना अहीन एटले अमृतादिवडे परिपूर्ण, अधर एटले ओष्ठरूप धर एटले पर्वत जे छे तेने तुं दूर नाखी दे. ते जो तुं नही मूकीश तो ते पर्वतना संघट्टनना योगे तारी निर्मळ वासनारूप नौका भांगी जशे. तेथी तारुं इच्छेलुं पार पडशे नही. जेम समुद्रमां पर्वतना लागवाथी वहाण भांगी जाय तो जवा आववादिक इष्टसिद्धि थती नथी. ते प्रमाणे तुं पण आ भव समुद्रने पहेले पार पहोंची शकीश नही. अहीं अहीन अधर जे छे ते धर एटले पर्वतज छे, एम कह्युं छे, ते आमः— जे अहीन एटले अकारे करि हीन एटले रहित अधर शब्द ते धर शब्द थाय छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनां नेत्रोने हरिणीनां नेत्रोनी बराबरी करीछे, एटले हरिणीनां नेत्रो अति विशाळ अने सुशोभित होयछे तेम स्त्रीना नेत्रो पण अति विशाल तथा सुशोभित होवाथी पुरुषनुं मन खेंची लियेछे, तथा जे कामी पुरुष छे तेने स्त्रीना अधरामृतनेविषे घणी प्रीति होयछे, माटे अमृतेकरी पूर्ण अधर कह्यां छे, ते शृंगार रस छे. अने ते अधर छे ते पर्वतज छे, केमके, जे पुरुष ते अधरनेविषे लुब्ध थायछे ते संसारथी छूटी शकतो नथी. ए वैराग्य रस छे. ॥ १२ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ न भातीदं भ्रात स्फुरदरुणरत्नौघकिरणप्रता
नं तन्वंग्यास्तरलतरलं कुंडलयुगम् ॥ दम ङ्गध पुसामिह विरहस
योगदशयोर्ज्वलच्छोकानंगज्वलनयुगिदं कुंडयुगलम् ॥ १३ ॥

अर्थ – हे भाई, देदीप्यमान रक्तवर्ण रत्नोनो किरणसमूह छे जेनाविषे, तथा “ तरल तरलं ” एटले जे अत्यत चचल छे, एवा कृशागी एटले पातला आगवाली स्त्री ना जे “ कुंडलयुगं ” एटले जे बे कानना कुंडल छे ते शोभता नथी, किंतु विरहदशा अने सयोगदशामा शोक तथा कामाग्निएकरी युक्तछे एटले विरहावस्थामा शोकावि र्भाव, तथा स्त्रीपुरुषनी सयोगावस्थामा कामाग्निनो आविर्भाव थायछे अने आ संसारनेविषे पुरुषना शातिरूप दूधने बालवावाला ए कुंडयुगल एटले बे कुंडछे एम जाण अहीं कुंडलयुग ते कुंडयुगल थाय छे ते आवी रीते –कुंडलयुग शब्दनु वि शेषण तरलतरलं एवु छे एनो श्लेषार्थ आम छे – तरलतर एटले चचल छे ल एटले लकार जेमां एवो जे कुंडलयुग शब्द, तेमानो लकार कहाडी नाखिये तो कुंडयुग शब्द थायछे, अने युग शब्द थया पछी तेना अंतमा लकार जोडीये तो कुंडयुगल शब्द थायछे ते योग्य छे

आ वृत्तमा, स्त्रीना काननेविषे देदीप्यमान रत्नजडित जे बे कुंडल होयछे, ते स्त्रीना रूपमा अति वृद्धि करेछे अने चचल होवाथी अति सुशोभित देखायछे तेमा पण कृशागी एटले पातला आगवाली स्त्रीने अति शोभेछे ए शृगार छे अ ने ए जे बे कुंडल छे ते शोभाकारक नथी पण विरहदशा तथा सयोगदशामा शो क तथा कामाग्निना उत्पन्न करनारा छे, ए पुरुषनी शातिरूप दूधनो नाश करना रा छे तेथी कुंडरूप छे, तेनो तू त्याग कर ए वैराग्य रस छे ॥ १३ ॥

अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ताडकं सस्पृह तस्याः पश्यन् मूढ परे
भवे ॥ नरो नरकपालेभ्यस्ताडं कं न सहिष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ – हे मूर्ख पुरुष, ते स्त्रीनु साभिलाष “ ताडक ” एटले कर्णभूषण अव लोकन करता आगल आवनारा भवमध्ये नरक पालन करनारा अधम परमाधा मी पुरुषोनी पासेथी “ कताड ” एटले कोण आघात सहन करनार नथी? अ पितु सर्व आघात सहन करशे अही “ ताडक ” ए शब्द बे वार आव्योछे तेओ नो अर्थ भिन्न भिन्न छे ए यमकालकार छे

आ वृत्तमां, स्त्रीना कानना कुंभल जोतांज पुरुषने एवी अभिलाषा थायछे के ए कुंभलेकरी शोभायमान स्त्री मने प्राप्त थाय तो सारुं. ए शृंगार रस छे; अने अभिलाषाए करी स्त्रीनां कुंडलोने जे पुरुष जुवे छे ते आवता भवमां नरकना पालन करनारा परमाधामी देवताओनी मार खायछे; माटे एनो त्याग करवो ए वैराग्य रस छे. ॥ १४ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ सारं गलं यमरविंदविलोचनाना
मालोक्य चेतसि मुदं कलयंति मूढाः ॥ हा निश्चितं रचि
तमुक्तिपुरप्रवेशव्यापेधमर्गलममुं न विचारयंति ॥ १५ ॥

अर्थः-- हे मूढ, कमलना जेवां नेत्रोवाली स्त्रीओनो जे सार एटले श्रेष्ट, गल एटले कंठ अवलोकन करीने पुरुषो अंतःकरणमां हर्ष पामेछे. परंतु हा इति खेदे ! ए जे गल छे ते मुक्तिनगरीमां प्रवेश करवानेविषे प्रतिबंध करनार होवाथी अर्गल छे, एवो विचार करता नथी. अहीं सार एटले अरसहित गल शब्द ते अर्गल शब्द थायछे. ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना कंठनी श्रेष्टता कहीछे. जो स्त्रीनो कंठ सारो होय तो तेने जोतांज पुरुष आनंदित थायछे; अर्थात् कामनी इछा उत्पन्न थायछे, ते अही शृंगार रस छे; अने एवा अभिलाषी पुरुषोनो मुक्तिरूप नगरीमां प्रवेश थतो नथी. माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्य रस छे. ॥ १५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अलं प्राप्य स्पर्शं कुचकलशयोः पंकजदृशां
परां प्रीतिं भ्रातः कलयसि सुधामग्नइव किम्॥अवस्कंदं धर्मक्षितिप
पकटके दातुमनसा प्रयुक्तं जानीयाः कलुषवरटेन स्पशमिम्॥१६॥

अर्थः-- हे भ्रात, जेना कमलनां पत्र जेवां नेत्र छे, एवी स्त्रीओना स्तनरूप जे कुंभ छे, तेने अलं एटले अत्यंत स्पर्श पामीने अमृतमां मग्न थई जनाराना जेवो जे तुं ते शुं उत्कृष्ट प्रीतिने पामेछे ? ए स्पर्श, धर्मरूप राजानी सैन्यने प्रहार करवानुं छे जेना मनमां, एवा कलुष एटले पापरूप भीले मोकलेलो स्पश एटले तेनासूद छे; एम तुं जाण. अहीं अलं स्पर्श जे छे ते स्पश छे; एम कह्युं. रेफ अने छे, ते ६ एकज होयछे; एवो नियम छे. माटे अलं एटले जेमां रेफ नथी एवो स्परनेविषे छुने छे ते स्पश शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना स्तननी उत्कृष्टता कहीछे, एटले पुरुषने स्त्रीना स्तननो स्प र्श थतांज अमृतनेविषे मग्न थई गएला पुरुषनी पठे आनंद उत्पन्न थायछे, ए शृंगार रस छे, अने ए स्तन जे छे ते धर्मनो नाश करवाने अर्थे पापनो एक श नो जासूद छे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस छे ॥ १६ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ पीनोन्नतं स्तनतटं मृगलोचनाया आ
लोकसे नरहितं यदपूर्वमेतत् ॥ मोहांधकारनिकरक्षय
कारणस्य विद्यास्तदस्ततटमेव विवेकभानोः ॥ १७ ॥

अर्थ – मृगना जेवा लोचनवाली स्त्रीना जे पुष्ट अने उन्नत स्तनतट एटले बे स्तनो छे, ते नरहित एटले पुरुपने हितकारक नासेछे, अने अपूर्व एटले प्र तिक्षण पुरुपने चमत्कार उत्पन्न करे छे, तेनु तु अवलोकन करेछे, पण ते मोह रूप अधकारनो क्षय करवानुं कारण विवेकरूप सूर्यना अस्ततट छे अर्थात् ए थकी ज्ञानरूप सूर्यनो अस्त थायछे आ पद्यमा स्तनतट जे छे तेने तु अस्ततट जाण एम कह्यु, केमके, नरहितं अने अपूर्वं ए बे स्तनतटना विशेषणो छे, तेओ मांथी आवो अर्थ निकले छे – नरहित एटले नकारेकरी रहित अने अपूर्व एटले जेनी आद्यमा अकार छे, एम कर्याथी स्तनतटनो अस्ततट शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमा, मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीना मांसथी भरेला अने उंचा रहेला जे बे स्तन छे, ते पुरुपने अति सुख करनारा लागेछे, अने पुरुपना मनमां कामवि कार उत्पन्न करेछे माटे ए शृगार रस छे अने एज स्तनोनुं विलोकन करनारा पुरु षोनो विवेकनाश थई जायछे, एटले कामविव्हल थयो थको तेने कांई सूजतू न थी तेथी एनो त्याग कर ए वैराग्य रस छे ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ कंदर्पद्विपकुंभचारुणि कुचद्वंद्वे मृ
गाक्ष्या मया न्यस्तो हस्त इति प्रमोदमदिरामाद्यन्मना मा
स्मभूः ॥ किंलाजन्म यदर्जितं बहुविधामन्यस्य कष्टक्रिया
हस्तोऽयं मुक्तस्य तस्य सहसाऽदायीति संचिंतये ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हे सखा, कामरूप हस्तिना गंडस्थल जेवा मनोज्ञ जे मृगाक्षी स्त्रीना बे स्तन छे, तेनेविषे में हस्तस्थापन कर्यां छे, एम जाणीने दर्परूप मदिराएकरी मदो न्मत्त अंत करणवालो तु नहीं था केमके, नाना प्रकारनी तपोनुष्ठानादिरूप जे क ष्टसाध्य क्रिया छे, तेनो अभ्यास करीने जन्मेकरी संपादन करेलां जे सुकृत एटले

पुण्य, तेने तें आडुं हाथ दीधुछे. जेमके, कोई बाहेरथी आवनारा पुरुषने हस्तप्रदानसंज्ञाएकरी निषेध करे, तेम कुचद्वंद्वनेविषे हस्तप्रदानेकरीने सुकृतनो तें निषेध कर्योछे. एवो जे तुं ते मनमां विचार कर. आ पद्यमां स्तन उपर हाथ राख्युं अने सुकृतने हाथ दीधुं एज चमत्कार छे.

आ वृत्तमां, कामरूप हस्ती कह्योछे ने तेना गंडस्थलरूप स्त्रीना बे स्तन कह्याछे. ते ज्यारे पुरुष हाथनेविषे ग्रहण करेछे त्यारे मदनातुर थयोथको महाहर्षने पामेछे; ए शृंगार रस छे; अने नाना प्रकारे कष्ट करीने संपादन करेलां सुकृतनो निषेध करेछे; माटे तेनो त्यागकर ए वैराग्य रस छे. ॥ १८ ॥

इंद्रवंशावृत्तम् ॥ कंठोपकंठे लुलितं विभावयेर्भुजं युवत्या भुजगं गराजितम् ॥ एतस्य संस्पर्शवशादपि क्षणाद् शेषचैतन्यमुपैति संक्षयम् ॥ १९ ॥

अर्थः—कंठनी पाशे वळेला गर एटले विषे करीने अजित एवा जे तरुण स्त्रीना भुज एटले बाहु, ते भुजग एटले सर्पज छे; एम तुं जाण. ए सर्पना स्पर्शमात्रेकरी संपूर्णचैतन्य क्षणमात्रमां नाशने पामेछे. जेम सर्पना स्पर्शेकरी चैतन्यनो नाश थायछे; तेमज तरुण स्त्रीना भुजस्पर्शथी चैतन्यनाश थायछे. भुजनो भुजग आवी रीते थायछेः—भुज शब्दनुं विशेषण गराजित छे, तेनो अर्थ गकार अक्षरेकरी राजित एटले युक्तथयाथी भुजग शब्द थायछे; ते युक्त छे.

आ वृत्तमां, कंठनी पाशे वांका वळेला स्त्रीना बे हाथ पुरुषने अडकतांज पुरुष अति मोहित थयोथको पोताना शरीरनी शुद्धि पण रहेती नथी. ए शृंगार रस छे; अने ए बे स्त्रीना हाथ छे ते साक्षात सर्परूप छे, केमके, एनो स्पर्श थयाथी पुरुष बेशुद्ध थई जायछे, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥१९॥

उपजातिवृत्तम् ॥ कंठावसक्ते कुपिते नवाहौ वरं बहिः प्राणहरे प्रमोदः ॥ विध्वस्तधर्मांतरजीविते नुः स्त्रैणे न बाहौ विदुषां स युक्तः २०

अर्थः—बाह्य प्राणनो नाश करनारो क्रोधायमान जे नवाहौ एटले नवीन सर्प, ते पुरुषना गळामां संलग्न थाय ते सारुं; परंतु धर्मरूप अभ्यंतर जीवित नाश करनारा जे स्त्रीसंबंधी बाहौ एटले भुज, ते पुरुषना गळामां संलग्न थयाथी जे छे, ते थायछे, ते पंडित पुरुषने योग्य नथी; केमके, सर्प, कंठसंलग्न छतां बाह्य प्राणनेविषे भुक्ष करेछे; पण स्त्रीओना जे बाहु छे, ते कंठसंलग्न थयाथी अंतर प्राण

नो नाश करेछे, माटे स्त्रीए पोताना हाथथी करेलुं आलिगन सर्प करतां पण अधिक दुःख देनारुं छे. आ श्लोकमां नवाहौ शब्द बे वखत आव्योछे तेनो अर्थ जुदो छे

आ वृत्तमा, स्त्री ज्यारे पोतानी भुजावडे पुरुषने आलिंगन करेछे, त्यारे पुरुष पोताना प्राणनी पण परवा राखतो नथी, एवो कामातुर थायछे, ए शृंगाररसछे अने सर्प गलामा बाझी प्राण लिये ते सारुं, पण स्त्रीनुं आलिंगन नज़ु नही, केमके, तेथी मागा कर्म बंधाईने अंतरात्मानो नाश थायछे माटे तेनो त्याग करवो उचित छे ए वैराग्यरस छे ॥ २० ॥

इडवशावृत्तम् ॥ कोय विवेकस्तव यन्नतभ्रुवा दोपावगूढ प्रमद विगाहसे॥ यत स्मरातकपरीतचेतसा किं सुंदरासुदरयोर्विवेचनं ॥२१॥

अर्थ – हे साधो, आ तारो कयो विवेक छे के, नम्र छे भ्रुकुटि जेओनी एवी स्त्रीना दोपावगूढ एटले भुजाए आलिगित थयो थको तू उत्कृष्ट मदने पामेछे ? केमके, कामरूप रोगेकरीने जेना अंत करण व्याप्त थयाछे, एवा पुरुषने सारा तथा नरसानुं विवेचन थतु नथी जेम अपस्मारादि (मरी) रोगवाला पुरुषने शुभाशुभ ज्ञान होतु नथी, तेम तने पण थयुछे अथवा तारो विवेक दोपावगूढ एटले दोपेकरीने युक्त छे एवो अर्थ पण थायछे, माटे ए तारो केवो विवेक छे एम कहेवुं योग्यज छे

आ वृत्तमा, पुरुषने स्त्रीए आलिगन कर्युंछता, ते गमे तेवो विवेकी होय तो पण ते एक कोरे रहीने कामातुर थयोथको हर्षित थायछे, ए शृगार रस छे, अने स्त्रीना आलिगनथी पुरुषना विवेकनो नाश थायछे, अने अत करणमा अविवेक आवेछे, माटे तेनो तु त्याग कर ए वेराग्य रस छे ॥ २१ ॥

वसततिलकावृत्तम् ॥ दृष्ट्वा विलोक्य परमगदमगनाना मानदमुद्वहसि कि मदनाधबुद्धे ॥ सत्यं विवेकनिधनैकनिमित्तमेतत् मेधाविनो हि परमं गदमुक्रणति ॥ २२ ॥

अर्थ – हे कामेकरी अंधबुद्धिवाला पुरुष, स्त्रीओना परमगद एटले उत्कृष्ट बाजुबध जोईने शु आनद करेछे ? पंडित लोको जे छे ते ए बाजुबधने ज्ञाननोनाश करनारो परम एटले उत्कृष्ट गद एटले रोग कहेछे, ते सत्य छे केमके, जेम रोग जीवना नाशनो हेतु छे, तेम स्त्रीनो बाहुभूपण पण ज्ञानना नाशनो हेतु छे ए पद्यमां परमगद ए वे वखत आव्योछे, तेनो अर्थ जुदो जुदो छे, एवो यमकरूप चमत्कार छे

आ वृत्तमां, स्त्रीना बाहुनुं भूषण जे बाजूबंध छे, ते पुरुषना मनने एवो मोहित करी लियेछे के पुरुष कामांध थयोथको महाहर्षने पामेछे. ए शृंगार रस छे; अने ए जे बाजूबंध छे ते आनंद करनारो नथी, पण जीवनो नाश करनारो मोटो रोग छे; एम जाणीने तेनो तूं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ २२ ॥

अयं जनो वलयभरं विलोकते मृगीदृशामधिभुजवल्लि बालिशः॥
न बुध्यते सुकृतचमूं जिगीषतः समुद्यतं बलभरमेनमेनसः ॥२३॥

अर्थः— अयं एटले आ प्रत्यक्ष मूर्ख जन जे छे, ते हरिणाक्षी स्त्रीओना भुजलतानेविषे वलयभरं एटले जे कंकणसमूह छे ते जुवेछे. परंतु ए वलय जे छे ते सुकृत जे शीलादिक, तेओने जीतवानी इछावालो एवो पापनो सावधानीभूत बलभर एटले सेनासमूह छे; एम जाण. आ पद्यमां वलयभर जे छे, ते बलभर छे एम कह्युंछे; बकार अने वकारनुं ऐक्यछे वलयभर शब्दनुं विशेषण अयं ए शब्द छे. एनो अर्थ अ रहित यं थायछे; तेथी वलयभर शब्द, बलभर थयो ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीओना हाथमां जे कंकण होयछे, तेने जोईने जे मूर्ख जन छे ते आनंदने पामेछे, ए शृंगार रस छे; अने ए जे कंकणनो समूह छे, ते शीलादिकनो नाश करनारो छे, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ २३ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ ये दृक्पथे तव पतंति नितंबिनीनां
कांताः करा जडिमपल्लवनप्रवीणाः॥नो वेत्सि तान् किमपव
र्गपुरप्रयाणप्रत्यूहकारणतया करकानवश्यम् ॥ २४ ॥

अर्थः— हे जडताना प्रकटीकरण करवाविषे निपुण पुरुष, नितंबिनी स्त्रीओना कांत एटले मनोज्ञ कर एटले हाथ तारी दृष्टिरूप मार्गमां आवेछे, तेओने मोक्षरूप नगरी प्रते जतां करक एटले करानी पेठे विघ्न करनारा केम जाणतो नथी! बाहेर जतां जो मार्गमां करानी वृष्टि थाय तो इछेला कार्यनी सिद्धि थाय नही, एवुं शकुनशास्त्रमां कह्युंछे. आ पद्यमां स्त्रीना कर जे छे ते करकज एम कह्युं छे. ते आवी रीतेः—करशब्दनुं विशेषण कांत शब्द छे, एनो अर्थ क छे जेना अंतनेविषे एवो थायछे; अर्थात् कर शब्दना अंते ककार राखिये तो करक थाय ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, जडतानुं प्रकटीकरण करवाविषे स्त्रीना हाथ निपुण छे, एटले स्त्रीना हाथवती पुरुषने स्पर्शादि थतांज ते गमे तेवो धर्मादिकनेविषे सावध होय तो

पण दिग्मूढ एटले कामने वश थई जाय छे, ने तेमा ते पोताने परमानद माने छे; ए शृंगार रस छे अने स्त्रीना करस्पर्शादिकेकरी स्तब्ध बनी गएला पुरुषने मोक्षनो मार्ग जे धर्म, ते सूजतो नथी, माटे तेनो तु त्याग कर ए वैराग्य रस छे.

उपजातिवृत्तम् ॥ नीव्याप्तमस्या हरिणेक्षणाया यंवीक्ष्य हारं हृदि दर्पमेषि ॥ विवेकपंकेरुहकाननस्य तमेव नीहारमुदाहरंति ॥ २५ ॥

अर्थ —नीवी एटले वस्त्र, तेनी गाठ पर्यंत हरिणाक्षी स्त्रीनो जे लंबायमान हार, तेने जोईने तूं पोताना मनमा आनंदने पामेछे, ते हारने पंमितलोक, ज्ञानरूप कमलना वनने नीहार एटले हिम कहेछे जेम हिम, कमलना वनने नाश करनारो छे, तेम स्त्रीना हृदय उपरनो जे हार ते ज्ञानने नाश करनारो छे आ पद्यमां हारने नीहार कह्योछे, ते आम —हारशब्दनु विशेषण नीव्याप्त छे एनो अर्थ आ छे —नीशब्देकरी व्याप्त एटले जे युक्त हारशब्द ते नीहारशब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमा, स्त्रीना हृदयनो जे लाबो हार ते जोताज पुरुषने अति आनद उत्पन्न थायछे, ए शृंगाररस छे, अने ते हार जे छे ते ज्ञानरूप कमलना वनने बालवामा हिम जेवो छे, एटले ते हारमां लुब्ध थएला पुरुषनुं ज्ञान नाश थई जाय छे, माटे तेनो तू त्याग कर ए वैराग्य रस छे. ॥ २५ ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥ विलोक्य किं सुदरमगनोदरं करोपि मोह मदनज्वरातुरः॥नो ईक्षसे दुर्गतिपातसम्भव भवांतरे भाविनमगनोदरम् ॥ २६ ॥

अर्थ —कामज्वरवडे पीडाने पामेला हे पुरुष, सुंदर अंगना एटले स्त्रीनुं उदर जोईने तू कां मोहने पामेछे ? अंग एटले हे पुरुष, ए उदर नथी पण जन्मांतरने विषे अने नरकने विषे पडवाथी उत्पन्न थनारा जे दर एटले भय, तेज छे, एवो कां विचार करतो नथी ? आ पद्यमा अंगनोदर ए पद बे वखत छे, तेओनो पद विभागेकरी भिन्न अर्थ छे, ते अहि यमकरूप चमत्कार जाणवो

आ वृत्तमां, स्त्रीनुं उदर जोई पुरुष मोहने पामीने कामज्वरनी पीडाने पामेछे ए शृंगाररसछे, अने ए उदर नथी पण जन्मांतर तथा नरकमां थनारो भय छे, एम जाणीने तेनो तू त्याग कर ए वैराग्य रस छे ॥ २६ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ स्फूर्जन्मनोभवभुजगमपाशनाभी नाभी कुरगकदृशां हशि यस्य लग्ना ॥ नाभीमयं जगदशेपमुदीक्षतेऽसौ यो यत्र रज्यति स तन्मयमेव पश्येत् ॥ २७ ॥

अर्थः— देदीप्यमान कामरूप सर्पनुं पाशनाभी एटले रहेवानुं स्थान जे हरिणाक्षी स्त्रीओनी नाभी एटले अवयवविशेष; तेनेविषे जे पुरुषनी दृष्टि लग्न एटले लागेलीछे, ते पुरुष अनीमय एटले निर्भय अवलोकन करतो नथी, जे पुरुष जे ठेकाणे अनुरक्त थायछे ते पुरुष संपूर्ण तद्रूप थायछे. आ पद्यमां दृष्टि संलग्न नाभी, नाभीमय संपूर्ण जुएछे. ए शब्दश्लेष चमत्कारछेः

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जे नाभि छे ते कामने रहेवानुं स्थान छे, एटले ते नाभिने जोतांज पुरुषने कामविकार उत्पन्न थायछे, ए शृंगार छे; अने जे पुरुष ए नाभिनेविषे आसक्त थायछे, ते अनेक नयने पामेछे; माटे एनो तुं त्याग कर; ए वैराग्य छे॥ २७॥

उपेंद्रवज्रावृत्तम् ॥ जडोपयुक्तं जघनं मृगाक्ष्याः समीक्ष्य किं तोषभरं तनोषि॥ अमुं विशुद्धाध्यवसायहंसप्रवासहेतुं घनमेव विद्धि॥२८॥

अर्थः— हे सखा, जड एटले मूर्ख, तेओने उपयुक्त एटले योग्य, एवा हरिणाक्षी स्त्रीना जे जघन एटले जांघ, जोईने तुं कां आनंद पामेछे ? ए जघन जे छे ते निर्मल चित्ताभिप्रायरूप हंसना प्रवास ने कारण भूत घन एटले मेघ छे; एम तुं जाण. अर्थात् ज्यारे वर्षा पडेछे त्यारे हंस पोतानुं स्थान मूकीने मानससरोवर उपर जायछे. एप्रसिद्ध छे. तेम मनुष्यनी दृष्टिने विषे स्त्रीनी जंघा आवेछे, त्यारे चित्तना निर्मल अभिप्राय मटी जायछे. आ पद्यमां जडोपयुक्त जघन जे छे ते घन छे, एम कह्युं छे, डकार अने लकारनुं सावर्ण्य होवाथी जडोपयुक्त शब्दनो जलोपयुक्त शब्द करवो एटले डकारना लोप सहित जे जघन ते घन थाय छे, ते योग्यछे. ॥ २८ ॥

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जांघ मूर्ख कामी पुरुषोने अति प्रिय लागे छे ने ते तेमां लुब्ध होयछे ए शृंगार रस छे; अने निर्मल चित्तना अभिप्रायनो नाश करेछे, अर्थात् स्त्रीनी जंघा निरख्याथी पुरुषनुं चित्त मलिन थायछे, माटे त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्य रस छे. ॥ २८ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ नितंबमुल्लासिततापनोदं दिदृक्षसे यत्कमलेक्षणानाम्॥सर्वात्मनाऽत्यंतकटुं विदित्वा तं निंबमेव त्यज दूरतोपि ॥ २९ ॥

अर्थः— संतापनी प्रेरणा करनारा कमलनयना स्त्रीना जे नितंब, एटले कटि आगळनो भाग, जोवानी तुं इच्छा करेछे; ते नितंब, पत्र, पुष्प तथा फल इत्यादि सर्व प्रकारे अत्यंत कडुवा झाडना जेवा छे, एम जाणीने दूर नाखी दे. अर्था

तू निंबनुं झाड सर्व प्रकारे कडवु होयछे, तेम स्त्रीना नितब सर्व प्रकारे ग्लानि करवा योग्य छे, तेनो तु त्याग कर आ पद्यमां उल्लसित तापनो देनार जे नितव ते निबवृक्ष छे, एम कह्युं, ते आम —उल्लसित एटले विकसित छे तकारनो अप नोद एटले नाश जेने विषे, एवो नितब शब्द निबशब्द थायछे ते योग्य छे

आ वृत्तमा, कमलना जेवा नेत्रोवाली स्त्रीना जे बे नितब छे, ते सतापनी प्रेर णा करनाराछे, एटले स्त्रीनी कटिनो पाछलो भाग जोयाथी अत्यत मदन विकार उत्पन्न थायछे, ते इच्छा पूर्ण न थयाथी तेना मनमा सताप थायछे, एवो ते नि तबोनो जे प्रभाव छे, ते शृगार रस छे, अने स्त्रीओना नितब निबडाना झाडजेवा कडवा छे, माटे एनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस छे ॥ २९ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्॥नूनं नूपुरमेतदायतदृशो रागादि
विद्वेषिणां क्रीडार्थं पुरमित्यवेत्य न दृशाप्यालोकनीय क
चित्॥ येनास्मिन् मुखमात्रचंगिमगुणैराकृष्य तैरुल्बणै
र्बद्धस्य प्रसभ चिरादपि सखे मुक्तिर्भवित्री न ते ॥ ३० ॥

अर्थ – हे सखा, नून एटले निश्चयेकरी विशालनेत्रोवाली स्त्रीओना जे आ नूपुर एटले चरणभूषण, रागादिशत्रुने क्रीडा करवानु पुर एटले नगर छे, एम जाणीने क्यारे पण नजरेकरी जोईश नही जेने पोतानु सारु थवानी इच्छा हो य, तेणे क्यारे पण शत्रुनु नगर जोवु नही केमके, ए नगर प्रसिद्ध, उदार, त था मुख्यत्वे श्रेष्ट गुणे आकर्षण करी बलात्कारेकरी तने बाधीलेशे, तेथी फरी तू छूटी शकनार नथी अर्थात् ते नूपुरमा जो तु आसक्त थशे तो, फसाई पड शे, आ पद्यमा स्त्रीओना नूपुरने शत्रुनु नगर कह्युछे, ते आम —नूपुरशब्दनुं विशे पण जे नून छे,तेनो अर्थ न शब्देकरि ऊन एटले जे रहित छे, एवु नूपुर छे,एम जाणवु

आ वृत्तमा' स्त्रीओना पगना नूपुर पुरुषना मननु हरण करी लिएछे ए शृगाररस छे ,अने ते नूपुर शत्रुनु नगर छे एम जाणीने तेनो त्याग करवो, ए वैराग्य रस छे ३०

उपजाति वृत्तम्॥यास्त्रीतिनाम्ना बिभृते शमादौ शस्त्री प्रबुद्धैरवबुध्यतां मा ॥ एना पुरस्कृत्य जगत्यनगभटो यत पुण्यभट भिनत्ति ॥ ३१ ॥

अर्थ –जे स्त्री एवु नाम तु अत करणमां धारण करेछे, ते शमादि एटले उपश मादि धर्म कर्मने विषे शस्त्री एटले एक आयुधविशेष छे, एम सुजाण पुरुषोए जा

एवुं. आ संसारनेविषे कामरूप योद्धो, ए स्त्रीरूप शस्त्रीने आगल करीने धर्मरूप योद्धानुं छेदन करेछे. जेम संग्रामनेविषे एक मोटो योद्धो, पोताना शस्त्रेकरीने प्रति योद्धानुं छेदन करेछे; तेम कामरूप योद्धो स्त्रीरूप शस्त्रीए करी धर्मरूप योद्धानुं छेदन करेछे. आ पद्यमां स्त्रीने शस्त्री कहीछे, ते आमः—या स्त्री शमादौ बिभृते, एटले जे स्त्री प्रथम शकार धारेछे, अर्थात् स्त्रीशब्दनी आद्ये शकार आव्याथी शस्त्री शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, प्रसिद्ध शृंगाररस नथी, परंतु स्त्रीनी निर्भर्त्सना द्वारा वैराग्यांतरगत शृंगारनी पण सूचना करीछे. ॥ ३१ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ येयं वधूरवसिता हृदये प्रमोदसंपादनव्यतिकरैकनिबंधनं ते ॥ सा दुर्गदुर्गतिपथेन जगन्निनीषोर्धूरेव मन्मथरथस्य विभावनीया ॥ ३२ ॥

अर्थः— हे पुरुष, ताराहृदयनेविषे हर्षसमूह उत्पादन करवानुं कारण जे वधू एटले स्त्री, अवसिता एटले आवीने रहीछे, ते स्त्रीने तुं जे हृदयने हर्ष उत्पन्न करनारी मानेछे, ते वधू, अत्यंत दुर्गम नरकना मार्गेकरी लेई जवाविषे इच्छा करनारा कामरथनी धू एटले धुरी छे; एम तुं जाण. अर्थात् ए स्त्री नथी, किंतु नरकना मार्गेकरी संसारनेविषे लईजनारो जे कामरथ, तेनी धुरी छे. आ पद्यमां वधू कामरथनी धुरी छे, एम कह्युं; मूलमां वधू शब्दनुं विशेषण अवसिता शब्द छे, एनो अर्थ वकारेकरि सित एटले रहित थयाथी वधू शब्दनो धू शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीने हर्षसमूह उत्पादन करनारी, अने पुरुषना मननेविषे रमण करनारी कहीछे, ए शृंगार रस छे; अने ए वधू नथी पण कामदेवना रथनी धुरी छे, एम जाणीने तुं त्याग कर, ए वैराग्य रस छे. ॥ ३२ ॥

मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ प्रीतिं तन्वंत्यनलसदृशो यास्तरुण्यस्तवैता देहद्युत्या कनकनिभया द्योतिताशा विवेकिन् ॥ सत्यं तासामनलसदृशां संयमारामराज्यां माभूः पार्श्वेष्यसि यदि शिवावाप्तये बद्धबुद्धिः ॥ ३३ ॥

अर्थः— हे विवेकवान् पुरुष, जेनी अनलस एटले आलस्य रहित दृष्टि छे, अने

जेनी सुवर्णना जेवी शरीरनी कांतीए दिशाओ प्रकाशित करीछे, एवी तरुण स्त्रीओ तने हर्ष उत्पन्न करेछे, ते अनलसदृश एटले अग्निना जेवी स्त्रीओनी सत्ता संयम एटले चारित्ररूप वनपरपराविषे छे, एम जाण अर्थात् जेम अग्निसपर्केकरी वन दग्ध थायछे, तेम स्त्रीसंपर्केकरी चारित्र दग्ध थायछे जो मोक्षप्राप्तिनी बुद्धि तने थई होय, तो स्त्रीओनी समीप पण जतो नही, आ पद्यमा अनलसदृश पद बे वार आव्योछे, तेनो अर्थ नोखो नोखो छे, ए चमत्कार जाणवो

आ वृत्तमा, चचलदृष्टिवाली स्त्रीना शरीरनो वर्ण सोना जेवो होय, तो पुरुषना मनमा अति आनद उत्पन्न करेछे. ए शृंगार रस छे, अने स्त्री अग्नि जेवी छे, ते संयमादिक वनपरपराने बाली भस्म करनारी छे, माटे एनो तु त्याग कर, ए वैराग्य रस छे ॥ ३३ ॥

मालिनिवृत्तम ॥ क इह विषयभोग पुण्यकर्मायशून्यं स्पृहय
ति विषभोग भावयेस्तत्त्वतस्त्वम् ॥ स्मरति न करणीयं मूर्छि
तो येन जंतु पतति कुगतिगर्ते नेक्षते मोक्षमार्गम् ॥ ३४ ॥

अर्थ – आ ससारनेविषे कयो पुरुष पुंण्यकर्मनो आय एटले लाभ, एणेकरी शून्य एटले रहित जे विषय भोग एटले पाच इंद्रियना सुखनी इछा करेछे, केमके ए जे विषयभोग छे, ते विषभोग एटले विषभक्षण छे, जे विषयभोगना योगे मोहने पामेलो प्राणी, स्मरण करवायोग्य ते करतो नथी, तेथी नरकरूप खाडामा पडेछे ते फरी मोक्षमार्गने पामतो नथी, जेम विष खानारा पुरुषने स्मरणादि रहेता नथी, तेम विषयोपभोग करनाराने पण स्मरणादिक रहेता नथी. आ पद्यमा विषय भोग जे छे ते विषभोग छे, एम कह्यु, ते आम – विषयोपभोगी पदनु यशून्य ए विशेषण छे, एनो अर्थ यकारेकरी शून्य एटले रहित थायछे, एम यकाररहित जे विषयभोग ते विषभोग छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमा, पाचे विषयोनो तिरस्कार कर्यो छे, तेओनु मूल कारण स्त्री विषय सुख शास्त्रोमा कह्युछे, ते आश्लोकमा यद्यपि प्रगट कह्यु नथी तथापि अर्थात् सिद्ध थायछे, तेथी ए शृगार रस छे, अने विषयभोगने विषभोग कह्याछे ए वैराग्य रस छे ॥ ३४ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ सखे सुख वैषयिकं यदेतदाभासते तन्नरका
तमत ॥ सत्य तदुत्सर्पदघप्रवंधनिवंधनत्वान्नरकातमेव ॥ ३५ ॥

अर्थः– हे सखा, आ जे विषयसुख छे ते तारा अंतःकरणमां कांत एटले मनोहर लागेछे, ते सत्य छे, मिथ्या नथी, परंतु विस्तारने पामनारी जे पापपरंपरा, तेनुं ए कारण छे, माटे जेनो अंत नरक छे, एटले नरकने देनारा छे; एम जाण. आ पद्यमां प्रथमना नर कांत ए बे शब्द भिन्न छे, अने पाछलना नरकांत ए बे पद एकसरखा छे, ए काव्यचमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, विषयसुख जे छे, ते पुरुषना मनने घणा सारा लागेछे, एम कह्युं छे, ते शृंगार रस छे; अने ए विषयसुखथी पापपरंपरा विस्तारने पामेछे, माटे त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्य रस छे. ॥ ३५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ स्मरक्रीडावाप्यां वदनकमले पक्ष्मलदृशां दृढाऽसक्तिर्येषामधरमधुपानं विदधताम् ॥ अदूरस्था बंधव्यसनघटना क्लेशमदती विदग्धानां तेषामिह मधुकराणामिव नृणाम् ॥ ३६ ॥

अर्थः– कामनी क्रीडारूप जे वापी एटले कुवो छे, तेनेविषे स्त्रीना अधरोष्ठरूप मधुपुष्परस पान करणारा जे पुरुष छे, जेओनी स्त्रीना मुखकमलनेविषे दृढ आसक्ति छे; एवा मोह पामनारा जे पुरुष छे, तेओने आ स्त्रीना मुख कमलनेविषे भमरानी पठे क्लेशेकरी दुःसह एवा बंधनोए व्यसन घटना एटले कष्टरचना समीपवर्त्तिनी छे; जेम मधुपान करनारा भमराओनी कमलोनेविषे दृढाशक्ति बंधने करी कष्ट देनारी छे, तेम अधररसपान करनारा पुरुषोने स्त्रीना मुख कमलनेविषे दृढ जे आसक्ति ते प्रेमबंधनेकरी कष्ट देनारी छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनो अधरामृत भमराओनी पठे पुरुषोने अति प्रेम उत्पन्न करनारो छे, ए शृंगार रस छे, अने तेथी ते भमरानी पठे बंधनने पामेछे, माटे त्याग करवा योग्य छे, ए वैराग्य रस छे. ॥ ३६ ॥

सखे संतोषांभः पिब चपलतामुत्सृज निजां शमारामे कामं विरचय रुचिं चित्तहरिण ॥ हरंत्येतां तृष्णां न युवतिनितंबस्थलभुवो विमुक्ता नीरागैर्विषमशरसंपातविषमाः ॥ ३७ ॥

अर्थः– हे सखा, आ चित्त हरिणना जेवो छे, केमके, जेम हरिण अतिचंचल होयछे, तेम चित्त पण महाचंचल होयछे; माटे मृग अने चित्तनुं सादृश्यत्व कह्युंछे; एवी चपलताने त्याग करीने संतोषरूप जलनुं पान कर; अने अत्यंत शमरूप वननी प्रीति कर. आ जे युवती एटले तरुण स्त्रीओ छे, तेओना नितंब एटले

जे केडनी पाछलनो जाग छे, ते स्थलजूमिना जेवो छे, त्या तारी तृषा मटनार न थी ए स्थलजूमि केवी छे, नीर एटले पाणी अने अग एटले वृक्ष, एणेकरी रहि त छे जल अथवा वृक्षनी छायावडे तृषा निवारण थायछे, ए बन्नेमांनो कोई ए स्थलजूमिने विषे नथी अने ए जूमिनेविषे व्याध्यादिक डुष्ट पुरुष बाण नाखेछे, ते वाग्याथी घणो सताप पामीने तारुं मरण थशे, पण तृषा मटवानी नथी व ली. ते नितब जूमि केवी छे ? के रागरहित पुरुषोए जेनो त्याग कर्योछे, अने वि पमशर जे कामदेव, तेना बाणना सपातना योगे विह्वामणी छे माटे युवतीना नितबनी इच्छा तु नही कर एवो चित्त प्रत्ये उपदेश छे

आ वृत्तमा, स्त्रीना नितबनुं वर्णन कर्यु छे, ए शृंगाररस छे, अने ते स्थलजूमि नी पठे चित्तरूप च्रमरने पीडा करेछे, ए वैराग्यरस छे ॥ ३७ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ चेतश्चापलमाकलय्य कुटिलाका
रां कुरगीदृशो दृष्ट्वा कुतलराजिमजनघनश्यामा किमुत्ता
म्यसि ॥ धर्मध्यानमहानिधानमधुना स्वीकर्त्तुकामस्य मे
प्रत्यूहार्थमुपस्थितेयमुरगश्रेणीति सचितये ॥ ३८ ॥

अर्थ – हे चित्त, कुटिल एटले वक्र आकारवाला मेघना जेवा काला अथवा काजलना जेवा अत्यंत श्यामवर्ण, जे हरिणाक्षी स्त्रीना केशनी पक्ति छे. तेने जोई ने तु शासारु व्याकुल थायछे ? ए स्त्रीना केशनी पक्ति जे छे ते धर्मचितनरूप म हानिधान स्वीकार करनारो तु तेने साप्रत कालनेविषे विघ्न करवासारू तेयार थई छे एवी उरगश्रेणि एटले सर्पपक्ति छे, एम जाण कोई कार्य करवासारू उद्युक्त पुरुषने सर्पदर्शन निषिद्ध छे, अने निधान ग्रहणना समये तो अत्यत अनिष्ट छे माटे स्त्रीकेशपक्तिरूप सर्पिणीनु दर्शन तु नही कर केमके, एम कर्याथी धर्म चितनरूप निधानना ग्रहण समये तने विघ्न आवशे नही

आ वृत्तमा, स्त्रीना केशनी पक्तिने सर्पपक्ति कहीछे अने तेनी श्यामताने मे घनी तथा काजलनी उपमा दीधीछे, ए शृंगाररस छे, अने ते सर्पनी पठे विघ्नकारी होवाथी सर्वथा त्याग करवा योग्य छे, ए वैराग्यरस छे ॥ ३८ ॥

यातु यद्यनुरुच्यते शिवपुरी रामानितंबस्थली मुचेर्दूरमिमामनं
गकलभक्रीडाविहारोचिताम् ॥ नोचेद्यौवनचडवातविततव्यामो
हधूलीकणाक्राम्यद्दष्टिरदृष्टशाश्वतपथ. प्राप्तोसि जन्माटवीम् ॥३९॥

अर्थः– हे पुरुष, जो तने मुक्तिरूप नगरी प्रत्ये जवानी अभिरुचि होय, तो तूं कामरूप गजशिशुने क्रीडाने अर्थे, विहारविषे योग्य एवा आ स्त्री नितंबरूप स्थली एटले भूमि, तेने तूं दूर मूकीदे. जो तूं ए भूमिने मुकीश नही, तो यौवनरूप प्रबल वायुए करी विस्तारने पामेला व्यामोहरूप रजःकणो तारां नेत्रोमां पडशे तेथी मार्ग सूझनार नथी अर्थात् मोक्षमार्ग मलनार नथी. आंखोमां धूल गयाथी मार्गने जोई शकातुं नथी. ए प्रसिद्ध छे; एम संसाररूप अरण्यमां भ्रमण करीश.

आ वृत्तमां, कामने हस्तिनाबालक जेवो कह्योछे. तेने क्रीडा करवाने स्त्री नितंबरूप पृथवी छे, अर्थात् कामक्रीडानुं स्थान जे स्त्रीना नितंब कह्याछे. ए शृंगाररस छे; अने ए पृथवीनेविषे यौवनना योगे नेत्रोनेविषे रजःकणो पडयाथी मार्ग सूजतो नथी; अर्थात् स्त्री नितंबरूप भूमिनेविषे जे पुरुष आवी जायछे ते विषयरूप रजःकणोकरी हृदयांध थई जायछे. माटे ए त्याग करवा योग्य छे. ए वैराग्यरस छे. ॥ ३९॥

मालिनीवृत्तम् ॥ शमधनमपहर्तुं कामचौरप्रचारं विरचयति
निकामं कामिनी यामिनीयम् ॥ सपदि विदधती या मोह
निद्रासमुद्रां जनयति जनमंतः सर्वचैतन्यशून्यम् ॥ ४० ॥

अर्थः–आ कामिनीरूप यामिनी एटले रात्रि, उपशमरूप धन हरण करवाने सारू कामरूप चोरनो अत्यंत प्रचार प्रगट करेछे; तथा मोहरूप निद्रानी समृद्धि करनारी जे ए रात्र, ते जन एटले मनुष्योने अंतःकरणनेविषे सर्व चैतन्य थकी रहित करेछे. जेम रात्रिनेविषे सर्व मनुष्य निद्रित छतां द्रव्य हरण करवासारू चोर फिरे छे तेनी पठे जाणी लेवुं.

आ वृत्तमां, स्त्रीने मोह उत्पन्न करनारी रात्रि कहीछे, ने कामने चोर कह्योछे, अर्थात् स्त्री कामोत्पत्ति करनारी छे, ए शृंगाररस छे; अने ए रात्रिनेविषे मनुष्य भ्रमण करे तो कामरूप चोरना सपाटामां आवी पोतानी संपत्ति तथा प्राण प्रमुख सर्व खोई दियेछे, माटे एनो त्याग करवो योग्य छे ए वैराग्य रसछे. ॥ ४० ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ मृगेक्षणा नूनमसावसीमा भीमाटवी बुद्धिमतामतीत्या ॥ यद्बाहुवल्लीभिरनंगभिल्लो बध्वा नरान् लंभयते न मुक्तिम् ॥४१॥

अर्थः–जे बुद्धिमान पुरुषोने अतिक्रमण करवा योग्य नथी, जेने मर्यादा नथी, जेना मृगना जेवां नेत्र छे, एवी आ स्त्री ते भयंकर वन छे; जेनी बाहुलताए करी,

कामरूप भील, मनुष्योने बाधिने फरी छोडी मूकतो नथी, अर्थात् बाधेलोने बाधेलो ज रहेवा दियेछे जेम अरण्यमा मार्गे चालनारा लोकोने चोर, वेलिवडे बाधिने तेओनुं सर्वस्व हरण करी लीयेछे तेमज मृगेक्षणा स्त्री पोतानी बाहुलताए कठने विषे बंधन कर्या पछी पुरुषने मूकती नथी

आ वृत्तमा, स्त्रीने मर्यादारहित कही, तेथी हावभाव सूचव्या छे, स्त्रीने वनरूप कही ने तेनी भुजाने लतारूप कही, एमा कोई पुरुष सपडाय तो फसी पडेछे, अर्थात् स्त्रीए भुजावडे आलिंगन कर्युंहता तेथी पुरुष छूटी शकतो नथी, ए शृंगार रस छे, अने ए वनमा कामरूप चोरटा वसेछे ते मोक्षमार्गे जनारा पुरुषनुं धर्म धन प्रमुख हरण करी लेनार छे, माटे त्याग करवा योग्य छे, ए वैराग्य रस छे ॥४१॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ इयं वारं वार द्युतितुलितरोलबवलय न वक्र भ्रूचक्र चलयति मृगाक्षी मम पुर ॥ कुधीकारागारापसरणमति मा स्खलयितुं प्रपचत्पचेपोर्वहति निवड लोहनिगडम् ॥ ४२ ॥

अर्थ – आ मृगलोचना जे स्त्री छे, तेनु जे वाकु भ्रुकुटिचक्र छे, ते भमराओना जेवु कातिवालुं छे, ते मारी सामे वारवार चचल करेछे, एम नथी, पण नरशी बुद्धिरूप काराग्रहथी दूर नाशी जवानी इच्छावालो जे हुं छु, तेमने नाशी जवा न देता कामना प्रपच युक्त छु सह जे लोखंडनी बेडी धारण करेली छे अर्थात् जेम चोरने बेडी नाखीने बदीखानामा नाखेछे, तेमज मने पण वश करवा सारु आ स्त्री भ्रुकुटी चक्ररूप कामदेवनी लोखंडनी बेडी धारण करेछे

आ वृत्तमा, स्त्रीनु भ्रुकुटिचक्र एवु छे के जे पुरुष तेना फासामा आवे ते फरी छूटी शकतो नथी, अर्थात् अति मोह उत्पन्न करनारु छे, ए शृगार रस छे, अने स्त्रीनुं भ्रुकुटिचक्र काम देवनी लोहनी बेडी छे, माटे तेनो त्याग करवो जोये ए वैराग्य रस छे ॥ ४२ ॥

मदाक्राता वृत्तम् ॥ यामोन्यत्र द्रुततरमितो मित्र यत्कठपीठे नाय हारश्चकितहरिणीलोचनाया चकास्ति ॥ नाभीरध्रे विहितवसति र्योस्ति कदर्पसर्पस्तन्मुक्तोय स्फुरति रुचिर किंतु निर्मोकपट्ट ॥४३॥

अर्थ –हे मित्र, आ आपणे स्थानकने मूकीने जलदी बीजे ठेकाणे जवु जोये के मके तृषावान थएली हरिणीना नेत्रना जेवा जेना नेत्र छे. एवी स्त्रीओना कठमा जे

आ हार शोभे छे, ते हार नथी; किंतु नाभिरूप रंध्रनेविषे रहेनारो जे कामरूप सर्प, तेणे मूकेलुं आ मनोहर निर्मोकपट्ट एटले कंचुक दीठामां आवेछे, तेज आ ठेकाणुं मूकीने बीजे ठेकाणे भागी जवानी सूचना करेछे. सर्पनुं कंचुक भयनो हेतु छे, माटे नाभीरूप जे कामरूप सर्पने रहेवानुं राफडुं, अने आ हाररूप सर्पनुं कंचुक छे, एम जाणीने नाशी जवुं योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीओना कंठना हारनी शोभा कहीछे, तथा नाभिनुं वर्णन करेलुं छे, ए शृंगाररस छे; अने ए बन्ने दुःखना साधन होवाथी त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्यरस छे. ॥ ४३ ॥

वसंततिलका वृत्तम् ॥ यः कामकामलविलुप्तविवेकचक्षुः
स्वर्गापवर्गपुरमार्गमवीक्ष्यमाणः ॥ ज्ञानांजनं प्रति निरा
दरतामुपैति भ्रातः पतिष्यति स भीमभवांधुकूपे ॥ ४४ ॥

अर्थः– जे पुरुषना विवेकरूप चक्षु कामरूप कामल एटले नेत्र रोगेकरी ग्रस्त छे; ते स्वर्ग अने अपवर्ग एटले मोक्षरूप नगरनो मार्ग जोई शकतो नथी; एमछतां जे पुरुष ज्ञानरूप अंजननो आदर करतो नथी, ते पुरुष भयंकर संसाररूप अंधकूपमां पडेछे; जेम कमलाना रोगेकरीने जेनां नेत्रो ग्रस्त थयलां होय, ते जो आंखोनेविषे अंजन नाखवानो अनादर करे तो अंध कूपमां पडी जाय, तेम ज्ञानांजननो जे निरादर करेछे, ते आ संसाररूप आंधला कूवामां पडेछे.

आ वृत्तमां, कामने नेत्र रोगना जेवो कह्योछे, एटले जेने कामलो प्रमुख नेत्ररोग थायछे, ते कांई जोई शकतो नथी, तेम कामरूप नेत्र रोगना योगे पुरुष निर्लज्ज थायछे, एवी कामनी महिमा छे, ते शृंगाररस छे; अने कामांध पुरुष आ संसाररूप आंधला कूवामां पडेछे, माटे त्याग करवायोग्य छे, ए वैराग्यरस छे.॥ ४४॥

शिखरिणी वृत्तम् ॥ भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीं त
दानीं माकार्षीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम् ॥ यतश्छायाप्येषां प्रथय
ति महामोहमचिरादयं जंतुर्यस्मात्पदमपि न गंतुं प्रभवति ॥४५॥

अर्थः– हे पुरुष, जो तुं भवाटवीने मूकीने मुक्ति नगरीप्रते जावानी इच्छा करतो हो, तो विषयरूप विषवृक्षनेविषे वसति नही कर. केमके, आ वृक्षनी छाया पण महामोहना विस्तारने पमाडेछे. ए विषयवृक्षनी छायानो स्पर्श पण मो

ह कारक छे ए कारण माटे आ प्राणी एक पगलुं पण चालवाने समर्थ थतो नथी. जेम वननेविषे विषवृक्षनी नीचे बेठेलो पुरुष, मत्त थयेलो होयछे, ते वखते ते वन मूकीने नगरमा जवानी इच्छा करे तो एक पगलुं, पण नाखी शकातु नथी मा टे मोक्षनी इच्छा करनारा पुरुषे विषयसेवन करवानी बुद्धि करवी नही

आ वृत्तमा, विषयना सेवन थकी पुरुष कामाध थई जाय छे, एम कह्युछे ते शृं गाररस छे, अने ते सर्वथा त्याग करवा योग्य छे एम कह्युछे ते वैराग्यरस छे

उपजातिवृत्तम्॥सोमप्रभाचार्यमभा च यन्न पुसां तम पकमपाकरोति॥
तदप्यमुष्मिन्नुपदेशलेशे निशाम्यमानेऽनिशमेति नाशम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीशतार्थवृत्तिकारश्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता
शृंगारवैराग्यतरगिणी समाप्ता

अर्थ —सोमप्रभा एटलेचद्रकाति, अने अर्यमभा एटले सूर्यकाति जे मनुष्यो नो तम पक एटले अज्ञानाधकारसमूह दूर करता नथी, ते पण आ अल्प उप देश श्रवण कर्यो छता नाशने पामेछे, अर्थात् चद्रकाति तथा सूर्यकाति अज्ञानरू प अधकारनो नाश करवाने समर्थ थती नथी, अने आ-उपदेश अतरनो अंधका र मटाडवाने समर्थ छे एथी आ उपदेश अति उत्कृष्ट छे आ पद्यमा ग्रथकर्त्ता ए पोतानु सोमप्रभाचार्य एवु नाम चातुर्ये करी गोपन करेलुंछे, ते ज्ञाताओए जाणी लेवु ॥ ४६ ॥

आ ग्रथनु नाम ग्रंथकर्त्ताए शृंगारवैराग्यतरगिणी राख्युछे, एनोअर्थ शृंगार अने वैराग्यरूप तरगोवाली नदी, एवो थायछे ते नदीना बन्ने प्रकार नदलाल नामना टी काकर्त्ताए स्पष्टरीते दर्शाव्या छे, तेनोज भाव लईने आ अमे अर्थ कर्यो छे ग्रथ ना अंतमा टीकाकर्त्ताए त्रण श्लोक राख्या छे ते आप्रमाणे —

संवत्सरद्विपमुनींडुमितस्य मासे मार्गे त्रयोदशमिते दिवसे भृगौ च ॥ स्वल्पा तरी विरचिता सुखबोधिकाख्या श्लेषांघक्तत्तरतरगिणिकासुशास्त्रे ॥ १ ॥ आगारानाम्नि नगरे नदलालेन धीमता ॥ दानविशालशिष्यानुरोधेन कृपया गुरो ॥२॥ युग्मम् ॥ सोमप्रभाचार्यकृति सुदुर्गमा विवृण्वता स्वल्पधिया मयाऽत्र यत् ॥ न्यूनाधिकोट्टकन मल्पबुद्धित कृतं विशोध्यं कृतिभि कृपालुभि ॥ ३ ॥

इति श्रीशृगारवैराग्यतरगिणीभाषातर समाप्त

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

स्वःश्रेयससरसीरुह, सूरं श्रीवीरं रूपिवरं सेव ॥ सविशेषहर्षरसवश, सुरासुर व्यूहसेव्यांऽन्हिं ॥ १ ॥ श्वोवसीयससरः,शोषसहस्रांशुराश्रयः सहसां ॥ संसार लालसां वो, भूयाद्भवशो वशी वीरः ॥ २ ॥ विषयाशीविषवीश्वर, हिंसारस सरसवा रिरुहशिशिर ॥ विश्वस्य रोषशार्वर, संहाररवे शिवाय स्याः ॥ ३ ॥ आशंसवः शि वश्री,विलासलीलां विहाय सुरयोषाः ॥ यं शिश्रियुः स्वरीशाः श्रीवीरः श्रेयसेऽसौ वः ॥ ४ ॥ हरहासहंसशशिहा,रहारियशसोः शिवैषिसंश्रययोः ॥ ईहे वरिवस्यायै, वीरेशस्यांन्हिसारसयोः ॥ ५ ॥ शीलसरोवरलहरी, विहारशिशिरा असंवरीयो वः ॥ वीरस्य व्याहारा, न्हियासुरशरीरशौर्यहरा ॥ ६ ॥ उरुसंशयशैलस्वरु, ररिहा वीराव्ह यो वरवृषांसः ॥ अवसेयाह्नौल्यं वा, वर्षारुहवारिवाहरवः ॥ ७ ॥ सरलाशयाः सुशी ला, रिरंसवः श्रायसश्रिया सह ये ॥ येषां श्रीवीरेश्वर,सेवारस एव हर्षाय ॥ ८ ॥ वीर शिवालयसरसी, वरलावर सर्वविषयविह्नास्य॥ संवरसारसवासर, सर्वेषां लोलवीष्ववृ षं ॥ ९ ॥ शीलश्रियो विवाहावसरे विश्वाश्रयो रसावलये ॥ आवर्ष वसुवर्षी, वि शां विशालैरयैरासीः ॥ १० ॥ आशंसे सहसाहं, वासवसेवार्ह शिवरसाल हरे ॥ रु हविश्रसावसाय, व्यवसायायासविरहवरं ॥ ११ ॥ अहरुपयोर्विशरारु,श्रीसर्वस्वं हि शशिसरोरुहयोः ॥ अशरारुस्वास्यश्री, लास्यविलासैर्विलोलयसि ॥ १२ ॥ संसा रसलिलराशेः, शोषे रूपिरौर्वशेयइव वीरः ॥ सर्वाशालासियशो,राशिरहिंसारहःशा ला ॥ १३ ॥ उरसिशयालुः श्रेयः,श्रिया असंवरसरोरुहशशीव ॥ रायाह्नयं शि वावह, रसाविहारः स्वसेवायां ॥ १४ ॥ संदानिकं ॥ अविषह्यशिरःशूलं, विश्व लिहो विषयवैरिवारस्य ॥ व्याहरसि वृषरहस्यं, शस्याय शरीरिविसराय ॥ १५ ॥ शैश व एव सुसारः, स्वरहार्यशिरोविलोलसेव्यांन्हे ॥ संहरसि हेलयांहः, सिंहइव वशेश्वरं सहसा ॥ १६ ॥ शिशिरांशुशिशिरलेश्यै,रार्यव्यवहारलालसैरुषैः ॥ संश्रीयसे रू षीशै,रीर्ष्याविह्नीलवासिवरैः ॥ १७ ॥ उल्लासय स्वसेवारसशीले विशि शिवावलीं वी र ॥ अविरलविषयहलाहल, लहरीसंहारसुशिरीष ॥ १८ ॥ श्रवसी वशयसि सौवै, र्व्याहाररसैः सुरासुराहिविशां ॥ यैः सह रसालयाऽहा,सि हारहूाररसान्नरस ॥१९॥ रैहारिशरीरश्रीः, सुरासुरावार्यवीर्यशाली यः ॥ संवरवैरियशःशशि, राहुरशेषश्रियां वासः ॥ २० ॥ वरिवस्यः सूरिवरै,र्विहाय आशारसाविहारियशाः ॥ अंहोऽसुरवंश

हरि, सुरशैलशिलाविशालोरा. ॥ २१ ॥ शुश्रूषुशिष्यविसर,श्रव सुहर्परसवर्षिसंरा व ॥ अविलयवार्येश्वर्य, श्रीयोपाश्लेषरसविवश ॥२२॥ सैषोऽसहायवीर, शिवा रिवाराद्वेष्वसुसहेतु ॥ विश्वस्य सुरोर्वीरुह, आयुष्य श्रेयसा वीर ॥ २३ ॥ संसारो रुविषालय, वारिविशोषौर्वेह्व्यवाहो व ॥ अव्याल्लीलाऽलससुर, विलयाद्यावाऽविषय शील ॥ २४ ॥ पचनि कुलक॥ अन्हियोऽलसस्य शिष्या,वयवलवस्याऽयविरह्वि रसस्य ॥ श्रीवीर वीरयरया ल्लेश्या अश्रेयसीरस्य॥ २५ ॥ य पचवर्गपरिहारमनो ज्ञमेतच्चेतश्चमत्कृतिकर गुणकीर्तन ते ॥ जिव्हाग्रवर्ति वितनोति विपद्विताना श्री वीरभाग्ययुजि न प्रभवति तस्मिन् ॥ २६ ॥ इति पचवर्गपरिहारेण श्रीजिनप्रभसू रिकृतश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीगौतमस्तवनं ॥

श्रीमत मगधेषु गौर्वर इति ग्रामोनिरामोऽस्ति यस्तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिश श्री वीरसेवाविधौ ॥ ज्योति सश्रयगौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिं तापोत्तीर्णसुव र्णवर्णवपुषं भक्तयेन्द्रभूति स्तुवे ॥ १ ॥ के नाम नाभगुरुभाग्यसृष्टयै दृष्टयै सुराणा स्पृहयति संत ॥ निमेषविघ्नोज्झितमाननेन्दुज्योत्स्ना मनोहृत्य तवापिबद्या ॥ २ ॥ निर्जित्य नून निजरूपलक्ष्म्यातृणीकृत पंचशरस्त्वया स ॥ इत्थ न चेत्तर्हि कुतस्त्रिने त्रनेत्रानलस्त्त सहसा ददाह ॥३॥ पीत्वा गिर ते गलितामृतेच्छा सुराश्चिर चक्रुरभो ज्यमिडं ॥ सुधाम्हदे तत्र मुनीश मन्ये लक्ष्मच्छलात् शैवलमीक्ष्यतेऽत ॥ ४ ॥ सौ भाग्यभग्यापि समाधिदाने प्रत्येति लोक कथमेतदज्ञ ॥ यत्त्वा समग्राअपि लब्धिका ता समालिलिंगु समकालमेव ॥ ५ ॥ त्वत्पादपीठे विलुठत्यमर्त्यास्तभेद्भृत्या किल कल्पवृक्षा ॥ तैरप्यमाहत तवोपमानोपमेयभाव कथमस्तु वस्तु ॥ ६ ॥ पंदो र्नखाली तव रोहिणीय मुदे न कस्याद्भुतरुच्चरित्रा ॥ वदारुपुसा चन्द्रनेंडरत प्रविष्टविं बोपि शिवाय यस्या. ॥ ७ ॥ यत्केवलज्ञानमविद्यमानमृथात्मनि स्वांतिपदामदा स्त्व ॥ लोकोत्तरत्वे ननु तावकाना दिङ्मात्रमेतच्चरिताद्भुतानां ॥ ८ ॥ भवद्गुणानां स्तुतयो गुणज्ञैर्विधीयमाना विबुधाधिपाद्यै ॥ स्तुत्यातरस्तोत्रकथागणस्य समाप्त ये वृत्करणीभवति ॥ ९ ॥ न रागवान्नो भजसेतिचार नालंवसे वक्रगतिं कदाचित् ॥ पुरस्कृते नोपि घनाघनाशी तथापि पृथ्वीतनयोसि रूढ ॥ १० ॥ प्रभो महावीर मुपास्य सम्यक् त्वयार्जित यत्तुझकलारहस्य ॥ गृहे यर्तिलेप्यनिरूपरत्नत्रयीजुपा कीर्तिरतानि तेन ॥ ११ ॥ त्वद्वाणिमाधुर्यजिता पलाय्य सितोपला काचघटीं विवे

श ॥ तत्रापि नीतिं दधती शलाकाव्याजेन जग्राह तृणं नु वक्रे॥ १२ ॥ श्रीवीरसंधा रसलालसत्वात् तद्बाधिनीं केवलबोधलक्ष्मीं ॥ अप्यायतामादरिणीं वरीतुं तृणाय मत्वा त्वमिव त्वमस्थाः ॥ १३ ॥ अपोढपंके कविनिर्निषेव्ये निरस्ततापे बहुभंगजाले ॥ विभो भवद्वाङ्मुखगांगपूरे दुर्वादिपूगास्तृणवत्तरंति ॥ १४ ॥ राकामये दिग्वलये समंतात् यशःशशांकेन कृते ध्रुवं ते ॥ कुहूध्वनिः केवलमेव कंठदेशं पिकानां शरणीचकार ॥ १५ ॥ जगत्त्रयोभासि यशस्तवेतत् क्व स्पर्द्धतां सार्द्धमनेन चंद्रः ॥ यस्यापरार्द्धेपि तृणस्य नैव प्रभाप्रभावो लभतेऽवकाशं ॥ १६ ॥ छत्रेंदुपद्मादिषु रूढिमात्रं त्वन्नाम्नि तु श्रीर्वसतीति मुष्टिः ॥ कुतोन्यथा तत्क्रपदीक्षितानां पुरःपुरो नृत्यति नित्यमृद्धिः ॥ १७ ॥ वसुभूतिसुतोपि कौतुकं वसुभूतेर्जनकः प्रणेमुषां ॥ भगवन्नभवोपि वर्तसे कथमंगीकृतसर्वमंगलः ॥ १८ ॥ नाधःकरोषि वृषमीश गणाधिपोपि धत्से सदा स यमपाशमपि प्रचेताः ॥ श्रीदोपि सत्रितयमालयवासकेलिस्त्वं पावकोपि हरसे हरहेतिपातं ॥ १९ ॥ यत्तपत्यपि कलौ जिनप्रभाचार्यमंत्रमनुशीलतां स्फुरेत् ॥ हेतुताऽत्र खलु तत्वदेकताध्यानपारमितयैव गृह्यते ॥ २० ॥ मयैवं दुर्दैवं शमयितुमलं भूष्णुमहिमा सुतस्त्वं लेशेन श्रुतरथधुरा गौतमगुरो ॥ कुरूद्योतं क्षीवद्दिनपतिसुधा गौतमसिमे प्रभो विद्यामंत्र प्रभव भवतो गौतम नमः॥ २१ ॥इति श्रीगौतमस्तवनं समाप्तम्॥

॥ अथ नेमिस्तवनं क्रियागुप्तं ॥

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिना प्रणतः॥ त्वमवद्यमुक्त नेमे, प्रणमुषां शेमुषीमच्छिनां ॥ १ ॥ अवद्य ॥ मयि प्रसादप्रवणं कृपानिधे विधेहि शैवेय निजं मनस्तथा ॥ यथा जगन्नाथ मधुव्रत व्रतं भवे भवे तारकपादपद्मयोः॥ २॥भवे ॥ नयेन नेमे यदुवंशमौक्तिक श्रियानिवासस्तव पादपंकजं ॥ दुःखोर्मिसंघट्टविघट्टितात्मना तेनाति गंभीरतमे भवांबुधौ ॥ ३ ॥ आति ॥ दुर्नयार्णवमहातरीनिभाः स्यात्पदोपहितवस्तुविस्तराः ॥ पातकानि भवदीरिताःगिराऽजंतु जातशिवदानलालसाः ॥ ४ ॥ अजंतु ॥ प्रेंखन्नखश्रेणिमयूखलेखा निर्वासिताशावलयांधकारं ॥ अवार्यसौंदर्यविलास गेऽहं तवांघ्रियुग्मं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥ गे ॥ यस्त्वया ऋजुपथः सतां मतो देवखंडितकुतीर्थिकवर्गः ॥ तं प्रपद्य निरवद्यमुद्यता नेदयंति ननु मुक्तिपुरीं द्राक् ॥ ६ ॥ ऋदे ॥ वरिवस्याविधौ यस्ते सद्विवेकविनाकृतः ॥ तस्याभिमुखमीक्षंते न जातु सुखसंपदः ॥ ७॥ असत् ॥ कर्मकक्षावलीपावकं तावकं दुर्नयाहंकृतित्रासनं शासनं ॥ ये प्रपन्ना गुणस्नेहिनो देहिनस्ते सुराराध्यदुःखानि सुश्रियां ॥ ८ ॥ असुः ॥ विभवराज्यकलासुरराजतावरसणीरमणीभिरलं मम ॥ हृदि पदांबुरुहस्मरणं चते गिरि च तथ्यगुणस्तव

न तव ॥ ९ ॥ चत्ते ॥ जगज्जनश्रवणपुटामृतछटा तमोपहा सुजनितरा
गपेशला ॥ उदीरयन् गिरमिलदेशनावनावरा गतामयसुखसंपदा सता ॥
॥ १० ॥ अरा ॥ जव्यान् जवभ्रमणजीरुकचित्तवृत्तीन् सद्देशनाभिरनितस्त्वमुरुप्र
जाव ॥ दोषासमागमनिमीलितमब्जखडमाश्वासयेन्न किमुरश्मिनिरंशुमाली ॥ ११ ॥
आव ॥ जूत्याभिजूतपुरुहूतपुराभिरामता कुर्वति संततमहोत्सवजाजमुर्वरा ॥
स्वछंदनदशुमयानि महाद्भुतानि ते कल्याणकानि जुवनेश विजाव्य चेतसा ॥ १२॥
अयानि ॥ जास्त्वया भ्रमरविभ्रमवर्णो हे मुनीइ वपुषि प्रचरिलु. ॥ पापशात्रवनिब
र्हणकल्प ध्यानसततिरिवाश्रितमूर्ति ॥ १३ ॥ कहे ॥ डुर्वोध मे सपदि पदकीजूत
वास्तो पते सद्भृगश्रेणीकुवलयवनश्यामलछायकाय ॥ आकौमाराद्भुवनजयिनि
र्यस्य ते ब्रह्मवर्मे स्वै कादवैर्न खलु मदन स्प्रष्टमप्यक्रमीष्ट ॥ १४ ॥ श्य ॥ नाडानो
दनिनादयादवकुलश्रीकवपीठीलुठन् मुक्ताहारमहारथं रतिपति निर्जित्य जैनाजिरे
॥ कीर्ति कैरवकोमलामधिगत त्वामेव देव प्रजुं श्रीमन्नेमिजिनेइचइ शरण जीरुर्ज
वारातित ॥ १५ ॥ एमि ॥ सेवाहेवाकिन स्युस्तव पदयुगले येऽत्र जक्तिप्रयुक्तास्तेषा
देवा सदा पिप्रति हतविपद संपद सुप्रसन्ना ॥ चितारत्न प्रयत्नात् करतलकलि
त कुर्वता सर्वकाल काल नेतर्नराणामटति सुघटता नो मनोराज्यसिद्धि ॥ १६ ॥पि
प्रति ॥ जवताऽऽरि जयोद्धुरैर्यश प्रसरै शुक्लतया जगत्रय ॥ जिनसिद्धिरिति प्रसिद्धिजा
क् सुखसाम्राज्यमयी महापुरी ॥ १७ ॥ आरि ॥ अवगछतरा स्वसेवक मा जगवन्
या च शिवस्य वर्तिनी त्वं ॥ करुणार्द्रमना कुरु प्रसाद मयि तस्या सपदि प्रकाश
नेन ॥ १८ ॥ अवक् ॥ मरकतकमनीयकातिकाय त्वमजिनतेइ किरीटघट्टिताङ्घे ॥
चिरमिन मम चचरीकचर्या हृदय कुशेशयकोशमन्वजस्र ॥ १९ ॥ अय ॥ निखिलज
गता गोप्ता गुप्तक्रियास्तवसूत्रणादिति कृतनुति सानद श्रीजिनप्रजसूरीजि ॥ जव
तु जवता चेत्तुं जूयो जवभ्रमसजव जयमजयदो जीम श्रीमछिवातनय प्रजु ॥२०॥
इति श्रीनेमिजिनस्तवन क्रियागुप्त समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारज ॥

कसारिक्रमनिर्यदापगाधाराशुद्धविराट्लदवि ॥ वदोभिर्विविधैरधीरधी स्तोष्येऽह
चरम जिनेश्वर ॥ १ ॥ त्रैलोक्यनेतस्तव डुर्नयालीनिर्नाशन शासनमाश्रितो य ॥ त
स्येंद्रवज्रायुधमाविरस्ति डु कर्मशैलेइजिदाविधाने ॥ २ ॥ किमेकमाश्चर्यकर न ते यत्
पुष्पधयोप्येष विशेषविज्ञ ॥ त्यक्तोपजातिभ्रमणाभिलापस्त्वदगसौगध्यमनुप्रयाति
॥ ३ ॥ य सृजत्यजर सौरजतारैरखुजैस्तव पदांबुजपूजा ॥ प्रेत्य तस्य दिवि देवमृ

गाद्भ्यः स्वागतानि निगदंति सरागं ॥ ४ ॥ वाजिवारणरथोद्धतानटैरुन्नटा सुजग जोगजंगिनृत् ॥ राज्यऋद्धिरुपनम्रमीति तं नंनमीति तव यः पदौ मुदा ॥ ५ ॥ नाकिनिकायकरप्रहतानां संप्रसरन् गगने मरुजानां ॥ जन्ममहे तव कस्य न जज्ञे दत्तमदो धकधोंकृतिनादः ॥ ६ ॥ ये जक्त्यात्तभ्रमरविलसिता जङ्गुः पादांबुरुहि तव विनो ॥ तैः श्रेयः श्रीमधुरमधुररसास्वादो सादात् समजनि कृतिनिः ॥ ७ ॥ तत्वा तत्वारोपलोपप्रवीणां प्रव्हप्राणित्राणसंस्थाधुरीणां ॥ आज्ञां धत्ते मौलिना जव्यजंतुश्रेणिः श्रद्धाशालिनी तावकीनां ॥ ८ ॥ वसुधाम सुधामयवक्र विधो तव जाषितमाद्रियते जुवि यः ॥ स सुखानि सुखानिरिवोद्यमणीन् विनृते परितोऽटककीर्तिनरः ॥ ९ ॥ स्रग्विणी कुंडलभ्राजिगल्लस्थला तारहारद्युतिद्योतिवक्षस्तटा ॥ राजिराखंमलानामखंडादरा पादपीठे लुठत्तावके पावके ॥ १० ॥ क्षणादेव तेषां शिवश्रीजुजंगप्रयातं विवृद्धिं ध्रुवं कर्म पुंसां ॥ जवन्नाममंत्रस्य वर्णानुपूर्वी रसज्ञाग्रवर्तिस्फुरापादिता यैः ॥ ११ ॥ द्रुतविलंबितमध्यरवध्वनद् विविधतूर्यमनेकमणीमयं ॥ कुसुमवर्षचितं तव देशनावनितलं कइवैत्य न मोदते ॥ १२ ॥ मुकुरोज्वले गणनृतां हृदये प्रमिताक्षरापि बत वाक् जवतः ॥ अनियत्तया प्रतिपफाल जिनध्वनितोऽर्थतश्च जगदर्च्यधियां ॥ १३ ॥ जगत्प्रजो जक्तिजरादनुद्विजा द्विजातिवंशादपहृत्य कृत्यवित् ॥ नरेंद्रवंशस्थमचीकरच्चीपतिर्जवंतं हरिनैगमेषिणा ॥१४॥ वाचां ते निखिलनयाविरोधिनीनां डुर्बोधद्रुमदलने कुगरिकाणां ॥ माहात्म्यं जुवनमनः प्रहर्षिणीनां निर्वक्तुं कइव यथावदस्तु शक्तः ॥ १५ ॥ सिद्धार्थराजकुलनंदनपारिजात न भ्राम्यति क्व तव कीर्तिरपारिजात ॥ वर्णेन डुग्धमधुरेण मतोजनागसिंहोद्धता स्थिरतया सुमनोजनाऽग ॥ १६ ॥ अति महति जवोर्मीमालिनीह भ्रमंतो जननमरणवीच्या घातदोदूयमानाः ॥ कथमपि पृथुपुण्याः प्राणिनः प्राप्नुवंति प्रवहणमिव केचिच्छासनं तावकीनं ॥ १७ ॥ लवणिमतर्जितस्मरपुरंध्रिरूपदर्पा घटितकटाक्षलक्षशरविद्धकामिमर्मा ॥ कनकमणीमयाजरणरश्मिरंजितांगी व्यजयत वाणिनी न जवतः समाधिमुद्रां ॥ १८ ॥ प्रबोधं जव्यांनोरुहवनमधीशाधिगमयन् हरन् मोहध्वांतं परसमयताराः कवलयन् ॥ निविष्टः सिंहासन्यलममलजामंडलयुतो जवानाजातिस्मोदयशिखरिणीव द्युतिपतिः ॥ १९ ॥ अमितदमितस्त्रोतो माद्यत्तुरंगमसंगमत्रिदशहरणीनेत्रो नेत्रत्रिजागविलोकितैः ॥ तव जिन मनः शेके कर्तुं मनागपि न स्वसाच्चलयितुमलं किं हेमाद्रिं युगांतमहाबलाः ॥ २० ॥ दारिद्र्यापत्परिजवजनुर्विस्वसामृत्युडःखैरार्ताः के के न तव बलवद्देवसेवां प्रपन्नाः ॥ किं स्याद्रोग

प्रशमनपटोरोषधस्योपयुक्तौ मंदाक्रांता जगति जनता डुसहेनामयेन ॥ २१ ॥ शरडुदितनिशाकराशुप्रभा जैत्रकीर्तिछटाधवलितनिखिलत्रिलोकीतलं श्रद्धयोपासते ॥ सरभसविनमत्सुराधीशचूडामणिज्योतिषामरुणितपदपीठमूर्मिनिरेप्यछविस्त्वां प्रभो ॥ २२ ॥ बिभ्राणो नखविक्रिया भयकरी धूतोल्लसद्वालधीरोङ् शब्दमनीचकै प्रकटयन् भूयोवनीकादृत ॥ त्वद्भक्त्या भृतकोप्यवाप्य नृपता मांसादरवर्धयन् धत्तेऽनेकपराजिदर्पदलने शार्दूलविक्रीडित ॥ २३ ॥ विद्यामंत्रैर्न कार्यं सुरतरुनिरलं वित्तेन च मृत पर्याप्तं राज्यलक्ष्म्या रुतममरतया ह्यास्तां सुवदना ॥ स्फूर्जत्वेका तु भक्तिस्त्वयि मम मनसि ध्वस्ताखिलमला कैवल्यश्रीर्यया स्यात् करतलनिलया साऽन्हाय भगवन् ॥ २४ ॥ श्रीवीर सर्वदिक्कै कनकरुचिलभूरोचिरुद्दीप्रदीपैर्मंगल्य सोस्तु दीपोत्सव इव जगदानदसंदर्भकंद ॥ सूक्तिर्जैनप्रभीय मृडुविशदपदा स्नग्धराधीयमाना भव्यानां भव्यभूत्यै भवतु भवतुदे भावनाभाविताना ॥ २५ ॥ इति श्रीवर्द्धमान स्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्विंशतिजिनस्तवन ॥

कनककांतिधनु शतपंचकोन्नितवृषांकितदेहमुपास्महे ॥ रतिपतेर्जयिनं प्रथमं जिनं भूवृषभ वृषभ वृषभजिन ॥ १ ॥ द्विरदलांछित वांछितदायक क्रमलुठत्रिदशासुरनायक॥ स्तुतिपर पुरुषो भवति क्षिता वजित राजितरा जितराग ते॥ २॥तुरगलांछनसंभव संभवत्यहृदि जिन यत्र रसादह ॥ हृदि दधे भणितीर्गुणभूरुहा शमहिता महितामहि तावकी ॥ ३ ॥ भवमहार्णवनिस्तरणेछया त्वमभिनंदन देव निषेव्यसे ॥ व्रतभृता कुगते स्मरनिग्रहप्रसभया सभया सभयात्मना ॥ ४ ॥ त्रिभुवनामितकामितपूरणे सुरतरोरुपमामतिगामुकौ ॥ तव विभो भजते भवतः क्रमावसुमते सुमते सुमतेर्दद ॥ ५ ॥ धरनृपात्मज षष्ट जिनेश्वर त्वयि कृतप्रणय क्रियते पति ॥ रभसत प्रथितार्थिदरिद्र तोपरमया रमया रमयान्वित ॥६॥ प्रभुसुपार्श्वजगत्रितयाङ्गनु पवितकाशिपुरीकवीलक्ष्मण ॥ सुकृतिन कृतिनश्चरितं विडु शुभवतो भवतो भवतोदनं ॥ ७ ॥ कुनयकाननभजनकुजरा शशिरुचे महसेन सुत प्रभो ॥ निखिलजीवनिकायहितोक्तिभि शुभवदा भवदा भवदागमा ॥ ८ ॥ युधि विजित्य मनोभवमग्रहीन्मकरमंकमिपादध्वजमस्य य ॥ स्तुतजना सविधि कुदृशा सुरस्तुतमसतमस तमसस्तुत ॥ ९ ॥ दृढरथागजशीतल शीतलद्युतिकलाविमला तव भारती॥ मनसि कस्य न हर्षसनाथता जिन ततान ततानततायिनी॥१०॥

जयति गंडकलक्ष्मतनुर्जिनः शशिमुखोंबुजदृक् दशमोत्तरः ॥ कनकदीप्तिरमार्पितहीर कस्तवरदो वरदो वरदोर्युगं ॥ ११ ॥ शुभमयी वसुपूज्यसुत प्रभो भुवननेत्रमहो महि षांकिता ॥ तव तनुर्वितनोतु सुखं सतामरुचिरं रुचिरं रुचिरंजिता ॥ १२ ॥ सकलस त्वसरोजविकासने रविरुचिर्विमल त्रिजगत्पते ॥ अपि शर्म नयते तव गीर्जिनामृत रसा तरसा तरसा तृषं ॥ १३ ॥ निजयशोभरनिन्हुतजान्हवीजलवलक्षिमकीर्तिरनं तजित् ॥ दिशतु वः कुमतासुरनिग्रहे भृशमनःशमनः शमनश्वरं ॥ १४ ॥ भवभयं तव धर्म धुनोतु वाक्श्रुतिपथाऽतिथितां गमिता सती ॥ किमु करोति न पित्तरुजः शमं वरसिता रसिता रसिताशुपा ॥ १५ ॥ जयति शांतिजिनः स्म जगंति या भटचमूर्यु धि मोहमहीपतेः ॥ रणकथामपि भक्तिभरेण ते ससहसा सहसा सहसाऽमुचत् ॥ १६ ॥ अवति कुंथुजिनाधिपराज्यमाहिमवत स्त्वयि चक्रहताहितं ॥ त्रिदिवतोऽन्य धिका जनि ऋद्धिर्निर्धनरसा नरसानरसारकिं ॥ १७ ॥ जगदधीश सुदर्शन भूमिपान्वयपयः सरिदीश निशामणे ॥ प्रणिदधेऽतिषदो विशदव्रता वनरतानरता नरतावकान् ॥ १८ ॥ हृदि नरस्तवमल्लिजिनस्मरन्नपि हि मूर्तिमुपैति महत्फलं ॥ निशमयन् समताकरु णांचितां किमुदिता मुदिता मुदितादरः ॥ १९ ॥ त्वमिन सुव्रत कच्छपलांछनो जनरुचि र्हरिवंशविभूषणः ॥ शिवसुखाय तपः परसुज्झिताऽशुभवनो स्वनो भवनोधिपा ॥ २० ॥ विरतिवर्म तटाहतिकुंठितस्मरशरः शरणीक्रियतां त्वया ॥ गुणगणस्य नमिर्बुधवर्ह ण व्रजनभा जनभाजन भावभाक् ॥ २१ ॥ अनुमितं खलु नेमिविभो भवभ्रमणतो मयका यदि यच्चिरं ॥ महितपादभवान् भवतः कृपाभवनमानवमा वनमालिना ॥ २२ ॥ कमठशासन पार्श्वशिवंकरे रमतएव मनः प्रियधर्मणां ॥ अपि कुतीर्थ्यज नेन दुरात्मना तव मतेऽवमतेऽवमतेजसः ॥ २३ ॥ त्रिजगदीक्षण केसरिलक्षण क्ष णमपि प्रभुवीर मनोगिरौ ॥ गुणगणान् मम मास्म विरज्यतामुदयिता दयितादयि तावकान् ॥ २४ ॥ च्युतिजनुर्व्रत केवलनिर्वृतिक्षणदिनाददतां मुदमार्हताः ॥ व्यरचि यैरुपयत्रिदशैर्दृशां नवसुधा वसुधा वसुधामभिः ॥ २५ ॥ इति जिनप्रभवोमयकाऽति मक्रमगतैर्यमकाऽवयवैर्नुताः ॥ बलममी वितरंतु धुरिस्थिताः शुभवतां भवतां भवतां तिभित् ॥ २६ ॥ सदुपदेशकर प्रसरद्दिताऽखिलतमस्कतया तपनोपमाः ॥ ददतु तीर्थ कृतो मम निर्ममाः शमरमा मरमाऽमरमानिताः ॥ २७ ॥ जयति दुर्नयपंकजिनीवने हिमततिर्मतिकैरवकौमुदी ॥ शमयितुं तिमिराणि जते महावृजिनभाजि न भाजिनभार ती ॥ २८ ॥ करकृताम्रफला प्रणती जिनप्रभवतीर्थमिभारिमधिश्रिता ॥ हरतु हेमरु चिः सुदृशां सुखव्युपरमं परमं परमंबिका ॥ २९ ॥ इति चतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तं ॥

अथ श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभ

पराक्रमेणेव पराजितोऽय सिंह सिषेवे धृतलक्ष्मदम्भ ॥ सुखानि व स्वामिरय र
माणा द्वैमातुरस्तीर्थकर करोतु ॥ १ ॥ सप्ताश्वतेजा कररसकोश्च कर्मेधसप्ता
मिरसप्तभीति ॥ प्रणीतवान् सप्तशती नयाना वीर श्रिये व्यजितसप्ततत्त्व ॥ २ ॥
शक्रानत प्राणतकल्पपुष्योत्तरात्वमाषाढवलक्षषष्ठ्या ॥ देवाधिदेव द्विजदारदेवा
नदोदरेऽभूर्विहितावतार ॥ ३ ॥ इयस्य नद्यादसिता त्रयोदशी ह्यशील्यहानत
तरमीशितस्तत ॥ सुरेशसेनापतिदेशिताध्वना क्षात्रं कुलं यत्र पवित्रित त्वया
॥ ४ ॥ प्रभूतभूतिद्युभवद्भुवा भवद्भानुर्महे नोऽजनि हेजिन ध्रुवम् ॥ जगत्त्रयीजतु
षु हर्षवर्षिणी निरूढरूढिर्मदनत्रयोदशी ॥ ५ ॥ त्वया स्वदेहद्युतिसविभागसभावि
त हेम सुवर्णमासीत् ॥ तारत्तु हीन त्वदनुग्रहेण दुर्वर्णमित्यापदवर्णवाद ॥ ६ ॥
बाल्ये विबोधाय हरे सुराद्रि पादाग्रतुन्नस्तव यच्चकंपे ॥ चित्रीयता त्वत्तरसा रसात
न्मूर्धानमाधूनयतिस्म नून ॥ ७ ॥ बभूव भाग्यातिशयप्रभावात् गुरुस्तवापि त्रिजग
द्गुरोर्य ॥ युक्त्यैव तं मेरुगिरेर्गरिष्ठं सिद्धार्थमप्यार्यगणा गृणति ॥ ८ ॥ कथं गु
णै प्राप्तयश पताका नारीषु नास्तु त्रिशलाशलाका ॥ यत्कुक्षिशुक्तौ विमल सुवृ
त्तो मौतिक्यभूस्त्व गुणयुक्तिहृद्य ॥ ९ ॥ दिवि प्ररूढं सुरमीश मुष्टिघातेन यद्धाम
नतामनैषी ॥ गर्वाद्रिखर्वीकरणश्रम तु चकर्ष तीर्थेश्वर शैशवेन तत् ॥ १० ॥ मो
क्षं गमी य खलु तद्भवेपि गतु कथ सोर्हति लेखशाला ॥ इतीव शक्रोऽपललाप
पित्रोरभौचिति ते विनयेन धीमान् ॥ ११ ॥ व्याकुर्वतस्ते हरये यदागम सगृह्य बु
व्या कतिचित् गिरा लवान् ॥ अध्यापको यद्दिदधे तदुच्चकैरैद्रं भुवि व्याकरण प्र
थामगात् ॥ १२ ॥ यस्या न कस्योदितमुक्तिमार्गमार्गस्य कल्पा दशमी शमीश ॥ प्रा
ज्यं प्रभो यत्र विसृज्य राज्य श्रमण्यसाम्राज्यमुपायथास्त्व ॥ १३ ॥ शिवालये प्रो
ज्झितविग्रह यत् त्वत्पादमूले चमर निलीन ॥ जनारिदम्भोलियम प्रचडो नस्म
ग्रुमाप्यैष्ट किमत्र चित्र ॥ १४ ॥ न बाधितु जातु दधु समर्थता मुनीद्र धातोरि
व नान्ववर्त्तिषु ॥ समाधिरूढा प्रकृतार्थसपद तवोपसर्गा व्यशिषंस्तु केवलं ॥ १५॥
न कौशिके रागमुपासनापरे करोषि रोष स्म न चर्मकौशिके ॥ अहो उदासीनत
यैव निर्जिता चमूस्त्वया दुर्विषहापि कर्मणा ॥ १६ ॥ निबर्हितुर्गां सुर
भर्तुरुग्रतस्तथा तथा यो दुरचेष्टत त्वयि ॥ बहि कृत स्वर्गिसमाजसगमा

तु ससंगमः स्यान्नकथं जनंगमः ॥ १७ ॥ एकाग्रपङ्क्तित्रिशतावसाने श्रीवीरती
रे ऋजुवालिकायाः ॥ तवोदगात् केवलऋद्धिरस्ताऽपराधराधस्य शुचौ दशम्यां
॥ १८ ॥ एकाक्रमाद्दुर्मुनयः कथं मामितीव कोपात् त्वदुपर्यशोकः ॥ अदीदृशत् षट्
पदगर्भपुष्पव्याजस्फुरत्तारकदृक्सहस्रं ॥ १९ ॥ सुरैर्विकीर्णास्तव देशनावना बभुः
प्रसूनप्रकराः समंततः ॥ भयश्लथीभूतकरात्परिच्युताः शराइवानंगभटस्य कौसुमाः
॥ २० ॥ स्फुटीभवन्मालककौशिकीमुखप्रशस्तरागस्तवसंस्तवोचितः ॥ प्रविश्य दि
व्यः श्रवणाध्वनि ध्वनिर्मुदे न केषां रजयन् मृगानपि ॥ २१ ॥ स्थातुं चलच्चामर
युग्मकैतवात् त्वदीयदंतद्युतिजाह्नवीजले ॥ ध्रुवं त्वदास्यांबुजवासिभारती युग्ये
उपेतां कलहंसदंपती ॥ २२ ॥ स्थैर्यं हृतं यद्भवता शिशुत्वे तद्याचनाय स्फुटमे
ष मेरुः ॥ स्वयंसमागादिति तुंगहेमसिंहासने ते करवंति तर्कं ॥ २३ ॥ हंतुं क्षमो
हं तम एकमेव तद्देहि मेसर्वतमोपहत्वं ॥ इतीव विज्ञापयितुं सिषेवे भामंडलच्छद्म
धरो रविस्त्वां ॥ २४ ॥ दूराद्भराजन्मभिदे भवभीः सुधासपीत्यै त्रिजगज्जनौघं ॥
नूनं नदन् संसदि देवदेवैर्दिव्याहतो डुंडुभिराजुहाव ॥ २५ ॥ मेदं प्रमाणांतरद
र्शितं सन्नमंस्यते सर्वं इतीव पुंसां ॥ सितातपत्रत्रितयच्छलेन रत्नत्रयं दर्शयतिस्म सा
क्षात् ॥ २६ ॥ सुपर्वसंचारितहेमपंकजापदेशतश्चंक्रमणक्षणे किल ॥ गतस्पृहस्या
पि गुणैर्वशंवदाः पदोस्तले ते निधयो नवालुठन् ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यसंयुक्तनिरंकुशश्रि
प्राकाररेखात्रयवेष्टितांगं ॥ नैक्षंत धन्याः कतिनाम रक्षायंत्रोपमं त्वां सुमनोर्चनीयं
॥ २८ ॥ त्वत्प्रातिहार्यश्रियमित्यवेक्ष्य चेतो न यस्येश चमच्चकार ॥ स केवली चेन्न
तदा ऽस्तु तस्य नरभ्रुवस्याजननिर्जगत्यां ॥ २९ ॥ अनिंद्यविद्यावदनेंदुदर्पणा गणा
धिपास्ते यदसूत्रयन् श्रुतं ॥ गिरस्तवैव त्रिपदीसुधाकिरः सतां मनःस्वप्रथितेन गौ
रवं ॥ ३० ॥ अशेषभाषापरिणाममंजुलं विचित्रसंदेहविषांतवञ्जलं ॥ स्तुवे वच
स्ते नयनिर्विरोधता विधायि संबोधविधौ निबंधनं ॥ ३१ ॥ तप्त्वा तपः षष्ठमपास्तभ
व्यलोकार्तिकः कार्तिकदर्शरात्रौ ॥ अपापमापुः पदमीश पापा पुर्यां द्वियुग्सप्त
तिवत्सरायुः ॥ ३२ ॥ स्वे यत्र बुद्धे सति फल्गुनीषु जाले स्मरोऽभून्मृतकल्पमानी
तद्विश्ववंद्योत्तरफल्गुनीषु बभूव कल्याणकपंचकं ते ॥ ३३ ॥ भुवनाधिपतेरनंतसा
भवत. स्वातिगतेऽत्र भाधिपे ॥ उदयाद्युचितं घनाघनोदकयोगान्नवमौक्तिकश्रि
या ॥ ३४ ॥ ज्ञातेक्ष्वाकुकुलप्रदीप भगवन् वंदारुवृंदारकश्रेणीरत्नकिरीटकांतिलहरी
संलाप्यमानांह्रये ॥ मोहोर्वीपतिगर्वपर्वतभिदि व्याधामधामश्रियामश्रांतं जिनसिं
हसूरिमहित श्रीवीर तुभ्यं नमः ॥३५॥ इतिस्तुतिपरायणे त्रिजगदेकचूडामणे प्रसीद

परमेश्वर स्वरसन्नक्तिनम्रे मयि ॥ नवेन्मम नवेनवे नवडुपासनावासना जिनप्रनवस विदा वरद पूर्णमेतावता ॥३६॥ इति पचकल्याणिकमय श्रीमहावीरस्तवन समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीमत्रस्तवनप्रारंन ॥

स्व श्रिय श्रीमदर्हत सिद्धा सिद्धिपुरीपद ॥ आचार्या पंचधाऽऽचार वाचका वाचना वरा ॥ १ ॥ साधव सिद्धिसाहाय्यं वितन्वतु विवेकिना ॥ मगलाना च सर्वेषा माद्यं नवति मगलं ॥ २ ॥ अर्हमित्यक्षर माया बीज च प्रणवाक्षर ॥ एन नानास्व रूप च ध्येय ध्यायंति योगिन ॥ ३ ॥ हृत्पद्मषोडशदलस्थापित षोडशाक्षर ॥ पर मेष्टिस्तुतेर्बीज ध्यायेदक्षरदं मुदा ॥ ४ ॥ मत्राणामादिम मत्र तत्रं विघ्नौघनिग्रहे ॥ ये स्मरति सदैवेनं ते नवति जिनप्रना ॥ ५ ॥ इति श्रीजिनप्रनविरचित मत्रस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारंन ॥

श्रीवर्द्धमान सुखवृद्धयेऽस्तु यश प्रतापैरनिवर्द्धमान ॥ सिद्धायिका रक्षति यस्य तीर्थे विघ्नौघत सततमेव देवी ॥ १ ॥ जिनेद्र नेद्रा अपि तावकीना स्तोतु गुणान् शक्तिजुषस्तथापि ॥ नक्त्येरितस्तान् कतिचिन्नवीमि नाज्ञ स्वमात्रा विविनक्ति वीर ॥ २ ॥ नयाध्वना नाथ कृतैकमत्यैरश्रातमेकातहितोपदेशै ॥ करैरिवोत्पद्युति ना तमिस्रास्त्वया नताना नवनीर्निरासि ॥ ३ ॥ प्रणीयतेऽस्माद्भुतरत्नचित्रै स म विमानैस्त्रिदशागमेन ॥ कल्याणकैर्नूवलयं त्वदीयैस्त्रिविष्टपान्यूनमनूनऋद्धि ॥ ४ ॥ नवतमीश नजतोऽनुजातु दु खान्यलकानि च नापि तापै ॥ पाणिस्थचितामणिमग नाज का निर्वृति पीडयितु शशाक ॥ ५ ॥ सर्वप्रना मोहतम समूहव्यापादने मशयव छिदात्री ॥ त्वद्देशनावाग् जयति त्रिलोकीलोकस्य कर्णामृतवृष्टितुल्या ॥ ६ ॥ रिपून् विजित्यातरगानगाधवीर्येण सतृज्ञानरमा निवेश्य ॥ करयंकार्पीरिन मुक्तिपुर्या सा म्राज्यमज्यानि सुखोत्करेण ॥ ७ ॥ निस्सेव पीयूषनुजा जनस्य मथ्नाति मिथ्यात्व विषोर्मिपूर ॥ तव प्रना नेत्रपुटैर्निपीता रुतस्थितिर्वर्ष्मणि नि कलंके ॥ ८ ॥ वृत्ताष्ट काद्यक्षरनामधेयैस्तदल्पवर्णाहितनामकेऽन्हि ॥ इय स्तुतिर्वीरजिनस्य दृष्टा करोतु क ल्याणमनुत्तर व ॥ ९ ॥ इति जिनप्रनसूरिकृत श्रीवर्द्धमानस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वस्तवनप्रारन ॥

पार्श्व प्रनु शश्वदकोपमान दकोपमानं नववन्हिशातौ ॥ आराधता दत्तनिरतरा य निरतराय पदमाशुमीडे ॥ १ ॥ वीक्ष्ये जगन्नेत्र महान्न यत्र महानयत्रस्य तवाङ्घ्रि

युग्मं ॥ पुण्यः स एवाऽवसरोऽमराली सरो मरालीव निषेवते यत् ॥ २ ॥ प्रणेमुपां पूर्णसमस्तकामं समस्तकामं सकृदप्यधीश ॥ नवंतमानम्य विमानमाया विमानमायाः प्रनवो नवंति ॥ ३ ॥ नयाढ्यमुद्यज्ञमनंगमाल मनंगमालक्षितसर्वनावं ॥ केनौम धीमद्भिरमानि शांतं रमानिशांतं न वचस्त्वदीयं ॥ ४ ॥ नित्यं प्रमादेनविना शितामं विनाशितामंगलमंगनाजां ॥ त्वन्नाम धन्यः स्मरतीश सारं रतीशसारंगमृगेंद्रनादं ॥ ५ ॥ नृत्योपि योत्राऽवृजिनप्रनावे जिनप्रनावैकरसस्त्वयि स्यात् ॥ सरूपवान्नीरगजाश्वसेने गजाश्वसेनेश्वरतामुपैति ॥ ६ ॥ नूयान्नमो नीलतमाऽलकाय तमालकायप्रन तुन्यमेव ॥ नवात्त्वदन्यः कतमोऽविता न तमोवितानच्छिडुरोऽर्क एव ॥ ७ ॥ त्वडुक्तकृत्येष्वविरामवामे विराम वामेय मयि प्रसीद॥नव्यान् स्तवः पातु जिन प्रनोऽयं जिनप्रनो यं विदधे यतींद्रः ॥ ८ ॥ इति जिनप्रनसूरिविरचितं श्रीपार्श्वस्तवनं समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंनः ॥

श्रीपार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेनःकफनागराज ॥ सतां हृताऽसत्परिणामरागं त्वां संस्तुमः स्थैर्यगुणाऽमराऽगं ॥ १ ॥ ये मर्त्यदेवासुरमाननीयं पश्यंति ते श्रीन रमाननीयं ॥ सद्यस्त्रिलोकीतिलकाऽमितानि सिध्यंति तेषामिह कामितानि ॥ २ ॥ दृशोर्द्वयं पद्मदलानुकारं नाशिश्रयत्ते कमलानुकाऽरं ॥ कुतोऽन्यथा त्वन्नतिदीक्षितेषु सर्वश्रियां प्रेम तदीक्षितेषु ॥ ३ ॥ अन्यर्हितं नव्यकदंबकानां हर्षप्रकर्षान्नसदंबकानां ॥ सेवंति ये त्वां विधिवन्नजंते निर्वाणसौख्यं बुधवन्नजंते ॥ ४ ॥ रतेरहंकृत्यपनायिकानि र्वपुःश्रिया ते सुरनायिकान्निः ॥ नाक्षोनि चेतः परनावलीनमचिंत्यविस्तारि शुनावलीनं ॥ ५ ॥ प्रनो तवाऽस्तस्मरराजमाने नखांशुजालेन विराजमाने ॥ क्रमांबुजे लक्ष्मिगृहे रसेनशक्रार्चनीय स्तुमहे रसेन ॥ ६ ॥ आकांक्षिता बहुविधं जनतानिरामाऽस्पृष्टामहोदयपुरी ध्रुवतानिरामा ॥ अप्यध्वरश्रुतितपःसवनादृते न पुंसाऽऽप्यते जिन तव स्तवनादृतेन ॥ ७ ॥ इत्थं फणींद्र सततश्रितपार्श्व नाऽथ स्त्री वा स्तवं पठति यस्तव पार्श्वनाथ ॥ तस्मै स्पृहामवृजिनप्रनवाय नव्या लक्ष्मी र्विनर्ति सुमनःसमवायनव्या ॥ ८ ॥ इति जिनप्रनसूरिविरचितं श्रीपार्श्वनाथस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीनंदीश्वरकल्पप्रारंनः ॥

आराध्य श्रीजिनाधीशान् सुराधीशार्चितक्रमान् ॥ कल्पं नंदीश्वरद्वीपस्याचक्षे विश्वपावनं ॥ १ ॥ अस्ति नंदीश्वरोनाम्नाऽष्टमोद्वीपो द्युसंनिनः ॥ तत्परिक्षेपिणा नंदीश्वरेणांनोधिना युतः ॥ २ ॥ एतद्वलयविष्कंने लक्षाशीतिश्चतुर्युता ॥ योजना

नां त्रिपष्टिश्च कोट्य कोटीशत तथा ॥ ३ ॥ असौ विविधविन्यासोद्यानवान् देव
भोगभू ॥ जिनेन्द्रपूजासंसक्तसुरसंपातसुंदर ॥ ४ ॥ अस्य मध्यप्रदेशे तु क्रमात्
पूर्वादिदिक्षु च ॥ अंजनवर्णाश्चत्वारस्तिष्ठंत्यंजनपर्वता ॥ ५ ॥ दशयोजनसहस्रा
तिरिक्तविस्तृतास्तले ॥ सहस्रयोजनाश्चार्द्ध क्षुद्रमेरूच्छ्रयाश्च ते ॥ ६ ॥ तत्र प्राक्
देवरमणो नित्योद्योतश्च दक्षिण ॥ स्वयंप्रभ प्रतीच्यस्तु रमणीय उदक्स्थित ॥७॥
शतयोजनायतानि तदर्धं विस्तृतानि च ॥ द्विसप्ततियोजनोच्चान्यर्हच्चैत्यानि तेषु च ॥
॥ ८ ॥ पृथक् द्वाराणि चत्वार्युच्चानि षोडश योजनी ॥ प्रवेशे योजनान्यष्ट विस्ता
रेप्यष्ट तेषु तु ॥ ९ ॥ तानि देवासुरनागसुपर्णानां दिवौकसा ॥ समाश्रयादेव तेषा
नामनिर्विश्रुतानि च ॥ १० ॥ षोडशयोजनायामा स्तावन्मात्राश्च विस्तृतौ ॥ अष्ट
योजनकोत्सेधास्तन्मध्ये मणिपीठिका ॥ ११ ॥ सर्वरत्नमया देवच्छंदका पीठिकोप
रि ॥ पीठिकान्योऽधिकायामोच्छ्रयनाजस्तु तेषु च ॥ १२ ॥ ऋषभा वर्द्धमाना च त
था चन्द्राननापि च ॥ वारिषेणाचेति नाम्ना पर्यंकासनसस्थिता ॥ १३ ॥ रत्नमय्योयु
ता स्वस्वपरिवारेण हारिणा ॥ शाश्वतार्हत्प्रतिमा प्रत्येकमष्टोत्तर शतं ॥ १४ ॥
द्वे द्वे नागभूतकुंडभृत् प्रतिमे पृथक् पृथक् ॥ प्रतिमाना पृष्ठतस्तु छत्रभृत् प्रतिमैकिका
॥ १५ ॥ तेषु धूपघटीदामघंटाष्टमगलध्वजा ॥ छत्रतोरणचगेर्य पटलान्यास
नानि च ॥ १६ ॥ षोडश पूर्णकलशादीन्यलंकरणानि च ॥ सुवर्णरुचिररजो वालु
कास्तत्र भूमय ॥ १७ ॥ आयतनप्रमाणेन रुचिरा मुखमडपा ॥ प्रेक्षार्थमडपा
अक्षवाटिकामणिपीठिका. ॥ १८ ॥ रम्याश्च स्तूपप्रतिमाश्चैत्यवृक्षाश्च सुंदरा ॥ इ
न्द्रध्वजा पुष्करिण्यो दिव्या संति यथाक्रम ॥ १९ ॥ प्रतिमा षोडश चतुर्द्वारस्तू
पेषु सर्वत ॥ शतं चतुर्विंशमेव ता साष्टशततद्युता ॥ २० ॥ प्रत्येकमजनाद्रीणा
ककुप्सु चतसृष्वपि ॥ गते लक्षे योजनाना निर्मत्स्यस्वच्छवारय ॥ २१ ॥ सहस्र
योजनो द्वेधा विष्कभे लक्षयोजना ॥ पुष्करिण्य सति तासा क्रमान्नामानि षो
डश ॥ २२ ॥ नदिषेणा चाप्यमोघा गोस्तूपाऽथ सुदर्शना ॥ तथा नदोत्तरानदा सु
नदा नदिवर्धना ॥ २३ ॥ भद्रा विशाला कुमुदा पुडरीकिणिका तथा ॥ विजया वै
जयती च जयती चापराजिता ॥ २४ ॥ प्रत्येक योजन पंच पचशत्या परत्र च ॥ यो
जनाना पचशतिं यावद्विस्तारभाजि तु ॥ २५ ॥ लक्षयोजनदीर्घाणि महो
द्यानानि तानि तु ॥ अशोकसप्तच्छदक चूत चपकसज्ञया ॥ २६ ॥ मध्ये पु
ष्करिणीना च स्फटिका पल्यमूर्तय ॥ ललामवो ह्युद्यानादिचिन्हा दधिमुखाद्र
य ॥ २७ ॥ चतुषष्टिसहस्रोच्चा सहस्रं चावगाहिन ॥ सहस्राणि दशा

धस्ताडुपरिष्टाच्च विस्तृताः ॥ २७ ॥ अंतरे पुंष्करिणीनां द्वौ द्वौ रतिकराचलौ ॥ ततो नवंति द्वात्रिंशदेते रतिकराचलाः ॥ २९ ॥ शैलेषु दधिमुखेषु तथा रतिकराद्रिषु ॥ तच्चाश्वतार्हच्चैत्यानि संत्यंजनगिरिष्विव ॥ ३० ॥ चत्वारो द्वीपविदिक्षु तथा रतिकराचलाः ॥ दशयोजनसहस्रायामविष्कंभशालिनः ॥ ३१ ॥ योजनानां सहस्रं तु यावडुच्चयशोभिताः ॥ सर्वरत्नमयादिव्या झल्लर्याकारधारिणः ॥ ३२ ॥ तत्र द्वयो रतिकराचलयोर्दक्षिणस्थयोः ॥ शक्रस्येशानस्य पुनरुत्तरस्थितयोः पृथक् ॥३३॥ अष्टानां महादेवीनां राजधान्योऽष्टदिक्षु ताः ॥ लक्षावाधा लक्षमाना जिनायतनभूषिताः ॥ ३४ ॥ सुजाता सौमनसा चार्चिमाली च प्रभाकरा ॥ पद्मा शिवा तथा शुच्यंजने भूतावतंसिका ॥ ३५ ॥ गोस्तूपासुदर्शने अप्यमलाप्सरसौ तथा ॥ रोहिणी नवमी चाथ रत्ना रत्नोच्चयापि च ॥ ३६ ॥ सर्वरत्नसंचया च सुवसुर्वसुमित्रिका ॥ वसुभागादि च वसुंधरानंदोत्तरे अपि ॥ ३७ ॥ नंदोत्तरकुरुर्देवकुरुः कृष्णा ततोपि च ॥ कृष्णराजी रामरामा रक्षिता प्राक् क्रमादमूः ३८ ॥ सर्वर्द्धयस्तासु देवाः कुर्वते सपरिच्छदाः ॥ चैत्येष्वष्टाह्निकापुण्यतिथिषु श्रीमदर्हतां ॥ ३९ ॥ प्राच्येंऽजनगिरौ शक्रः कुरुतेऽष्टाह्निकोत्सवं ॥ प्रतिमानां शाश्वतीनां चतुर्द्वारि जिनालये ॥४०॥ तस्य चाद्रेश्चतुर्दिक्स्थमहावापीवितर्दिषु ॥ स्फाटिकेषु दधिमुखपरितेषु चतुर्ष्वपि ॥ ४१ ॥ चैत्येष्वर्हत्प्रतिमानां शाश्वतीनां यथाविधि ॥ चत्वारः शक्रदिग्पालाः कुर्वंते ष्टाह्निकोत्सवं ॥४२॥ ईशानेंद्रस्त्वोत्तराहेंऽजनाद्रौ विदधाति तं ॥ तल्लोकपालास्तद्वापी दध्यास्यादिषु कुर्वते ॥ ४३ ॥ चमरेंद्रो दाक्षिणात्येंऽजनाद्रावुत्सवं सृजेत् ॥ तद्वाप्यंतर्दधिमुखेष्वस्य दिग्पतयः पुनः ॥ ४४ ॥ पश्चिमेंऽजनशैलेतु बलींद्रः कुरुते महं ॥ तद्दिग्पालास्तु तद्वाप्यंतर्नाग्दधिमुखाद्रिषु ॥ ४५ ॥ वर्षंदीपदिनारब्धानुपवासान् कुहूतिथौ ॥ कुर्वन्नंदीश्वरोपास्त्यै श्रायसीं श्रियमाश्रयेत् ॥ ४६ ॥ भक्त्या चैत्यानि वंदारुस्तत्स्तोत्रस्तुतिपावनाक् ॥ नंदीश्वरमुपासीनोऽनुपर्वाहस्तरेत्तरां ॥ ४७ ॥ प्रायःपूर्वाचार्यं ग्रथितैरेवायमाचितः श्लोकैः ॥ श्रीनंदीश्वरकल्पो लिखित इति श्रीजिनप्रभाचार्यैः ॥ ४८ ॥ इति श्रीजिनप्रभाचार्यविरचितनंदीश्वरकल्पः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीशारदास्तवनप्रारंभः ॥

वाग्देवते भक्तिमतां स्वशक्तिकलापवित्रासितविग्रहा मे ॥ बोधं विशुद्धं भवती विधत्तां कलापवित्रासितविग्रहा मे ॥१॥ अकंप्रवीणाकलहंसपत्राकृतस्मरेणानमतां निहंतुं ॥ अकंप्रवीणा कलहंसपत्रा सरस्वती शश्वदपोहताद्वः ॥ २ ॥ ब्राह्मी विजे

षीष्ट विनिद्रकुदप्रनावदाता घनगर्जितस्य ॥ स्वरेण जैत्री कृतुना स्वकीयप्रना वदाता घनगर्जितस्य ॥ ३ ॥ मुक्ताक्षमालालसदौषधीशाऽनिशूज्वला नाति करे त्वदीये ॥ मुक्ताक्षमाला लसदौपधीशा या प्रेक्ष्य नेजे मुनयोपि हर्ष ॥ ४ ॥ ज्ञान प्रदातु प्रवणा ममातिशया लुनाना नवपातकानि ॥ त्व नेमुषा नारति पुंडरीक शयालुनानानवपातकानि ॥ ५ ॥ प्रौढप्रनावा समपुस्तके न ध्याता सि येनांबि विराजिहस्ता ॥ प्रौढप्रनावा समपुस्तकेन विद्या सुधापूरमदूरड खा ॥ ६ ॥ तुन्य प्रणाम क्रियते नयेन मरालयेन प्रमदेन मात ॥ कीर्तिप्रतापौ नुवि तस्य नम्रमरालयेन प्रमदेन मात ॥ ७ ॥ रुच्यारविंदन्रमद करोति वेल यदीयोर्चति तेऽन्ह्वियुग्म ॥ रुच्या रवि दन्रमद करोति स स्वस्य गोष्ठी विडुषा प्रविश्य॥ ८ ॥ पादप्रसादात्तव रूपसपत् लेखाजिरामोदितमानवेश ॥ नवेन्नर सूक्तिनिरब चित्रोल्लेखानिरासीदितमानवेश ॥ ९ ॥ सिताशुका ते नयनानिरामा मूर्ति समाराध्य नवेन्मनुष्य ॥ सिताशुकाते नयनानिरामाधकारसूर्ये क्षितिपावतंस ॥ १० ॥ येन स्थितं त्वामनु सर्वतीर्थ्ये सनाजिता मानतमस्तकेन ॥ डुर्वादिना निर्दलित नरेंड्रसनाजितामानतमस्तकेन ॥ ११ ॥ सर्वज्ञ वक्त्रवरतामरसाकलीनामाली प्रती प्रणयमथरया दृशैव ॥ सर्वज्ञवक्त्रवरतामरसाकलीना प्रीणातु विश्रुतयशा श्रुतदेवता न ॥ १२ ॥ कृतस्तुतिर्निर्विडनक्तिजमत्वष्टकैर्गुफैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा॥ बालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसादस्मेरा दृश मयि जिनप्रनसूरिवर्ण्या ॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रनसूरिकृतश्रीशारदास्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजिनसिंहसूरिस्तवनप्रारंन ॥

प्रनु प्रदद्यान्मुनिपङ्क्तिपक्तेर्नागारिरागोपचितिं सदान ॥ समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरिर्नागारिरागोपचिति सदा न ॥ १ ॥ कल्याण गोत्रायितमोहरेणा चमानिलेन स्थिरतागुणेन ॥ कल्याणगोत्रायि तमोहरेणान्नत्य त्वयैवार्हतशासनस्य॥ २ ॥ स्वामिन् मनोन्वेति न ते मृगाक्षी मनोजवाना चतुरगमाना ॥ बोधेन रुद्धीने कुजं गजाना मनोजवाना च तुरगमाना ॥ ३ ॥ कदर्पकातारविनावसूना प्राप्ते त्वयीशान्यमृपि तप श्री ॥ कदर्पकातारविनावसूनां निधिर्गुणाना नुवि यस्त्वमेव ॥ ४ ॥ जगज्जनानोजवने गुणौघवक्रारविंद नविना कृतोह ॥ वंदे त्वदीय सकलोरुपस्य वक्रारविंद नविनाऽकृतोह ॥५॥ सर्व कपायानलमेघवारिमोहाय सूक्त शृणु त विजेतु ॥ सर्वे कपायानलमेघवारिवृत्त स्मर श्रीजिनसिंहसूरे ॥ ६ ॥ मुदे न कस्यास्तु धुरि स्थि

ता ते सरस्वती कुड्वशीकराणां ॥ माधुर्यशैत्याङ्गयिनी तरङ्गिणी सरस्वती कुड्वशीक
राणां ॥ ७ ॥ सदोदिताबोधमपूरुषा अप्यानंदितावागमृतं अवोन्यां ॥ सदोदिताबो
धमपूरुषा अप्युपाशमंस्तेन मुनीशु तेषां ॥ ७ ॥ व्यामोहबाणासुरदर्पमाथ पद्मावरो
दीर्णतमोवितानः ॥ त्वमेधि सन्मंत्रजपानिराद्ध पद्मावरो दीर्णतमोवितानः ॥ ए ॥
योगेन धीरोचित माननीय श्रियस्तवोच्चे शशिनोपमानं ॥ योगेनधीरोचित माननीय
प्रख्यातमूर्खं तमुदाहरामः ॥ १० ॥ स्मराशुगानां हृदि मेंगिममर्माविधामरेशास्त्र निधेहि
तानि ॥ तत्वानि सूरींड् मदांन्हिनेदविधाऽमरेशाऽस्त्रनिधे हितानि ॥ ११ ॥ जिनप्र
नाचार्यमनासमानावबोधमव्याः कविमात्मशिष्यं ॥ जिनप्रना चार्यमनासमाना प्र
नो स्फुरत्वस्य तव प्रसादात् ॥ १२ ॥ श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्मशृंगारनृंगकरणि
र्जिनसिंहसूरिः ॥ इत्थं स्तुतोस्तु यमकैः शमकैरवेंडुरानंदकंदलनडुर्ललितो नतानां
॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रनसूरिकृतयमकस्तवकितश्रीजिनसिंहसूरिस्तवनं समाप्तं ॥

॥ अथ श्रीपंचनमस्कृतिस्तवनप्रारंनः ॥

प्रतिष्ठितं तमः पारे पारेवाग्वर्त्तिवैनवं ॥ प्रपंचं वेदसः पंच नमस्कारमनिष्टुमः
॥ १ ॥ अहो पंचनमस्कारः कोप्युदारो जगत्सु यः ॥ संपदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनंता
स्तु ताः सतां ॥ २ ॥ दत्तेऽनुकूलएवान्यो नुक्तिमात्रमपि प्रनुः ॥ एष पंच नमस्कारः प्रा
तिलोम्येपि मुक्तिदः ॥ ३ ॥ नमस्कारनरेंद्रस्य किमपि प्राज्ञवं स्तुमः ॥ यदीयकृत्कृतेना
पि विड्वंति द्विषः क्षणात् ॥ ४ ॥ सिद्धयोप्यणिमाद्यास्ता नमस्कारमधिष्ठिताः ॥
अष्टापदग्रकुरात्मापि यदसौ प्रणवेऽविशत् ॥ ५ ॥ शिरःकादिधियाधीरैः स्वांगदेशनि
वेशिता ॥ नमस्कृतेर्नवपदी कटरे वज्रपंजरः ॥ ६ ॥ वर्ण्यतां श्रीनमस्कारान् कार्मणं
किमतोधिकं ॥ यत्संप्रयोगतःपांशुरपि संवनयेज्जगत् ॥ ७ ॥ नमस्कारं नुमः सिद्ध
यत्पदस्पर्शपूतया ॥ पद्याह्लादितसर्वांगः शांतिमासादयेऽऽवरी ॥ ७ ॥ नववर्णी नम
स्कृत्याः कृती प्रतिपदं जपन् ॥ विधत्ते विविधानिघ्नविघ्नावग्रहनिग्रहं ॥ ए ॥ कर्णिका
ष्टदलाढ्ये हृत्पुंडरीके निवेश्य यः ॥ ध्यायेत्पंच नमस्कारं संसारं स तरेत्तरां ॥ १० ॥ अष्टौ
कोष्टे पदेष्वस्य वर्णानालिख्य तावतः ॥ कुड्यादावर्चयन् सम्यगेति शांतेर्निशांततां
॥ ११ ॥ आद्याक्षराण्यपीष्टार्थसिध्यै स्युः परमेष्ठिनां ॥ बिंडुरप्यामृतः किं न नाशयेद्विषवि
क्रियां ॥ १२ ॥ करांगुलीषु विन्यस्यार्हदादीन् ध्यानमानयन् ॥ प्रत्यूहपन्नगव्यूहव्यपोहे
वैनतेयति ॥ १३ ॥ गुरून् पंच क्रमात् ध्यायन् मुद्रया परमेष्ठिनां ॥ गूढप्ररूढ मचिरात्
कर्मग्रंथिं विमोचयेत् ॥ १४ ॥ षोडशाक्षरगान् अद्धापरमः परमेष्ठिनः ॥ प्राणी प्रणि

दधानोप्यैौपवस्तुफलमेधते ॥ १५ ॥ विद्युज्जलाग्निनृपालव्यालचौरारिमारिज ॥
नय वचयते पच नमस्कारम्य सस्मरन् ॥ १६ ॥ आराध्य विधिवत्पंच नमस्कारमु
दारधी ॥ लक्षजापेन पापेन मुक्तमार्हत्यमश्नुते ॥ १७ ॥ ऐहिकं फलमीप्सनामष्ट
कर्मप्रसाधिनी ॥ मुक्त्यर्थिना च स्यादेषैवाष्टकर्मनिपेधिनी ॥ १८ ॥ विपदामनि
चारस्योपादानस्याखिलश्रिया ॥ स्मर्ता नमस्कृते स्वर्गिवर्गेण वरिवस्यते ॥ १९ ॥
चतुर्दशाना पूर्वाणामेषैवोपनिषत्परा ॥ आद्या सकलविद्यानां बीजाना प्रकृति
परा ॥ २० ॥ इयं पथ्योदन पथ्य परलोकाध्वयायिना ॥ परमास्त्र नृणा मोहराज
युद्धाय सज्जतां ॥ २१ ॥ प्राणी प्राणप्रयाणस्य क्षणे ध्यायन्नमस्क्रियां ॥ लभते सु
गति नैकान् पाप्मन कृतपूर्व्यपि ॥ २२ ॥ नमस्कृतिं कृपावित्तै श्रोत्रयो प्राभृती
कृतां ॥ स्वीकृत्य पुण्यसभ्यंचस्तिर्यचोपि ययुर्दिव ॥ २३ ॥ त्रिदडिन निगृह्याऽसिय
ष्टिना श्रेष्ठिनंदन ॥ नमस्कारस्य महसाऽसाधय त्स्वर्णपूरुषं ॥ २४ ॥ स्मृत्वा पच
नमस्कार प्रविष्टायास्तमोगृह ॥ घटन्यस्तो महासत्या पन्नग पुष्पमाल्यभूत् ॥२५॥
नमस्कारेण संबोध्य मातुलिंगवनामर ॥ प्राणत्राण स्वपरयोर्व्यधत्त श्राद्धपुगव ॥
२६ ॥ यद्धता हुंडिक प्रापत् सुकुल चडपिगल ॥ इतस्तादृक् गुणस्फीति सुदर्श
न सुदर्शने ॥ २७ ॥ एष माता पिता स्वामी गुरुर्नेत्रं भिषक् सखा ॥ प्राणत्राण
गतिर्दीप शाति पुष्टिर्महन्मह ॥ २८ ॥ निधय संनिधो कामधेनुरप्यनुगामिका ॥
भूभृतो भृतकास्तस्य यस्य नेप हृदो हिरुक् ॥२९॥ नास्येयत्ता प्रभावाणा क्रमवर्ति
तया गिरा ॥ मितायुष्प्राज्ञ सर्वोपि न्यक्षेण भणितु क्षम ॥ ३० ॥ सर्वावस्थोचित
सर्वश्रुतसार सनातन ॥ परमेष्ठिमहामत्रं भक्तितन्नमुपास्महे ॥ ३१ ॥ वज्रैर्योजन
लक्षमानविदितो बिभ्रत्सुवर्णात्मता भव्यानदननन्दशालमहिमा रोचिष्णुचूलाचि
त ॥ अस्तु श्रीजिनगेहभास्वररुचिस्थान लसन्निर्जर सोय व परमेष्ठिपचकनम
स्कार सुमेरु श्रिये ॥ ३२ ॥ साम्नायावयवा जिनप्रभगुरुर्या स्त्रयामासिवान् दि
व्या पचनमस्कृतिस्तुतिमिमामानदनंदन्मना ॥ यस्यैषाचति कण्ठसीमनि सदा मुक्ता
लताविभ्रम त मुचत्यचिरेण विघ्ननिचया श्लिष्यंति च श्रीभरा ॥ ३३ ॥ इति
श्रीपचनमस्कृतिस्तवन समासम् ॥

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारभ ॥

श्रीवर्द्धमान परिपूरितभव्यकाम चामीकरप्रभ जिनप्रभसूरिरेतं ॥ सोसूत्र्यते त
व जगज्जनहर्षवर्षदीपोत्सवस्तवलव यमकावदातं ॥ १ ॥ श्रितास्त्वा कमलाह

र्य कल्पपाद पयोज ये ॥ करौ तान् प्रति विश्वैककल्पपादपयोजये ॥ २ ॥ क स्ते नार्ति न सद्बोधसिंधुरारातिलक्ष्मणे ॥ रंके च तुल्यचित्ताय सिंधुरारातिलक्ष्मणे ॥ ३ ॥ द्दिलेश देहं दर्शे त्वां शिवशंकार्त्तिके विदः ॥ नान्यतीर्थ्या यत्र लुप्ता शिवशंका र्त्तिकेविदः ॥ ४ ॥ रुद्धान्यपवर्णानामादानं दीपालिका सतां ॥ कोटिं परां यत्र तेऽनू दानंदी पालिका सतां ॥ ५ ॥ कुदृशां शुश्रुवे तेंऽल्पदेशनाशितदर्पका ॥ धन्यैरेवेश वैरा ग्यदेशनाशितदर्पका ॥ ६ ॥ त्वन्मुक्त्याऽसीत्तमो हंतुं तरसा दक् पावनी ॥ पूः पापा पापपद्माऽल्पेतरसादक्पाऽवनी ॥ ७ ॥ त्वत्सेवायां हृषीकेभहस्तिपाऽलस्यहीनता ॥ कैर्न नाम तदा राज्ञो हस्तिपालस्य हीनता ॥ ८ ॥ दधानाऽघोरगेभूकस्वातिरेकाविराज तां ॥ रुक्षेषु जात त्वन्मोक्षो स्वातिरेका विराजतां ॥ ९ ॥ त्वन्निर्याणेन करणं ना गसंक्रमरंजयत् ॥ एनांसि भगवन् कं ना नागसंक्रमरंजयत् ॥ १० ॥ मूर्छागत स्येंद्रियार्थममता विषपानतः ॥ नाथोपचर्यां कुर्यास्त्वं मम ताविषपानतः ॥ ११ ॥ तावकं या पिबत्युच्चै रमायाननसारसं ॥ दृष्टिर्विंदति सोरस्य रमाया न न सारसं ॥ १२ ॥ स्तूयासमन्वहमहं भवतः पृथिव्यां सिद्धार्थनंदनयशोभिमतं समस्याः ॥ सिद्धार्थनंदनयशोभि मतं समस्याः सर्वश्रियां जिन निजं हृदि रोप्यतां मे ॥ १३ ॥ इतिश्री जिनप्रभसूरिविरचितश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीआदिजिनादिस्तवनप्रारंभः ॥

प्रणम्यादिजिनं प्राणी मरुदेवांगजायते ॥ हरणे पापरेणूनां मरुदेवांग जायते ॥ १ ॥ गर्वमैंदवमब्जावमाननस्यप्रभोरुणः ॥ सौंदर्येणाजितस्यैर माननस्य प्रभोरु णः ॥ २ ॥ मोहस्यानापतंस्त्राणं शंभवेश मिता रये ॥ यस्मै विश्वं नमश्चक्रे शं भवे शमितारये ॥ ३ ॥ मुदेऽभिनंदनः सूतो राजसंवरदेहतः ॥ यत्पादाब्जे नृणां भावं राजसं वरदे हतः ॥ ४ ॥ दुःस्थानां सुमते दौस्थ्यं साध्वसागदवालनं ॥ ध्यायंस्त्वां च स नीरोगः साध्वसागद वालनं ॥ ५ ॥ कः पद्मप्रभ शक्तीस्ते प्रभावद मिता हिताः ॥ संख्यातुमीष्टे चंद्रार्कप्रभावदमिता हि ताः ॥ ६ ॥ मोहराजं सुपार्श्व त्वं नुतमायामलोलुपः ॥ भक्तौ तेऽतः कोस्तु विद्वानुतमायामलोलुपः ॥ ७ ॥ तव चंद्रप्रभोत्पन्नमहसे नक्षमेनतः ॥ न सेवाविरहं सोढुं महसेनक्षमे नतः ॥ ८ ॥ मयि बिभ्रत्तनुं चंद्रभावलक्ष्प्रभोदयां ॥ तन्यास्त्वं सुविधे सर्वभावलक्ष प्रभो दयां ॥ ९ ॥ शीतलांशुं श्रियोधाम्ना रविकल्पमनामयाः ॥ त्वां प्रत्यात्मा कृतो भर्तरवि कल्पमना मया ॥ १० ॥ त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ॥ सा धीप्रिया मेऽस्तु कृतं कमलायतनेत्रया ॥ ११ ॥ वासुपूज्य सविज्ञास्त बंधूकारुण्ययोगतः ॥

शरण त्वक्रमौ विश्ववंद्यकारुण्ययोगत ॥ १२ ॥ श्रेयस शरण नव्य त्व गच्छ विमजंरुते ॥ त्वदि देहि च नत्याद्विकृत्व गच्छविमलंकृते ॥ १३ ॥ य ख्यातस्त्रि जगत्यार्य सदानुननयोऽनिश ॥ हृत्वर्कवन्मोहमयी सदानुतनयोनिश ॥ १४ ॥ त्वत्पादाब्जेऽलिनो हर्षाद मल पटता पद ॥ शाते मोह जित मन्ये दमलपटता पद ॥ १५ ॥ सुश्रीकुंथु प्रतिप्रव्हा यमलार्जन नजना ॥ यास्तावीड्रागरोपयम लार्जननजना ॥ १६ ॥ सोढुं समर्था नूयस्य नतमामवनिर्वल ॥ सोरत्वमर्हंच्च क्रीड्नत मामव निर्वल ॥ १७ ॥ शक्ति नवाब्धेरुध्दर्तु मतिमल्लीनदेहिन ॥ पुण्य धातर्जने नक्तिमेतिमल्लीन देहि न ॥ १८ ॥ यस्या विलासास्त्रैलोक्य पद्मानदनना नव ॥ मा तु सुव्रत सा शक्या पद्मानदनना न व ॥ १९ ॥ यत्र नान्हिद्वयी ते वा न मे रुचिरकोमला ॥ तत्र राजेप्यनीताना नमेरुचिरकोमला ॥ २० ॥ नेमे नमस्ते दोषक्ष रजन प्रनविभ्रवे ॥ कर्मासुरवधायोच्चैरजनप्रनविभ्रवे ॥ २१ ॥ तापाग्नो जुहुवे पार्श्व नवता पचसायक ॥ श्रितोऽतस्त्व जनो मोहनवताप च सायक ॥ २२ ॥ नाऽलुन्य कामसंख्याय लोकनेतरणीयसा ॥ तेन वीर जगत्कर्मालोकने त रणीयसे ॥ २३ ॥ तवार्हन् पचकल्याणी दया लोकामदायिन ॥ पायास्त्रिजगते दत्तो दयालो कामदर्पिन ॥ २४ ॥ त्रातु जीववीथा सविदक्षा मानव तामिता ॥ जिने शा पातु करुत्वं दक्षा मानवतामिता ॥ २५ ॥ यदाराध्यति गीर्वाणव्रजाऽनयदशासन ॥ तत् प्रज्ञा शरण नक्ता व्रजान्नयदशासन ॥ २६ ॥ यस्या नेशगिरा जैन्या सुत रामघवासना ॥ हंत्वापद सुसंयम्यासुतरा मघवासना ॥ २७ ॥ लक्ष्म्यारुष्टिकर जिनेद्र मनघं नद्रावलीमदिर वदे तस्य गिर नतभ्रमतम सूर्य धिया कारण ॥ सार्वीयंप्रथित प्रनावमखिलारिष्टौघहानिप्रद दनव्यालसृणि वरेण्यसमय रगज्जुण बोधिद ॥ २८ ॥ इति श्रीयमकयुक्त आदिजिनादिस्तवन सपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वप्रातिहार्यस्तवनप्रारम्भ ॥

त्वा विनुत्य महिमश्रियामह पन्नगाकमठदर्पकोपिण ॥ स्वा पुनामि किमपीनर क्षितापन्नगा कमठदर्पकोपिण ॥ १ ॥ कोनुरज्यति देशनोकसि ड्रागशोकतरुणा वि नासिते ॥ रत्नहेमरुचिनि क्षितोह्लसड्रागशोकतरुणाविनासिते ॥ २ ॥ देहदीप्ति तिरस्कृतो दयत्सारना सुमनस सदानवा ॥ देशना नुवि किरति ते स्फुरत्सारना सुमनस सदानवा ॥ ३ ॥ तादृश श्रवणतस्तवोत्तमा कारकाय वरदेशनाध्वने ॥ प्रस्थित कइव पाप्मना निराकारकायवरदेशनाध्वने ॥ ४ ॥ नाकिनायकयुगेन सादर चामरैर्विपदनाग वीज्यसे ॥ त्व न कैर्नवसुखायमुक्तये चामरैर्विपदनागवीज्यसे ॥ ५ ॥

वीक्षितुर्नयनयोर्निराकृता शंसनासुरमणीपनावतः ॥ आतनोति कृतसिंहविष्टरं शंस नासुर मणीपनावतः ॥ ६ ॥ इष्टुरर्पयति कीर्त्तिशुभ्रिता शांतभावलयमर्यमोहदं ॥ दीप्यमानमनुमौलि तावकं शांतभावलयमर्यमोहदं ॥ ७ ॥ व्योम्नि गर्जि निनदः पु रस्तवामानवैरिमुदिरो महर्षिभिः ॥ कैर्न डुंडुभिरवः श्रुतस्तनौ मानवैरिमुदि रोमहर्षि भिः ॥ ८ ॥ द्रोमुखीषु कुपथानि मौक्तिकन्यास हृद्यरुचितानि चायितुः ॥ त्रीणि ते जिन शितोभवारणं न्यासहृद्यरुचितानिचायितु. ॥ ९ ॥ प्रातिहार्यमहिमालयस्तवः श्रीजिनप्रभ विति स्तुतो मया ॥ पार्श्वकामितफलाय कल्पतां कल्पपादप इवेष नेमुषां ॥ १० ॥ इति जिनप्रभसूरिकृतश्रीपार्श्वप्रातिहार्यस्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीकल्याणपंचकस्तवनप्रारंभः ॥

निलिंपलोकायित भूतलं श्रिया नयन्मुदं नैरयिकानपि क्षणं ॥ त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपंचकं जिनेंद्र कल्याणकपंचकं स्तुमः ॥ १ ॥ निवेदितः प्रीतिपरैः पुरंदरैश्चतुर्द श स्वप्नविभावितोदयः ॥ महानिधानागम चारुरर्हतां तनोतु गर्भावतरोत्सवः शिवं ॥ २ ॥ कुकुप्कुमारीकृतसूतिसंस्क्रियं सुपर्वसंपादितमज्जनक्षणं ॥ सृजंतमुद्योतम यं जगत्रयं जनुर्महं संस्तुमहे भवद्रुहं ॥३॥ सुरोपनीतैः परिवत्सरं धनैर्यथाभिला षं परितोषितार्थिने ॥ जिनाधिपानां निखिलांगिरक्षिणे नमस्तपः तिपत्तिपर्वणे ॥ ४ ॥ अमर्त्यनिर्वर्त्तितदेशनाऽवनीकृताद्भुतः कैवलवैभवोद्भवः ॥ मंदनांदीरवपू रितांबरः करोतु जैनः शुभभाजनं जनं ॥ ५ ॥ पुरंदरक्रंदितसंभ्रमभ्रमत्सुरौघमालिं गितमुक्तिवल्लभं ॥ जिनस्य निर्वाणदिनं दिगंतरस्फुरत्तमः सत्तमशर्मणेऽस्तु नः ॥ ६ महर्षयो भूतनवभविष्यतामसुत्र कल्याणकपंचकेऽर्हतां ॥ विना विदेहान् दश कर्मभू मिषु स्मरंति मासर्क्षतिथीन् सनातनान् ॥ ७ ॥ इत्याहतस्त्रिभुवनप्रभुसत्क पंचक ल्याणवज्रकवचं हृदि यो बिभर्त्ति ॥ शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराजः सौभाग्य भाग्ययुजि न प्रभवंति तस्मिन् ॥ ८ ॥ इति श्रीकल्याणपंचकस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ लक्षणप्रयोगमयश्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं झैरुत्कर्णमाकर्णितवर्णवादं ॥ सुपर्णमंहोहि दमे सु पर्ण श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीरं ॥१॥ यैर्व्याप्यतां प्राप्यत तावकीनं क्रमांबुजं नाथ नमस्करोतेः ॥ संसारचक्रभ्रमणाभिधस्य गणस्य ते वृत्करणं गृणंति ॥२॥ तुल्येपि ने त्रामृतवर्षिभावे कलंकपंकच्युतिसंयुतिभ्यां ॥ प्रधानशिष्टं वदनं त्वदीयं मन्यामहे ऽन्वाचयशिष्टमिंडु ॥ ३ ॥ द्विगोरिव त्वत्प्रणतस्य संख्या पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिका

नां ॥ विज्ञो बहुव्रीहिसमासवत्त्वमन्यार्थ एवोपदधासि वृत्ति ॥ ४ ॥ विज्ञक्तिमुक्तं पुरु पैरसंख्यै समाश्रितं धातुविकारहीनं ॥ अपूर्वमेतत्कटकृत्यनिष्ठाप्रधानमाख्यात मिन त्वदीय ॥ ५ ॥ यस्मिन्न सधिर्न च वर्णलोपो न सस्तुतिर्विग्रहकारकाणा ॥ नवा विकल्प क्वचन प्रयोगेष्वहो नव व्याकरण तवेद ॥ ६ ॥ ध्यात्वा हृदा त्वा फ लमेति जव्यो दृष्टापि साक्षान्न कृतीत्वजव्य ॥ तत्सत्यमेतद्बहिरगतो यत् स्यादतर गोत्रविधिर्बलीयान् ॥ ७ ॥ एतावतैव प्रतिजानाति विश्वविलक्षण वीर जवच्चरित्रं ॥ जालेन युष्मत्पदसप्रयोगेष्यलंजि लोकस्य यडुत्तमत्व ॥ ८ ॥ एकत्र धातावुपस र्गपचकप्रयोग इष्ट. कविजिर्निरतर ॥ त्वद्ध्यानधातावुपसर्गविशति सुर प्रयोक्ता न कथं कुलक्षण ॥ ९ ॥ प्रजो मद्दचित्रमिदं कदबके कुतीर्थिकाणामपि कर्म धारये॥ यन्मोहराजप्रथनेषु पुवद्भावो न कश्चित् परिपोस्फुरीति ॥१०॥ शुद्धयोर्वरद जावकर्म णोर्दर्शयन् विकरणस्थितिं पदे॥निर्विजक्ति समुदाहरन् पद साधुलक्षणविचक्षणो ज वान्॥११॥अनुपघातिनमेव किलागम प्रणिगदति जिनेश्वर शाब्दिका ॥असुमतामुपघा तरेर स्पृशत् कथमिवागमता स कृत परै ॥१२॥योपादानं नश्यत पापपूगम्यासि व्या प्यं वदतेर्वासवाना॥आधार श्रीसंपदा सप्रदानं त्रैलोक्यस्य स्तोत्ररत्नोपदाया ॥१३॥ बेडावस्थ [illegible] सुशतां मोहवार्धि तरीतु कर्ता जातेर्द्विरदरदनच्छेदशोनिर्यशोजि ॥ जव्यानां यस्त्वमसि सुपथप्रस्थितो हेतुकर्ता तस्मै तुन्यं जिन मम शिरो नम्रताकम्रम स्तु ॥ १४ ॥ अंतस्थास्तव शासनस्य यशसा कुदावदातत्विषां गच्छते ज्जुवि सप्र सारणविधौ मर्त्या न तत्कौतुक ॥ यत्ते नित्यमनामिनोपि कुगुरौ डुर्वृत्तदेवेषु च प्रा जते गुणवृद्धिजाजनतया ब्रूमस्तदत्यद्भुतं ॥ १५ ॥ तात त्रातरिद नपुसकमपि स्वांत मदीयं जवन्माहात्म्यस्तुतिसुंदरीं प्रणयत पाणौ करोत्वेकदा ॥ तत्सश्लेपसुखानु जाववशत क्लैब्य विधूय क्षणात् तत्रोत्पादयिता ऽथ शाश्वतचिदानदाव्हय नदन ॥ १६ ॥ इत्थंकारमिजारि लक्षणनर सल्लक्षणप्रक्रियाचित्रं स्तोत्रमिद विदन्हृदयो जिव्हाग्रजाग्रत्तम ॥ कुर्वाण स्मरबाणकुण्ठनकलानिष्णाततानर्तकी नाट्याचार्य जिनप्रजेंद्र पदवीसाम्राज्यमासादयेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीजिनप्रज विरचितलक्षणप्र योगमयश्रीवीरस्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवीतरागस्तवनप्रारंज ॥

जयति पादा जिननायकस्य दोपापहा ध्वस्ततमोविकारा ॥ रवेरिवाश्चर्यमतापका श्च न कौशिकक्लेशकरा खराश्च ॥ १ ॥ वाग्ज्ञानपूजानिरपायरूपाश्चत्वार एतेऽतिशया स्तवैव ॥ देवाधिदेवत्वमनिष्टवतश्चतु कषायक्षतये तु नाथ ॥ २ ॥ शुद्धप्रयोगस्तवसं

स्तयेन कृतार्थतामेति कृती कृतीश ॥ न वाच्यतां याति कदापि लोके यथा यथार्थस्तव काव्यकर्ता ॥ ३ ॥ त्वमेव चेच्चेतसि जागरूको जंतोरसि श्रीजिनराजमल्लः ॥ नवेन्न किं सत्रिजगन्महल्लः प्रपात्यते किं नहि मोहमल्लः ॥४॥ त्वमेव देवस्त्रिविधेन येषां जगत्रयीवंद्यपदो हि पादैः ॥ धात्री पवित्रीक्रियते किमत्रचित्रं तदीयैस्त्रिजगत्पवित्रैः ॥ ५ ॥ उपाधियोगान्महतो लघुत्वं लघोरपि प्राज्यगुरुत्वमेव ॥आदर्शके देव यथा द्विपस्य प्रदीपदीप्तौ तु तनूकृतःस्यात् ॥६॥ कश्चिद्गुणानां हि लवोपि लोके यो दृश्यते सोपि विभोः प्रभावः ॥ अद्भुतकल्याणनिधेर्जिनेंद्र पयोविना पल्लविता नवृक्षः ॥ ७ ॥ नातःपरं देव जडत्वमंतः प्रत्यक्षलक्षोपि भवान्नबुद्धः ॥ सर्वज्ञताप्यस्ति विभो न चान्या त्वमेव देवो विदितो यदीह ॥ ८ ॥ विदंति सर्वेप्यपरानधीशान् नतान्नतास्ते प्रवदंति सर्वान् ॥ जगज्जगन्नाथ यथास्थितं हि त्वं वेत्सिहि त्वांतु न वेत्ति चित्रं ॥ ९ ॥ बहिःस्थितं वेत्ति परस्वरूपं न स्वस्थितं देव तव स्वरूपं ॥ चक्षुर्यथा पश्यति बाह्यरूपं नचात्मरूपं तु कदापि लोके ॥ १० ॥ सदात्मविज्ञानविहीनधीभिर्न ज्ञायते नाथ विभोः स्वरूपं ॥ स्वशीर्षपश्चात्प्रविभागसम्यङ्निरीक्षणे कोपि न बाह्यहेतुः ॥ ११ ॥ मध्यस्थभावोपि जिन त्वयीह गुणक्षतेः स्याद्गुणिनो नितांतं ॥ यथाऽगुणप्रत्यय एधधातोः कर्मण्यथो कोऽत्र विचारहेतुः ॥ १२ ॥ त्वद्भक्तिभावोप्ययथार्थ एव भवत्प्रणीतार्थविपर्ययेण ॥ विधीयते सर्वहितोपसर्गवर्गेण धात्वर्थइवान्यथा हि ॥ १३ ॥ दोदूयते यःस्वयमेव रागद्वेषादिलुंटाकभटैर्यथेष्टं ॥ संस्तूयते सोपि हि देवबुध्या हहा महामोहविजृंभितं तत् ॥ १४ ॥ अचिंत्यमाहात्म्यनिधिं प्रसन्नं जगच्छरण्यं जगतोपि पूज्यं ॥ त्वमेव देव प्रविवेत्सि हि त्वां प्रकाशतेऽन्येन किमु प्रदीपः ॥ १५ ॥ किमस्तिनास्तिति विवेकपक्षा रागादिपक्षक्षतिलब्धदक्षाः ॥ ये श्रीजगन्नाथ जिनप्रभस्ते त्वामेव देवं जिनमाश्रयंति ॥ १६ ॥ इति श्रीवीतरागस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवनप्रारंभः ॥

देवैर्यःस्तुष्टुवे तुष्टैः सोमलांछितविग्रहः ॥ दद्याच्चंद्रप्रभःप्रीतिं सोमलांछितविग्रहः ॥ १ ॥ येषां पूजाविधिःकर्मांजनहृत्कमलालयः ॥ ते जिनाः पांतु वोभव्यजनहृत् कमलालयः ॥ २ ॥ कुतीर्थिसार्थेन डुरासदं भोज्ञानिरंजनं ॥ श्रुतं सेवेत मोहाग्निसदंभो ज्ञानिरंजनं ॥३॥ पातु गीर्वाःकृताविद्योपरमा कमलासना ॥ यत् प्रभो वा जनैर्लेभे परमा कमलासना ॥ ४ ॥ इति श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीऋषभदेवस्तवनप्रारंभ. ॥

संस्कृतभाषा

निरवधिरुचिरज्ञान दोषत्रयविजयिन सता ध्येयम् ॥ जगदवबोधनिबंधनमादि जिनेंद् नवीमि मुदा ॥ १ ॥ कस्तवमिति द्विपोलं वदितु परितो गुणान् गुरुनिभो पि ॥ चुलुकै प्रमिमासति वा कश्व जल वरमनीरनिधे ॥ २ ॥ तदपि त्वद्भक्तिभर प्रतरलितो वच्मि तावकगुणाणुं ॥ चापलनुन्नो स्फुटमपि लपन् शिशुर्वा निरपवाद ॥ ३ ॥ ज्ञानप्रदीपजमिव स्निग्धाजनमुपहित चरणलक्ष्म्या ॥ सध्धानदृगंजिताय चिकुरचयस्ते स यो रुरुचे ॥ ४ ॥

प्राकृतभाषा

तमकसिए सप्पखयमो,र मोरज्झाहुते किलिम्मति ॥ तुह सासणापिधं जे कुणति विविहे तव किलेसो ॥ ५ ॥ तझिय कल्लाणसिरि, पिदे वकल्लाएसिरिविलासगिह ॥ तुह वदे देहमह विलसिरमोहपि हयमोह ॥ ६ ॥ युग्म ॥ तुह मुहरभासयला, रविदलच्छी मरट्टफुसएोण ॥ ज विजितु हिमरस्सी नियकती निवहसुहडेहि ॥ ७ ॥ असइ तमभि भवभर सुसिरिं पहू ससकोसो ॥ डुग खुर इय घणपरि,हिदंभर्ड परनिसेहहा ॥ ८ ॥

मागधी भाषा

तुह शुस्तिदेवभाव, स्त गदपञ्ञे शमयपथमचञ्ञे ॥ ते यिए कुमदलश्कशव,शिमिश्चादिस्टी पददि भवे ॥ ९ ॥ तमवय्यवय्यिदमिध, आचिरिकिद शुस्टु मोस्कपुलग्ग ॥ काला चिट्टामि हगे, हलिशभले पिस्किड धञ्ञे ॥ १० ॥ केलीहलाहगुए हलिञ्जकशवस्टलायि किलणाह ॥ तुह अपुलभवत्तिलस, वदामु हगे शर्व ॥ ११ ॥ सयणिदधञ्ञकमले, ये पष्कालिदमहंदपकमले ॥ धिदपलमहिययडु भव शे शदा कोहे ॥ १२ ॥ ॥ कृपा२

पैशाची भाषा

विबुधान राचित्रानत, अनञ्ञ सामञ्ञ बुञ्ञ तिसपञ्ञं ॥ रतून हितत्थं सदा॥२॥ च्छीकुतुबिनी पनय ॥ १३ ॥ भत्तिभराती दूरे चिट्ठति यो तुह रमिय्यते चरणसुधा विहितसिनातो न सो भोति ॥ १४ ॥ युम्हातिसेवि तेंभवदेज्यया॥४॥ वे सतय्येव॥कीरतिनो येन रत्ती स कथं वपते सुकतबीज॥१५॥ भवव तिंहि तुम मिमलरूपा॥ विलसिर पमतच्छीजल, परकालिरक्ख मां सदरगवि५

॥ मुरजबंध ॥

गीरतारजतारक्षणे धीरता स्थिरतारसा ॥सारतारश्रुतावंध्या सुरता जन तावकी६

॥ गोमूत्रिका ॥

ये पश्यंति तवेहास्यारविंदं भक्तिबंधुराः॥न पतंति भवे शश्वत्ते विदो भगवन्नराः॥७॥

॥ सर्वतोभद्र ॥

नमासररसामान मारिताक्षक्षतारिमा॥साता म या यामतासा रक्षयाममयाक्षर८

॥ रथपदं ॥

तिर्यङ्नरसुराकीर्णा भासते नमते सभा ॥

त्वन्माहात्म्यात् कृताश्चर्यं याश्रिता ततता श्रिया ॥ ९ ॥

॥ द्व्यक्षरपाद ॥

रैगोरांगोरुगीर्गंगा गौरीगुरुररोगरुक् ॥ गोरंगा गाररोगारिं रिरिरो रैगुरुं गिरिं ॥ १०॥

॥ एकाक्षरपाद ॥

लाललालोललीलालं तततातततिताततेे ॥ ममाममाममममुमा ननानेनोननानन॥११॥

॥ एकाक्षर श्लोक ॥

काकंकि काककंकौकः केकाकोककककेकिक ॥

कककाकुककोकैक ककुःकांकोंककांककं ॥ १२ ॥

॥ असंयोग ॥

मरुभूमौ तपक्लाविव चारुसरोवरं ॥

कुतः सुकृतहीनानां सुलभं तव शासनं ॥ १३ ॥ युग्मं ॥

॥ द्वाभ्यां खड्गसंदानितकं ॥

सारणिः पुण्यवन्याया न्यायमौक्तिकशुक्तिका ॥ कामधेनुर्नयविदां बंधोल्लासन लालसा ॥ १४ ॥ सारं स्याद्वादमुद्रायास्त्रिपदी भवतोऽजसा ॥ सा मेऽस्तु हृदि कांतैका खिलेन रहितेन सा ॥ १५ ॥

॥ मुसलं ॥

श्रीसिद्धार्थकुलव्योमदिवाकर निरंजन ॥

कक्षतेकांतवा मतं तीर्थंकर तवाश्रिताः ॥ १६ ॥

॥ त्रिशूल ॥

भुक्ता या त्वयि नव्याली धन्या धत्तेस्म चेतसा ॥
सामता तामसाकाममकासारगसागर ॥ १७ ॥

॥ हलं ॥

त्रिशलाकुक्षिपाथोजराजहंस जगद्विनो ॥
भोगास्तृणमिव त्यक्तास्त्वयामुक्ति दिदृक्षया ॥ १८ ॥

॥ धनु ॥

सुरासुर नमस्तुभ्यं नमस्यति जिनोत्तम ॥
मन प्रसादसदर्भदलिता शुभवासना ॥ १९ ॥

॥ शर ॥

कथं कर्तु जनो मोहव्यपोहमदहक्रम ॥
मनसा सादर यस्त्वा न स्तौति तिमिरापह ॥ २० ॥

॥ शक्ति ॥

बाल्यो मरुशिर कंपर्सपत्प्रथितविक्रम ॥
मनोजानोकहव्याल मम स्वामी भवाभव ॥ २१ ॥

॥ अष्ट दलकमल ॥

मानितार्यक्रमामार रमामाकंद माधव ॥
वधमार्गे ममाकास सकामाधी प्रतानि मा ॥ २२ ॥

॥ षोडशदल कमल ॥

वनप्या न घनस्वान ध्यानमौन कनत्घन ॥
ज्ञानस्थान जिनश्रीनघनमेनस्स्वन स्व न ॥ २३ ॥

॥ स्तुत्यनामगर्भ बीजपूर ॥

जय हेमवपु श्रीक जगन्मोहापहारक ॥
जराहिवीन सिद्धाक जन्मनीरधि नाविक ॥ २४ ॥

॥ हरा ॥

तुभ्यं नमोस्तुजनयस्थितिकाय भीतिवन्यासुपावक सुरस्तुत वीर नेत ॥
विद्याल ताविपुलमडपहेमरूप कल्याणश्रीकरणदक्ष नतेदमीन ॥ २५ ॥

॥ कविकाव्यनामांकं चक्रं. ॥

नग्नाकृत्यपथो जिनेश्वरवरो नव्याब्जमित्रः क्रियादिष्टं तत्वविगानदोषरहितैः सूक्तैः श्रवस्तर्पणः जन्माचिंत्यसुखप्रदः सुरचितारिष्टक्षयो वः सदा दाता शोभनवाग्विधीः क जलदं यामेक्षणः संविदा ॥ २६ ॥

॥ चामरबंधः ॥

श्रीमद्धाम समग्रविग्रह मया चित्रस्तवेनामुना नूतस्त्वं पुरुहूतपूजित विभो सद्यः प्रसृद्वैधिमे ॥ ख्यातज्ञातकुलावतंस सकलत्रैलोक्यक्ष्मृतांतरः स्फारक्रूरतरज्वरस्मरभ रः संरब्धरक्षारतः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहावीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजीरापल्लिपार्श्वस्तवनं ॥

जीरिकापुरपतिं सदैवतं दैवतं परमहं स्तुवे जिनं ॥ यस्य नाम जगतो वशंकरं शंकरं जपति मंत्रवज्जनः ॥ १ ॥ नाथ तत्तव मुखेंडदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं स्तुवे ॥ येन मेडुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधिः ॥ २ ॥ विश्वविस्तृत महाप्रभाव ते भावतेज इह मातिनो युगे ॥ उजते दिनकरे हि भासुरे भासुरेश्वरपुरस्य किं भवेत् ॥ ३ ॥ अर्बुदस्य भवता व्यभावि या भावियात्रिकजनैर्ष्वभीतिद ॥ पश्यतोहरभृतापि सारसा सारसाधुनिचिता भवत्तरां ॥ ४ ॥ ग्राममात्रमपिजीरपल्लिका पल्लिकाननसहोदरीव या ॥ त्वत्पदस्थितिबलेन साधुना साधुनायकपुरीवभासते ॥ ५ ॥ त्वां नमस्यशिववार्धितारकं तारकंकणसुमैः प्रपूज्य यः ॥ प्राप्य चिन्मयमनेनसं पदं संपदं स समुपैति शाश्वतीं ॥ ६ ॥ त्वत्पुरः प्रकुरुते प्रभावनां भावनां जिन निधाय यो हृदि ॥ निश्चितं स लभते न डुर्गती डुर्गतीर्णभवसागर प्रभो ॥ ७ ॥ यो दधाति हृदि तेंऽन्हिपंकजं पंकजं मलमधः करोति सः ॥ तस्ययेपि न भवंति पार्श्वतः पार्श्वतस्यतु भवोद्भवभ्रमाः ॥ ८ ॥ त्वत्स्मृतेरपि जना निरामया रामया चरमया निरामया ॥ योगिभूपण भवंति भूपिता भूपिताःकिल सुधाशनाइव ॥ ९ ॥ त्वत्पदप्रणतिलालसादरं सादरं दधति जातुनाध्वनिं ॥ यत्र यांति ननु भानुभानवो भानवोदय नमस्तु तत्र किं ॥ १० ॥ अंतरंगरिपवोऽकृपापराः पापराशिहर पीमयंति मां ॥ सत्यपि त्वयि विभो कृपालये पालयेश शरणागतं ततः ॥ ११ ॥ त्वन्मयं जगति यस्य मानसं मानसंयमनतस्य डुर्धराः ॥ तस्करानलपयः करेणवो रेणवो जिन भवंति तत्क्षणात् ॥ १२ ॥ देवशाखिमणिधेनुदेवता देव तावदिह वांछितप्रदाः ॥ यावदेव तव धामनामजं नाम जंतुमनसि प्रदीव्यति ॥ १३ ॥ ज्ञानिनं जगदिनं निरंजनं

रंजनं त्रिजगत पुरातनं ॥ त्वां स्मरामि सकलंच निष्कलं निष्कलंकमचलं महाब लं ॥१४॥ इत्थं य प्रयत. स्तवीति सततं श्रीजीरपल्लीपुरीवासं पार्श्वजिनप्रभुं प्रकटित प्रौढप्रतापोदयं ॥ सोवश्यं सुभग भविलुरधिकं धर्मार्थकामामृतश्रीभि स्त्रीभिरिव स्वयं गुणगणाश्लिष्टाभिराश्लिष्यते ॥१५॥ इति श्रीजीरापल्लीपार्श्वस्तवन समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीफलवर्द्धिजिनपार्श्वस्तवनं ॥

सयलाहिवाहिजलहर, समूहसहरणचडपवमाण ॥ फलवद्धिपासनाह सथुणि मो फणय इछफलं ॥ १ ॥ विहुयास विहुयास, विहुयासं पत्तमभिथुणति तुम ॥ अम यरया अमयरया, अमयरया पुणइखमवयण ॥ २ ॥ समणाण समणाण, समणा ण लंघिउं फुरइ सत्ती ॥ विणयाण विणयाण, विणयाणढणभयाहि सुदे ॥ ३ ॥ अ हिरन्ना अहिरन्ना, अहिरन्ना विणियमंति कयपूया ॥ सवाही सवाही, सवाहीणा तुह य नत्ता ॥ ४ ॥ गयवाहा गयवाहा, गयवाहा अरहियापइपसन्ने ॥ परमहिया परमहिया, परमहिया सह न हुति नरा ॥ ५ ॥ सहवणा सहवणा, सहवणामयरि क हवति जणा ॥ सुहयगया सुहयगया, सुहयगया तुह पसाएण ॥ ६ ॥ कणयाउ कणयाउ, कणयाउ रक्खसी तुम भवण ॥ भद्दवओ भद्दवओ, भद्दवओ रिद्धिसिरिया ण ॥ ७ ॥ नाएण नाएण, नाएण चियति लोहसुहउंसि ॥ नयराई नयराई, नयरा ई सुगुणपोराण ॥ ८ ॥ फलवद्धी फलवद्धी, फलवद्धी दाइणा तुमे विहिया ॥ सन्न यरी सन्नयरी, सन्नयरीणतयाइजया ॥ ९ ॥ समणाली समणाली, समणाली ण तहागमे धन्ना ॥ चरणरया चरणरया, चरणरया भाइचत्तसिरी ॥१०॥ निद्दप्पहस्स निद्द, प्पहस्स, निद्दप्पहस्स मोहदले ॥ रयणायर रयणायर, रयणायर गुहिर तुझ नमो ॥ ११ ॥ इत्थं थुउसि सिरिपास जगन्निवास सिगारहारफलवद्धिपुरीसिरीए ॥ बुद्धीयराकयजिणप्पहसूरिवाणी थूयच्चमे वियर अंतररोगमुक्कं ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवन ॥

॥ संस्कृतं ॥

नमो महसेननरेंद्रतनूज जगज्जनलोचनभृंगसरोज ॥ शरद्भवसोमसमद्युतिकाय दयामय तुभ्यमनतसुखाय ॥ १ ॥ सुखीकृतसादरसेवकलक्ष विनिर्जितदुर्जयभाव विपक्ष ॥ सुरासुरवृंदनमस्कृत नद महोदय कल्पमहीरुहकद ॥ २ ॥

॥ प्राकृत ॥

जय निरसिय तिहुयणजतु भंति जय मोहमहीरुहदलनदति ॥ जयकुवक

लियसमदंतयंति जयजय चंदप्पहवंदकंति ॥ ३ ॥ जय पणयपाणिगणकप्परुक्क जय जगडिय अपयमकसयपक्क ॥ जय निम्मलकेवलनाणगेह, जयजयजिणिंद अप्पडिमदेह ॥ ४ ॥

॥ शौरसेनी ॥

विगदडुहहेडु मोहारिकेदूदयं दलिदगुरुडुरिदमध विहिदकुंमदक्कयं ॥
नाधतं नमदिजोसदटनदवत्सलंजहदिनिच्चदि गर्ति सोददं निम्मलं ॥ ५ ॥

॥ मागधी ॥

असुलसुलविसलनलनाय सेविवपदे नमिल जय जंतुतुदि दिन्नसिवपुलपदे ॥
चलनपुलनिलद संसालिसलसीलुदे, देहि महसामितंसालि सासदपदे ॥ ६ ॥

॥ पैशाचिकं ॥

तलिताखिलतोसतया सततं मदनानलनीलमनानगुणं ॥
नलिनारुणपाततलांनमते जिननो इधतं सशिवं लनते ॥ ७ ॥

॥ चूलिका पैशाचिकं ॥

कलनालिकनातुलतप्पहलं चलनीकल चालुयशप्पसलं ॥
जलनाचनकीतकुनंखुचिलं चिनलावमहंसमलामिचिलं ॥ ८ ॥

॥ अपभ्रंश ॥

सासयसुक्ख निहाणुनाहनदिठो जेहिं तउं पुन्नविहूणउजाणु निफलजम्मु तिहं नरपसुहं ॥ ९ ॥ निम्मल तुह मुहचंडुजे पहुपिक्खुइं पसरिसिउं इयनिरुवमआणंडु तिह मुनिसामी विप्फुरइ ॥ १० ॥

॥ ग्रयं समसंस्कृतं ॥

हारिहारहरहासकुंदसुंदरदेहानय केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमय॥ कमलारुणकरचरणचरणन्नरधरणधवल बलसिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलमदल ॥ ११ ॥ नवनवदवजलवाहविमलमंगलकुलमंदिर वामकामकरिकेलिहरणहरिवरगुणबंधुर ॥ मंदरगिरीगुरुसारसबलकलिजूरुहकुंजर देहिमहोदयमेव देव मम केवलिकुंजर ॥ १२ ॥ इति जगदनिनंदन जनहृदि चंदन चंद्रप्रन्न जिनचंद्रवर॥ पद्मापानिष्टुत मम मंगलयुतसिद्धिसुखानि विनो वितर ॥ १३ ॥

इति श्रीजिनप्रन्नसूरिकृतचंद्रप्रन्नस्वामिसत्कं षड्नाषास्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्री वर्द्धमाननिर्वाणकल्याणकस्तवनप्रारंभ ॥

श्रीसिद्धार्थनरेशवशकमलशृंगारचूडामणेर्भव्याना दुरपोहमोहतिमिरप्रोद्भासने ऽह्रमणे ॥ कुर्वे किंचन काचनोज्वलरुचेर्निर्वाणकल्याणकस्तोत्रं गोत्रनिदर्चनीयचरणाम्भोजस्य वीरप्रभो ॥ १ ॥ प्राप्य देव शरदाद्विसप्तति शीतगौ पवनदेवतर्द्धगे ॥ तामुपायत रसेन कार्तिकाऽमावसीनिशि शिवश्रियं भवान् ॥ २ ॥ हस्तिपालकनृपालपालिता पूर्न पूरयतु मन्मन शुचा ॥ यत्र दर्शइव चन्द्रमा भवानस्तमाप भवताप हा पुन ॥३॥ ऊर्जदर्शनिशि दर्शितर्द्धयस्तत्रपुर्यखिलवर्णजा. प्रजा ॥ त्वन्महोदयमही तथाऽधुनाऽप्युत्सव विदधतेऽनुवत्सर ॥ ४ ॥ येर्ध्वनिस्तव पपे श्रव पुटै षोडशप्रहरदेशनाविधौ ॥ तान्निवेश्य धुरि धन्यताजुषा रेखया न खलु सुप्यतेऽन्यत ॥५॥ पुण्यपापफलपाकवर्णनामध्यमध्ययनपंक्तियुक्शत ॥ व्याख्या स्फुटमप्टपद्रुतिव्याकृतीश्र परिषद्पुरस्तदा ॥६॥ जीवति त्वयि जिनेन्द्रभूतिना त्वत्प्रणामविधिभंगभीरुणा ॥ नून मेष्यत न देव केवलज्ञानसपदनुरागभागपि ॥ ७ ॥ यद्विधेयमुपदिश्य गौतम प्रेपि भक्तिभृदपि त्वयाऽन्यत ॥ रोगिण कटुकजायुपानवज्ञ्यायसेऽस्य चरुपे गुणाय तत् ॥ ८ ॥ त्वद्दिदृक्ष्ववतरत्सुरावली या न देहमणिभूषणाशुभि ॥ सा कुहूरजनि रत्नतामसा पूर्णिमानिशमुपाहसद्ध्रुव ॥९॥ निर्वृते त्वयि विलोक्य विष्टप ध्वातपूरपरिपूरितोदर ॥ रोदयत इव रोदसी प्रतिश्रुद्भरेण रुरुदु पुरदरा ॥१०॥ वन्हिवायुजलदेश्वरै सुरैस्तैलपर्णिकरुतागसस्कृते॥भूतिमात्रमपि भूतिधाम ते ऽपस्पृशन् बत न तान् रजोऽस्पृशत् ॥११॥ भक्तितो महितुमीशवासवास्तावकीनदहनुसग्रह व्यधु ॥नूनमह्नविजयाय तावकानुग्रहेण हनुमल्लमिच्छव ॥१२॥ कुग्रहा न तव जातु शासन वीर बाधितुम लभविस्रव ॥ एकक स खलु भस्मकग्रहो बाधते भवदुपेक्षितस्तदा॥१३॥ जग्मुषि त्वयि शिव नराधिपास्तत्क्षण गृहमणीनबोधयन्॥ ये बभु कुनयकाननप्लुषस्त्वत्प्रताप शिखिन कणा इव ॥१४॥ यन्न कश्चन मुनिस्त्वया समं युक्ति मैयरितरैर्जनैरिव॥ दुषमा समयभावलिंगिना व्यंजितेन गुरुनिर्व्यपेक्षिता ॥ १५ ॥ प्रस्थिते त्वयि शिवाय तत्क्षण संमुमूर्छुरविष्टध्वि कुथव ॥ क्षुद्रजीववहुलामत पर सूचयतइव भाविनीं महीं ॥ १६ ॥ यत्र यत्र चरणौ त्वयार्पितौ तत्तदास्पदमगादमापता ॥ एकया पुनरपापया पुरापापयाऽजनि सुरोक्तिनामत ॥ १७ ॥ यत्र मुक्तिमगम शम दुमावाप पापतुहिनार्कतापतत् ॥ प्रीतिमीति तरुकुजभजने नाग नागकरण करोतु न १८ ॥ य पठत्यशठधीस्तव वीरस्तोत्रमेतदवधानसमेत ॥ तत्रभावरिपुरा

जि रथश्रीन्नाजि न प्रन्नवति प्रवत्तापि ॥ १ए ॥ इति श्रीवर्धमाननिर्वाणकल्याणकस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीअरिनाथस्तवनप्रारंन्नः ॥

जय शरदशकलदशह्यवदन जय हृतजगदसह्नमदमदन ॥ जय नतशमगतशमनजकदन जयन्नगवदरपरमपदसदन ॥ १ ॥ गतमलकमलसकलकरचरण जननमरणन्नवन्नयन्नरह्रण ॥ रचय चरणरसनशबलस्वन मनवमसनवमरसरमवचन ॥ २ ॥ नवरचनरतदशशतनयन नयवनजलदजलजदलनयन ॥ फलदकलकलयजयकरयजन नमदशमपहरशममनन्नजन ॥ ३ ॥ अमरफलदपदह्रपदकमल गजकरसरलसबलकरयमल ॥ जनयसनयमतनतजनसकल मतफलमपमलकलमलमकल ॥ ४ ॥ नयमयवचनपवनसमवमत परमतजलदपटलमनसमत ॥ शमदमयमसमरसरमसमय न्नवपतनजन्नयमज मम शमय ॥ ५ ॥ धनखकनकशकलघनवरन्न मदकलकरणकलन्नजयशरन्न ॥ शरणदचरणनरकदरशमन सदयमदधमफलयगजगमन ॥ ६ ॥ नतशतमखतमखलजनमदर गमयपरमपदमन्नयदसदर ॥ नवनवन्नववनन्नवदशमगम शकलनगजकलगलदनवगम ॥ ७ ॥ तमचयमपनयतपमहृतपन परसमयजरजह्रपदजपन ॥ समजनदमनकमनगजकरट दलनसबलतमहृतमदचरट ॥ ७ ॥ मदनयनगमशरणनरशरण गतरणसदवतरणवरकरण ॥ परसह्चरसमरसजगदवन समवसरणरमदह्मह्न्नवन ॥ ए ॥ सततमचरचरजगदवगमक मननजनकथनतरतमशमक ॥ परपदनगरगमनरणरणक मफलदशमसफलयपथन्नणक ॥ १० ॥ रसन्नरलसदनलसनमदमन न्नवनपवनचरनरयतसमर ॥ दलयबह्लमलमरवरवशतमतरतनरशतगतपरवशत ॥ ११ ॥ कपटशकटजलशयसमनवक जनमवगमयसमयरसमवक ॥ गदगजरणफणधरद्रकदह्न धनह्रमरकजदरह्रमह्न ॥ १२ ॥ समतसतमह्परमतकलस गणधरगणधरशमरसकलस ॥ न्नवदन्नवदपदलयलसदवम वनमवनमयसह्नमह्नवम ॥ १३ ॥ एवं श्रीअरतीर्थराज तव यो डुःकर्मरोगच्छिदा कामः केवलवर्णसंस्तवसुधास्वादं विधत्ते सुधीः ॥ श्रेयो वा न जरामरत्वपदवीसौख्यानि बाह्यंतरा मित्राली जय सुंदरः स नियतं शिश्रीयते मानवः ॥ १४ ॥ इति केवलाक्षरमयं श्रीअरनाथस्तवनं संपूर्णं ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

॥ अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायकृत अध्यात्ममतपरीक्षाप्रारंभ ॥

॥ आर्या वृत्त ॥ पणमिय पासजिणंदं, वंदिअ सिरिविजयदेवसूरिंदं ॥ अज्झप्पमयपरिक्खं, जहबोहमिमं करिस्सामि ॥ १ ॥

व्याख्या – सर्व कल्याणनी सिद्धिने अर्थे, श्रीपार्श्वनाथने प्रणाम करीने, तथा संप्रति विजयमान तपागच्छाधिराज जे श्रीविजयदेवसूरी तेमनी वंदना करीने, पोताना बोधने अनुसारे, आ अध्यात्ममतपरीक्षानामनुं प्रकरण हुं करुं छु

उपोद्घात – कोई आशंका करे के, शुद्ध तत्वनो जे अंगीकार तेने अध्यात्म कहेछे तेमां कोई विवाद नथी, त्यारे परीक्षा ते शानी करवी? जे वस्तुमां संदेह पडे तेनी परीक्षा कराय छे, निस्संदेह वस्तुनी शी परीक्षा! माटे आ अध्यात्ममत परीक्षानामनुं प्रकरण करवानुं कांई प्रयोजन दीठामां आवतुं नथी तेने कहेछे ॥१॥

अज्झप्पं णामाई, चउव्विह चउविहा य तव्वंता ॥
तच्छ इमे अप्पुत्तिय, णामेणज्झप्पिआ णेआ ॥ २ ॥

व्याख्या – अध्यात्मना चार प्रकार छे एक नामअध्यात्म, बीजो स्थापनाअध्यात्म, त्रीजो द्रव्यअध्यात्म अने चोथो भावअध्यात्म चेतन तथा अचेतन ए बेमानी कोई पण वस्तुनुं अध्यात्म एवुं नाम राखेलुं होय ते नामअध्यात्म, अध्यात्मवंत यतिना आकारनुं चित्र कहाडयूं होय ते स्थापनाअध्यात्म, अने जेथकी भावअध्यात्म उत्पन्न थाय, जेवा के, प्रतिमादर्शन, सद्गुरुसेवा, अने अध्यात्मशास्त्राभ्यास ए त्रणे भावाध्यात्मना कारण छे, माटे ते द्रव्याध्यात्म, तथा आत्माना जे शुद्ध परिणामते भाव अध्यात्म कहिये तेम अध्यात्मीना पण पूर्वोक्त रीते चार प्रकार छे तेओमां इहा जेओना मतनो विचार कर्त्तव्य छे, ते नामअध्यात्मवंत छे. तेओना मतनी आशंकानुं निवारण करवु, ते आ ग्रंथनुं प्रयोजन छे.॥२॥

उ० – पूर्वोक्त चार प्रकारना अध्यात्ममानो भावअध्यात्म मोक्षनुं कारण छे माटे तेनु विशेषेकरी स्वरुप कहेछे –

जा खलु सहावसिद्धा, किरिआ अप्पाणमेव अहिगिच्च ॥
भणइ परमज्झप्पं, सा दंसण नाण चरणह्मा ॥ ३ ॥

व्या० – जहांसुधी कषाय तथा इंद्रियने वश थयोथको संसारनेविषे आत्मा

फरे छे, तहांसुधी आत्मानेविषे कर्मनो अधिकार छे; स्वतः आत्मानो अधिकार नथी. केमके, आत्मस्वभावनुं आछादन थएलुं छे. जेम मलद्रव्यना योगे सुवर्ण नुं आछादन थई जायछे, तेथी तेनो स्वभाव प्रगट थई शकतो नथी. तेम कर्मना योगे आत्मानुं आछादन थई जायछे, तेथी तेनो ज्ञान, विज्ञान, तथा अमूर्त्तत्वा दि स्वभाव प्रगट थई शकतो नथी. अने नामकर्म ते आत्मस्वभावने पलटावीने नर, तिर्यंच, नारकी, तथा देवताप्रमुखना पर्यायरूप पोताना स्वभावने प्रगटकरे छे. जेम तीव्र अग्निमां सुवर्णने नाख्याथी ते मल ज्यारे बली जाय त्यारे सुवर्ण नो शुद्धतादिस्वभाव प्रगट थायछे. तेम शुभपरिणाम पूर्वक तपश्चर्याप्रमुख थ की ज्यारे कर्मोनो क्षय थई जायछे, त्यारे आत्मानो ज्ञानादिरूप स्वभाव प्रगट थायछे. एटले कर्मनो अधिकार टलीने स्वतः आत्मानो अधिकार प्रवर्त्ते छे, ए अधिकारनी जे क्रिया तेने भावअध्यात्म कहिये. ते आत्म ज्ञानरूप एक वस्तु हो वाथी बोधरूप छे माटे ज्ञान कहिये; तेमज रुचिरूप होवाथी सम्यक्त दर्शन क हिये; तथा प्राणातिपातादिक आश्रवनिरोधरूप होवाथी चारित्र कहिये. यतः "आ त्मानमात्मनोवेत्ति, मोहत्यागाद्यआत्मनि॥ तदेव तस्य चारित्रं, तज्ज्ञानं तच्च दर्शनं."

उ० कोइ आशंका करे के, भावाध्यात्म तथा शुद्धोपयोग ए बे शब्दोनो अर्थ एक छे. जेम उपाधिरहित स्फटिकनो निर्मल स्वभाव छे. तेम परद्रव्यसंगरहि त जीवनो निर्मल स्वभाव छे. तेनेज शुद्धोपयोग कहेछे. अने एनेज चारित्र कहेछे. परद्रव्यसंगे जीवनो जे मलिन स्वभाव थायछे, तेने अशुद्धोपयोग कहेछे एना बे भेद छेः—एक शुभोपयोग बीजो अशुभोपयोग. देव गुरु तथा धर्मादिक उ पर जे प्रशस्त राग होयछे, तेने शुभोपयोग कहेछे. जेम राता फूलना संगथकी स्फटिकनो रातो रंग थायछे, तेम जाणवुं. अने जे अप्रशस्त राग तथा द्वेष होय छे, तेने अशुभोपयोग कहेछे. जेम काला फूलना संगथकी स्फटिकनो कालो रंग थायछे, तेम जाणवुं. ए बन्ने मूल स्वभावने ढांकी लियेछे, तेथी अशुद्धोपयोग कहेछे. एनेज शुद्धोपयोगरूप चारित्रना भेद कहेछे: एनां आयतन परद्रव्य छे त्यारे श्वेतांबरनेविषे चउद उपकरणरूप परद्रव्यनो संग छता अध्यात्म केम प्रग ट थाय? तेने उत्तर कहे छे. ॥ ३ ॥

एविना रागदोसो, अप्पपरसेहि किंचि पडिकूलं ॥
परदवं उवगरणं, किंपुण देहुव धम्मठं ॥ ४ ॥

व्या० मात्र रागद्वेषविना बीजूं कोई पण परद्रव्य ते शुद्धोपयोगरूप अध्यात्म ने प्रतिकूल नथी एम जो अंगीकार नही करशो तो लोकमा सर्वत्र धर्मास्तिकायादिक परद्रव्य नखा छे, ते बधा प्रतिकूल कहेवासे तेम तो संभवे नही, माटे शुद्धोपयोगरूप अध्यात्मने राग द्वेषज प्रतिकूल छे, एविनाबीजु कोई परद्रव्य प्रतिकूल नथी एम जाणवु जो एम कहेशो के परिग्रहीत परद्रव्य अध्यात्मनुं विरोधीज छे, पण अपरिग्रहीत परद्रव्य अध्यात्मनुं विरोधी नथी त्यारे शरीर रूपद्रव्य परिग्रहीत छतां केम अध्यात्म उत्पन्न थायछे? जो एम कहेशो के, शरीर धर्मनुं कारण छे तेथी अध्यात्मनो विरोधी नथी त्यारे धर्मोपकरण पण धर्मना साधन होवाथी अध्यात्मना विरोधी थाय नही ए सामान्यपणे उत्तर कह्यु

उ० कोई एवी आशंका करे के ज्याशुधी उपधि होय त्या शुधी सर्वथा अध्यात्मनी सिद्धि थाय नही तेनुं मत दूषित करेछे — ॥ ४ ॥

उवधिसहिओ ण सिज्झइ, सतुसा जह तंडुला न सिज्झंति ॥
इय वयण पक्खित्तं, दूरे दिछतवेसम्मा ॥ ५ ॥

व्या० —उपधिसहित जीव सिद्धताने पामे नही जेम तूससहित चोखो सीजे नही, तेम जाणवु. जेम चोखाने तूस दोषरूप छे, तेम उपधि जीवने दोपरूप छे एवुं वचन अमरचद नामना दिगंबरनुं तुछंज नाख्यु छे, माटे ए दृष्टांत समीचीन नथी केमके, चोखाने तूसरूप दोष ते स्वरूपथकी छे, अने जीवने उपधिरूप दोष स्वरूपथकी नथी जीवने उपधिरूप दोष जो स्वरूपथी होय, तो क्षपकश्रेणीए चढेला यतिना स्कधउपर वस्त्र नाखिये तो तेने केवलज्ञान उत्पन्नथवु न जोये अने तूससहित वस्तु सीजे नही ए पण सर्वथा सभवित नथी केमके, मुग प्रमुख तूससहित सीजता दीठामा आवेछे माटे ए पण एकात नथी, अनेकात छे

उ० — परवादी जे दोष उपधिनेविषे कहेछे, ते दोष शरीरनेविषे पण सभवे छे, ते देखडावे छे — ॥ ५ ॥

जा उवगरणे मुछा, आरंभो वा असंजमो तस्स ॥
तह परदवम्मि रई, सा किस तुह सरीरेवि ॥ ६ ॥

व्या० — जो एम कहेशो के, उपधि राख्याथी मूर्छा थायछे त्यारे शरीरउपर केम मूर्छा थती नथी. उपधिनी मूर्छा तो शरीर मूर्छानिमित्त छे. तेथी शरीरने

अधिक मूर्छा संभवे. एनुं समाधान जो आवी रीते करिये के, मूर्छाना बे भेद छेः– एक मारुं मारुं एवो ममत्वपरिणाम, अने बीजो पामेली वस्तुउपर अवियोगनो अध्यवसाय; ए आर्त्तध्याननो भेद छे. तेओमांनी पहेली जे शरीरविषे ममत्वपरिणामरूप मूर्छा कहीछे, ते तो सम्यक्दृष्टिने पण थाय नही; केमके, ते ज्ञानी छे. अने ममत्वपरिणाम तो अज्ञाननिमित्त छे. एथीज सम्यक्दृष्टि विषयादिकनुं सेवन करतो छतां पण तेने परमार्थथी विषयसेवनरहित कह्यो छे; त्यारे यतिनेविषे ते शुं कहेवुं! अर्थात् यति तो सर्वथा विषयसेवनरहित छे. अने बीजी आर्त्तध्यानरूप जे मूर्छा छे ते धर्मध्यानना प्रभावेकरी शरीरविषे थाय नही. एज समाधान उपकरणनेविषे पण जाणी लेवुं. जो एम कहेशो के, उपकरण राख्याथी तेना ग्रहण तथा त्यागथी आरंभ थायछे., ए वात पण असंभवित छे. केमके, आरंभ तो शरीरना करचरणादिनी क्रिया कर्याथी पण थाय छे. जो कहेशो के शरीरना करचरणादिकनी क्रिया जयणाएकरी थायछे. तो जयणाएकरी धर्मोपकरण लेतां तथा मूकतां पण आरंभ थतुं नथी. जो एम कहेशो के, धर्मोपकरणथकी शुद्धात्मपरिणाम भंगरूप हिंसा थायछे त्यारे शरीरथकी केम हिंसा थती नथी? ज्यारे मूर्छाविना शरीरथकी हिंसानो संभव थतो नथी, त्यारे मूर्छाविना धर्मोपकरणनो पण संभव केम थशे! जो एम कहेशोके, धर्मोपकरणथकी परद्रव्यनेविषे रति होवाथी आत्मद्रव्यमां रति थती नथी. त्यारे शरीरथकी पण द्रव्यरति केम नथाय? किंतु थवीज जोइये एनो विचार करो.

उ०ः– परद्रव्यरतिने बे विकल्पेकरी दूषित करेछेः– ॥ ६ ॥

तह परदव्वम्मि रई, परिणामो रक्खणाणुबंधो वा ॥
उदओ तणु सममुवहिं, पासंतो किं ण लज्जसि ॥ ७ ॥

व्या०ः– परद्रव्यरति ते शुं काययोगना परिणामरूप छे के, संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यानरूप छे? जो प्रथम काययोग परिणाम कहेशो तो शुभकाययोगे दोष केम लागे? अर्थात् एम तो संभवे नही. अने जो संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यानरूप कहेशो तो ते पण संभवशे नही. केमके, चोरादिकथकी सर्व प्रकारे जे वस्त्रादिकनुं बचाववुं, तेने संरक्षण कहेछे, ने तेनुं जे निरंतर चिंतन करवुं, तेने अनुबंध कहेछे. एवुं रौद्रध्याननो भेद जो उपधिथकी थाय तो शरीरथकी पण थवुं जोइये. केमके, सर्प, चोर, तथा कंटकप्रमुख थकी शरीरनी रक्षा करवाना अ

ध्यवसाय पण घणानेविषे दीठामां आवेछे. एने तो रौद्रध्यान कहेता नथी। जो एम कहेशो के, यतिने शरीरनेविषे राग नथी होतो, तेम छता सर्पादिकथी शरीरनी रक्षा तो धर्मसाधनने अर्थे करेछे तेथी तेना अध्यवसाय अशुभ होता नथी एम पण संभवे नही। केमके, यतिने शरीरनी पठे धर्मोपकरणउपर पण राग होतो नथी तेम छता तेनी रक्षा पण धर्मसाधनने अर्थे करेछे एवी रीते शरीरना जेवाज धर्मोपकरण छेरेछे तेम छता तेओनी उछापना करतां तमने शरम थती नथी।

उ० – कोई आशंका करे के, उपकरण जे छे ते ध्याननां विरोधी छे केमके, तेओना प्रतिलेखनादि बाह्यव्यापारना योगे अंतर आत्मतत्वनेविषे चित्त एकाग्रतारूपध्यानमां विघ्न थायछे. एम कहेनाराने उत्तर दिये छे ॥ ७ ॥

जो किर जयणापुव्वो, वावारो सोण जाण पडिवक्खो॥
सोचेव होइ जाण, जुगवं मण वयणं कायाणं ॥ ८ ॥

व्या० – आवश्यक पडिलेहणाप्रमुख जे जयणाएकरी व्यापार थायछे ते पण ध्याननो विरोधी होवोजोये, एने तो कोई विरोधी कहेतो नथी किंतु एतो एक कालाश्रित मन, वचन, तथा कायासबंधी ध्यानरूप होयछे जेमके, शुभयोगे करीमन एकाग्र होयछे, एनेज मन सबंधी ध्यान कहेछे, निरवद्य वचन बोलायछे, अने सावद्य वचननो त्याग थायछे, एनेज वचनसबंधी ध्यान कहेछे, अने शुभयोगनेविषे यत्नेकरी कायानी दृढता थायछे, एने कायसबंधी ध्यान कहेछे जो तमे एम कहेशो के, भगवते एकसमयनेविषे बे क्रियानो निषेध कह्योछे, तेम छता एकसमयाश्रित मन, वचन तथा काया सबंधी ध्यान केम संभवे? एनो उत्तर आमछे – भगवते जे एकसमयनेविषे बे क्रियानो निषेध कह्योछे ते भिन्न विषयविषे छे, एक विषयविषे निषेध नथी कह्यो जेमके, वांदणाना आवर्त्तननेविषे त्रण योगनी क्रिया एकज समयनेविषे थायछे यत "भिन्नविषये णिसिद्ध, किरिया डुगमेगयाए एगम्मि, जोग तिगस्स विभगिय, सुत्ते किरिया जउ भणिया"

उ० – कोई आशंका करे के, ध्यान जे छे ते योगनो परिणाम नथी के जेनी प्रवृत्ति बाह्य व्यापार करता थाय. जो योगना परिणामरूप ध्यान होय, तो लेश्या अने ध्यान एक कहेवाय एओमा काई न्यूनाधिकता होय नही तेम तो नथी देखातु लेश्याओनु रूप पण जुदुंछे, ने ध्याननुं रूप पण शास्त्रोमा जुदुं कह्युछे वली जो योगपरिणामरूप ध्यान होय तो चौदमे अयोगिकेवल गुण

स्थानके शुक्लध्याननो संभव केम थाय! ए तो योगनी परिणतिरूप नथी. केम के, ध्यानतो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप छे. अने तेनी उत्पत्ति आवीरीते था यछेः– सुखनी तृष्णाएकरी मोहनीयकर्मने वश थयो थको जीव परद्रव्यनेविषे प्र वृत्ति करेछे, ज्यारे मोहनीयकर्मनी न्यूनता थायछे, त्यारे परद्रव्यनेविषे प्रवृत्ति थती नथी. एमथयाथी विषयनेविषे वैराग्य थाय छे. केमके, विषयनेविषे जे रा ग होय छे, ते विषय प्राप्तिपूर्वक होयछे. अने रागना अभावे वैराग्य होयछे. वैरा ग्यथकी मननो रोध थायछे. केमके, मननी प्रवृत्ति विषयविना थती नथी. जेम तृणरहित स्थानकनेविषे पडेली अग्नि पोतानी मेळेज नाशने पामेछे. तेम विषय विना मन पोतानी मेळेज स्थिरताने पामेछे. मननो निरोध थयाथी चंचलता मटी जायछे. अने पछी मन एकाग्र थईने आत्मानेविषे प्रवृत्त थायछे. ए आत्मस्वभाव ने ध्यान कहेछे. यतः "जो खविदमोहकलुसो, विषयविरत्तो मणेण संभित्ता; समवट्ठिदो सहावे, सो अप्पाणे दवदिजा दा." इति प्रवचनसारे. एवुं सह चेतन स्वभावरूप जे ध्यान ते, बाह्य व्यापार करतां, तथा परद्रव्य अधिकरण क्रियाछतां केम प्रगट थाय? एनो निर्णय करेछे. ॥ ८ ॥

झाण तिकरण पयत्तो, ण सहावो तेण जेण सिद्धस्स ॥
इह णछाणविभागो, कह सुक्कझाणभेआणं ॥ ए ॥

व्या० मन वचन तथा कायारूप त्रिकरण एटले त्रण योगनो प्रयत्न कस्याथी ध्याननी सिद्धि थाय छे; माटे योगपरिणामरूप ध्यान छे; परंतु उपयोगरूपज ध्यान नथी. अने लेश्या पण योगपरिणामरूप छे. तेथी योगपरिणामपणे तो ध्यान तथा लेश्या ए बन्ने सरखा छे; परंतु बन्नेनां लक्षणो जुदां जुदांछे. लेश्या जे छे ते योगनो चलाचल परिणाम छे, अने ध्यान जे छे ते योगनो निश्चल परिणा म छे. अयोगीने यद्यपि करणव्यापार नथी, तथापि छता मन वचन तथा काया ना निरोधरूप प्रयत्न करे छे ते प्रयत्ने करीने जे त्रणे योगनो निरोध थाय छे, ते नेज ध्यान कहेछे. अने आंही जो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप ध्यान लइये तो सिद्धने पण ध्याननुं कर्तृत्व ठरशे. शास्त्रोमां तो सिद्धनेविषे ध्यानप्रभृति सर्वे क्रि यानो अभाव कह्योछे. जो एम कहिये के, सिद्धने व्यावहारिक ध्यान तो नथी, पण आत्मस्वभावरूप नैश्चयिक ध्यान तो छे. जो एम होय तो योगनो निरोध कस्या विना पूर्वकोटिपर्यंत केवलीने ध्याननो निषेध केम कस्योछे? आत्मस्वभाव सम

वस्थान तो केवलीने सर्वथकी अधिक छे. ए कारण माटे अयोगीने तो योगनिरोधरूप ध्यान छे, अने छद्मस्थने करणना दृढव्यापाररूप ध्यानछे एवी रीते शुभ योगेकरी प्रवर्त्तनीय जे ध्यान, तेमा वाद विवाद शानो होय !

उ० कोई आशंका करे के, जो उपकरण होय तो राग पण होय, माटे उपकरण सर्वथा त्याग करवा योग्य छे, तेम जो न करिये तो उत्सर्गमार्ग केम रहे? एप्रश्नना उत्तर दिये छे— ॥ ९ ॥

जा खलु सरागचरिआ, साविय उस्सग्गमग्गसंलग्गं ॥
मोत्तु अववायपय, अइप्पसंगी परविसेसो ॥ १० ॥

व्या० जे स्थिविरकल्परूप सरागचर्या कहेता सरागमार्ग छे ते पण उत्सर्गमार्गने लागेलोज छे. अर्थात् अपवाद मार्ग अने उत्सर्ग मार्ग निकट संबंधी छे यद्यपि स्थिविरकल्पी पण अपवादनो तो त्याग करेछे, तथापि कोई कारणने लीधे तेने ग्रहण पण करवु जोयेछे अने जिनकल्पी तो कदापि अपवादनुं ग्रहण करेज नही एवी रीते स्थिविरकल्पी तथा जिनकल्पीना अपवाद तथा उत्सर्गमार्गमा अल्प अतराय छे एटले अपवादमार्ग थकी उत्सर्गमार्गनी काईक उत्कृष्टता छे, तेथीज बे भेद थयाछे. अने जिनकल्पनी अपेक्षाए स्थिविर कल्प कह्योछे तेमज उत्सर्गमार्गनीअपेक्षाए अपवाद मार्ग कह्यो छे जो उत्सर्ग मार्ग थकी काईक न्यूनता वालो अपवाद मार्ग, तथा अपवादमार्गथी कांईक अधिकतावालो उत्सर्ग न कहेशु तो चौदमा गुणस्थानकना अतना समयसुधी उत्सर्गमार्गनो सभव थशे नही केमके सर्वोत्कृष्ट सवर तिहाज छे माटे जे ठेकाणे जे मार्ग उत्कृष्ट कह्यो होय ते ठेकाणे तेज उत्सर्गमार्ग छे. जेमके स्थिविरकल्पनेविषे चौद उपकरणज उत्कृष्ट होवाथी ते उत्सर्ग मार्ग छे. ॥ १० ॥

उ० मूल गाथावडे पूर्वपक्षी आशका करे छे —

णणु वज्झंगं साहण, मववाउ अंतरंगमुस्सग्गो ॥ जा पुण सराग
चरिया, समुच्चिया णेव सिक्खाए॥११॥ पडिसेवणो पुणाणो, अववा
उ फुडो अणायारो ॥ ता वज्झाई गंथो, णो उस्सग्गो ण अववाउ॥१२॥

व्या० — परद्रव्यमात्रनी जे निवृत्ति, एटले परद्रव्यनो काई पण परिग्रह रह्यो न होय, मात्र आत्मद्रव्यनोज प्रतिबंध होय, तेज संयमनुं अतरग कारण छे;

एने उत्सर्गमार्ग कहेछे. एवी सामग्रीनी प्राप्तिविना शुद्धोपयोगभूमिकाए चढी शकातुं नथी, त्यारे तेनी साह्यता करनारी जे उपधि होय तेनुं धारण करवुं तेने अपवाद कहेछे. ते उपधि बंधनो हेतु नथी, माटे निषेध नथी कह्यो. केमके, ए उपधि संयमरहित पुरुषना उपयोगमां आवती नथी. किंतु संयतीनेज उपयोगी छे. अने मूर्छानो हेतु थती नथी. यतः " अप्पडिकुट्ठं उवहिं, अपत्थणिज्जं असं जद जणोहिं; मुच्छादिजणणरहिदं, गेह्णदुसमणोयजदि विअप्पंते. " ते उपधि आ छेः– एक तो यथाजातलिंग पुद्गल, एटले जेवो माताना उदरमांथी नीकळ्यो होय तेवो आकार धारण करवो, बीजो वचनपुद्गल, एटले जेथी शुद्धात्मतत्वनो बोध थायछे; तेनुं ग्रहण करवुं; त्रीजुं गुर्वादिक विनयरूप मनना पुद्गलनुं धारण करवुं; अने चोथुं सूत्राध्ययनना पुद्गलने धारण करवुं. यतः " उवयरणं जिणम ग्गो, लिंगं जह जादरूपमिदि भणिदं; गुरुवयणंपि अ विणउ, सुत्तज्झयणं च प न्नत्तं " एवो जे अपवादमार्ग तेने सरागचर्या कहेछे. अर्थात् शुद्धोपयोगनी न्यू नताने लीधे अपवादमार्ग कहेवाय छे. पण जे वस्तु प्रतिषिद्ध एटले सेवन करवा योग्य न होयने तेनुं जे सेवन करवुं तेने अपवाद कहता नथी. तेने तो प्रगट अ नाचारज कहेछे. तेमछता संयतीने वस्त्रादिक सेवन करवायोग्य नथी केमके, ए अनाचार छे. माटे ए सर्व परिग्रहनो त्याग करवो जोये. वस्त्रादिक परिग्रहनुं जे ग्रहण करवुं ते उत्सर्ग पण नथी ने अपवाद पण नथी; किंतु अनाचार छे, ते केम करवो ? एहवुं जे कहेछे तेने उत्तर आपी तेनो समाधान करेछेः–॥ ११ ॥ १२ ॥

उवकुणइ जह सरीरं, सुद्धुवजेगं तहेवमुवगरणं ॥
जम्हा तउ मुणीणं, सुए अणेगे गुणा भणिआ ॥ १३ ॥

व्या०ः–जेम शरीर परद्रव्य छतां शुद्धोपयोगनुं साह्यकारिछे ; तेथी परिग्रह क हेवाय नही. तेमउपकरण पण शुद्धोपयोगनां साह्यकारी होवाथी परिग्रह कहेवा य नही. केमके, ए वात, सिद्धांतोनेविषे पण धर्मोपकरणना अनेक गुण कह्याछे तेथी सिद्ध थायछे. जेमके, रात्रीयें चउकालें काल ग्रहलेतां वस्त्रे करी यतीने शीत नी पीडाटले छे. ने जो वस्त्र न होय तो शीतनी पीडाने लीधे अग्निना ताप प्रमुख नी चिंतना थाय तेथी आर्त्तध्यान उत्पन्न थायछे. वस्त्रेकरी सचित्त पृथि वी, धूंहरी ओस, वृष्टि, तथा हिरमज प्रमुखनी रक्षा थायछे. ने जो वस्त्र न होय अने उघाडुं शरीर होय, तो शरीरनी गरमीनी बाफथकी ते जीवोने दुःख उत्पन्न थायछे

सपातिमरजरेणु प्रमार्जवाने अर्थे मुहपत्ती राखवी, लेवादेवा प्रमुखनी क्रियाए पूर्वे प्रमार्जवाने अर्थे तथा जैनलिंगने अर्थे उंगो राखवो तथा पुरुष वेदनीयोदयादिक वर्जने अर्थे चोलपट राखवो इत्यादिक वस्त्रना गुण कह्याछे अनाजोगे लीधेला जे ससक्त गोरसादिक, ते पात्रेकरीने विधिए परठाई शकायछे पात्रविना हाथमाज लीधा होय तो योग्य ठेकाणे केम परठवी शकाय ? तथा हाथमा सरस वस्तु लीधाथी तेनो बिंदु जो नीचे पडे, तो तेथकी कीडीओप्रमुख अनेक जतुओनी विराधना थाय गृहस्थ भाजनने अर्थे उपभोगेपण पश्चात्कर्मादिक दोष उपजे, अने जो पात्र होय तो तेणे करी ग्लान अथवा दुर्बलने पथ्यादिक लाववाने अर्थे उपयोगी होवाथी उपकार थायछे अलब्धिवत्त तथा लब्धिवत असमर्थ तथा समर्थ प्राहुणाने वात्सल्य पात्र होय तो अन्नपानादिकने आपणी उपकार करे अन्यथा केम करे ? इत्यादिक वस्त्र तथा पात्रनेविषे अनेक गुणजाणी शरीरनी पठे धर्महेतु होवाथी तेमां परिग्रहपणानी आशका करवी नही ॥१३॥

उ – उपहासयुक्त पूर्वपक्षीनी मूल गाथा वडे आशका करे छे –

जइ उवहिभारगहणं, इठ दुझाणवज्जणणिमित्तं ॥
तो सेयं थीगहण, मेहुणसण्णाणिरोहठ ॥ १४ ॥

व्या० – शीत तथा तापप्रमुखनी पीडाए करी आर्त्तध्यान उपजे नही, ते सारुं तमे एटलो बधो उपधिनो भार वेगो छो, त्यारे मैथुन सज्ञानिमित्त आर्त्तध्याननो त्याग करवासारु एक स्त्रीनो परिग्रह पण शासारु राखता नथी ? ज्यारे जीर्णादिक वस्त्र राखवाथी मूर्छा थती नथी, त्यारे अगभग थएली तथा कुरूप स्त्री राखवाथी मूर्छा केम थाय ? ॥ १४ ॥

उ० – ए आशंकानो उत्तर दियेछे –

एय वि दूसगाण, वयण मयणंधवयणमिव मोहा ॥
अणुठ समोवहासो, देहाहाराइगहणेवि ॥ १५ ॥

व्या० – तमारु बोलवु भाड (मस्करा) ना जेवु भासेछे जेम होलीना दाहाडांमा कामी पुरुषो गमे तेम बक्या करेछे अने कामने वश थया थका लाज उपजावे एवा वचनो बोल्या करे छे तेम तमे पण मिथ्यात्वना परवशेकरी अज्ञानने लीधे मस्करीना वचन बोलो छो ते वचनोथी अमने तो काई थवानु नथी, पण तमे पोते तेवा देखाई आवो छो. केमके, तमे पोते पण भूखनी पीडा टालवासारुं

खावाने न मलेतो आर्त्तध्यान थाय तेने टालवासारुं, तथा शरीरने जीवतुं राखवासारु आहार लेवानुं मानोछो, तेम स्त्रीपरिग्रह शासारु मानता नथी? माटे जेम आहारमां गुण छे, दोष नथी. तेम धर्मोपकरणमां पण गुण छे, दोष नथी. ए रूडुं समाधान छे. ए कारणथी धर्मनां साधनोनेविषे जे राग थाय छे, ते प्रशस्त जाणीने तेनेपरिग्रहरूप दोष जाणवो नही. ॥ १५ ॥

उ०:– सम्यक्ज्ञान थवासारु राग प्रशस्त छे अने द्वेष अप्रशस्त छे ते कहेछे:–

रागस्स व दोसस्सव, उद्दिस्स सुहासुहे सुहासुहया ॥
जइ पुण विसयावेरका, कह होज्जा तो विभागोसि ॥ १६ ॥

व्या०:– सारा उद्देशेकरी अरिहंतादिकनेविषे जे राग करवो, ते प्रशस्त राग कहेवायछे. यतः "अरिहंते सुयरागो, रागो सारीसु बंभयारीसु; एस पसत्थो रागो, अज्जस रागाण साहूणं" इति आवश्यके. अशुभने तजवासारु जे द्वेष करवो पडे तेने प्रशस्त द्वेष कहिये. जेम के, मिथ्यात्व, अज्ञान, तथा अविरति प्रमुखउपर जे द्वेष थाय छे, ते प्रशस्त द्वेष कहेवायछे. केमके, तेओविषे जो द्वेष न थाय तो तेओनो त्याग केम थाय! केवल विषयनी अपेक्षाएज द्वेष थायछे एम न मानवुं. जो मात्र विषयनेअर्थेज द्वेष थतो होय तो तेना प्रशस्त तथा अप्रशस्त ए बे विभाग थई शके नही. तेमज उत्तमयतीनेविषे तथा उत्तम धर्मनेविषें पण जे आ लोकादिकने अर्थे राग थायछे ते अप्रशस्त कहेवायछे. कोई कहेशे के, रागना उपर कहेला बे विभाग थई शकेछे केमके, तेना संक्लेश तथा विशुद्ध ए बे अंगछे. तेम द्वेषना ए बे विभाग थई शके नही; केमके, तेनो बीजो विशुद्ध अंग नथी. मात्र संक्लेशरूप होवाथी अप्रशस्त छे. यतः "परिणामो दो बंधो, परिणामो राग दोस मोह जुदो; असुहो मोह य दोसो, सुहोव असुहो हवदि रागो." इति प्रवचनसारे. एम कहेनाराने एम कहेवुं के, तमने सामायकनेविषे पाप गर्हाना अध्यवसाय केम थायछे? जे वस्तुविषे द्वेष न थाय तेने त्याग करवाना परिणाम थाय नही. तेवा परिणामो तो थायछे ते शुं अप्रशस्त द्वेष कहेवाय? किंतु प्रशस्त द्वेषज कहेवाय. केमके, परने ताप करवो ते क्रोधनो अंश छे, माटे क्रोधरूप जे द्वेष ते पण रागनी पठे बे प्रकारे होयछे.

उ०:– चार निक्षेपाए करी राग तथा द्वेषनुं विवरण करे छे:–॥ १६ ॥

णामं ठवणा दविए, रागो दोसो अ नाव चउनेया ॥ कम्मं जोग्गं बद्धं, वझंतमुदीरणोवगयं ॥ १७ ॥ णो कम्म दवराउ, णायवो वीस साप उगा य ॥ संकाइ कुसुंनाई, दोसो उबवणाईओ ॥१८॥ ज राग दोस कम्मं, समुइन्न जे तओ अपरिणामा ॥ ते नावराग दोसा, वोउमिह णय समोआर ॥१९॥ कोहो माणो दोसो, माया लोनो अ राग पजाया ॥ संगहणयमयमेय, दोसो माया अवि वहारा ॥ २० ॥ उजुसु अस्सय कोहो, दोसो सेसेसु णत्थि एगंतो ॥ कोहोचिय लोहोचिय, माणो मायाव सदस्स ॥ २१ ॥

व्या० राग तथा द्वेषना नाम, स्थापना, द्रव्य तथा नाव ए चार चार प्रकार होवाथी बन्नेना चार चार नेद थायछे जेम के, नामराग, स्थापनाराग, द्रव्य राग, तथा नावराग ए चार नेद रागना थायछे तेमज नामद्वेष, स्थापनाद्वेष, द्रव्यद्वेष, तथा नावद्वेष ए चार नेद द्वेषना थायछे जेनुं राग एवु नाम होय ते नामराग कहेवाय, रागवाननुं जे चित्र कहाडेलु होय ते स्थापनाराग कहेवाय द्रव्यरागना वे प्रकार छे—एक कर्मद्रव्यराग, वीजो नोकर्मद्रव्यराग, एमाना कर्म द्रव्यरागना चार प्रकार छे—एक योग वीजो वध्यमान, त्रीजो वद्ध, अने चोथो उदीरणाप्राप्त जे मोहनीयकर्मना पुजलबंध परिणामने अनिमुख थया होय ते योगकर्मद्रव्यराग कहेवाय जे मोहनीयकर्मना पुजलबंध क्रियाना परिणामने पाम्या होय ते वध्यमान कर्मद्रव्यराग कहेवाय जे मोहनीयकर्मना पुजल बंध परिणामनी निष्ठाने पाम्या होय तेवद्धकर्म द्रव्यराग कहेवाय अने जे मोहनीय कर्मना पुजल उदयने पाम्या होय ते उदीरणाप्राप्त कर्मद्रव्यराग कहेवायछे तेम नोकर्मद्रव्यरागना वे प्रकार छे—एक विश्रसा, वीजो प्रयोग जे सध्याराग प्रमुख देखायछे ते विश्रसानो कर्मद्रव्यराग कहेवाय, अने जे वस्त्रादिकनेविषे कुसुनादिक राग देखायछे ते प्रयोगनो कर्मद्रव्यराग कहेवाय. अने नावरागना पण वे प्रकार छे—एक उदयप्राप्त, वीजो परिणाम मोहनीयकर्मनो उदय थाय ते उदयप्राप्त नावराग कहेवाय अने मोहनीयकर्म परिणामने पामे ते परिणामनावराग कहेवायछे ----

जेनु द्वेष एवु नाम होय ते नामद्वेष कहेवाय द्वेषवाननु जे चित्र कहामेलु

होय ते स्थापनाद्वेष कहेवाय. द्रव्यद्वेषना बे प्रकारछे:—एक कर्मद्रव्यद्वेष; बीजो नोकर्मद्रव्यद्वेष. एमांना कर्मद्रव्यद्वेषना चार प्रकार छे:—एक योग, बीजो बध्यमान, त्रीजो बद्ध अने चोथो उदीरणाप्राप्त. जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंध परिणामने अभिमुख थया होय ते योगकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंधक्रियाना परिणामने पाम्या होय ते बध्यमानकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंधपरिणामनी निष्ठाने पाम्या होय ते बद्धकर्मद्रव्यद्वेषकहेवाय; अने जे मोहनीयकर्मना पुद्गल उदयने पाम्या होय ते उदीरणाप्राप्तकर्मद्रव्यद्वेष कहेवायछे. तेम नोकर्मद्रव्यद्वेषना बे प्रकार छे:—एक विश्रसा, बीजो प्रयोग. जे संध्याराग प्रमुख देखाय छे, ते विश्रसानोकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; तथा जे वस्त्रादिकनेविषे कुसुंभादिक राग देखायछे ते प्रयोगनोकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय छे. अने भावद्वेषना पण बे प्रकार छे:—एक उदयप्राप्त, बीजो परिणाम. मोहनीयकर्मनो जे उदय थाय ते उदयप्राप्तभावद्वेष कहेवाय; अने मोहनीयकर्मपरिणामने पामे ते परिणामभावद्वेष कहेवायछे.

हवे नयेकरी रागद्वेषनुंविवरण करे छे:—संग्रह नयनी रीतिए क्रोध तथा मान ए बन्ने अप्रीतिनो परिणाम होवाथी द्वेष कहेवायछे; अने माया तथा लोभ ए बन्ने प्रीतिनो परिणाम होवाथी राग कहेवायछे. व्यवहारनयनी रीतिए मायानी योजना परना उपघातने अर्थे थायछे माटे त्रीजी माया पण द्वेषज कहेवाय. अने न्यायोपात्त द्रव्यप्रमुखनेविषे जे लोभ थायछे ते राग कहेवायछे. परंतु अन्यायोपार्जित द्रव्यादिकनेविषे जे लोभ थायछे ते राग कहेवाय नही केम के, एथी कषायादिकनी उत्पत्ति थायछे. ऋजुसूत्रनयनी रीतिए क्रोध जे छे ते अप्रीतिनोज परिणाम होवाथी एकांत द्वेष कहेवायछे. बाकीना त्रण जे मान, माया ने लोभ ते एकांत द्वेष कहेवाय नही किंतु अनेकांत कहेवाय; केम के, मान ज्यारे स्वोत्कर्ष परिणामरूप होय छे त्यारे राग कहेवायछे, अने ज्यारे परनिंदापरिणामरूप होयछे त्यारे द्वेष कहेवायछे. तेमज माया तथा लोभ पण ज्यारे पूर्व परिणामरूप होय छे त्यारे राग कहेवाय छे; अने ज्यारे परद्रोह परिणामरूप होयछे त्यारे द्वेष कहेवायछे. अने शब्दनयनी रीतिए क्रोध तथा लोभ ए बे कषायरूप होवाथी एमांना मान तथा माया अप्रीतिना परिणामरूपे थईने ज्यारे क्रोधमां आवीने मळी जाय त्यारे ते द्वेष कहेवायछे; अने प्रीतिना परिणामरूपे थईने ज्यारे लोभमां आवी मळी जाय त्यारे राग कहेवायछे.॥२१॥

परदवंमि पवित्ती, ण मोहजाणिया व मोहजाणावा ॥
जोगकयाहु पवित्ती, फलकखा रागदोसकया ॥ ७२ ॥

व्या०— परद्रव्यनेविषे जे प्रवृत्ति थाय छे तेनुं निश्चयथी मोह कारण नथी केमके, प्रवृत्ति तो मन वचन तथा काय योगथी थायछे, अने फलनी इछा राग द्वेषथी थायछे. माटे फलनी इछाविना यतिजो धर्मोपकरण धारण करे तो तेथी अयोग्य शु थयु कहेवाय ? केमके, फलनी इछाविना राग तथा द्वेष थता नथी ॥२२॥

वछाइणेवगंथो, मुणीण मुछ विणेव गहणाउ ॥ तह
देहपालणछा, जह आहाला तुह वि इछो ॥ ७३ ॥

व्या० – यतिने वस्त्रादिकनो ग्रंथ थतो नथी केमके, मात्र शरीरनी रक्षा करवासारु ग्रहण करेछे. तेमा मूर्छा रचमात्र पण होती नथी जेम शरीरनी रक्षाने अर्थे यति निरवद्य आहारनुं ग्रहण करेछे पण तेमा मूर्छा होती नथी तेम धर्मोपकरणोविषे पण जाणी लेवु ॥ २३ ॥

जह देहपालणछा, जुत्ताहारो विराहगो ण मुणी ॥
जह जुत्तवछपत्ता, विराहगो णेव णिद्दिहो ॥ ७४ ॥

व्या० – जेम शरीरनुं पालन करवाने अर्थे निरवद्य आहार लेता यतिने विराधक कह्यो नथी तेम निरवद्य वस्त्र पात्र राख्याथी पणविराधक न कहेवाय किंतु आराधकज कहेवाय. कोई एम कहे के, शुद्धोपयोग जे छे ते प्रदीप जेवो छे, अने नोजन तथा शरीर संचलन जे छे ते तेलपूरण तथा वाटसचार जेवो छे एतो योग्य छे पण उपधि अयोग्य छे एवु अमरचदनुं बोलवु असमीचीन छे केमके, धर्मोपकरण धारण करवा ते प्रदीपने निर्वातस्थले राखवा जेवा छे माटे योग्यछे

अणसण सहावजोगा, जह असणं अणसणं तिजुत्त
मिण ॥ जुत्तं तह वछाई, सहावउ तप्परिणयस्स ॥ ७५ ॥

व्या० – जेम सर्व नोजननी तृष्णाथकी रहित छता अतरग आत्मस्वनावनी नावना करता तेना उपष्टनने अर्थे आहारनु जे ग्रहण करवु ते परमार्थे अनाहार ज कहेवाय यत "जस्स अणेसणमप्पा, तंपि तओ तप्पडिछगसमणा, अण निरकमणे सण, मधतेसमणाअणाहारा " इति प्रवचनसारे तेमज सकल परि

ग्रहरहित ठतां आत्मस्वनावनी नावना करतां तेना उपष्टंजने अर्थे वस्त्रादिक राखतां पण परमार्थे वस्त्रादिकरहित कहेवाय. ते युक्तज ठे. ॥ २५ ॥

एवंच सचेलाणं, कहउ सुत्तं नवे अचेलत्तं ॥ इअ
पन्नणंतस्स तुहं, को णिअवररक्खणो वाउ ॥ २६ ॥

व्या०:– एवीरीते सूत्रमां कहेलुं जे सचेल यतिने अचेलपणुं ते केम संनवे; एम कहेतां तमने पोतानुं संनालतां कठण थई पडशे. केमके, तमारा शास्त्रमां ज यतीने आहार करतां अनाहारी कह्याठे. त्यारे मूर्छारहित सचेलने पण अचेल कहेतां शुं अघटित थाय ! ॥ २६ ॥

जइ चेल नोगमेत्ता, ए जिया चेलय परीसहो सा
हू ॥ नुंजंतो अजिअ खुहा, परीसहो तो तुमंपत्तो ॥ २७॥

व्या०:– जो एम कहेशो के वस्त्र वापरवाथी अचेल परीसह जीताय नही. त्यारे आहार करवाथी क्षुधापरीसह केम जीताय! जो एम कहेशो के, तीव्र क्षुधा लागी होय तोपण यतीए अनेषणी आहार लेवो नही. किंतु जो शुद्ध आहार मले तोज आत्माने उपग्रह करवो. एवीरीते क्षुधापरीसह जीतायठे. तेमज शीतादिक वडे घणी वेदना थती होय तोपण यतिए सदोष वस्त्र लेवुं नही; किंतु निर्दोष वस्त्र मले तोज आत्माने उपग्रह करवुं, एवीरीते अचेलपरीसह पण जीतायठे. एम निश्चयथी अचेलपणुं जाणवुं. ॥ २७ ॥

उ० व्यवहारथी अचेलपणुं दर्शावे ठेः--

जह जलमवगाहंतो, नणई चेलरहिउ सचेलोवि ॥
तहवत्नोजुण कुठिय, चेलावि अचेलया साहू ॥ २८ ॥

व्या०:– जेम कोई माणस पोतीउं पहेरीने तलावप्रमुखना पाणीमां स्नान करवासारु पेशे ते पोतिउं ठतां लोकमां नग्न कहेवाय. तेम यति जीर्णवस्त्रने धारण करे ते अचेलज कहेवाय. ॥ २८ ॥

उवयारेण अचेला, सेसमुणी सव्वहा जिणंदाय ॥
खंधाउ देव दूसं, चवइ तउ चेव आरब्भ ॥ २९ ॥

व्या०:– तीर्थंकर विना बीजा यति उपचारे अचेला कहेवाय. केमके, तेउ वस्त्र ठतां पण अवस्त्र गणेठे. जेम कोटी धनवान ठतां तेनो अनिमान न होय.

तो ते निर्धन जेवोज होय छे एम सचेल साधुविषे पण जाणी लेवुं सर्वथा अ चेल तो ज्यारे स्कंध उपरथी देवदुष्य वस्त्र पडे त्यारे तीर्थंकर कहेवायछे ॥२९॥

एएण जइ अचेला, जिणद जिणकप्पिआइआ सुमु
णी॥ता एसोच्चिय मग्गो, णोत्ति पराकयं वयणं॥३०॥

व्या० – एणेकरी, जिनतीर्थंकर तथा जिनकल्पिप्रमुख अचेलाछे, तेथी एज मार्ग उत्तमछे, अने स्थविरकल्पनो मार्ग उत्तम नथी, एम कहेनारानुं निराकरण कर्युं. कारणके, जे जिनकल्पीछे ते पण एकाते अचेला नथी. केमके, जे जिनकल्पीने पात्रनी लब्धि होय, हाथ छिद्ररहित थया होय, किंतु वस्त्रनी लब्धि न होय ते ओमाना कोइएकने रजोहरण, मुहपति, तथा एक कल्पक ए त्रण उपधि होय छे, कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा बे कल्पक मली चार उपधि होयछे, कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा त्रण कल्पक मली पाच उपधि होयछे, जेने वस्त्रनी लब्धि होय, किंतु पात्रनी लब्धि न होय तेने सप्तविध पात्रनिर्योग, रजोहरण, तथा मुहपती मली नव उपधि होयछे, जेने बन्ने लब्धिमांनी एके लब्धि न होय तेओमाना कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपती तथा एक कल्पक मली दश उपधि होयछे, कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति तथा बे कल्पक मली अग्यार उपधि होयछे, अने कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति, तथा त्रण कल्पक मली बार उपधि होय अर्थात् पोतानी शक्तिने अनुसारे उपधि होयछे. अने जेने बन्ने लब्धीओ होय तेने पण रजोहरण तथा मुहपति ए बे उपधि तो निश्चयथी होयछे एवो नियमछे ॥ ३० ॥

जिणकम्मेव य कम्म, जइ कायव्व तउ तुहं इह्य ॥
उवएस सिस्स दिक्खा, गुरुवयणाईहि किं कज्जं ॥ ३१ ॥

व्या० – जो तमे कहेशो के, जे कार्य जिनेश्वरे नथी कर्युं ते अमारे पण करवु नथी! त्यारे धर्मोपदेश, शिष्य, दीक्षा, तथा गुरुवचनादिकनुं तमारे शुं उपयोग छे! जेम भगवते ज्ञान उपना पछी धर्मोपदेश दीधो छे, किंतु केवलज्ञाननी पूर्वे कोईने उपदेश कर्यो नथी, तेम तमारे पण केवलज्ञान उत्पन्न थाय त्यारेज उपदेश करवो जोये तेनी पूर्वे काई पण धर्मोपदेश प्रमुख करवु जोईये नही वारु !!! ॥३१॥

णिरतिसयाण कप्पो, थेराणहिउ ठिउ अ तहेव ॥
पव्विजउ जिणकप्पं, पचहि तुलणाइ जुत्तो तो ॥ ३२ ॥

व्या०:- जे साधु लब्धिरहित होय, तेने स्थविरकल्प मार्गज हितकारी छे. ते समये जिनकल्प त्याग करवा योग्य छे. ज्यारे आत्मज्ञान थाय त्यारे जिनकल्प आदरवो. परंतु असमर्थ छतां उत्कृष्ट मार्गनो जे आदर करवो ते केवल आर्त्तध्याननो हेतु थायछे. यतः "अकालौ त्सुक्यस्य तत्वतः आर्त्तध्यानरूपत्वात् धर्मविदो" ॥३२॥

वेज्जुवदिठ्ठं उसह, मिव जिणकहियं हिअं तउ मग्गं ॥ सेवं
तो होइ सुही, इहरा विवरीअफलभागी ॥ ३३ ॥

व्या०:- माटे भगवंते कहेला मार्गने जे भजे ते सुखी थाय; अने भगवंते जेम कह्युं छे तेम जे करवा मांडे ते विपरीत फलने लायक थाय. जेम रोगी वैदे कहेली औषधी जो सेवे, तो रोगरहित थाय पण वैदना कह्या प्रमाणे न करे तो अपथ्य सेवन करतो छतां जेम अकाले नाश पामे. तेम ए पण जाणी लेवुं. ॥३३॥

अणगूहिंतो सत्तिं, भुंजंतोवि जह णो चयइ मग्गं ॥
अणगूहिंतो सत्तिं, तह उवगरणं धरंतोवि ॥ ३४ ॥

व्या०:- सकल आत्मशक्तिने फोरवनारो यति संयमादिकने अर्थे, जेम आहार करतो छतां जिनमार्गनो त्याग करतो नथी; तेम स्वाध्यायादिकने अर्थेपण ते यतिए धर्मोपकरणनो त्याग करवो नही. यत: "तिहिं ठाणेहिं वत्थंधरेज्जा, तं जहा, हरिवत्तिअं, दुगंछवत्तिअं परीसहवत्तिअं" इति. लज्जा अथवा दुगंछा मटाडवाने तथा संयमने अर्थे वस्त्र धारण करवां जोये. जो वस्त्र न होय ने नग्न होय तो लज्जाथाय, अने संयम पले नही; जो वस्त्र न होयतो लोक निंदा करे के, ए धर्म सारो नथी केमके जेमां साधु उघाडा फरेछे. ते टालवाने अर्थे वस्त्र धारण करवा; जो वस्त्र न होय तो टाढ तथा तापप्रमुख लागे तेथी चारित्रभंगरूप आर्त्तध्यान उत्पन्न थाय ते मटाडवाने अर्थे वस्त्र धारण करवां. एम कारणीक वस्त्र होवाथी अमे साहसवंत छतां केम धारण करिये; एम जो कहेशो तो आहार पण कारणीक कह्युं छतां तेपण तमारे करवो न जोये. यतः "छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहार माहारे माणेइ कमइ तं वेयण वेयावच्चे इरियट्ठाए असंयमट्ठए तह पाण पत्तिआए छठ्ठं पुण धम्मचिंताए" इत्यादि कारणने लीधे यति आहार करे तेथी आज्ञानुं अतिक्रमण थाय नही. तेना कारण आछे:- क्षुधानी वेदनाने मटाडवाने अर्थे, वेयावच्च करवाने अर्थे ईर्याशोधवाने अर्थे, संयम पालवाने अर्थे प्राणधारवाने अर्थे, तथा स्वाध्या

यप्रमुख धर्मचिताने अर्थे साधु आहार करे छे पण बल तथा रूपादिकने अर्थे करतो नथी, तेमज वस्त्र पण कारणने लीधे धारण करे छे तेनो त्याग करवानुं कारण शु! आहार लेवो अने वस्त्र मूकवा! एम करवाने तमारो शु अभिप्राय छे ते जाणतु नथी ॥ ३४ ॥

अविजिय हिरिकुछाणं जइ नूणं संजमेण अहिगारो ॥
ता कह अजिय डुगंछ तसाणं तछ अहिगारो ॥ ३५ ॥

व्या०.– जो एम कहेशो के जेणे लाज तथा डुगंछा प्रमुख जीत्यां न होय तेने चारित्रनो अधिकार नथी त्यारे जेणे क्षुधा तथा तृषा जीत्यां न होय तेने चारित्रनो अधिकार केम कहेवाय? ज्यारे क्षुधा तथा तृषा मूलगुणनां घातक नथी त्यारे लज्जा तथा डुगंछा पण मूल गुणघातक केम कहेवाय? माटे अही तमारे अभिनिवेशविना बीजू कांई कारण दीठामा आवतु नथी ॥ ३५ ॥

अह हिरि कुछा हिसया हिरि कुछ सहाव भावणा णोचेत् ॥
एहा छुहाहि ताकह तय भाव सहाव सबुद्धी ॥ ३६ ॥

व्या० – जो कहेशो के, यतिने लज्जा तथा डुगंछ होय तो तेथी विपरीत जे अलज्जा तथा अडुगंछारूप आत्मस्वभावनी भावना ते न थाय त्यारे क्षुधा तथा तृषा छतां तेथकी विपरित जे अक्षुधा तथा अतृषारूप आत्मस्वभावनी भावना ते यतिने केम थाय! माटे शांत दांत प्रमुख श्रेष्ट गुणयुक्त जे यति छे, तेनुं मन शुद्ध होयछे तेनाबलथी आत्मस्वभावभावना टलती नथी ए समाधान आहार अने उपकरण ए बन्नेनेविषे लागु पडेछे ॥ ३६ ॥

उस्सग्गववायाणं भित्तीए अहण भोअणं डुठं ॥ उ
स्सग्गववायाणं भित्तीइ तहेव उवगरणं ॥ ३७ ॥

व्या० – जो एम कहेशो के, उत्सर्ग तथा अपवाद ए बन्ने मार्गनेविषे सापेक्षताएकरी भोजन करवु ते अयोग्य कहेवाय नही, त्यारे सापेक्षताएकरी उपकरण धारण करवामा शु अयोग्यता छे? ॥ ३७ ॥

ए पमुवगरणेण पच्चक्काणस्स दवउ भगो ॥ इयकप्प
णावि विहवा जोवणमिव णिप्फला एआ ॥ ३८ ॥

व्या०:- जो एम कहेशो के, उपकरण जे छे ते भावथी तो मूर्छारहित छे पण द्रव्यथकी परिग्रहरूप छे. तेथी पच्चखाणनो भंग थायछे. केमके द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव ए चार प्रकारे जे पच्चरकाण छे तेमांनो प्रथम द्रव्यपच्चरकाण उपकरण छतां संभवे नही. एवी जे अध्यात्मनी कल्पना छे ते विधवायौवननी परे निष्फल छे. केमके, द्रव्यादिक चार प्रकारे सर्व मूर्छानो जे त्याग करवो तेज सिद्धांतोनो परमार्थ छे. एम जो न मानीए तो शरीर पण द्रव्यपरिग्रह छे, तेनो त्याग केम थाय! अने पच्चरकाणना जे चार प्रकार कह्या छे ते तो सर्व भाव प च्चखाणनो विस्तार छे, एम जाणवु. यतः " अपरिग्गहिआसुत्ते, तिजाय मुच्छा प रिग्गहोभिमउ; सव्वदव्वेसु एसा, कायव्वा सुत्तसब्भावो," इति विशेषावश्यके. ॥३८॥

सिद्धंत सिद्धधरणं उवगरणं तं मुणीण सुहकरणं ॥
अह होइ पावहरणं इय अम्हं विंति आयरिया ॥३ए॥

व्या०:- एवीरीते सिद्धांतनेविषे उपकरण धारण करवानुं कह्युं छे, ते जयणाएकरी राखवाथी यतिने सुखकारक थाय छे, तथा पापनुं हरण करेछे एम उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तिप्रमुखनेविषे अमारा पूर्वाचार्ये कह्युं छे, ते अवश्य मान्य करवुं जोये ॥३ए॥

पुच्छा दिअंवराणं केवलमझप्पिआण उवहासो ॥
अम्हाणं पुण दूहइ दोह्ण विवहि आरवावारो ॥ ४० ॥

व्या०:- आग्रंथनेविषे दिगंबरीओए जे प्रश्न कर्या छे, तथा अध्यात्मीओए जे हांसीनां वचनो कह्यांछे, ए बन्नेनो अमारे प्रतिकार करवानो अधिकार छे. एवीरीते धर्मोपकरण तथा भावअध्यात्म ए बन्नेनुं पोतपोतामां अविरोधपणुं बताव्युं.॥४०॥

उ०:- अध्यात्मनी प्राप्ति केम थाय ते कहेछेः-

पंच समिउ तिगुत्तो सुविहिय ववहार किरिअ परिक्कम्मो ॥ पावइ परमझप्पं साहू विजिइंदिअप्पसरो ॥ ४१ ॥

व्या०:- जेपांच समिति तथात्रणगुप्तिए करि सहित होय, आलय, विहार, तथा विनयप्रमुख विविधप्रकारे क्रिया पालतो होय, तथा इंद्रियो जीति ते साधुने उत्कृष्ट अध्यात्मनी प्राप्ति थाय छे. ॥ ४१ ॥

तन्नंपइ वज्जं किरियं जो खलु आहच्च भाव कहणेणं ॥
एइ बोहिवीअं नुम्मग्गपरूवणं काउं ॥ ४२ ॥

व्या०.– कोई एम कहे के, व्यवहाररूप बाह्य क्रियाथी अर्थ सिद्ध थाय एवो नियम नथी, केमके, क्रिया कर्याविना भरत चक्रवर्त्तिने काच भुवनमा अनित्य भावना भावतां केवल ज्ञान उत्पन्न थयुं अने बाह्य क्रिया करता रौद्र ध्यानना योगे प्रसन्नचंद्रे अशुभ प्रकृति बांधि लीधी. माटे व्यवहार क्रिया करवी नही, किंतु निश्चय क्रियानो अंगीकार करवो एम कहेनारा उन्मार्गनी प्ररूपणा करीने पोताना बोधबीजनो नाश करेछे. माटे ते वचन मान्य करवा नही केमके, भरता दिकनुं स्वरूप कदाचित भावमा कहेवाय एटले एवु कदाचितज बनेछे, पण नियमथी एमज थायछे एवु कोईनाथी कहेवाय नही अने व्यवहार पंथमां तो व्यवहारक्रियाविना निश्चय क्रिया संभवेज नही अने ए कारण माटे एक निश्चय अंगीकार करिने क्रिया मूकी देवी नही किंतु बन्ने अवश्य करवी ॥ ४२ ॥

सव्व सहावसज्जं णिच्छं पउपरकय च ववहारा ॥ ए
गंते मिच्छंत उभय णयमय पुण वयाणं ॥ ४३ ॥

व्या० – निश्चयनयनी रीतिए सर्व वस्तु स्वभावे उत्पन्न थायछे, विशिष्ट वस्तु परिणामने स्वभाव कहेछे ज्यारे बीजने अंकुरपणे उत्पन्न थवानो परिणाम थायछे, त्यारे बीजपर्याय टलीने अंकुरपर्याय उत्पन्न थायछे. पण तेने बीजा कारणनी अपेक्षा होती नथी. अहीं कोई आशंका करे के, जो बीजा कारणनी अपेक्षा न होय तो कोठमा पडेला बीजनो केम अंकुररूपे परिणाम थतो नथी? एनो जवाब – कोठमा पडेला बीजने अंकुररूप परिणाम थवानां बीजां कारणो जोयेछे, माटे व्यवहारनय पण अंगीकार करवो जोये छे. तेने सामग्री कहेछे, ते सामग्री मल्याविना बीजनो अंकुररूपे परिणाम थाय नही किंतु सामग्रीना योगे ते परिणाम थाय छे. कोई आशंका करे के जो सामग्रीथीज कार्यनी उत्पत्ति थती होय तो तेने परिणाम एवु नाम राखवानुं कारण शु? किंतु सामग्रीथकी कार्यनी उत्पत्ति थायछे, एवो अंगीकार करवो जोइये एनो जवाब के, सामग्रीथी कार्यनी उत्पत्ति थायछे एम मानिये तो व्यवहारनय सिद्ध थाय पण निश्चयनय उडी जाय तेथी एकांतपणुं थाय ते मिथ्यात्व कहेवाय. माटे बन्ने नयनुं मत प्रमाणभूत मानवु जो एकलो निश्चय नय अंगीकार करिये ने व्यवहारनय अंगीकार नही करिये तो सामग्री थकी परिणामविशेषनी उत्पत्ति मनाय नही, अने एकज वस्तु कारण तथा अकारण ए बन्ने भावे कहेवाशे त्यारे

अकारण वस्तुथी परिणामरूप कार्यनी उत्पत्तिनो संभव केम थशे. कार्यनी उत्पत्ति तो कारणथी थायछे पण अकारणथी थाय नहीं, इत्यादिक सूक्ष्म विचार कर्याथी बन्ने पक्ष अंगीकार करवा योग्य छे एवुं सहज जणाई आवशे. ॥ ४३ ॥

अप्रंतर बज्झाणं बलिज्जाबलितणंति जइ वुद्धि ॥ णणु कयरं अब लत्तं वेचित्तंवा विवेसम्मं ॥ ४४ ॥ णिप्पत्तीव फलंठ अणिचय जोगो फलेण वा सिद्धं ॥ पढमे समसावग्गी वि ति ए वावार वेसम्मं ॥ ४५ ॥ तति ए दोण विसमया सउब्ब पक्खो पुणो असिद्धोत्ति ॥ तेण समावेस्काणं दोसु विसमयत्ति वबुठिई ॥ ४६ ॥

व्या०:– कोई कहे के, कर्मरूप अंतरंग हेतु जे छे ते बलवान छे. अने उद्यमादिरूप बाह्यहेतु जे छे, तेनिर्बल छे. एम कहेनारा नयवादीने एम पूछवुं के, कर्मरूप अंतरंग हेतु केवी रीते बलवान छे ? जो कहेशो के एक जातनो उद्यम करनारा पुरुषोने कर्मनी विचित्रताने लीधे सुखदुःखनी अधिक न्यूनता दीशेछे, तेथी कर्मरूप अंतर हेतुनुं बल सिद्ध थायछे. तो ते कर्म शाथी थया छे ? एनो विचार कर्याथी पूर्वभवना उद्यमथी थयांछेएम ठरशे. एथी उद्यमनी विचित्रताने लीधेज कर्मनी विचित्रता छे.॥४४॥जो कहेशो के, सुखनां कारण छतां पण अशातावेदनीयकर्मना उदये जीवने दुःख उपजेछे, ए कर्मनुं बलवंतपणु जाणवुं; अहीं दृष्टांत ए के, जेम कोइक मनुष्यने दूधना पानथी पण दुःख थायछे. ए वचनपण समर्थ नथी अहीं पण भवांतरना उद्यमनी अपेक्षा छे, केमके, दुग्धपानादिके करी पण पित्तादिकना योगे तिक्तरसादिकनुं उद्बोधन थयाथी दुःख उपजेछे. ॥४५॥ जो कहेशो के, कर्म पोताना भोगने अर्थे बाह्य कारणने लियेछे, ते बल छे. तो जन्मांतरनोउद्यम जन्मांतरना फलभोगने अर्थे, अंतराले कारण कर्मादिक कारण उत्पन्न करेछे एम पण कहेवाई शकायछे. जो कहेशो के, क्वचित् बाह्यकारणविना कार्यनी उत्पत्ति थायछे; पण अंतरंगकारणविना कोइ कार्यनी उत्पत्ति थायज नहीं; ए बलजाणवुंतो एम पण संभवे नहीं; केमके, साक्षात् अथवा बाह्यकारणथीज कार्यनी उत्पत्ति थायछे, ते विना कार्य थायज नहीं. किंबहुना कालादिक बाह्य कारणविना कोई कार्यनी उत्पत्तिज थती नथी. माटे परमार्थताए बाह्य तथा अंतरंग ए बन्नेकारण सरखांज छे. ए वस्तुस्थिति कहेतां बे नयने अनुरोधे प्रमाणमार्ग छे. ॥ ४६ ॥

अ० निश्चयनयनुं मत कहे छेः–

णिच्छिय उसकहंचिय सबं णो परकय हवइ वहुं ॥
परिणामा बंऊत्ता णयवंऊं दाण हरणाई ॥ ४७ ॥

व्या०·– निश्चयनयथी सर्वं वस्तु आत्मपरिणामथी उत्पन्न थायछे , परंतु पर थी परवस्तुनी उत्पत्ति थती नथी केवल पुण्य पापकर्मना विपाकने अवसरे पाशे आवेला जे अंगना सर्पादिक बाह्य अर्थ ते निमित्त मात्र छे तेने व्यवहार बद्ध मूढ जीव कारण करी माने छे. व्यवहारवादी कहेछे के, ज्यारे परकारणत्व नथी, त्यारे साधुने दान दीधाथी शुभफल अने परद्रव्यनु हरण कस्याथी अशुभ फल केम थायछे ? निश्चयवादी समाधान करे छे के, निर्दोष आहार साधुने देता ते देनराना जे शुभ परिणाम होयछे, तेथी शुभफल थायछे, परतु अन्नादिक पुद्गलरूप होवाथी, तेथी फल थतु नथी केमके, पुद्गल द्रव्यथकी पुद्गल परिणाम थाय छे , परतु आत्मपरिणाम नथी थतो तेमज परद्रव्यनु हरण कस्याथी जे अशुभ फल थायछे, ते पण आत्माना अशुभ परिणामे करी थाय छे, परतु द्रव्यरुप पुद्गल थकी नथी थतु ॥ ४७ ॥

अ० – निश्चय थकी दान पण आत्मपरिणामरूपछे, पुद्गल परिणामरूप नथी एम कहेछे –

दितो वहरंतो वा णय किंचि परस्स देइ अवहरई ॥
देइ सुह परिणामं हरइ वत्त अप्पणोचेव ॥ ४८ ॥

व्या० – निश्चयथकी तो साधुने निर्दोष आहार देता तथा परद्रव्यनुं हरण करतां ते दान देनार तथा द्रव्य हरण करनारनेविषे कांई देवु, तथा लेवु वन्युज नथी. कोई कोईने दान देतो नथी, तथा कोई कोईनु द्रव्य हरण करतो नथी साधुने आहारादिकनुं दान देता देनारो पोते पोतानेज परानुग्रह बुद्धिरूप शुभप रिणाम दियेछे, तथा परनुं द्रव्य हरण करता ते हरण करनारो जीव घात बुद्धिए करी पोतेज पोताना शुभ परिणामनु हरण करेछे परतु परनेविषे कांई वेवु लेवु सन्नवे नही ॥ ४८ ॥

णय धम्माव सुहं वा परस्स देयं णया विहरणिज्ज ॥
कयणासा कयनोग, प्पमुहा दोसा फुमाइ हरा ॥ ४९ ॥

व्या० – जो परआत्मा परने देतो होय तो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख बीजाने देवाई शकाय छे , अने जो परनो आत्मा परनु हरण करतो होय तो

बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोते लेवाई शकायछे. ए बन्ने पक्षमां कृतनाश अने अकृतागम दोष प्राप्त थायछे; केमके, जो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख बीजाने देवाई शकातुं होय तो पोते करेला कृतनो नाश थई गयो कहेवाय, अने लेनारने अकृतनो आगम थयो कहेवाय. केमके, तेने नकरेलो धर्म तथा तेनुं फल जे सुख, तेनी प्राप्ति थायछे, तथा करेलो अधर्म तथा तेहना फलनो नाश थायछे, ते कृतनाश कहेवाय छे. तेमज बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोताथकी लेवाई शकातुं होय तो तेणे करेला कृतनो नाश थई गयो कहेवाय, अने पोताने अकृतनो आगम थयो कहेवाय; केमके, पोताने नही करेलो धर्म तथा तेना फलनी प्राप्ति थायछे, तथा करेलो अधर्म तथा तेना फलनो नाश थायछे, ते कृतनाश कहेवाय छे. ॥ ४९ ॥

नत्ताइ पोग्गलाणवि एं दाण हरणाइ होइ जीवस्स ॥
जइ तं संचिय हुज्जा तो दिज्जा वा अवहरिज्जा ॥ ५० ॥

व्या०:—नक्तप्रमुख पुद्गलनुं देवुं तथा लेवुं जीवनेविषे थाय नही, केमके, जे वस्तु पोतानी होय तेनुं देवुं तथा लेवुं थायछे; परनी वस्तुनुं लेवुं देवुं थतुं नथी, ने परवस्तुनुं लेवुं देवुं तो प्रत्यक्ष करिये छैये ते केम बने? ज्यारे पुद्गल द्रव्य आपणुं नथी त्यारे लेवुं देवुं केम कराय छे? ॥ ५० ॥

जोगवसेणुवणीआ इट्ठाणिट्ठा य पोग्गला जेहु ॥
अन्नाणे जीवाउ जीवो अन्नो अतेहिंतो ॥ ५१ ॥

व्या०:— नामकर्मना परिणाम जे मन वचन तथा कायना योग छे; तेना वशे पुद्गलनुं ग्रहण थायछे; जेम के, सुगंध तथा दुर्गंधनुं ग्रहण करतां काय योगना वशेकरी पुद्गलनुं ग्रहण थायछे; ते आत्मतत्वना ज्ञानथकी जीवने रागद्वेषना कारण थायछे; पण ते आत्माथकी अन्य छे. अने आत्मा तेथकी अन्य छे. केमके, पुद्गल ग्रहण गुण छे; अने आत्मा उपयोग गुण छे. ॥ ५१ ॥

तम्हास परिविन्नागो पोग्गलदवंमि णत्थि णिछयउ ॥
नोगानोगविसेसो ववहाराचेव सपसत्तं ॥ ५२ ॥

व्या०:-- माटे निश्चयनयथकी एटलो विशेष छे के, जे आपणाने नोग आवेछे, तेमांनुं न्यायोपार्जित वित्त होय ते आपणुं; ने जे परने नोग आवे ते परनुं जाणवुं.॥५२

पुसपयडीए उदये भोगो भोगांतराय विलएणं ॥ ज
इ णिअचित्तेणचिअ, तो भोगो किए कि विणाए ॥ ५३॥

व्या० -- सातावेदनीयप्रमुख पुण्यप्रकृतीना उदयथी भोगांतरायकर्मनो विलय थया पछी पण जो जीवने भोग थता होय तो कृपणने पण भोगनी प्राप्ति थवी जोइये, तेम तो नथी थतु, केमके, कृपणने पण लाभांतरायकर्मना क्षयोपशमथकी द्रव्यनी प्राप्ति तो थायछे, परतु भोगांतराय कर्मना वशथी भोगवी शकतो नथी. माटे जे आपणने भोगवायोग्य होय ते स्वद्रव्य कहेवाय, ने बीजुं बधुं परद्रव्य छे एम जाणवु एवी रीते व्यवहार नयना मते पण एकात नथी, माटे ए सर्व पुद्गल द्रव्यने परकरी जाणवु जोइये ॥ ५३ ॥

अ० आ सर्व पुद्गल द्रव्य परकीय छे एम जे जाणे नही तेने आत्मस्वभावनी प्राप्ति न थाय ते कहे छे

जो परदव्वमि पुणो करेइ मूढो ममत्त संकप्पो ॥ सो
कहआय सहायं गिद्धो विसएसु उवलहई ॥ ५४ ॥

व्या० -- व्यवहारमूढ जीव परद्रव्यनी उपर ममत्वसकल्प करेछे, ते विषय लोलुप थयो थको आत्मस्वभावने पामतो नथी केमके, शरीरादिकनेविषे ' हुं मातेलो छुं, हु दूबलो छु, हु गोरो छुं तथा हु कालो छु ' इत्यादिक अहंकार जीवने उत्पन्न थायछे, तथा ' मारु शरीर, मारुं कुटुंब, इत्यादिक ममकार उत्पन्न थायछे, तेथी विषयोनेविषे दृढप्रवृत्ति थायछे, अने विषयना अभ्यासे तेओनेविषे दृढ भाव थायछे, एवी परपराए करी अज्ञाननी वृद्धि थई गयाथी आत्मज्ञान केम थाय ॥५४॥

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिहंकिंची ॥
इय अप्पभावणाए राग दोसा विलज्जंति ॥ ५५ ॥

व्या० -- हुं बीजा कोईनो सबंधी नथी, तेम मारो कोई बीजो संबंधी नथी, आ जगतनेविषे मारुं काई नथी, केमके, परद्रव्यनु अस्तित्व भिन्न छे, अने मारा आत्मद्रव्यनुं अस्तित्व भिन्न छे, शरीर कुटुंबादिक कर्मना योगे सयोग लक्षण भावछे, तेमां मारु काई लागतु वलगतु नथी, केमके, तेओनो वियोग पण थायछे, जेनो कोई काले सयोग तथा कोई काले वियोग थतो होय ते पोतानु द्रव्य कहेवाय नही जेनो कोई काले वियोग थाय नही ते पोतानु द्रव्य कहेवाय छे, एवो तो आत्मस्

भाव छे, जेनो आत्माथी वियोग थतो नथी; जेम ज्ञान दर्शनादिक स्वभावोनुं कोई काळें आत्माथी वियोग थतो नथी. एवी रीते शास्त्रोक्तमर्यादाए करी आत्मभावना करवाथी राग द्वेषनो नाश थाय छे. ॥ ५५ ॥

तो परिणामाउच्चिय बंधो मोक्खो व णिच्छयणयस्स ॥
णेगंतिया अणच्चं तिया पुणो बाहिरो जोगो ॥ ५६ ॥

व्या०:—माटे जीवने बंध अथवामोक्ष निश्चयनयथी आत्मपरिणामथीज थाय छे. अज्ञानरूप परिणामथकी बंध थायछे, अने आत्मज्ञानरूप परिणामथी मोक्ष थायछे. जेम हिमथकी थएली जे शीतनी वेदना ते अग्निना तापथकी निवृत्त थाय छे, तेम आत्माना अज्ञानथकी थएलो जे कर्मबंध, ते आत्मज्ञानथकी निवृत्त थायछे. केमके, एम सिद्धांतोमां पण कह्युं छे के, तपथकी दुर्श्चीर्ण कर्मनो क्षय थायछे ते पण ज्ञानना संयोगथीज फळ थायछे. केमके, अज्ञानी कोडाकोडी वर्षेकरी जे कर्मनो क्षय करे, ते कर्मनो क्षय ज्ञानी एक उच्छ्वासमां करेछे. बाह्य योग प्राणातिपातादिक, तथा क्रियानुष्ठानादिक एकांतिक नथी, तेम आत्यंतिक पण नथी. केमके, बाह्य हिंसाविना मनना क्लिष्ट परिणामे करी, तंदुलमच्छ, सातमी नरक पृथ्वीनेविषे उत्पन्न थायछे. अने अप्रमत्त यतिने जयणाए चालतां अनाभोगे जीवघातथी पण ते प्रत्ययिक कर्मनो बंध थतो नथी. तथाविध क्रियानुष्टानविना पण केवळ ज्ञान उत्पन्न थाय छे. ने अभव्य जीव यतीने लिंगे उत्कृष्ठ बाह्य क्रिया पाळे छे तेना बळे ते नवमां ग्रैवेयकसुधी जायछे. तो पण शुद्ध परिणामविना संसारनो पार पामता नथी ॥५६॥

सिद्धी णिच्छयउच्चिय दोह्नं संजोगउ अवेयत्तं ॥ क
हइ कहइ दोह्नवि जवउगो तुल्लवंचेव ॥ ५७ ॥

व्या०:— संसारपार गमन सिद्धलक्षण निश्चय क्रियाथीज थायछे: एमां पण आटली विशेषता छे के, घणाने व्यवहारथकीज निश्चय आवेछे. अने कोइक भरतादिकने पूर्व चारित्राभ्यासेकरी तथा भव्यत्वना परिपाकेकरी सहजे पण थायछे. कपणुं कहेतां योग्यपणुं ते निश्चय तथा व्यवहार ए बन्नेना संयोग थकीज थायछे. एविषे सिद्धांतमां चार भांगा कह्या छे. पहेलो जे रूपुं सारुं नही ने छाप पण सारीनही, तेनी पठे ए भांगो चरकपरिव्राजकप्रमुखनेविषे छे. केमके, ते रूपाना

जेवो शुद्ध परिणाम नथी, तथा गपना जेवो वेप पण नथी माटे तेओना अर्थ नी सिद्धि थती नथी, ने ते वदन करवायोग्य पण नथी बीजो रूपुं खोहुं, होय ने गप खरी होय ए नागो, पासत्था, उसन्ना, प्रमुखनेविषे थाय ठे, प्रमुख श ब्दकरी दिगबरादिक पण लेवा. केमके, तेओने रूपाना जेवो शुद्ध परिणाम नथी मात्र गापनी पठे वेप तेवो ठे पण परिणामविना तेओना अर्थनी सिद्धि थती नथी वेप तेवोठे माटे जहांसूधी दोप जाण्या न होय तहांसुधी वदना करवायोग्यठे, पर तु दोष जाण्या पठी जो वदना करिये तो माहा दोप लागे यत "जइ वेल बगलिं ग, जाण तस्स णमउ धुव दोसो, णिद्धंदसत्तिणाऊ, ण वदमाणे धुवदोसो" इत्या वश्यके एनो अर्थ – जेम कोइ नाडे यतिनो वेप लीधो होय तेने जाणीने वदन क रता निश्चयेकरी दोप लागेठे तिम निर्द्धस जाणी वेष मात्र जोइने वदना करता ध्रुव दोप लागे त्रीजो रूपु चोखु होय पण गप खरी न होय ए नागो प्रत्येक बुधने लागु थायठे केमके, तेओ अन्यलिगे पण होय तथापि तेओने रूपानी पठे नावचारि त्रतो ठे, तेथी पोताना आत्मानो अर्थ तो सिद्ध करेठे, परतु साधुना पथ्यविना वदन करवा योग्य नथी चोथो नागो रूपु पण चोखुं तथा गप पण चोखी होय तेनी पठे सर्व शुद्ध जाणवु जे महानुनाव आलय विहारादिक सर्व शुद्ध, यतिनी समाचारी पाले, अने विशुद्ध चारित्रवत होय, एने रूपानी पठे शुद्ध परिणाम ठे, तेथी आत्मानो अर्थ सिद्ध करेठे, तथा साधुनुं पथ्य ठे, माटे वदवा योग्य तथा पूजवायोग्य पण ठे एवीरीते एवा ठेकाणे शुद्ध परिणामरूप निश्चय बलवत ठे साधु वेपादिरूप उपचरिता सद्भुत व्यवहार ते निर्बलठे तथाकोईक ठेकाणे व्यवहार अने निश्चय ए बन्नेनो सरखो उपयोग ठे अहीं ज्ञान अने क्रियानु उदाहरण लेवु ज्ञाननयनी रीतिए आम कह्यु ठे के, ज्ञानविना क्रियामात्रथी फलनी सिद्धि थती नथी केमके, मिथ्याज्ञानेकरी सीपनेविपे रूपानी बुद्धि प्रवर्त्ते ठे ने तेनी प्राप्ति तो थती नथी माटे मिथ्याज्ञानजन्य जे क्रिया, तेथी फलनी प्राप्ति थती नथी, किंतु सत्यज्ञानजन्यक्रियाथी फलनी प्राप्ति थायठे परतु क्रिया तो ज्ञानेकरीनेज थायठे, तेमां मिथ्याज्ञानजन्यक्रि या निष्फल थायठे ने सत्य ज्ञानजन्यक्रिया सफल थायठे, एवीरीते क्रियानु कारण ज्ञान होवाथी प्रधान ठे. अने ज्ञाननु कार्य क्रिया होवाथी अप्रधान ठे, ते मज क्रियानयनी अपेक्षाए एम कह्युठे – ज्ञानजन्यक्रियाए करीने सपादन क रेलु जे फल, ते कोई कारणने लीधे क्षीण थई जाय तो ते पाछु क्रियाथी प्राप्त थायठे, माटे क्रिया प्रधान ठे अने ज्ञान अप्रधान ठे जुवो के, ज्ञानवान ठतां

क्रिया न करे तो ते ज्ञानमात्रथकी फलनी प्राप्ति थती नथी. अहीं दृष्टांतो कहे छेः— जेम कोई पुरुषने मार्गनुं ज्ञान सारी पठे होय, पण जो चलनक्रिया न करे तो वांछित नगर प्रत्ये पहोंची शके नही; जेम कोई पुरुषने नृत्यकलानुं सारुं ज्ञान होय पण जो नृत्य अभिनय क्रिया न करे तो जोनारा लोकनुं मनरंजन करी शके नही; तथा तेने कांई द्रव्यनी प्राप्ति थाय नहीं तथा जेम कोई पुरुष तरी जाणतो होय एटले जलतरणज्ञानवान होय, पण जो हस्तपादचलनरूपक्रिया न करे तो इच्छितस्थले न पोहोचतां वच्चेज बूडी मरे, एवी रीते ज्ञाननय तथा क्रियानयनो परस्पर विवाद छे; तेने एककोरे मूकीने मात्र सारांशनो विचार जो कर्यो होय तो परमार्थदृष्टिए फलसिद्धिने विषे बन्ने समान बलवंत छे. केमके, शैलेशीअवस्थानेविषे केवलज्ञानरूप ज्ञान, तथा संवररूप क्रिया ए बन्ने योगथी मुक्ति थायछे पण ए बन्नेमांनुं कोई एक न होय तो मुक्ति थाय नही, ए प्रमाण पक्ष छेः ॥ ५७ ॥

अ० निश्चयनयनी अपेक्षाए कहेछेः—

तुल्लत्तमवेक्खाए णियमासमुदाय जोगमहि गिच्च ॥
किरिआ विसस्सए पुण नाणाउ सुए जउ जणिअं ॥५८॥
जम्हा दंसण नाणं संपुन्नफलं न दिंति पत्तेअं ॥ चा
रित्तजुआ दिंतिहु विसस्सए तेण चारित्तं ॥ ५९ ॥

व्या०ः— यद्यपि कार्य करवानी अपेक्षाए ज्ञान अने क्रिया ए बन्नेनुं सरखुं बल छे; तथापि ज्ञान करतां क्रियाने आटली विशेषता छेः— ज्यारे शुद्धक्रिया होयछे त्यारे षष्टादिगुणस्थानके नियमे शुद्धज्ञान होयछे. पण ज्यारे शुद्धज्ञान होय, त्यारे शुद्धक्रियानो नियम नथी. केमके, चतुर्थगुणस्थानके सम्यक्तना प्रतापे करी शुद्ध ज्ञान तो होयछे, परंतु अविरति होवाने लीधे शुद्धक्रिया होती नथी. एविषे आवश्यक निर्युक्तिमां कह्युंछे के, जेमाटे दर्शन तथा ज्ञान ए प्रत्येके संपूर्ण फल दई शकता नथी, पण ज्यारे चारित्रनेविषे एकठा मलेछे. त्यारे संपूर्ण फल दियेछे. तेमाटे दर्शन तथा ज्ञान करतां चारित्रश्रेष्ठ छे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

एवं ववहाराउ बलवंतो णिछउ जणेयव्वो ॥ एग
मयं ववहारो सवमयं णिछउ वत्ति ॥ ६० ॥

व्या०ः— एवी रीते व्यवहारथकी निश्चयनुं बल अधिक कह्युं तथा आवीरीते पण निश्चयनी विशेषता छेः— जे एकनयनुं मत ते व्यवहार, अने सर्वनयनुं मत

ते निश्चय कहिये, यथा भूतपदार्थनुं जे कथन ते निश्चयनय कहेवाय छे, ने ए भूता र्थनय पण कहेवायछे, निश्चयनयनो विषय भाव जे छे ते सर्व समान छे यत "सव्वणया भावमिच्छति" इति विशेषावश्यके ॥ ६० ॥

अ० एवुनिश्चयनयनुमत सांभलीने सिंहावलोकनन्याये व्यवहारवादी बोले छे –

अहिआ जइ तुह किरिआ अहिआ नाण वि तस्स हेउत्ति ॥
कारणगुणाणुरूवा कज्जगुणाणेव विवरीआ ॥ ६१ ॥

व्या० – पूर्वे कहेली रीतिए ज्यारे तु क्रियाने अधिक माने छे, त्यारे ज्ञानने पण अधिक मानवु जोयेछे केमके, ज्ञान क्रियानुं कारण छे कारणना गुण जेवाज कार्यना गुण होयछे, तेथी विपरीत होता नथी जेमाटे ज्ञान क्रियानुं कारण छे, तेमाटे तेना गुणे करीने क्रियाने कार्य पणानी प्रधानता छे, तेथी ज्ञान अत्यंत प्रधान छे, जो कहेशोके, मोक्षरूप कार्य क्रियाथकी थायछे माटे क्रिया अधिक छे, तो तेम पण संभवे नही. केमके, ज्यारे क्रिया ज्ञाननुं कार्य छे त्यारे क्रियानुं कार्य जे मोक्ष, तेपण परपराए ज्ञाननुज कार्य जाणवु यत "दासेण मे खरो कीउं, दासोवि मे खरोवि मे" एटले मारा दासे खर वेचातो लीधो, ते दास पण मारो अने खर पण मारो छे, एम सिद्धातोक्तन्यायथी जाणी लेवु ॥ ६१ ॥

अह जह सव्व णयमय व णिच्छि इगमयं च ववहारो ॥
सोसा सयलादेसा विगलादेसा कहं होउं ॥ ६२ ॥

व्या० पूर्वे कह्या प्रमाणे निश्चयनय जे छे ते सर्व नयनु मत छे, जो एम होय तो ते सर्व भागानु ग्रहण करनार सकलादेश प्रमाणरूप मानवो जोइशे त्यारे ते नयरूप विकलादेश केम मानशो? ॥ ६२ ॥

अ० एवीरीते व्यवहार तथा निश्चय ए बन्नेनय परस्पर वाद करता जोईने मध्यस्थपणे प्रमाणवादी कहेछे –

मुख्कामुख्कविभागो इछामेत्तेण णत्थि एगतो ॥ जइ
अत्थि तो विनाणे चरण सारोत्ति त मुख्क ॥ ६३ ॥

व्या० व्यवहार तथा निश्चय एबन्ने नयोना मुख्य तथा अमुख्य ए वे विभाग पोतपोतानी इछाए थई शकेछे, कोईक गुणने लईने निश्चयनी मुख्यता कहेवायछे, अने कोईक गुणने लईने व्यवहारनी मुख्यता कहेवायछे परतु एओनेविषे एकातपणु सत्

वे नही; किंतु अनेकांतपणुं संभवेछे. केम के, निश्चय तथा व्यवहारना मुख्य तथा अमुख्य विभाग स्वभाविकधर्मरूप नथी; किंतु आपेक्षिक छे. जेम आमलक बदरनी अपेक्षाए दीर्घ कहेवाय; अने घटादिकनी अपेक्षाए ऱ्हस्व कहेवायछे. तेम ए बन्ने नयो एक बीजानी अपेक्षाए मुख्य तथा अमुख्य कहेवायछे, एम छतां पण जो व्यवहारनयवादी पोताना मतनुं मुख्यपणुं प्रकाशवानुं मांभी न वाले तो तेणे वली आ युक्तियेकरीने पोताना मननुं समाधान करी लेवुं जोये के व्यवहारनुं जे मुख्यपणुं छे ते मात्र कहेवानुं छे, अने निश्चयनुं मुख्यपणुं तो कार्यनो उपयोगी छे; केम के, सामायक आदिदईने चौद पूर्वपर्यंत ज्ञाननुं सार ते चारित्र कह्युं छे, यतः "सामाइअमाईअं, सुअनाणं जाव विंदुसाराउ; तस्स वि सारो चरण, स्सारो चरणस्स निव्वाणं" इति आवश्यके. ॥ ६३ ॥

सव्वणयमयत्तं पुण सव्वेसिं सम्मउ जउ विसउ ॥
णयणिछयस्स तेणं सयल दिसत्त मेगस्स ॥ ६४ ॥

व्या०: निश्चयनयने सर्वनयमय पणुं जे पूर्वे कह्युं ते सर्वनय सम्मत अ थी मानेछे तेमाटे कह्युं एम जाण्याथी एकला निश्चयनयने सर्वनयसमूहरूप प्रमाणात्मक सकल देशपणुं पण दोषनुं करनार थशे नही. ॥ ६४ ॥

जेणं सयला देसो अन्नेय वित्तीइ णिछयाधीणो ॥
तेणेव सोपमाणं ण पमाणं होइ ववहारो ॥ ६५ ॥

व्या०: जिहां एक धर्मनी धाराए सर्व धर्म जे सकलादेशनेविषे प्रतिपादन कराय छे, तिहां अस्तित्वादिक एक धर्मनी साथे बीजा सकल धर्मोनुं अभेदपणुं जे जाणवुं ते निश्चयनयने आयत छे, एवी अपेक्षाएकरी निश्चयनयने प्रमाण कह्योछे; अने व्यवहारनयने अप्रमाण कह्योछे; परंतु एकांत निश्चयनय प्रमाण कह्यो नथी. ॥६५॥

जम णुवयारोवि चलं कासइ णेगंतिअं हवे तंपि ॥ एग
स्स मुक्खभावे णियमा अवरोवयारोत्ति ॥ ६६ ॥

व्या०: कोई एम कहेछे के निश्चयनय परमार्थग्राहीछे तेमां कोई उपचार न लेवाथी ते बलवानछे, अने व्यवहार नय परमार्थग्राही नथी, तेमां घणा व्य होवाथी ते निर्बलछे, एपण एकांत नथी; केमके, बन्नेनय वस्तुग्राही छे, पण निश्च अंशग्राही छे, तेमां ज्यारे निश्चयनयनी मुख्यता विवक्षिए त्यारेनिश्च

यनय पण उपचारसहित थायछे, इहां कोई विशेषता नथी, यत "अर्पितानर्पितसिद्धे तत्वार्थे" शब्देकरी नयनी प्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अर्पित कहिये, अने नयांतरनी अपेक्षाए तेनी अप्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अनर्पित कहिये, एबन्ने प्रकारनी विवक्षाथी जे पदार्थनी सिद्धि थायछे, ते तत्वार्थ सिद्धि कहेवायछे ॥ ६६ ॥

णिछयणयस्स विसयं नावंचिय जे पमाण माहसु ॥
तेसिं विणेव हेउं कज्जुप्पत्तीइ कामेरा ॥ ६७ ॥

व्या० कोईक आम मानेछे के, निश्चयनयनो विषय जे नाव छे तेज प्रमाण छे, तो ते नावनो हेतु द्रव्य छे, द्रव्यविना नावनी उत्पत्ति थाय नही जो द्रव्यविना नावनी उत्पत्ति अंगीकार करीये तो मर्यादा रहे नही अने कारणविना कार्यनी उत्पत्ति थती नथी एवो नियम छे तेनो नग थशे जो एम कहेशो के, द्रव्य क्रिया संसारमां अनंतवार प्राप्त थएली छे, माटे ते अप्रधान छे, तो नाव पण अप्रशस्त अनंतवार प्राप्त थएलो छे ते केम प्रधान कहेवाय ? जो कहेशो के, शुद्ध नाव अपूर्व छे, तो शुद्ध द्रव्य पण अपूर्वज छे, ते शासारु नही मानवु जोये ! ॥६७॥

खाउवसमिगनावे सुद्धो हेक सुहस्स खइअस्स ॥ त
प्नावेण कया पुण किरिआ तप्नाववुढ्ढि करी ॥ ६८ ॥

व्या० क्षायोपशमिक नावे कीधेली जे क्रिया तेज क्षायोपशमिक नावनीवृद्धि करनारी छे, माटे शुद्धनावथी क्रिया अवश्य करवी योग्य छे, अने तेम न करवाथी नावनी हाणी थई जाय ॥ ६८ ॥

धिइ सद्धा सुह विविइस विसत्ती तत्त धम्म जोणित्ती॥
तब्लद्धधम्मनावा वड्ढई नावतत्तणं तत्तो ॥ ६९ ॥
एव पवड्ढनावो कमेण गुणठाणसिढ्ढिमारुहिय ॥
पक्खीणघाइकम्मो कयकिच्चो केवली होइ ॥ ७० ॥

व्या० धृति, श्रद्धा, शुश्रूषा, विविदिषा, तथा विज्ञप्ति ए पाच पदार्थ धर्मनां कारण छे, एविषे पतंजलिप्रमुख ग्रथोमा पण कहेलुं छे, उद्वेगादिनो त्याग करीने चित्त स्वस्थ करवु ते धृति कहिये, चित्त स्वस्थ थयाथी मार्गानुसारिणी रुचि उत्पन्न थाय छे ते श्रद्धा कहिये, मार्गानुसारिणी बुद्धि थयाथी क्षायोपशम नाव

उत्पन्न थायछे, त्यारे जेम सर्प बाहेर आमो तिडो चाले पण ज्यारे राफडामां पे सेछे त्यारे पांसरो थई जायछे तेम श्रवणादिकनेविषे बुद्धिनी जे सरला थवी ते शुश्रूषा कहिये, श्रवणादिक कर्याथी जेम जेम बुद्धि शुद्ध थती जायछे, तेम तेम आत्मतत्वचिंतननी उत्पत्ति थती जायछे ते विविदिषा कहिये, आत्मतत्वचिंतनथकी शुश्रूषा जे छे ते श्रवणादिगुणरूप थायछे, तेविना ते आनासमात्र कहेवाय; पण गुण कहेवाय नही, आत्मतत्वचिंतन वडे श्रवणादिक गुण उत्पन्न थयाथी सम्यक्तनी उत्पत्ति थायछे, ते सम्यक्तना पांच लिंग शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा, तथा आस्तिक्यता; एवो आत्मानो जे शुभ परिणाम तेने परमतनेविषे विज्ञप्ति कहेछे, आत्माना शुभपरिणामथी धर्मनो नाव उत्पन्न थायछे; तेणेकरी नावांतरनी वृद्धि थायछे, एम उत्तरोत्तर, नाववृद्धिकरी अविरति देशविरत्यादिक गुणस्थान श्रेणीचढी घातीकर्मनो क्षयकरी कृतकृत्य केवलीथाय एनो सारी रीते विचार करी जुवो एटले सहज जणाई आवेछे ॥ ६ए॥ ७० ॥

अ० एवुं युक्तिपूर्वक वचन सांनलीने पीडितकर्ण थयो थको परवादी बोल्यो:—

नणु जय सो कयकिच्चो अघारसदोसविरहिउ देवो ॥
ता बुहतह्हा नावा जुज्जइ कम्मा कवलनोजी ॥ ७१ ॥

व्या० देव तो अढारदोपरहित छे; अने कृतकृत्य छे; ए सर्व मान्यछे. ने तमे पण जो एमज मानता होतो तेने कवलाहार करनारो केम कहोछो? कवलाहार अंगीकार कर्याथी क्षुधा तृपा पण अंगीकार करवा जोईशे. केम के, क्षुधा तृपाविना कवलाहार संनवे नही. जो क्षुधा तृपाने पण अंगीकार करशो तो परमेश्वरने अढारदोपरहित केम कही शकशो? केम के, क्षुधा अने तृषा ए बे दोप तो कवलाहारना ग्रहणथी सिद्ध थायछे. त्यारे शुं केवली सोलदोपरहित छे, जो एम मानशो तो आगमवचननो अपमान थशे. यतः "क्षुत्पिपासा जरातंक, जन्मांतकनयस्मयाः ॥ न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते." इति दिगंबरग्रंथांतरगत उपासकाध्ययने क्षुधा, तृपा, जरा, क्षय, जन्म, यम, इहलोकादिनय, अहंकार, राग, द्वेप, मोह, चिंता, अरति, निद्रा, विस्मय, विपाद, स्वेद, तथा खेद; ए अढार दोष केवलीने नथी एम कह्युंछे. तेओमाना क्षुधा तथा तृपा ए बे दोप छतां कृतकृत्यता केम संनवे? माटे केवलीने जो कवलाहारी कहो तो बे दोष अंगीकार करो. ॥ ७१ ॥

अ० ए आशंकानो उत्तर कहे छे --

तो सक्कावुत्तु जे छुहतह्नाइ जिणस्स किरदोसो ॥ जइ
तं दूसेज गुण साहावियमप्पणो किं वि ॥ ७१ ॥
दूसइ अवावाहं इय जइ तुह सम्मउ तयं दोसो ॥
मणुयत्त ण वि दोसो ता सिध्दत्तस्स दूसणउ ॥ ७२ ॥

व्या० क्षुधा अने तृषा ए बे दोष अडार दोषमा गणीने, कृतकृत्य जे केवली तेनेविषे ते बे दोषनो ते जे अभाव कह्यो, ते वचन ताराज मतानुयायिमा कहेता शोभाप्रद छे, परतु पण्डितोनी पर्षदामां शोभाने पामे नही, किंतु मूल्यविना ना कहे वाय केमके, क्षुधा अने तृषा ए बन्ने दोषमा त्यारे गणी शकाय, के ज्यारे कोई स्वाभाविकआत्माना गुणने दूषण लागतु होय, तेम तो कांई थतु नथी, केम के, ए भाव वेदनीयकर्मना करेला छे, ते केवलज्ञानने दूषित करी न शके केमके, केवलज्ञानने दूषण करनार ज्ञानावरणीय कर्म छे तेम केवलदर्शनने दूषित करनारुं दर्शनावरणीय कर्म छे, तेम सम्यक्तचारित्रने दूषित करी शके नही केमके, सम्यक्तचारित्रने दूषित करनारुं मोहनीयकर्म छे तेमज दानादिक पाच लब्धिने पण दूषित करी शके नही, केमके, लब्धिओने दूषित करनारुं अतराय कर्म छे ए कारण माटे क्षुधा अने तृषा ए बे दोष कहेवाय नही अहिं कोई आशंका करशे के जेम क्षुधा तथा तृषावडे छद्मस्थने ईर्या समिति श्रुताभ्यासादिकनो भग दीठामा आवेछे, तेम केवलीने पण चारित्रज्ञानमा प्रतिबंधरूप शासारू न थाय? एनो उत्तर आ छे यद्यपि क्षुधा तथा तृषा ए बे बहिरिंद्रिय वृत्तिनी ग्लानि करवाने लीधे एकेंद्रिय ज्ञानादिकना विरोधी थायछे तथापि अतींद्रिय ज्ञाननो घात करी शकता नथी, कोई एवी आशंका करे के, जीवनो अव्याबाध गुण छे एटले निराकुलत्वरूप जे जीव, तेने दूषित करनारी क्षुधा तथा तृषा छे. केमके, ते आकुलता परिणामरूप छे जे आकुलतानी क्षुधावडे निवृत्ति थायछे, तेक्षुधानी परिणामक छे. ने क्षुधा तेनो परिणाम छे, अने जे आकुलतानी तृषावडे निवृत्ति थायछे, ते तृषानो परिणामक छे ने तृषा तेनो परिणाम छे तेने एम कहेवु के, केवलीनो सिध्दत्व गुण छे, तेने दूषित करनारुं मनुष्यपणुं पण दोषरूप केम न कहेवाय? इत्यादिक विचार करी पोतानी कल्पना मूकीने घातिकर्मना करेला अढार दोष जेवी रीते पूर्वाचार्ये कह्याछे, तेवी रीतेज मानवा

जोइयेछे, यतः "अंतराया दानलाभ, वीर्यभोगोपभोगगाः ॥ हासोरत्यरती भीति, र्जुगुप्सा शोक एव च ॥ १ ॥ कामोमिथ्यात्वमज्ञानं, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागोदोषश्च नो दोषा, तेषामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥" ज्ञानगुणनो घात करनारुं अज्ञान, दर्शनगुणनो घात करनारी निद्रा, सम्यक्तगुणनो घात करनारुं मिथ्यात्व, चारित्रगुणनो घात करनारां हास्य, रति, अरति, भय शोक, दुगंछा, काम, अविरति, राग, तथा द्वेष; अने दानादि लब्धिरूपवीर्यगुणना घात करनारा दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, तथा वीर्यांतराय; ए अढारदोष घातिकर्मना कह्याछे, परंतु केवलीने घातीकर्मोनो क्षय थई जायछे, माटे ते निर्दोष कहेवायछे. तेम छतां क्षुधा अने तृषाने अढारदोषोमां जे गणेछे ते युक्तायुक्त विचार नकरतां केवल स्वमतनुं पोषण करेछे; ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अह जइ जिणस्स खइअं सुखं दुखं विरुझए तेणं ॥
तो सामण्णभावे विसेसजुत्ता कहं सत्ता ॥ ७४ ॥

व्या०:– कोई आशंका करे के, जेम केवलीने क्षायिक ज्ञानादिक छे, तेम क्षायिक सुख पण छे, तिहां दुःखनो लेश पण नथी, तो क्षुधा तृषा केमलागेछे ? ॥७४॥

तो वेयणिज्जकम्मं उदयप्पत्तं कहं हवे तस्स ॥ णाय
सोपदेसउदउ समयम्मि विवाग भणणाउ ॥ ७५ ॥

व्या०:– उपली आशंकानुं उत्तर दियेछे के, केवलीने जो क्षायक सुख मानता होतो सिद्धांतनेविषे केवलीने वेदनीयकर्मनो उदय कह्योछे; ते शासारु न मानवो ! अर्थात् मानवो जोईशे. जेम ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय छतां क्षायिक ज्ञान थतुं नथी, तेम वेदनीयकर्मनो उदय छतां क्षायिक सुख पण थतुं नथी, कोई शंका करेके, केवलीने एवा वेदनीयकर्मनो उदय होयछे के, जेना प्रदेश आत्मप्रदेशनी साथे मलेछे, ते स्थिति प्रमाणे रहीने क्षीण थई जायछे. परंतु केवलीने तेनी आकुलता थती नथी. एनुं उत्तर ए के, यद्यपि एवो प्रदेशोदय अमने पण मान्य छे; तो केवलीने क्षायिक सुख संभवे नही. तेम छतां अभ्युच्चयताथी अमारे कहेवुं जोयेछे के, केवलीने वेदनीयकर्मनो प्रदेशोदय छेज नही. किंतु सिद्धांतोमां विपाकोदय कह्योछे. ॥ ७५ ॥

आवस्सयणिज्जत्ती पयडिपसद्धोदउवएसेणं ॥ ण
जइ ता सुहायाउ असुहपडिवखवयणेणं ॥ ७६ ॥

व्या० – आवश्यक निर्युक्तिनेविषे प्रकृतिनो प्रशस्त उदय कह्यो छे, तथा दिग बरना प्रवचनसारनामक ग्रंथमा पण " पुण्णफला अरिहंता ' इत्यादिक वचनो कह्याछे, एवी रीते असुखना प्रतिपक्ष वचनथी केवलीने सुखनो विपाक छे ॥७६॥

अ० कोई आशंका करे के, जे कारण माटे सुखविपाक छे, तेथीज दुःखविपाक नथी ? तेनुं समाधान करेछे. ॥ ७६ ॥

तत्तच्चसुत्तभणिआ एकारसहा परीसहा य जिणे ॥ तेह
वि बुहतह्णाइ खइअस्स सुहस्स पडिकूल ॥ ७७ ॥

व्या० – अमारा श्रीभगवतीसूत्रनेविषे केवलीने अग्यार परीसह कह्याछे तद्यथा " एकविह्बंधगस्सण भंते सजोगि भवत्थ केवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा, एकारस परीसहा पण्णत्ता, एव पुणवेण तिन्ने ' तथा बेहुने " एकादश जिने " एवीरीते श्रीतत्वार्थसूत्रमां अग्यार परीसह कह्याछे , एणेकरी केवलीने क्षुधा तथातृषा प्राप्त थईछता क्षायिक सुखनी हानि थती नथी एवु ठरेछे अही उक्त " एकादशजिने ' ए सूत्रनो अर्थ केटलाएक पोतानुं मत पोषण करवाना हेतुथी एवु करेछे के " एकेनाधिकानदश " एटले एकअधिक दश न थाय, अर्थात् अग्यार परीसह नही ए अपव्याख्यान जाणवु, केमके, एवो समास संभवे नही. वली केटलाएक सर्वार्थसिद्धिप्रमुख " नसंति ' एवु बाहेरथी वाक्य लियेछे, तेतो जाणे पोतानु उत्सूत्रभाषणज प्रगट करतो होयनी ! परतु तेओए आवो विचार करवो जोये के, परीसहनास्वामी चिंताना अधिकारनेविषे प्रसिद्ध छता तेनो अभाव केम थशे ! जे धनरहित होय ते धननो स्वामी कहेवाय नही वली केटलाएक आवीरीते व्याख्यान करेछे के, केवलीने वेदनीयकर्म होवाथी कारण कार्योपचारेकरीने अग्यार परीसह कह्याछे ए व्याख्यान पण नदीमा बूडता घासनो आश्रय लेवाजेवु छे, केमके, स्वामित्वचिंताए उपचार संभवे नही, जो उपचार मानिये तो छता मोहनीयकर्मना होवाथी उपशात मोहगुणस्थानकनेविषे पण बावीस परीसह कह्या जोईशे, ए प्रकारे करी सूत्रना घणा अपव्याख्यानोनो त्याग करीने परमार्थनो विचार करवो जोये. ॥ ७७ ॥

अस्साय वेयणिज्ज बुहतह्णाईण कारण जाण ॥ पज्ज
त्तिसतित्तउदय जलिअतरजलणदित्ताण ॥ ७८ ॥

व्या० – आहार पर्याप्तिनामकर्म तथा असाता वेदनीयकर्म ए बन्नेना उदय

थी प्रज्वलित थएलो जे जठराग्नि, तेणे करीने जीवने क्षुधा तथा तृषा लागेछे, ते बधां कारण केवलीनेविषे छतां छे तेने क्षुधा तथा तृषा केम न लागे? तेकहो ॥७८॥

अ० वादी आशंका करेछेः—

णणु छुह तह्णा तह्णा मोहुदए पत्तियारिरंसव ॥
भण्णइ अण्णा तह्णा अण्णदुक्खं तयम्हंति ॥ ७९ ॥

व्या०ः— क्षुधा तथा तृषा ए मैथुननी इच्छानी पठे तृष्णारूप होवाथी ते मोहनीयकर्मथकी उत्पन्न थायछे. माटे केवलीनेविषे ए संभवे नही. केमके, केवली ए तो मोहनीयकर्मनो प्रथमज नाश कर्योछे. एनो उत्तर आवीरीते छेः— तृष्णा अने दुःखमां घणी भिन्नता छे, तृष्णानेज दुःख कहेवाय नही. परंतु संसारीने तृष्णाथकी दुःखनी उत्पत्ति थायछे. ॥ ७९ ॥

अ० तृष्णा उत्पन्न थवानो प्रकार कहेछेः—

मोहाभिणिवेसेणं चउहि वि उमकोठयाइ हेऊहिं ॥
पगरिस पत्तातह्णा जायइ आहारसण्णत्ति ॥ ८० ॥

व्या०ः— मोहनीय कर्म अभिनिवेशे चार कारणथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. ते उत्कर्ष पाम्याने लीधे तृष्णा कहेवायछे. ते चार प्रकार श्रीठाणांगमां कह्याछे; यतः "चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जइ; उमकोठयाए, छुहावेहणिज्जस्सणं कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदठोवउगेणं," एनो अर्थः— चार कारणेकरी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. कोठेखाली थयाथी, क्षुधावेदनीयकर्मना उदयथी, आहारादिकनी कथानुं श्रवण कर्याथी, तथा वारंवार आहारनो उपयोग कर्याथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. अर्थात् ए चार कारण मल्याथी मोहनीय कर्मना बले आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. अतएव गोमठ सारटीकाप्रमुखनेविषे पण आहारसंज्ञा आहाराभिलापरूप कहीछे. ते तृष्णारूप होवाथी यतिने ए विना अशनपानादिकनेविषे प्रवृत्ति छे ते कहेछेः— ॥ ८० ॥

असणाइम्मि पवित्ती एत्तोच्चिय तं विणा सुसाहूणं ॥ णज
हुत्त विहविहाणो अइआरो हंदि णिद्दिठो ॥ ८१ ॥

व्या० ए हेतुथीज यतिने पण आहारसंज्ञाविना अशनादिकनेविषे प्रवृत्तिछे. केम के, विधि पालतां यतिने अतिचार कह्या नथी; अने आहारसंज्ञा तो अति

चारमां छे माटे जे एम कहेछे के आहारसंज्ञाविना यतीए आहार करवो नही तेने आचारमा पण अतिचार कह्या छे ॥ ७१ ॥

एय विणा णभुत्ती मेहुणसन्नं विणा जह अबंभं ॥ इ
य वयणं पि परेसिं एएण पराकयं णेअं ॥ ७२ ॥

व्या० जेम मैथुनसंज्ञाविना अब्रह्मचर्य न थाय, तेम आहारसंज्ञाविना केवलीने भुक्ति थाय नही एवा परवादीना वचननुं आवीरीते निराकरण कर्यु छे – जेम यतिए आहारसंज्ञाविना आहार करवो उचित छे, तेम केवलीनेविषे पण मानी लेवु जोईये ॥ ७२ ॥

णह साहु चिय पवित्ती णेवय सुपसत्थझाणहेउत्ति ॥ आ
हारोच्च अवज्ज अणुह तुह होइ णिद्दोसं ॥ ७३ ॥

व्या० आहार अवर्जनीय होवाथी उचित छे, तथा छद्मस्थ यतीने प्रशस्त ध्याननुं कारण छे माटे आहारसंज्ञाविना केवलीने आहार लेवो संभवे छे अने मैथुन वर्जनीय होवाथी अनुचित छे, तथा दुर्ध्याननुं कारण छे माटे मैथुनादिक अनुचितप्रवृत्ति अप्रशस्त रागद्वेषविना केवलीने थाय नही एवा अर्थनो विचार करीने तेनुं ग्रहण करवु जोये ॥ ७३ ॥

आहारचिंतणुब्भव मेयं आहारसण्णमासज्ज ॥
वुड्ढइ अट्टज्झाणं इहा लोभेण मूढाण ॥ ७४ ॥

व्या० आहारना चिंतनथकी जे आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे, तेनेविषे मोहित थयला मूढजीवने जो ते आहाररूपइष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते वस्तु क्यारे प्राप्त थशे एवा चिंतनरूप आर्त्तध्यान करेछे परंतु ते अभिलाषा मटती नथी ७४

तत्तो माणसदुक्खं लहइ जिउ कंदणाइ कुव्वंतो ॥
लद्धु वि इट्ठविसय रईइ चिंतेइ अविओगं ॥ ७५ ॥

व्या० त्यार पछी पूर्वोक्त रीतिए जो तेने आहारादिक इष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते जीव क्षुद्वेदनीयना उदयथी प्रज्वलित थएला उदरानलना योगे शरीरदुःख पामेछे अने पछी क्रंदन रोदनादिक कखाथी अरतिमोहनीयकर्मना उदयने लीधे गाढ चित्तोपतापरूप मानसदुःख पामेछे कदाच पुण्यप्रकृतिना परिपाके इष्टवस्तुनी प्राप्ति थाय तो पण रतिमोहनीयकर्मना उदयथी ते वस्तु

ना अवियोगनी इच्छा कर्याकरे, तेणे करी ते वस्तु उपर गाढानुरागेकरी आर्त्त ध्याननां वश थयो थको जीव दुःखज पामे छे, माटे मोहमूढ जे जीव छे तेने परमार्थथकी कदी पण सुख नथी. ॥ ८५ ॥

तो मोहणिज्जखयउ तप्पवदुक्खाणुबंधि विलएणं ॥
लहई सुहं सवन्नू चएणो पुण खुहं चइउं ॥ ८६ ॥

व्या०:– मोहनीयकर्मना क्षयथी जीवने आहार करवानी रति तथा अरति उत्पन्न थायछे, ने मोहनीयकर्मना उदयथी जीवने मानस दुःख उत्पन्न थायछे. ते दुःख केवलीने मटी जायछे; पण असातावेदनीयकर्मना उदयथी केवलीने जे क्षुधा तृषा लागेछे; तेनो ते त्याग करी शके नही. ॥ ८६ ॥

घाईव वेयणीअं इय जइ मोहं विणा ण दुक्खयरं ॥
पयडं पडिरूवाउ ता अस्साउ विपयडीउ ॥ ८७ ॥

व्या०:– पूर्वपक्षी कहेछे के, वेदनीयकर्म घाती कर्मना जेवुंछे, माटे मोहनीय कर्मविना ते दुःखदायक थाय नही. उक्तंच. "घादीववेदणीयं; मोहस्सुदएण घाददे जीवं;" इति कर्मकांडे. तेनुं समाधान आमछेः– जो तमारा कह्या प्रमाणे होय तो असातावेदनीयनी पठे केवलीने बीजी प्रकृतिओ पण मोहनीय कर्मविना पोताना कार्यनी करनारी होवी जोये. अने तमे वेदनीयकर्मनीसाथे घातीकर्मनी तुल्यना केवीरीते करोछो? घातीआना रसना जेवो तेनो रस होयछे एम सरखापणुं करोछो, के स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षापणुं कल्पोछो; के अथवा दोषनुं हेतुपणुं कहोछो,? जो कहेशोके घातीआना रसना जेवो रस होवो जोये तो अघातीकर्म प्रकृति घातीना जेवी होवी जोये. केमके, ज्यारे अघातीनी प्रकृति सर्व घातिनी प्रकृतिनी साथे वेदीये त्यारे ते सर्व घातिनीप्रकृतिनो विपाक देखाडे, तथा ज्यारे देश घातिनीनो विपाक देखाडे, अने एकली वेदीये त्यारे मात्र ते एकलो पोतानोज विपाक देखाडेछे; माटे पक्ष संभवतो नथी. जो कहेशो के, स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षा होवी जोयेछे, तो नामकर्म पण पूर्वे मोहनीयकर्मनी अपेक्षा करतुं छतां जेम केवलीने मोहविना आपणु कार्य करेछे; तेम वेदनीय कर्म पण मोहनीयकर्मनी अपेक्षाविना कार्य करेछेः माटे बीजो पक्ष पण संभवे नही. जो कहेशो के वेदनीयकर्मथी दोष लागेछे, तो ते

पण मनाय नही, केमके, क्षुधा अने तृषानेविषे दोषपणानुं पूर्वेज खंडन कर्युं छे, एवीरीते स्वबुद्धिएकरी सारी पेठे विचार करीने जुवो ॥ ७७ ॥

अणुकूलं पडिकूलं च वेयणं लक्कण सुहदुहाण ॥ ण
हु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयन्नावा ॥ ७८ ॥

व्या० औदयिक सुख छता अनुकूलत्व वेदन थायछे, ते रागरूप छे अने औदयिक दुःख छता प्रतिकूलत्व वेदन थायछे, ते द्वेषरूप छे, माटे केवलीने औदयिक सुख तथा दुःख ए बन्ने होता नथी, किंतु क्षायिक सुखज होयछे एम केटलाएक कहेछे, ते योग्य नथी केम के, जेम अप्रमत्तयतीने औदयिक सुख तथा दुःख ए बन्ने होयछे. पण राग तथा द्वेष ए बे होता नथी, तेम केवलीने विषे पण जाणी लेवु एमा एकांतपणुं न मानवु ॥ ७८ ॥

अधुवाण सुहदुहाणं नोगो नोगेण कम्मवंधो य ॥
णहु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयन्नावा ॥ ७९ ॥

व्या० सुख तथा दुःख ए बन्ने पदार्थ शाश्वत नथी, किंतु अशाश्वत छे ते ओनो एवो नियम छे के, अवश्य नोगने दियेछे कह्युछे के, "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि अने नोगथकी कर्मवंध थायछे. ए कारण माटे केवलीनेविषे ते संनवे नही केमके, सुख तथा दुःख ए बन्ने पदार्थो अध्रुव छे. एम केटलाएक कहेछे, ते पण योग्य नथी केमके, सुख तथा दुःख अध्रुव छता अप्रमत्तयतीने होयछे, तो पण तेनाथी कर्मवंध थतो नथी, तेम केवलीविषे पण जाणवु जोइये अहीं पण एकात नथी ॥ ७९ ॥

अन्नाणजं तु दुक्क नाणावरणक्कएण खयमेइ ॥
तत्तो सुहमकलंकिय केवलनाणा पुहन्नूय ॥ ८० ॥

व्या० -- ज्यारे हरेक पदार्थनो सूक्ष्म अर्थ जाण्यामां आवतो नथी, त्यारे जीवने महादुःख उत्पन्न थायछे. केमके, यथार्थवस्तु जाणवानी इछा प्रमाणे जाण्यामा न आवे तो तेथी जीवने आकुलता थायछे तेज दुःख जाणवु. ए दुःख वस्तुनो सूक्ष्म अर्थ न जाण्याथकी थायछे, माटे अज्ञानरूपज छे. अज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयथी नाश थाय छे, ते दुःखनोज नाश जाणवो केवलीने ज्ञानावरणीयकर्मनो क्षय थई जवाथी दुःखरूप अज्ञाननो लेश पण

ना अवियोगनी इच्छा कर्याकरे, तेणे करी ते वस्तु उपर गाढानुरागेकरी आर्त्त ध्याननाा वश थयो थको जीव दुःखज पामे छे, माटे मोहमूढ जे जीव छे तेने परमार्थथकी कदी पण सुख नथी. ॥ ७५ ॥

तो मोहणिज्जखयउ तप्पवदुक्खाणुवंधि विलएणं ॥
जहई सुहं सव्वह्न चएणो पुण छुहं चइउं ॥ ७६ ॥

व्या०:– मोहनीयकर्मना क्षयथी जीवने आहार करवानी रति तथा अरति उत्पन्न थायछे, ने मोहनीयकर्मना उदयथी जीवने मानस दुःख उत्पन्न थायछे. ते दुःख केवलीने मटी जायछे; पण असातावेदनीयकर्मना उदयथी केवलीने जे क्षुधा तृषा लागेछे; तेनो ते त्याग करी शके नही. ॥ ७६ ॥

घाईव वेयणीअं इय जइ मोहं विणा ण दुक्कयरं ॥
पयडं पडिरूवाउ ता असाउ विपयडीउ ॥ ७७ ॥

व्या०:– पूर्वपक्षी कहेछे के, वेदनीयकर्म घाती कर्मना जेवुंछे, माटे मोहनीय कर्मविना ते दुःखदायक थाय नही. उक्तंच. “ घादीववेदणीयं; मोहस्सुदएण घाददे जीवं ;” इति कर्मकांडे. तेनुं समाधान आमछेः– जो तमारा कह्या प्रमाणे होय तो असातावेदनीयनी पठे केवलीने बीजी प्रकृतिओ पण मोहनीय कर्मविना पोताना कार्यनी करनारी होवी जोये. अने तमे वेदनीयकर्मनीसाथे घातीकर्मनी तुल्यना केवीरीते करोछो ? घातीआना रसना जेवो तेनो रस होयछे एम सरखापणुं करोछो, के स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षापणुं कल्पोछो; के अथवा दोषनुं हेतुपणुं कहोछो, ? जो कहेशोके घातीआना रसना जेवो रस होवो जोये तो अघातीकर्म प्रकृति घातीना जेवी होवी जोये. केमके, ज्यारे अघातीनी प्रकृति सर्व घातिनी प्रकृतिनी साथे वेईये त्यारे ते सर्व घातिनीप्रकृतिनो विपाक देखाडे, तथा ज्यारे देश घातिनीनो विपाक देखाडे, अने एकली वेईये त्यारे मात्र ते एकलो पोतानोज विपाक देखाडेछे; माटे पक्ष संभवतो नथी. जो कहेशो के, स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षा होवी जोयेछे, तो नामकर्म पण पूर्वे मोहनीयकर्मनी अपेक्षा करतुं छतां जेम केवलीने मोहविना आपणु कार्य करेछे; तेम वेदनीय कर्म पण मोहनीयकर्मनी अपेक्षाविना कार्य करेछेः माटे बीजो पक्ष पण संभवे नही. जो कहेशो के वेदनीयकर्मथी दोष लागेछे, तो ते

पण मनाय नही, केमके, क्षुधा अने तृषानेविषे दोषपणानुं पूर्वेज खंडन कर्युं छे, एवीरीते स्वबुद्धिएकरी सारी पठे विचार करीने जुवो ॥ ७७ ॥

अणुकूलं पडिकूलं च वेयणं लक्कण सुहडुहाण ॥ ण
हु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयन्नावा ॥ ७८ ॥

व्या० औदयिक सुख छता अनुकूलत्व वेदन थायछे, ते रागरूप छे अने औदयिक डुःख छता प्रतिकूलत्व वेदन थायछे, ते द्वेषरूप छे, माटे केवलीने औदयिक सुख तथा डुःख ए बन्ने होता नथी, किंतु क्षायिक सुखज होयछे एम केटलाएक कहेछे, ते योग्य नथी केम के, जेम अप्रमत्तयतीने औदयिक सुख तथा डुःख ए बन्ने होयछे पण राग तथा द्वेष ए बे होता नथी, तेम केवलीने विषे पण जाणी लेवु एमा एकातपणुं न मानवु ॥ ७८ ॥

अध्रुवाण सुहडुहाणं नोगो नोगेण कम्मबंधो य ॥
णहु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयन्नावा ॥ ७ए ॥

व्या० सुख तथा डुःख ए बन्ने पदार्थ शाश्वत नथी, किंतु अशाश्वत छे ते ओनो एवो नियम छे के, अवश्य नोगने दियेछे कह्युछे के, "नाभुक्त क्षीयते कर्म" इत्यादि अने नोगथकी कर्मबंध थायछे ए कारण माटे केवलीनेविषे ते सनवे नही केमके, सुख तथा डुःख ए बन्ने पदार्थो अध्रुव छे एम केटलाएक कहेछे, ते पण योग्य नथी केमके, सुख तथा डुःख अध्रुव छता अप्रमत्तयतीने होयछे, तो पण तेनाथी कर्मबंध थतो नथी, तेम केवलीविषे पण जाणवु जोइये अही पण एकात नथी ॥ ७ए ॥

अन्नाणज तु डुक्क नाणावरणक्कएण खयमेइ ॥
तत्तो सुहमकलकिय केवलनाणा पुहन्नूय ॥ ए० ॥

व्या० -- ज्यारे हरेक पदार्थनो सूक्ष्म अर्थ जाण्यामा आवतो नथी, त्यारे जीवने महाडुःख उत्पन्न थायछे केमके, यथार्थवस्तु जाणवानी इच्छा प्रमाणे जाण्यामा न आवे तो तेथी जीवने आकूलता थायछे तेज डुःख जाणवु ए डुःख वस्तुनो सूक्ष्म अर्थ न जाण्याथकी थायछे, माटे अज्ञानरूपज छे अज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयथी नाश थाय छे, ते डुःखनोज नाश जाणवो केवलीने ज्ञानावरणीयकर्मनो क्षय थई जवाथी डुःखरूप अज्ञाननो लेश पण

रह्यो नथी अने केवल ज्ञाननो उदय थयोछे ते सर्व सुखरूप छे. ते सुख केवलज्ञानथकी पृथक्नूत नथी. केमके, केवल ज्ञान जे छे ते स्वनावना प्रतिघातरहित होवाथी अनाकूलतारूप छे; त्यां आकुलता छेज नही, ज्यारे आकुलता नथी त्यारे तज्जन्य जे दुःख ते क्यांथी होय! अने दुःख नथी त्यारे परम सुखज छे. एवी रीते "जं केवलित्तिनाणं, तं सोक्खं परण संचसोचेव ॥ खेदो तस्स नणीदो, जम्हाघादीखयं जादा" ए प्रवचनसारनां वचन असंनवित छे. तोपण आटलो विशेष छे:-- केवल ज्ञान क्षायिकसुखप्रक्रिया संनवे नही; केमके, क्षायिक सुख तो वेदनीयकर्मनाक्षयथकीज उत्पन्न थायछे. ॥ ए० ॥

णय सुक्खं दुक्खं वा देहगयं इंदिउप्नवं सव्वं ॥ अन्नाए मोह कज्जे पमाणसिद्धेउ संकोए ॥ ए१ ॥

व्या० दिगंबर एम कहेछे:—के शरीरगत सुख दुःख सर्वइंद्रियथकी उत्पन्न थाय छे केम के, छद्मस्थने जे सुख तथा दुःख उत्पन्न थायछे ते एवी रीतेज थायछे. प्रथम परोक्षज्ञानना कारणथी इंद्रियोनी उपर मैत्री प्रवर्त्ते छे, इंद्रियोनी मैत्री थकी विषयोनेविषे तृष्णा उत्पन्न थायछे. जेम अग्निथी तापेलो लोहनो गोलो होयछे; तेम विषयोनी तृष्णाएकरी इंद्रियो तप्त होयछे. ते महाव्याधिस्थानीय छे. अने तृष्णा टालवाने अर्थे विषयनुं सेवन थायछे; ते व्याधीना औषधस्थानीय छे. ते यद्यपि व्यवहार दृष्टिए तो सुख कहेवायछे, तथापि परमार्थताए दुःखरूप छे. उक्तंच. "पप्पाइठ्ठे विसए, फासेहि समास देस हावेण; परिणममाणोअप्पा, सयमेव सुह णयवदिरेहोत्ति." इति प्रवचनसारे. ए कारण माटे देहगत सुख ऐंद्रियक छे. तेमज दुःखपण ऐंद्रियक छे. एवा ऐंद्रियक विषयोना द्वेषथी दुःख ऊपजेछे. माटे देहगत सुख तथा दुःख केवलीनेविषे नथी. तेथीज केवली अतींद्रिय थया छे. उक्तंच. "सोक्खंवा पुण दुक्खं, केवलनाणिस्स नत्थि देहगयं; जम्हा अदिंदिअत्तं, जावं तम्हा डुतंणेयंति." इति प्रवचनसारे. एनुं समाधान करेछे:—देहगत सर्व सुख तथा दुःख इंद्रियाधीन नथी केम के, इंद्रियोनी पराधीनताथी जे अज्ञान तथा मोहथकी सुख तथा दुःख उत्पन्न थायछे, तेओनेज इंद्रियोनी अपेक्षाछे, परंतु अप्रमत्तयतीने जे मानस सुख थायछे, तथा सातादिककर्मना उदयथी क्षुधादिक दोष उत्पन्न थायछे, तेमां इंद्रियोनी अपेक्षानो नियम नथी, जो एम न मानिये ने इंद्रियाधीनज सुख तथा दुःख मानीये तो रतिमोहनीयकर्म तथा अरति

मोहनीयकर्मनुं नामांतरज वेदनीयकर्मना उदयथी असाता वेदनीय कर्म थाय छे एम ठरशे त्यारे वेदनीयकर्म जुदु कहेवाशे नही जो वेदनीयकर्म मोहनीयसाथे मानीये तो सातज कर्म ठरशे आठ कर्मनो संभव थशे नही एम करता सर्व जैन प्रकृतिनो उच्छेद थशे वली देहगत सुख जो केवलीने न मानीये तो तीर्थंकरनाम कर्मनो विपाक केम संभवे! जो एम कहिये के तीर्थंकरनामकर्म जीव विपाकी छे, माटे तेथी जीवगत सुखतो ऊपजेछे. परंतु देहगत क्षुधादिक दुःख संभवे नही तो जेम सुखने पण देहनी अपेक्षा छे, तेम दुःखने पण देहनी अपेक्षा छे, माटे देहग तज मानवा योग्यछे, इत्यादिक सूक्ष्मविचार करी मध्यस्थबुद्धिये न्याय करो ॥९१॥

एत्तोच्चिअ बहु दुःख, खएण तेसिं खुहाइवेयणिय ॥
णिवरस लवुव्व पए अप्पंति जणंति समय विऊ ॥ ९२ ॥

व्या० केवलीने अज्ञानादि जघन्य घणा दुःख मटीगया छे, मात्र एक क्षुधावे दनीय रह्यु छे, ते पण घातीकर्मनी साथे मलेला जेवो पोतानो विपाक देखाडे छे केम के, केवलीने पुण्यप्रकृतिनो विपाक प्रबल छे यत "अस्सायमाइआओ, जाविअ असुहा हवनि पयडीउ, णिबुरस णिबुव्वपणु ए हुंति ता असुह यात स्स" ए आवश्यकगाथामा तीर्थंकरने असाता प्रकृति दुःखदायिनी थती नथी. जेम दूधना घडामा निंबना रसनो बिंदु नाख्याथी कटुता थाय नही, एम श्रीभद्र बाहु स्वामीए कह्यु छे, जेम तेने प्रबल पुण्यपराभव करेछे परंतु तेथी क्षुधादिक ऊप जे नही एम न जाणवु, एवो भाव जणायछे पछी विशेषार्थ तो बहुश्रुत जाणे ॥९२॥

णय त कवलाजोग्गं वेयणिय अगणिमंदयाभावा ॥
णय दड्ढरज्जुकप्प वेअणिअ हदि सुअसिद्ध ॥ ९३ ॥

व्या० – केवलीनुं वेदनीयकर्म कवलाहार योग्य थाय नही एम न कहेवु केमके, केवलीने अग्निमंदपणु नथी आहारपर्याप्तनामकर्मनो उदय अने वे दनीयकर्मनो उदय होवाने लीधे जठराग्नि प्रज्वलित थायछे ए बन्ने कारणो हो वाथी केवलीने वेदनीय कर्म कवलाहारयोग्य थायछे जो कोई कहेशे के, वेदनी य कर्म दोरडीना जेवु छे, तेथी केवलीने व्याबाध करीशके नही तेने आवो ज बाब देवो के, ए वचन प्रघोषनु छे, शास्त्रनु नथी केमके, श्रीसुयगडांगनी टीकामा आम कह्युछे के, "यद्यपि दग्धरज्जुस्थानकल्पमुच्यते वेदनीयस्य तदप्यना

गमिकमयुक्तिसंगतं वागमेह्यत्यंतोदयः सातस्य केवलिन्यन्निधीयते. युक्तिरपि घातिकर्मक्षयाद्ज्ञानादयस्तस्या अनूवन् वेदनीयोद्भवायाःक्षुधः किमायातं येनासौ न नवति न तपोछायातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणो विरोधो नापिज्ञावाज्ञावयोरिव परस्परपरिहारेण लक्षणकचिद्विरोधोस्तीति सातासातयोश्चांतर्मुहूर्त्तपरिवर्त्तमानतया यथा सातोदय एवमसातोदयोपीति अनंतवीर्यत्वं सत्यपि शरीरबलापचयकृद्वेदनीयोद्भवा पीडा च नवत्येव नचाहारग्रहणे किंचित्क्षीयते. केवल महोपुरुषिकामात्रमेवेति पंचाशीतिर्जरद्वस्त्रप्रायाः शेपासयोगिनि. "
एवुं जे गुणस्थानकक्रमारोहमां कह्युंछे, ते तो थोडी स्थितिनी अपेक्षाए जाणवुं; पण रसनी अपेक्षाए न जाणवुं. केमके, सत्तानी प्रकृति तो एवी कहीछे, पण उदयनी प्रकृति एवी कही नथी. उलटो तीर्थंकरनामप्रमुखनो प्रबल उदयज कह्योछे. एम जाणीने "अतएव दग्धरज्जुकल्पेन नवोपग्राहिकल्पेनापि सता केवलिनोपि न मुक्तिमासादयेयुः" ए आवश्यकबृहद्वृत्तिनुं वचन छे, ते जोईने पण व्यामोह करवो नही. तेटला माटेज इहां पण स्थितिनी अपेक्षाएज केवलीने कर्म दोरडीना जेवां कह्यांछे. "अतएव नवोपग्राहित्वाल्पग्राहित्वविशेपणं" कह्यांछे. एवुं अमने प्रतिजासेछे. वली विशेप गीतार्थनेविपे जेम पूर्वापरविरोध न थाय, तेम विचारवुं. केटला एक प्रमेयकमलमार्त्तंडना अभिप्रायने अनुसरीने आवीरीते कहेछे के, अपूर्वकरणगुणगणाए पापप्रकृतिनो रस कस्योछे, माटे केवलीने तथाविध सातोदय थाय नही. मोहसापेक्षप्रकृति थाय. तेनो मोहना घातथी अवश्य घात थायछे. अन्यथा पराघातनामकर्मना उदयथी केवली परहननादिक केम न करे! ए वोलवुं पण डुराग्रहनुं जाणवुं, केमके, जेम रसनो घात थायछे, तेम स्थितिनो पण घात थायछे. माटे जो रस ओछो थतो होय तो स्थिति पण ओछी थवी जोये. जेम बध्यमानकर्मनी स्थिति घटी जायछे तेम बध्यमान कर्मनो रस पण घटी जायछे, एज समाधानछे. तथा पराघातनामकर्मनुं फल केवलीने थायजछे, अने परहनन तो मोहविना थाय नही. केटलाएक एम कहेछे के वेदनीय कर्म केवलीनेविपे हतवीर्य छे, माटे तेनेविपे क्षुधादिक परीसह गयारूप छे. एम जे केवलीनेविपे कहेछे तेणे श्वेतांबरनी प्रक्रिया जाणी नथी, एम जाणवुं. केटलाएक कहेछे के, केवलीनेविपे उदीरणाविना प्रचुर पुद्गल आवता नथी, माटे असातावेदनीयोदय वली दोरडीना जेवोज छे. एबोलवुं पण अविचाररूप छे. केमके, एवीरीते तो सातावेदनीयोदय पण मंद होवो जोये. इत्यादिक

मतनो विचार करतां वास्तविक अर्थ सहज देखाई आवशे. माटे सूक्ष्म दृष्टिवडे ते अर्थनुं शोधन करो ॥ ए३ ॥

णय केवलनाणाई 'छुहाईपडिवधग जिणंदस्स ॥
दाहस्सिव मंताई इय जुत्त तंतजुत्तीए ॥ ए४ ॥

व्या० – जेम दाहना प्रतिबंधक मन्त्रादिक छे, तेम क्षुधादिकनुं प्रतिबंधक केवलज्ञान छे ए वचन पण शास्त्रानुसार नथी केमके, जेम हाथनेविषे मन्त्रेलो अग्नि राख्यो छता हाथ बलतो नथी एवु प्रत्यक्ष दीठामा आवेछे, तेथीज मन्त्रादिक जे छे ते दाहना प्रतिबंधक छे, एवी कल्पना करायछे, तेम जो केवलीनेविषे वेदनीयादिक कर्मोदयरूप कारण छता क्षुधादिक उत्पन्न थता नथी एम जो सम्मतशास्त्रमा कह्यु होय तो एवी कल्पना थई शके, तेविना बोलवु व्यर्थ छे, माटे शास्त्रनी युक्तिए जिमपूर्वे कह्यु छे तेम आदरवु योग्य छे ॥ ए४ ॥

खिज्जइ बल छुहाए णय त जुज्जइ अणंतविरिआणं ॥
इय भुत्तु पिण सुत्तु बलविरियाणं जउ भेउ ॥ एए ॥

व्या० – केवलीने जो भूख लागती होय तो बलनी हाणी थाय ते तो तेनेविषे सभवे नही केमके, वीर्यातरायकर्मना क्षयने लीधे केवली अनतवीर्यवत्त छे ए वचन पण अयोग्य छे केमके, बल अने वीर्यमा भेद छे शरीरनो जे पराक्रम ते बल कहेवायछे, अने अंतरग जे शक्तिविशेष ते वीर्य कहेवायछे तेम छता क्षुधाएकरी शरीरनुं बल घटेछे, एविषे अमे ना कहेता नथी ए योगप्रत्यय छे, योग जे छे ते शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषरूप छे अने नामकर्म तो भगवतनेविषे क्षीण थयु नथी. ॥ एए ॥ अ० पूर्वपक्षी आशका करेछे –

बंधो परपरिणामा सो पुण नाणा ण वीयमोहाण ॥ जो
गकया पिहु किरिया तो तेसि होइ णिव्वीआ ॥ ए६ ॥

व्या० – ग्रहण तथा मोचनादिक परपरिणामथी जीवने कर्मबध थायछे ते परिणाम वीतरागने ज्ञानना प्रतापे थाय नही उक्तच " गेह्णदि णेव ण मुचदि, ण पर परिणमदि केवली भगव, पेच्छदि समतदोसो, जाणदि सव्वं निरवसेस " इति प्रवचनसारे केवलीने तो योगनी क्रिया पण नथी, त्यारे भोजननी शी कथा अर्थात् केवलीनेविषे भोजन पण सभवे नही जो भोजनक्रिया केवलीनेविषे मा

निये तो तेथी योगक्रिया सिद्ध थशे. ते तो केवलीनेविषे संभवे नही. जुवो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया पण केवलीने थती नथी, त्यारे भोजनक्रिया ते केम थाय! जो कहेशो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया केवलीने प्रत्यक्ष विद्यमान छतां ना केम कहेवाय? तो ते क्रिया यद्यपि छे, तथापि प्रयत्नपूर्वक नथी. केमके, प्रयत्न रागद्वेष विना थतुं नथी. तेतो केवलीनेविषे नथी, माटे ए क्रिया स्वभावसिद्ध छे. जेम आकाशनेविषे वादला समयविशेषे स्वभावेज संचार करेछे, रहेछे, गर्जना करेछे, तथा वर्षा करेछे. तेम केवलीने पण स्थाननिषद्या, विहार तथा धर्मोपदेशादिक स्वभावेज थायछे. उक्तंच "ठाणणिसेज्ज विहारो, धम्मुवदेसो अणियदिणा तेसिं; अरिहंताणं काले, मायाचारोव्व इच्छीणं" इति प्रवचनसारे. अतएव केवलीने जे औदयिकी क्रिया छे, तेनेविषे मोह नही होवाने लीधे परद्रव्य परिणामना विरहथी क्षायिकीज जाणवी. यत. "पुन्नफला अरिहंता, तेसिं किरिया पुणोहि औदयिगी; मोहादिहे विरहिया, तम्हा साखाइ गतिमदत्ति" ॥ ए६ ॥

अ० एवी पूर्वपक्षीनी आशंकानुं उत्तर आपेछेः—

जोगं विणावि किरिआ भवजाइ कह ण तस्सोवि ॥
तुल्लं किरिवेचित्तं तह तुल्ल मवुद्धिपुवत्तं ॥ ए७ ॥

व्या०ः— केवलीनेविषे स्थाननिषद्यादिक्रिया जो स्वभावेज थती होय तो प्रयत्न निरर्थक थाय. एम तो कांइ दीगमां आवतुं नथी. प्रयत्न सार्थकज होयछे. केमके, प्रयत्नविना चेष्टा थतीज नथी. माटे केवलीनेविषे प्रयत्ननो संभव थायछे, मात्र स्वाभाविकतानोज उपयोग करवो नही. जो कहेशो के, केवलीनेविषे प्रयत्नजन्य चेष्टा नथी किंतु तेथी विलक्षण छे. अर्थात् केवलीनी चेष्टा प्रयत्नविनाज थायछे. तो जेम चेष्टा विलक्षण छे, तेमज प्रयत्न पण शासारू विलक्षण न मानिये? अने जेम विलक्षण चेष्टा मोहविना थायछे, तेम विलक्षण प्रयत्न पण मोह विना थवुं जोये. जो कहेशो के, केवलीनी चेष्टा मनःपूर्वक नथी, तो ते प्रमाणे प्रयत्न पण मनःपूर्वक नथी एम शासारू न मानो एवीरीते सर्व ठेकाणे सरखुं समाधान जाणी लेवुं. ॥ ए७ ॥

एवं सहाववाणी कह जुत्ता जेणि तेसि वयजोगो ॥
हेऊ दव सुअस्सा वउअणं कम्मखवणाय ॥ ए८ ॥

व्या० –पूर्वे कहेला हेतुए करीज दिगबरो कहेछे के, केवलीने राग नथी होतो तेथी तेनेविषे वचनव्यापार संजवे नही तेम छता जे वचनव्यापार थायछे ते स्वजावेज मस्तकमाथी ध्वनि नीकले छे एम जाणवो, पण अक्षररूप वाणी सजवे नही ए शंका पण अयुक्त छे केमके, केवलीने केवलस्थनी पूर्वे जेवीरीते वचन योग हतो, तेमज केवलज्ञान थया पछी पण जाणवो अने केवलीने रागविना पण क्रियानु सामर्थ्य छता अक्षररूप वाणी केम न सजवे ? कोई आशका करेके, केवली कृतकृत्य छे त्यारे ते उपदेश शासारू करेछे ? तेनुं समाधान ए के तीर्थकरनामकर्मनो विपाक एवीरीतेज जोगवायछे तेथीज केवली उपदेश करेछे ए केवलीनो स्वजावज छे जो कहेशो के, केवली पदेकरी एकाते कृतकृत्यछे ? तो तेम पण न समजवु. यत पोगतेण कयछो , जेणे दिन्न जिणदणामसे, तदवफ फलं तस्स य खवणो वाउ अमवेजउ , इति विशेषावश्यके जो कहेशो के, परोपकारनी इच्छाविना उपदेश देवो सजवे नही, अने इछा तेज राग कहेवायछे अने रागतो वीतरागनेविषे सजवे नही. एवो व्यामोह पण न करवो केमके एवा इच्छा ते कृपा कहेवाय छे , पण तेने राग न समजवु ॥ ए८ ॥

णय वयणपयत्तेण खेअस्सोदीरण जिणदस्स ॥ इह
रा सुहस्स पावइ त णय वा असुपयमीए ॥ एए ॥

व्या० – जो कहेशो के, वचन वोलवाना प्रयत्नेकरी जीवने खेद थयानी उदीरणा थायछे तो ते सजवे नही केमके, मनुष्यना आउखामा साताअसाता वेदनीयकर्मनी उदीरणा प्रमादपरवशेकरीनेज होयछे, प्रमादविना बीजा कारणो छता उदीरणा थाय नही जो एम नकहिये अने बीजा कारणोथी उदीरणा थाय छे एम कहिये , तो काययोगनेविषे सातावेदनीयनी उदीरणा, पण तेने केम थाय ? केमके, उदीरणानुं तो आवु लक्षण कह्युछे – जे स्थितिना दलिक, उदयावलिकाथी बाहेर वर्त्तेछे, तेने कषायसहित योगनामना वीर्येकरी आकर्षण करीने ते उदयावलिकानेविषे जे प्रक्षेपन करवु, ते उदीरणा कहेवायछे ॥ एए ॥

णय त विरिअविरहिय जायइ अपवत्तणाव्व करणति ॥
केवलसहावपक्ख सुगयस्स मयमणुमय जाण ॥ १०० ॥

व्या० – जो कहेशो के ते उदीरणा वीर्यविना थायछे, तो ते सजवे नही केमके, उदीरणा जेछे ते अपवर्त्तनानी परीकरण विशेषछे एटले स्थानातर करावया

नुं कारण छे; अने कारण जेछे ते प्रयत्नरूप छे, एम नमानतां जो केवल स्वभाव वाद मानिये तो बोद्धनुं मत अनुमत थाय, माटे प्रयत्न पण अंगीकार करवुंजोये.

खेऊ णाईरिज्जइ केवलजोगेहि तो विणु पमायं ॥ उद्ध
दयहेउपभवो दीसइ पुण सो वि तत्तुल्लो ॥ १०१ ॥

व्या०:- केवली योग प्रमादविना खेद उदीरतो नथी, परंतु उदयना हेतु ते हां उदीरणासरखा दीठामां आवेछे, तेथी खेद जेछे ते उदीरितना जेवो जणायछे पण परमार्थताए ते उदीरणा कहेवाय नही ॥ १०१ ॥

भुत्तीइ सुहपत्ती तं पुण जोगाउदीरियं हुज्जा ॥ एसा
परजुत्तिलया एएण पकंपिआ णेआ ॥ १०२ ॥

व्या०:- भुक्ति कहेतां जे कवलाहारछे. तेणेकरी केवलीने जे सुख उत्पन्न था यछे; ते योगथी उदीर्युं, अने केवलीने तो योगनी उदीरणा संभवे नही. केमके, तेने वेदनीयनी उदीरणा होत्ती नथी माटे केवलीने कवलाहार संभवे नही. ए वी जे परयुक्तिरूप वेली ते आवीरीते कपाई गईछे. के प्रमादविना उदीरणा था यज नही. एम निश्चये जाणवुं ॥ १०२ ॥

णय दुप्पणिहाणं पिहु, केवलजोगाण होइ भुत्तीए ॥
तं रागदोसकयं, ते पुण तेसिं विलीणत्ति ॥ १०३ ॥
इय सत्तमाइ फासग, कोडिन्नाईण कवलभोईए ॥ णेवय
दुप्पणिहाणं, सुप्पणिहाणस्स माहप्पा ॥ १०४ ॥

व्या०:- आहारेकरी केवलीना योगने दुःप्रणिधान थाय नही. केमके, योगदुःप्र णिधान ते रागद्वेषवडे थायछे. ते रागद्वेष तो केवलीनेविषे नथी. अतएव सप्त मादि गुणठाणे चडेला जे कोडिन्नादिमहर्षि, तेओने आहार करतां पण दुःप्रणिधा न योग नथी थतो. विधिएकरि आहार करतां तेओने आत्मलीनताना माहात्म्यथी प्रमाद थतो नथी. किंतु अप्रमादज रहेछे. सातमा गुणठाणानेविषे नवा व्यापारनो आरंभ थतो नथी. पण पूर्वे आरंभेला व्यापारनी निष्ठा होयछे. जेम देवताना आउखाना बंधनो आरंभ थतो नथी. पण छठे गुणठाणे बांधवा मांड्यो जे देव तानो आउखो, ते बांधता थका पण सातमे गुणठाणे अवायछे. माटे नवा आरं

नना अनिप्रायेज "इत्येतस्मिन् गुणस्थानानि संख्यावश्यानि षट्" एवु गुणस्थान क्रमारोहनेविषे कह्युछे ते सनवितछे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हेऊ पमत्तयाए आहारकहव णेव आहारो ॥ होऊ
जइ णइआरो असहती एव तेणावि ॥ १०५ ॥

व्या० – आहारनी कथा करता साधु प्रमत्त थायछे त्यारे आहार करतां केम प्रमत्त न थाय ? एवु प्रनावे कहेछे ते अयुक्त जाणवु केमके, आहारकथा प्रमादनु कारण नथी तेम छता जो बन्ने सरखा कहिये तो जेम आहारकथा करता अतिचार थायछे तेम आहार करतां पण यतीने अतिचार थवो जोये॥१०५॥

णिद्दाविण एण हेउ भुत्ती सहयारमेत्त ओत्तीए ॥ जेण
सुए णिद्दिठा पयडी सा दसणावरणी ॥ १०६ ॥

व्या० – जो केवली आहार करतो होय तो तेने निद्रा होवी जोइये. एम जे कहेछे ते पण अप्रमाण जाणवु केमके, निद्रानु कारण आहार नथी आहार तो मात्र निद्रानो सहचारी छे सिद्धांतोनेविषे निद्राने दर्शनावरणीयकर्मनी प्रकृति कहीछे केमके, आहार करता पण केवलीने दर्शनावरणीयकर्मनो अनाव छे माटे केवलीने निद्रा होती नथी. ॥ १०६ ॥

णय तस्स थोवयाए जेण अणुस्सा तउ तउ डुठो ॥
णिद्दव डुद्दयाजं णिद्दाई पसंगउ तस्स ॥ १०७ ॥

व्या० – शास्त्रोमां कह्यु छे के थोडो आहार करवो, माटे आहार इष्ट छे, एम कहेवु पण अयोग्य छे, केमके, घणो आहार करवाथी दर्शनावरणीयकर्मना विपाकनो उदय थायछे एटला माटे घणो आहार करवो इष्ट कह्योछे पण स्वनावे आहार इष्ट नथी ॥ १०७ ॥

आहारो ण पमाउ नन्नइ अववाडत्तिकाऊण ॥
अववाया वोलीणा वीयनयाणं जिणाण जउ ॥१०८॥

व्या० – आहार अपवादमार्गने प्रतिबंध करनारो होवाथी प्रमादरूप छे, एम नकहेवु केमके, वीतनय तीर्थंकरने कोई अपवाद नथी अपवाद तो जे उत्सर्गमार्ग करी शके नही, अने चारित्रना त्यागथी बीहे, तेने छे जिनने तो ते नहोय ए केवल पोतानी कल्पना नथी, केमके, धर्मबिंडुनेविषे निरपेक्षयतिधर्मना अधिकारे अपवादत्यागसूत्र कह्युछे, ए गीतार्थे यथा सूत्र विचारवो ॥१०८॥

पत्तं ममत्तहेऊ जुत्तं वोत्तुं पुणो ण देहुव ॥ इहराणी
ममन्नावो जिणाण कह पाणिपत्ताणं ॥ १०ए ॥

व्या०ः– आहार करनारने पात्र राखवां जोइये, ते पात्रतो ममत्वनुं कारण छे. एम कहेवुं नही. केमके, पात्र तो शरीरनी पठे धर्मसाधन छे. जो एम न मानिये ने ममत्वनुं कारण मानिये तो तीर्थंकरप्रमुख जे पाणिपात्री छे तेओनेविषे निर्ममत्वपणुं केम संजवे? जो कहेशो के, बाह्य पात्र ममत्वनुं कारण छे, तो ते पण असमीचीन छे. केमके, जेटलुं पुजल इव्य छे ते सर्व आत्माथी बाह्य छे, माटे शुं ते ममत्वनुं कारण थाय? ॥ १०ए ॥

आणं तवोवघाउ आहारेणंति ते मई मिछा ॥
आणं सेलेसीए तवो अ णिविसस्स तेसिंति ॥ ११० ॥

व्या०ः– जो कहेशो के, आहारेकरी केवलीना ध्यान तथा तपनो व्याघात थाय, माटे आहार लेवो अयोग्य छे. तो एवुं जे तारी मतिमां जासे छे ते पण मिथ्या छे. केमके, ध्यान तो शैलेशीयें छे. पण पूर्वें उत्कर्षताथी देशेऊणी पूर्वकोडी सुधी नथी. अने विशेषेकरी केवलीने कोई तप पण नथी. ठाणांगनेविषे केवलीने जे अणुत्तर तप कह्युंछे, ते पण शैलेश्यावस्थाजाव ध्यानरूप कह्युं छे. अने सोमिलना प्रश्नना अधिकारे श्रीजगवतीमां "किं जंते जत्ता सोमिला, जंमे तव णियम संयम सज्झाय सज्झाणवस्सयमाईसु जोएसु जयणा" एवुं कह्युं छे तेहां पण तपनुं फल छे. तेमाटे उपचारें तप कह्युं छे. ॥ ११० ॥

उरालियदेहस्स य ठिई अवुढ्ढीय णो विणाहारं ॥
तेणं पिअ केवलिणो कवलाहारित्तणं जुत्तं ॥ १११ ॥

व्या०ः– औदारिकशरीरनी स्थिति, तथा तेनी वृद्धि आहारविना थती नथी माटे केवलीने कवलाहार युक्त छे. ॥ १११ ॥

परमोरालिअदेहो केवलिणं नणु हवेज्ज मोहखए ॥
रुहिराइधाउरहिउ तेअमउ अप्पपडलुवो ॥ ११२ ॥

व्याः–पूर्वपक्षी शंका करेछे के, मोहनीयकर्मना क्षयथी केवलीने परमौदारिक शरीर थायछे. ते रुधिरादिक सप्तधातुरहित परम पवित्र होयछे. जोडल

ना पडलनी परे केवल तेजमय होयछे एवा शरीरने कवलाहारनीअपेक्षा नथी॥ ११२

अ० उपली आशकानु समाधान करेछे.—

संघयणणामपगइउ केवलिदेहस्स धाउरहियत्ते ॥
पोग्गलविवागिणी कह अतारिसे पोग्गले होऊ॥ ११३ ॥

व्या० — केवलीनुं शरीर जो सप्तधातुरहित कहिये तो तेने वज्ररूषभनाराच संघयण नामकर्म प्रकृतिनो उदय केम थाय केमके, ते प्रकृति तो पुद्गल विपाकनी छे. ते अस्थि पुद्गलने विषेज विपाक देखाडे छे जो दृढ संस्थानमात्र पुद्गलनेविषे ते विपाकने देखाडत्ती होय तो देवताने पण वज्ररूषभनाराच संघयण कहेवु जोये. ११३

मोहविलएण नाण णामुदयाचेव तस्स पारम्मं ॥
तो वण्णाइविसेसो तं होऊण धाउरहियत्तं ॥ ११४ ॥

व्या० — मोहनीयकर्मना विलयथी केवलीने केवल ज्ञान उपजे छे. पण शरीरनेविषे कांई विशेषपणुं थतु नथी शरीरनामकर्मना उदयथीज शरीरनेविषे विशेषता थायछे माटे केवलीना शरीरनेविषे पुण्यप्रकृतिना माहात्म्यथी वर्णगति सारसत्वादिकनी विशेषता युक्तज छे परतु धातुरहितपणु थाय नही अतएव शास्त्रोनेविषे कह्युछे के, " संघयणरूव संठा, ण वन्नगइ सारसत्त ऊसासा, एमा इणुत्तराइ, हवंति णामोदया तस्स " एम छता जे केवलीना शरीरनेविषे अस्थ्यादि पुद्गल पलटीने अन्यविषेज पुद्गल उत्पन्न थायछे एवी कल्पना करवी ते दृष्टिविपरीत होवाथी अयोग्य छे केमके, पुण्यप्रकृतिनो उदय थयाथी तथाविध लब्धिवडे शरीरवर्णादिकविशेष दृढ होयछे एम जाणवु. ॥ ११४ ॥

ओरालिपत्तणेण तह परमोरालिअवि केवलिणो ॥
कवलाहारावेक्ख ठिइ च वुड्ढि च पाउणई ॥ ११५ ॥

व्या० — तीर्थकरनुं शरीर जो परमौदारिक होय तो पण तेने कवलाहार सापेक्षज स्थिति तथा वृद्धिनो अनुभव थाय केमके सामान्यपणे औदारिकशरीरनेविषे एवो नियम ग्रह्योछे के, आहारविना शरीरनी स्थिति होयज नही ॥ ११५

णय मइनाणपसत्ती, कवलाहारेण होइ केवलिणो ॥
पुप्फाईअ विसय, अस्स हयाणाइ गिहिज्जा ॥ ११६ ॥

व्या — जो केवली आहार करे तो तेना आस्वादथी रसनानुं मतिज्ञान थाय

नही; जो एम मानिये तो समवरणभूमिकानेविषे गूढणप्रमाण फूल पाथरेलां होवाथी, तेना परिमलथी घ्राणेंद्रियनुं मतिज्ञान केम न थाय? आस्वाद विना तृप्ति थाय नही, एम पण न कहेवुं. केमके, रतिरूप तृप्ति थती न होय तो ते अमारे पण इष्ट छे. परंतु क्षुधानाशरूप तृप्ति तो आहारविना थायज नही.॥११६॥

इरिआ वहिआ किरिआ, कवलाहारेण जइ ण केवलिणो॥
गमणाइणा विनहवे, सा किं तुह पाण पिहियत्ति॥११७॥

व्या० जो कहेशो के, केवलीने कवलाहार करतां इरिआवहिकी क्रिया लागेछे. तो गमनागमनादिक क्रियाए करी केवलीने इरिआवहिआ क्रिया केम न लागे? माटे जेम केवलीने गमनादिक क्रिया छे, तेम भोजन क्रिया पण जाणवी, एवुं प्रथमज कह्युं छे.॥११७॥

णय परुवयारहाणी तेण सया जोग्गसमयणियएण॥
णय वाहिसमुप्पत्ती हिअमिअआहारगहणाउ॥११८॥

व्या०:-- केवली जो कवलाहार करे तो धर्मोपदेशमां अंतराय पडे, तेथी परोपकारनी हानि थाय, एम कहेवु न जोइये. केमके, ते तृतीयप्रहरनेविषे मुहूर्त्त मात्र नियतसमयेज आहार करेछे. तेथी बाकीनो सर्व काल उपदेशने अर्थे रहे छे. जो कहेशो के, केवली आहार करेतो शूलादिक व्याधि उत्पन्न थवानो संभव थाय, तो ए कल्पना पण व्यर्थ छे. केमके, ते सारी रीते जाणीने अभिष्वंगपरिणामरहित हित मिताहारज करे छे माटे तेनेविषे शूलादिकनो संभव थाय नही. अने एथी तेनेविषे रागनी कल्पना पण थाय नही.॥११८॥

ण पुरीसाइ डुगंछिय मेसिं णिहहू मोहबीआणं॥
अइसय उय परेसिं विवित्तदेसेविहाणाय॥११९॥

व्या०:- जो कहेशो के, केवली आहार करे तो तेथी वडिनीत प्रमुख करवुं जोइये, तेतो डुगंछानुं कारण छे; एम पण कहेवुं नही. केमके, डुगंछानुं मूल मोहनीय कर्म छे. तेनुं तो प्रथमज उन्मूलन करेलुं छे. अने तीर्थंकरनो एवो अतिशय छे के, तेनां आहार तथा निहारनी विधिने कोई देखी शके नही. ए कारण माटे बीजाने पण डुगंछा उत्पन्न थाय नही. वली सामान्य केवली एकांते निहार करेछे तेथी पण बीजा कोईने डुगंछा उत्पन्न थाय नही. पूर्वपक्षी कहेछे के, तीर्थंकरने पूर्वे पण निहार होय नही तो पछी ते केम संभवे? यतः "तिछय

रा तप्पियरो, हलधर चक्कीय वासुदेवाय ; मणुआण नोगनूमी, आहारो एह्नि णी हारो." ए तो कोई अपूर्व मतछे केमके, शास्त्रोनेविषे एवो कोई अतिशय कह्यो नथी, तेम एवी उदराग्नि पण नथी के जेथी निहारनो अनाव थाय तेम छतां जो ए वातसाची मानिये तो नस्मकव्याधिनी पछे ते दोषरूप थशे खल रसीकृत आहार मात्र जो नस्म थाय तो पूर्वे केम न थाय? माटे ते केवल आप रुचिमात्र छे ॥ ११९ ॥

जो पुण नुत्तिअनावो केवलिणो अइसउत्ति जंपेई ॥
सो वायामित्तेण साहेऊ सुह खउ पुप्फं ॥ १२० ॥

व्या० – जो कहेशो के, केवलीने जे नुक्तिनो अनाव छे ते अतिशय जाणवो तो एम कह्याथी तमे पोते पोताना वचने अछतीवस्तुने छती करो छो त्यारे आकाशना पुष्प पण छे एम कहेशो तो कोण ना कहेनारो छे! पण ए वचनो सप्रमाण न कहेवाय ॥ १२० ॥

एव कवलाहारो जुत्तीइ समहिउ जिणवराण ॥
पुव्वायरिएहि जहा तहेव लेसेण उवइहो ॥ १२१ ॥

व्या० - एम जे प्रकारे पूर्वाचार्य केवलीने विषे कवलाहारनी समर्थना करी छे ते प्रकारेज आ ठेकाणे अमे लेशमात्र कह्युछे ॥ १२१ ॥

तेण केवलनाणी कयकिच्चो चेव कवलनोईण ॥
नाणाईण गुणाण पडिघायाभावउ सिद्धो ॥ १२२ ॥

व्या० – माटे केवली कवलाहार करता छतां पण कृतकृत्यज छे केमके, ज्ञान दर्शन चारित्र तथा वीर्यगुणनो स्वनावपराहृत्ति एटले पाछल हटवारूप प्रतिघात नथी ज्ञानादिक गुण सपूर्ण सिद्धज होयछे माटे ते सर्वथा कृतकृत्य तो सिद्धज छे एम कहेवु जोइये तथापि ज्ञानादिगुणचतुष्टयनी विशुद्धताने लीधे केवलीने देश कृतकृत्य कहेतां पण काई विरोध आवे नही ॥ १२२ ॥

नाणस्स विसुद्धीए अप्पा एगतउ ण ससुद्धो ॥
जम्हा नाण अप्पा अप्पा नाण तअण्ण वा ॥ १२३ ॥

व्या०.-- जो कहेशो के, आत्मा ज्ञानरूप छे. तेथी ज्ञाननी एकात शुद्धताने लीधे आत्मा पण एकात शुद्ध थाय छे एम न कहेवु केमके, ज्ञान ते आत्म

रूपज होयछे. केमके, आत्माविना ज्ञाननुं रहेवुं नथी. अने आत्मा जे छे ते ज्ञानस्वरूप पण होयछे. ने तदन्यस्वरूप पण होयछे; ए हेतुथी केवली ज्ञानादिगुणने स्वभावेकरी शुद्ध पण छे. अने अव्याबाधादिगुणना स्वभावे अशुद्ध पण छे. एम जाणवुं. ॥ १२३ ॥

एवं परमप्पत्तं नाणाइङ्गवारगं मुणेअव्वं ॥
सव्वह परमप्पत्तं सिद्धाणं चेव संसिद्धं ॥ १२४ ॥

व्या०:--एवी रीते केवलीने परमात्मापणुं ज्ञानादिकगुणेकरी देशथीज जाणवुं; सर्वथा परमात्मा ते सिद्धज कहेवाय. माटे आठ दोषना विरहथी आठ गुण तेनेज प्रगट थायछे. आत्मा त्रण प्रकारनो होयछे. एक बाह्यात्मा, बीजो अंतरात्मा, अने त्रीजो परमात्मा, आत्मबुद्धियकी जे कायादिकनुं ग्रहण थायछे, ते बाह्यात्मा कहिये. शरीरादिकनो अधिष्ठायक जे चेतन ते अंतरात्मा कहिये; अने जे सर्व उपाधिरहित शुद्ध आनंदमय होय ते परमात्मा कहिये. यतः "आत्मधिया समुपात्तकायादिः कीर्त्यते अत्र बहिरात्मा कायादेशमधिष्ठायको भवत्यंतरात्मा तु चिद्रूपानंदमयो निःशेषोपाधिवर्जितः शुद्धः अप्रत्यक्षोनंतगुणः परमात्माकीर्त्तितस्तदज्ञैरिति योगशास्त्रे." केटलाएक एम कहेछे के, जे मिथ्यात्वादि परिणामवान होय ते बाह्यात्मा कहिये; जे सम्यक्त्वादि परिणामवान होय ते अंतरात्मा कहिये; अने जे केवल ज्ञाननिधान होय ते परमात्मा कहिये. मिथ्यात्वादि त्रण गुणठाणा सुधी बाह्यात्मा कहेवायछे; अविरतिसम्यग्दृष्टिनामना चोथा गुणठाणाथी लईने क्षीणमोहनामना बारमा गुणठाणासुधी अंतरात्मा कहेवायछे; माटे मिथ्यादृष्टिने पण निश्चयथी सम्यग्दर्शन तथा केवल ज्ञान छे. ते शक्तिएकरी अंतरात्मता तथा परमात्मताने पामेछे. केमके, अविरतिसम्यग्दृष्ट्यादिकने पण निश्चयथी केवल ज्ञान छे. अने बाह्यात्मा ते भूतपूर्वनये करी कहेवायछे. केमके. तेने मिथ्यादर्शन पर्याय पूर्वे थयाछे. जेम मधुथी भरेला घटमांथी मधु कहाडी लीधा पछी पण मधुघट कहेवायछे. ते न्याय अहिं पण जाणवो. व्यक्ते परमात्माते बाह्यात्मा तथा अंतरात्मा पूर्वभूतनयथी कहेवायछे. केमके, तेने मिथ्यादर्शन तथा सम्यक्दृष्ट्यादि ए बन्ने पर्याय पूर्वे थयाछे. ॥ १२४

तस्स य सहावसिद्धा, किरिआ गुण करण जोग अहिगिव ॥
कम्मुगुणी आविहवे, जुंजणकरणं तु अहिगिच्च ॥ १२५ ॥

व्या० – ते केवलीने गुणकरण आश्री स्वनावसिद्ध क्रिया होयछे तेने केवली ज्ञानादि गुणपर्याय उपजता आत्माथी अन्यकर्मादिकारणनी अपेक्षा नथी कालस्वनावादिके तेना कारणपणे सर्व आत्मातरजूत छे मनोवाक्कायरूप पुंजना कारण आश्रीने केवलीने कर्मोपनीतक्रिया पण थायछे माटे ते अंशेकरी केवल स्वनावसिद्ध क्रियाज नथी ॥ १२५ ॥

अह सो सेलेसीए, आणानलदड्ढसयलकम्ममलो ॥
कणगंव सवह च्चिय, लद्धसहावो हवइ सिद्धो ॥ १२६ ॥

व्या० – हवे केवली जे छे ते, शैलेसीअवस्थानेविषे शुक्लध्यानरूप अग्निएकरी सर्वकर्मरूपमलने दग्ध करीने अग्निएकरी निर्मल किधेला सुवर्णनी पठे सर्वथा लब्धस्वनाव थईने सिद्धत्वपर्यायनो नजनार थायछे ॥ १२६ ॥

तस्स वर नाण दंसण, वर सुह सम्मत्त चरण निच्चठिई ॥
अवगाहणा अणता, मुत्ताण थई अविरियं च ॥ १२७ ॥

व्या० – ज्ञानावरणीयादिक आठकर्मथी जीवने अज्ञानादिक दोष होयछे ते नाश पाम्यापछी सिद्धने आ आठ गुण प्राप्त थायछे – पहेलो ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयथी अनत केवलज्ञान उत्पन्न थायछे, बीजो दर्शनावरणीयकर्मना क्षयथी अनत केवलदर्शन उत्पन्न थायछे, त्रीजो वेदनीयकर्मना क्षयथी क्षायिक सम्यक्त उत्पन्न थायछे चोथो चारित्रमोहनीयकर्मना क्षयथी क्षायिक चारित्र उत्पन्न थायछे, पाचमो आयु कर्मना क्षयथी अक्षय स्थिति उत्पन्न थायछे; छठो नामकर्म तथा गोत्रकर्म ए बन्नेनो क्षय थयाथी एक सिद्धावगाहक स्थाननेविषे क्षीरशर्करानी पठे अनत सिद्धावगाहना उत्पन्न थायछे, अहीं मोहनीयकर्मना क्षयथी बे गुण उत्पन्न थायछे एम कह्यु, तथा नाम अने गोत्र ए बे कर्मना क्षयथी एकज गुण उत्पन्न थायछे एम कह्युछे, ए ठेकाणे स्वपरिनापाज शरण छे ॥१२७॥

थिरयावग्गहणाउ, पत्तेअ नामगोत्तकम्मखए ॥
चरणंविअ मोहखए, इअ अठ गुणत्ति विति परे ॥ १२८ ॥

व्या० – केटलाएक मोहनीयकर्मना क्षयथी एकज चारित्रगुणमानेछे, तथा नामकर्मना क्षयथी आत्मप्रदेशस्थिरतारूप गुण कहेछे, तेमज गोत्रकर्मना

क्षयथी अवगाहना गुण मानेछे. ॥ १२८ ॥ अ० जे आचार्य सिद्धने चारित्र गुण नथी मानता, ते सूत्रनुं अवलंबन करीने पूर्व पक्ष करेछेः—

नणु सिद्धंते सिद्धो, णो चारित्ती अ णो अचारित्ती ॥
भणिउ ववहारणया, णिछउ होई चारित्ती ॥ १२९ ॥

व्या०ः— "सिद्धे णो चारित्ती णो अचारित्ती" ए सूत्रनेविषे सिद्धने चारित्री नो अचारित्री कह्योछे, एवुं वचन तो चारित्र न होय तो संभवे, जेम भव्यत्व नही होवाथी भव्यत्वने ठेकाणे अभव्यत्व कहेवायछे, तेम छतां सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना केम कीधीछे? ॥१२९॥ अ० कोईएक ए सूत्रनुं समाधान करेछेः—

नणु इह देसणिसेहे, णो सद्दो तेण तस्स देसस्स ॥
अह णिसेहो किरिया, रूवस्स ण सत्तिरूवस्स ॥ १३० ॥

व्या०ः— "णो चारित्री णो अचारित्री" ए वाक्यमांना "नो" शब्दथी देशनो निषेध थायछे. एटले चारित्र बे प्रकारनुं होय छे, एक क्रियारूप ने बीजो परिणामरूप छे. तेओमानां क्रियारूपचारित्रनो सिद्धनेविषे निषेध छे; परंतु शक्तिरूप चारित्रनो निषेध नथी; एम जाणवुं. ॥ १३० ॥ अ० केवलीनेविषे क्रियारूप चारित्र छे, परंतु शक्तिरूप चारित्र नथी एम कहेवुं नही ते कहेछेः—

जइ किरियारूवं चिअ, चारित्तं णेव णायपरिणामो ॥
तो किरियारूवं चिअ, सम्मत्तं णायपरिणामो ॥ १३१ ॥

व्या०ः— जे प्रेक्षोत्प्रेक्षादिक्रियाछे, ते चारित्र कहिये; अने तदुपयोगरूप चारित्र ते भावचारित्र कहिये, भावचारित्र ज्ञानरूपज छे. त्यारे निशंकताद्याचाररूप जे क्रिया; तेज सम्यक्त कहिये, अने श्रद्धानपरिणाम ते ज्ञान कहिये, एम निर्णय करतां ज्ञान तथा दर्शननो भेद थाय नही, ज्यारे आत्मगुणरूप सम्यक्त छे त्यारे चारित्र पण आत्मगुणरूप केम न कहिये! अतएव मरुदेवादिकने बाह्याचा विना पण चारित्र संभवेछे. ॥१३१॥ अ० "इह भविए भंते, चरित्ते परभविए चरित्ते तदुभयभविए चरित्ते गोयमा, इह भविए चरित्ते; णो परभविए चरित्ते णो तदुभ ए चरित्ते" एवां भगवती सूत्रनां वचनोए करी चारित्र भवाननुगामी कह्युंछे. वपे चारित्र संभवे नही, एम जे कहेछे, तेनुं समाधान आवीरीते छेः—

जं पुण तं इह नविअ, तं किरियारूपमेव णेयव ॥
अहवा नवो ण मुक्खो, णो तम्मि नवे इअं अहवा ॥ १३२ ॥

व्या'– जे चारित्र इह नविक कह्युछे, ते क्रियारूप जाणवु, अने बीजुं जे मोहनीयकर्मना क्षयथी उत्पन्न थायछे ते चारित्र मोक्षनेविषे होयछे, तेनी अमे पण ना कहेता नथी, अथवा मोक्षना नवमा विवक्षा करी नथी माटे इह नविक चारित्र कह्युछे, अथवा मोक्षनेविषे चारित्र तो छे, परतु कर्मनिर्जरारूप प्रयोजन तिहा नथी, तेथीज इह नविक कह्युछे ॥ १३२ ॥

एय मोक्खसुहे लद्धे, तयणुठाणस्स हंदि वेफल्लं ॥
तक्कारणस्स इहरा, नाणस्स वि होइ वेफल्ल ॥ १३३ ॥

व्या० चारित्रनुं फल मोक्ष छे, ते पाम्या पछी चारित्र रहेतु नथी एम कहेवु नही अन्यथा ज्ञाननुं फल विरति छे, ते पाम्या पछी चारित्र रहेतु नथी, एम कहेवु नही, अन्यथा ज्ञाननुं फल विरति छे, ते पाम्या पछी ज्ञानपण संनवे नही. ज्यारे सिद्धने ज्ञाननु फल निश्चयथी लोकालोकप्रकाशरूप छे, त्यारे चारित्रनुं फल पण निश्चयथी शुद्धात्मस्वनावानुनवलक्षण शासारू न होय ॥ १३३ ॥

णेव पइण्णानगो, अहियावहि पूरणमि चरणस्स ॥
सावा किरियारूवे, सुअकरणे ज करेमित्ति ॥ १३४ ॥

व्या० सिद्धने जो चारित्र मानिये तो यावज्जीवतानी प्रतिज्ञानो नग थशे एम पण न कहेवु केमके, ओछा काले प्रतिज्ञानो नग थाय छे, पण अधिक काले प्रतिज्ञानो नग न थाय अथवा ते प्रतिज्ञा क्रियारूपचारित्रनीयज जाणवी केमके, " करेमि नते " एसूत्र श्रुतकरणार्थे कह्युछे ते श्रुतकरण युजनाकरणरूप चारित्रज अवलबीने प्रवर्त्ते छे गुणरूप चारित्र ते आत्मस्वरूप छे मोहविरहथी तेनो आविर्नाव मात्र थायछे ॥ १३४ ॥

अह चरण मनुठाण, त ण सरीर विणत्ति जइ बुद्धी ॥
तेण विणा नाणाई, ता तस्स हेउअ पत्त ॥ १३५ ॥

व्या० जो चारित्र अनुष्टानरूपछे, ते शरीरविना सिद्धनेविषे संनवे नही एम जो कहिये तो शरीरविना ज्ञानादिक पण सिद्धनेविषे केम संनवे ? पूर्वावस्थामां शरीरथी उत्पन्न थएला ज्ञानादिकना नाशना कारणविना सिद्धने ध्रुव कहियेंछे ॥१३५॥

किरिया फलउदयिगी, खइअं चरणं वि दोह मह नेउ॥
साेतण बज्झचरणं, बज्झंतरियं तु परिणामा ॥ १३६ ॥

व्या० बीजूं क्रिया छे ते शरीरनामकर्मना उदयथी छे; शरीरविना क्रिया था य नही. शरीरवमे चारित्ररूप क्रिया थायछे ते बाह्यचारित्र कहेवायछे. एवा बाह्यचारित्ररूप शुद्ध जैनसमाचारीरूप क्रियानुं सेवन करीने अनव्य जीव पण न वमां ग्रैवयकसुधी जायछे, एवो बाह्य चारित्रनो महिमाछे. अने केवलीने तो क्षा यिक चारित्र कह्युंछे. माटे ते बाह्यचारित्र कहेवाय नही; किंतु ते शुद्ध आत्मप रिणामरूप होवाथी ए अंतरंग चारित्रज कहेवाय ॥ १३६ ॥

आया खलु सामाइय, आया सामाइअस्स अठोत्ति ॥
तेणेव इमं सुत्तं, नासइ तं आयपरिणामं ॥ १३७ ॥

व्या० "आया सामाईए आया सामाइअस्स अठे" ए सूत्र पण चारित्रने आत्मपरिणामरूपज कहेछे. परंतु बाह्यक्रियारूप नथी कहेता ॥ १३७ ॥

णय खइअं विचरित्तं, जोगिणिरोहेण तं विलयमेई ॥
असह विहलं पत्तो, विरहो चारित्तमोहस्स ॥ १३८ ॥

व्या० केवलीने जे क्षायिक चारित्र उत्पन्न थायछे, ते ज्यारे योगनो निरोध करी ने मोक्षनेविषे गमन करेछे, तेना प्रथमसमयमां नाश थायछे. एम कहेवुं नही. केमके, क्षायिकनावनो नाश थतोज नथी. जो एम न मानिये अने क्षायिकना वनो नाश मानिये तो चारित्रमोहनीयकर्मनो नाश कहेवाशे नही. तेम छतां बलेकरी नाश अंगीकार करशुं तो पण ते निरर्थक थशे. केमके, चारित्रमोहनी यकर्मना नाशथी क्षायिक नावतो उत्पन्न थयोनही त्यारे ए नाशपणुं शुं काम नुं? जेम ज्ञानावरणीयकर्मना नाशनुं फल केवल ज्ञान छे; तेम चारित्रमोहनीय कर्मना नाशनुं फल यथाख्यात चारित्र छे. ते जो सिद्धनेविषे न होय, तो मोह नीयनो नाश निष्फल कहेवाशे ॥ १३८ ॥

तेणं सुद्धुवओगे, चरणं नाणाउ दंसणं वन्नं ॥
कारणकज्जविन्नागा, संतंतमिय किं न सिद्धेसु ॥ १३९ ॥

व्या० ते कारण माटे शुद्धोपयोगरूप चारित्र यद्यपि उपयोगरूपताज्ञानथी अन्यथा छे, तथापि तेओमां कारणकार्यनावनेद छे. ज्ञान चारित्रनुं कारण

छे, तेम चारित्र ज्ञाननुं कारण छे, जेम सम्यक्त तथा ज्ञानना विषयोमा भेद न थी, अर्थात् बन्नेनो एकज विषय छे, तथापि तत्वरोचकरूप ते ज्ञान कहेवायछे, तथा तत्वरुचिरूप ते सम्यक्त कहेवायछे एवो बन्नेनो भेद छे तेम ज्ञान अने चारित्रनो पण भेद जाणवो तेमज ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनो भेद पण संभवे छे एवी रीते ज्ञानथी अन्य चारित्र उपयोगरूपने ज्ञानथी अनन्य अनेकातस्वरूप सिद्धनेविषे केम न थाय ॥ १३९ ॥ अ० ए प्रमाणे सिद्धनेविषे चारित्रनी समर्थना करी, ते उपर सिद्धांतपक्षने अवलंबीने पूर्वपक्षी समाधान करेछे.

एछ समाहाणविही, जो मूलगुणेसु हुज्ज थिरभावे ॥
सो परिणामा किरिआ, जुंजणकरण पडिछंतो ॥ १४० ॥

व्या० मूलगुणनेविषे जे स्थिर भावरूप छे, तेज चारित्र क्रियारूप कहेवुं केमके, ते मनोवाक्काययोगरूप युजनाकरणनी अपेक्षा करेछे कोई पूछे के, एम कह्याथी वीर्यरूप चारित्र थाय ते संभवे नही जेम ज्ञानाचारादिकथी ज्ञानादिक अन्य छे, तेम चारित्राचारथी चारित्र पण अन्यज संभवे तेने एम कहेवु के, जो एम कहिये तो वीर्याचारथी वीर्य पण का अन्य न कहिये! जो कहेशो के, योगरूप चारित्र होय तो ते उपशमिक भावे केम थाय! केमके' योग ते नामकर्मना उदयिकभावे वर्त्तेछे उपशमिक भाव तो मोहविना अन्य कर्मनो थायज नही एम पण न कहेवु, केमके, योगपरिणामविशेष पण चारित्रमोहनीयकर्मना उपशमादिकनी नियमेकरी अपेक्षा करेछे ते उपशमादिक भावेज कहिये, केमके, प्रधाननी अपेक्षाए व्यवहार होयछे अतएव इंद्रियपर्याप्ति उदय जघन्य पण इंद्रियप्रधाननी अपेक्षाए शास्त्रमा क्षायोपशामिक कहेवायछे.॥१४०

असह वक्कजडाण, चंभाण चमरुद्दपभईण ॥
वेणसिया चारित्तं, सुद्धवओगोत्ति काऊण ॥ १४१ ॥

व्या० जो योगस्थैर्यरूप चारित्र न कहिये, अने शुद्धोपयोगरूप चारित्र कहिये, तो वक्र जडने चारित्र केम संभवे ? केमके, तेने तथाविध माया ते अशुभोपयोगरूप छे अने ते तो शुद्धोपयोगनो भेद छे, तथा क्रोधमोहनीयकर्मना परवशे जे चमरुद्राचार्यादिक सहजे कोपनशील छे, तेने पण चारित्र केम संभवे? केमके, तेने पण अशुभोपयोग छे मूलगुणनेविषे योगस्थैर्य ते तेने पण संभवे. जेम वज्र अग्निएकरी श्याम थाय, तो पण वज्रपणु मूके नही. जे

म यथाविध कषायथी अस्थिरता पण कषायपरिणति प्रमादरूप तेने थयो, तो पण योगस्थैर्यनो घात थाय नही. जो योगक्रियारूप चारित्र कहिये तो ते मरुदेवादिकने केम संभवे? एवो संदेह पण न करवो. केमके, मरुदेवादिकने पण संसारनिवृत्तिरूप मनोयोगपरिणतियुक्त छे. उक्तंच. "भगवद्दर्शनानंद, योगस्थैर्यमुपेयुषी; केवलज्ञानमम्लान, माससाद तथैव सा." इति योगशास्त्र वृत्तौ ॥ १४१ ॥

चरणं जइ उवओगो, जिणाण ता हुंति तिन्नि उवओगो ॥
दोसु अ अंतप्भावे, तं तिअस्स पकप्पणा मोहा ॥ १४२ ॥

व्या० जो शुद्धोपयोगरूप चारित्र कहिये, तो केवलीने आ त्रण उपयोग होवा जोइये. ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग, तथा चारित्रोपयोग. इम सामान्यथी पण तेर उपयोग थवा जोइये. अने शास्त्रोनेविषे तो बार उपयोग कह्याछे. ज्ञान तथा दर्शनमांज चारित्र भेलिये तो त्रीजुं कयुं चारित्र कहीशुं. जे कहिये ते प्रयासमात्र थाय. जो साकारोपयोग चारित्र भेलिए तो साकारोपयोगना आठ भेद पण संभवे. उपयोगरूप चारित्र मान्याथी इत्यादिक अनेक दूषण थाय. ॥ १४२ ॥

उ० जो वीर्यरूप चारित्र कहिये तो पण शैलेशी अवस्थानेविषे ते केम संभवे! केमके, ते समयनेविषे प्रवृत्तिरूप वीर्य नथी. एम जे कहेछे, तेनुं समाधान करेछे.

सेलेसीए जत्तो, णिवित्तिरूवो सचेव थिरभावो ॥
णय सो सिद्धाणं पिय, जं तेसिं वीरिअं णत्थि ॥ १४३ ॥

व्या० शैलेशीअवस्थानेविषे यद्यपि रूप यत्न नथी, तथापि योगनिरोधथी निवृत्तिरूप यत्न छेज, तेज परम स्थिरभावरूप चारित्र छे, ते स्थिरभाव सिद्धने नथी, केमके तेनो वीर्य नथी, माटे चारित्रने दानादिक पांच लब्धिए क्षायिक भाव सादिसांत कह्याछे, तथा सूत्रमां पण सिद्ध अवीर्य कह्याछे. ॥ १४३ ॥

उ० जो चारित्र क्रियारूप कहिये, तो अक्रिया मोक्षकारण कही केम संभवे? यतः "साणं भंते अकिरिआ किं फला; गोयमा, सिद्धगमणपज्जवसाणफला पन्नत्ता" एहवुं जे कहेछे, तेनुं समाधान करेछेः—

अंते अ अंतकिरिआ, सैलेसी अकिरियत्ति एगठा ॥
नाणकिरिआहि मोक्खो, एत्तो चिअ जुज्जए एवं ॥ १४४ ॥

व्या० अंतक्रिया, शैलेशी तथा अक्रिया ए सर्व शब्द एकार्थक कह्या छे. अंतक्रिया एटले सकलकर्मध्वंसरूप छेलुं प्रयोजन; जेथी कोई अन्य क्रिया बाकी रहे

नही ते, शैलेश एटले मेरुपर्वत, तेनी पठे जे निश्चल अवस्था ते शैलेशी कहेवाय, अने जे अवस्थानेविषे प्रवृत्तिरूपक्रिया न होय ते अक्रिया कहेवायछे अतएव "ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष" ए वचन युक्त छे केमके, सर्व सवररूपक्रिया अक्रिया रूपज छे. ॥ १४४ ॥ उ० कोइ आशंका करेछे

नणु जोग निरोहेण, चारित्तं सासयं पर होऊ ॥
असइ तेण ए मोरको, उप्पव काले असतेण ॥ १४५ ॥

व्या० परमार्थताथी चारित्रनो प्रतिपक्षी यद्यपि चारित्रमोहनीयकर्म छे, तथापि जेम चोरनी साथे रहेनारो अचोर पण कर्मांकित थायछे, तेम मोहना सहचारथी योग पण चारित्रना विरोधी छे माटे योगना निरोधेकरी परम यथाख्यातचारित्र शैलेशीने चरमसमये ऊपजे ते शाश्वतचारित्र सिद्धने पण होयछे जो ते चारित्र ते समयनेविषे उत्पन्न थईने आगल मोक्ष थवाना समये नाश पामतु होय तो ते उत्पन्न थवानुं प्रयोजन शुं? तथा जो कार्यना समये कारण न होय तो कार्यनी उत्पत्तिपण केम थाय? ॥ १४५ ॥

केई विंति मुणीण, सहावसमवठिई हवे चरणं ॥
त लद्धसहावाणं, सिद्धाण सासय जुत्तं ॥ १४६ ॥

व्या० केटलाएक कहेछे के, पूर्वोक्त दोषने लीधे शुद्धोपयोगरूप चारित्र थाय नही स्वभावसमवस्थानरूप चारित्र होयछे ते आत्मस्वभाव अविरत्यादि दशाए आच्छादन करी लीधु छे ज्यारे चारित्रमोहनीयकर्मनो विजय थायछे, त्यारे ते आत्मस्वभाव प्रगटेछे ते लब्धस्वभाव सिद्धने शाश्वतरूप चारित्र युक्त छे ॥१४६॥

उ० ए कहेला परमतनुं समाधान करेछे —

चरणरिउणो ण जोगा, अन्नसमाएण सवसवरण ॥
सिद्धे तम्मि सहावे, समवठाणंति सिद्धंतो ॥ १४७ ॥

व्या० जो एम कहिये के, योगचारित्रना विरोधी छे, तेथी योगनो निरोध कर्या थकी परम चारित्र ऊपजे छे ए कहेवु योग्य नथी केमके जो सहचारथी योग चारित्रना विरोधी थाय, तो दर्शनना पण विरोधी थवा जोये तेम तो न कहेवाय ज्यारे शैलेशीअवस्थानेविषे सर्व सवर कहेवाय छे, त्यारे तेज समयनेविषे सकल कर्मनिर्जरा कारण चारित्र छे, एवा अभिप्राये स्वभावसमवस्थानरूप चारित्र पणसिद्धने कहेवु जोये के जो योगपरिणामथीभिन्नस्वभाववान चारित्र सिद्धहोय ॥१४७॥

उज्जुसुएण मएणं, सेलेसीचरमसमय नाविति ॥
अंतसमउ च्चिय जहो, हेऊ हेऊस्स कज्जम्मि ॥ १४८ ॥

व्या० एम जे कह्युंछे के, शैलेसीना छेला समयनेविषे चारित्र उपजेछे, ते ऋजु सूत्रनयनामते क्षणपर्याय नंगुरछे. तथा कारणनो अंत्यसमयज कार्यनो हेतु छे. ए अनिप्रायेकरी मोहना क्षयथीज सादिसांत क्षायिकनावरूप बीजुं चारित्र उपजे छे. ॥ १४८ ॥

णय चरणमोहबंधो, सिद्धाणं अ चरणाण संताणं ॥
अविरय पच्चइउ सो अइप्पसंगो हवे इहरा ॥ १४९ ॥

व्या० सिद्धने चारित्र नही होय तो तेने चारित्रमोहनीयकर्मनो बंध थवो जोये; माटे एम न केहेवुं केमके विरति अने अविरति ए बे स्वतंत्र परिणाम छे.॥ १४९॥

जंच जिअलरकणं ते उवइठ तह लरकणं लिंगं ॥
तेण विणा सो जुज्जइ धूमेण विणा हुआ सुव ॥ १५० ॥

व्या० "नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा; वीरिअं उवउगो य, एयं जीअस्स लरकणं" एवीरीते श्रीउत्तराध्ययनसूत्रनी गाथाएकरी जीवनुं लक्षण चारित्र कह्युंछे. माटे ते सिद्धने पण होवुं जोये. एम कहेवुं नही. केमके चारित्र जे छे ते उपयोगनी परे यावत् द्रव्यनावि लक्षण नथी. आंही लक्षणशब्दनो अर्थ लिंग जाणवो. जेम धूम अग्निनो लिंग छे. तेम चारित्र जीवनो लिंग कह्युंछे. जेम धूमविना अग्नि तप्त लोहनेविषे होयछे, तेम चारित्रविना जीवपण होयछे, एमां कांई विरोध नथी, अतएव अंतरंग लक्षण कहीने बाह्य लक्षण कहेवाने अर्थे उपर कहेली गाथा उत्तराध्ययनबृहद्वृत्तिनेविषे अवतरण करेली छे. ॥ १५० ॥

णय णिछयस्स नाणे अन्नेयवित्ती कहं चरणविरहे ॥
संतं चिअ पमिवज्जइ फलेण जं सोय संतं वि ॥ १५१ ॥

व्या० जो सिद्धनेविषे चारित्र न होय तो ज्ञानमां चारित्रनी अनेद वृत्ति केम संनवे? केमके, सकलादेशे छतांज सर्व धर्म एक धर्मवाचक शब्दे बोले एवी आशंका पण न करवी, केमके, ते समयमां चारित्र नथी तो पण चारित्रनुं फल छे. माटे चारित्र छे एम मनायछे, ए नयना मते चारित्रना फलविना छतें चारित्र पण अछतुं माने. ॥ १५१ ॥

णवि आयाचरणं चिअ आया सामाइयंति वयणेण ॥
दवियाया नयणाए चरणाया सव्वथोकुत्ति ॥ १५२ ॥

व्या० "आया समाईए, आया सामाईअस्स अट्ठे" ए सूत्रनेविषे आत्मपर्यायरूप जे चारित्रछे, ते द्रव्यार्थिक नयना आदेशे आत्मरूप कह्युछे, माटे ते चारित्र यावत् द्रव्यनावी आत्मस्वनावरूप न जाणवु केमके, द्रव्यात्मा, ते नजनाए चारित्रात्मा कह्युछे, तथाहि "जस्स दविआया तस्स चरिताया नयणाएत्ति" एवी रीते नगवतीसूत्रमा कह्युछे, तथा आत्माना जे आठ नेद कह्या छे, तेओमा चारित्रात्माने सर्वस्तोक कह्युछे, माटे आत्मा तेज चारित्र एम न कहेवु ॥ १५२ ॥

एत्तो च्चिय सिद्धाण, खइअम्मि नाणदसणगाहण ॥
सम्मत्तजाइगहण, वहूण दोसा ण संकंती ॥१५३ ॥

व्या० वली सिद्धनेविषे चारित्र नथी, ते माटेज सिद्धने क्षाइकनावमा ज्ञान तथा दर्शन ए बेज कह्याछे जो कोई कहेशे के, सम्यक्तसमान चारित्रछे तेथी सम्यक्तना ग्रहणथी चारित्रनु पण ग्रहण थायछे एम कहेवु नही केमके, शुद्धोपयोगरूप चारित्रनो पूर्वेज निषेध कर्योछे अने योगस्थैर्यरूप तेहनीज व्यवस्थापना करीछे ॥ १५३ ॥

अम्ह णाभिणिवेसा, सिद्धाणं अ चरणस्स पक्खम्मि ॥
तह वि नणिमो रतीरइ, ज जिणमयमन्न हाकाउ ॥१५४॥

व्या० सिद्धने चारित्र नथी, ए पक्षमा यद्यपि अमने अनिनिवेश नथी, तथापि आटलु व्यवस्थापन आटलासारू करिये छैये के, श्रीवीतरागना वचन अन्यथा न थाय ॥ १५४ ॥ अ० एवी रीते सिद्धने चारित्र नथी, एवी समर्थना करी, त्यारे सिद्धना गुणोमा चारित्रनी गणना केम करीछे ? एवा पूर्वपक्षनुं समाधान करेछे –

जइवि जइमो सिद्धतो, इठ केसिवि तहवि सूरीण ॥
सिद्धाण चारित्त, तेसिमए त मए मिहिअ ॥ १५५ ॥

व्या० यद्यपि सिद्धने चारित्र नथी , एवो सिद्धात छे, तथापि केटलाएक आचार्यो चारित्र मानेछे, यत "अन्येतु दानादिलब्धिपचक चारित्र च सिद्धस्यापीछति, तदाचरणस्य तत्राप्यनावात्, आचरणानावेपि च तदऽसत्वे क्षीणमोहादि ष्वपि तद सत्व प्रसगात् ॥ततस्तन्मते नचारित्रनावना सिद्धावस्थायामपि सद्भावेनापर्यवसितत्वादकस्मिन् द्वितीयनग एव क्षायिको नावो न शेषेषु त्रिष्वपि" इति विशेषावश्यक

टीकायां " ए आचार्यना मतेकरी अमे सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना करीछे. ए मत जे छे ते पूर्वमतथी विरुद्ध छे माटे अप्रमाणजछे. एम कहेवुं नही. केमके, अविछिन्नपरंपराए आवेलां जे ए बे मत, ते अनतिशय पुरुषथकी निवारण थाय नही. जो कहेशो के, एक एकनी युक्तिनी समर्थना करतां प्रत्येकमां दोष आवशे, एवो विचार पण न करवो. केमके, जिनवचनऊपर अरुचि थयाविना सम्यक्तनो भ्रंश थतो नथी. ॥ १५५ ॥

तेसिं सव्वा किरिआ, सहावसिद्धा पणठ कम्माणं ॥
छह्रंपि कारगाणं, एगठेजं समावेसो ॥ १५६ ॥

व्या० ते सिद्धने सर्व क्रिया स्वभावसिद्ध छे, एक पण विभाव क्रियानथी. केमके, कर्मरहित सिद्धने छ कारक एक अर्थे विश्रांति पामेछे. ते कहेछेः– कथंचित ज्ञानथी अन्यथा अत्माज्ञप्तिक्रिया स्वतंत्रपणे करेछे. माटे आत्मा जे छे तेज कर्त्ता छे, ए पहेलुं कर्त्तानामा कारक ज्ञप्तिक्रिया स्वतंत्र आत्मानेविषे प्राप्यमाण छे, माटे तेज आत्मरूप कर्म छे; ए बीजुं कर्मनामा कारक जेणे करीने ज्ञानस्वभावथी तथा ज्ञप्तिस्वभावे आत्मा क्रिया करे छे, तेज आत्मरूप करण होवाथी आत्माज कर्त्ता छे एम जाणवुं. ए त्रीजुं करणनामा कारक जे स्वानुफलवेद्यने अर्थे आत्मा ज्ञप्तिक्रिया करेछे, तेज आत्मरूप संप्रदान छे; ए चोथुं संप्रदाननामा कारक जे पूर्वज्ञेयाकारने विश्लेषे उत्तरज्ञेयाकारमिश्रित ज्ञानस्वभाव आत्मा भजेछे, तेज आत्मस्वभावरूप अपादान छे. ए पांचमुं अपादाननामा कारक तथा जे ज्ञानरूपगुणनुं भाजन जे आत्मानामे द्रव्य तेज आधार छे एम जाणवुं; ए छठुं आधारनामा कारक कह्युं ए ज्ञान आश्री छ कारक कह्या, एमज सर्व बीजा धर्मो आश्री जाणी लेवुं. ॥ १५६ ॥

ते पुण पनरस भेआ, तिछातिछाय सिद्धभेएणं ॥
तछ इथीणं सिद्धिं, ण खमइ खवणो अभिणिवेसी ॥ १५७ ॥

व्या० ते सिद्धना पंदर भेद कह्याछे, यतः तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थंकरसिद्ध, अतीर्थंकरसिद्ध, स्वयंबुद्धिसिद्ध, प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंगसिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, गृहलिंगसिद्ध, एकसिद्ध, तथा अनेकसिद्ध. हवे एनो अर्थ करेछे तीर्थ एटले जे चतुर्विध संघ, अथवा प्रथम गणधर उत्पन्न थया पछी जे सिद्ध थया ते तीर्थसिद्ध; तीर्थनी उत्प

त्त थया पहेला अथवा तीर्थनो विछेद थया पछी जे सिद्ध थया ते अतीर्थसिद्ध, तीर्थकरपदवी जोगवीने जे सिद्ध थया ते तीर्थकरसिद्ध, सामान्य केवली छतां जे सिद्ध थया ते अतीर्थकरसिद्ध, बाह्य कारण दीठाविना जे पोतेज जातिस्मरणादिकथी प्रतिबोध पामीने सिद्ध थया ते स्वयंबुद्धिसिद्ध, प्रत्येक बाह्य कारण वृषनादि देखी प्रतिबोध पामीने जे सिद्ध थयाछे ते प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धजे गुर्वादिकथकी बोध पामीने सिद्ध थया ते बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंगना त्रण प्रकार छे वेद, शरीरनिवृत्ति, तथा पथ्य, ए त्रणमा अत्रे शरीरनिवृत्तिनो अधिकार लेवो वेद तथा पथ्यनो अधिकार नथी केमके, ए बे प्रकार मोक्षना अंग नथी माटे शरीरेकरी वर्त्तमान छता जे सिद्ध थया ते स्त्रीलिंगसिद्ध, पुरुष शरीरे करी वर्त्तमान छता जे सिद्ध थया ते पुरुषलिंगसिद्ध, नपुसकलिंगे करी वर्त्तमान छता जे सिद्ध थया ते नपुसकलिंगसिद्ध, रजोहरणादिकस्वलिंगनेविषे व्यवस्थित छतां जे सिद्ध थया ते स्वलिंगसिद्ध, परिव्राजकादिक चार अन्यलिंगनेविषे जे सिद्ध थया ते परलिंगसिद्ध, गृहस्थलिंगनेविषे वर्त्तमान छतां जे सिद्ध थया ते गृहस्थलिंगसिद्ध, जे एकला सिद्ध थया ते एकसिद्ध, अने जे अनेकनी साथे सिद्ध थाय ते अनेकसिद्ध कहेवायछे ए पंदर भेदमाना स्त्रीलिंगसिद्धने अभिनिवेशने वश थया थका दिगंबरीओ मानता नथी ॥ १५७ ॥

तस्सम्मयथीसिद्धा, जे पुव्विं चेव खीणथीवेआ ॥
एवं पुरिस णपुंसा, थी पज्जाएण णो सिद्धी ॥१५८॥
चरणविरहेण हीण, त्तणेण पाव पयडीण बाहुल्ला ॥
मणपगरिसविरहाउ, संघयणाभावउ चेव ॥ १५९ ॥

व्या० ते दिगंबरीओनु आवु मत छे के, स्त्रीलिंगसिद्ध तो कहिये के जो पूर्वे स्त्रीवेदनो क्षय करी अने पछी बन्ने वेदनो क्षय करी सिद्ध थता होय, तेमज नपुसकसिद्ध पण तो मानिये के जो प्रथम नपुसकवेदनो तथा पछी बन्ने वेदनो क्षय करी सिद्ध थता होय, शरीरे करितो पुरुषज सिद्ध थायछे, परंतु स्त्रीना पर्याये करी सिद्धताने पमातु नथी केमके स्त्रीने चारित्र होतु नथी चारित्र जे छे ते शुद्धोपयोगरूप आचेलक्यमूलगुणमयछे, अने स्त्रीतो अचेलक थायज नही तथा पुरुष थकी स्त्रीहीन होवाथी पण तेने सिद्धतानो संभव नथी नपुसकत्व तथा स्त्रीत्व महापापे करीने अर्जायछे, एम पापप्रकृतिनी बाहुल्यताने लीधे पण स्त्रीने

मुक्ति थाय नही. तथा जेम स्त्रीने सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य तीव्र अशुभ मनपरिणाम थता नथी; तेम मुक्ति पामवायोग्य तीव्र शुभमनपरिणाम पण स्त्रीने थता नथी. माटे स्त्री सिद्ध थायज नही. अने सातमी नरकपृथ्विए स्त्रीथी जवातुं नथी, माटे तेने वज्रऋषभनाराच संघयण नही होवाथी पण स्त्रीने मुक्तिनो संभव नथी. ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

एवी दिगंबरीओनी युक्तिने ग्रंथकर्त्ता दूषण दियेछेः—

तम्मिच्छा वेयखउ, सरीरणिवत्ति णियमणियउत्ति ॥
चरणविरहाइआ पुण, सवे तुह होइओ सिद्धा ॥ १६० ॥

व्या० दिगंबरीओ स्त्रीसिद्धादिकना प्रसिद्ध अर्थने मूकीने जे अन्य अर्थ करेछे ते संभवित नथी. केमके, जेने स्त्रीवेदादिकनो पूर्वेज क्षय छे, एवा नपुंसकादिक शरीरेकरी वर्त्तता श्रेणी करे तेनेविषे छे, माटे “ वीसणपुंसगवेया ” इत्यादिक स्व शास्त्रवचन समर्थवाने अर्थे ए कल्पना केवल कदाग्रहरूप जणायछे; जो एम कहिये के, उदीर्ण वेदनोज पूर्वे क्षय करवो तो तेनेविषे पण शास्त्रोक्त व्यवस्था संभवे नही. शास्त्रोमां तो एम कह्युंछे के, जो पुरुष श्रेणिनो आरंभ करे तो तेणे पूर्वे नपुंसकवेदनो क्षय करवो, पछी स्त्रीवेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो, अने पछी पुरुषवेदना त्रण खंम करी तेमांना बे खंमनो एकवार क्षय करवो, अने त्रीजो खंम संज्वलन क्रोध मान खपाववो. जो स्त्रीए क्षपकश्रेणिनो आरंभ करवो होय तो तेणे पूर्वे नपुंसक वेदनो क्षय करवो, पछी पुरुष वेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो अने छेवट स्त्रीवेदनो क्षय करवो जोये. अने जो नपुंसके क्षपक श्रेणीनो आरंभ करवो होय तो तेणे पूर्वे स्त्रीवेदनो क्षय करवो, पछी पुरुषवेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो, अने सरसेवटे नपुंसकवेदनो क्षय करवो जोये इत्यादिक रीति जाणी लेवी. ॥ १६० ॥

अ० स्त्रीलिंगे सिद्ध थवातुं नथी, तेमां चारित्रविरहादिक जे हेतु कह्याछे, ते असिद्धछे, एम कहेछेः—

णेगंति यमिछीणं, उघत्तं संजमो चिया लज्जा ॥
तासिं चरित्तविरहे, चाउवसो कहं संघो ॥ १६१ ॥

व्या० स्त्रीने चारित्र न होय तेमां कारण शुं छे? स्त्रीनेविषे जे दुःशीलादिक दोष होयछे ते एकांत नथी; केमके, परमशीलवान जे सुशीलसादिक श्राविकाउ थई छे ते

उनी भगवते पोते प्रशंसा करीछे वली स्त्री जेम केटलाएक पुरुष दुष्टछे तेम पण महारम्भ महापरिग्रही देखायछे, माटे स्त्रीनु दुष्टत्व काई एकाते नथी जो कहेशो के, स्त्रीने लज्जा मटती नथी, माटे चारित्र थाय नही, एम पण न कहेवु, केमके, नग्नताज चारित्राग नथी, विधिए करीने धर्मोपकरणोनु धारण करता चारित्रनो भग थतो नथी जो कहेशो के, स्त्रीनुं शरीर हिसायतन छे, माटे तेने हिसा नथी; एक हेवु पण असत्यपणानुं छे केमके, अशक्यपरिहारस्यजनेविषे हिसा थाय नही प्रमादना योगे हिसा थाय छे, प्रमादनुं जे व्यपरोपण तेज हिसा कहिये वली जो स्त्रीने चारित्र न मानिये तो चार प्रकारनो सघ केम सभवे? जो वेषधारिणी श्राविकाज साध्वी कहिये तो चारित्र जाण्याविना जे वेषधारण करवु ए तो मोटी विटबना कहेवाय! जो कहेशो के, चारित्रलेश स्त्रीने थाय छे, तो तेमा अमे पण ना कहेता नथी, पण जो कहेशो के, स्त्रीने चारित्र मोक्षनुं कारण थाय नही तो ते कदाग्रह मात्र जाणवु केमके, अध्यवसायविशेषेकरी पुरुषनी पठे स्त्रीने पण चारित्रनो उत्कर्ष होयछे, एमा काई विरोधता नथी ॥ १६१ ॥

हीणत्तं पुण माणं, लद्धिनइड्ढि वलं च अहिगिच्च ॥
णो पडिकूलमसिद्ध, तिरियणसारम्मि सतम्मि ॥ १६२ ॥

व्या० स्त्रीने जे पुरुषथी हीनपणु कह्युछे, ते जो विशिष्ट पूर्वज्ञाननी अपेक्षाए कहिये तो ते प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे केमके, तथाविध ज्ञानविना पण गुरुपरतत्रताए मापतुषादिक चारित्रना पालणार थयाछे जो लब्धिनी अपेक्षाए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे, केमके, तथाविध लब्धिविना पण मानुष्यादिक कृतकृत्य थयाछे, जो ऋद्धिनी अपेक्षाए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी किंतु अनुकूलज छे अन्यथा तीर्थकरादिकनी अपेक्षाए अमहर्द्धिक गणधरादिक छे, तेने मुक्तिनो सभव केम थाय? स्त्री पुरुषने अवद्य छे, माटे ते चारित्र ऋद्धिए करी हीन होवी जोये, एवी आशका पण न करवी, अन्यथा शिष्यादिक आचार्यादिकने अवद्य छे, तेपण चारित्रऋद्धिए करी हीन होवा जोये, जो वलनी अपेक्षा कहिये तो तेपण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे, केमके, स्त्री करतां निर्बल जे पशुप्रमुख ते पण अध्यवसायविशेषे मुक्ति पामेछे, जो कहेशो के, हीनवलने विशिष्टादिरूप चारित्र केम थाय! एमपण न कहेवु, केमके, चारित्र ते यथाशक्ति आचरणारूप छे, माटे ते स्त्रीने पण सभवे छे, उक्तच " वादिवि

कुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च जिनकल्पमनःपर्ययविरहेपि न सिद्ध विरहोस्ती" एणेकरी अनुपस्थाप्यपाराचिंतक प्रायश्चित्तना अनुपदेशथी स्त्रीने पण हीनपणुंछे, ए असंबद्ध जाणवुं, केमके, योग्यतानी अपेक्षाए शास्त्रनेविषे विचित्रतपनो उपदेश छे. उक्तंच "संवरनिर्जरारूपो बहुप्रकारस्तपोविधिशास्त्रे योगचिकित्साविधिरिव कस्यापि कथंचिदुपकारीति" ॥ १६२ ॥

पावाणं पयडीणं थीणिव्वत्तीइ बंधजणणीणं ॥
सम्मत्तेणेव पए णो तासिं पावबहुलत्तं ॥ १६३ ॥

व्या० स्त्रीने जे पापनी बाहुल्यता कहीछे, ते वचन पण मिथ्याछे, केमके, जेवारे स्त्रीपणुं बांध्युं छे, तेवारे यद्यपि बहुल पापप्रकृति मिथ्यात्वादिरूप ते छे, तथापि ते प्रकृति जेवारे तथाभव्यत्वने परिपाके सम्यक्त गुण पामीने क्षय करेछे तेवारे स्त्रीने पापनी बाहुल्यता नथी. जहांसुधी स्त्रीशरीर होय, तहांसुधी जो तेनां बंधकारण मिथ्यात्वादिक रहे तो स्त्रीए सम्यक्त पण न पाम्युं जोये. जो कहेशो के, पुरुषथी तीव्र काम पण अध्यवसाय छे, माटे नपुंसकनी पठे स्त्री मुक्ति पामे नही, एम पण न कहेवुं. केमके, तीव्र काम पण अध्यवसाय विशेष पामे छे; माटे ते मुक्तिनेविषे विघ्नकारक नही होवाथी ए हेतु अप्रयोजक जाणवो अन्यथा स्त्री मुक्ति पामे. केमके, ते नपुंसकथी हीनकामछे, माटे तेने पुरुषनी पठे जाणवी. ए हेतु पण अत्रे लागु थायछे. ॥ १६३ ॥

णय तासिं मण विरिअं असुहं च सुहं विणेव उक्किट्टं ॥
तारिसणियमाभावा तेण हउ चरमदेहेऽवि ॥ १६४ ॥

व्या० जो कहेशोके, जेम सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य स्त्रीने अशुभ मनोवीर्य नथी, माटे तेने मुक्तिनेविषे जवानो पण तथाविध मनोवीर्य थाय नही. एम कहेवुं नही. केमके, एवो नियम नथी, के, जेटलो अधोगति जवानो अध्यवसाय थाय तेटलोज ऊर्ध्वगति जवानो अध्यवसाय थाय. केमके, भुजपरी सर्प बीजी पृथ्वीसुधी उत्कर्षथी अधोगतिए जायछे, पक्षी त्रीजी पृथवीसुधी जायछे. चतुष्पद चोथी पृथवीसुधी जायछे. उरग पांचमी पृथ्वीसुधी जायछे. स्त्री छठी नरक पृथ्वीसुधी जायछे; पुरुष अने मछ सातमी नरक पृथ्वीसुधी जायछे, ए स्त्री तथा पुरुषविना बीजा पूर्वोक्त सर्वे प्राणीओ उत्कर्षथी सहस्रार आठमां देवलोकसुधी ऊर्ध्वगमन करेछे. एवी रीते यद्यपि स्त्री सातमी नरक

पृथ्वीसुधी जती नथी, तथापि तेने मोक्षसुखनी प्राप्ति थायछे एमा कोई विरोध नथी केटलाएक कहेछे के, अधोगतिने परमोत्कर्ष होयछे, ते एकाततायी सन्नवे नही केमके, जेवी कारणनो उत्कर्षता होय, तेवीज कार्यनी उत्कर्षता कहेवा यछे, एवो नियमछे परतु एथी अन्य कोइ नियम नथी स्त्रीनेविषे जो युद्धादिक महारन्नरूप कारणनो सन्नव होय तो सातमी नरक पृथ्वीसुधी जवाय, तेवु कोई कारण नही होवाने लीधे स्त्रीयकी त्यासुधी जवातु नथी, किंतु छठीसुधीज जवायछे, अने पुरुष तथा मत्स्यनेविषे तेवा कारण होवाथी तेओथी सातमी नरक पृथ्वीसुधी जवायछे एवी रीते अधोगतिनेविषे जवासारू पुरुष अने स्त्रीना कारणोनी विलक्षणता होवाथी सरखु गमन थतु नथी परतु ऊर्ध्वगतिनेविषे जवासारू बन्नेना कारणो सरखा होवाथी सरखु गमन थवानो अवश्य सन्नव छे जेम पुरुषनेविषे शीलादिक गुणरूप ऊर्ध्वगमनना कारण होयछे तेम स्त्रीनेविषे पण होयछे ए हेतुथीज स्त्रीने वज्रऋषननाराचसघयणनो सन्नव छे एम न मानवामा कोई युक्ति नथी ए प्रकारे स्त्रीना निर्वाणना निरोधनेविषे दिगबरीओना हेतुनो निषेध कर्यो, हवे स्त्रीनो निर्वाण थवामा अनुमान कहेछे—हरेक वस्तुना अनुमानमा पक्ष, साध्य, हेतु तथा दृष्टात ए चार प्रकार होयछे एटले ए चार पदार्थोए करी सिद्ध थएली वस्तुने अनुमित कहेछे, अने एचार पदार्थोए करी सिद्ध थवा योग्य वस्तुने अनुमेय कहेछे जेम के, अग्नियुक्त पर्वत सिद्ध करवो होय, ते अनुमेय कहेवायछे, अने एज पक्ष कहेवायछे अनुमान करती वखते "पर्वतम्पक्षीकृत्य, वन्हिमत्वसाध्यते, धूमत्वात् इतिहेतु, पाकगृहवत्, यत्रयत्रधूम तत्रतत्र वन्हि" पर्वतनो पक्ष करीने तेने अग्नियुक्त सिद्ध करेछे, एमा हेतु पर्वतउपर नीकलतु धूमाडुं छे, जेम रसोई करवाना गृहमा अग्नि होवाथी धूंमाडु नीकलेछे, केमके, ज्या ज्या धूमाडु होय त्या त्या अग्नि होयछे, ए दृष्टात छे. तेम "काचित्स्त्रीव्यक्तिं पक्षीकृत्य, मोक्षाविकलकारणता साध्यते, दीक्षाधिकारत्वात्, पुरुषवत्, येये दीक्षाधिकारिण ते ते मोक्षाविकलकारिण" कोईएक स्त्रीनी व्यक्तीने पक्ष करीने तेने मोक्षना अविकलकारणवत सिद्ध करेछे, एमा दीक्षानो अधिकार हेतु छे, अने पुरुषजातिनी पठे ए दृष्टांत छे, केमके जे जे दीक्षानो अधिकारी होय ते ते मोक्षना अविकलकारणवत होयछे ॥ १६४ ॥

कीवस्स कप्पिअस्स व इत्थीए कप्पिआइ सिद्धी वि ॥ ण
विणा विसिठ चरिअं तासिं तु विसिठकम्मखउ ॥१६५॥
पावं तह इत्थित्तं णय पुस्सफलाण केवलीण हवे ॥ परमा
सुइभूआणं णय परमोरालिउ देहो ॥ १६६ ॥

व्या० कोई आशंका करे के, जेम जातिनपुंसकने मुक्ति थाय नही, तेम स्त्रीने पण मुक्ति थती नथी. एम छतां जो कहेशो के, जेम कृत्रिमनपुंसकने मुक्ति थायछे तेम विद्याप्रयोगादिकेकरी युक्त स्त्रीने मुक्ति थायछे; तो तेम पण न संभवे; केमके, स्त्रीने विशिष्टक्रियानुष्ठान होतुं नथी; विशिष्टक्रियानुष्टानविना विशिष्टकर्मनो क्षय थाय नही. अने विशिष्ट कर्मनो क्षय थयाविना मुक्ति थती नथी. तथा स्त्रीपणुं जे छे ते पापप्रकृतिरूप नदीनुं झरणुं छे; ते पुण्यरूप सुरतरुना केवलज्ञानरूपफलने सेवन करनारा केवलीनेविषे केम संभवे! अर्थात् पापप्रकृतिरूपस्त्रीने केवल ज्ञान संभवे नही. तथा स्त्री परम अशुचि छे, तेने परमोदारिक शरीर पण संभवे नही. केवलीनुं शरीर तो परमोदारिक होयछे. तेवुं तो स्त्रीनुं शरीर कहेवाय नही, माटे स्त्रीने केवल ज्ञान केम संभवे? ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

अ० ए आशंकाने युक्तिवडे दूषित करेछेः—

एय मयुत्तं जम्हा विचित्तभावा विचित्तकम्मखउ ॥ ण
य इत्थित्तं पावं जिणाण पाए णण छित्ति ॥ १६७ ॥

व्या० स्त्रीने क्रियाविशिष्टविना विशिष्ट निर्जरा न थाय, एम जे वादिए कह्युं ते अयुक्त छे. केमके, भावविशेषे फलविशेषछे. क्रियाविशेषविना भावविशेष न थाय; एमां एकांतता नथी. केमके, जो शक्तिनो निग्रह करीने क्रिया करिये तो ज भावनी हानि थायछे, अन्यथा भावनी हानि थती नथी. तथास्त्री पणुं पापरूप छे, एमां पण एकांतता नथी, केमके, सम्यक्तना बलथी मिथ्यात्वादिक पापनो क्षय थायछे. एम पूर्वेकही आव्या छैयेः घणुंकरीने तीर्थंकरनेविषे स्त्रीपणुं नथी होतुं, एटले बहुधा स्त्री तीर्थंकर थती दीठामां आवती नथी तेथी स्त्रीपणुं पापरूप छे एम जो कहिये तो विप्रत्वादिक पण तेवांज कहेवा जोये केमके, बहुधा तीर्थंकरनेविषे विप्रत्वादिकनो पण अभाव होयछे; अर्थात् घणुंकरीने क्षत्रियादिक तीर्थंकर थएला दीठामां आवेछे. तेथी शुं विप्रादिकने मोक्षनो संभव न

थी अने परमौदारिक शरीरनो तो पूर्वेज निषेध कर्योछे, माटे ते होय के न होय तेनी शासारू चर्चा करवी ! ॥ १६७ ॥

इय इत्थीण सिद्धी सिद्धा सिद्धतमूलजुत्तीहिं ॥ ईअ
असद्दहता चिक्कणकम्मा मुणेअव्वा ॥ १६८ ॥

व्या० एवी रीते सिद्धातमूलयुक्तिउए करीने स्त्रीने मुक्ति थायछे एवु सिद्ध कर्युं तेम छता जे हठेकरीने ए अर्थनी सद्दहणा करता नथी, ते चिकणा कर्मवाळा जाणवा एवा प्रकारे स्त्रीनेविषे मुक्तिनी व्यवस्थापन कर्याथी सिद्धना पदर भेदनी व्यवस्था थई तेथी सप्रसग सर्व सिद्धनुं स्वरूप कह्यु सिद्धस्वरूपना वर्णनथी परम भावाध्यात्मनु निरूपण थयु अने भावाध्यात्मना निरूपणथी ग्रंथार्थ पूर्ण थयो १६८

अ० हवे ग्रथार्थनुं परम रहस्य कहेछे –

इयं परमरहस्सं एसो अज्झप्पकणगकसवट्टो ॥ एसा
य परा आणा सयमजोगेसु जो जत्तो ॥ १६९ ॥

व्या० संयमयोगनो जे उद्यम करवो, तेज सर्व शास्त्रना नयविस्तार जाणवानुं फल छे, अने एज परम रहस्यभूत छे. यत "सव्वेसि पिण याणं, बहुविहवत्तव्व यणि सामित्ता, त सव्वणयविसुद्धं, ज चरणगुणहिउ साहू" इत्यावश्यकादौ तथा आश्रवो भवहेतु स्यात् सवरो मोक्षकारणं, इतीयमार्हती मुष्टि, रदनन्याप्रपचनम्, एनो अर्थ – प्राणातिपातादिक जे आश्रव छे, ते ससारनुं कारणछे प्राणातिपातादिकथकी विरमवारूप जे सवर ते मोक्षनुं कारण छे, ए परमार्थने विस्तारेकरी जाणवासारूज सर्व शास्त्र छे माटे जेणे ए अर्थ जाण्यो छे ते परमार्थताथी सर्व शास्त्रज्ञ छे एम जाणवु अतएव उपशम विवेक संवर ए पदनो अर्थ जाणीने चिलातीपुत्रे निजअर्थ साध्यो तथा सयमयोगनो जे उद्यम करवो तेज अध्यात्मरूप सोनानी कसोटी छे, जेम कसोटीए करी सोनानी परीक्षा थायछे, तेम क्रियानुष्ठाने करी अध्यात्मनी परीक्षा थायछे ते अध्यात्मेकरी जे विशुद्धि थायछे, ते बाह्यकारणनु आलस्य करे नही यत "सयमयोगेसु सया, जे पुण सत विरिआ विसीयंति, कहते विसुद्धचरणा, बाहिरकरणालसा हुति" इत्यावश्यके तथा एज श्री वीतरागनी परमआज्ञा छे के, सयमयोगनेविषे यत्न करवो जेणे ए यत्न कर्यो, तेणे चैत्य कुल गणादिक सर्वनु कार्य कर्यु, एम जाणवु यत "चेइअ कुल गण सघे, आयरिआणं च पवयणसुए अ, सव्वेसु वि तेण कय, तव सयमसुज्जमतो

अ० कोईक कहेशे के, ज्यां सुधी जीवने नव्यत्वनो संदेह होय त्यांसुधी चारित्रनेविषे ते केम प्रवृत्ते ? केमके, अनव्य अनेक क्रियाकरे तेथी तेने कष्टमात्र थाय परंतु परमार्थथी तेने कोई फलनी प्राप्ति थती नथी, एनुं समाधान करेछेः—

आसन्नसिद्धिआणं जीवाणं लरकणं इमं चेव ॥

तेण ण पवित्तिरोहो नवानवत्तसंकाए ॥ १७० ॥

व्या० जे जीव थोडा नवे मुक्ति पामनार होय तेनुं एज लक्षणछे के, ते विषयनेविषे वैराग्य धारण करीने धर्ममां प्रवृत्ते. यतः "आसन्नकालनवसिद्धिअस्स जीवस्स लरकणं इणमो ; विसयसुहेसु ण रज्जइ, सव्वथामेण उज्जमई." इत्युपदेशमालायां. माटे चारित्रनेविषें प्रवृत्ति थाय, त्यारे जीवे पोताने आसन्नसिद्धपणुं जाणवुंकहेवाय, पछी ते नव्यानव्यत्वनी शंकाएकरी शुनप्रवृत्तिनो बाधक केम थाय? किंतु साधकज थाय. अने हुं नव्यछुं के अनव्यछुं ? एवी जेने शंका उत्पन्न थायछे, ते जीव निश्चये करीने नव्यज जाणवो. यतः "अनव्यस्यहि नव्य नव्यत्वशंकाया अनावादित्याचारांगटीकायां." ए आशंका तो उलटी चारित्रप्रवृत्तिनो अंग छे; माटे तेथी कांइ बाधा थती नथी. ॥ १७० ॥

अ० केटलाएक परवादी एम कहेछे के, मोक्षोपायनेविषे प्रवृत्ति वैराग्यथीज थायछे, ते वैराग्य अज्ञुक्तनोगनेविषे संनवेछे ; माटे नोगनोगव्या पछी तेनो त्याग करीने जो योगमां प्रवृत्ति करिये तो ते सुखथी थई शकेछे ; एम कहेनाराने शिक्षाने अर्थे कहेछेः—

जो पुण नोए नोत्तुं इछोइ ततो अ संयमं काउं ॥ ज

लणम्मि पजलित्ता इछइ पछा सणिज्जाउं ॥ १७१ ॥

व्या० जे पुरुष नोग नागवीने पछी संयम पालवानी इछा करेछे, ते इछा प्रथम अग्निमां पमी बलीने पछी शीतलता पामवानी पछे छे. केमके, नोग नोगव्याथी तेनी इछा मटती नथी ; किंतु अधिक थायछे. यतः "नजातु कामः कामाना, मुपनोगेन शाम्यति ; हविषा कृष्णवर्त्मे व, पुनरेव प्रवर्द्धते." जे सुख जीव नोगवेछे, ते सुख यद्यपि अनंतवार नोगवाई गया छे ; तथापि मोहनीयकर्मना दोषने लीधे एम नासेछे के, में ए सुख पूर्वे कोई समयनेविषे नोगव्यां नथी यतः "पत्ता य कामनोगा, कालमणंतं इहं स उवनोगो ; अपुव्वं पिव मन्नई, तहविय जीवो मणे सुरकं" इत्युपदेशमालायां. ॥ १७१ ॥

अ० वली नोगनेविषे प्रवृत्ति करतां एवो संदेह रहेछे के रखेने नोगनो नाश थई जाय, ते योग्य छे, केमके, नोग स्थिर नथी, किंतु अस्थिर छे. अथवा नोग नोगवता आयुष्यनो अंत आवी जाय तो पण नोग नोगवाता नथी एवा नोग नोगववानेविषे प्रवृत्ति थता अविरति जीवने प्रतिक्षणे कर्मबंध थायछे एमा रचमात्र संशय नथी माटे जे विवेकी पुरुष छे ते स्वप्ननेविषे पण नोगनेविषे प्रवृत्तिनी अनिलाषा करता नथी एवो उपदेश करेछे ॥ १७१ ॥

कोवा जिअवीसासो विज्जुलया चंचलम्मि आउम्मि ॥
सज्जो णिरुजमो जइ जरानिनूउ कहं होही ॥ १७२ ॥

व्या० हे जीव, तने जीवितव्यनो शो विश्वास छे? केमके, जेम विजलीनी लता एटले झत्कार क्षणनंगुर छे, एटले क्षणमा देखाय छे ने क्षणमा नाश थई जायछे, तेम जीवितव्य एकक्षणमा प्रत्यक्ष देखातो छता कोई रोगादिकना उदयथी बीजी क्षणमा नाश थता वार लागती नथी माटे ज्यासुधी शरीर निरोगी छे त्यासुधी जो तू धर्मकार्य करीश तो करी शकीश ॥ १७२ ॥

अ० कोई कहेशे के, जो जीव रोगेकरीने ग्रसेलो होय, अथवा कायबलेकरी हीण थएलो होय, ते चारित्र मार्गनेविषे केम प्रवृत्ति करी शके, तेने उत्तर दियेछे

देहबल जइ ण दढ़ु तहवि मणोधिइबलेण जइअव्वं ॥
तिसिउ पत्तानावे करेण किं णो जलं पिवई ॥ १७३ ॥

व्या० जो रोगादिके करी शरीर निर्बल थई गयुं होय तो मनबुद्ध्यादिकना बले करीने योग धारण करवो जेम पुरुषने ज्यारे तृषा लागेछे त्यारे तेनीपासे जो पाणी पीवानु पात्र न होय तो हाथेकरी पाणी पीएछे, पण तरस्यो रहेतो नथी तेम तथाविध कायबल न छता पण जेने मोक्षनी अनिलाषा होय तेणे मनोबलेंकरी योगमार्गनेविषे प्रवृत्ति करवी ॥ १७३ ॥

अ० जे पुरुष बलना समयनी शोचनाएकरी बलरहितसमयमा नविष्यकाल उपर नरोसो राखी आलस करीने बेशी रहे ते अति दुःख पामेछे, एम कहेछे

बलकालसोअणाए अलसा चिठंति जे अकयपुन्ना ॥
ते पच्छिता चि लहु सोइंति सुह अपावंता ॥ १७४ ॥
जह णाम कोइ पुरिसो ण धणढ्ढा णिद्धणो वि उज्जमइ ॥
मोहाइ यत्तणाए सो पुण सोएइ अप्पाणं ॥ १७५ ॥

व्या० जे पुरुष एवी शोचना करे के, हमणा मारामां बल नथी, माटे आगल धर्माचरण करीश. अथवा- हमणा मारो अवसर नथी, माटे आगल जतां धर्माचरण करीश. एम जाणीने आलस करी बेशी रहे ते अकृतपुण्य थका आगल घणी प्रार्थना कर्याथी पण पुण्यविना सुखने पामे नही, त्यारे घणो शोच करेछे. जेम कोइ निर्धन पुरुष प्रथम आलस करीने धन अर्जवानो उद्यमन करे ने पछी गाली इच्छा करीने धनविना दुःखने पामेछे त्यारे पोताना आत्मानेविषे घणोज शोच करेछे. माटे प्राप्त थएलो धर्म मूकीने आगल धर्मप्रार्थना करीये तो गाली प्रार्थना कहेवाय. यतः "लद्धिल्लिअं च बोहिं, अकिरंतो णागयंगपच्छितो ; आणंदाइं बोहिं, लप्प्रसि कयरेण मुल्लेण." ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ अ० कोई कहेशे के, पापनी निंदाथीज पाप टलेछे, त्यारे विशेष अनुष्ठान करवानुं कारण शुं? एविषे कहेछेः—

जो पावं गरहंतो तं चेव णिसेवए पुणो पावं ॥ तस्स
गरहा वि मिच्छा अतहक्कारो हि मिच्छत्तं ॥ १७६ ॥

व्या० जे पाप करी मिच्छामि दुक्कडं दईने फरी पाप करे तेनी पापनिंदा मिथ्या छे. केमके, जेवुं बोलिए तेवुं जो पालिए नही तो तेज मिथ्यात्व छे. यतः "जो जह वायण कुणई, मिच्छद्दिठी तउहुको अन्नो ; वड्ढेइ अमिच्छत्तं, परस्स संकं जणे माणे." इत्युपदेशमालायां. हवे मिच्छामि दुक्कडं ए शब्दनो अर्थ कहेछेः—मि कहेतां कायाथी तथा नावथी मृदु थइ, च्छा कहेता असंयमरूप दोषनुं अच्छादन करीने, मि कहेता चारित्रनी मर्यादामां रह्यो थको, दु कहेतां दुकृत कार्यनो करनार जे आत्मा तेने हुं निंदुंछुं, क कहेता में जे पाप कर्यांछे, तेनुं डं कहेतां उपशम पामीने उल्लंघन करुंछु. एवो अर्थ जाणीने मिच्छामि दुक्कमं दीधा पछी फरी पाप न करवुं, ते पापनी साची निंदा कहेवायछे. तेम न करता पछी जे पाप करवुं तेथी तो उलटुं माया मृषावादादि पाप लागेछे. यतः "जं दुक्कडंति मिच्छा । तं चेव णिसेवए पुणो पावं, पच्चक्कमुसावाई, मायानिवडी पसंगोअ" इति ॥ १७६ ॥

अ० ए कारण माटे चारित्र लईने जो ते सारा नावथी पालिए तोज तेथी महाफलनी प्राप्ति थायछे, अन्यथा आजीविकाने अर्थे चारित्र लीधा करतां गृहस्थधर्मज सारो छे एम कहेछे.

चुअधम्माउ मुणिणो सुठुअरं किर सुसावगत्त पि ॥ प
डिअं पि फलं सेयं तरुपडणाउ णच्चंपि ॥ १७७ ॥

व्या० वेषधारी चारित्ररहित जे सु श्रावक छे, ते अरिहंतनी
धुनी सेवा करे, द्दढाचारीपणुं पाळे, इत्यादिक धर्माचरण करेछे, छ
धारी होय ते गृही धर्म तथा यतिधर्म ए बन्नेथी भ्रष्ट थायछे
णिकायदया, विवज्जिउणेव दिक्खिउ ण गिही, जइधम्माउ चुक्को,
धम्माउ, इत्युपदेशमालाया. वेषधारी चारित्रियाने मूळगुणवि
वु फळ थतु नथी. उक्तंच "महव्वय अणुव्वयाइ, छ डेउं जो
सो अन्नाणी मूढो, नावाबुड्डो मुणेअव्वो." माटे केवळ वेषधा
धर्म सारो छे दृष्टांत – फळनी अभिलाषाथी वृक्ष उपर चढी,
ना पडी न जता ते फळ मेळवाई शकाय तो सारुं, पण जो फ
तां नीचे पडी जवाय तो उलटु शरीरने लागे तेथी दुखनी प्रा
रता वृक्षनी नीचे बेसीनेज पडेलुं फळ ग्रहण करिये ते सारु ।

संयमयोगे अप्पु, ठिअस्स सच्चत्तवज्जजोगस्स
रेण किंचि कज्जं आयसहावेण चिठ्ठस्स ॥

व्या० संयमना योगे जे आनद थायछे ते केवळ आत्मस्व
स्थित छे तेने परनुं शुं काम छे ! माटे जेने चारित्त परिणम्यु
रप्रतिबंध मूकीने आत्मद्रव्यमात्रना प्रतिबंधे प्रवर्तवु ॥ १७८ ।
द्रव्यमात्रनेविषे प्रवर्त्याथी बीजाने उपदेश केम देवाशे, एविषे

संविग्गो गीयत्थो बोहेउ परपराइ करुणाए ।
पुण तुसणीउ पुव्व बोहेउ अप्पाण ॥ १

व्या० जे महानुभावी संवेगी गीतार्थ होयछे, ते पोते तो कृत
रतु बीजानी उपर परम करुणाए करीने तेने प्रतिबोध करे तो ते
छे परतु जे एवो न होय तेणे बीजाने उपदेश करवानु मांमीवाल
आत्मानेज बोध करवो जोयेछे जे पोते प्रतिबोध पाम्या विना
करेछे ते केवळ नाटकीआनी पठे नाटक करी देखाडनारोछे एम
अ० एवी रीते ज्यारे परप्रतिबंध सारो नथी, किंतु एकाकी
माटे गच्छ पण प्रतिबंधरूपज छे [illegible]

व्या० गछमां छतां ड्व्यथी जे अनेकता थायछे, तेज नावथी एकता थायछे. अन्यथा गुर्वाज्ञादिक अंकुशविना चित्तरूप हस्ति संसाररूप वनमां फरतां एकत्व नावनारूप वेलीनुं उन्मूलन करी नाखे. अतएव नगवंते "एकस्स अह्नि धम्मो" इत्यादिक प्रबंधे करी एकाकी विहारनो निषेध कस्योछे. श्रीदशवैकालिक सूत्रनेविषे पण आम कह्युंछे "नया लनिज्जा निउणं सयायं गुणाहि अं वा गुणउ समंवा; इक्कोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो. आ गाथामां आम कह्युंछे के, ज्यारे पोताथकी अधिक गुणवालो अथवा समान गुणवालो मले नही, त्यारे एकाकी विहार करवो, ते गीतार्थ आश्री जाणवुं. केमके, ते पापने वर्जीने कामनेविषे असंग करेछे माटे तेने एम कह्युंछे. अने अगीतार्थ तो गीतार्थनी निश्राविना पाप वर्जी शके नही. तेम कामासंगपण टाली शके नही. अतएव "गीयछो अ विहारो, बीउ गीयछ मीसिउ नणिउ॥ इत्तो तइय विहारो, नाणुन्नाउ जिणवरेहिं" ए गाथामां खुलीरीते अगीतार्थने एकाकी विहारनो निषेध कस्योछे. माटे गछमां रही, गुरुकुलवास सेवी, श्रुतादिकनो अन्यास करी, अने साधुसंग छतां पण अंतरंग निर्लेप रहीने जो अध्यात्मनावना नाविये तो परमानंदनी प्राप्ति थायछे. ॥ १८० ॥

किं बहुणा इह जह जह रागद्दोसा लहुं विलज्जंति ॥ त
ह तह पयट्टिअव्वं एसा आणा जिणंदाणं ॥ १८१ ॥

व्या० घणु शुं कहिये, जेजे प्रकारे रागद्वेष विलय थाय तेवी रीते प्रवर्तवुं. एज श्रीवीतरागदेवनी आज्ञा छे. ॥ १८१ ॥

अज्झप्पमयपरिक्खा एसा जुत्तीहिं पूरिया जुत्ता॥ सोहिं
तु पसायपरा तं गीयछा विसेस विऊ ॥ १८२ ॥

व्या० आ अध्यात्ममतपरिक्षा युक्तिएकरी पूरी कीधी, तद्रूप जे आ ग्रंथ छे, तेनुं विशेषज्ञ जेगीतार्थ छे ते मजउपर कृपा करीने शोधन करो ए विज्ञापनाछे. १८२

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया ब्राजंते सनयानयादि विजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ॥ क्रेम्णा यस्यच सद्म पद्म विजयो जातः सुधीः सोदरः सोयं तत्वमिदं यशोविजयइत्याख्यानृदाख्यातवान् ॥ १ ॥

इति पंमित यशोविजयजी उपाध्यायकृत श्री अ
ध्यात्ममतपरीक्षाग्रंथो बालावबोधसहितः समाप्तः

ॐ श्रीजिनायनम

अथ श्रीसमयसार नाटक बनारसीदास कृत गुजराती भाषामा अर्थ सहित प्रारंभ

उपोद्घात

आ ग्रथनी दिगबरी बनारसीदासे शुद्ध हिंदुस्थानी भाषामा पद्यात्मक ग्रथरूप रचना करीछे ए ग्रथकर्त्ता पोते महापंडित तथा कवीश्वर होवाथी विविध प्रकारनी छंदरचना करीने तेणे पोतानी श्रेष्ठ कृति देखाडी आपीछे पदलालित्यता तथा अर्थ गौरवतादिक जे काव्यना सारा गुण वर्णन कर्याछे, ते आ ग्रथनी कवितामा सारी रीते दीठामा आवेछे अलंकारवडे कविता सारीरीते भूषित करीछे आ ग्रथ अध्यात्मिक विषयवालो होवाथी आमा मात्र शात रसज मुख्यछे पण प्रसगानुसारे वाकीना रस पण क्वचित दीठामा आवेछे जोपण आ ग्रथ उपर कह्या प्रमाणे नन्द्वादिकमा गणायला दिगबरीनो रचेलोछे, तोपण एनो विषय आध्यात्मिक होवाथी ते सर्वने उपयोगीछे, माटे आ पुस्तकमा अमे नाख्योछे ए ग्रथनी व्याख्या कोई रूपचदजी नामना पंडिते करीछे, ते पण हिंदुस्थानी भाषामा होवाथी सर्व जनने समज्यामा आवे नही, माटे तेनो आश्रय लईने अमे गुजराती भाषामा व्याख्या करीछे व्याख्या करताए आदिमा मगलाचरणनो दोहरो कर्योछे ते आप्रमाणे –

दोहा – श्रीजिन वचन समुद्रको, कोलगि होइ बखान, रूपचद तौहू लिखै, अपनी मति अनुमान॰ ॥ १ ॥

अर्थ – व्याख्याकर्त्ता रूपचदजी कहेछे के, श्री जिनवचनरूप समुद्रनो कहाशुधी व्याख्यान थाय, तोपण हु मारी मतीन अनुमाने लखी जणावुछु ॥ १ ॥

हवे ग्रथकर्त्ता आरंभमा मगलाचरणरूप श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनी स्तुति करेछे

कवित्त, ३१ कतीसासर्व हस्वाक्षर – करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग शिव मग दरसि, निरखत नयन भविक जल वरखत, हरखत अमितभविक जन सरसि, मदन कदन जित परम धरम हित, सुमिरत भगत भग

तसब मरसि; सजल जलद तन मुकुट सपत फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

अर्थः— जगतमां जे आठ कर्मरूप तिमिर एटले अंधकारछे तेनुं हरण करवाने खग एटले सूर्यरूप छे. जेना चरणनेविषे सर्पनुं चिन्ह छे. जे मोक्षना मार्गने देखाडनारा छे. जेनेनेत्रे करी निरखतां कल्याणरूप जल वर्षेछे, तेणे करी अमित के० प्रमाणविना भव्यलोकरूप सरोवर महा हर्षने पामेछे. जेमाटे कामदेवना क्षय करनार छे, अने जेनुं उत्कृष्ट सहज सुखरूप धर्मने अर्थे भक्तजन स्मरण करी रह्याछे. तेथी तेनुं सब दरसिके० सात भयरूप जे शीत छे, ते नाशी जायछे. जेनुं शरीर जलसहित मेघना जेवुं नीलवर्ण छे. जेना मुकुटनेविषे सात फण छे. जेणे कमठ नामे असुरनुं मान भंजन कर्युंछे. एवा जिनके० श्रीपार्श्वनाथ भगवान, तेने बनारसीदास नमस्कार करेछे ॥ १ ॥

फरीथी विशेषें श्री पार्श्वनाथ स्वामीनी स्तुति करेछे.

सर्व लघु स्वरांत अक्षर युक्त छप्पय छंद. एने चित्रकाव्य पण कहेछेः— सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग; धवल परम पद रमन, जगत जन अमल कमल खग; पर मत जलधर पवन, सजल घन सम तन समकर; पर अघ रज हर जलद, सकल जन नत भव भय हर; यम दलन नरक पद छय करन, अगम अतट भव जल तरन; वर सबल मदन वन हर दहन, जय जय परम अभय करन. ॥ २ ॥

अर्थः— सर्व कर्मरूप खलके० दुष्ट वैरीने दलवा वाला छो. कमठ नामना महा मूर्ख असुर तेरूप पवन आगल मेरु पर्वतनी परें अडग छो. धवलके० निर्मल सिद्ध स्थानकनेविषे रमनारा छो. जगतना लोकोरूपी उज्वल कमलने विकश्वर करवानेअर्थे खगके० सूर्य जेवा छो एकांत नय वादी जे पर मत, तेरूप मेघने मटाडवाने अर्थे पवनना जेवा छो. जल सहित मेघ घटाना जेवो स्याम जेनो शरीर छे. समकरके० उपशमना करनार छो. परके० शत्रुरूप अगके० पापरजने हरण करवाने मेघ जेवा छो जेने सकल लोक नमे छे, अर्थात् त्रिभुवन पूज्य छो. जन्म मरणरूप जे भव भय तेने हरण करनार छो. लोकोना मृत्युने दलवावाला छो. भव्य प्राणीओने नरक पदना क्षय करनार छो. अगम एटले अथाह अने अतटके० अपार एवो जे संसाररूप समुद्र तेने तरवावाला छो. सर्व दोषोमां वरके० प्रधान अने बलवान जे कंदर्पवन, तेने बालवाने हरके० रुद्रना

नेत्रनी अग्नि जेवा हे भगवान तमे जयवता थाओ. वली तमे परम अभय पद ना करनार छो, एटले भय भजन छो ॥ २ ॥ आ छप्पय छद वडे परमेश्वरनी महिमानु वर्णन कर्यु अने पोतानु काव्य चातुर्य दर्शाव्यु छे

आ ग्रंथना कर्त्ता बनारसीदास कहेछे के जेना प्रसादथी परगसेन पिताने घेर मारुं जन्म थयु एवो हुं श्री पार्श्वनाथ भगवाननी स्तुति करुंछुं

सवैया इकतीसा – जिन्हके वचन उर धारत जुगल नाग, भये धरनिंद पद मावति पलकमें, जाके नाम महिमासो कुधातु कनक करैं, पारस पाषान नामी भयो है खलकमें, जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम, अपनो स्वरूप लख्यो भानसो भलकमे, तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब, दीजे मोहि साता दृग लीलाके ललकमे ॥ ३ ॥

अर्थ – ज्यारे श्री पार्श्वनाथ भगवाननी कुमारावस्थाहती त्यारे कोई एक समये श्री बनारसी नगरीविषे एक तापसीनी साथे अज्ञानतपश्चर्यानी निर्भर्त्सना पूर्वक वाद थयो, ते प्रसगे ते तापसीनी धूणीमाना लाकडामा नाग छे एवी रीते श्री पार्श्वनाथ भगवाने कह्यु, ते वातने पेला तापसीए गणकारी नही, तेथी ते लाकडाफोमीने ते नागने बाहेर कहाडयो, पण ते अधबल्यो थयो हतो तेथी तमफडवा लाग्यो, तेना अतना समयमा श्री पार्श्वनाथ भगवाने तेने "ॐ असीआ उसाय नम " ए मत्र सभलाव्यो ते वचन तेणे सारी रीते हृदयमां धारी लीधुं एटलामां तेना शरीरनी शाति थई गई तेना अतना सारा परिणामोने लीधे ते धरणेद्र थयो. तेनी स्त्री पद्मावती हती, ए कथा श्री पार्श्वनाथ चरित्रमा प्रसिद्ध छे ते अद्भुत महिमाने दर्शावता छतां ग्रंथकर्त्ता उपमा लकारवडे पारसमणि अने श्री पार्श्वनाथना ए गुणनी सादृश्यता देखाडेछे –

जेना वचन हृदयनेविषे धारण करीने नाग अने नागणी ए बन्ने पलकमा धरणेद्र अने पद्मावतीरूपे थया आही नाग अने नागणी कहेवाथी दिगंबरीनु मत जाणवु श्वेतांबरी तो एक नाग नेज कहेछे वली पार्श्वपाखान खलक एटले दुनियामां प्रसिद्ध छे एटले पारश मणी नामना पाषाणनुं स्पर्श थताज लोखम नामनी कुधातु सोनु थायछे तो ए पाखाणमा एवी महिमा किहाथी उत्पन्न थई? तेनु उत्तर कहेछे -- पार्श्व एवु नाम श्री पार्श्वनाथने तुल्य छे तेनी महिमा थकी एटले मात्र पार्श्व एवु नाम छे ते नामनीज महिमाथकी ते पार्श्वरूप पाखाणमा एवो गुण थयोछे वली जेनी जन्म पुरीनु नाम बनारसी नगरी छे, अने ग्रंथकर्त्ता कहे

छे के, मारुं नाम पण बनारसी हुं पाम्यो. ते मात्र नामना प्रनावथी में मारुं आत्मस्वरूप जाणी लीधुं. ते केवी रीतें जेम प्रनात समयमां सूर्य पोताना रूपने जलकमां स्वछ प्रकाशे छे, तेनीपरे मारुं रूप पण प्रकाशी रह्युं छे. ए पण श्री पार्श्वनाथ जगवाननी महिमानो प्रताप छे. तेज श्री पार्श्वनाथ जगवान महा शांत रसने देवावाळा छे, ते हवे दृग लीलाकी ललकमेंके० आंख मीचीने उघाडीए अर्थात् एक पलक मात्रनी सत्तामां मुजने आत्म समाधिरूप शाता आपो. एथी निवृत्ति सुखनी सूचना करी छे. ॥ ३ ॥

सिद्ध जगवाननी स्तुति करेछेः—

अडिल्ल छंदः—आविनाशी अविकार, परम रसधाम है; समाधान सरवंग, सहज अनिरामहै; शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है; जगत शिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत है ॥ ४ ॥

अर्थः— जेनोविनाश नथी, अने जेने कोई विकार लागे नही. एवो परम रस एटले कोई केवलीगम्य जे सहजानंद उत्कृष्ट सांतरस, तेना जे धाम एटले घर छे; माटे सरवंगने विषे सहजनी जे अनंत सुखरूप समाधी तेणेकरी जे अ[illegible]राम एटले अति मनोज्ञछे. चौदराजलोकनी उपर विराजमान होवाथी [illegible] [illegible]थी रहित शुद्धछे. सर्वज्ञता पाम्याथी बुद्ध छे. अने सर्वना ईश्वर माटे [illegible]क पद एहवी अवस्थाए करी ते अनादि अनंत छे. अने चउद राजलोकना [illegible] दहन, जमान छे तेथी जगतना शिरोमणि छे एवा जे श्रीसिद्ध जगवान ते स[illegible] जयवंत थाओ ॥ ४ ॥ [illegible]ना म

साधुरूप जगवाननी स्तुति करेछेः--

सवैया इकतिसाः—ज्ञानके उजागर सहज सुख सागर सुगुण रतनागर वैराग रस जर्यो है; सरनकी रीत हरै मरनको जै न करै करनसों पीठ दे चरण अनुसर्यो है; धरमको मंमन जरमको विहंमन जु, परम नरम व्हे के करमसों लर्यो है; ऐसो मुनिराज जुअ लोकमें विराजमान निरखि बनारसी नमसकार कर्यो है ॥५॥

अर्थः— जे ज्ञाननो उद्योत करनार छे. आत्मद्रव्यनुं जे सहजसुख तेना जे समुद्र छे. अने सुगुनजे ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप रत्नत्रयीनी आकर एटले जे खाण छे. पांच इंद्रियोना विषयनेविषे जे वैराग्य ते रूप रसेकरी जे परिपूर्ण थयाछे. कोई परिसह आवीने प्राप्तथयाथी गृहस्थनीपरे शरणनी रीति राखे नही. आत्माने शाश्वतद्रव्य जाणीने जेणे मरणनो नयमुकी दीधो छे. पांच इंद्रियोने

पूर्व आपी तेना विषयोथी विमुख थयाथकी जे चारित्रने अनुसर्या छे, वली जेनो आश्रय लेवाथी धर्मपदार्थ बिराजमान थाय माटे धर्मना मर्दन करनाराछे मिथ्यामतिरूप जे भरम तेनुं विशेषेकरीने जे खंडन करनारा छे, जे परम दयावान थईने कर्मोनीसाथे युद्ध करेछे दयावानने युद्धकरवु संभवे नही तेम छता कह्यु ते माटे विरोधालंकार जाणी लेवो एवी विशेषताने लीधे जे मुनिराज एटले ऋषीश्वर मुअलोकमा विसताळीश लाख मनुष्य क्षेत्रनेविषे विराजमान छे तेने हृदय कमलथी जोईने बनारसीदास नमस्कार करेछे ॥ ५ ॥

हवे पाच अनुव्रत लीधा छे जेमणे एवा समकितीनी स्तुति करेछे

सवैया तेईसा -- भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन, केलि करै शिव मारगमे जगमाहि जिनेश्वरके लघु नंदन, सत्य स्वरूप सदा जिन्हके प्रगटयो अवदात मिथ्यात निकंदन, सत दशा तिन्हके पहिचान करै कर जोरि बनारसि वंदन ॥ ६ ॥

अर्थ -- जे मंदबुद्धि छे ते जीव अने शरीरने एक करी जाणेछे, भेद जाण्या नथी पण जेणे समकित पाम्यो छे, तेना हृदयमा जड अने चेतननुं भिन्नपणुं थयु छे, एवु तेने भेदविज्ञान जागृत थयो, तेथी तेनु चित्त चंदननी पठे शीतल थी तरफर्यु जे मुक्ति मारगमा केलि करे एटले खेल करी रह्या छे, आ जगतमा असीआ रना जे न्हाना पुत्रछे अने साधुजे छे ते सर्वज्ञपुत्र कहेवायछे माटे ते मोधारी छे वली आत्मा सदा निश्चयेकरी सत्यरूपमाज छे, पण मिथ्यातवडे मलिन लीधे थयोछे ते फरी सत्यस्वरूप जेनु निर्मल प्रगटताने पाम्युछे, अने मिथ्यात्वनु निकंदन थयुछे, एटले मिथ्यात्व रह्यु नथी चार अनंतानुबंधीनी जड तुटी गईछे एवी तेमनी शुद्धदशा ओळखीने बनारसीदास बन्ने हाथजोडी वंदना करेछे ए सवैयामा सम्यक्तनी दृढता बतावीछे ॥ ६ ॥

पूर्ण सम्यक्तता दर्शाववानेअर्थे फरी तेनीज स्तुति करेछे

सवैया एकतीसा --स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त साचे साचे वैन कहै साचे जैनमती है, काहूके विरोधी नाहि परजायबुद्धि नाहि, आतम गवेषी न ग्रहस्थहै न यती हैं, सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लक्ष्मीसों अजाची लक्षपती है, दास भगवतके उदास रहै जगतसो, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती है ॥ ७ ॥

अर्थ -- जेनी स्वार्थ एटले आत्मा पदार्थनेविषे साची प्रतीति छे तथा परमार्थ ते मोक्ष पदार्थनेविषे साची प्रतीति छे जेनु चित्त निर्मल छे जे सत्यवचनना बोल

नारा छे. जे साचा जिनमतने ग्रहण करी रह्याछे. जेनुं मन कल्पना करतुं नथी. केम के, ते साते नयनुं शुद्धस्वरूप जाणेछे तेथी कोईना दर्शनना विरोधी नथी. जेम बौध मतानुसारी पर्याय बुद्धिवाळा छे पण द्रव्य बुद्धिवाळा नथी. तेथी जीवने क्षणभंगुर मानेछे. तेम समकितीपर्याय बुद्धिवंत नथी. पण आत्मद्रव्यनी गवेपना करनार छे तेथी तेने पर वस्तुमां मोह नथी. माटे गृहस्थ पण नथी. अने महा व्रत लीधा नथी, तेथी यति पण नथी. पोताना घटनेविषे शुद्ध आत्म द्रव्यने सिद्धसमानज जुएछे. तेथी घटमांज प्रगट सिद्धि देखेछे. अने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रिद्धिनी वृद्धि जेना घटमां सदा प्रगट देखायछे. जे अंतर परमात्मा देव छे तेनुं जेने लक्ष थयुं छे, तेथी अयाची एटले कोईनी पासे कांई मागे नही. एवा लक्षपति छे. वळीजे ए पूर्वोक्त प्रकारना प्रगट स्वरूपने पामेला श्री वीतराग भगवंतने पामीने तेना दास थयाछे; अने जगतथी उदास रहेछे. जे आर्त्त अने रौद्र ए बे ध्यानथी विमुख थयाछे, तेथी सदीव सुखनी सन्मुख थयाछे, एवा समकित्ती जीव महा सुखमयी छे. ॥७॥

फरी पोताना उल्लासथी समकितीनी स्तुति करेछेः—

सवैया इकतीसाः— जाके घट प्रगट विवेक गनधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहकों हरतु है; साचो सुख मानै निज महिमा अमोल जानै,अपुहीमें आपनो सुभावले धरतुहै. जैसे जल कर्दम कतक फल भिन्न करै, तैसे जीव अजीव विलछन करतु है; आतम सगति साधै ज्ञानको उदौ आराधै, सोई समकिती भवसागर तरतु है ॥ ८॥

अर्थः— एवी रीते "उप्पनेवा, विगमेवा, धूवेवा," ए त्रण पद सांभळीने गणधरना हृदयमां प्रगट विवेक उत्पन्न थायछे; अने अर्थनेविषे कोई संदेह रहे नही. तेवी रीतेज समकितीना घटमां विवेक प्रगट थयोछे, तेणेकरी स्वस्थ थई पोताना हृदयमां आनंदने पामी महा मोहने हरण करेछे. पोतानुं मिथ्यात दूर करीने सम्यक्त करेछे. हवे सम्यक्तनी व्यवस्था कहेछेः— जे विषय सुख छे ते तो अनित्य छे, माटे जूठा छे, अने सहज समाधि सुख जे छे ते शाश्वता छे तेथी ते सुखनेज साचुं मानेछे. अने पोतानी ज्ञातारूप महिमा अमोल जाणेछे. तथा ज्ञान दर्शन अने चारित्र जे छे ते पोतानो स्वभाव छे, तेने पोतामांज धारेछे. पहेलां जीव मिथ्यात्वदशामां जीव अने शरीरने एक करी जाणतो हतो, अने हमणा जीव अने अजीवने भिन्नभिन्न लक्षणे करी जाणेछे. जेम पाणी अने चीकल एकठां थईगयां होय, तेने कतकफलनिमेळीनुं चूर्ण नाखवाथी पाणी तथा कादवने ते रेणु भिन्नभिन्न करी नाखेछे, तेम जीव अने अजीवने जुदो जुदो ल

खेछे चारित्रमा आत्मानी शक्तिने साधे, अने मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञाननो उदय थवानी इछा करेछे मतिअज्ञान तथा श्रुतअज्ञानने गमावी दियेछे ते समकिती जीव नवसमुद्रनो तरनार कहेवायछे, ए रहस्य छे ॥ ८ ॥

हवे समकेत पाम्या छता मिथ्यात्वदृष्टिमाज रहेछे, तेनुं वर्णन करेछे

सवैया इकतीसा – धरम न जानत बखानत नरमरूप, ठौर ठौर ठानत लराई पक्षपातकी. भूल्यो अनिमानमे न पाउ धरे धरनीमें, हिरदेमे करनी विचारै उतपातकी, फिरेमावामोलसो करमके कलोलनमे, वैरही अवस्थासो बघूलाकेसे पातको, जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुबाती नारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ए ॥

अर्थ – जे वस्तुना स्वनावरूप धर्मने जाणे नही, अने नर्मरूप मिथ्यावाणीने वखाणे, तथा ठेकाणे ठेकाणे, पोतानु मत स्थापवाने पक्षपातनी लडाई करे अने पोताना अनिमाने नूल्यो थको धरती उपर पग राखे नही, पोतानेज तत्ववेत्ता जाणे, एमा अधर पगवडेकरी उत्प्रेक्षालंकार जाणवो अने हृदयामा जेथी उतपात उपजे एवीज करणीनो विचार करे, अने आ ससाररूप समुद्रनेविषे कर्मरूप, कलोलोना धकाये करी चारे गतिमा मामाभोल करतो फरेछे, जेम वटोलिया वायुमा आवीगएलु पानडुं आकाशमा ऊडीने नम्या करेछे, पण कोई ठेकाणे स्थिर थई रहेतु नथी, तेवीज एनी अवस्था थई रहीछे जेनी छाती रागद्वेषवर्मे तप्त थई रेहेछे, ते तापे करी काली एटले माया तेने राखवाथी कुटिल थइ रहेछे अने कुवाती एटले जे माठी वातोनुंज चितवनकरी रहेछे, तथा पापेकरी नरेली छे माटे नारी जाणवी एवी जेनी छाती छे, एहवो ब्रह्मघाती एटले आत्मघातनो करनार मिथ्यात्वी जीव महापातकयुक्त छे ॥ ए ॥

दोहरा – वदो शिव अवगाहना, अरु वदौं शिवपथ, जसु प्रसाद नापा करो, नाटक नामे गरथ ॥ १० ॥

अर्थ – जिहा सिद्धनो अवगाह थई रह्योछे, ते क्षेत्रने हुं वदन करुछु, अने ज्ञान दर्शन चारित्र ए मोक्षनो पथके० मार्ग छे, तेने हु वदन करुछुं ए मगलाचरण करी हवे पोतानु प्रयोजन कहेछे – जेना प्रसाद थकी समय सार नाटक ग्रथ सस्कृतमा हतो ते प्राकृत नापारूप करुछु ए प्रयोजन कह्यो ॥ १० ॥

हवे आ ग्रथना अधिकारी वनारसीदास पोतेज छे, अने एमा कहेवा लायक पोतानु आत्मद्रव्य छे तेनु वर्णन करेछे – कविवर्णन

सवैया तेवीसा-- चेतनरूप अरूप अमूरति सिद्ध समान सदा पद मेरो; मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो; ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहों गुननाटक आगम केरो. जासु प्रसाद सधै शिवमारग वेग मिटे घटवास वसेरो ॥ ११ ॥

अर्थः– बाह्यात्मामां अंतरात्माने अने अंतरात्मामां परमात्माना स्वरूपने जोईये, ए मारो निश्चयरूप पद कहेवा योग्य थायछे. ते चेतनरूपी अनूपम अमूर्तिक सिद्ध समान छे. जो ते निश्चयरूप पद एवो छे तो पछी ते प्रगट केम जणातु नथी? तेनो उत्तर एम छे के, मोहकर्मनुं कोई एहवुं महात्म्य छे ते प्रसंगथी आत्मअंगके० आत्म प्रदेशनेविषे महाअंधकारनो घेरो छे तेथी प्रगट जखातुंनथी. हमणा कोई ज्ञान कला मुजने उपनी छे ते कलानो अंश प्रगट थयोछे. तेथी नाटक सिद्धांत गुणनुं व्याख्यान करुंछुं. जे आगमना प्रसादवडे मोक्षमार्ग सिद्ध थाय अने जलदीथी शरीरमां वास वसवानुं मटी जाय. एटलेअशरीरपणुं सिद्धथाय.॥ ११ ॥

हवे आ ग्रंथनुं गौरवपणुं बतावीने कविराज पोतानी बुद्धिनुं मंदपणुं देखाडी लघुता जाणवे छेः– लघुता वर्णनः–

सवैया इकतीसाः–जेसे कोउ मूरख महासमुद्र तरिवेको भुजानिसों उद्यत नयो है तजि नावरो; जेसे गिरिउपरि विरपफल तोरिवेकों वावन पुरुष कोउमंग उतावरो; जेसे जलकुंभमें निरखी शशि प्रतिबिंब ताके गहिवेकों कर नीचो करे मावरो; तैसें मै अलपबुद्धि नाटिक आरंभ कीनो गुनीमोहि हसेंगे कहेंगे कोउ बावरो॥ १२॥

अर्थः– जेम कोई मूरख मनुष्य महासागरने तरवा चाहे अने वाहाणने छोडी हाथवडे तरवानो उद्यम करे, तो कार्य केमबने; जेम कोई वामन पुरुष होय अने पहाड उपर वृक्ष होय तेनां फलतोडवाने उतावलो थको उमंग करे, ते कार्य केवी रीते बनी शके? वली एक त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, जेम पाणीना कुंभमां चंद्रनुं प्रतिबिंब पडेलुं जोईने कोई नादान तेने साचो चंद्र समजी हाथ नीचो करे तो तेना हाथमां चंद्रमां केवी रीते आवे? तेमज हुं अल्पबुद्धि छुं, अने आवा नाटकग्रंथनो आरंभ मे कीधो छे, ते मारोआरंभ सफल नही थशे तेवारे बीजा गुणवान पुरुषो कहेशेके, जुउ आ ग्रंथनो आरंभ करेछे एवुं कहीने गुणीजनो मने बावरो जाणी हशी काडशे ॥ १२ ॥

वली ए कार्य करवाने साहस करेछे पुनः

सवैया इकतीसाः– जैसै कोउ रतनसों वींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशमकी दोरी पोइ गई है, तैसै बुद्धीटीका करीनाटिक सुगम कीनो तापरि अलप बुद्धि सुद्धि

परिनई है, जैसे काहु देसके पुरुप जैसी नाषा कहै, तैसी तिनहूके बालकनी सिखीलई है, तैसे ज्यो गरथको अरथ कह्यो गुरु त्यो हमारी मति कहिबेको सावधान नई है॥ १३

जेम कोई हीरानी कणीवडे कोई कठण रतनने आगलथी वींधी राख्युं होय, ने ते पठी तेमा पढुवो रेशिमनी दोरी परोवे ते सुगम चालीजाय तो तेम आ कार्य पण थशे केमके मुनि अमृतचंद अने पाम्डेराजमल जेवा पंडितो थया तेमणे आ ग्रंथनी टीका बालबोधमा करीने आ नाटकग्रथने सुगम कर्योछे, तो तेउपर माहरी अल्प बुद्धि छे तोपण आ ग्रंथमा सुधी रीते परणमी गई छे, तेथी आ कार्य नेविपे म्हारी समर्थाइनो दृष्टांत देखाडुं छुं – जेम कोई देशनो वसनारो पुरुप पोतानी देशनापामा बोले अने तेनुं बालक होय तेपण तेनीपासे रहेतोथको ते नापा शीखी ले छे, तेमज आ कार्य पण छे केमके मारा गुरुए आ ग्रथनो अर्थ मने कह्योछे, तेज प्रमाणे आ ग्रंथनो अर्थ केहेवाने मारी बुद्धि समाधिवत थईछे एटले आगल कहेलो पश्चाताप मट्यो ॥ १३ ॥

हवे पोताना सामर्थ्यनुं कारण बतावेछे

सवैया इकतीसा –कबहो सुमति व्हे कुमतिको बिनाश करै, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है, कवहो दया व्हे चित्त करत दयालरूप, कबहो सुलालसा व्हे लोचन लगति हे, कबहो कि आरती व्हे प्रनु सनमुख आवे, कबहो सु नारती व्हे बाहरि बगति है, धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी हिरदे हमारे नगवतकी नगति है १४

अर्थ – अमारा हृदयमा नगवतनी नगती रहीछे, ते क्यारेकतो सुमतीरूप थईने कुमतीनो नाश करेछे, क्यारेक अंतरविपे ते नगती विमल ज्योतीरूप थई, ने जागृत थायछे, अर्थात् सम्यक्त चेतना तेज नगवतनी नक्ति छे, क्यारेक तेज नक्ति दयारूप थईने चित्तने दयालरूप करेछे, अने क्यारेक ते नक्ति पोताना आत्मईश्वरने जोवानी लालसा के० लगन थकी एटले लयलागवामा लोचनोने स्थिर करेछे अने क्यारेक तो ते नक्तिना रति के० अति रंगेकरी प्रनु सनमुख थई रेहेछे (बीजेअरथे प्रनू सनमुख आरती करेछे ते) अने क्यारेक तो ते नगति सुनारती के० नली वाणीरूप थईने बाहार बगति के० शब्द करी रहेछे जेवी जेवी दशा धारेछे ते वारे तेवी तेवी रीतनी करनारी छे, ते एवी नगवतनी नक्ति अमारा हृदयमा वसी रहीछे तेथी आ नाटकग्रंथ रचनारूप कार्यमा पण एक नगवतनी नक्तिज कारण छे एतात्पर्यार्थ छे ॥ १४ ॥

हवे आ ग्रंथनो महिमा वर्णवेछे. अथ नाटक वर्णनः—

सवैया इकतीसाः— मोख चलवेकों सोन करमको करै वोन, जाको रस भौन बुधलौन ज्यों घुलति है; गुनको गरंथ निरगुनको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलित है; याहीके जु पछी सो उडत ज्ञान गगनमेंऽ याहीके विपछी जग जालमें रुलत है; हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हीय फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

अर्थः— जेम भला सुकनवडे कार्य सिद्धि थायछे, तेम आ ग्रंथपण मोक्षमार्गें चालनारने कार्यसिद्धिनो करनार छे; तथा आ ग्रंथ कर्मरूप केफनी जाल काढवाने वमन करवानुं औषध छे; अने जैन ग्रंथनो रस छे ते रस भौन के० पामिने तेमां पंडित लोक लौननीपरे गर्क थईरह्याछे वली जेमां गुणजे ज्ञान दर्शन चारित्र तेनी ग्रंथ के० रचनाछे, परमतिनी अपेक्षाये निर्गुण जे मोक्षपद तेनो सुगम पंथ छे ते निर्गुण कहेवो छे, जेनो यश अक्षय सुख छे; जेने कहेवाने इंद्र पण अकलायछे अने आ ग्रंथनो जेणे पक्ष लीधो छे, ते तो आ ग्रंथरूप पांखना प्रभावथी ज्ञानरूप आकाशमां पक्षीनी परे उडी रह्याछे अने जे आ ग्रंथना विपक्षिछे ते पांखरहित पक्षीनी परें जगतरूप पाराधीनी जालमां रुली रह्याछे तेमाटे आ नाटकनामा ग्रंथ ते हाटक एटले सुवर्णसमान छे अने जेम गीता ग्रंथमां श्रीकृष्णे वैराटरूप महोटा विस्तारें करी देखाड्युं तेवो आ ग्रंथ पण विस्तारवंत छे एवा आ नाटक ग्रंथने श्रवण करतामां हैयाना कमाड ते फाटक के० खुली जायछे ॥ १५ ॥

दोहराः— कहों शुद्ध निहचैं कथा, कहों शुद्ध विवहार; मुक्ति पंथ कारन कहों, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥

अर्थः— जे शुद्ध निश्चयरूप कथाछे ते कहीश. अने शुद्ध व्यवहार जे छे ते पण कहीश अने मुक्ति पंथनुं कारण जे छे ते पण कहीश अने अनुभवनो जे अधिकार छे ते पण हुं कहीश ॥ १६ ॥

अनुभव पदार्थनुं लक्षण कहेछेः— अनुभव वर्णनं

॥ दोहा ॥ वस्तुविचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम; रस स्वादन सुख ऊपजे, अनुभौ याको नाम ॥ १७ ॥

अर्थः— अजाणीवस्तु जाणवाने मनमां विचार कर्याथी तथा तेनुं चिंतन कर्याथी एम खोजतां खोजतां ज्यारे मनमां ठीक ठरे त्यारे सत्य समज्याना रसनो स्वाद प्राप्त थाय ने तेथी सुख उपजे तेनुं नाम अनुभव छे ॥ १७ ॥

दोहरा — अनुभौ चिंतामनि रतन, अनुभौ है रसकूप, अनुभौ मारग मोखको, अनुभौ मोख सरूप ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ अनुभव जेछे तेज चिंतामनी रत्न छे, अने तेज अनुभव रसायननी कुपी छे, अनुभव तेज मोक्षनो मारग छे अने अनुभवज मोक्ष सरूप छे ॥१८॥

अनुभव महिमा

सवैया इकतीसा — अनुभौके रसकों रसायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहै तीरथकी ठौर है, अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनुभौ अधोरसा सु उरधकी दौर है, अनुभौकी केली यहै कामधेनु चित्रावेली, अनुभौको स्वाद पंच अमृतको कौर है, अनुभौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै अनुभौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

अर्थ — जगतवासी लोक अनुभवना रसने रसायन केहेछे, केमके जेम रसायन लोढानु सुवर्ण करेछे, तेम अनुभव जेछे ते मिथ्यात्वने फेडीने सम्यक्ति करे छे, जेम तीर्थनी ठोर जवाथी अपावन होय ते पावन थायछे तेम ग्रंथविषे अनुभवनो अभ्यास ते अजाणने जाण करेछे. अने अनुभवनी जे रसा के० पृथवी ते हज सुवर्ण पोरसा छे, एटले अनुभवनी उत्पती छे ते सोवन पोरसानी परे वृद्धि पामेछे अने अधोरसा के० पाताल लोक, ते पण अनुभव रूपमा छे, अने उर्ध्व लोकनी दोर ते पण अनुभवरूपमाज छे, एटले अनुभवमाज स्वर्ग नरक छे, अने अनुभवनी केली के० रमत ते कामधेनुरूप छे, ते आपणीऋद्धिने वधारनारी छे, अने ते अनुभवनी जे केली छे ते अक्षय ऋद्धि करवाने चित्रावेली छे, अने अनुभवनोस्वाद ते पंचामृतना कौर के० ग्रास जेवो छे अनुभव करमने तोमेछे, ने परमात्मानी प्राप्ति जोडे छे, एटले अनुभवथी खोजता परमात्मानी प्राप्ति थायछे, तेथी सर्व धर्म धारण करवामा अनुभव जेवो बीजो कोई धर्म नथी एटले अनुभव ज्ञान जाणवाथीज मोक्ष मार्ग नजीक छे ॥ १९ ॥

हवे अनुभव साधवाने छ द्रव्यनु वर्णन करेछे तेमां प्रथम जीव द्रव्य वर्णन —

दोहरा ॥ चेतनवंत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत, अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरवविरतंत ॥ २० ॥

अर्थ — जाणवा मात्रने चेतन कहेछे तद्रूप शक्तीवान छे, जेना अनंत गुण छे जेमा पर्याय के० नामांतरपणु पामवानी अनंत शक्ती छे, इंद्रिय अगोचर

छे, तेथी अलक्ष छे, देहना खंड थाय पण आत्मा अखंडित छे, सर्व लोकमां नद्यो छे तेथी सर्व गत छे, एवुं जीव द्रव्यनुं स्वरूप छे. ते कह्यो. ॥ २० ॥

हवे पुद्गल द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. अथ पुद्गल द्रव्य यथाः–

दोहराः– फरस वर्न रस गंधमय, नरद फास संठाण; अनुरूपी पुद्गल दरब, नन्न प्रदेश परवान ॥ २१ ॥

अर्थः–स्पर्श वर्ण रस गंध ए गुणमय सदा रहे, नरद जे सोगठीरूप राग तेना पासा मां सूक्ष्म, वृत्त, अस्त्र, चतुरस्त्र, आयत ए पांच संस्थान छे; तेथी एनुं नाम संस्थान छे. पोत पोतानी वर्गणा योग्यरूप ग्रहण करे, तेथी ए पुद्गल द्रव्य अनुरूपी अथवा पर माणुंरूपी छे. जेम आकाश प्रदेश अनंत छे, तेम ए पण अनंत प्रमाण छे ॥ २१ ॥

हवे धर्म द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. धर्म द्रव्य यथा.

दोहराः– जैसै सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म; तैसै पुद्गल जीवको, चलन सहाई धर्म. ॥ २२ ॥

अर्थः--जेम पाणीना नरावमां माछलुं गमन क्रिया करेछे, तहां क्रियानो कर्त्ता माछलुं छे, अने सलिल समूह जे पाणीनो नराव ते क्रियानो साधक छे तेम पुद्गलद्रव्यनी तथा जीवद्रव्यनी चलन क्रियानो साधक धर्मास्तिकाय द्रव्य छे. ॥ २२ ॥

हवे अधर्मास्तिकाय द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. अधर्म द्रव्य यथा.

दोहराः– ज्यों पंथिक ग्रीषमसमै, बैठे छाया माहिं; त्यों अधर्मकी नूमिमें, जड चेतन ठहरांहि. ॥ २३ ॥

अर्थः-- जेम कोई वटेमार्गु बेसवानी क्रियानो कर्त्ताछे, ने क्रियानी साधक छाया छे, तेम अधर्मास्तिकायनी नूमी के० अवगाहना तेमां जड जे पुद्गल ने चेतन जे जीव ते बने स्थिर थायछे, तेथी अधर्मास्तिकाय द्रव्य स्थिरतानुं कारणछे. ॥ २३ ॥

हवे आकाश द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. आकाश द्रव्य यथा.

दोहराः– संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास; जो नाजन सब जगत को, सोइ दरब आकाश. ॥ २४ ॥

अर्थः-- संतत के० निरंतर जेना उदरमां समस्त पदार्थ वसी रह्याछे, अने जे सर्व जगतनुं नाजन के० आधारनूत छे, ते आकाश द्रव्य जाणवुं. ॥ २४ ॥

हवे कालद्रव्यनुं लक्षण कहेछे. काल द्रव्य यथा.

दोहराः-- जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तु थिति ठान, परावर्त्तवर्त्तन करै, काल दरब सो जान. ॥ २५ ॥

अर्थ -- जे द्रव्य वडे सघला वस्तुनी स्थिति बंधाय एटले पेला सकल वस्तुने नवी बतावे, ने पछवाडेथी ते सघलीने जुनी करी देखाडे, अने उलट पालट वर्त्तवानी दशाधरे ते कालद्रव्य जाणवु ॥ २५ ॥

हवे आ ग्रंथमा कहेवा लायक नव तत्व छे तेनुं वर्णन करेछे -- तेमा प्रथम जीवतत्वनी समज पाडेछे नवतत्व वर्णन, जीवतत्व यथा

दोहरा -- समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास, वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास ॥ २६ ॥

अर्थ -- सर्व जीव बराबर छे ए समता, घटघटमा रमी रेहेछे ए रमता, ऊर्ध्व दिशे गमन करवु ए उरधता, सर्व पदार्थनो जाणनार ते ज्ञायकता सुखमय भासे छे तेथी सुखभास, सुखदुःख वेदे ए वेदकता, अने चेतना गुणथी चैतन्यता ए सघलो जीव तत्वनो विलासछे ॥ २६ ॥

अथ अजीवतत्व यथा

दोहा -- तनता मनता वचनता, जडता जड संमेल, लघुता गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल ॥ २७ ॥

अर्थ -- शरीरपणुं, मनपणु, वचनपणु, जडवस्तुमा भेलभेल थवापणु, लघुपणु, गुरुपणु, गमनपणुं ए सर्व अजीवतत्वना खेलछे ॥ २७ ॥

अथपुन्यतत्व यथा

दोहरा -- जो विशुद्ध भावनि बधे, अरु ऊरध मुख होय, जो सुखदायक जगतमें, पुन्य पदार्थ सोय. ॥ २८ ॥

अर्थ -- जे पदार्थ विशुद्ध परिणामथी वधे, अने जेनु ऊर्ध्वमुखछे, ऊर्ध्वगति एज चडेछे, जे पदार्थ जगतमा सुखदायकछे, ते पुन्य पदार्थ जाणवो ॥ २८ ॥

अथ पाप तत्व यथा

दोहरा -- सकिलेसि भावनि बधे, सहिज अधोमुख होय, दुःखदायक ससारमें, पाप पदारथ सोय ॥ २९ ॥

अर्थ -- जे पदार्थ सकलेश भाव वडे कषायनीवृद्धीथी वधे, सेहजे जेनी गती नीची छे अधोमुखछे, अने जगतमा दुःखदायक छे तेज पाप पदार्थ केवायछे २९

अथ आश्रव तत्व यथा

दोहरा -- जोई करम उद्योत धरि, होइ क्रिया रस रत्त, करषै नूतन करम कों, सोई आश्रव तत्त ॥ ३० ॥

अर्थः-- जे कर्मनो उदय धरीने शुभ तथा अशुभ क्रियाना रसमां रत थई रहे, त्यारे नवां करमनुं करखे के० खेचवुं करे ते आश्रव तत्व केवाय. ॥ ३० ॥

अथ संवर तत्व यथा.

दोराः-- जो उपयोग सरूप धरि, वरतै जोग विरत्त; रौके आवत करमकों, सो है संवर तत्त. ॥ ३१ ॥

अर्थः-- जे शुद्ध उपयोग स्वरूपने धारीने मन वचन काया जोगथी विरक्त थको वर्त्ते अने नवां करम आवताने रोकी राखे ते संवर तत्व कहियें. ॥ ३१ ॥

अथ निर्झरा तत्व यथा.

दोहाः-- जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरण आउ, खिरवैकों उद्यत भयो, सो निर्झरा लखाउ. ॥ ३२ ॥

अर्थः-- जे पूर्व कालनेविषे आयुविना सात कर्म सत्तारूप हतां अने आयु कर्म वर्त्तमान कालमां सत्तारूप छे तेनी स्थिति पूर्ण करीने पछी नीरस कर्मने विखेरवामां जे जीव उद्यमवंत थयो ए निर्जरानुं लक्षण जाणवुं. ॥ ३२ ॥

अथ बंध तत्व यथा.

दोहाः--जो नव कर्म्म पुरानसों, मिलें गंठि भिढ होइ; सकति बढावै वंसकी, बंध पदारथ सोइ. ॥ ३३ ॥

अर्थः-- जे नवां कर्म जूना कर्म साथे आवी मले, अने तेनी गांठ दृढ बंधाय, अने आगल जतां ते कर्मना वंसनी शक्ती चढती थाय, ते बंध पदारथ केवाय.३३

अथ मोक्ष तत्व यथा.

दोहाः--थिति पूरन करि जो करम, षिरे बंध पद भानि; हंस अंस उज्वल करै, मोक्ष तत्व सो जानि. ॥ ३४ ॥

अर्थः-- जे कर्मनी स्थितिने पूर्ण करीने कर्मने खेरे के० क्षयकरी नाखे अने बंध पद के० सत्तावन प्रकारें बंधस्थान तेने भानि के० भांगीने हंस के० परमात्माना अंसने क्रमे उज्वल करे तेज मोक्ष तत्व जाणवुं. ॥ ३४ ॥

हवे कवित्त छंदमां पदार्थनी नाममाला एटले प्रयोजनवाला नामनी नाममाला लखी जणावेछेः

अथ नाम माला सूचनिका मात्र लिख्यते अथ समुच्चय वस्तुके नाम.

दोहराः—भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व; द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व. ॥ ३५ ॥

अर्थ—प्रथम सामान्यपणे वस्तुना नाम कहेछे भाव, पदारथ, समय, धन, तत्व, वित्त, वस्तु, द्रव्य, द्रविण, अर्थ, इत्यादि घणा वस्तुना नाम छे ॥ ३५ ॥

अथ शुद्ध जीव द्रव्यके नाम -

सवैया इकतीसा —परमपुरुष परमेसुर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है, अनादि अनंत अविगत अविनाशि अज, निरद्वद मुकत मुकुद अमलान है, निराबाध निगम निरजन निरविकार, निराकार ससार सिरोमनि सुजान है, सरव दरसी सरवज्ञ सिद्ध साई शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

अर्थ —परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्ण, परमप्रधान, अनादिअनत, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्द्वद्व, मुक्ति, मुकुद, अम्लान, निराबाध, निगम, निरजन, निर्विकार, निराकार, संसारसिरोमनि, सुजान, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान, कहीये ॥ ३६ ॥

हवे कर्म व्याप्त अशुद्ध जीव द्रव्यना नाम कहेछे --संसारी जीव द्रव्यके नाम

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है, चिद्रूप स्वयंभू चिन्मूरति धरमवत, प्रानवत प्रानि जतु भूत भव भोगी है, गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी, अगधारी संगधारी जोगधारी जोगी है, चिन्मय अखंड हस अषर आतमराम, करमको करतार परम विजोगी है ॥ ३७ ॥

अर्थ —चिदानद, चेतन, अलख, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्धोपयोगी, चिद्रूप, स्वयभू, चिन्मूर्ति, धर्मवत, प्राणवत, प्राणी, जतु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेषधारी, विद्याधारी, अगधारी, सगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय अखड, हस, अक्षर, आत्मराम, कर्मकर्त्ता, परमवियोगी कहिये. ॥३७॥

अथ आकासके नाम —

दोहरा— पं विहाय अबर गगन, अंतरिक्ष जगधाम, व्योम वियत नभ मेघपथ, ए अकाशके नाम ॥ ३८ ॥

अर्थ —ख, विहाय, अबर, गगन, अतरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत, नभ, मेघपथ, ए आकाशनां नाम. ॥ ३८ ॥

अथ कालके नाम

दोहा—यम, कृतांत, अतक, त्रिदस, आवर्त्ती मृतथान, प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान ॥ ३९ ॥

अर्थः--यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्त्तीक, मृतस्थान, प्राणहरण, आदित्य तनय, एवां कालनां नाम छे. ॥ ३९ ॥

पुंन्यके नाम यथा.

दोहाः--पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकर रोग शुन्न कर्म ; सुखदायक संसारफल, न्नागबहिर्मुख धर्म. ॥ ४० ॥

अर्थः--पुन्य, सुकृत, ऊर्ध्ववदन, अकररोग, शुन्नकर्म, सुखदायक, संसार फल, न्नाग, बहिर्मुख, धर्म,ए पुन्यनां नाम छे. ॥ ४० ॥

अथ पापके नाम यथा.

दोहाः-- पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ; कलिल कलुष किल्लविष दुरित, अशुन्न कर्मके नाम ॥ ४१ ॥

अर्थः-- पाप, अधोमुख, एन, अध, कंप, रोग, दुःखधाम, कलिल, कलुष. किल्विष, अने दुरित, ए अशुन्न कर्मनां नाम जाणवां. ॥ ४१ ॥

अथ मोक्षके नाम.

दोहाः--सिद्धछेत्र त्रिन्नुवन मुकुट, शिवमग अविचल थान ; मोषमुगति वैकुंठ शिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥

अर्थः--सिद्धक्षेत्र, त्रिन्नुवनमुकुट, शिवमार्ग, अविचलस्थान, मोक्ष, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचमगति, अने निर्वाण ॥ ४२ ॥

अथ बुद्धिके नाम यथा.

दोहाः--प्रज्ञा धिषना सेमुखी, धी मेधा मति बुद्धि ; सुरति मनीषा चेतना, आय अंसविशुद्धि. ॥ ४३ ॥

अर्थः-- प्रज्ञा, धिषना, सेमुषी, धी, मेधा, मति, बुद्धि, सुरति, मनीषा, चेतना, आसय, अंसविशुद्धि कहिये ॥ ४३ ॥

अथ विचक्षण पुरुषके नामः--

दोहाः-निपुन विचछन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान ; पटु प्रवीन पंमित चतुर, सुधी सुजन मतिमान. ॥ ४४ ॥ कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत ; ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन संत. ॥ ४५ ॥

अर्थः--निपुण, विचक्षण, विबुध, बुध, विद्याधर, विद्वान, पटु, प्रवीण, पंमित, चतुर, सुधी, सुजन अने मतिमान ॥ ४४ ॥ कलावान, कोविद, कुशल, सुमन, दक्ष, धीमंत, ज्ञाता, सज्जन, ब्रह्मविद, तज्ञ, गुणीजन अने संत. ॥ ४५ ॥

अथ मुनीश्वरके नाम –

दोहा –मुनि महत तापस तपी, भिक्षुक चारितधाम, यती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिषि नाम ॥ ४६ ॥

अर्थ –मुनी, महत, तापस, तपी, भिक्षुक, चारित्रधाम, यति, तपोधन, संयमी, व्रती, साधु ए ऋषिना नाम जाणवा ॥ ४६ ॥

दरसनके नाम –

दोहा –दरस विलोकन देखनो, अवलोकन द्रिगचाल, लखन दृष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल ॥ ४७ ॥

अर्थ –दर्शन, विलोकन, देखवु, अवलोकन दृगचालन, लखवु, दृष्टी, निरक्षण, जोवु, चितवन, चाहन, ने भालवु ॥ ४७ ॥

अथ ज्ञान तथा चारित्रके नाम –

दोहा –ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान, सयम चारित आचरण, चरन वृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥

अर्थ –ज्ञान, बोध, अवगम, मनन, जगभानु, जगजान, सयम, चारित्र, आचरण, चरण, वृत्ती, धैर्यवान ॥ ४८ ॥

अथ साचके नाम --

दोहा –सम्यक् सत्य अमोघ सत, निसदेह निरधार, ठीक जथारथ उचित तथ, मिथ्या आदिअकार ॥ ४९ ॥

अर्थ –सम्यक्, सत्य, अमोघ, सत्, नि सदेह, निर्धार, ठीक, यथार्थ, उचित, तथ्य, मिथ्या शब्दने आदि अकार लगाडीने बोलीये तो अमिथ्या शब्दथाय ते पण एनु नाम जाणवु ॥ ४९ ॥

अथ जूठके नाम –

दोहा –अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक, मुधा मोघ निष्फल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥ ५० ॥

अर्थ –अयथार्थ, मिथ्या, मृषा, वृथा, असत्य, अलीक, मुधा, मोघ, निष्फल वितथ, अनुचित असत्य, अने, अठीक ॥ ५० ॥ इति नाममाला समाप्ता

अथ समयसारके द्वादश द्वार वर्णन –

सवैया इकतीसा –जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आश्रव सवर निरजरा बंध मोष है, सरव विशुद्धि स्याद्वाद साधिसाधक द्वादस द्वार धरे समैसा

र कोष है; दरवानुयोग दरवानुयोग दूरि करै, निगमको नाटक परम रस पोष है, ऐसो परमागम बनारसी बखाने यामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारितकी चोष है॥५१॥

अर्थः— जीवद्वार, अजीवद्वार, कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार, पुन्यपाप द्वार, आश्रवद्वा संवरद्वार, निर्जराद्वार, बंधद्वार, मोक्षद्वार, सर्व विशुद्धिद्वार, स्याद्वाद द्वार, साध्य साधकद्वार, आसमय सारना ए बार द्वाररूप कोष के० कोठार छे; आ ग्रंथमां द्रव्यानुयोग के० द्रव्यनो विचारकरवो, पछी द्रव्यानुयोग दूर करवो, ने शुद्ध आत्म सत्तानोज विचार करवानुं अने निगमके० परमात्मानुं नाटक एमां परम शांतरसनो पोष छे, ए परम सिद्धांतने बणारसीदास बखाणेछे. वली आ ग्रंथमां ज्ञाननुं निदानके० मूलविवरो तथा शुद्ध चारित्रनी चोख कें० चोखी क्रिया कही बताववानीछे॥५१

अथ ग्रंथारंभको नमस्कार मंगलाचरण रूप.

दोहराः— शोभित निजअनुभूतियुत, चिदानंद भगवान; सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ ५२ ॥

अर्थः— जे पदार्थ पोताना अनुभव युक्त शोभित छे, चितके० चेतना अने आनंदित तेचिदानंद कहियें, तथा भगवान के० ज्ञानवंत छे, एवो साररूप पदार्थ संसारमां आत्मा छे, जे समस्त पदार्थनो जाणनार महोटो ज्ञाता छे ॥ ५२ ॥

अथ आत्मानुं वर्णन करी नमस्कार करेछेः—

सवैयाः— तेईसाः— जो अपनी द्युति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी; चेतन अंक सदा निकलंक महासुखसागरको विसरामी; जीव अजीव जिते जगमें तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी; सो शिवरूप वसै शिवथानक, ताहि विलोकनमें शिवगामी ॥ ५३ ॥

अर्थ ॥ जे पोतानी द्युतिवडेज पोते विराजमान छे, एटले पोताथी पोते भासी रह्यो छे, पण बीजा पदार्थवडे जेनो भास थतो नथी एवो कोई प्रधान पदार्थ नामी प्रसिद्ध छे. जेनुं चेतनरूप अंक के० लक्षण छे ते सदा निकलंक छे, निरंजन छे, महोटा सुखसमुद्रमां जेनो विश्रांम थई रह्योछे, एटले एकाग्रचित्तें जे सहेजे समाधिसुखमां रमी रह्योछे, जगतमां जेटला जीव अजीव पदार्थ छे, ते सर्वना गुणनो ग्राहक छे. अने अंतरजामी छे, जे घटघटमां विराजमान छे. तेहज शिवरूप के० सिद्धस्वरूप थयो थको लोकाग्रभागे सिद्धावस्थामां वसेछे; जेने ज्ञान दृष्टिवडे जोईने मुक्ति गामी जीव नमस्कार करेछे ॥ ५३ ॥

हवे भगवाननी वाणीने नमस्कार करेछे अथ जिनवाणी वर्णन

सवेया तेइसा –जोग धरै रहि जोगसुं भिन्न अनंत गुनातम केवल ज्ञानी, तासहृदे द्रहसो निकसी सरिता सम व्हे श्रुत सिंधु समानी यातें अनंत नयातम लछन, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी, बुद्धलखै न लखै दुरबुद्धि सदा जगमाहि जगे जिनबानी५४

अर्थ – जे त्रण योगने धारेछे तथापि ते मन वचन कायना जोगथी प्रथक रहे अलिप्त रहेछे, अने अनंत गुण प्रगटताने लीधे जेनो आत्मा कोई केवल ज्ञानी पुरुष छे ते केवल ज्ञानीना हृदय रूप द्रह छे, तेमाथी जे नदीरूप थईने निकली ते शास्त्ररूप समुद्रमा जई भली छे, ज्याथी अनंता नय स्वरूप लक्षण सत्य स्वरूपे जिनजीयें सिद्धांतमा वखाणी छे, एवी जे वाणी ते तो बुद्धिवंत तत्व दर्शी होय तेज लखे, अने दुर्बुद्धि मिथ्यामति होय ते लखे नही, जाणे नही, एवी जिनेश्वरनी वाणी जगतमा सदा जागृत थई रही छे ॥ ५४ ॥

हवे जीव द्वारनु विचार लखेछे ते जीव कवीश्वर पोतेज छे माटे पोतानी व्यवस्था कहेछे अथ जीवद्वार कवि व्यवस्था कथन –

छप्पय छंद -- हो निहचे तिहु काल, शुद्ध चेतनमय मूरति, पर परिनति संयोग, भई जडता विस्फुरति, मोह कर्म पर हेतु, पाइ चेतन पर रच्चै, ज्यो धतूर रस पान, करत नर बहु विध नच्चै, अब समय सार बर्नन करत, परम शुद्धता होउ मुझ, अनयास बनारसि दास कहि, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ५५ ॥

अर्थ – शुद्ध निश्चयनयवडे अतीत अनागत वर्त्तमान कालमां हुं शुद्ध चेतनामय पिंड छु, एहिज मारी मुरति छे, ते एवी छे तारे शुद्ध स्वभाव छांडीने विभावमा केम परिणम्यो छे ? एनो उत्तर कहेछे जे, कर्मादिक परवस्तु छे तेनुं अहीं परिणमन थयु तेथी तेनी जडता अहीं विस्फुरति थई एटले जडता फेली शिष्य पूछे छे के, एवो शुद्ध स्वभाव हतो त्यारे परपरिणति केम ग्रहण करी? तेनो उतर, मोह कर्म राग द्वेष रुप जे छे तेज परहेतु उत्कृष्ट कारण पामीने चेतन आत्मा परनी साथे मोहित थयो छे, तेनो दृष्टांत कहेछे - जेम धतुरानो रस पान करी माणस तरेहवार रीते नाचवा लागे, तेम अनादीनो मोह कारण पामीने चेतन जे छे ते पोतानो शुद्ध स्वभाव छांडीने विभावथी मूर्छा पामी रह्योछे हवे समयसार के० आत्मानु वर्णन करताज मुझने परम शुद्धताना स्वभावनी ओलखाणथई एटले शुद्ध स्वभावनी खबर पडी तेथी विभावपणु नाश पाम्यु तेथी अनायास के० घणा ग्रंथ वाचवानो प्रयास कीधा विनाज वणारसी दास

ज्ञाता कहेछे. के सहज के० आत्माने संगे अनादीथी भ्रमनी अरुक ते मिथ्या मत मग्नता लागी रहीछे ते मारी मिथ्यामत मटी जाओ. ॥ ५५ ॥

हवे आ जीवनी शुद्धता ते आगमथी पामीये माटे आगम वर्णवे छे अथ आगम व्यवस्था कथन.

सवैया इकतीसाः— निहचैमें रूप एक विवहारमें अनेक, याही नै विरोधमें जगत भरमायो है; जगके विवाद नासिबेकों जिन आगम है, जामें स्यादवाद नाम लछन सुहायो है; दरसन मोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रवान जाके हिरदेमें आयो है; अनैसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरन तुरत तिन पायो है.॥५६॥

अर्थः— सर्व आगम ज्ञानरूप निश्चयनयमां एकरूप देखाय छे, अने व्यवहार नयनी अपेक्षावडे अनेक रूप देखाय छे; पण व्यवहार नयमां नयनो विरोध म होटो छे, एज नय विरोधमां जगत भरमायुं छे, अने एज भरमवडे जगतमां वाद विवाद उपज्यो छे, माटे जगतनो विवाद मटाडवाने वचमां प्रमाणिक साक्षी रूप जिनेश्वरनो आगम छे; जे आगममां स्याद्वाद नाम लेवाथी सर्वपदार्थनुं लक्षण सर्वने सोहावे छे; स्यात् एटले किवारेक द्रव्य दृष्टीए देखीए त्यारे ए नय साचो ने केवारेक पर्याय दृष्टीए जोइये त्यारे ए नय साचो; एवुं कहे थके शिष्य पूछेछे के एवो स्याद्वाद सहित जिन आगम प्रमाण छे, त्यारे सर्वना हृइयामां केम आवतो नथी? जे पुरुषनो अनादि कालनो मिथ्या दर्शन मोह गयो छे, तेना हृइयामां ए जिन आगम प्रमाणरूप आव्योछे, पण मिथ्या दर्शन मोह वालाना ह्रदयमां ए आवे नही; हवे स्याद्वादना जाणनारने केवुं फल मले ते केहेछेः-- जे पद नय रहित छे, एटले नयनी पछे नथी, केमके, नयतो एकांत ग्राही छे, ते पूर्ण पदने केम ग्रहण करी शके? अने पूर्ण पद अखंडितछे, ने ते वली अनादि कालथी छे, माटे अनूतन के० पुरातन छे एवुं अनंत तेजवालुं पूर्ण पद तेने ते तुरत पाम्यो छे५६

हवे निश्चय अने व्यवहार नयने लीधे आगम कह्यो तेवारे शिष्य पुछेछे के ए बे नयमां कार्य सिद्धिकारी नय कयो छे? तेनो उत्तर गुरु आपे छे.

अथ निश्चय व्यवहार कथन.

सवैया तेईसाः— ज्यों नर कोउ गिरै गिरिसों तिहि, सोइ हितू जु गहै दिढ बांही; त्यों बुधकों विवहार भलो तबलों जबलों शिव प्रापति नांही; यद्यपि यों परवान तथापि सधै परमारथ चेतनमांही; जीव अव्यापक है परसों विवहार सुतौ परकी परछांही ॥ ५७ ॥

अर्थ :- जेम कोई पुरुष पाहाडनी उपरथी नीचे पडतो होय ने बीजो पुरुष तेनो हाथ मजबुत झाली रही तेने पडतो अटकावी राखे, ते तेनो हीत करनार केहेवाय , तेम पंमितोने ज्या सुधी शिवसुखनी प्राप्ति नथी थई, तहा सुधी व्यवहार भलो छे, एटले चोथा गुणगणाथी लईने चौदमा सैलेसीकरण गुणगाणसुधी व्यवहारनु आलबन छे , यद्यपि ए रीते व्यववहार आलबन प्रमाण छे तथापि पर्मार्थे ज्ञान दर्शन चारित्रनु शुद्धपणुं चेतन माज सधाय , बीजाथी न सधाय , अने जीव जे छे ते पोताना गुणमयी छे, पोताना गुणमा व्यापी रह्योछे , परतु पर के० कर्मादिक जडजीव सत्ताथी न्यारा, ते साथे जीव अव्यापक छे अने व्यवहार छे तेतो परनी छायामा रहेछे, एटले परनी निश्राविना व्यवहार न होय माटे व्यवहार करता निश्चयनय शुद्ध छे ॥ ५७ ॥

हवे शुद्धनिश्चयनयथी जे सम्यक् दर्शन प्रगटे छे तेनी व्यवस्था विशेषपणे जाणवाने अर्थे कहेछे अथ सम्यक दर्शन व्यवस्था कथन

सवैया इकतीसा – शुद्ध नय निहचै अकेलो आपु चिदानद, अपनेही गुण पर जायकों गहतु है , पूरन विज्ञान घन सोहै विवहार माहि, नवतत्वरूपी पच द्रव्यमे रहतु है, पच द्रव्यनवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखै, सम्यक दरस यहै उर तैनंग हतु है, सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई, मेरे घट प्रगटचो वनारसी कहतु है॥५८॥

अर्थ – शुद्ध निश्चय नयनी अपेक्षा लेवाथी चेतनामय जे पदार्थ छे, ते पोतानी सत्ताये पोते एकलोज छे , अने पोतानाज ज्ञानादिक गुणना पर्यायना अवस्था भेदने ते ग्रही रह्योछे अने तेज सामान्य ज्ञानने शोधो जे घट द्व्यादिक विशेष ज्ञान तेने विज्ञान कहीये, अने तेनु पूर्ण घन के० पिंम ते ए व्यवहार नय मांज देखायछे , अने एज व्यवहार नयथी नवतत्वरूप लई धर्मादिक पाच द्रव्यमा एकत्र थई रहेछे अने एवाज व्यवहारमा शुद्ध निश्चय केवलना पाच द्रव्य न्यारा छे एम जाणवु अने नवतत्वने पण न्यारा जाणवा , एवी द्रव्य दृष्टीथी अन्य उपाधिनो आश्रय ग्रहण करे नही, तेनेज सम्यक्दर्शनी कहीये, अने जे सम्यक् दर्शन छे,तेज आत्मस्वरूप मारा घटमा प्रगटचु एवु वणारसीदास कहेछे॥५८॥

शिष्ये पुछयु के जीव द्रव्यथी नव तत्व अने पच द्रव्य जुदा केम जाणीए तेनो उत्तर गुरु कहेछे – अथ जीवद्रव्य व्यवस्था अग्नि दृष्टात

सवैया इकतीसा –जैसै तृन काठ वास आरनै इत्यादि और, इधन अनक विध

पावकमें दहिये; आकृति बिलोकत कहावे आगि नानारूप, दीशे एक दाहक सुभाउ जब गहिये; तैसै नव तत्वमें भयो है बहु भेखी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये; जाही छिन चेतना शकतिको बिचार कीजै, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये. ॥ ५९ ॥

जेम अग्निमां तृण, काठ, वांस अने आरने के० वननो बीजो कचरो इत्यादिक अनेक तरेना इंधण बालीये छइये ने जेवी जेवी इंधणनी आकृतीएटले (आकार) तेवी तेवी आकृतीनो अग्नी देखाय; ए रीते अग्नी नाना प्रकारना रूपनी कहेवायछे; पण ते बधा अग्नीनो स्वभाव एक सरखो दाहक छे; एम जो ग्रहण करिये तो बधो अग्नी एकरूप छे. तेमज नव तत्वमां जीव जेछे ते भातभातनो भेष धारी रह्यो छे, माटे जीव पण बहु वेशी के० नाना प्रकारनो थयो एटले शुद्धरूप जीव छे, ते मिश्रित थयो, त्यारे ए जीवने अशुद्धरूप कह्यो एनुं नाम व्यवहार नय छे; अने जे क्षणमां नवे तत्वमां एक चेतना शक्ति विचारिये, ते वखते शुद्ध निश्चयनये केवलीवडे नव तत्वनो प्रपंच अमुख्य राखीने अलक्षरूप जीव छे, ते सर्वत्र अभेदरूप पामिये शुद्ध निश्चय नय जाणवुं५९

फरी बीजी रीते शुद्ध जीव व्यवस्था कहेछे अथ जीव व्यवस्था बनवारी दृष्टांतः—

सवैया इकतीसाः—जैसै बनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम, नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है, कसिके कसोटी लीक निरखै सराफ तांही, बानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है; तैसैही अनादि पुग्गलसों संयोगी जीव, नव तत्वरूपमें अरूपी महा धाम है; दीशे उनमानसौ उद्योत बान ठोर ठौर, दूसरो न और एक आतमाहि राम है ॥ ६० ॥

अर्थः—जेम सोनानी मूसमां चोखुं सोनुं गाल्युं अने सोनाथी हीण धातु ते कुधातु कहिये, तेनां नाम कहेछेः—रूपुं, त्रांबुं, सीसुं, जसत, कथीर, इत्यादि वस्तुनो जुदोजुदो हेमनी साथे मिलाप थयो तेथी जुदी जुदी जातनुं सोनुं थयुं, ते छतां एक सोनाने नामे ओलखायछे; अने तेअशुद्ध सोनाने सराफ कसोटी पथ्थर उपर कसीने तेनी लकीर जुये ने तेउपरथी सोनुं केवुं छे ते प्रमाण करे, जेम आ दस रुपीयाना भावतुं छे ने आ अगीयार रुपीयाना भावनुं छे, ने ते माफक तेना दाम आपे लिए छे. तेमज अनादि कालथी ए जीव पुग्गल द्रव्यनो संयोगी माटे ए जीवे नव तत्वरूप व्यवस्था धारी, गतीपणे स्थितिपणे भाजनपणे वर्त्तमानपणे, आधारपणे, ए पांचे द्रव्य ग्रहण कीधां अने नवतत्वरूप धारण कर्या पण एमां कोई अरूपी महा तेजवंत द्रव्य छे ते तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाणे ग्रहण थतुं नथी, अने अनुमान

वडे लइये उइये, तेवारे शिष्ये पुछ्युके, अनुमान केवु करीये उइये? त्यारे गुरु कहेछे गोरगोर उद्योतवान प्रकाशवान द्रव्य देखाय, तेतो बीजु कोई द्रव्य नही पण एक आत्मारामज जाणवो, ए अशुद्ध निश्चय नयथी जीव कह्यो ॥ ६० ॥

हवे एवी रीते जे खोजना करीने परिचय पामिये तेने अनुभव कहिये, ते अनुभवनुं स्वरूप केनी रीते छे? एवु शिष्ये पूछे थके गुरु सूर्यना दृष्टाते कहेछे —

अथ अनुभव व्यवस्था सूर्य दृष्टात

सवैया इकतीसा — जैसे रविमंडलके उदै महिमंडलमे, आतप अटल तम पटल विलातु है, तैसे परमातमाको अनुभौ रहत जो लों, तो लों कहूं दुविधा न कहू पक्ष पातु है, नयको न लेश परवानकोन परवेश, निछेपके वसको विधस होतु जातु है, जे जे वस्तु साधक है तेउ तहा बाधक है, बाकी रागदोषकी दशाकी कौन बातु है ६१

अर्थ —जेम सूर्यमंडलना उदयथी पृथ्वीमंडलमा आतप के० तावरो अटल थई जाय, अने तम के० अंधकारना पडल नासी जाय, प्रकाश उद्योत थाय, तेमज शुद्ध निश्चयनयना बलवडे ज्यासुधी अंतरात्मानेविषे परमात्मानो अनुभव रहेछे, त्या सुधी काई पण द्विविधता न देखाय, पोतपोताना मतनो पक्षपात न रहे अने अही नयनो लेश के० अंश न पामिये नय तो ते छे के, जेणेकरीने वस्तुनु साधन कराय अने अनुभव तो सिद्ध वस्तुनो होय माटे अही अनुभवमा नयनो लेश नथी अने एमा प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रमाणनो पण प्रवेश नथी, केमके जे प्रमाण होय ते तो असिद्धनु साधन करे पण सिद्ध वस्तुने सुं साधशे? अने नाम स्थापना द्रव्य भाव ए चार निक्षेपा छे, तेपण असिद्ध वस्तुनु साधन करे छे, ते तो जेवारें परमात्मानो अनुभव सिद्ध थयो त्यारे निक्षेपाना वसनो विध्वसज थयो जेम सूर्यना प्रकाशवडे अधकारनो नाश थायछे, तेम ए सर्व विलय थाय छे आ परमात्माने नयप्रमाण निक्षेपादिक वस्तु जे जे साधक छे ते सर्व वस्तु परमात्माना अनुभवमा बाधक छे, ज्यासुधी नयप्रमाण अने निक्षेपानो परिवार होय त्या सुधी शुद्ध अनुभव न होय एटलासारु ए बाधक छे बाकी राग द्वेष दशानी शु वात केवी! तिहा तो नयाधिक कहेवाज जोइये ॥ ६१ ॥

हवे अनुभवमा शुद्ध रूप जीवज लख्यो तेनी व्यवस्था वचन गोचर जेवी होय तेवी केहेछे — अथ जीव व्यवस्था विवरन द्वार

अडिल छद — आदि अत पूरन सुभाव सयुक्त है, पर स्वरूप परजोग कलपना मुक्त है, सदा एक रस प्रगट कही है जैनमें, शुद्ध नयातमवस्तु विराजे बैनमें॥६२॥

अर्थः— आदि निगोद अने अंत सिद्ध अवस्था, तेनी वचे चेतना रूप पोताना पूर्ण स्वभावेकरी संयुक्त छे ; अने ए चेतनामां पर स्वरूप जे जम स्वरूप, अने पर जोग जे पुद्गल संयोग, तेनी दशा कल्पना विचारणा तेणेकरी मुक्त छे आदि अंत सुधी एकज स्वभाव छे सदा एक चेतना रसमय प्रगट वस्तु छे; ते शुद्ध निश्चय नयनुं आलंबन लईने जैन आगममां कही ने जेवी कही तेवी वचन व्यवहारमां पण विराजमान छे. ॥ ६२ ॥

हवे एवुंज स्वरूप वचन द्वारवडे गुरु हितोपदेश रूप केहेछेः--अथ हितोपदेश.

कवित छंदः— सतगुरु कहे भव्य जीवनिसों, तोरहु तुरत मोहकी जेल; समकित रूप गहो अपनो गुन, करहु शुद्ध अनुभवको खेल ; पुदगल पिंम भाव रागादिक, इनसों नही तुमारो मेल ; ए जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ६३

अर्थः— अहो भव्यलोक वेला थाओ, मोहनो बंध तोडो, अने तमारो पोतानो समकित गुण छे, ते ग्रहण करो ; अने ते लईने पोताना शुद्ध अनुभवनो खेल खेलो. अने देखवामां जे आ शरीर छे ते पुदगल पिंम छे. अने कर्म पण पुदगल पिंम छे. अने आ पुदगल पिंमनो राग द्वेपादिक भाव ते स्वभाव छे, पण ए वस्तु साथे तहारो मिलाप नथी. केमके, ए वस्तु तो जडछे, ने प्रगट छे, एटले देखवामां आवेछे, ने तमे तो चेतन छो तथा गुप्त छो. त्यारे ते पुदगल पिंमनी ने तमारी भिन्नता ठेरी ; जेम पाणीने तेल भिन्न छे, तेनीपरे जाणी लेवुं. ॥ ६३ ॥

हवे एवो उपदेश सांभलीने ते ज्ञाता पुरुष थयो तेनो विलास कहेछे अथ ज्ञाताविलास.

सवैया इकतीसाः-- कोउ बुद्धिवंत नर निरखै शरीर घर, भेद ज्ञान द्रिष्टिसों विचारै वस्तु वासतो; अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भिग्यो चिदानंद लखै बंधमें विलासतो ; बंधको बिमारि महा मोहको सुभाउ मारि, आतमको ध्यान करी देखो पर गासतो; करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप अचल अबाधित विलोकै देव सासतो. ॥ ६४ ॥

अर्थः--कोई बुद्धिवंत सम्यक्दृष्टि मनुष्य होय ते पोताना शरीरमां घरने जुये; अने जड चेतननो भिन्न भिन्न स्वभाव जाणवो ते भेद ज्ञान कह्यो; तेमां दृष्टी आपीने वस्तु वासतो क० वस्तु स्वभावनो विचार करे. अतीतकाल अनागतकाल ने वर्त्तमान कालमां मोहरसविषे भीनो थको, कर्मबंधमां विलास करतो थको पोताना चिदानंद परमात्माने लखे. ते पछी क्रमेक्रमे बंधने विदारतोज जाय. एवुं कार्यकरी मोह

ना स्वनावने मूकतो जाय अने पोताना आत्मानु ध्यान करे, अने अनुनवमा प्रकाशरूप देखे तारे कर्म कलक तेहिज पक के० कादव तेथी रहित प्रगटरूप अचल अवाधित सर्व वाध रहित एवो शाश्वत निरजन देव परमात्मा पोते छे, एवु देखे.

अथ गुन गुनी अनेद कथन व्यवस्था

सवैया तेईसा - शुद्ध नयातम आतमकी अनुनूति विज्ञान विनूतिहि सोई, वस्तु विचारत एक पदारथ नामक नेद कहावत दोई, यो सरवग सदा लखि आपुहि, आतमध्यान करे जब कोई, मेटि अशुद्धि विनावदशा तव सिद्ध सरूपकि प्रापतिहोई६५

अर्थ – हवे शुद्ध अनुनव जे छे ते गुण छे, एक आतमा गुणी छे, तेनु जेवु अनेद स्वरूप छे तेवी अनेद अवस्था कही वतावेछे – शुद्ध निश्चय स्वरूपी आत्मानो अनुनूति के० जे अनुनव छे, तेज विज्ञान विनूती के० विशेष रूप ज्ञान सपदा छे अहीं आत्मा गुणी छे ने अनुनवज्ञान गुण छे हवे ए वे वस्तु शु छे? एवो जो विचार करीये तो एकज आत्म पदार्थ नासेछे एकज पदार्थमा आ गुण अने आ गुणी एवा वे नाम छे तेज नेद केवायछे एम सरवग के० सर्व प्रकारे पोतानेज गुणगुणी रूप लखीने जारे कोई आत्मध्यान करे, तारे अशुद्धविनाव दशा मटीने सिद्धस्वरूपनी प्राप्ति थाय ॥ ६५ ॥

अथ ज्ञाता चितवन स्वरूप कथन

सवैया इकतीसा – अपनेही गुन परजायसो प्रवाहरूप, परिनयो तिहू काल अपने आधारसो, अतर वाहिर परकासवान एक रस, खिन्नता न गहै निन्न रहै नी विकार सो, चेतनाके रस सरवग नरि रह्यो जीव, जैसे लोंन काकर नर्यो है रस खारसों, पूरन सरूप अति उज्वल विज्ञान घन, मोकों होहु प्रगट विशेष निरवारसो ॥६६॥

अर्थ – हवे एज वातने जेम ज्ञाता लोक पोताना चित्तमा चितवे तेवुज स्वरूप कही देखाडे छे – आ जे कोई आत्मा केवायछे. ते तो विज्ञान घन छे, विशेष ज्ञानमय एक पिंड छे, ते अतीत अनागत ने वर्त्तमान ए त्रणे कालमा प्रवाह रूप करवाथी अविछिन्न धाराये पोतानाज गुण पर्याये करीने पोतानाज ज्ञानादिक गुणनी अवस्था नेदने लीधे अने पोताना आधारथी परना आश्रयविना परिणम्यो रहे छे अने ए विज्ञान घननी एवी महिमा छे के तेथी माहे अने वाहिर एक चित्त चेतना रसवडे प्रकाशवान थयो जे पोताने जाणे ते अतर प्रकाश अने वाह्य वस्तुने जाणे ते वाहिर प्रकाश एवा कार्यमां खिन्नता ग्रहण न करे, अने नव विकारथी न्यारो रही सर्व प्रदेशविषे चेतनना रसे करी जीव नरपूर थई रह्यो

छे. ए उपर दृष्टांत कहे छे के, जेम लुणना कांकरा खार रसथी भरेला छे, तेम चेतना रसथी जीव भरपूर थई रह्यो छे. एवुं पूर्ण स्वरूप ते अखंडित घणुंज उज्वल जे विज्ञान घन पूर्वे वखाण्युं ते मने प्रगट थाओ. निशेष निरवार ते सम विभाव दशानुं निवारण करीने पछी ए रीते ज्ञाता पुरुष मनमां चिंतवे अने ए मांज स्थिर रहे ॥ ६६ ॥

अथ द्रव्य पर्याय अभेद कथन व्यवस्था.

कवित्त छंदः— जहँ ध्रुव धर्म कर्म छय लछन, सिद्ध समाधि साध्य पद सोइ; सुधोपयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहै सब कोइ; यों परतछ परोछ स्वरूप सु, साधक साध्य अवस्था दोइ; दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै शिव वंछक थिर होइ. ॥ ६७ ॥

अर्थः— विज्ञान घन छे ते द्रव्य छे, अने ज्ञाता केवाय ते पर्याय छे, एम विज्ञान अने ज्ञाता एकज छे, तेथी द्रव्य पर्यायनुं अभेदपणुं बतावे छेः— जहां सकल कर्मनो क्षय लखिये एवो ध्रुव धर्म जे निश्चल स्वभाव छे, एवुं कोइक सिद्धपणानुं थवुं ते तो पद साध्य केवाय छे, अने शुद्ध उपयोग लेता थका ए मन वचन काय योगमां मंडित थका तिर्थंकर साधु प्रमुख पर्याय लई रह्या छे; तेमने सहु कोई साधु कहेछे. एवुं साधुपणुं ते प्रत्यक्ष स्वरूप छे; अने साध्यपणुं ते परोक्ष स्वरूप छे. ए बन्ने अवस्था लईने एक विज्ञान घन छे. मोक्षने इछनार साधसाध्य बन्नेने एक ज्ञान संचयवडे सेवे, ते बन्ने पदमां विज्ञान घन एक छे; अने ए बन्ने पदनी सेवामां स्थिर थई रहेछे ॥ ६७ ॥

अथ द्रव्य गुण पर्याय भेद व्यवस्था कथन.

कवित्त छंदः— दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार; निहचे दृष्टि एकरस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार; सम्यक् दशा प्रमाण उभै नय, निर्मल समल एकही बार; यों समकाल जीवकी परिनति, कहें जिनंद गहे गनधार. ॥ ६८ ॥

अर्थः— शिष्य पूछे छे के स्वामी तमे अभेद व्यवस्था कही ते कया नयना बल वडे कही? गुरु केहेछे के व्यवहार नय वडे द्रव्य गुण पर्यायनी भेद अवस्था छे ते कहुं छुंः--ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रणे आत्माना गुण छे; ए स्वरूपथी जे व्यवहार कहीए ते समल रूप छे ; अने एज निश्चय दृष्टीथी जोइये तो दर्शन ज्ञान चारित्र एक चेतना रसमय देखाय छे, अने चेतनाज चेतन छे, तेणे करीने भेदरहि

त अविचल अविकार निर्मल रूप ठे निश्चय नय ने व्यवहार नय ए बन्ने ठे ते सम्यक् दशामा प्रमाण ठे, जे नय ठे ते तो अभिप्राय विशेष ठे, माटे एकज अ व्यक्त रूप निर्मल तथा समल रूप जाणिये. एम समकाले निर्मल अने समल जीवनी परिणति थई रही ठे, ते श्री जिन देव कहे ठे अने गणधर देव सर्दहे ठे ॥६७॥

अथ व्यवहार कथन.

दोहरा -- एक रूप आतम दरव, ज्ञान चरन दृग तीन, नेद नाव परिनाम सो, विवहारे सु मलीन. ॥ ६९ ॥

अर्थ -- हवे ज्ञान दर्शन चारित्रनो त्रिक ठे ते व्यवहार नयथी थाय ठे, ते कहे ठे --आत्म द्रव्य जे ठे ते एकरूप ठे, ने ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण जे ठे ते नेद नाव परिणाम ठे, त्यारे एकविषे त्रण नेद थया तेथी ए व्यवहार नयवडे समल रूप थयुं ॥ ६९ ॥

अथ निहचै स्वरूप कथन

दोहरा -- यदपि समल विवहारसो, पर्यय शक्ति अनेक, तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरजन एक ॥ ७० ॥

अर्थ --निश्चयनयेकरी निर्मल स्वरूपमांज ध्यावतु नलु ठे ते केहेले --यद्यपि व्यवहारनयनी अपेक्षाथी आत्मानेविषे अनेक शक्ति अनेक पर्याय देखायछे, माटे ते समल ठे, तोपण निश्चय नयनी अपेक्षाथी शुद्ध निरंजन एकज जाण्यामा आवेछे ७०

अथ शुद्ध कथन

दोहरा -- एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर, समल विमल न विचारिये, यहे सिद्धि नहि ओर ॥ ७१ ॥

अर्थ -- हवे शुद्धरूपीज उपादेय ठे एवु केहेछे -- जे एक शुद्ध चेतनामय रूपज देखवु ते दर्शन, तेमज जाणवु ते ज्ञान, अने तेमां जे रमि रहेवुं ते चारित्र ठे, ते नयनी अपेक्षावडे समल अथवा विमल रूप विचारवु नही. एहिज सिद्ध कहिये, पण बीजा स्वरूपमा सिद्ध नथी ॥ ७१ ॥

अथ शुद्ध अनुनव प्रशसा.

सवैया इकतीसा -- जाके पद सोहत सुलक्षन अनत ज्ञान, विमल विकासवत ज्योति लहलही है, यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहारमे तथापि, एकता न तजे यों नियत अंग कही है, सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करिवेको

मेरी मनसा उमही है; जाते अविचल सिद्धि होतु और नांति सिद्ध, नांहि नांहि नांहि यामें धोखो नांहि सही है. ॥ ७१ ॥

अर्थः— हवे एवा स्वरूपनो अनुभव स्थिर रहेवो ते दुर्लभ छे, माटे सर्व ज्ञाता एनो मनोरथ करे छे. जेनेविषे अनंत ज्ञानरूप सुलक्षण शोभेछे, अने विमल विकाशवंत के० पोतानो तथा परनुं जाणवुं एवी ज्योति जेनेविषे लहलही छे. अने यद्यपि व्यवहारनयमां बाह्यात्मा, अंतरात्मा, तथा परमात्मा ए त्रिविध रूप छे, तथापि निश्चयनयनी अपेक्षाथी एकताने त्यजे नही एवुं एकरूपी कह्युं छे: ते एवो पदार्थतो जीव छे. हवे ते युक्तिथी करी आगल केहेशे. ते युक्तियेकरी निरंतर तेनुं ध्यान करवाने मारी होंस मनमां उमंगी रहीछे. जेना ध्यानथी पोतानी ज्ञान दर्शन चारित्ररूप ऋद्धि अविचल थायछे, एज रीते सिद्ध छे पण बीजे कोई प्रकारे सिद्धि नथी. एमां कई धोखो नथी एटजे जूठुं नथी एज वात साची छे

अथ ज्ञाताकी व्यवस्था वर्णनं.

सवैया तेईसाः-- के अपनो पद आपु सँभारत, के गुरुके मुखकी सुनि बानी; भेद विज्ञान जग्यो जिनके प्रगटे सु विवेक कला रज धानी; भाव अनंत भये प्रतिबिंबत, जीवन मोष दशा ठहरानी; ते नर दर्पनज्यों अविकार रहै थिर रूप सदा सुखदानी ॥ ७२ ॥

अर्थः-- हवे भेद विज्ञानवडे एनो अनुभव थाय छे तेथी मुक्ति मले तेज परमार्थ कहेछेः— कोई तो पोतानुं पद जे पोतानुं निरालंब स्वरूप, ते पोतेज संभारीने पोतावडे ग्रंथी भेदकरी पोताने उलखेछे. कोई तो गुरुना मुखनी वाणी शांभलीने पोताने उलखेछेः अने जेना घटमां जड चेतननुं भेद विज्ञान जाग्युं, तेणे करी पोताना चेतन रूपनी जे न्यारी कला छे, तेनी राजधानी जे तेनुं ईश्वरपणुं जेना घटमां प्रगट्युं; अने एज राजधानीमां अनंत भाव पदार्थ प्रतिबिंबित थयां तेना ज्ञायक थया एटले जीवता थकाज मोक्ष दशा ठरी मुक्त स्वरूपी थया. अने एमां अनंतभाव प्रतिबिंबित थया तोपण समलरूप न थया, तेथी ते मनुष्य दर्पण एटले आरीसानीपरें विकार रहित थया, स्थिररूप थया, अने सुखदायक थयाछे ७२

अथ भेद ज्ञान प्रशंसा कथनं.

सवैया इकतीसाः--याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो हे कर्म मलसों; उदो करै भेदज्ञान महारुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसों; याते थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि कबहों

अपनपो न कहै पुदगलसों, यहै करतूति यों जुदाइ करै जगतसो, पावकज्यो भिन्न करै कंचन उपलसों ॥ ७४ ॥

अर्थ — हवे भेदविज्ञाननी उत्पत्ति अने महिमा कहेछे — आ वर्त्तमानकाल विषे भव्यलोकनो मोह भ्रम टली जाय जे मोह कर्म आत्माने अनादिकालथी लाग्यु छे, अने कर्ममलमा व्यापी रह्योछे, ते मोह भ्रम मटवाथी भेद विज्ञाननो उदय थाय, ते भेद विज्ञान केवुछे ? महारुचिनु निधान छे ए भेद विज्ञानमा महोटी रुचि पामीये छिये एटले महारुचिनुं कारण छे भेद विज्ञानथी गरिष्ट उरनुं अजवालु प्रगट थायछे, ते अजवालु केवुछे ?

एटले महा धाम घुमथी न्यारोछे ६६ दशाथी नीकली स्थिरतामा रहे, अने पोताना अनुभवनो विलास ग्रहण करे, पोताने सत्यार्थ पणे जाणे, पछी ए भेद विज्ञान पाम्या थकी शरीर कर्मादि पुद्गल रूपी जाणीने पोतानुं न कहे आत्मारूप न कहे करतूति के० ए जे भेदविज्ञाननी क्रिया तेज जगतथी जुदाईने करे, पाच द्रव्यथी जुदाई करे, अहीं दृष्टात बतावेछे — जेम अग्नी माटी पाषाणने कचनथी जुदी करे छे तेम जाणी लेवु ॥ ७४ ॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन

सवैया इकतीसा — बानारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी शीख, केहू भांति केहूके एसो काज कीजिए, एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वस होइ, ज्ञानको जगाइ अंस हस खोजि लीजिये, वाहीको विचार वाको ध्यान यहै कोतुहल, योंही भरि जनम परम रस पीजिए, तजी भववासको विलास सविकासरूप, अंतकरि मोहको अनत काल जीजिए ॥ ७५ ॥

अर्थ —हवे शुद्ध जीवद्रव्यमा रहेवु तेज परमार्थ छे तेनी शिक्षा कहेछे -- वणारसीदास केहेछे — अहो भाई भव्य जीवो, मारी शीक्षा सांभलो केवी पण रीतेथी कोई द्रव्य क्षेत्र काल भाव पामीने एवु काम करवु के जेणे करीने एक मुहुर्तमा त्रमां मिथ्यात मोहनो विध्वस थाय अने ज्ञाननो अस जगावी लेवो, अने सोहं हसो एवी ध्वनि करतो हस जे आत्मा तेने खोजी लइयें पछी तेनु लक्षण विचारवु पछी तेने ओलखीने तेनु ध्यान करवु एवी एनी कला खोजीने कुतोहल जे खेल ते कर्या करियें, अने तेज जनम परियत परम रस पीवो एरीते सविकार रुपथी फेली रह्यो एवो भववासनो विलास तेने तजीने तथा मोहनो अत आणीने अनंत कालसुधी जीवीए एटला प्रकारे सिद्ध थवायछे ॥ ७५॥

अथ तीर्थंकरकी स्तुति बाह्यरूप कथनः–

सवैया इकतीसाः–जाकी देहद्युतिसों दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं; जाको रूप निरखी थकित महारूपवंत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं; जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लछन अनेक आइ ढूके हैं; तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि सुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥ ७६ ॥

अर्थः– हवे चेतन महिमावान थयाथी पुद्गलपण महिमावान थाय माटे कविराज तीर्थंकरना बाह्य शरीररूप पुद्गलनो महिमा कहेछेः– जेनी देहनी द्युति एवी पसरी रहीछे के जेथी दसे दिशा पवित्र थई जायछे; एटले शोभायमान थायछे. अने जेना तेज आगळ सर्व तेजवाळा छुपी जायछे एटले सर्व देवता मंद तेजवंत थायछे. अने जेनुं रूप जोईने महारूपवंत पंच अनुतरवासी देवता पण चकित थई रहेछे अने जेना शरीरनी सुवासथी अन्य सुवासी वस्तु सर्व लुकी जायछे. अने जेनी दिव्य ध्वनि सांभळीने श्रवणने सुख थायछे. एटले भव्य अभव्य सर्वने ते वाणी मीठी लागेछे अने जेना शरीरमां अनेक शुभ लक्षण आवी ढुकी रह्याछे एवा श्री जिनराज देव छे तेमना एटला गुण कह्या ते अशुद्ध व्यवहार नयनो आश्रय लईने कह्या पण, निश्चयनयथी ए कहेला गुण सर्व शुद्ध चेतननी भिन्नता दर्शावेछे.७६

अथ जिन स्तुति व्यवहाररूप पुनः–

सवैया इकतीसाः–जामें बालपनो तरुनपो वृद्धपनो नांहि, आयु परजंत महा रूप महा बल है; बिनाहि जतन जाके तनमें अनेक गुन, अतिसै विराजमान काया निरमल है; जैसै बिनुपवन समुद्र अविचलरूप, तैसै जाको मन अरु आसन अचल है, ऐसो जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाकी शुभगति महा सुकृतिको फल है ॥ ७७॥

अर्थ.–हवे फरी व्यवहारनय वडे जिन स्तुति केरेछेः– जेमां जन्मथी मांडीने मरण पर्यंत महारूप अने महाबळ समान रहेछे; पण बाळपणुं तरुणपणुं वृद्धपणुं ए त्रण जे अवस्थाना भेद तेमां रूपमां अने बळमां भेद न पामे, जेना सहज स्वभावे जतनविना शरीरमां अनेक गुण आवी रहेछे; अने जेनेविषे चोत्रीस अतिशय गुण विराजमान थई रह्याछे; अने जेनी काया प्रस्वेदरहित निर्मळ रहेछे. जेम पवननी लहेर विना समुद्र अचळरूप थई रहेछे तेम जेनुं मन अचळ छे, ने आसनपण अचळ छे; अहीं गतिनी अपेक्षाविना आस

न अचल कह्युछे, पण निरतर अचल आसन संभवे नही एवा जिनराजदेव जग तमा जयवत थाओ जेनी रूडी भक्ति करवाथी महामुक्ति फलनी प्राप्ती थायछे

यथार्थ कथन --

दोहरा — जिन पद नाहि शरीरकों, जिन पद चेतन मांहि, जिन वर्नन कछु और है, यह जिन वर्नन नांहि ॥ ३८ ॥

अर्थ –एटली व्यवहार स्तुति करीने हवे सत्यार्थ वात कहे छे --ए जे जिन नाम छे ते जीव विपाकी छे पण पुद्गल विपाकी नथी, तेथी जिनपद ते शरीरनो नथी, जिनपद तो चेतननो छे, तेथी जिनेश्वरनी स्तुति कोई ओरज छे पण पूर्वे जे जिनेश्वरनी स्तुति करी ते जिन स्तुति नथी इहा शरीर जड छे अने आत्मा चेतन छे ए बने भाव भिन्न स्वभावमा छे तेनुं दृष्टांत आपेछे ॥ ३८ ॥

अथ जड चेतन भिन्नभाव दृष्टात कथन --

सवैया इकतीसा --ऊंचे ऊंचे गढके कगुरे यो विराजत है, मानो नभ लोक लीलवेकों दात दियो है, सोहे चिहोंउर उपवनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है, गहरी गभीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पताल जल पियो है, ऐसो है नगर यामे नृपको न अगकोउ, योंही चिदानदसो शरीर भिन्न कियो है ॥ ३९ ॥

अर्थ — जेम कोई गढना ऊंचा ऊचा कागरा वीराजे छे (अहि कवि उत्प्रेक्षणा करे छे) पण ते कागरा नथी पण मानुं हुं जे आ नगरमा स्वर्गलोकने गली जवाने दात आप्या छे, एटले जाणे स्वर्ग लोकने गली जशे अने एनी चारे तरफ उपवन एटले बाग वाडीनी सघनता एवी शोभी रही छे के जाणे भूमिलोक एटले मनुष्य लोक तेणे घेरी लीधो छे अने ए नगरनी चारे बाजुए ऊंडी खाही बनी ते जाणे नीचु आनन एटले मुख करीने पातालज पाणी पातो होयनी ए रीते जेणे त्रणे लोक जील्या छे एवु नगरनु वर्णन कीधु पण ए नगरमा कोई राजाना अगनु कांई वर्णन कीधुं नथी मतलब के चिदानंदथकी शरीरने भिन्न करी बताव्यु ॥ ३९ ॥

अथ तिर्थकरकी निश्चै स्तुति सरूप कथन वस्तु वर्णन

सवैया इकतीसा — जामें लोकालोकके सुभाउ प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान सगति विमल जैसी आरसी, दर्शन उदोत लियो अतराय अतकीउ, गयो महामोह भयो परम महारसी, सन्यासी सहज जोगी जोगसो उदासी जामें, प्रकृति पंचाशी ल

गि रहि जरि छारसी; सोहै घटमंदिरमें चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिन राज तांहि बंदत बनारशी ॥ ८० ॥

अर्थः— हवे तीर्थंकरपदने लेई रहेली जे वस्तु छे तेना स्वरूपनुं वर्णन करेछेः— जेमां लोक अने अलोकनो स्वभाव एटले खट द्रव्य भाव प्रतिभासी रहे, एवी ज्ञान शक्ति निर्मल प्रगटी छे. जेम आरीसामां पदार्थना भाव भासेछे; एवी रीते जेना ज्ञानमां सर्व भाव भासेछे; एटले ज्ञानावरण गयुं, अने दर्शनावरणना नाश थवाथी केवल दर्शन उद्योत थयुं. अने अंतराय नाश कर्यो, तेथी अनंतवीर्य धैर्यवंत थयो; अने महा मोह कर्म जे छे ते नाश पाम्यो; तेथी परम उत्कृष्ट महाऋषी थयो; तेणे करी यथाख्यात चारित्रनो संन्यास एटले तेनो धारण करनार ज्ञान दर्शन चारित्र आदि जे सहजयोग छे तेनो धरनार, मन वचन कायना योगथी उदास थईने अघातिक चार कर्मनी पंच्यासी प्रकृती सत्ताये रहि छे, ते पण बलीने खाखजेवी थई रही छे; अने जेना घटमंदिरमां चेतन देव छे ते प्रगटपणे शाक्षी रह्योछे. एवा श्री जिन राज देव तेने वणारसीदास वंदन करेछे. ए निश्चय स्तुति कही॥८०॥

हवे एवा शुद्ध चेतननी स्तुतिनुं दृष्टांत देखाडीने हवे निश्चय व्यवहारनो निर्णय करेछे. अथ श्री निश्चय व्यवहार तीर्थंकर स्तुति कथनः—

कवित्त छंदः—तनु चेतन विवहार एकसें, निहचे भिन्न भिन्न है दोइ; तनु स्तुती विवहार जीव थुति, नियत दृष्टि मिथ्या थुति सोइ; जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिन एक न मानै कोइ; ता कारन तनकी अस्तुतिसों, जिनवर कीअस्तुति नहि होइ. ॥ ८१ ॥

अर्थः—शरीर अने आत्मा ए बने व्यवहारमां एक सरखा छे; अने निश्चयथी जोइये तो बने जुदा जुदा छे. एमाटे तननी स्तुति करतां जीवनी स्तुति करियें ए व्यवहार छे. अने निश्चे दृष्टीथी जोतां ते मिथ्या स्तुतिछे. जिनपद कर्म जे छे ते जीव विपाकी छे, पण पुद्गल विपाकी नथी, तेथी जिन ते जीव छे, अने जीव ते जिन छे; पण शरीर अने जिन एक करी न मानीए; ते कारणे तननी स्तुति करी ते जिनवरनी स्तुति थई नही. ॥ ८१ ॥

अथ वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांत करी दिढाइयतु हैः—

सवैया तेईसाः— ज्यों चिरकाल गडी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी; कोउ उखारि धरै महि ऊपरि, जो दगवंत तिन्है सब सूझी; त्यों यह आतमकी

अनुभूति पगी जड भाव अनादि अरूझी, नैजुगतागम साधि कही गुरु, लछन वेदि विचछन बूझी ॥ ८२ ॥

अर्थ —शिष्य पुछेछे के एवो अनूपम महिमानो धारक जीव आ शरीरमा केम पामिये ? त्यारे गुरु दृष्टात आपी न्यारी अद्भूत स्वरूप वस्तु आ शरीरमा दृढावे छे — जेम कोई महानिधी घणा काल सूधी धरतीनी अंदर दटाई रही होय, ते अतर गुप्त थई रहेली लक्ष्मीने कोई खोदी काढी जमीन उपर मूके त्यारे जे नेत्रवत पुरुष छे तेने बधी देखाई आवेछे तेम आ आत्मानो अनुभव अनादि कालथी जड एटले पुद्गल द्रव्यमा दटाई रह्यो छे, तेने नयसहित आगम जे सिद्धात तेणेकरी गुरुए साध्य एटले साधने करी सिद्ध करी दीधाथी विचक्षण पुरुष तेने सारी पठे जाणी लियेछे. ॥ ८२ ॥

हवे तेनो भेद ज्ञान पाम्याथी उपादेय वस्तुनुं उपादान करवाथी आवे ते उपर धोबीनुं दृष्टात बतावे छे — अथ भेदज्ञान स्वरूप कथन धोबीको दृष्टात —

सवैया इकतीसा — जैसै कोउ जन गयो धोबीके सदन तिन्ह, पहिर्‍यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है, धनी देखि कह्यो भैया यहु तो हमारो वस्त्र, चीन्ह्यो पहिचानतही त्याग भाव लह्यो है, तैसैही अनादि पुद्गलसो सयोगी जीव, सगके ममत्वसो विभावतामे बह्यो है, भेद ज्ञान भयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परभावसों स्वभाव निज गह्यो है ॥ ८३ ॥

अर्थ — जेम कोई मनुष्य धोबीने घेर गयो अने पारकु वस्त्र पोतानु मानी भूलमा लईने पेहेर्यु, एटलामा ते वस्त्रनो खरो मालक मल्यो, तेणे जोईने कह्यु के, भाई, आ वस्त्र जे ते पेहेर्यु छे, ते महारो छे ते वखते पेला मनुष्ये ते वस्त्र जोयुने परायुज छे एवु जाण्युं, तेवारे ते वस्त्रनो त्याग भाव उपज्यो, ने तेणे ते वस्त्र तेना धणीने हवाले कीधुं तेमज जीवने अनादि कालथी पुद्गलनो सयोग थयो छे, एटले शरीर तथा कर्मनो सयोगी जीव अनादि कालनो छे, ते सगना ममत्वथी विभावता एटले उलटा भावमा वही रह्यो हतो ते ज्यारे जड चेतननी भिन्नतानु ज्ञान थयु त्यारे ते पोताना स्वरूपने तथा परना स्वरूपने समज्यो, अने ते पररूपथी जुदो थयो ने पोताना स्वरूपनुं ग्रहण कीधुं ॥ ८३ ॥

ज्यारे निश्चय पोतानु स्वरूप जाण्यु त्यारे ज्ञाता एवो विचार करवा लागे ते कहेछे —

अथ निश्चय स्वरूप कथन --

अडिल छद — कहै विचछन पुरुष सदा हो एकहो, अपने रससो भर्‍यो आ

पनी टेकहों; मोह कर्म मम नांहि नांहि भ्रम कूप है; शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है. ॥ ७४ ॥

अर्थः-- विचक्षण पुरुष केहेछे के, हुं सदा एक पणे रहुं छुं; चेतना रस वडे भरपूर छुं; अने पोताना आधारथी रहुं छुं, मने बीजानो आश्रय नथी. अने जे भात भातनो मोह कर्मनो प्रपंच छे ते म्हारुं स्वरूप नथी, ए भ्रम रूप कूप छे ते मारुं स्वरूप नथी; पण शुद्ध चेतनानो सिंधु के० समुद्र ते मारुं रूप छे. ॥ ७४ ॥

हवे एवा पोताना स्वरूपने जाण्याथकी केवी अवस्था प्राप्त थई ते केहेछेः--

अथ ज्ञान व्यवस्था कथनः--

सवैया इकतीसाः-- तत्वकी प्रतीतिसों लख्यो है निज पर गुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयो है; विसद विवेक आयो आछो विसराम पायो, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयो है; कहत बनारसी गहत पुरुषारथकों, सहज सुभाउ सों विभाउ मिटि गयो है; पन्नाके पकाय जैसे कंचन विमल होतु, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है. ॥ ७५ ॥

एवी जीव तत्वनी प्रतीति थई तेणे करीने ज्ञानादिक निजगुण अने परगुण ते बीजा द्रव्यना गुण जे गति, स्थिति, अवगाह, वर्त्तना, वर्णादिक ए सर्व लखीने दर्शन, ज्ञान अने चारित्र ए त्रणे गुणनेविषे परिणमी रह्यो छे; निर्मल विवेक आव्याथी सारो विश्राम पाम्यो ते स्थिरता पामीने पोताने विषेज पोतानो सहज स्वभाव सोधी लीधो. अहीं वणारसीदास केहेछे के त्यारे आ पुरुषार्थ ते आत्मस्वरूप अर्थ तेनुं ग्रहण करीने सहज स्वभावमां राग द्वेष मोहरूपी विभाव जे अनादिकालनो हतो ते मटी गयो. अहीं दृष्टांत कहेछेः--जेम पाकी ईंटनी भठीमां गालवाथी सुवर्ण निर्मल थायछे, तेम शुद्ध चेतन निर्मलरूप थईने प्रकाश रूप थयोछे. ॥ ७५ ॥

हवे विभाव छूटवाथी निज स्वरूप प्रगटताने पामे तेउपर नटी जे नाचनारी स्त्री, तेनुं दृष्टांत कही देखाडे छेः--अथ वस्तु स्वरूप कथन पातरको दृष्टांतः--

सवैया इकतीसाः--जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवति अखारे निशि आडो पट करिके; दुहू ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखै दृष्टि धरिके; तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेद करि, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक भरिके; ऐसो उपदेस सुनि चाहिये जगत जीव, सुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके. ॥ ७६ ॥

अर्थः--जेम कोई नाचनारी स्त्री आडो पट करीने तथा वस्त्रा भूषणवडे पोतानो

वेष मनोहर बनावीने रातना वखते अखाडामा आवी ऊनो रहे, ते आडा पटथी रा त्रीनेविषे देखाय नही, ने जारे अंतरपट दूर करी बेहु तरफ हाथमा काकडा सलगावी परिचय दूर करे त्यारे सर्व सनाना लोक दृष्टी धरीने तेना रूप सणगार वगेरेनी शो ना प्रगट जोई रीझे ठे, तेम ज्ञाननो सागर एवो जे आत्मा, ते मिथ्यातरूप आडा पटथी प्रछन्न रह्यो हतो, ते कोई समे मिथ्यात ग्रंथी रूप पटने नेदीने प्रगट थ यो, ते ज्ञान समुद्र त्रण लोके नरी रह्यो ठे, एटले त्रणे लोक ए आत्माने विषे नासी रह्या ठे हवे गुरु केहेठे के अहो जगतवासी जीव, मे जे पूर्वे उपदे श दीधो एवा उपदेशनुं श्रवण करवु तारे जरूरनु ठे, ते सांनली जगत जाल माथी निकळीने तारी शुद्ध दशाने सनारी लेईस ॥ ७६ ॥

इति श्रीनाटिक समयसारना प्रथम जीव द्वारनुं निरूपण बालबोध सहित समाप्त थयु

दोहरा –जीव तत्व अधिकार यह, कह्यो प्रगट समुजाइ, अब अधिकार अ जीवको, सुनो चतुर मन लाइ ॥ ७७ ॥

अर्थ –जीवतत्वनु जेवु स्वरूप ठे तेनो ए अधिकार एटले स्वरूप, लक्षण, गु ण, प्रगट समजाव्यो हवे बीजो जे अजीव द्वारठे, तेमा अजीवनो अधिकार मुख्यपणे करीने कहुंछुं, ते चतुर लोको चित्त दईने सानळजो ॥ ७७ ॥

हवे अजीवने पण ज्ञानवडेज जाणवानु बनेठे अने आ ग्रंथमा अनिध्येय ज्ञानठे माटे सपूर्ण ज्ञाननी अवस्था निरूपण करेठे – अथ ज्ञानकी व्यवस्था कथन –

सवैया इकतीसा –परम प्रतीति उपजाइ गनधरकीसी, अंतर अनादिकी विना वता विदारी है, नेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है, करमको नासकरी अनुनौ अन्यास धारी, हियेमें हरख निज शुद्धता सनारी है, अतराय नास गयो शुद्ध परकास नयो, ज्ञानको विलास ता कों बंदना हमारी है ॥ ७८ ॥

अर्थ –प्रथमथी जे ज्ञानवडे नव्य लोकना आत्मामा गणधरनी माफक तत्व नी परम प्रतीति उपजावी, अने समकालपणे अतरात्मानेविषे अतरनी जे अना दीनी विनावता (मूढता) तेने विमारीठे, अने जड चेतन ए बने निन्न ठे एवु नेदज्ञान प्रगटयु तेनी दृष्टी तेज विवेकनी शकति ते साधि एटले जुदा जुदा गुण पर्याय जाण्या, अने जुदा जुदा जाणीने चेतन तथा जड तेनी दशा ठीक की धी, ते पठी गुण श्रेणीने धरीने क्षणेक्षणे कर्मनी निर्जरा करवा लाग्यो, ते करी

अनुनव अन्यास कीधो, एटले सत्य प्रत्ययमां पेठो, अने हृदयानेविषे हर्ष पाम्यो; अने पोतानी शक्ति उत्कृष्ट कीधी. ए कार्य थतां अंतराय कर्म नांग्युं, अने केवल रूप प्रकाश पाम्युं; एवो कोई क्रमे क्रमे करी ज्ञाननो विलास उत्पन्न थयो, तेने अमारी वंदनाछे. ॥ ८८ ॥

शिष्य पूछे छे के स्वामी, तमे जे ज्ञान विलास कह्यो, तेतो तेवोज छे; पण ते पामवुं दुर्लन छे; ते उपर गुरु परमार्थनी शिक्षा दिये छेः-- अथ परमार्थ शिक्षा कथनः--

सवैया इकतीसाः-- नैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसों, एक छ महीना उपदेस मेरो मानु रे; और संकलप विकलपके विकार तजि, बैठके एकंत मन एक ठोर आनु रे; तेरो घट सर तामें तुंही है कमल ताकों तूंही मधुकर है सुवास पहचानु रे; प्रापति न व्है है कछु ऐसो तूं बिचारतु है सही व्है है प्रापति सरूप याही जानुरे॥८९॥

अर्थः- अरे जीव जगतवासी नाई तुं जगत के० नव भ्रमणा तेनु कारण (शब्द, स्पर्श, रूप, रसने गंध,) एने आचारांग सूत्रना वचनथी जगत कहियें तेथी उदास थईने, एक छ महिना सूधी अखंड धाराए मारो उपदेश सांनल एटले मान्य कर. एमां छ महीना कह्या ते उपलक्षणथी जाणवा; पण नियम नथी; अने आर्त्तरौद्रध्यानथी अज्ञान दशामां संकल्प विकल्प घणा करे छे; तेथी आत्मानेविषे विकार उपजे छे; माटे तेना विकारने तजीदे; अने एकांत आसने बेसी मनने एक ठेकाणे परिणामथी राख, तारो घट के० शरीर तेनेज सरोवर जेवो देख; अने तेमां एक उज्वल कमल जोइयें. ते कमल तूंज छे. अने तूंज उज्वल रूपने लीधे मधुकर रूपे था; एम करवाथी तूं सहस्र दल कमलमां विलास कर; ए पिंडस्थ ध्यान लगाव्युं एटलुं कार्य करवाथी पोताना स्वरूपनी प्राप्ति न थशे एवुं तूं क्यारे पण विचारीश नही. एवा प्राणायामवडे कमल कोष खुलशे ने पोताना रूपनी प्राप्ति थशे; एज रीते गुणज्ञान खुलशे ॥ ८९ ॥

हवे जीवने अजीव एक सरखा थई रह्याछे, ते जुदा जुदा लक्षणवडे देखाडेछे.

अथ वस्तु व्यवस्था वर्णनः-

दोहराः- चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम; याते अनमिल और सब, पुग्गलके परिणाम ॥ ९० ॥

अर्थः- चेतनावंत छे अने अनंत गुणसहित जे पदार्थ छे ते तो आत्माराम

जाणवो, अने जे एटला लक्षणोथी मलेला नथी ते सर्वे अपर पुद्गलना परिणाम जाणवा ॥ ८० ॥

हवे एवी पिछान अनुभवविना न होय माटे अनुभवनी प्रशसा कहेछे –

अथ अनुभव प्रशंसा –

कवित्त छंद –जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसों निज मर्म, तब सुखरूप विमल अविनाशक, जानै जगत शिरोमनि धर्म, अनुभौ करै शुद्ध चेतनको, रमै सुभाउ वमै सब कर्म, इहि विधि सधै मुक्तिको मारग, अरु समीप आवै शिव सर्म ॥ ८१ ॥

अर्थ –ए चेतन जे छे, ते ज्यारे पोतानुं पुरुष के० पराक्रम संभारे, ने पछे पोतानी दृष्टी करी पोतानुं मर्म जे चेतनपणु छे ते निरखे, त्यारे पोतानो धर्म के० स्वभाव सुख रूप जे निर्मल पणुं, अविनाशी पणुं, जगत शिरोमणी पणु, सहज स्वरूप तेने जाणे एज अनुभव एटले जे नि सदेह यथार्थ ज्ञान छे तेज चेतनने शुद्ध करेछे, अने एज अनुभव जे छे ते पोताना स्वभावमा रमे अने सर्व कर्मने दूर करे, एरीते अनुभववडे मुक्ति मार्ग सिद्ध थायछे, अने शिवशर्म के० मोक्षनु सुखते पामेछे८१

हवे ए अनुभवथकी चेतनविषे पोतानुं अस्तित्व साधीने परनुं नास्तित्व साधेछे –

अथ अनुभव प्रशसा –

दोहरा –बरनादिक रागादि जड, रूप हमारो नांहि, एक ब्रह्म नहि दूसरो, दीसे अनुभव माहि ॥ ८२ ॥

अर्थ –आ शरीरमां जे वर्ण गध रस स्पर्श राग द्वेषादिक पदार्थनेविषे मोह छे ते मारुं आत्मरूप नथी, अने अनुभवविषे पोतानुं एकज जाणपणानुं रुप अमे जोइये छइये पण बीजु रुप जोता नथी ॥ ८२ ॥

हवे जीव अजीव एक क्षेत्रावगाही थया ते जुदा केम केहेवाय ? ते उपर दृष्टांत केहेछे – अथ वस्तु विचार –

दोहरा– खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान सयोग, न्यारो निरखत म्यान सों, लोह कहे सब लोग ॥ ८३ ॥

अर्थ – जे सोनानी म्यानमा राखेली तलवार लोक भाषामां सोनेरी केहेवायछे, ते सोनेरीनो योगतो म्यान उपर छे, ज्यारे तरवारने सोनेरी म्यानमांथी बार काहाडी जोइये त्यारे तरवार लोढानी जणाय, पण सोनेरी नही जणाय तेम अंतरात्मा माहे जाणवो ॥ ८३ ॥

हवे व्यवहार नय वडे बाह्यात्मा अने अंतरात्मा केहेवाय छे; पण एमांज निश्चय नयथी परमात्मा छे; एवो वस्तुनो विचार कही समजावे छे. अथ निश्चय व्यवहार रूप वस्तु विचार कथनः--

दोहराः-- बरनादिक पुदगल दशा, धरै जीव बहु रूप; वस्तु विचारत करम सों, भिन्न एक चिद्रूप. ॥ ए४ ॥

अर्थः-- वर्णादिक ते वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरूप ए पुंदगल स्वभाव छे, तेने नवी नवी रीते जीव धारण करे छे. तेथी जीव बहु रूप धारी केहेवाय छे. अने पुदगल जे छे ते तो कर्म छे, पण वस्तुनो विचार करवाथी ए कर्म अजीव छे. अने चिद्रूप चिदानंद छे ते तो सर्वत्र एक स्वरूप छे, ने ते ए अजीवथी भिन्न छे.ए४

हवे ए व्यवहारनो दृष्टांत बतावे छेः— अथ व्यवहार दृष्टांत कथनः—

दोहराः- ज्यों घट कहिये घीउकों, घटको रूप न घीउ; त्यों बरनादिक नाम सों, जडता लहै न जीउ ॥ ए५ ॥

अर्थः-- व्यवहारमां माटीनो घडो केहेवाय छे, तेम घृतनो पण घडो केवाय छे; पण घडानुं रूप जेवुं माटी छे तेवुं घृत नथी. तेमज वर्ण गंध रस स्पर्श प्रमुख नाम कर्म अजीव रूप जड छे, तेना संयोगथी जीव जडपणुं पामे नही. ॥ ए५ ॥

हवे प्रत्यक्ष पणे निराळुं चेतननुं स्वरूप दृष्टांत देखाडी कहेछेः—

अथ चेतनको साक्षात स्वरूप कथनः--

दोहराः-- निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीउ, अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमें जीउ. ॥ ए६ ॥

अर्थः-- जेनी कोई पण रीते खंमना थती नथी तेथी निराबाध एहवो चेतन पुरुष छे; अने वली इंद्रिय ज्ञानवडे लख्यो न जाय ; तेथी अलख छे ; अने स्वकीय जे पोतानो सहज स्वभाव ज्ञातापणुं तेने पोतेज जाणे पण बीजा अन्य ज्ञानांतरवडे न जणाय एवा अचल स्वरूपने लीधे अनादि अनंत नित्य शाश्वत एवो जीव जगतमां प्रत्यक्ष प्रमाण छे. ॥ ए६ ॥

हवे जीव पोतानो अनुभव पोतेज करे छे पण मिमांसक नैयायिक प्रमुख जेम बीजाथी कहे छे तेम नथी ते समजावे छेः-- अथ अनुभव विधान कथनः--

सवैया इकतीसाः-- रूप रसवंत मूरतीक एक पुदगल, रूप बिन और यूं अजीव दर्व उधा है; च्यारि हैं अमूरतिक जीवभी अमूरतिक, याहितें अमूरतिक वस्तु ध्यान मुधा है; औरसों न कबहू प्रगट आपु आपहीसों, ऐसो थिर चेतन सुभाउ

शुद्ध सुधा है, चेतनको अनुभौ आराधै जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखिवे की बुधा है ॥ ८७ ॥

अर्थ -- जेम रूपवत तथा रसवत कहेवाय ठे तेम गंधवत तथा स्पर्शवत ए लक्षण जाणवाथी मूर्तिक एटले मुरतीवत ते एक पुदगल द्रव्य जाणवु, अने रूपादिक विना बीजा अमूर्त्तिक चार द्रव्य ठे, ए रीते अजीव द्रव्यते वे प्रकारनुं ठे - हवे ए अजीव द्रव्यमा धर्म अधर्म आकाश काल ए चार अमूर्त्तिक ठे, अने जीव द्रव्य पण अमूर्त्तिक ठे, तेथी कोई अमूर्तिक वस्तुनुं ध्यान करवाथी मुक्ति ठे एम केनारा मूर्ख ठे एथी कोई अन्य धर्मनु आलंबन लई आत्मा द्रव्य प्रगट न थाय एवो स्थिर चेतननो स्वनाव ठे एज शुद्ध सुधा के० निर्दोष अमृत रस तेज चेतनने प्रगट करे ठे एवो जे जगतने विषे चेतना स्वनाव ठे ते चेतननो अनुनव के० यथार्थ ज्ञान आराधे तेज शुद्ध जीव द्रव्यना आधारक ठे अने जे अखंम रसना क्षुधावत ठे ते एना आधारक ठे ॥ ८७ ॥

हवे कोई कहे ठे के, जीव अंगुष्ट प्रमाण ठे, तंडुल प्रमाण ठे इत्यादि कहिने जे जीवने मूर्तिमान थापेठे, तेनी मूढता बतावेठे अथ मूर्तिवर्नन --

सवैया तेइसा -- चेतन जीव अजीव अचेतन, लछन नेद उनै पद न्यारे, सम्यक दृष्टि उद्योत विचछन, निन्न लखे लखिके निरधारे, जे जगमाहि अनादि अखंमित, मोह महामदके मतवारे, ते जड चेतन एक कहै तिन्हकी फिरि टेक टरै नहि टारे ॥ ८८ ॥

अर्थ -- जीवनु लक्षण चेतन ठे, ने अजीवनु लक्षण अचेतन ठे, एटले जडता ठे, ए लक्षण नेदथी उनय पदार्थ जुदा जुदा ठे, पण जेना घटमा समकित दृष्टिनुं अजवालु पडयुं ठे, तेज विचक्षण पुरुष ए बेहुने निन्न निन्न जाणे ठे अने जीव अजीव जुदा निरधार करेठे अने जे जगतनेविषे अनादि कालना अखंमित मूर्ख अने महामोहमदवडे मतवाला ठे, ते लोक जड चेतनने एक कहे ठे अने जीवने मूर्तिमान मानेठे ते मिथ्यादृष्टिने लीधे माने ठे, तेमनी टेक टालवाथी टले नही एवी होयठे ॥ ८८ ॥

हवे अजीव पुज्ञलमा जीवविलास जूदोज ठे, पण अविवेकी पुरुष ते जाणतो नथी, अने जे ज्ञानी होय ते जाणे ते कहे ठे -- अथ ज्ञाता विलास --

सवैया तेईसा -- या घटमें भ्रमरूप अनादि विलास महा अविवेक अखारो, तामहि उर सरूप न दीसत, पुज्ञल नृत्य करै अति नारो, फेरत नेप दिखावत

कोतुक. सो जनिये बरनादि पसारो; मोह्सुं भिन्न जुदो जडसों चिन, मूरति नाटक देखनहारो ॥ ९९ ॥

अर्थः– आ घटमां अनादि काळनो विस्तारवंत भ्रमरूप महा अविवेकनो अखाडो मंमाई रह्यो छे. ते अखाडामां बीजो कोई शुद्ध स्वरूप तो देखातो नथी; अने पुद्गल द्रव्य जे छे ते अत्यंत महोटो नृत्य करी रह्योछे, एज अविवेकनी आज्ञा ते अजीव पुद्गल द्रव्य छे. तेहिज एकेंद्रियादिकना वेषमां भेवरावी फेरवी फेरवी वर्णादिकना पसारनी सामग्री भेवरावी कौतुक देखाडी रह्यो छे. हवे इहां विवेकरूप जे छे ते मोहथी जे पुद्गल जड तेथी जूदो छे. तेहिज चिन्मूर्त्ति एटले चेतन राजाछे ते तो इहां नाटिकनो देखनारो छे ॥ ९९ ॥

हवे जे जीव अने अजीवनुं एकतापणुं मिथ्या ज्ञानमां भासेछे, तेतो ज्ञानदृष्टिथी भिन्न भिन्न रूप देखायने, ते कहेछे:–अथ ज्ञान विलास कथनः–

सवैया इकतीसाः– जैसे करवत एक काठ वीचि खंम करै. जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों; तैसै भेदज्ञान निज भेदक शकतिसेंति, भिन्न भिन्न करै चिदानंद पुदगलकों; अवधिकों ध्यावै मनपर्यंकी अवस्था पावै. उमगिके आवै परमावधि केवलकों; याही भांति पूरन सरूपको उद्योत धरै, करै प्रतिबिंबत पदारथ सकलकों ॥ १०० ॥

अर्थः– जेम एक लाकडाने करवती वेहेरीने बे भाग करेछे. ने जेम राजहंस दूधने पाणी एकठा होय तेने जुदा जुदा करी नाखे छे. तेम जेने भवितव्य परिपाके भेदज्ञान प्रगटे ते पोतानी भेदक शक्तिवडे चिदानंद तथा पुद्गल एकमेक होय तेने जुदा जुदा करेछे. अने तेज भेदज्ञान पोताना क्षयोपशम माफक पोतानी अवधिने ध्यावे एटले पोतानी अवधि ज्ञानरूप पर्यायने पामे, पछी तेहिज भेदज्ञानथी विशुद्ध थयेलुं मनपर्याय अवस्थाने पामे; अने तेथी विशुद्ध थईने परमावधि सुधी पोचे; एम वधते वधते भेदज्ञान थकी पोतानुं पूर्ण स्वरूप उद्योतवंत धारण करे, एटले केवल अवस्था धारे; अने सर्व पदार्थने प्रतिबिंबित करे ॥ १०० ॥

इती श्री समयसार नाटकनो बीजो अजीवद्वार बालावबोध सहित समाप्त थयो.

दोहराः– यह अजीव अधिकारको, प्रगट बखान्यो मर्म; अब सुनु जीव अजीवके, करता किरिया कर्म. ॥ १०१ ॥

अर्थः--अजीव द्वार एरीते समजावीने कह्यो अने एनुं रहस्य ए छे के अजीव पदार्थ जाणीने तेथकी जीव पदार्थ जुदो जाणवो; तेनुं वर्णन कर्युंछे. हवे जीव

नेविषे कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार अने अजीवनेविषे पण कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार गुरु कहेछे ने शिष्य शानजेछे ॥ १०१ ॥

हवे कर्त्तापणामा जीवनी मिथ्या दृष्टि छे ते नेदज्ञानथी छुटे, माटे नेदज्ञाननु माहात्म्य कहेछे –अथ नेद ज्ञान माहात्म्य बर्नन -

सवैया इकतीसा --प्रथम अज्ञानी जीव कहे मे सदीव एक, दूसरो न और मे ही करता करमको, अतर बिवेक आयो आपापर नेद पायो, नयो बोध गयो मिटी नारत नरमको, नासे छहो दरबके गुण परजाय सब, नासै दुख लख्यो मुख पूरन परमको, करमको करतार मान्यो पुदगल पिंम, आपु करतार नयो आतम धरमको ॥ २ ॥ जाहि समै जीव देहबुद्धिको विकार तजे, वेदत सरूप निज नेदत नरमको, महा परचंम मति मंमन अखंम रस, अनुनौ अन्यास परकासत परमको, ताही समै घटमे न रहै विपरीत नाव, जैसै तम नासै नानु प्रगट धरमको, ऐसो दशा आवे जब साधक कहावे तब, करता व्है कैसे करे पुग्गल करमको ॥३॥

अर्थ --प्रथमथी अज्ञानी जीव जे छे, ते पोताना रूपनी नूलवडे एमज कहेछे के निरतर कर्मनो कर्त्ता हुंज छुं, बीजो कोई नथी एरीते जीवनी अपेक्षा लईने कर्मनो कर्त्ता बनेछे पछी जारे घटमा विवेक प्राप्त थाय, त्यारे निजरूपनो नेद समज्यो एटले बोध थयो, अने भ्रम के० मिथ्यातनो खेल मटी गयो, ने भ्रम नाश थता छए द्रव्यना गुण पर्याय आत्मानेविषे नासवा लाग्या, क्षण क्षण अवस्था नेद ते पर्याय कहीए अने पूर्णपुरुष जे छे तेनुं मुख दीठुं, तेणे करीने कर्मनो कर्त्ता पुग्गलपिंम मान्यो अने पोते अकर्त्ता थयो अने आत्मिक धर्म जे ज्ञायकता, वेदकता, तथा चेतनता इत्यादिक स्वनावनो हु पोते कर्त्ता छु एम मान्यु, एटले कर्मनो अकर्त्ता अने पोताना स्वनावनो कर्त्ता एम केहेवा लाग्यो ॥ २ ॥

जे प्रस्तावे जीव छे, ते श्रेणीनु आरोहण करे, अप्रमत्तता पामे, देहबुद्धिनो विकार तजे, एटले बाह्यात्माने पोतापणे जाणवो ए विकार टाळे, ने पोतानुं स्वरूप शुद्धज वेदे, अने भ्रमनो नेद करे, घणी तीक्ष्णबुद्धिनो शोनानु करनार, अने जेनो रस अखंम छे, पूर्ण रसस्वाद छे, एवो जे शुद्धात्मानो अनुनव छे, तेनो अन्यास करी अंते परमात्मानो प्रकाश करे तेज प्रस्तावे घटपिंममा विपरीत नाव रहे नही, एटले अहबुद्धि वडे जे अकर्त्ताने कर्मनो कर्त्ता करी मान्यो ए विपरीत नाव हतो ते रहे नही ते उपर दृष्टात कहेछे –जेम नानुधर्म के० सूर्यना तीक्ष्ण तेजना प्रकाशवाथी तम जे अधकार ते सर्व नाश पामेछे, तेम एवी अप्र

मत्त दशा ज्यारे प्राप्त थाय, त्यारे ते आत्मस्वभावनो साधक थयो; ते वखत कर्म नो कर्त्ता केम थाय! अने पुद्गलरूपी कर्मने केवी रीते करे! एनो अहीं उपयोग नथी. ॥ ३ ॥

हवे अहीं प्रथम आत्माने कर्मनो कर्त्ता मानीने पछी तेने अकर्त्ता मानवो ते ज्ञानना सामर्थ्य वडे बनेछे ते कहेछेः—अथ ज्ञानसामर्थ्यवर्णनंः—

सवैया इकतीसाः— जगमें अनादिको अज्ञानी कहै मेरो कर्म, करत्ता में याको किरियाको प्रतिपाखी है; अंतर सुमति भासी जोगसों भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है; निरभै सुभाउ लीनो अनुभौके रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचैमें राखी है; भरमकी दोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीति जोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

अर्थः— संसारनेविषे जीव अनादिकालथी अज्ञानीज छे, ते कहेछे के शुभ अ ने अशुभ कर्मनो कर्त्ता हुंज छुं क्रियानो प्रतिपक्षी के० कर्मनी क्रियानो पक्षराख नारो छुं, पछी ज्यारे अंतरमां सुमतीनो भास थयो, अने मन वचन तथा काया ना योगथी उदास थयो, एटले ए योगने पररूप समज्यो, तथा ए योगनी ममता मटी गई. अने परजाय बुद्धि के० मन वचन अने कायाना योगनी जे बुद्धि ते ना खी दीधी; अने द्रव्यबुद्धि राखीने आत्मानो जे निर्भय स्वभाव छे, तेनुं ग्रहण कीधुं अने ए स्वभावनो जे अनुभव रस तेमां भीनो के० मग्न थई रह्यो. अने सर्व व्यव हारमां प्रवृत्ति करी रह्योछे; पण दृष्टिमां श्रद्धा तो निश्चयमां राखी छे, एम करतां भर मनी दोरी तोडी नाखी, एवुं छद्मस्थपणुं मूकी दीधुं, अने आत्मिक धर्म जे पोतानो स्वभाव तेनो धोरी के० धरनारो थयो; परम साथे प्रीति जोडी, एटले सिद्धपदमां प्रीति राखीने कर्मनो साखी थयो; एटले पुद्गलकर्मने करे तेनो साक्षी थयो छे. ॥४॥

शिष्य पूछेछे के, चेतन तथा अचेतन एकक्षेत्रमां रहेछे, अने कर्म करेछे, त हां चेतनने कर्मनो अकर्त्ता केम मनाय? गुरु कहेछे के, ज्ञानशक्तिवडे अकर्त्ता मनाय. ते कहेछे.— अथ भेदज्ञानको सामर्थपनो कथनः—

सवैया इकतीसाः— जैसो जो दरब ताके तैसै गुन परजाय, ताहुसों मिलत पें मिले न काहु आनसों; जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद, अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरे कानसों; एसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भग्यो भानसों; सोइ जीव करमको करतासो दीसे पें अकरता कह्योहै शुद्धताके परवानसों. ॥ ५ ॥

अर्थ – जे जेवु द्रव्य होय तेना तेवा गुणपर्याय होय छे, ते तेज द्रव्यसाथे मलेछे, पण बीजा द्रव्यसाथे मलता नथी, जेम कोई स्निग्धगुणवडे घृतादिक द्रव्य पोताना पर्यायथी स्निग्ध गुणवाला द्रव्यसाथे मले, पण रुक्ष गुणवालासाथे मले नही, तेम ए जीव वस्तु चेतनजाति छे, अने कर्म जे छे ते जडजाति छे, एवो जातिभेद छे तेथी चेतन तथा जडने अमिलनता छे, पण काई युक्ति मिलाप नथी. जेम केडना भागनी नीचे पश्चिम प्रदेश नितंब छे, ते उपर रहेला कानसाथे केम मले? एवो गुणपर्यायनो विवेक जेना हैयामा प्रगट थयोछे, तेना हैयामा पूर्वेनो उपजेलो भ्रम नाश पाम्यो, ते उपर दृष्टांत केहेछे के, जेम सूर्यनो उदय थवाथी अंधकार नासेछे, तेम नाश पामेछे, एवा विवेकवालो जीव जे छे ते कर्मनो कर्त्ता तो देखायछे पण शुद्धता जे पोतपोताना द्रव्यनी गुण परिणति तेना प्रमाणथी जीवने कर्मनो अकर्त्ताज कह्यो ॥ ५ ॥

हवे जीव अने पुद्गलना लक्षणना भेद देखाडीने एज वात दृढ करेछे –

अथ जीवपुद्गललक्षणभेदकथन –

छप्पय छंद –जीव ज्ञानगुनसहित, आपगुन परगुन ज्ञायक, आपा परगुन लखै, नांहि पुग्गल इहि लायक, जीवरूप चिद्रूप, सहज पुदगल अचेत जड, जीव अमूरति मूरतीक पुदगल अंतर वड, जबलग न होइ अनुभौ प्रगट, तबलगु मिथ्यामति लसै, करतार जीव जड करमको, सुबुधि विकाशक भ्रम नसै ॥६॥

अर्थ –जीवजे छे ते ज्ञानगुणसहित छे, अने जेम पोताना गुणनो ग्राहक छे तेमज पारका गुणनो पण ग्राहक छे अने एज गुणना भेदे करीने पोताने तथा परने लखै के० जुएछे, एवी कला शक्ति लायक पुद्गल क्यारे पण बनी शके नही जीवनुं स्वरूप चिद्रूप के० चेतनारूप छे, अने पुद्गलतो सेहेज भावे अचेतनारूप छे, एटले जडछे वली जीव अमूर्त्ति छे अने पुद्गल मूर्त्ति छे, ए मोटुं अंतर ए बन्नेबछे ज्यासुधी शुद्धचेतननो अनुभव प्रगट न थाय त्याहासुधी मिथ्यामति लसै के० दीप्तिवंत होयछे अने जडस्वरूपी कर्मनो कर्त्ता जीव छे, ते भ्रमबुद्धि छे, पण ए अनादिकालनो भ्रम ते सुबुद्धिना विकाश थवाथी नाश पामेछे ॥ ६ ॥

हवे कर्त्ता कर्म अने क्रिया ए त्रणे स्वरूप कहेछे –अथ कर्त्ताकर्मक्रियास्वरूपकथन –

दोहरा –करता परिनामी दरव, करमरूप परिनाम, किरिया परजेकी फिरनि, वस्तु एक त्रय नाम. ॥ ७ ॥

अर्थ –रूपांतरने भजे ते परिणामी केहेवाय, एवु जे द्रव्य, ते कर्त्ता कहिये, रूपां

तर थावुं ते परिणाम, अनेकर्मनुं स्वरूप कहियें; अने पर्यायनुं क्रमे क्रमे फरवुं तेने क्रिया कहिये. ए रीते कर्त्ता कर्मने क्रिया एवां त्रण नाम छे पण वस्तु तो एकज छे.७

हवे कर्त्ता, कर्म, ने क्रिया ते केहेवामां नाम भिन्न भिन्न छे पण वस्तु एकज छे ते कहेछेः-अथ कर्त्ताकर्मक्रियैकत्वकथनः-

दोहराः—कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार; नाउ भेद बहु विधि भयो, वस्तु एक निरधार ॥ ८ ॥

अर्थः--कर्त्ता त्यारे केहेवाय के ज्यारे क्रिया करे, अने क्रिया त्यारे केहेवाय के ज्यारे कर्म करे, एम नाम भेद भातभातनो पड्यो पण करवाथी कर्त्ता, करवाथी कर्म ने करवाथी क्रिया ए त्रणे एकज वस्तु छे. ॥ ८ ॥

हवे एक कर्म क्रियानो कर्त्ता एकज होयछे, ते स्थापन करेछेः—अथ कर्त्ताकर्मक्रियाप्रतिस्थापनाः--

दोहाः—एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्त्ता दोय; दुधा दरब सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय. ॥ ९ ॥

अर्थः—ए वात तो खुल्ली छे के, एक कर्मनी कर्तव्यता के० क्रिया ते एकज होयछे. अने तेनो कर्त्ता पण एकज होयछे, पण बे कर्त्ता एकज क्रियाना करनार न होय. अही चेतन द्रव्यसत्ता अने पुद्गलद्रव्यसत्ता ते तो दुधा के० बे प्रकारें जुदी जुदी छे, तें माटे एक भाव एक कर्म केम बने ? ॥ ९ ॥

हवे कर्त्ता कर्म ने क्रियानो विचार कहेछे. अथ कर्त्ताकर्मक्रियाविवरणंः—

सवैया इकतीसाः-- एक परिनामके न करता दरब दोय, दोय परिनाम एक दर्ब न धरतु है: एक करतूति दोइ दर्ब कबहों न करै, दोई करतूति एक दर्ब न करतु है; जीव पुदगल एक खेत अवगाही दोई, अपने अपने रूप कोउ न टरतु है; जड परिनामनिको करता है पुदगल, चिदानंद चेतन सुभाउ आचरतु है॥१०

अर्थः--एक परिणामना बे द्रव्य कर्त्ता न होय, अने एक द्रव्य जे छे ते बे परिणाम धारण करे नही; ए रीते बे द्रव्य मलीने एक करतूती के० क्रिया क्यारे पण नज करे. तेमज एक द्रव्य बे क्रिया पण नहीज करे; ए व्यवस्था बुद्धि कहेवा लायक कहेछे के, जीव अने पुदगल एकमेक थई रह्यां छे ; तेथी ए बंने एक क्षेत्रावगाही थया पण पोत पोताना स्वभावथी कोई टले नही; तेथी पुद्गल जे छे तें जड छे ते जडपरिणामनोज कर्त्ता थाय; अने चिदानंद चेतन छे ते चेतन स्वभावने आचरे ॥ १० ॥

हवे सम्यक्तअवस्थामां कर्मनो अकर्त्ता अने मिथ्यात्वअवस्थानेविषे कर्मनो कर्त्ता छे एम कहेछे —अथ सम्यक्तमिथ्याकथन —

सवैया इकतीसा —महा ढीठ दुःखको वसीठ पर दर्वरूप, अंध कूप काहुपे निवार्यो नहि गयो है, ऐसो मिथ्याभाव लग्यो, जीवकों अनादिहीको, याही अहं बुद्धि लिये नाना भांति भयो है, काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेद, मम ता उछेदि शुद्ध भाउ परिनयो है, तिनही विवेक धारि बंधको विलास डारि, आतम सकतिसों जगत जीति लयो है ॥ ११ ॥

अर्थ -- महाधृष्ट अने दुःखनो पढु आत्मद्रव्य ते परद्रव्य के० पुद्गलद्रव्य जेनुं रूप छे, पिंड छे, अने जेमा सत्य दृष्टि पोची शकती नथी, तेमाटे अंधकूप समान छे, अने कोईथी निवारण नथी थतो, एवो मिथ्याभाव जे मिथ्यात्व मोह कर्म ते जीवने अनादि काळ थकी लागेलु छे, एथी परद्रव्य तरफ जीवनी अहंबुद्धि लागी, तेथी जीव नाना प्रकारनो थयो. अने कोई समये यथाप्रवृत्तिकरणना वखते कोई भव्यजीवनो मिथ्यात अंधकार भेदायो, ते मिथ्यात्वग्रंथि भेदीने अने सर्व कार्यनेविषे जे अहंबुद्धिवडे रहेली ममता हती, तेने छेदीने शुद्ध चिदानंद भावमाज परिणमी रह्यो, ते समये ते भव्यजीव भेदविज्ञान के० जड चेतननो विवेक धारण करीने अविरति, कषाय, योग तथा प्रमाद ए जे बंधनाहेतु हता, तेनो विलास छोडीने आत्मशक्तिवडे एटले पोताना वीर्यबळवडे जगतने जीति लीयेछे, जगतथी निरालो थाय छे ॥ ११ ॥

हवे जेम कर्मनो कर्त्ता आत्मा नथी तेम ए कर्म आत्माना करेला नथी, अने कर्त्ता ने कर्म एक रूपज छे ते केहेछे — अथ यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूपकथन —

सवैया इकतीसा —शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन दुहूको करतार जीव और नही मानीये, कर्मपिंडको विलास वर्न रस गंध फास, करता दुहूको पुदगल पर मानिये, ताते वरनादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गलरूप जानिये, समल विमल परिनाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों वखानिये १२

अर्थ -- चेतनानेविषे शुद्ध भाव तथा अशुद्ध भाव जे जाणवामा आवेछे, ते तो परिणामरूप कर्म छे, तेथी ते बनेनो कर्ता जीवज छे बीजो कोई कर्त्ता मानवो नही अने ज्ञानने ढांकवु दर्शनने ढांकवु इत्यादि कर्म पिंडनो विलास छे, अने वर्ण गंध रस स्पर्श इत्यादि जे कार्य अने कर्म छे, ए बनेनो कर्त्ता पुदगलद्रव्यनेज प्रमाण राखिये, तेणे करीने वर्णादि के० वर्ण रस गंध स्पर्श गुण छे ते

अने ज्ञानावरण दर्शनावरण प्रमुख जे कर्म छे ते सर्व नाना प्रकारना पुद्गलरूप जाणवा; जेम कह्युं छे के, जोगापयडिपयेसा के० जोगवडे प्रकृतिप्रदेशबंध थाय ने तेनेविषे चेतनना समलपरिणाम के० अशुद्ध परिणाम अने विमलपरिणाम के० शुद्ध परिणाम ए जे कर्मरूपक छे ते ते सर्व अलक्ष पुरुषरूप छे, माटे कर्त्ता कर्मने एकज वखाणीए. ॥ १२ ॥

हवे ए वातना रहस्यने मिथ्यादृष्टि जाणे नही, तेना उपर हस्तिनो दृष्टांतः–

अथ मिथ्यादृष्टि बर्नन हस्तिको दृष्टांतः–

सवैया इकतीसाः–जैसै गजराज नाज घासके गरास करि, भछत सुभाय नहि भिन्न रस लियो है; जैसै मतवारो नहि जानै सिखरनि स्वाद, जुंगमें मगन कहै गऊ दूध पियो है; तैसै मिथ्यामति जीव ज्ञान रूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्य सों सहज सुन्न हियो है; चेतन अचेतन दुहूकों मिश्र पिंड लखि, एकमेक मानै न विवेक कबु कियो है. ॥ १३ ॥

अर्थः–जेम हाथीने अनाज साथे घास भेलवीने ग्रास आपेछे ते खायछे हाथीनो स्वभाव एवोछे के, घासने अनाजनो जुदो स्वाद लेतो नथी. वली कोई माणस मद्य पीने मतवारो थयो होयने तेने दहीने खांडथी बनेलुं शीखरण जमवाने आपीये ने पुछीये के एनो स्वाद केवोछे तो ते केहेशे के गायनुं दूध पीये तेवोछे. पण तेने दारूनी धुममां जुदा स्वादनी खबर पडती नथी, तेम जीव मिथ्यामतिवालो थईने जोपण अनादि कालनो ज्ञानरूपी छे एटले ज्ञानमय छे तो पण पापकर्म अने पुन्यकर्ममां लीन थई रह्योछे, माटे सहज भावे शून्यहृदय थयोछे त्यारे चेतन अने अचेतन जे पुद्गल ते बेउने मिश्र के० एक पिंड जोईने एकमेक मानेछे; पुद्गलना भेलथी चेतनने पण पुद्गलकर्मनो कर्त्ता मानेछे पण कदी विवेकनी नजरथी जोतो नथी. ॥ १३ ॥

हवे जीवने कर्मनो कर्त्ता मानवो ए भ्रमवडे मनायछे; ते उपर दृष्टांत आपेछे

अथ भ्रमस्वरूपकथनदृष्टांतः–

सवैया इकतीसाः–जैसै महाधूपकी तपतिमें तिसीयो मृग, भरमसों मिथ्याजल पीवनकों धायो है; जैसै अंधकारमांहि जेवरी निरखी नर, भरमसों डरपी सरप मानि आयो है; अपने सुभाय जैसै सागर सुथिर सदा, पवन संजोगसों उछरि अकुलायो है, तैसै जीव जडसों अव्यापक सहजरूप, भरमसों करमको करता कहायो है. ॥ १४ ॥

अर्थ –जेम वैशाक ने जेठना घणा सख्त तापनी गरमीवडे मृग तरस्यो थईने मृग तृषाने जोई तेने जल भरेलुं तलाव मानी ते मिथ्या जलने पीवाने दोडेछे, तथा जेम अंधारे पडेली दोरडीने जोईने कोई मनुष्य भरमवडे तेने साप जाणी डरी जायछे, वली जेम समुद्रनो स्वभाव स्थिर छे पण पवनना संजोग थकी उछलतो देखायछे, तेम जीव निश्चय थकी जोता जड वस्तुथी अव्यापक छे, पण अनादि कालनो सहज रूपी भ्रम तेणे करीने ते जीवने कर्मनो कर्ता कहेछे ॥ १४ ॥

हवे जे सम्यक् दृष्टि थाय ते सम्यक् स्वभावे करीने भ्रम दूर करे, अने जुदो जुदोज भाव जाणे, ते उपर राजहंसपक्षीनो दृष्टांत आपेछे अथ सम्यक् दृष्टिस्वभाववर्णन, राजहंसके दृष्टांत –

सवैया इकतीसा – जैसै राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है, तैसै समकितीकी सुदृष्टिमे सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है, जब शुद्ध चेतनाको अनुभौ अभ्यासे तब, भासै आपु अचल न दूजो ओर सीरहै, पूरव करम उदै आइके दिखाई देहि, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

अर्थ – जेम राजहंसनुं वदन के० मुखनी अंदरनी जीभ, तेना अडकवाथी दूधने पाणी एकमेक होय ते फाटीने दुध जुदुं ने पाणी जुदु थाय छे, तेमज सम्यक्दृष्टिवडे सहजरूपे जीव छे ते जुदोज जणाय ने कर्म पण जुदुंज जणाय, अने शरीर पण जुदुंज जणाय, एटले बाह्यात्मा, अंतरात्मा ने परमात्मा ए त्रणे जुदा जणाय ज्यारे शुद्ध चेतन अनुभवनो अभ्यास करे त्यारे पोतेज देखाय कर्मादिकनो बीजा कोई साथे भेल नथी पूर्व संचित कर्म जे छे ते निज स्थिति पूर्ण थये अथवा उदीरणा करी के० कर्म उदे आव्याथी देखाय, पण जीव काई कर्मनो कर्त्ता नथी, पण ते कर्मना उदयनो तमासो जुएछे ॥ १५ ॥

हवे शिष्य पूछे छे के, हे स्वामी जीव तथा पुद्गल एकमेक थई रह्या छे, त्यारे ते उभेविषे एवो जुदो जुदो स्वभाव केम जाणीये ? त्यारे गुरु तेनो उत्तर आपता पाणिनुं तथा शाकनुं दृष्टांत आपेछे अथ कर्तृत्व स्वभाव तप्तोदक तथा व्यंजनको दृष्टांत

सवैया इकतीसा – जैसै उसनोदकमें उदक सुभाउ सीरो, आगिकी उसनते फरस ज्ञान लखिये, जैसै स्वाद व्यंजनमे दीसत विविध रूप, लोनको सवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये, तैसै याहि पिंडमे विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जी

व भेद ज्ञानसों परखिये, भरमसों करमको करता है चिदानंद, दरव विचार करतार भाव नखिये. ॥ १६ ॥

अर्थः— जेम उष्णोदक के० उनुं पाणी ते पाणीनो पोतानो स्वभाव तो सीरो के० शीतळज छे, पण तेनो स्पर्श करता गरम लागेछे. ते गरमी आगनी छेः अने स्वादिष्ट व्यंजन के० शाकमां भात भातनो स्वाद होय छे अने लोन के० निमकनो खारो स्वाद जुदोज जणाय छे, ते जीभ ज्ञानवडे जणाय छे; तेमज घटपिंडमां विभावता जे कर्मनी साथें चेतननुं मळवुं तेतो जेम में आ कीधुं एम मानवुं एतो अज्ञानरूप छे. अने जीव छे ते शुद्ध ज्ञानरूपी छे, एनेतो शुद्ध जाणवो एज एनुं कार्य छे ए वात भेदज्ञान वडे जणाय छे. ए चिदानंद जे छे तेने कर्मनो कर्ता मानवो ते भ्रमवडे मनाय छे! पण द्रव्यनो विचार करतां एनो कर्त्ता भाव बने नही पण ज्ञाता भावज बने ए रहस्य छे. ॥ १६ ॥

हवे निश्चय प्रमाणवडे जे जेनो कर्त्ता छे तेने जुदो बतावेछे. अथ कर्तृत्वविवरनं:

दोहाः— ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान; दरब करम पुदगल करै, यह निहचै परवान. ॥ १७ ॥

अर्थः— ज्ञानी होय तेतो ज्ञानभाव करे एटले जाणवारूपजे कार्य छे ते करे छे; अने अज्ञानी होय ते हुं कर्त्ता छुं एम मानी अज्ञानभाव करेछे; द्रव्यरूप जे कर्म छे तेने पुद्गल करेछे, निश्चेप्रमाणमां एवुं स्पष्ट छे. ॥ १७ ॥

शिष्य पूछेछे के हे स्वामी ज्ञानभाव ज्ञानी करे ए वात केहेतां ज्ञाननो कर्ता जीव ठरेछे, ते कया नयथी ठरेछे? तेनो उत्तर गुरु आपेछेः—अथ व्यवहार कर्तृत्वकथन.

दोहाः— ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और; दर्व कर्म चेतन करै, यह विवहारी दौर. ॥ १८ ॥

अर्थः— आत्मा ज्ञानस्वरूपी छे माटे ज्ञानने तो तेज करे, पण बीजो नही. ए निश्चय. अने जे एम कहेछे के, द्रव्यकर्मनो करता पण चेतन छे तेतो व्यवहारमां कहेवाय. ॥ १८ ॥

हवे शिष्य प्रश्नः-- कर्तृत्वकथनः--

सवैया तेईसाः--पुदगल कर्म करै नहि जीव कही तुम में समुझी नहि तैसी; कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी; आपुहि आपु मिलै बिछुरै जड क्यों करि मोमन संशय ऐसी; शिष्य संदेह निवारन कारन बात कहै गुरु है कछु जैसी. ॥ १९ ॥

अर्थ --हवे शिष्य पूछे छे के, जीवने निश्चयनयथी ज्ञाननो कर्त्ता कह्यो ने कर्मनो अकर्त्ता कह्यो, तेनुं शु कारण? हे गुरु पुद्गल द्रव्यरूप कर्मने जीव करे नही एवी जे वात तमे कही, ते वात हुं यथार्थ समज्यो नही ए पुद्गलरुपी कर्मनो स्वभाव करे? इहा कर्त्ता तो ठरावता नथी अने तेनी क्रिया केवी छे ते कहो. वली पुद्गल कर्मनो कर्त्ता पुद्गलनेज बनावोछो त्यारे कर्ता कर्म बंने जड थया, ते पोतानी मेळे मळवु तूटा थावु केम बनी शके? ए मारा मनमा सदेह छे. शिष्यना संदेह निवारवाने आ प्रश्ननो यथार्थ उत्तर गुरु हवे कहेछेः— ॥ ११९ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन —

दोहा — पुदगल परिनामी दरव, सदा परिनमै सोय, याते पुंदगल करमको, पुदगल कर्त्ता होय ॥ २० ॥

अर्थ — हे शिष्य, पुदगल जे छे ते परिणामी द्रव्य छे क्षण क्षणमा तरेहवार बनी जायछे तेमाटे सदा परिणमी रह्यो छे ते युक्तिथी पुद्गलिक कर्मनो कर्ता पुद्गलज थई शकेछे. ॥ २० ॥

अथ पुन शिष्य प्रश्न —

अडिल छंद —ज्ञानवतको भोग निर्जरा हेतु है, अज्ञानीको भोग बंध फल देतु है, यह अचरजकी बात हिये नहि आवही, बूझै कोऊ शिष्य गुरु समुझावही ॥ २१ ॥

अर्थ —हवे शिष्य पूछेछे के, ज्ञानभाव ज्ञानी करे एवु कहेवाथी भोग निर्जरारुपी थाय छे ते केम? ज्ञानी भोग भोगवे ते कर्मनी निर्जरा करेछे, त्यारे तो ज्ञानीनो भोग निर्जरानो हेतु छे अने अज्ञानी जे भोग भोगवे ते कर्म बधन करेछे, त्यारे तो अज्ञानीनेज भोग बध फलदाई कह्यो एतो अचरजनी वातछे, केमके भोग भोगववा मां समान होय ने एकनो भोग निर्जरानो कारक अने बीजानो भोग बंधनो कारक एम केम बने? अने ए वात हृदयमा ठसती नथी आवु शिष्यनु केहेवु सांभळीने गुरु तेनो उत्तर कहेछे — ॥ २१ ॥

अथ गुरु उत्तर कथन —

सवैया इकतीसा —दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दोहू कर्म भोग पै दुहूको एक खेतु है, ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिनाम भेद न्यारो न्यारो फल देतु है, ज्ञानवत करनी करै पै उदासीन रुप, ममता न धरै ताते निर्जराको हेतु है, वहे करतूति मूढ करै पै मगन रुप, अध भयो ममता सो बध फल लेतु है ॥ २२ ॥

अर्थः--दया पालवी, दान देवुं, पूजा प्रमुख करवी, एक एवी रीतना कर्म छे, अने पांच इंद्रिओना विषयनुं सेवन करवुं, कषायनुं सेवन करवुं; एक एवी रीतना कर्म छे, ए बंने कर्मनो संसारमां जोग छे, पण क्षेत्र एक छे, तेथी बंने बंधरूप छे. अने ज्ञानी पण ए बे कर्म करे छे, तथा अज्ञानी पण करे छे. अने ए कर्म करतां तो ज्ञानी अज्ञानी एक सरखाज देखाय छे, पण एना परिणाम भेद जुदां जुदां छे माटे ए कर्मनुं फल जुदो जुदो आपे छे. ज्ञानवान जे कर्म क्रिया करेछे, ते उदासीन रूप थईने करे छे. एटले एनी मेले उदय आवेलुं कर्म करेछे, पण ममता धरतो नथी; ए माटे निर्जरानो हेतु छे. अने एज कर्म क्रिया मूढ करे छे, पण ए क्रिया करवामां आनंद रूप रहे छे; ने निजात्म शुद्धीने विसरी जाय छे; एटले अंध जेवो बनी जाय छे. अने ममता धारण करे छे, तेथी बंध फलने लिये छे; एज माटे अज्ञानी अज्ञाननो करता ठरे छे. ॥ २२ ॥

हवे कुंभारनुं दृष्टांत आपीने मूढनुं कर्तापणुं शिद्ध करेछेः—

अथ मूढ कर्तृत्व कथन कुलाल दृष्टांतः—

छप्पय छंदः—ज्यों माटीमहि कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव; दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव; त्यों पुदगल परवानु, पुंज बरगना भेष धरि; ज्ञानी बरनादिक सरूप विचरंत विविध परि; बाहिज निमित्त बहिरातमा, गहि संसै अज्ञान मति; जगमांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति. ॥ २३ ॥

अर्थः—जेम कलसरूप कार्य थवामां माटी द्रव्यनी शक्ति ध्रुव के० निश्चय छे. अने ते कार्यनेविषे तेने फेरववानो दंड अने चक्र के० चाकने चीवर उतारवानी दोरी ने कुंभार ए सर्व बाह्य निमित्त थया. तेम परमाणु पुद्गलनो पुंज ते बंधपणुं धरीने कार्मणवर्गणानो भेष धरीने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आउषो नामकर्म गोत्रकर्म अंतराय ए स्वरूपे विविध के० भात भातनो पुद्गल खंध विचर्यो अहीं बहिरात्मा एटले देव मनुष्यादिरूपी बाह्यात्मा बाह्यनिमित्त थईने; भ्रम रूपी अज्ञान ग्रहीने अंही कारण बन्यो; त्यारे जगतमां अहंकारबुद्धिनी संगति तेहिज पुद्गलखंध कर्मरूप बनीने परिणम्यो छे. ॥ २३ ॥

हवे निश्चे जीवनुं अकर्त्तापणुं मानीने एना अनुभवमां रेहेवुं तेनुं माहात्म्य कहेछेः--

अथ शुद्धानुभव महात्म्य कथनः—

सवैया तेईसाः-- जे न करै नयपक्ष विवाद धरै न विषाद अलीक न भाखै; जे उदवेग तजै घट अंतर, शीतलभाव निरंतर राखै; जे न गुनी गुन भेद बिचारत,

आकुलता मनकी सब नाखें, ते जगमें धरि आतमध्यान अखंडित ज्ञानसुधारस चाखें

अर्थ —जेम मिथ्यात्वी लोक पोतपोताना नयनो पक्ष धरीने पोतपोतामा विवाद करेछे तेम न करता जे सहज आनंदमा रहेछे, ने विषाद धरता नथी, अने फ़ुटुं बोलता नथी, अने दुष्ट ध्यान धरता नथी एटले उदवेगनो त्याग करेछे, अने हमेश पोताना हृदयनेविषे शीतल भाव राखेछे, ने एवा शुद्ध आत्माना अनुभवमां मलेछे जेथी आत्मा गुणी छे ने ज्ञानगुण छे, एवो जेने भेद विचार रह्योज नथी, अने विकल्प के० व्याकुलताने मनमाथी काढी नाखे, एवा जे शुद्ध अनुभवी थाय, तेज आत्मध्यान धरीने जगतनेविषे संपूर्ण केवल ज्ञानरुप अमृत रस तेने चाखेछे २४

हवे निश्चय नय थकी अकर्त्तापणानी स्थापना अने व्यवहार नयवडे कर्त्तापणानी स्थापना प्रमाण करी बतावे छे —अथ निश्चय व्यवहारनय प्रमाण स्थापना -

सवैया इकतीसा — विवहार दृष्टिसों विलोकत बंध्योसो दीसे, निहचे निहारत न बांध्यो यह किनही, एक पच्छ बंध्यो एक पच्छसो अबंध सदा, दोउ पच्छ अपने अनादि धरे इनही, कोउ कहै समल विमल रुप कोउ कहै, चिदानंद तैसोई बखान्यो जैसो जिनही, बंध्यो मानै खुल्यो मानै दुहुनको भेद जानै, सोई ज्ञानवंत जीव तत्व पायो तिनही ॥ २५ ॥

अर्थ — चतुर्गतिरुप संसारमा भ्रमण करवानो आत्मानो व्यवहार जोइए तो आत्मा कर्त्ताज देखाय ने बंधमा पण जणाय, अने निश्चयनयवडे ज्ञाननोज कर्त्ता अने ज्ञानस्वरुपी जोइये तो एज आत्मा कशामां बंधायलो नहीं जणाय, तेथी एकलो व्यवहार पक्ष ग्रहीये तो आत्मा बंधमा छे. ने एकलो निश्चयपक्ष ग्रहीये तो आत्मा सदा अबंध जणाय, एवा बंने पक्ष अनादिकालना ग्रहण कीधा छे. कोई व्यवहारनयवालो होय ते जीवने समल कहेछे, ने कोई निश्चयनयवालो होय ते एने विमल कहेछे पण जेणे जेवु पोतानी बुद्धिथी चिदानंदने वखाण्यो तेवोज चिदानंदछे हवे जे सम्यक्दृष्टि होय तेतो आत्माने बंधायलो पण माने, अने अबंधपण माने, पण ए मानवामां बेहुनयनो भेद जे जाणे तेज ज्ञानी केहेवाय, अने तेणेज जीव तत्वनु स्वरुप ओलख्युछे ॥ २५ ॥

हवे बेउ नयने समान राखीने समकित राखेथी समरस भावमां रहे तेनी प्रशंसा करेछे —अथ समरसी भाव प्रशंसा कथन —

सवैया इकतीसा —प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय, दुहुको फलावत अनंत भेद फले हैं, ज्यों ज्यों नय फले त्यों त्यों मनके कल्लोल फले, चंचल सुभाव

लोका लोकलौं उठलै है; ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसी नये एकतासों नही टलै है; महा मोह नासै शुद्ध अनुनो अभ्यासै निज, बल परगासै सुख रासि माहिं रलै है ॥ २६ ॥

अर्थः—पहेलोतो निश्चय नय छे, अने बीजो व्यवहार नय छे; ए बेउ नयने एक एक द्रव्य साथे फलाविये त्यारे अनंत द्रव्यनी अपेक्षाने लीधे नयना अनंत नेद फले छे. हवे ए नयना अनंत नेद मननाज विचारथी फले छे, तेथी जेम जेम नयनुं फलाव थाय तेम तेम मनना तरंग पण अनंत नेदे फलेछे, अने मनना कल्लोल जेटला होय तेटला चंचल स्वनावमनना थई जाय, एनुं प्रमाण षट्गुणी हानी वृद्धि लेखे लोका लोक प्रदेश परिमाण होय एवी जे नय कक्षा के० नयने अंगीकार करी तेनो पक्षपात त्यजीने जे ज्ञानी जीव समरसी नावमां रह्या अने सघला नयना विस्तारमां चेतनानी एकता होय तेथी टले नही ते तो समरसी नाव वाला महा मोह के० न्रमनो नाश करीने अने शुद्ध चिदानंदना अनुनवनो अन्यास करीने, एटले क्षपकश्रेणी आरोहण करीने परमात्मानुं जे बल छे तेनो प्रकाश करीने सुख राशी जे मोक्ष पद छे तेनेविषे मली जायछे ॥ २६ ॥

हवे निश्चय व्यवहार बतावीने पोतपोतानुं जे सत्य स्वरूप लक्षण छे ते हिज कहेछेः—अथ सम्यक् स्वरूप लक्षन कथनः—

सवैया इकतीसाः—जैसे काहु बाजीगर चौहटे बजाई ढोल, नाना रूप धरीके नगल विद्या गनी है; तैसे में अनादिको मिथ्यातके तरंगनिसों नरममें धाइ बहु काइ निज मानी है; अब ज्ञान कला जागी नरमकी दृष्टि नागी, अपनी पराई सबसों जु पहिचानी है; जाके उदे होत परवान एसी नांति नई, निहचे हमारी ज्योति सोई हम जानी है. ॥ २७ ॥

अर्थः—जेम कोई बाजीगर चोटामां ढोल वगाडीने नात नातना रूप धरीने पोतानी नगल विद्या प्रसारे छे, ने तेने लोको साची मानेछे, ते रीते हुं अनादी कालथी मिथ्यात तरंग के० लहेरोमां मगन बनी रह्यो तेथी नगलविद्या जो नाराने न्याये नर्ममां धायो थको घणी कायाउ पामीने पोतानी मानी लीधी हती, ते हाल मने ज्ञान कला प्राप्त थवाथी नरमनी दृष्टि दूर थई गई, त्यारे पोतानी तथा पारकी सोंज के० सामग्री ते सर्वेने ओलखी लीधी, जे ज्ञान कलाना उदय थवाथी वस्तुनुं परमाण थायछे एवी रीत थई तेथी पोतानी परंपरानी शुद्धि आवी, एवा निश्चयथी अमारी ज्योति जे अमारुं स्वरूप तेने अमे ओलखी लीधुं २७

हवे जे ज्ञाता होय ते सम्यक् सरूपने शुद्ध अनुभवनेविषे विचारी लिये ते कहे छे –अथ शुद्धानुभव चिंतन ज्ञान विलास –

सवैया इकतीसा –जैसै महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरग जैसैं लीन होइ जलमे, तैसें शुद्ध आतम दरवपरजाय करी, उपजे विनसे थिर रहे निज थल में, ऐसे अविकलपी अजलपी आनद रूपी, अनादि अनत गहि लीजे एक पलमे, ताको अनुभव कीजे परम पिऊप पीजे, बंधको विलास मारि दीजे पुदगलमे॥ १७॥

अर्थ –जेम हीरा लाल पन्ना अने रत्ननी ज्योतिमा लहरी उठे, ने ज्योतिमाज समाई जायछे, वली जेम पाणीना मोजा पाणीमाज समाई जाय, तेम शुद्ध आत्म द्रव्य ना जे ज्ञान प्रमुख गुणना पर्यायछे ते समये समये उपजे छे ने वणसेछे, अने द्रव्य पोताना द्रव्य स्थानने विषेज रहेछे उपजवु ने वणसवु ए विकल्प पर्यायने आश्रये थाय छे, पण द्रव्यमां तो थिरता रही छे द्रव्यमा विकल्प नथी माटे जे अविकल्पक अने अजल्पी के० स्थिरछे सर्वथा वचन गोचर नथी, अने आनदरूपी छे, तेथी सहज समाधि मईछे, एवु कोई आत्म द्रव्यछे तेनुं अनादि अनत काल सुधी एक रूपमा ग्रहण करवु, अने तेज द्रव्यनो अनुभव करवो, एटले तेने विषेज उपयोग राखवो, ए अंनुभवमां परम पिऊष के० परम अमृतरस उपजे छे ते पीवो. अने जे आश्रव बंधनो विलास आत्मामा छे तेने पुद्गलनी सामग्रीमां नाखी देवो, एटले पुद्गलरूप जूदुंज छे ॥ १७ ॥

हवे आत्मानो शुद्ध अनुभव परम पदार्थ छे, तेनी प्रशसा करेछे -अथ अनुभव प्रशंसा -

सवैया इकतीसा –दरवकी नय परजाय नय दोउ नय, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोष है, शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट तातें, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोष है, अनुभौ प्रवान भगवान पुरुष पुरान, ज्ञान औ विज्ञानघन महासुखपोष है, परम पवित्र योंही अनुभौ अनत नाम, अनुभौविना न कहों उर ठोर मोष है॥ १९॥

अर्थ –पदार्थने उलखवाने बेज नय प्रवर्ते छे, एक द्रव्यार्थिक नय वडे द्रव्यनो विवरो अने पर्यायार्थिक नयवडे पर्यायनो विवरो थाय छे, ए बने नय श्रुतज्ञानरूप छे, अने श्रुतज्ञान जे छे ते परोक्ष ज्ञान छे, अने शुद्ध परमात्मानो अनुभव जे छे तेतो प्रगट के० प्रत्यक्ष प्रमाणमा आवेछे, तेथी अनुभवज महा बलवान थको विराजमान थई रह्योछे, एथी अनुभव ते अदोष के० शुद्धछे हवे अनुभवना नाम कहे छे अनुभव कहियें प्रमाण कहियें भगवान कहीये, एनेज पुराण पुरुष कहीये, एनेज ज्ञान कहीये, एनेज विज्ञानघन कहीये, एनेज महा सुखनुं पोष कहीये, अने एनेज प

रम पवित्र कहिये, एवां अनुभवना अनंत नाम छे. अने ए शुद्ध अनुभव शिवाय बीजे कोई स्थानके मोक्ष नथी ॥ २९ ॥

हवे शुद्ध अनुभवविना संसारमां भमे अने शुद्ध अनुभव प्राप्त थये मोक्ष पामे ते कहे छे. अथ अनुभव साम्यर्थ जलको दृष्टांतः--

सवैया इकतीसाः-- जैसे एक जल नाना रूप दरबानुयोग, भयो बहु भांति पहिचान्यो न परतु है; फिरि काल पाई दरवानुयोग दूरि होतु, अपने सहज नीचे मारग ढरतु है; तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति योनि भेष भव भावर भरतु है; सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंधकी जुगती भानि मुगति करतु है ॥३०॥

अर्थः– जेम पाणी एक रूप छे तथापि तेनेविषे नाना प्रकारनी माटी प्रमुख द्रव्यनो मिलाप थये पाणी पण तरेवार जातनुं थाय छे, हवे देखवामां तो माटी प्रमुख देखाय छे पण पाणी ओलखातो नथी. फरी कोई औषधादिकथी ते द्रव्यनो मिलाप दूर थयो अने पाणी तरी आव्युं त्यारे पोतानुं सहज रूप लईने नीचाण तरफ ढलवा लाग्युं; ते रीते जे चेतन पदार्थ छे ते विभावतासों के० पोतानी भुल थकी चार गतीमां चोरासी लाख जीव योनिनेविषे भेष के० एक क्रोड साडासत्ताणुंलाखं कुलकोडीमां भांतभांतना भवकरतो भावरी के० फरी रेहे छे, एज जीव कोई अवसर सम्यक् भाव पामीने पोताना अनुभवना मारगमां दोडीने अने बंधनना विलासने तोडीने कर्मनी मुक्ति करे छे. ॥ ३० ॥

हवे मिथ्यादृष्टि होय ते अनुभव शिवाय कर्मनो कर्त्ता होयज ते कहे छेः-- अथ मिथ्यादृष्टि कर्तृत्व कथनः--

दोहाः–निशिदिन मिथ्या भाव बहु, धरै मिथ्याती जीव; ताते भावित करमको, करता कह्यो सदीव. ॥ ३१ ॥

अर्थः– रात ने दिवस पोतानी भूलनेविषे मिथ्याती जीव होय ते फलाणुं में कीधुं में लीधुं अमहारो इत्यादिक मिथ्या भाव धारे ते माटे अशुद्ध चेतनाजेछे ते विभावित कर्मछे तेनो कर्त्ता सदीव के० निरंतर कह्यो. ॥ ३१ ॥

हवे ज्ञानी अने मूढ करम करे छे, ते एक सरखा देखाय छे, तथापि मूढ जीवने कर्मनो कर्त्ता कह्यो ने ज्ञानी जीवने कर्मनो अकर्त्ता कह्यो तेनुं कारण कहे छेः--अथ मूढ कर्मको कर्त्ता ज्ञाता अकर्त्ता यहु कथनः--

चोपाईः-- करै करम सोई करतारा; जो जानै सो जाननहारा; जो कर्त्ता नहि जानै सोई; जानै सो करता नहि होई. ॥ ३२ ॥

अर्थ -- जे कर्मने करे तेज कर्त्ता केवाय अने जे जाणेछे तेने तो जाणनार कहीये जे कर्त्ता छे तेज जाणनार नथी अने जे जाणनार छे ते कर्त्ता नथी ॥३१॥

हवे जे जाणनार छे ते अकर्त्ता छे ते समजावे छे --अथ ज्ञाता अकर्त्ता कथन --

सोरठा -- ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञानमहि, ज्ञान करम अतिरेक, जो ज्ञाता करता नही ॥ ३२ ॥

अर्थ --ज्ञान भाव अने मिथ्यात भाव एक केवाय नही, अने रागादिक जे राग द्वेष मोह इत्यादिक भाव ज्ञानमा होय नही, एथी ज्ञान जे छे ते कर्मथी अतिरेक के० जुदो छे, तेमाटे जे ज्ञाता होय ते कर्त्ता न होय ॥ ३२ ॥

हवे जे मिथ्यात्वी जीव छे ते पुद्गलद्रव्य रूप कर्मनो अकर्त्ताज छे अने भाव कर्मनो कर्त्ता छे ते कहेछे -- अथ जीवद्रव्य कर्मको अकर्त्ता यहु कथन --

छप्पयछंद -- करम पिंम अरु राग, भाव मिलि एक होहि नहि, दोऊ भिन्न स्वरूप, वसहि दोऊ न जीवमहि, करम पिंम पुद्गल विभाव रागादि मूढ भ्रम, अलख एक पुग्गल अनंत किम धरहि प्रकृति सम, निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिनमहि तिम, करतार जीवजम करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थ -- पुद्गल द्रव्य रूप कर्म पिंम अने राग द्वेषादिक भाव ए बने मलीने एक रूप थाय नही, ए बंने भाव भिन्न स्वरूपमा छे, पण ए बेउ भाव जीवमा रेता नथी एनो विवरो कहेछे --कर्मपिंम छे तेतो पुद्गलरूपी छे अने जे रागादिक विभाव छे तेतो मूढ जीवनो भ्रम छे अलख जीव छे तेतो एकता लीधो रह्यो छे अने पुद्गल अनततताने लेई रह्याछे तो कर्मनु कर्त्तापणु एवी सम प्रकृति बेउ केम धारण करशे. जगतमा सर्व कोई पोतपोताना स्वभाव विलासमा युक्त थई रह्याछे, जेवो पोतानो सहज स्वभाव छे तेवोज परिणमी रह्यो छे ए न्यायनी वात छे, तेथी जड रूपी कर्मनो कर्ता जीव छे, एवु वचन जे जीव मोहथी विकल होय छे ते केहेछे ॥३४

हवे सम्यक् प्रकारे करीने सिद्धांत समजावेछे अथ सम्यक्त प्रभाव कथन --

छप्पयछंद -- जीव मिथ्यात न करे, भाव नहि धरे भरम मल, ज्ञान ज्ञान रस रमे, होइ करमादिक पुद्गल, असंख्यात परदेश, सकति जगमें प्रगटे अति, चिद विलास गंभीर, धीर थिर रहे विमल मति, जब लगि प्रबोध घटमहि उदित, तब लग अनय न पेखिये, जिम धरमराज वरतंतपुर, जह तह नीति परेखिये ॥ ३५॥

अर्थ -- जीव छे ते मिथ्यारूपी कर्म करे नही, एनो हेतु कहेछे के, भ्रम मल रू

पी जे नार छे तेने ए जीव धारण करे नही. अने ज्ञान ज्ञाननाज रसमां रमे ए टले ज्ञाता पणामां रहे. अने कर्मादिक जे ज्ञानावरणादिक राग द्वेषादिक तेतो पुज लसामग्रीछे. अने ए जीवना तो असंख्यात प्रदेशनेविषे एवी शक्ति अति प्रगट पणे जगमगी रही छे. ते कहीये छइये के, चिदविलास के० ज्ञान विलासनेविषे गंभीरछे धीर ने विमल मतिवंत थको स्थिरता थई रह्यो छे; एवुं प्रबोध सम्यक् ज्ञान जां सुधी घट पिंडमां प्रकाशमान थई रह्यो छे त्यांसुधी अनय के० अन्याय स्वरूपने दे खीये नही, ते उपर दृष्टांत केहेछे जेम पुर नगरमां धर्मराज वर्तता थका जहां त हां नीतीज जोवामां आवे ॥ ३५ ॥

इतिश्री नाटक समैसार कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार तृतीय बालबोध सहित समाप्तं

दोहराः-- करता किरिया करमको, प्रगट बखान्यो मूल; अब बरनौं अधिकार यह, पाप पुन्य समतूल ॥ ३६ ॥

अर्थः- कर्त्ता क्रिया अने कर्म एउनुं मूल के० रहस्य ते प्रगट करी वखाण्युं हवे पाप अने पुन्य ए बने बराबर छे तेनो अधिकार वर्णन करुं छुं ॥ ३६ ॥

हवे पाप पुन्य द्वार विषे प्रथम ज्ञान चंद्रनी कलाने नमस्कार करेछेः-

अथ ज्ञानचंद्र कला वर्णनंः-

कवित्तछंदः--जाके उदै होत घटअंतर, विनसै मोह महातम रोक; सुभ अरु असु भ करमकी दुबिधा, मिटे सहज दीसे इक थोक; जाकी कला होतु संपूरन, प्रतिभासै सब लोक अलोक; सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीश नमाइ देतु पग धोक॥

अर्थः-- जे प्रबोध चंद्रना प्रकाशवाथी समान घटमां जे मोहरूप महातम के० घोर अंधकारनुं रोक जे अटकाव ते नाश पामे, अने जेम अंधकार गयाथी एक कर्म शुभ अने एक कर्म अशुभ एवी जे कर्मने विषे द्विविधा छे ते मटी जाय, अने सहज भावे कर्म बंधरूप छे एवुं एक थोक देखाय अने जेने प्रबोध चंद्रनी सर्व सं पूर्ण कला प्रगट थयेथके सर्व लोका लोकनु प्रतिभास थाय ते प्रबोधरूपी चंद्रकला ने निरखीने बनारसीदास माथुं नमावीने पगधोकदेतुहे के० प्रणाम करेछे. ॥३७॥

हवे मोहेमां शुभ अशुभ कर्मनी द्विविधता देखायछे ते एक रूप पणे देखाडेछेः-

अथ शुभाशुभ एकत्वी करनः-

सवैया इकतीसाः- जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बामन कूं एक घर राख्यो है; बामन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल क

द्दायो तिन मद्य मास चाख्यो है, तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुण्य नाउ निन्न नाख्यो है, डुहों माहि दोरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञानवतने न कोउ अनिलाख्यो है ॥ ३८ ॥

अर्थ - जेम कोई चमालनी स्त्री जुगल पुत्र के० बे पुत्र जणे ने पठी एक ठोकरो ब्राह्मणने आपे. ने एक ठोकरो पोताना घरमा राखे, हवे जे ठोकरो ब्राह्मणना घरमा उठरे ते ब्राह्मण केहेवाय, ने ते मद्य मासनो त्याग करे, जे चमालना घरमा रहे ते चमाल केहेवाय, ने ते मद्य मास पण चाखे, ते रीते एक वेदनीय कर्मना बे पुत्र ठे, एक पाप ने बीजो पुण्य, एवा जुदा जुदा नाम कह्याठे, पण बंनेनो स्वनाव एक ठे एटले बेउने विषे दोरधूप के० वेदवानी सत्ता ठे एटले खेदसंताप ठे वली पापने पुण्यए बेउ कर्म बंधरूप ठे, एटला वासते ज्ञानीजने ए बेउमाथी कोइनो पण अनिलाप कीधो नथी ॥ ३८ ॥

हवे पाप तथा पुण्य ए बेउने समान कह्या तेउपर शिष्य प्रश्न पूठेठे --

अथ शिष्य प्रश्न -

चोपाई -- कोऊ शिष्य कहे गुरु पाही, पाप पुण्य दोऊ सम नाही, कारन रस सुनाव फल न्यारे, एक अनिष्ट लगें इक प्यारे ॥ ३९ ॥

अर्थ --कोई शिष्य गुरुनी पासे आवी कहे के, स्वामी पाप ने पुण्य ए बेने समान कह्या पण ते समान देखाता नथी केमके, ए बेना कारण रस स्वनाव तथा फल ते तो जुदा जुदा ठे वली एमाथी एक प्रिय लागे ठे ने एक अप्रिय लागे ठे ॥३९॥

हवे शिष्य ए बेउना कारण प्रमुख जुदा जुदा कहे ठे -- अथ शिष्य कथन --

सवैया इकतीसा -- सकिलेस परिनामनिसो पाप बध होइ, विशुद्धसों पुन्य वधु हेतु नेद मानिये, पापके उदे असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदे साता मिष्ट रस नेद जानिये, पाप सकिलेस रूप पुन्यहि विशुद्ध रूप, डुहूको सुनाउ निन्न नेद यो बखानिये, पापसो कुगति होय पुन्यसो सुगति होय, ऐसो फल नेद परतक्ष परवानिये ॥ ४० ॥

अर्थ -- तीव्र कषायमय जे परिणामठे तेनु नाम सक्लेश परिणाम, तेणे करीने पापनु बध थायठे, अने कषायनु जे मदपणु तेने विशुद्ध कहिये, तेनाथी पुन्यनो बध थाय, एवा हेतु एटले कारण नेद मानिये ठइये अने पापना उदयथी अशाता थाय ठे. तेनो स्वादतो कडुक होय ठे ने पुन्यना उदयथकी शाता उपजे ठे तेनो मिष्ट स्वाद होय ठे एटले पाप ने पुन्य ए बेउने विषे रसनेद थयो, नली

पापकर्म क्लेश रूप छे. तीव्र कषाय रूप छे; अने पुण्य कर्म विशुद्ध रूप छे. मंद कषायरूप छे; ए बंने कर्मनो भिन्न भिन्न स्वभाव थयो. ते एज उपरथी ए बंने कर्मनो भेद वखाणीये छइये; अने पापथी कुगति के० नर्क गती तिर्यंच गती थाय छे, अने पुण्यकर्मे मनुष्यगति देवगति एवी सुगति थाय छे; ए रीते पाप पुण्यरूप कर्म नेविषे फलनो भेद प्रत्यक्ष प्रमाणथी छे. ॥ ४० ॥

हवे शिष्यना प्रश्ननो गुरु उत्तर करे छेः-- अथ गुरु उत्तर वचन यथाः--

सवैया इकतीसाः-- पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुगति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुग्गलको पेखिये; संकिलेस विशुद्धि सहज दोउ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये; कारनादि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये; दोउ महा अंधकूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहू को विनास मोष मारगमें देखिये. ॥ ४१ ॥

अर्थः - पापनो पण बंध थाय ने पुण्यनो पण बंध थायछे; ने ज्यां बंध होय त्यां मुक्ति न होय, एटले बेउथी मुक्ति नही ते माटे बेउ समान छे; अने जे कटुक रसमां पाप छे ने मधुर रसमां पुण्य छे ए बेउ रस पुदगलना छे तेथी पापने पुण्य समानज छे. वली जे संक्लेश स्वभावने लीधे पाप छे, ने विशुद्ध स्वभावथी पुण्य छे; पण ए बेउ स्वभाव जे छे ते कर्मनीचाल छे. अने कुगति तथा सुगति ते पाप पुण्यनां फल छे, ते भेदवडे जगत जालनी विशेष ता छे, तेथी पाप पुण्य समानज छे. अरे शिष्य तने जे पाप पुण्यना कारणादि भेद तेणे करीने पाप पुण्यनो द्वैत भाव के० द्विविध भाव सूजे छे, ते तो मिथ्यामतिमां सूजे छे; पण ज्ञान दृष्टि करी जोतां तो ए द्वैतभाव देखाशे नही. ए बेनेविषे आत्मानुं अवलोकन नथी. तेथी ए बेउ महा अंधकूप छे, अने ए बेउ कर्म छे; ते बंधरूप छे अने मोक्षमार्गने विषे ए बेउनो विनाश देखीयें छे, तेथीए बेउ समान छे ॥ ४१ ॥

हवे मोक्ष मार्गनेविषे बेउनो विनाश बतावे छेः-- अथ मोक्ष पद्धति कथनः--

सवैया इकतीसाः-- सील तप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है; कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है; ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करम त्याग जोग है; भौजल तरैया राग दोषको हरैया महा मोषको करैया एक शुद्ध उपयोग है. ॥ ४२ ॥

अर्थः-- ब्रह्मचर्य तप, पंचेंद्रिय निग्रह, संवर दान पूजाप्रमुख क्रिया; ए पुण्य बंध

ना कारण कर्म छे अथवा पापना कारण असंयम कषाय अने विषय नो
ग छे ए बेउमा कोई शुभरूप कार्य छे, अने कोई अशुभरूप कार्य छे, पण वस्तुनुं
मूल विचारता तो बेउए कर्म रोग छे, एटले बेउ प्रकारनो कर्म रोग छे, एवी बंधनी
पद्धति के० एक मंडी ते वीतराग देवे वखाणी, पण आत्मिक धर्ममा एटले आ
त्मानो स्वभाव जोता कर्म क्रिया त्यागवा योग्य छे, एवा पापपुण्यने हेय कहेनार,
अने भवजल ने तरनार, राग द्वेषने हरनार तथा महा मोक्षनो करनार एक शुद्ध
उपयोग उपदेश छे ॥ ४१ ॥

हवे अर्धा सवयामा शिष्य प्रश्न करेछे, ने अर्धा सवैयामा गुरु तेनो उत्तर
वालेछे —अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथन -

सवैया इकतीसा - शिष्य कहे स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषिद्ध
मेरे संसो मनमाहि है, मोपके सधैया ज्ञाता देसविरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था
तो निरावलव नाहि है, कहे गुरु करमको न्यास अनुभौ अभ्यास ऐसो अवलव उ
न्हहीको उनमाहि है, निरुपाधि आतम समाधि सोइ शिवरूप, और दौर धुप पु
दगल परछाहि है ॥ ४३ ॥

अर्थ.—शिष्य पूछेछे हे स्वामी, तमे तो मोक्ष मार्गमां शुभने अशुभ करणी बेउ
नो निषेध कीधो, तेनो मारा मनमा संदेह पडेछे, केमके मोक्षमार्गना साधक ज्ञा
ता देश विरती पंचम गुण स्थान वर्त्ति थया अने मुनीश के० षष्ट सप्तम गुणस्था
नवर्त्ति सर्व विरती थया, तेमनी अवस्था तो निरालंबननथी एटलेपोतपोतानी
शुद्ध क्रियाना आलब ने लेईने देश विरती सर्व विरती केवायछे, त्यारे करणी निषिद्ध
केम थई? हवे गुरु कहेछे —जेवो अक्षरनो न्यास मांड्यो तेवो श्रुत ज्ञाननुं आलंब
न होय तेम शुभ कर्मनो न्यास तेतो जोवामा छे पण ते अनुभवनोज अभ्यासछे ते
अनुभव अभ्यासरूप आलंबन ते तो ज्ञातानु ज्ञाता पासेज छे, अने तेमा निरुपा
धि के० राग द्वेष कषाय इच्छादिकविना आत्मानी जे समाधीछे, एटले जे पर रूपने
विषे निरुपयोगीपणे रहेवु तेज शिवरूप, के० मोक्षरूपछे अने जे दोरधूप के० खेद
सतापजेछे ते तो पुद्गलनी परिछाही के० छांयाछे ॥ ४३ ॥

हवे एज शुभ क्रियाविषे बंध अने एज शुभ क्रियाविषे मोक्ष ए बेउ स्वरूप
कही बतावेछे - अथ बंध मोक्ष स्वरूप कथन —

सवैया तेईसा —मोहसरूप सदा चिनमूरति बंधमई करतूति कही है, जावतकाल
वसे जड चेतन, तावत सो रसरीति गही है, आतमको अनुभौ जबलों तबलों शिव

रूप दसा निवही है; अंध भयो करनी जब ठानत, बंधविथा तब फेलि रही है॥४४

अर्थः--चिन्मूर्त्ति के० चिदानंद छे ते तो सदा मोक्ष स्वरूप छे, अने करतूती के० क्रिया तेतो सदा बंधमयछे. यावत् काल के० जेटला काल सुधी चेतन जहां वसे तावतकाल के० तेटला काल सुधी तेज रसरीति ग्रहण कीधी छे, एटले तेज रसमां रहेछे; एटले ज्यांसुधी आत्मानो अनुभव रहे त्यां सुधी शुभ क्रिया करतां छतां शिवपद दशा निवही एटले मोक्ष स्वरूपमां रहे.अप्रमतता केहेवाय; अने पोतानुं स्वरूप भुलीने अंध थयो थको ज्यारे करणीनोज रस छरावे त्यारे तो बंधनाज कष्ट रोग फेलावेछे॥४४

हवे मोक्षप्राप्तिनुं कारण कहेछेः-- अथ मोक्ष मार्ग निरूपणंः—

सोरठाः—अंतर दृष्टि लखाउ, अरु सरूपको आचरण; ए परमा तमभाउ, शिवकारन एई सदा॥ ४५ ॥

अर्थः—बाह्य दृष्टि छांमीने अंतर दृष्टि आपीने अलक्षनो जापकरवो. अने तेना स्वरूपनुं आचरण करवुं, एटले ज्ञान दर्शन चारित्रने आचरिये, तेथकी परमात्मा भावसिद्ध थाय, सदाकालनेविषे एज मोक्षनुं कारण छे ॥ ४५ ॥

हवे बाह्य दृष्टिवडे बंध पद्धति थाय ते कहे छेः—अथ बंध मार्ग निरूपणंः—

सोरठाः-करम शुभाशुभ दोइ, पुद्गल पिंड विभाव मल; इनसों मुगति न होइ, नांही केवल पाइए ॥ ४६ ॥

अर्थः—शुभकर्म ते पुन्य ने अशुभ कर्म ते पाप ए बेउ कर्मछे पुद्गलना पिंड छे, अने विभाव जे राग द्वेषादिक मलरूप छे ए बेउनेविषे दृष्टि रहेवाथी मुक्ति थाय नही, अने केवलज्ञाननुं पद पामीये नही ॥ ४६ ॥

ए वात उपर शिष्य प्रश्न करे छे ने तेनो उत्तर गुरु दिये छेः—

अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध. शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न बरनी? गुरु कहै जबलों क्रियाको परिणाम रहै, तबलों चपल उपयोग योग धरनी; थिरता न आवै तोलों शुद्ध अनुभो न होइ, याते दोउ क्रिया मोष पंथकी कतरनी; बंधकी करैया दोउ दुहूमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ ४७ ॥

अर्थः—कोई शिष्य पूछे छे के हे स्वामी, तमे एवुं वर्णन केम करता नथीके अशुभ क्रिया जे हिंसादिक ते अशुद्ध छे अने शुभ क्रिया जे दया दानादिक ते शुद्धछे त्यारे गुरु उत्तर आपेछे के अहो शिष्य, ज्यांसुधी क्रियाना परिणाम रहे छे त्यां

सुधी उपयोगनी धरनी के० क्षेत्री एटले उपयोगवत आत्मा चचल रहे छे-ज्यासु धी क्रियामा उपयोग रहे त्यांसुधी आत्मानी स्थिरता थाय नही, अने आत्मानो शुद्ध अनुभव होय नही, ए उपरथी ए पुण्य पापनी बेउ क्रिया छे ते मोक्षमार्गे नी कतरणी समान छे बधनी करनारछे एथी बेउ क्रियामा एक पण भली नथी ज्या मुक्तिमार्गनो बाधक विचारे त्या बेउ क्रिया निषिद्ध कीधी छे ॥ ४७ ॥

हवे मात्र ज्ञान मोक्षनो मार्ग छे ते कहे छे -अथ ज्ञान मोक्ष मार्ग यह कथन -

सवैया इकतीसा - मुकतिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादिको करममाहि लुक्यो है, एते परि कहै जो कि पाप बुरो पुण्य भलो, सोइ महा मूढ मोछमारगसो चुक्यो है, सम्यक् सुभाउ लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमगि चल्यो काहूपे न रुक्योहै, आरसीसो उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूप व्हैके कारजकों ढुक्यो है ॥ ४८ ॥

अर्थ - जे आत्मा मुक्तिनो साधक छे, तेने सर्व कर्म बाधक छे, एथीज अनादि काळनो आत्मा कर्ममा लुक्यो एटले दबाई रह्यो छे, एम छता पण जो कोई एवु कहे के, पाप कर्म नगारुं छे, ने पुण्य कर्म सारु छे, तेने महा मूढ जाणवो , ने ते मोक्ष मार्गथी चुक्यो छे, एम जाणवु एवामा कोईने भवस्थ परिपाक थकी सम्यक् स्वभाव नी प्राप्ति थइ तेवारे हीयामा ज्ञान प्रगट्यु तो ते उर्ध्व दशा तरफ उमगे करीने चाल्यो, पण कोई कर्मथी रोकायो रह्यो नही ते आरीसानी पठे उज्वल थईने निज ज्ञानोपयोगी पणे कारण सुरुपी थईने पोताना मुक्तिरूप कार्यने पोतेज ढुके छे एवुं बनारसी दास कहे छे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञानने तथा कर्मनो विवरो बतावेछे -- अथ ज्ञान तथा कर्म विवरन -

सवैया इकतीसा -- जोलों अष्ट कर्मको विनास नाही सरवथा, तोलों अंत रातमामें धारा दोई बरनी, एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्र कृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी, ग्यान धारा मोछरूप मोछकी करन हार, दोषकी हरन हार भौ समुद्र तरनी, इतनो विशेष जु करमधारा बधरूप, पराधीन सकति विविध बध करनी ॥ ४९ ॥

अर्थ - ज्या सुधी आठ कर्मनो सर्वथा विनाश थतो नथी एटलासुधी मुक्ति न होय त्यासुधी अतरात्मा थकी बे धारा वहेछे, तेंमा एक ज्ञाननी धाराने बीजी शुभाशुभ कर्मनी धारा ए बनेनी प्रकृती जुदी जुदी छे, अने धरनी के० क्षेत्र ते पण जुड जुडुं छे एमा एटलु विशेष छे के जे कर्मधारा छे ते बंधरूप छे, अने ज

उपणाने लीधे एनी शक्ति पराधीनरूपछे अने प्रकृतिबंध स्थितिबंध तथा रसबंध एवा जात जातना बंधनी करनारीछे अने ज्ञानधारा मोक्षस्वरूप छे मोक्षनी करनारी छे ने दोष मात्रनी हरनारी छे अने भवसमुद्र तरवाने तरनी के० नाव समान छे.॥४९॥

हवे मोक्ष कर्त्ता जे ज्ञान क्रिया एवो जे स्याद्वाद तेनी प्रशंसा करेछेः--

अथ स्याद्वाद प्रशंसाः—

सवैया इकतीसाः— समुझै न ज्ञान कहै करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें; ज्ञान पक्ष गहै कहै आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ बूडे है चहलमें; जथाजोग करम करे पैं ममता न धरै. रहै सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें; तेई भवसागरके उपर व्है तरैं जीव, जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें॥५०॥

अर्थः—क्रियावादी कहेछे के, "न ज्ञान श्रेय" एनो अर्थ एछे के ज्ञान भलुं नथी जेमां संशय उपजे छे. अने संशय थया थकी जीव अहींनो नही ने तहींनो पण नही एवो थाय छे माटे क्रिया कर्म करवाथीज मोक्षछे एम विकल थयलो जीव मिथ्यातनी गहलमां कहेछे. हवे जे ज्ञानवादी सांख्यमती छे ते ज्ञाननोज पक्ष ग्रहीने रहेछे ने एवुं कहेछे के बंधने मोक्ष प्रकृतिने विषेज छे पण आत्मा तो सदा अबंध पणे वर्ते छे; एवी श्रद्धावडे स्वछंद के० पोतानी मरजीमां आवे तेम चालेछे तेउ चहल के० कर्दममां बूडेला छे. अने जे स्याद्वादी छे ते कोईनो विरोधी नथी, तेथी यथायोग्य एटले गुण ठाणा माफक कर्म क्रिया करेछे, पण कर्मने उदय दशामां राखे छे, अने ममताने धरता नथी, ज्ञान ध्याननी सेवामां सावधान रहे छे, एवा स्याद्वादी जीव उपर थइ रह्या थका भवसागर तरेछे, जेनो निवास स्याद्वाद रूप मेहेलमांछे५०

हवे मूढनी तथा विचक्षणनीक्रियानुंवर्णनकरेछेः-अथ मूढविचक्षण क्रिया वर्णनंः-

सवैया इकतीसाः-जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और तैसे मूढ प्रानी विपरीतता धरतु है; अशुभ करम बंध कारन बखानै मानै, मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है; अंतर सुदृष्टि भई मूढता बिसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है; करनसों भिन्न रहै आतम सरूप गहै, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करतु है. ॥ ५१ ॥

अर्थः—जेम कोई मतवारो पुरुष कहे कइ अने करे कइ तेम मूढ प्राणी उलटोज भाव धारे छे, एटले अशुभ कर्मने बंधनुं कारण समजे अने मुक्तिनो हेतु शुभरीत के० शुभ क्रियाने आचरेछे. हवे ज्ञानीने अंतर सुदृष्टि थई तेथी मूढता मटी गई ने ज्ञाननो उद्योत थयो तेणे करीने भ्रमरूप तिमिरनो नाश थयो, त्यारे मुक्तिनुं

कारण, जे शुभ क्रियाछे तेथी ते ज्ञानी भिन्न रहे, ममतान धरे, अने आत्मानुज स्वरूप ग्रही अतमाना अनुभवना आरंभना रसनुं कौतुक करे छे ॥ ५१ ॥

इति श्री नाटक समयसारको पुन्य पाप एकत्वी कथन चतुर्थ द्वार सपूर्ण

दोहरा –पुन्य पापकी एकता, बरनी अगम अनूप, अब आश्रव अधिकार कछु, कहों अध्यातम रूप ॥ ५२ ॥

अर्थ –पाप पुण्यनी एकता तो अगम छे अने अनुपम छे तेनुं वर्णन कीधुं, हवे कइक आश्रवनो अधिकारछे ते कहुंछु अने अध्यात्मनु स्वरूप कहुछु ॥ ५२ ॥

आश्रव सुभटनोनाशकरनारज्ञानसुभटनेनमस्कारकरेछे –अथज्ञान बल वर्णनं –

सवैया इकतीसा –जे जे जगवासी जीव थावर जगम रूप, ते ते निज वस करी राखै बल तोरिके, महा अभिमानी ऐसो आश्रव अगाध जोधो रोपि रनथंभ गाढो भयो मूछ मोरिके, आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सबायो बल फोरिके, आश्रव पछार्यो रनथंभ तोरि मार्यो ताहि, निरखी बनारसी नमत कर जोरिके ॥ ५३ ॥

अर्थ –जे जे थावर जगमरूप जगतवासी जीव छे, तेना सहजबल ने तोडीने ते ते जीवोने आश्रव जोधाए पोताने वस करी राख्याछे एवु महा अभिमानी जगतमा आश्रवरूपी अगाध जोद्धो रहेछे, ते रणथंभ रोपीने मूछमरोडीने गाढो थयो छे ते एम कहेछे के, जगतमा मने जीते एवो कोइ नथी ते स्थले अचानक परम धाम के० अती तेजस्वी ज्ञान नामनो सुभट उपलो आश्रव जोद्धानो प्रतिपक्षी ते सवायोबल फोरवीने लडवा ने आव्यो तेणे आश्रव सुभटने पछाडयो अने तेनो रणथंभ तोडी नाख्यो एवा ज्ञान सुभटने निरखीने बनारसी दास हाथ जोडी नमस्कार करेछे ॥ ५३ ॥

हवे द्रव्यरूपी आश्रव अने भावरूपी आश्रवना लक्षण कहेछे – अने सम्यक् ज्ञानलु लक्षण पण कहेछे –अथ द्विविध आश्रव लछन तथा ज्ञान लछन बर्नन –

सवैया तेइसा – दर्वित आश्रव सो कहिये जहि पुद्गल जीव प्रदेस गरासे, भावित आश्रव सो कहिए जहि राग विरोध विमोह विकासे, सम्यकपद्धति सो कहिये जहि दर्वित भावित आश्रव नासे, ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक, अतर बाहरि और न भासै ॥ ५४ ॥

अर्थ –जाहा पुद्गल द्रव्य छे ते जीवना सर्व प्रदेशने ग्रासेछे के० गली जायछे, ते

द्रवित आश्रव जाणीये. अने ज्यांहां द्रवित आश्रवना प्रसंग थकी आत्मानेविषे रागद्वेष विमोहनो विकाश थाय त्यां भावित आश्रव कहीये, अने ज्यां आत्मानेविषे सम्यक् पद्धति के० सम्यक् स्वरूप कहिये तांहां तेने द्रवित आश्रव अने भावित आश्रवनो नाश थाय, एटले सम्यक् पद्धतिनेविषे ज्ञान कला प्रगटे तेथी अंतरभावाश्रवमां बाहिर द्रव्याश्रवमां बीजूं भासे नही, सम्यक्ज दीठमां आवे ॥ ५४ ॥

हवे सम्यक् स्वरूपनो धणी जे ज्ञाता तेनुं लक्षण कहेछे. अथ ज्ञाता लक्षणं.

चोपाई छंदः--जो दरवाश्रवरूप न होई, जह भावाश्रव भाव न कोई; जाकी दशा ज्ञानमय लहिये, सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ५५ ॥

अर्थः—जे द्रव्याश्रवना स्वरूपमां होय नही, अने ज्यांहां भावाश्रवनुं पण भाव कोई नथी,अने जेनी दशा ज्ञानमय होय,तेज जीव ज्ञानी अने आश्रवरहित कहिये

हवे ज्ञातानी समर्थाईथी निराश्रवपणुं देखाडे छेः-- अथज्ञाताकोसमर्थपणोवर्णनंः--

सवैया इकतीसाः-जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिनम्मनकी ममता हरतु है; मनसा अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव, तिन्हिके विनासवेको उद्यम धरतु है ; याहि भांति परपरिनतिको पतन करे, मोखको जतन करै भौजल तरतु है; ऐसै ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावै सदा, जिन्हको सुजस सु विचक्षण करतु है॥५६॥

अर्थः—जेटला परिणाम प्रगट मनगोचर छे, एटला जिन परिणामने मनमां संभारेछे जाणे छे, अने बुद्धिपूर्वक के० पोतानी अहं बुद्धिवडे जे अशुद्ध परिणाम उपजेछे, ते परिणामनी ममता छांडे छे ; अने जे भाव मनथी अगोचर के० जेनुं स्वरूप मनवडे देखाय नही, अने अबुद्धि पूर्वक के० जेने बुद्धिनो प्रचार लागे नही, एवा अनागत कालना जे अशुद्ध परिणाम, तेनो विनाश करवाने उद्यम करे छे, ए रीते परपरिनति के० पर वस्तुनो जे परिणाम जे अतीत कालमां थयो छे वर्त्तमान कालमां छे, अनागत कालमां थशे, तेनुं पतन करे. अने मोक्ष के० तेथी छुटवुं तेनुं जतन करे ते भवसागरथी तरे, एवा जे ज्ञानवान प्राणी छे तेतो सदा निराश्रव केवाय जेनो सुजश ने स्तुती ते पंमित पुरुषो गायछे ॥५६॥

ज्ञानीने निराश्रव कह्या तेउपर शिष्य प्रश्न करेछेः—अथ शिष्य प्रश्न कथनः--

सवैया इकतीसाः—ज्यों जगमें विचरै मतिमंद सुछंद सदा वरतै बुध तैसे; चंचल चित्त असंजत बैन सरीर सनेह जथावत जैसे ; भोग सँजोग परिग्रह संग्रह मोह विलास करै जहाँ ऐसे, पूछत शिष्य आचारजसों यह, सम्यकवंत निराश्रव कैसे ? ५७

अर्थ – जेम मतिमद के० अज्ञानी जन जगतमां स्वछंद के० मरजी मुजब वर्त्ते, तेम पंडित पण सदा तेवीरीते वर्त्ते, ते आवीरीते चचल चित्तवाला रहे, असजत बेन के० विचारविना वचन बोले, अने शरीर स्नेहने प्रवर्त्तावे, अने अज्ञानीनी माफक नोगसयोग राखे, परिग्रहनो संग्रह करे, अने ज्ञान अवस्थामां मोहविलास ए बोज करे, ए रीते अज्ञानीनी अने ज्ञानीनी एक सरखी रीति जोईने शिष्य आचार्यने पूछेछे के, एने सम्यक्‌वत निराश्रव केम कहिये ? ॥ ५७ ॥

हवे ए प्रश्ननु उत्तर गुरु आपेछे –अथ गुरु उत्तर कथन –

सवैया इकतीसा –पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आई नाना नांति रस देत है, केई शुन शाता केई अशुन असातारूप, दुहुसो न राग न विरोध सम चेत है, यथायोग क्रिया करै फलकी न इछा धरै, जीवन मुगतिको विरुद गहिलेत है, याते ज्ञानवतको न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासो न्यारे नये सुद्धता समेत है ५८

अर्थ –पूर्वकालमा अज्ञानअवस्थानेविषे जे जे कर्मबंध कीधेला होय तेज कर्मो वर्त्तमानकालमा उदय आवीने नाना प्रकारनो रस आपेछे तेमा केटला एक शुनकर्म ते शातारूप छे, अने केटलाएक अशुन कर्म अशातारूप छे; एवा बेउ जातना कर्मनेविषे ज्ञानीने राग अने विरोध नथी, एथी ज्ञानी समचित्त छे अने यथायोग्य के० उदयमाफक क्रिया करे, पण फलनी इछा राखे नही ने जीवता ज मुक्त थयाछे, तेथी जीवन्मुक्तिनो विरुद धारेछे, ए रीते ज्ञानवत मनुष्यने कोई आश्रव केहेतु नथी ते मूढताथी न्यारो थयो अने शुद्धता समेत छे ॥ ५८ ॥

हवे राग द्वेष मोह अने ज्ञानना लक्षण कहेछे –अथ राग द्वेष मोहज्ञान लक्षण –

दोहरा – जो हितनाव सु राग है, अनहितनाव विरोध, भ्रामकनाव विमोह है, निर्मलनाव सु बोध ॥ ५९ ॥

अर्थ –जे हितनाव छे ते राग छे, अने अनहितनाव ते विरोध छे, अने भ्रामकनाव छे तेने विमोह कहिये, अने निर्मलनाव ते बोध एटले ज्ञान कहिये ॥५९

हवे राग द्वेषनुं स्वरूप कहेछे – अथ राग द्वेष कथन.–

दोहा –राग विरोध विमोह मल, एई आश्रव मूल, एई कर्म बढाइके, करै धरमकी नूल ॥ ६० ॥

अर्थ –राग द्वेष ने विमोह जे छे ते आत्माने मल छे, अने एज दोष आश्रवना मूल छे अने एज रागद्वेष अने मोह छे ते करमने वधारीने धरमने नुलावी दिएछे ६०

हवे ज्ञाताने निराश्रव कहेछे – अथ ज्ञातानिराश्रव कथन –

दोहाः-- जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम; यातें सम्यकवंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ ६१ ॥

अर्थः-- जहां राग द्वेष मोहनी दशा न मले तेने सम्यक परिणाम कहिये, ए उपरथी सम्यकवंत पुरुषने निराश्रवी नाम आप्युं ॥ ६१ ॥

हवे ज्ञाता जे छे ते निराश्रवपणामां विलास करेछेः--अथ ज्ञाता कथनः--

सवैया इकतीसाः-- जे कोई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मतभेद ज्ञान भाव परिनये हैं; जिन्हकी सुदिष्टिमें न राग दोष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनो जीति लये हैं; तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलिगये हैं; तेई बंध पद्धति विडारि पर संग डारि आपुमें मगन व्हैके आपरूप भये हैं ॥ ६२ ॥

अर्थः-- जे कोई भव्य राशीमां जगतवासी जीव छे, ते भव्यत्व परिपाकने लीधे निकट के० पासे थया; ने मिथ्यामतिने भेदीने पोतानुं स्वरूप जे ज्ञान भाव ते नेविषे परिणमी रहेछे; जेनी ज्ञानरूपी दृष्टिमां राग द्वेषने मोह कंई पामिये न ही; अने निर्मल निज स्वभावनी विलोकतामां राग द्वेष ने मोह ए त्रणेने जीती लीधाछे; अने पांचे प्रमाद तजी पोताना शरीरने साधीने मन वचन अने कायाने शैलेशीकरणमां निरोध करीने शुद्ध उपयोग दशा जे केवल दशा तेनेविषे मली गया. तेवा ज्ञानी बंधनो मार्ग विडारी अने परवस्तुनो संग छोडीने आत्मानेविषे मगन थई आपरूपें थया ॥ ६२ ॥

शिष्य पूछेछे के, एम ज्ञातानेविषे निराश्रवपणुं थशे तो आयुष्यपर्यंत ज्ञाता निराश्रवी थशे. गुरु उत्तर आपेछे के, ज्ञातापणुं तो उपशमभावने क्षयोपशम भाव वडे चंचल छे ते कहेछेः--अथ उपशमी क्षयोपशमी व्यवस्था कथनः-

सवैया इकतीसाः--जेते जीव पंडित खयोपशमी उपशमी, तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है; छिन आगमांहि छिन पानिमांहि तैसे एउ, छिनमें मिथ्यात छिनु ज्ञान कला भासी है; जोलों ज्ञान रहै तोलों सिथिल चरन मोह जैसे कीले नागकी सगति गति नासी है; आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै जो उकीले नागकी प्रकृति परगासी है ॥ ६३ ॥

अर्थः--मिथ्यात्वनी गांठभेद कीधा पछी जे मिथ्यात्वनो अंश उदय आवेछे ते जेनो खपीजाय अने मिथ्यातपुंज उपशम्यो रहे ते जीव क्षयोपशमी कहिये अने जेने अंतर मुहूर्तलगी उपशम्योज रहे तेने उपशमी कहीये एवा बेउ भाव

ते जे जीव पमित छे तेनी अवस्था ते लुहारनी साणसी समान छे, जेम साणसी घडीमा लोहने ग्रहण करी आगमा होयछे, ने घडीमा तेहज साणसी लोखंडने ठंडो करवा सारु पाणीनेविषे होयछे, तेम ए क्षयोपशमी अने उपशमी जीव क्षण एकमा मिथ्यात भावमा आवे ने क्षणनेविषे ज्ञानकलाना प्रकाशमा रहेछे एवी अवस्थानेविषे ज्यांहांसुधी ज्ञानकला रहेछे त्यांसुधी चारित्र मोहनीनी पचीस प्रकृति शिथिल के० ढीली थई रहेछे, जेम मंत्रनी जडीए करीने सर्पनी शक्ति गति शिथिल थई जायछे तेम ए पण जाणवु, हवे ए जीवने फरी मिथ्यात्व उदय आवेछे त्यारे तो नाना प्रकारना कर्मबंध करेछे, जेम नागनी उकीलनी करवाथी नागनी पोतानी प्रकृति फरीथी प्रगटे ते रीते जाणवु ॥ ६३ ॥

हवे ज्ञानना शुद्धपणानी प्रशंसा कहेछे —अथ शुद्धनय प्रशंसा —

दोहा —यह निचोर या ग्रंथको, कहै परम रस पोष, तजै शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोष ॥ ६४ ॥

अर्थ —आ समयसारग्रंथनु रहस्य एज छे अने एज उत्कृष्ट रसनो पोषकछे के जे शुद्धतानी नयरीती छांडी तो बंध छे अने शुद्धतानी नयरीति ग्रही तो मोक्ष छे ६४

हवे बे नयनेविषे जीवनो विलास कही बतावे छे —अथ जीव विलास वर्नन —

सवैया इकतीसा — करमके चक्रमे फिरत जगवासी जीव, व्है रह्यो बहिर मुख व्यापत विषमता, अंतर सुमति आई विमल बडाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता, सुद्ध नै निवास कीन्हो अनुभौ अभ्यास लीन्हो, भ्रमभाव छांडिदीनो भिनो चित्त समता, अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलंबी अवलोके राम रमता ॥ ६५ ॥

अर्थ —चौदराजलोकमा कर्मनुं चक्र के० कटक फरी रह्यु छे, तेमां जगतवासी जीव पण फरी रह्यो छे, अने ए फरवामा जीव विषमताए युक्त थयो थको क्यारे इष्ट संयोगी ने क्यारे अनिष्ट संयोगी थई ने तेमा बहिर्मुख थई रह्यो, एटले बाह्य विषय भोगनोज ग्राहक थयो, अने अंतरदृष्टियकी आत्मा न जाण्यो एटलामां अंतरनेविषे सुमति उपजी, तेणे करीने पोतानी निर्मल प्रभुताने पाम्यो, त्यारे परवस्तु जे पुद्गल तेनी प्रीति टूटी एटला कालसुधी पुद्गलनी माया ममता जे नही छूटी हती ते छूटी जेम शुद्धनयवडे आत्मानु स्वरूप कह्यु, तेवा शुद्धनयमां पोते निवास कीधो, अने आत्मस्वरूपमा उपयोग राखीने अनुभवनो अभ्यास लीधो एथी भ्रमभावनो त्याग थयो अने मन जे छे ते समाधिनेविषे लीन थयु त्या

रथी अनादि अनंत कालसुधी जे स्वरूपमां कंई बीजां विकल्प न पामियें एवुं पोतानुं अचल पद अवलंबीने पोतानुं जे रमता रामपणुं छे तेने अवलोके ॥ ६५ ॥

हवे आत्मानु शुद्धपणुं सम्यक दर्शन छे, तेनी प्रशंसा करेछेः--अथसम्यक्तप्रशंसा

सवैया इकतीसाः-- जाके परगासमें न दीसे राग दोष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है; तिहुं काल जामें प्रतिबिंबित अनंतरूप, आपु हू अनंत सत्ता नंततें सरस है; भाव श्रुत ज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभो करे जहां न बानीको परस है; अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐसो सम्यक दरस है ॥ ६६ ॥

अर्थः-- जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमां राग द्वेष मोह न देखाय, अने आश्रव न होय, तेमां बंधनो तरस के० लागवुं ते पण न होय, अने जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमां त्रणे काले अनंतरूप प्रतिबिंबित थाय छे; अने निजस्वरूप पण अनंत छे, अने सत्तानंतमां सरस छे, ते सत्तास्वरूपी अनंत पदार्थ छे, तेथी सरस छे, एटले जेना अनंतपर्याय सर्व तेहिज धर्म कहे, अने भावश्रुत ज्ञानने प्रमाण करी वस्तुनो विचार अनुभव करे, अने ज्यांहां वाणीनो स्पर्श नही, एटले जे वचन गोचर नथी, अनक्षररूपनो अनुभव पोते करे, ए संयोगीगुणस्थानकनी दशा छे. जेनी तुलना नथी एटले अतुल; वली जेनी खंडना नथी माटे अखंड, एवुं अचल ने अविनाशी धाम के० तेजोमय तेहिज चिदानंद स्वरूप छे; एवुं ईश्वररूप सम्यक् दर्शननुं स्वरूप कहिये ॥ ६६ ॥

इतीश्री नाटक समयसारविषे बालाबोधरूप आश्रवद्वार पंचम संपूर्ण.

दोहाः— आश्रवको अधिकार यह, कह्यो यथावत जेम; अब संवर वरनन करों, सुनौ भविक धरि प्रेम. ॥ ६७ ॥

अर्थः— ए रीते आश्रवनो अधिकार कह्यो हवे संवरतत्वनुं वर्णन करुंछुं; अहो भविक के० भव्य प्राणीओ प्रेम धरीने ते सांभलो. ॥ ६७ ॥

हवे संवरनु आदी ज्ञानवस्तु तेने नमस्कार करेछेः—अथ ज्ञान वर्णनंः--

सवैया इकतीसाः—आतमको अहित अध्यातमरहित ऐसो, आश्रव महातम अखंड अंडवत है; ताको विसतार गिलिबेकों परगट भयो, ब्रह्मंडको विकासी ब्रह्मंडवत है; जामें सबरूप जो सबमें सबरूपसो पें सबनि सों अलिप्त अकाशखंडवत है; सौ है ज्ञान भानु शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको अमारे दंडवत है ६८

अर्थः— आत्मानुं अहित करता अने अध्यात्मस्वरूपथी रहित एवुं आश्रव

रूप महातम के० महा अंधकार अखम्डपणे अम्वत के० सर्व लोकने ढांकी रह्यो छे, तेनो विस्तार गलवाने जे ज्ञानसूर्य प्रगट थयो ते ब्रह्माम्ड जेवो सर्व लोका लोकने विकाशनो करनारो थयो, अने ब्रह्माम्डनु मम्डन जेथकी थायछे, अने जेने विषे सर्व रूप नासे छे, अने जे सर्वरूपे सर्वमा पामिये छे, अने जे सर्व मूर्तिक वस्तुथी आकाशखम्डनीपरे अलिप्त छे, ते ज्ञानरूपी सूर्य तथा जे शुद्ध सवरनो नेप धरी रह्या छे, तेनी रुचि रेखाने एटले तेना उदयने अमारो दम्वत के०नमस्कार छे ६८

हवे जड चेतनना नेदज्ञानथकीज सवररूपी परमात्माने उंलखाय छे, ते सम जावेछे -- अथ नेदज्ञान महिमा कथन --

सवैया तेइसा --शुद्ध सुछेद अनेद अवाधित, नेद विज्ञान सु तीछन आरा; अंतर नेद सुनाउ विनाव करे जड चेतनरूप डुफारा, सो जिन्हके उरमे उप ज्यो न रुचै तिन्हकों परसग सहारा, आतमको अनुनौ करि ते हरखे परखे प रमातम धारा ॥ ६९ ॥

अर्थ -- शुद्धपणे सछेद के० पोतपोताना न्यारा स्वरूपने बतावनार अनेद के० एक स्वरूप अवाधित एटले कोई प्रमाणातरे अखम्डित एवु नेदज्ञान ते तीक्ष्ण सुलाख छे, ते सुलाखथी अंतरात्मामा नेदन करीने स्वनाव अने विनावने जुदा जुदा करे ने जमरूप तथा चेतनरूपने डुफार के० न्यारा करी बतावे एवु नेदज्ञान जेना हृदयनेविषे उपज्यु छे, तेज जीवने परवस्तुनो सग ते सहारा के० रुचे नही अने तेज जीव पोताना स्वरूपनो अनुनव करी यथार्थपणे अंतरात्मानेविषे जे परमात्मानी धारा छे तेने पारखे ॥ ६९ ॥

हवे नेदविज्ञान जे छे, ते सम्यक्त ज्ञान छे, तेनी समर्थाइ थकी स्वरूपनी प्राप्ति थाय छे, ते कहेछे.-- अथ सम्यक्त सामर्थता कथन.--

सवेया तेइसा --जो कवहूं यह जीव पदारथ, औसर पाइ मिथ्यात मिटावे, सम्यक धार प्रवाह वहे गुन ज्ञान उदे मुख उरध धावे, तो अनिअंतर दर्वित नावित कर्म कि लेश प्रवेश न पावे, आतम साधि अध्यातमको पथ पूरण व्हे परब्रह्मकहावे ॥ ७० ॥

अर्थ -- जो कोई आ जीव पदार्थ छे, ते यथाप्रवृत्तिकरणरूप अवसर पामी ने मिथ्यात्वग्रंथि नेदीने मिथ्यात्वने मिटावे शुद्ध सम्यक अने स्वरूप जलधा रानो प्रवाह वहे अने ज्ञानगुणना उदय वडे उर्ध्व मुख थईने मुक्ति सनमुख दोडे त्यारे अन्यंतर जे इवित कर्म अने नावित कर्म तेना क्लेसनो प्रवेश ते न

थाय. जे प्रकृति प्रदेशरूप कर्म ते द्रवित कर्म अने राग द्वेषादिक ते नावित कर्म ए बंने प्रवेश नही करी शके, अने अध्यात्मना पंथ सेलीमां आवीने आत्मा ने साधीने पोताना रूपमां पूर्ण थईने परब्रह्म केहेवाय ॥ ७० ॥

हवे संवरनुं कारण सम्यक दृष्टिछे,तेनो महिमां कहे छेः—अथ सम्यक दृष्टि महिमाः—

सवैया तेइसाः—नेद मिथ्यात सु वेद महारस नेद विज्ञान कला जिन पाई; जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों ज पराई; उध्दतरीति वसे जिनके घट हो तु निरंतर ज्योति सवाई; ते मतिमान सुवर्ण समान लगे तिनकों न शुनाशुनकाई.७१

अर्थः-मिथ्यातग्रंथि नेदीने तथा उपशमरूप महारस वेदीने जे बुध्धिवंते नेद विज्ञानती कला पामीछे, अने जे ए नेदविज्ञान वडे पोताना स्वरूपनी प्राप्ति करीने पोताना ज्ञान दर्शन चारित्ररूप महिमाने अवधारे, उर के० हैया थकी पराई सोज के०सामग्री तेनो त्याग करे अने जेना घटमां उध्दतरीति के० देशविरति तथा सर्व विरतीनी रीत फुरी अने निरंतर तप थकी जेनी सवाई ज्योति थाय छे तेने बुध्धिमान कहिये ते सुवर्णसमान छे तेमने शुनाशुन कर्मरूप काट लागी शकतो नथी ॥७१॥

हवे संवरनुं मूल नेदविज्ञान छे ते मोक्षनुं कारण कही समजावेछेः—

अथ नेदज्ञान महिमा कथनः—

अडिल्ल छंदः—नेदज्ञान संवरनिदान निरदोष है; संवरसो निरजरा अनु क्रम मोष है; नेदज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये, यदपि हेय है तदपि उपादय जानिये ॥ ७२ ॥

अर्थः—नेदज्ञान जेछे ते निरदोष संवरनुं निदान के० मूलकारण छे अने निर्जरानुं कारण संवर छे अने निर्जराजेछे ते मोक्षनुं कारण छे. ए अनुक्रम प्रमाणे मोक्षनुं कारण परंपराथी नेदविज्ञानज छे. अगर जो शुध्दस्वरूपनी अपेक्षाने लीधे नेदज्ञान त्याग जोगछे तो पण नयोनुं उपादेय ते आदरवा जोग्य जानिये.॥७२॥

हवे स्वरूपनी प्राप्ति थया पछी नेदज्ञाननुं हेयपणुं देखाडेछेः—स्वरूप कथनः—

दोहाः- नेदज्ञान तबलों नलो, जबलों मुक्ति न होय; परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥ ७३ ॥

अर्थः—नेदज्ञान त्यांसुधी नलुंछे ज्यांसुधी मुक्ति थई नथी. जहां परम ज्योति प्रगट थाय त्यां विकल्प कोई रहे नही तो नेदज्ञान केम करीने रही शके ॥ ७३ ॥

नेदज्ञान मुक्तिनो उपाय छे ते कहेछेः-अथ नेदज्ञानमहिमा कथनः—

चोपाई –भेदज्ञान सवर जिन्हि पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो, भेदज्ञान जिनके घट नाही, ते जडजीव बंधे घटमाही ॥ ७४ ॥

अर्थ –जे जीवने भेदज्ञानरूप संवरनी प्राप्ति थई तेज चेतन शिवरूप कहिये जेना हृयनेविषे भेदज्ञान नथी ते मूर्ख घटपिंडनेविषे बधायलो रहेछे ॥ ७४ ॥
हवे भेदविज्ञानवडे आत्मानो महिमा वधेछे ते कहेछे –अथ भेदज्ञानकी महात्म्य -

दोहरा –भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर, धोबी अतर आतमा, धोवै नीज गुन चीर ॥ ७५ ॥

अर्थ -- भेदज्ञान जे छे ते साबुरूप जाणवु, अने उपशम रस ते निर्मल पाणी छे ने अतर आत्माने धोबी मानवो, ते धोबी पोताना गुणरूपवस्त्रने धुवेछे ॥ ७५ ॥
हवे भेदविज्ञाननी जे क्रिया छे ते कहेछे -अथ भेदज्ञानकी कर्तव्यता महात्म्य -

सवैया इकतीसा -जैसें रजसोधा रज सोधिके दरव काढे, पावक कनक काढी दाहत उपलको, पकके गरभमे ज्यों डारिये कतक फल, नीर करे उज्वल नितारि डारे मलको, दधिको मथैया मथि काढे जैसै माखनको, राजहस जैसै दूध पीवै त्यागि जलको, तैसें ज्ञानवत भेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उछेदे परदलकों ॥ ७६ ॥

अर्थ –जेम कोई रज सोधा के० जोनारो रजने सोधीने एटले सोना रूपा प्रमुख द्रव्यने काढवाने पावक के० अग्निने लगाडेछे, ने सोनु काढीलई पथरा धूल वगेरेने बाली नाखेछे वली जेम कतकफलने पकना गर्भनेविषे नाखीये तो ते फल जलने मेलथी जूडु करेछे, वली जेम दधीनु मथनहार दधीनु मथन करी माखणने जूडु करेछे ने राजहस पाणी दूध भेगा होय तेमाथी मात्र दूध पीई जायछे पाणीने जूडु करेछे तेम ज्ञानवत प्राणी भेदविज्ञाननी शक्ति साधीने पोतानी ज्ञानसपत्तिने वेदे अने परदल के० पुद्गलनुं कटक जे राग द्वेषादिक तेने कापी नाखेछे ॥ ७६ ॥

अथ भेदज्ञान मोक्षमूल यहु कथन –

छप्पय छंद --प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुणजानै, परपरिनति परि त्यागि, शुद्ध अनुभव थिति ठानै, करि अनुभव अभ्यास, सहज सवर परगासै, आश्रव द्वार निरोध, कर्म घनतिमिर विनासै, छय करिविभाव समभाव भजि, निरविकल्पनिज पद गहै, निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर, परम अतिंद्रिय सुख लहै ७७

अर्थः-- भेद ज्ञान जे छे ते प्रगटपणे पोताना तेम परका गुणने जाणेछे, ते थी परवस्तुमां जे परिनमन छे तेनुं ज्ञान करे, पोताना शुद्ध अनुभवनो ठराव राखे, ने ते अनुभवनो अभ्यास करीने सहज संकरना रूपनो प्रकाश करे, आश्रव द्वारनो विरोध करीने कर्मरूप मेघ अंधकारनो नाश करे; अने विभाव के० मोह दशानो क्षय करीने समभाव के० समाधिने भजे, तेणे करीने जहां कांई विकल्प नथी एवुं पोतानुं निर्विकल्प पद तेने पामे एटले जे सुखनेविषे मल नथी ए उपरथी ते विशुद्ध अनंत कालसुधी एकरूप तेथी शाश्वत स्थिर एवुं अतींद्रिय के० इंद्रियगोचर नही एवुं सुख पामे ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसारको बालाबोधरूप संवर द्वार छगो संपूर्ण.

दोहाः-- बरनी संवरकी दसा, जथा जुगति परमान; मुक्ति वितरनी निर्जरा' सुनहु भविक धरि कान ॥ ७८ ॥

अर्थः--संवररूपनी दशा कही ते युक्ति तथा प्रमाणे करी कहीछे; हवे मुक्तिनी वितरणी के० आपनारी एवी जे निर्जरा छे तेनुं वर्णन करुंछुंः-- ते अहो भव्य लोको तमे कान दईने सांभलो. ॥ ७८ ॥

हवे निर्जरानुं [illegible] स्वरूप छे ते कहेछेः-- अथ निर्जरास्वरूप कथनः--

चौपाईः-- जो संवर पद [illegible] अनंदे; जो पूरव कृत कर्म निकंदे; जो अफंद व्है बहुरि न फंदे; सो निरजरा बनारसि बंदे. ॥ ७९ ॥

अर्थः--पोतानुं जे शुद्ध स्वरूप राखवुं तेनुं नाम संवर कहिये; तेनुं पद पामीने संवर आनंद करे; अने पूर्वे कालनेविषे जे कर्म कीधांछे, तेने जडथी उखेडी नाखे; अने जे पूर्वे कर्मना फंद तेथकी छूटीने पाछुं ते फंदमां सपडाय नही तेनुं नाम आत्मानी निर्जरा कहिये. ते निर्जराने बनारसीदास वंदन करेछे. ॥ ७९ ॥

निर्जरानुं कारण सम्यक्त छे माटे सम्यक्तनो महिमा वखाणे छेः--

अथ सम्यक्त महिमा कथनः--

दोहाः-- महिमा सम्यक् ज्ञानकी, अरु विराग बल जोइ; क्रिया करत फल भुंजते, करमबंध नहि होइ. ॥ ८० ॥

अर्थः-- जे कर्म छूटे तेनुं फरीने बंधन थई शके नही ए सम्यक् ज्ञाननो महिमा छे. वली ए सम्यक्ज्ञान साथे वैराग बलनो जोग छे, तेथी शुभाशुभ क्रिया करता थका ने तेनुं फल भोगता थका शृंखला बंधनवा कर्मनो बंध थतो नथी. ॥ ८० ॥

हवे सम्यक्ज्ञानी महिमामा क्रिया करतांज कर्मनी निर्जरा थाय छे ते दृष्टांते कहेछे --

सवैया इकतीसा - जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म, कौतुकी कहावै तासो कौन कहै रंक है, जैसे विभचारिनी विचारै विभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भर तासो चित्त वंक है, जैसे धाइ बालक चुंधाइ करै लालि पालि, जानै ताहि औरको जदपि वाके अंक है, तैसै ज्ञानवंत नानाभाति करतूति ठानै, किरियाको भिन्न मानै याते निकलंक है ॥ ८१ ॥

पुन - जैसै निशिवासर कमल रहै पंकहिमें, पंकज कहावै पै न याके ढिग पंक है, जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावै गात, मंत्रकी सकति वाके विना विषडंक है, जैसै जीभ गहै चिकनाइ रहै रूख अंग, पानीमे कनक जैसे काइसो अटंक है, तैसै ज्ञानवंत नानाभाति करतूति ठानै, किरियाको भिन्न मानै याते निकलंक है ॥ ८२ ॥

अर्थ - जेम कोई भूप के० राजा होय ने ते पोताना कौतुके करीने गमे तेवु नीच कर्म करे ते क्रिया करवाने लीधे ते कौतुकी केहेवाय पण कोई ते राजाने रंक नही कहे, जेम कोई कुलटा व्यभिचारिणी स्त्री होय ते यद्यपि पोताना धणीनी साथे रहे खरी, तोपण धणीनी साथे तेनु चित्त लुब्ध होतु नथी, चित्तने विषे तो व्यभिचारनोज विचार थाय, के जो वखत मले तो नीकली जाउ ने यारने मलु, जेम कोई धाव होय ने ते पारका बालकने धवरावे, अने रमाडे लालन पालन करे, अने अंक के० पोताना खोलामा लईने बेसे यद्यपि एवी क्रिया तो करे खरी, पण मनमा एम जाणेछे के आ बालक पारकु छे, तेवीज रीते जे सम्यक् ज्ञानी छे ते नाना प्रकारनी शुभाशुभ क्रिया, राजा श्रेणिक तथा भरत चक्रवर्त्ति अने बीजा साधुनी माफक करे छे, पण ए क्रियाने पुद्गल रूप जाणेछे, पोताना स्वरूपथी भिन्न मानेछे एथी बंधनतु कलंक लागतु नथी ॥ ८१ ॥

एज उपर बीजा दृष्टांत कहेछे के, जेम कमल छे ते रात्र दिवस पंक के० कर्दमनेविषे रहे छे तेथकीज उत्पन्न थयुछे, तेथी पंकज केवाय छे, तोपण कमलने पंकनो स्पर्श नथी होतो जेम कोई गारूडी मंत्रवादी होय ते पोताना गात के० शरीरने सर्प पासे पकडावे करडावे पण ते मंत्रवादीना मंत्रनी शक्तिवडे सर्पनो मुख विषसंजोगरहित होयछे, जेम जिव्हा इंद्रिय घी दही प्रमुखनी चीकणाई ग्रहण करेछे, पण पोताना अंगने ते चिकाशनो लेश रेवा देती नथी, किंतु रूखीज रहेछे जेम सोनु पाणीनेविषे रेहेता थका काटवाळु थतु नथी

तेवी रीते ज्ञानवंत प्राणी नाना प्रकारनी क्रिया करेछे, पण क्रियाने पुद्गल संयोग वाली जाणी आत्मस्वरूपथी भिन्न माने छे तेथीज कर्म बंध कलंकथी जुदो रहेछे ७२

हवे विषय भोगवता थका कर्म बंध न थाय एवी ज्ञानवैराग्यनी शक्ति बतावे छेः– अथ ज्ञान वैराग शक्ति वर्णनंः–

सोरठाः– पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवे समकिती; करै न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ७३ ॥

अर्थः– पूर्व संचित कर्म उदय आव्याथी तेना संबंधे सम्यक्ती जीव विषय भोग भोगवे छे, पण नवां कर्मबंध करतो नथी, ए सम्यक् ज्ञान तथा वैरागनी शक्ति छे ७३

हवे जे ज्ञाता होय छे ते सम्यक् ज्ञान अने विषयनी अरुची ए बेउने साधेछे ते कहेछेः– अथ ज्ञाताकी व्यवस्था कथनः–

सवैया तेइसाः– सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुन धारै; जासु प्रभाव लखै निज लछन, जीव अजीव दशा निरवारै; आतमको अनुभौ करि व्है थिर, आपु तरै अरु औरनि तारै; साधि सुदर्व लहै शिवसर्म सुकर्म उपाधि व्यथा वमिभारै. ॥ ७४ ॥

अर्थः– जे समकिती होय ते सदा पोताना अंतःकरणनेविषे ज्ञान अने वैराग ए बे गुणने धारे जे गुणना प्रभाववडे पोतानुं ज्ञातापणुं लक्षण जोईने जीव अजीव दशा एटले जीव अजीवनुं स्वरूप निरवारे के० जुदुं जुदुं जाणे, ते पछी आत्माने यथार्थपणे वेदीने आत्मिक स्वभावमां स्थिरता थई रहेछे; ते पोते पण तरे अने सत्यउपदेश आपी बीजाने पण तारेछे; ए रीते पोताना आत्मद्रव्यने साधीने मोक्षसुखने पामे, अने कर्मउपाधि सहित जे व्यथा तेनुं वमन करेछे ॥ ७४ ॥

हवे विषयनी अरुचिविना ज्ञाननुं बल निष्फल छे, अने एवा ज्ञानीने एकांत पक्षनेविषे रहेवाथी मिथ्या दृष्टि ठेरावे छेः– अथ मिथ्यादृष्टि व्यवस्था कथनः–

सवैया तेइसाः– जो नर सम्यक्वंत कहावत, सम्यक ज्ञान कला नहि जागी; आतमअंग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी; भेष धरै मुनिराज पटंतर, मोह महानल अंतर दागी; सून्य हिये करतूति करै परि, सो सठ जीव न होइ विरागी. ॥ ७५ ॥

अर्थः–जे मनुष्य पोते सम्यकवंत केहेवाय अने सम्यक् ज्ञाननी कला न जागी, एटले सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति न थई तेथी आत्माना अंगविषे बंधविचारे नही, आत्मा अबंध छे एम माने; ने तेथी ते अभ्यंतर संयोग धारे छे. वली कोई नि

अथ नयनो पक्ष लईने पोते त्यागी छे एम कहे, मुनिराजनी पठे पटंतर के० भेष धरे, पण अंतरनेविषे मोहमहानल के० मोहरूप अग्नि शलगी रही होय, विषय थकी वैरागी न थयो, तेथी क्रिया सून्य थको मुनिराजनी पठे क्रिया करे, पण ते जीव मूर्खज केहेवायछे पण वेरागी कहेवाय नही ॥ ७५ ॥

हवे जे सर्व क्रिया करता थका पण मूढ केवाय छे ते कहे छे.—

अथ मूढ क्रिया वर्णनंः—

सवैया तेइसा.— ग्रंथ रचै चरचै शुन पंथ लखै जगमें व्यवहार सुपत्ता, साधि सँतोष अराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता, नंग धरग फिरै तजि संग छके सरवग सुधारस मत्ता, ए करतूति करै सठ पे समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥७६॥ ध्यान धरै करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिनै निज नत्ता, त्यागि विभूति विभूति मिटै तन जोग गहै भवभोग विरत्ता, मौन रहै लहि मद कषाय सहै वध बंधन होइ न तत्ता, ए करतूति करै सठ पै समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥७७॥

अर्थ — ग्रथ रचना करे, भला मार्गनी चरचा करे, भला मार्गने लखे, जगतमा व्यवहार मार्गमा प्रासियको रहे, संतोषी थईने निरजनने आराधे, लोकोने सारी शीखामण आपे, अदत्तदान ले नही, परिग्रह सग त्यागीने नग धरग फिरे के० दिगबर थई फरे, अने सुधा के० मुग्धपणे पोताना रसमां मातो थको सर्वांगे छक्यो रहे, एवी एवी क्रिया मूर्ख होय ते करेछे पण अनातम सत्ता के० आत्माथी पृथक जे मोहनी गहलता छे तेने, अने आत्मसत्ता के० शुद्ध जाणपणानी जे सत्ता छे, तेने जुदी जुदी जाणे नही तेमने मूर्ख केहेवा ॥ ७६ ॥

वली मूढनी क्रिया केहेछे के, ध्यान धरे, इंद्रिय दमन करे, विग्रह करेछे ते शरीरनी साथे पोताना आत्मानो सबंध गणे नही. विभूति के० सपत्तिनो त्याग करी विभूति के० भस्म शरीर उपर लगाडे, योग मार्ग ग्रहे, अने संसारना भोगथी विरक्त रहे, मौनपणे रहे, कपायनु मदपणुं समजे, वध बंधन सहेतो थको पण तातो नही थाय, क्रोधादिक न करे, एवी क्रिया सठ मूढ होय ते करे छे, पण अनातम सत्ता एटले कर्मादिक प्रभावनी सत्ता अने आत्मसत्ता एटले आत्मानुं सत्य स्वरूप तेने समजे नही माटे तेनें मूर्ख समजवो ॥ ७७ ॥

हवे फरी मूढपणानु स्वरूप बतावेछे — पुन मूढ वर्ननं —

चौपाई — जो बिनुज्ञान क्रिया अवगाहै, जो बिनु क्रिया मोख पद चाहै, जो बिनु मोख कहै में सुखिया, सो अजान मूढनिमें मुखिया ॥ ७८ ॥

अर्थः-- जे जन ज्ञानविना क्रिया अवगाहे अने क्रियाविना मोक्ष पद वांछे, वळी जे मोक्ष पाम्या शिवाय कहे के हुं सुखी छुं, तेने अजाण मूर्खनो शिरोमणी जाणवो. ॥ ८८ ॥

हवे जेने कर्मसत्ता तथा आत्मसत्तानी भिन्नता भासती नथी. तेने महामूढ कहिये तेनुं विवेचन करेछेः— अथ महामूढ व्यवस्थाकथनः--

सवैया इकतीसाः-- जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश कहै, तुम्हे इहां सोवत अनंत काळ बीते हैं; जागो व्है सुचेत चित समता समेत सुनो, केवळ वचन जामें अक्षर सजीते हैं; आउ मेरे निकट बताउं में तुह्मारे गुन, परम सुरस भरे करमसों रीते हैं; ऐसे बैन कहै गुरु तउ ते न धरैं उर, मित्रकेसे पुत्र किधों चित्रकेसे चीते हैं. ॥ ८९ ॥

अर्थः— सर्व जगवासी जीवना हित वाछल्यने अर्थे गुरु एवो उपदेश करेछे के, अहो भव्य प्राणी जीव तमे आ जगतमां मोहनिद्रानेविषे सूता रह्या थकाळ अनादि अनंतकाळ तमोने वीत्यो छे, माटे हवे तो चित्तमां सचेत थईने जागो; अने समता सहित थका केवळीना वचन सांभळो, जे केवळीना वचनमां अक्षर रस के० इंद्रियना विषय रस तेने जीतेला छे; अने तमे मारी पासे आवो तो तमारा गुण बतावुं; ते गुण केवा छे, परम एटले उत्कृष्ट सुरसे करी भरेला छे; अने कर्मथकी रीते के० न्यारा छे; एवा वचन गुरु कहेछे ते जे प्राणी हैयामां धरता नथी ते मित्रना पुत्र जेवाछे, केमके मित्रना पुत्रवडे पोतानुं घर उधारुं रेतुं नथी. अने तेने शीखामण शी देवी! अने चित्रामण जेवा छे कारण के चित्रामण थकी कांई सत्य क्रिया थती नथी. ॥ ८९ ॥

दोहाः-- एते पर बहुरों सुगुरु, बोलै बचन रसाळ; सेन दशा जागृत दशा, कहै दुहूंकी चाल. ॥ ९० ॥

अर्थः-- ए प्रमाणे सद्गुरु छे ते फरी सरस वचन बोले छे, के जीवने एक सयनदशा ने बीजी जागृतदशा एवी बे दशा छे तेनी चाल शांभळो. ॥ ९० ॥

हवे सैन दशानुं वर्णन करेछेः-- अथ शयन दशा वर्णनंः—

सवैया इकतीसाः— काया चित्र सारीमें करम परजंक भारी, मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना; सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना; उदै बलजोर यहै श्वासको सबद घोर, विषै सुख कारजकी दोर यहै सुपना; ऐसी मूढ दसामें मगन रहै तिहू काल, धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना.

अर्थ – कायारूप चित्र साली छे, तेमां कर्मरूप पर्यंक छे, तेउपर मायानी सेज संवारी छे, कल्पना के० मननी विकल्पनारूप चादर छे, अचेतनानी ऊंघ.ल ईने एवी सामग्रीमां चेतन शयन करी रह्यो छे, मोहनी मरोड तेणे करीने लोचन ढंकाया छे, उदय बल जोर जे छे, ते श्वासनो घोर शब्द छे, अने विषय सुख कार्य नी दोड एटले करणी करवी ते स्वप्नावस्था छे, अने एनुज नाम मूढदशा तथा श यन दशा कहिये अने ए दशानेविषे जे मूढ जन होय, ते त्रणे काल मगन थको धावे छे, एटले भ्रमजालमा दोडेछे, पण पोतानु रूप पामतो नथी ॥ ए१ ॥

हवे जीवनी जागृतदशानु वर्णन करेछे –अथ जागृतदशा वर्णन --

सवैया इकतीसा –चित्र सारी न्यारी परजक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्या री इहा झूठी मेरी थपना, अतीत अवस्था सैन निद्रा वही कोउ पैन विद्यमान पलक न यामें अब छपना, श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलग बूझे, सूझै सब अंग लखि आतम दरपना, त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलिके सभाले रूप अपना ॥ ए२ ॥

अर्थ.--आत्मज्ञान पाम्याथकी कायारूप चित्रसारी जुदी जुए, अने कर्मरूप पल गने पण न्यारो देखे, मायारूप सेज पण जुदी जुए, कल्पनारूप चादरने न्यारी जुए, मतलबके ए ठेकाणे मारी स्थापना झूठी छे एम समजे. अतीत अवस्थानेवि षे एटले सयनदशामा निद्रा लेनार पण कोई बीजा रूपे हुजलु, विद्यमान कालमा ते अवस्था नथी, हवे पलकमात्र पण आ अवस्थामा मारो अभाव थनार नथी श्वास अने स्वप्न ए बे निद्रानी अलगना सयोगे बूझे, अने आत्मारूप आरिसामां आत्मानुंज सर्व अग सूझे एवी रीते अचेतनतारूप निद्रानो त्याग करीने चेतन त्या गी थयो त्यारे पोतानी दृष्टि खोलीने जूए, अने पोतानु रूप संभाले ॥ ए२ ॥

वली सद्गुरु शिक्षानां वचन कहेछे -अथ पुन सद्गुरु शिक्षा कथन -

दोहा –इहि विधि जे जागै पुरुष, ते शिवरूप सदीव, जे सोवहि ससारमे, ते जगवासी जीव ॥ ए३ ॥

अर्थ.-ए रीते जे पुरुष जागे छे, तेतो सर्व कालनेविषे शिवरूप के० मोक्षरूप जाणवा अने जेटला ससारनेविषे सूता छे, तेटला तो जगतवासी जीव समजवा ॥ ए३ ॥

हवे मोक्षपद उपादेयरूप कहीने स्तुति करेछे –अथ आत्मद्रव्य स्तुतिकथन

दोहा.–जो पद भोपद भय हरै, सोपद सोउ अनूप, जिहि पद परसत औ र पद, लगै आपदारूप ॥ ए४ ॥

अर्थः—जे पद के० जे स्थानक नवस्थानकनो नय हरे छे, तेनेज पद कहे वुं, तथा अनूप स्थानक केहेवुं, अने जे पदनो स्पर्श थतांज अन्य पद जे कर्म पद छे, ते आपदारूप जागे छे ॥ ए४ ॥

हवे नव जे संसार पद तेनो नय बतावे छेः—अथ संसार वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः—जब जीव सोवै तब समुझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागै जब जागै नींद खोइके; जागे कहै यह मेरो तन यह मेरी सौंज ताहू झूठ मानत मरणथिति जोइके; जाने निज मरम मरन तब सूझै झूठ, बूझै जब और अवताररूप होइके; वाहु अवतारकी दशामें फिरि यहे पेच, याहि भांति झूठो जग देख्यो हम ढोइके. ॥ ए५ ॥

अर्थः—ज्यारे जीव सयन दशामां सूतो होय छे, त्यारे स्वप्नने सत्य करी माने छे. अने तेज स्वप्न रूपने ज्यारे निद्रा मूकी जागीने जुए छे, त्यारे झूठुं जाणेछे, जागीने कहे के आ मारुं शरीर तो आंई छे, आ सौंज के० सामग्री सर्व मारी छे; ने ज्यारे पोतानी मर्ण स्थितिनो विचार करे छे, त्यारे तो वर्त्तमान शरीर तथा सामग्री सर्वने झूठी माने छे, अने ज्यारे पोताना मर्मनी वात जाणे एटले पोताना स्वरूपनी वातने जाणे, त्यारे तो मरणने पण झूठुं जाणे; एमज वली बीजो अवतार ले त्यारे बीजा रूपे थईने बीजी वात जाणे; फरी तेज अवतारमां सूता जागा झूठा साचानुं पेच आगलीज रीते लागो रहे. ए रीते वारे वारे अवतार लेवा ने वली सामग्रीने पोतानी समजवी ने वली मरवुं; ए रीते सर्व संसारने ढोई के० देखीने अमे सर्व संसारने झूठोज जाण्यो ॥ ए५ ॥

हवे ज्ञाता केवी क्रिया करे ते समजावे छेः— अथ ज्ञाताकी क्रिया कथनंः—

सवैया इकतीसाः— पंमित विवेक लहि एकताकी टेक गहि दुंदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है; मति श्रुत अवधि इत्यादि विकलप मेटी, निरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है; इंद्रियजनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमको रूप व्है करम निर्जरतु है; सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ ए६ ॥

अर्थः—जे पंमित जन होय ते विवेकनो भेद एटले विज्ञान लहीने पोतानी एकतानी टेक राखीने प्रथमनी द्वंद्वअवस्था जे भ्रम अवस्थामां अनेकता हती तेने हरे छे. अने मति श्रुति अवधि इत्यादि ज्ञानस्वरूपना विकल्पने मटाडीने निर्विकल्प ज्ञान जे केवल ज्ञान तेने मनमां धरेछे. अने इंद्रियजनित जे सुख दुः

ख तेथी विमुख थई परमात्मारूप थईने कर्मनी निर्जरा करे छे, एटले निर्जरा थायछे तेथी पोतानी सहज समाधिसाधिने पर जे कर्मपुद्गलादिकनी उपाधि जे राग द्वेषादिक, तेनो त्याग करीने आत्माने आराधी परमात्मा पणु करेछे ॥९६॥

हवे जे ज्ञान समुद्र परमात्मानी प्राप्ति थाय छे, ते ज्ञाननी प्रशंसा करेछे –

अथ ज्ञान समुद्रवर्णनं –

सवैया इकतीसा –जाके उरअंतर निरंतर अनंत दर्व, भाव भासि रहे पैं सुभाव न टरत है, निर्मलसौ निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करतु है, जाने मति श्रुत औधि मनपर्यें केवल सु, पंचधा तरंगनि उमग उछरतु है; सो है ज्ञानउदधि [illegible]ार महिमा अपार, निराधार एकमे अनेकता धरतु है ॥ ९७ ॥

अर्थ – जे ज्ञा[illegible]रना मध्यभागनेविषे निरंतर अनंत द्रव्य पदार्थ भासी रह्या छे, पण ते द्रव्य [illegible] लक्षण पोते पामतो नथी, निर्मलमां निर्मल एवुं सुजीवन के० जीवितव्य अने [illegible] के० हृदयनेविषे अघट के० सुजीवन के० पाणी ते, जेवुं प्रगटछे, अने घटमे के० हृदयनेविषे अघट [illegible]रस कौतुक के० सत्यार्थ वेदननुं जे रस तेनुंज कुतोहल करे छे, एटले ए [illegible] समुद्रनेविषे मतिज्ञान श्रुतज्ञान [illegible]षे रस कुतोहल घणा छे, अने जे दोहा -- [illegible] पांचे ज्ञान तरंगरूप छे. उमग के० [illegible]न मनपर्यवज्ञान ने केवल [illegible] सहज [illegible]ानसमुद्र ते उदार प्रधान छे, एनो अ[illegible] ठेकाणे प्रगट थई रह्यां छे एवो [illegible] कला [illegible] निराधार अने एक स्वरूप छता [illegible]हिमा छे, एनेविषे सर्व पदार्थ भासे छे तेथी [illegible] क्रियावडेज मोक्षनी प्राप्ति [illegible] अनेकता धरे छे॥९७

हवे ज्ञानविना मात्र [illegible] सेहजे [illegible]मार्ग अप्राप्ति [illegible] वर्णन करेछे –

[illegible] तपसो शरीरेनुं

अथ [illegible]पन वचन अने [illegible] भगन र[illegible]

सवैया इकतीसा – केई क्रूर कष्ट [illegible] करवाथी [illegible] धूम्रपान करै अधो मुख व्हैके झूले है, केई महा व्रत गहे क्रियाम[illegible] [illegible]ि भारमे पयारकेसे पूले है;इत्यादिक जीवनकों सर्वथा मुगति नाहि, [illegible]नी प्रशंसा [illegible] चयारके वघू ले है, जिनके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरवान, करमके करत [illegible] भरममें भूले है॥९८

अर्थ – कोई अज्ञानी क्रूर कष्ट सहन करेछे अने पचाग्नि प्रमुख तप करीने शरीरने बालेछे, कईक अज्ञानी अग्निना धुमाडानुं पान करेछे, नीचु मुख राखी उंचा पग करीने झूलेछे केटला अज्ञानी जैन लिंग लईने पांच महाव्रत द्रव्यथी ग्रहण करेछे, अने क्रियामां मग्न रहेछे, एरीतें मुनिराज पणानो भार वहेछे, पण ते पयारना जेवा पूलेछे, देश भाषायें पयार एटले पलाल, जेना फलनेविषे कण

ते जीव पुनीत के० पवित्र थईने शिवपदने पामेछे, ने चतुर्गतिनो जे वास तेने द हन करेछे; एटले देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति ने नरकगति ए चारे गतिना वास ने बाली नाखेछे. अनुभवी जननी रीत एछे के ते आशा धरीने क्रिया मांडे नही. नूतन बंध के० नवा कर्मना बंधने निरोधीने संवर धारण करे, तथा पूर्वकृत कर्म ने विहंडी नाखीने तेनी निर्जरा करेछे, तेना विकारने अहो भव्य जीव तुं गणीस नही, अने तेना अतिचारने तुं गणीस नही, अने तेना भयने पण गणीस नही, जेना हृदयमां अनुभवरूपी चिंतामणीरत्न प्रकाशी रह्युंछे ॥ ५ ॥

हवे अनुभवीनी ज्ञानदृष्टीनु सामर्थ्य वखाणेछेः– अथ ज्ञानदृष्टि सामर्थ्य कथनंः–

सवैया इकतीसाः–जिनके हियेमें सत्य सूरज उदोत भयो, फेलि मति किरन मिथ्यात तम नष्ट है; जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों समतासों प्रीति मम तासों लष्ट पुष्ट है; जिन्हके कटाछमें सहज मोष पथ सधै, साधन निरोध जाके तनको न कष्ट है; तिन्हिकों करमकी किलोल यह है समाधि, डोले यह जोगा सन बोले यह मष्ट है ॥ ६ ॥

अर्थः– जेना हियानेविषे सत्य सूर्यनो उद्योत थई रह्योछे, अने सत्य सूर्यना मतिरूप किर्ण फेली रह्याछे, तेथी मिथ्यात रूप अंधकार ते नाश पाम्यो. वली जे जीवनी सुदृष्टिमां विषमतानो परिचय नथी, एटले समतासाथे प्रीति बंधाणी छे, ने ममतासाथे तथा मोहसाथे लष्ट पुष्ट के० चित्तविनानी प्रीति राखेछे, ने जे ना कटाक्षनेविषे एटले थोडा विलोकनमां सहज स्वभावे मोक्षमार्ग सिद्ध थायछे. साधन के० मनोयोगादिक त्रण योगनो निरोध एटले निग्रह कर्योछे अने जेना शरीरने कष्ट नथी, एवा ज्ञानधारीने जे कर्म लहेर आवेछे तेने गणतीमां समाधी भा वज जाणेछे; जो कदी गती कर्मना उदयवशे डोलेछे तोपण ते जोगासन धारीछे अने जो बोलेछे तोपण मष्ट के० मौनव्रतिछें ॥ ६ ॥

हवे ज्ञानीने परवस्तुनो त्याग कह्यो अने विशेषपणे तेनोज त्याग वखाणेछेंः–

अथ परवस्तुको त्याग ताको विशेष वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– आतम सुभाउ परभाउकी न सुद्धि ताकों, जाको मन गमन परिग्रहमें रह्यो है; ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इ हांलों समुच्चैरूप कह्यो है; अब निज परे भ्रम दूरि करिबेके काज्ज बहुरो सुगु रु उपदेशको उमह्यो है; परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदीरि लह लह्यो है ॥ ७ ॥

अर्थ --जेनुं मन परिग्रहनेविषे मगन थई रह्यु छे, ते जीवने पोताना. तथा पारका स्वभावनी शुद्धता थती नथी परिग्रहनो राग तेतो अविवेकनुं निधान कह्यु छे, जे परिग्रहना रागनेविषे पोताना ने पारका स्वभावनी शुद्धता नथी, ते परिग्रह रागने त्याग, अहींसुधी सामान्य मात्र कह्यो हवे निजस्वरूपनो भ्रम ने परस्वरूपनो भ्रम तेने दूर करवाना कार्यने घणा प्रकारे सद्गुरू उपदेश करवाने उमंगवत थया छे हवे इहां परिग्रह तथा ते परिग्रहनु विशेष अंग केहेवाने सद्गुरु जे छे ते उद्यम उदीरणा करीने लह लह्यो के० सचेत थया छे ॥ ७ ॥

हवे सामान्यरूप परिग्रहनो राग अने विशेषरूप परिग्रहनो राग तेनो विवरो कहे छे --अथ सामान्यविशेष कथनं --

दोहा --त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार, विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ॥ ८ ॥

अर्थ --जेटली परवस्तु छे तेटली वधी त्याग जोग छे. एतो सामान्यपणे परिग्रहना त्यागनो विचार जाणीये, अने ते परवस्तु भात भातनी छे, अने तेना उपर विचार पण भातभातनो छे एने विशेषपणे परिग्रह त्यागनो विस्तार जाणवो ८

हवे परिग्रह छतां ज्ञातानी परिग्रह उपर अलिप्त दशा कहे छे -

अथ ज्ञाता अलिप्त कथन --

चोपाई --पूरव कर्म उदे रस भुजे, ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे, उरमे उदासीनता लहिये, यो बुध परिगह वत न कहिये ॥ ९ ॥

अर्थ --पूर्वे कर्मना उदयथकी जे शुभाशुभ रस उपजे ते भोगवे पण ते रस भोगनेविषे ममता प्रयुजे नही, मात्र ज्ञाननेविषेज मग्न रहे, पण परिग्रहना सयोग वियोगनेविषे हर्ष विषाद उपजे नही, एवीरीतें जेना मनमा उदासीनता पामीये छइयें एवा बुध के० पंडितने परिग्रहवत कहेवाय नही ॥ ९ ॥

हवे ज्ञानीनी निस्पृह दशा वखाणे छे --अथ ज्ञानी अवांछक कथन --

सवैया इकतीसा --जे जे मनवंछित विलास भोग जगतमें, तेते विनासिक सब राखे न रहत हैं, और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरुप व्है वहत है, एकता न दुहो माहि ताते वांछा फुरे नाही, ऐसे भ्रम कारजको मूरख च हत हैं, सतत रहे सचेत परसो न करे हेत याते ज्ञानवतकों अवछक कहत है॥ १०

अर्थ --मनना मानी लीधेला जे जे जगतना भोग विलास छे, ते ते नाश रुप छे, आपणा राख्या रेहेता नथी वली जे जे भोग अभिलाषरूप चित्त परिणाम रहेने,

ते ते चित्त परिणाम चंचलपणे विनासी धर्म रूपने विषे थई रह्या छे. एवा जोग नेविषे तथा जोग अभिलाषनेविषे अनेकता छे, पण एकता नथी. वळी विनश्वर पणुं छे तेथी एना उपर ज्ञानीनी वांछा फुरती नथी. एवा भ्रम कार्यने मूर्ख होय तेज चाहे छे, जे सतत के० निरंतर सावधान रहे अने परवस्तु साथे हेत करे नही, एज माटे ज्ञानवंतने अवंचक निस्पृही कहेछे. ॥ १० ॥

हवे परिग्रहमां रेहेता छतां ज्ञाताने अलिप्तपणुं केवी रीते केहेवाय ते दृष्टांत आपीने समजावे छेः— अथ ज्ञाता अलिप्त दृष्टांत कथनंः--

सवैया इकतीसाः-- जैसे फिटकडी लोद हरडेकी पुटविना स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें; भीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नही अंतर स पेती रहे चीरमें; तैसे समकितवंत राग दोष मोह बिनु, रहे निशिवासर परिग्रहकी भीरमें; पूरव करम हरे नूतन न बंध करे जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें॥ ११॥

अर्थः— जेम कोई स्वेत वस्त्र होय तेने फटकडी लोदर तथा हरडानी पुट के० पट दीधा शिवाय मजीठना लाल रंगना पाणीमां चिरकाल के० घणाकाल सुधी भी नावी राखे तोपण ते वस्त्र सर्वथा प्रकारे लाल थाय नही; अंतर रंग भेदे नही. तेथी ते चीरमां सफेती रहेज; तेमज समकितवंत जे जीव होय ते राग द्वेष मोह ना पटविना निशिवासर के० रात दिवस परिग्रहनी भीडमां रहेछे. तोपण पूर्व कर्मना भोगनी निर्जरा करेछे, अने नवां कर्मनुं बंधन करे नही, अने जगतना सु खने जाचे नही. वळी शरीरने जोईने राचे नही. ॥ ११ ॥

हवे परिग्रहने विषे रेहता छता ज्ञाताने उद्वेग रहितपणुं होय छे ते दृष्टांत वडे दृढ करावे छेः— अथ ज्ञाता अनुद्वेग कथनंः--

सवैया इकतीसाः— जैसे काहु देसको वसैया बलवंत नर, जंगलमें जाई मधु छत्ताकों गहतु है; वाकों लपटाय चहु ओर मधुमक्षिका पे, कंबलीकी ओटसों अडंकित रहतु है; तैसे समकिती शिव सत्ताको सरूप साधे, उदेकी उपाधिकों समाधिसी क हतु है; पहिरे सहज को सनाह मनमें उछाह, ठाने सुखराह उदवेग न लहतु है. १२

अर्थः-- जेम कोईक देशनो रेहेवासी भील वगेरे बलवंत नर जंगलमां जईने म धपुडाने ग्रहण करे छे, ते वखत ते पुरुषने चारे तरफ मधु मक्षिका के० मध माखीओ लपटाई जाय छे, पण ते पुरुषना शरीर पर कांमली होयछे, तेथी अडं कित के० डंखविना अडंख रहेछे; तेमज समकिती जीव शिव के० परमात्मानी सत्ता के० सत्भूतपणुं तेनुं स्वरूप जे एक विज्ञानघनपणुं तेने साधे छे, अने कर्म

उदयनी जे आत्माने उपाधि लागी रहीछे, तेने ते समाधि करी जाणे छे सहज गुण जे ज्ञान दर्शन चारित्र तद्रूप जे सनाह के० बखतर ते पेहेरी राखेछे, अने ए रीते जे कर्मनिर्जरा तेनो उछाह मनमा धारण करे एवा अनत सुखना राह के० मार्गनेविषे रेहेतो थको उद्वेग दशाने पामतो नथी. ॥ १२ ॥

हवे ए रीतमा ज्ञातानो अबंधकपणुं बतावेछे·-- अथ ज्ञाता अबंध कथन --

दोहरा -- ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोइ, चित उदास करनी करे, करम बध नहि होइ ॥ १३ ॥ मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परगा स, मुगति पथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥ १४ ॥

अर्थ --ज्ञानी पुरुष तो ज्ञानमा मगन रहेछे, अने रमेछे, अने राग द्वेष मोहरूपी जे मल छे, तेने खोइ दिएछे, अने जे क्रिया करेछे ते पण उदासीनरूप करेछे, माटे एवा ज्ञानीने कर्म बंधन थतो नथी ॥ १३ ॥ वली मोहरूपी महातम के० घोर अधकाररूप जे मल तेने हरे, अने सुमतिना प्रकाशनार दीपकने धरे, ए रीते मुक्ति पंथने प्रगट करी बतावे, एवोज ज्ञाननो विलास ते दीपकरूप जाणवो ॥ १४ ॥

हवे ज्ञानदीपकनुं स्वरूप कही देखाडेछे - अथ ज्ञान दीपक वर्नन --

सवैया इकतीसा -- जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिको नाश करे पलमे , दसाको न जोग न सनेहको संयोग जामे, मोह अधकारको विजोग जाके थलमे , जामे ततताइ नही रागरक ताइ रच, लह लहे समता स माधि जोग जलमे, ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अजगरूप, निराधार फुरी पे डुरी है पुदगलमे ॥ १५ ॥

अर्थ -- जे ज्ञान दीपकमा धुमाडानो लेश नथी ने जेमा वायुनो पण प्रवेश नथी अने जे कर्मरूपी पतंग जीवनो पलकमा नाश करे छे, ने जेमा दशा के० दीवेटनो जोग नथी, बीजो अर्थ-- कोई विकल्प दशा नथी अने जेने सनेह के० घृत तेलनो सयोग नथी वली जेना प्रकाशमा मोहरूप अधकारनो वियोग थयु छे वली जे दीपकमा ततपणु नथी, वली जेमा लालरगनी रचमात्र लाला श नथी, अने जे समता समाधिनो जोग ते रुप जे जल तेनेविषे लहलहायमा न थई रह्यो छे, एवो जे ज्ञानदीपक छे, तेनी शिखा सदा अजगरुप जागी रही छे, अने ए शिखा सर्व पदार्थनु ज्ञान करवानो आधार छे, अने पोते निराधार फुरी रही छे, अने पुजलमां डुरी के० छुपी रही छे ॥ १५ ॥

हवे ज्ञानना स्वभावमां खंमना नथी ते उपर दृष्टांत आपेछे:—

अथ ज्ञान स्वभाव अखंमित दृष्टांत कथनं:—

सवैया इकतीसा:— जैसो जो दरब तामें तैसोही सुभाउ सधे, कोउ दर्व काहु को सुभाउ न गहतु है; जैसे संख उज्वल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसो न दीसे नित उज्वल रहतु है; तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिगह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहतु है; ज्ञानकला दूनी होइ द्वंददशा सूनी होइ, ऊनी होइ भौ थिति बनारसी कहतु है ॥ १६ ॥

अर्थ:— जे जेवुं द्रव्य छे, तेमां तेवोज स्वभाव सिद्ध छे, पण कोई द्रव्य अन्य द्रव्यनो स्वभाव ग्रहण करे नही. जेम कोई जलाशयमां संख बेइंद्रीजीव होय ते सरूपमां उज्वल होय छे, पण भात भातनी माटी खाय छे, तेमछतां माटीनो रंग तेना स्वरूपमां देखातो नथी, तेतो नित्य उज्वलज देखाय छे; तेम ज्ञानवंत प्राणी परिग्रहना जोगथकी नाना प्रकारना भोग भोगवतो छता अने विलास करतो छतां अज्ञानता पामतो नथी. अने ज्ञाननी कला बमणी थाय छे, अने द्वंद्व दशा के० भ्रमदशा ते शून्य थाय छे, अने भवस्थिति के० संसार स्थिति ते उणी के० ओछी थाय छे, एवी रीते बनारसीदासनुं केहेवुं छे ॥ १६ ॥

हवे सम्यक् ज्ञाननी साथे सम्यक् क्रिया स्याद्वाद मतने आश्रयी कहे छे:—

अथ स्याद्वाद प्ररूपन कथनं:—

सवैया इकतीसा:— जोलों ज्ञानको उदोत तोलों नही बंध होतु, वरते मिथ्यात तब नाना बंध होहि है; ऐसो भेद सुनिके लग्यो तूं विषै भोगनिसों, जोगनिसों उद्यमकी रीतितें विछोहि है; सुनो भैया संतत कहे में समकितवंत, यहु तो एकंत परमेसरकी द्रोहि है; विषेसों विमुख होइ अनुभो दशा आरोहि, मोख सुख ढोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥ १७ ॥

अर्थ:— ज्यां सुधी ज्ञाननो उद्योत छे, त्यांसुधी बंध थतो नथी, अने ज्यारे मिथ्यात्व दशावंत छे, त्यारे तो नाना प्रकारनो बंध थाय छे, कोई एकंतवादीयें एवो ज्ञान माहात्म्यनो भेद सांभलीने एवुं कह्युं के तूं विषय भोगववा लाग्यो छे, अने मन वचन कायाना योगथकी उद्यमनी रीति जे क्रिया, तेने तें छोडी दीधी छे, तेने कहेछे के हे सतपुरुष सांभल तुं जे कहे छे, के हुं समकितवंत छुं, पण ए एकंतमत जे छे ते परमेश्वर परमात्मानी द्रोही के० द्रोह करनारी छे, माटे तूं विषयथी विमुख थ

ईने अनुभव दशामा गुणश्रेणी धरी आरोहण करी अने मोक्षना सुखने ढोही के० जो, तो एवीज बुद्धी थकी शोभे छे ॥ १७ ॥

हवे ज्ञाननु तथा विषय विमुखतानुं सहचारपणु बतावेछे –

अथ ज्ञान वैराग्य युगपत वर्णन –

चौपाई – ज्ञानकला जिनके घट जागी, ते जगमाहि सहज वैरागी, ज्ञानी मगन विषै सुखमाही, यह विपरीत संभवै नाही ॥१८॥ दोहा – ज्ञान सहित वैराग्य बल, शिव साधै समकाल, ज्यो लोचन न्यारे रहै, निरखै दोऊ नाल ॥१९॥

अर्थ –जेना घटनेविषे ज्ञानरूपी कला जागी छे, तेतो जगतनेविषे सहेजे वैरागी रहे छे ज्ञानी थईने विषयसुखमा मग्न होय ए विपरीत वात संभवती नथी ॥१८॥ वली ज्ञाननी संगति ने वैरागनी संगति ए बंने चीज समकाल मलीने मोक्षने साधे, जेम बे आखो जुदी रहीछे, पण नाल के० साथे बेउ नेत्र पदार्थने जुएछे ॥१९॥

हवे मूर्खने कर्मनु कर्त्तापणु अने ज्ञानीने निर्जरानु कर्त्तापणुं ए बेनु स्वरूप कहेछे – अथ मूढ कर्त्ता कर्मको यह कथन –

चौपाई – मूढ कर्मको कर्त्ता होवै, फलअभिलाप धरै फल जोवै, ज्ञानी क्रिया करै फल सूनी, लगै न लेप निर्जरा दूनी ॥ २० ॥ दोहा –बधे कर्मसों मूढज्यो, पाट कीट तन पेम, खुलै कर्मसो समकिती, गोरख धधा जेम ॥ २१ ॥

अर्थ – मूढ जे छे ते कर्मनो कर्ता बने छे, केमके ते क्रियाना फलनो अभिलाप धरे छे, अने फलने जोई रहेछे, ने जे ज्ञानी होय ते क्रिया तो करे पण फल शून्य करे, तेथी ज्ञानीने कर्मनो लेप लागतो नथी, एथी बमणी निर्जरा थायछे॥ वली जे मूढ छे ते कर्मनेविषे बंधाइ रहेछे, जेम रेशिमनो किडो पोताना शरीरना प्रेमवडे पोतानी लालथकी पोतेज बधायछे अने जे समकिती होय तेतो कर्मनी जालथी खुलेलो रहे छे, कोनी पठे ? जेम गोरखधधो पोतानी जालथी खुली जायछे तेम जाणवु ॥ २१ ॥

हवे ज्ञानी जीवने कर्मनु अकर्त्तापणुं तथा निर्जरारूप ठरावे छे –

अथ ज्ञानीको अकर्तृत्व कथन –

सवैया तेईसा – जे निज पूरव कर्म उदै सुख भुजत भोग उदास रहैंगे; जे दुखमे न विलाप करै निरवैर हिये तन ताप सहेगे, है जिनके दृढ आतम ज्ञान क्रिया करिकै फलकों न चहैंगे, ते सुविचक्षन ज्ञायक है तिनकों करता हम तो न कहैंगे ॥ २२ ॥

अर्थः— जे जीव पोताना पूर्वे संचित शुभ कर्मना उदय वडे सुख भोगवतो थको पण भोगथी उदास रहे छे, अने जे जीवने असाता वेदनीयना उदयथी दुःख उप जे तो पण विलाप करे नही, अरतिनो विभाग करे नही, अंतरमां कोई चिंता न ही राखे; अने शरीरनो संताप सहन करे, वली जेनीपासे आत्मज्ञान छे, तेतो क्रिया करीने फलने इछे नही, तेज उत्कृष्ट विचक्षण ज्ञानी केहवायछे, अने तेने कर्म करता थका कर्मना कर्त्ता एम तो अमे कही सकशुं नही ॥ २२ ॥

हवे एवा ज्ञानीनी व्यवस्था कहे छे. ज्ञाता वर्णनंः—

सवैया इकतीसाः— जिनकी सुदृष्टिमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिनको आचार सु विचार शुभ ध्यान है; स्वारथको त्यागी जे लहैंगे परमारथकों, जिनके वनिजमें नफा न है न ज्यान है; जिनकी समुझमें शरीर ऐसो मानीयतु, धानकोसो छीलक कृपानकोसो म्यान है; पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके तेई साधु ति नहीको जथारथ ज्ञान है ॥ २३ ॥

अर्थः— जे ज्ञातानी सुदृष्टि एवी छे के, जेनेविषे इष्ट वस्तु तथा अनिष्ट वस्तु बेउ बराबर छे, अने जेनो आचार एवो छे के जे भला विचारथी शुभ ध्यानमांज रहे, अ ने विषय सुख प्रमुख स्वार्थने त्यागीने जे अध्यात्मरूप परमार्थ तेनेविषे लागी रहे छे, वली जेनां वचन एवां छे के, जेमां नफो नथी तेम टोटो पण नथी, एटले कोई ने सुसीख किंवा कुसीख देता नथी. मौन वृतिज रहेछे. वली जेनी समज एवी हो य के शरीरने धाननी छील के० तुस जेवुं अने कृपान के० तरवार तेना म्यान जे वुं माने छे, मतलब के आत्माने शरीरथी जुदो जाणे छे. वली जे जेवो पदार्थ होय तेवी तेनी परिक्षा करे छे, अने जेम नय ज्ञानविना पांच दर्शनमां जे भ्रम नुं भारथ चाली रह्युं छे, तेनो साक्षी छे, पूछवानुं थानक छे, तेहिज साधु केवाय छे, अने तेने यथार्थ ज्ञानी कहिये ॥ ॥ २३ ॥

हवे समकितनुं साहसपणुं वर्णन करेछेः-- अथ सम्यक्त्वंतको साहसकथनः—

सवैया इकतीसाः— जमकोसो भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मू रख न साहस गहतु है; सुरग निवासी भूमिवासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहतु है; उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसों, डोलतु निशंक भ यो आनंद लहतु है; सहज सुवीर जाको सासुतो शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आर ज आचारज कहतु है ॥ २४ ॥

अर्थः-- अहिं संसारनेविषे जे असाता वेदनीय कर्म छे, ते केवां दुःखदाता छे?

अहि उत्प्रेक्षा करे छे –जमकोसो भ्राता के० यमना भाई छे, तेनो उदय थता मूरख जन जे छे, तेतो साहस ग्रही शके नही सुरगनिवासी के० देवता भूमिवासी के० मनुष्य तिर्यंच अने पातालवासी देवता नारकी एवा सर्व त्रिलोकवासी जीवोना तन मन असातावेदनीय थकी कापता रहेछे, हवे ज्ञानी जीवना उरनुं अजवालु जे छे ते अतरना चादरणा जेवु छे, ते केवु छे? ते समजावे छे के, ते सात भय थकी जुडज छे, जे अजवालाथी साते भय प्राप्त थता नथी, अने ए प्रभावथी नि शक थई मोजे छे, अने आनद पामे छे. सहज सुवीर के० महोटो साहसीक सुभट, जेनुं ज्ञानरूपी शरीर शाश्वत छे, एवा ज्ञानी जीवो आचार्य के० महा पुरुप पूज्य जाणवा, एवु आचार्य कहेछे ॥ २४ ॥

हवे साते भयना नाम कहेछे -- अथ सप्त भयनाम --

दोहा.-- इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना जात, अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥ २५ ॥

अर्थ -- आ भवनुं भय, परलोकनु भय, मर्ण भय, वेदना उपजवानुं भय, अनरक्षानुं भय, अनगुप्त भय, अने अकस्मात भय ए सात भय जाणवा ॥ २५ ॥

हवे साते भयना लक्षण कही जुदा जुदा उलखावेछे --अथ सप्त भय लक्षन कथनं –

सवैया इकतीसा -- दसधा परिग्रह वियोगचिता इह भव, दुगति गमन परलोक भय मानिये, प्राननिको हरन मरन भै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानिये, रक्षक हमारो कोउ नाही अनरक्षा भय, चौर भै विचार अनगुप्त मन आनिये अनचित्यो अवहि अचानक कहाधो होइ, ऐसो भय अकस्मात जगतमे जानिये २६

अर्थ -- शास्त्रमा जे दस जातिनो परिग्रह कह्यो छे तेना विजोगनी चिता रहे ते ज आ भवनु भय जाणवु दुर्गतिगमननु जे भय ते परलोकनु भय कहिये, प्राण छूटवानु जे भय ते मर्ण भय, रोग प्रमुखथकी जे कष्ट उपजे ते वेदना भय वखाणिये, अमारी रक्षा करनार कोई नथी देखातो ए अनरक्षा भय, चोर अथवा दुश्मण आव्याथी दु ग्र यत्न करी शकीश एवो जे भय तेने अनगुप्त जाणिये अणचित्यु शु थशे एवु जे भय मननेविपे रहे तेनु नाम अकस्मात् भय जाणवु ॥ २६ ॥

हवे आ भवनु भय निवारण रूप मत्र कहेछे –अथ इह भव भय निवारण कथन -

छप्पय छद -- नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरखत, आतम अग अभग, सग परधन इम अखत; छिनभगुर ससार, विभव परिवार भारज सु,

जहाँ उतपति तहाँ प्रलय, जासु संयोग विरह तसु; परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह नव नय उपजै न चित; ज्ञानी निशंक निकलंक निज; ज्ञानरूप निरखंतनित २७

अर्थः-पगना नखथी ते माथानी सिखासुधी एटले सर्व शरीर प्रमाण आत्मानो गुण जे ज्ञान ते अवगाह के० व्याप्ति तेने जुए, एवां नख सिख सहित ज्ञानमय आत्मानुं अंग अजंग रहे, तेनी साथे जे पुजलछे तेने परधन के० परद्रव्य कहेछे, अने सर्व संसार क्षणजंगुर छे, ने तेनेविषे जे विजव परिवाररूप जार छे, ते पण क्षणजंगुर छे, अने जेनी उत्पत्ती तेनुं विनाश छे, जेनो संयोग तेनो वियोग पण थायछे, एवो परिग्रहनो प्रपंच प्रगट परखीएं तो आ जवनुं जय चित्तमां उपजे नही. ए रीते जे ज्ञानी होय ते परिग्रहना वियोगनी चिंता न राखे, ने निसंक रहे, पोतानुं निस्कलंक स्वरूप ज्ञानमय सदा जुए. ॥ २७ ॥

हवे परलोकजय निवारणनुं मंत्र कहेछेः— अथ परलोक जय निवारण मंत्रः—

छप्पयछंदः— ज्ञान चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोख सुख; इतरलोक मम नांहि, नांहि जिसमांहि दोष डुख; पुन्न सुगति दातार, पाप डुरगति पद दायक; दो खंमित खानिमें, अखंमित है शिवनायक; इह विधि विचार परलोक जय, नहि व्यापक वरते सुखित; ज्ञानी निसंकनिकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥ २८॥

अर्थः-- ज्ञान चक्र के० ज्ञान विस्तार तेतो ममलोक के० मारो लोक छे, महारो प्रचार छे, तेने प्रत्यक्ष जोवो, अने मोक्ष सुख वन्नेरूप छे, अने इतर लोक के० तेविना अन्य लोक ते मारो नथी, महारो ज्ञान लोक मारी साथे छे, जेनेविषे दोष डुःख नथी. परलोकमां सुगतिनुं देनार पुन्य छे, अने परलोकमां कुगतिनुं आपनार पाप छे. ए बे पुन्य पाप आत्मानी खंमनानी खाणी छे. अने हुं अखंमित रूप छुं. शिवनायक के० सिद्धरूपी छुं. एवा विचारथी परलोक जय व्यापे नही; अने सुखित के० सदा सुखवंत वर्त्ते; ए प्रमाणे परलोक जय छांमिने ज्ञानी पुरुष निसंक थको निकलंक एवुं जे निजज्ञानरूप तेने सदा निरखे ॥ २८ ॥

हवे मरणजय निवारणनो मंत्र कहे छेः— अथ मरन जय निवारण मंत्रः—

छप्पयछंदः— फरस जीज नाशिका, नैन अरु श्रवन अक्ष इति; मन वच तन बल तीन, सास उस्सास आउ थिति; ए दस प्राणविनाश, ताहि जग मरण कहीजे; ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे; यह चिंत करत नहि मरण जय, नय प्रमाण जिनवर कथित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥२९

अर्थः--स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ए पांचे इंद्रिय; मनोबल, वचनबल, ने

कायबल ए त्रण, स्वासोस्वास आयुस्थिति, ए दस प्राण आदिनो विनाश थाय, तेने जगतमा मर्णभय कहे छे, पण जीव पदार्थ छे ते ज्ञानरूपी भाव प्राण संयुक्त छे, तेतो जीवने ज्ञान प्राण त्रणे कालनेविषे त्रूटे नही, एवो विचार मनमा करवाथी मर्णभय उपजे नही नय प्रमाण वडे एवु जिनेश्वरनु कथन छे, ज्ञानी लोक निसक पणे पोताना निकलंक स्वरूप ज्ञानरूपने सदा निरंतर निरखत के० सत्यपणे जुए छे ॥ २९ ॥

हवे वेदना भय निवारणरूप मंत्र कहे छे -- अथ वेदना भय निवारण मंत्र --

छप्पय छंद -- वेदनवारो जीव, जाहि वेदंत सोउ जिय, यह वेदना अभंग, सुतो मम अंग नाहि व्यय, करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख, दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिरमुख, जब यह विवेक मनमहि धरत, तब न वेदना भय विदित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥ ३० ॥

अर्थ -- वेदनावारो एटले जाणनारो तेतो जीव छे, अने जेने जाणवु छे, तेपण जीवज छे एटले वेदनावंत ते ज्ञानी जीवए ज्ञानरूप वेदन जे अभंग रूप छे तेतो मारु अंग छे, अने कर्म वेदना जे छे ते मारी नथी अने ते कर्मरूप वेदना बे प्रकारनी छे, एक सुखमय वेदना ने बीजी दु खमय वेदना छे, ए बेउ मोह विकार छे, ए बी सुख दु खनी वेदना पुद्गलाकार छे, पुद्गलनी छाया बाह्यरूप छे, ज्यारे एवो विवेक विचार मनमा धरे छे, त्यारे वेदनानु भय वेदी सकतु नथी ज्ञानी लोक होय तेतो वेदना भयथी निसंक रहे अने निकलंक एवु पोतानुं ज्ञान स्वरूप तेने सदा जोतो रहे ॥ ३० ॥

हवे अनरक्षाभय निवारणरूप मंत्र कहे छे --अथ अनरछा भय निवारण मंत्र --

छप्पय छंद -- जो स्ववस्तु सत्ता सरूप जगमहि त्रिकाल गत, तास विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत, सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर, तिहि कारन रक्षक न, होइ भक्षक न कोइ पर, जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरछा भय नसित, ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ३१

अर्थ -- स्ववस्तु के० निज आत्मरूप वस्तु, सत्तास्वरूप के० द्रव्यपणे छतु केहेवाय ते जगतमा त्रणे कालनेविषे पामियें, तेनो क्यारे पण विनाश नथी थतो, एवुं सहज स्वरूप निश्चयनयना प्रमाणवडे जाणवु, एज मारु आत्मद्रव्य जे छे, तेतो सर्वथा प्रकारे कोईनो सहाय धरतु नथी, तेमाटे ए आत्मद्रव्यनो कोई रक्षक नथी तेमज कोई पर के० बीजो एनो भक्षक पण नथी जेवारें एवो विचार

हृदयमां नकी करी राखे, त्यारे अनरक्षा नय नाश पामे, एवा ज्ञानी होय ते अनरक्षा नयथी निसंक थको पोताना निकलंक ज्ञानस्वरूपने सदा निरखे छे.॥३१॥

हवे चौरनय निवारण रूप मंत्र कहे छेः-- अथ चौरनय निवारन मंत्रः—

छप्पय छंदः— परम रूप परतछ, जासु लछन चिन मंडित; पर प्रवेश तहाँ नांहि, मांहिं महि अगम अखंडित; सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अकूट धन; तांहि चोर किम गहे, ठौर नहि लहे और जन; चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्त नय उपसमित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित.

अर्थः— जे परम स्वरूप केहेवाय छे, अने मान सन्मानवडे प्रत्यक्ष छे, चिनमंडित के० चिन्मय एवुं जेनुं लक्षण छे, अने जेना स्वरूपनेविषे परस्वरूपनो प्रवेश नथी; मांहिमही के० पृथ्वीना वचमां अगम्य छे, अने अखंडित छे, एवुं तो अनूपम मारुं रूप छे, ते कोईनुं कीधेलुं नथी, अनमित के० प्रमाणविना, एवुं अखुट धन छे, ते धनने चोर केम हरी शके! अने और के० बीजा कोई लोक तेनी जगा पामी शके नही. ज्यारे ध्यान धरीने एवुं चिंतवन करे त्यारे अगुप्त नय के० उघाडा धननुं जे नय ते उपशमी जाय. अने एवा ज्ञानी होय ते अगुप्त नयथी निशंक थका पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा निरखता रहेछे. ॥ ३२ ॥

हवे अकस्मातनय निवारण रूप मंत्र कहेछेः—अब अकस्मातनय निवारण मंत्रः—

छप्पय छंदः— शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम; अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल सरूप मम; चिद विलास परगास, वीत विकलप सुख थानक; जहाँ दुविधा नहि कोइ, होइ तहाँ कछु न अचानक; जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात नय नहि उदित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञान रूप निरखंत नित. ॥ ३३ ॥

अर्थः-- जे वस्तु शुद्ध छे, केवल पोताना स्वरूपनें विषेज छे, बुद्ध के० ज्ञानमय अविरोधी छे, सिद्धसमान ऋद्धिवंत छे, अलक्ष छे, आदिरहित छे, अने अंत रहित छे, जेनी तुलना कोईथी न थाय माटे अतुल छे, एवुं अविचल मारुं रूप छे. चिदविलास के० ज्ञानविलासनो जेने प्रकाश छे. वीतविकलप के० अवस्था भेद रहित छे, अने समाधि सुखनुं थानक छे. ज्यां कोई विजातीय न पामियें त्यां कोई अणचिंतव्यो अचानक नय शोक कांई उपजे नही, आवो विवेक विचार हृदयामां ज्यारे उपजे छे, त्यारे अकस्मात नय जे छे, ते उदय थतुं नथी. जे ज्ञानी हो

य छे ते अकस्मात नयथी निशंक थको पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा जोतो रहेछे ॥ ३३ ॥

हवे निर्जराना करनार ज्ञानीनी व्यवस्था कहेछे --अथ ज्ञानी व्यवस्था कथन --

छप्पय छंद -- जो परगुन त्यागत, शुद्ध निजगुन गहंत ध्रुव, विमल ज्ञान अं कूर, जासु घट महि प्रकास हुव, जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धार वहावत, जो न व बंध निरोध, मोष मारग मुख धावत, नि सकतादि जस अष्ट गुन, अष्ट कर्म अरि संहरत, सो पुरुष विचछन तासु पद, बनारसी वंदन करत ॥ ३४ ॥

अर्थ -- जे कोई पुद्गलादि गुणनो त्याग करे, अने ध्रुव के० निश्चयरूप एवा शुद्ध पोताना गुणनुं ग्रहण करे, निर्मल ज्ञाननो अंकुर के० उदय जेना घटमा प्रकाशित थयो, अने जे पूर्वकृत कर्मने निर्जरानी धर के० श्रेणिविषे वहावि दिये वली जे नवा बंधनो निरोध करीने एटले निराश्रव थईने मोक्षमार्गने सन्मुख दोडेछे, गुण श्रेणिमा दोडेछे, निशंकित प्रमुख जेना आठ गुण छे, ते आठे कर्मरूप शत्रुनो संहार करे, तेज विचक्षण पुरुष केहेवाय, अने तेना चरनकमलने बणारसी दास वंदन करेछे ॥ ३४ ॥

हवे आठ अंगना नाम कहेछे --अथ अष्टांगके नाम कथन --

सोरठा -- प्रथम निससेजानि, द्वुतिय अवंछित परिनमन, तृतिय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुन ॥ ३५ ॥ पंच अकथ परदोष, थिरी करन छट्ठम सहज, सत्तम वछल पोष, अष्टम अंग प्रभावन ॥ ३६ ॥

अर्थ.-- पेहेलु निर्संशय के० निःशंकित, बीजु समकितनो गुण जे अवांछक पणारूप मननो परिणाम, त्रीजुं अंग अग्लान, चोथु गुण निर्मल दृष्टि एटले मूढ दृष्टि नही ते, ॥ ३५ ॥ पांचमुं परदोष अकथन, छठु अंग समकित स्थिर करवाना स्वभावरूप, सातमुं सर्व साथे वात्सल्यपणुं अध्यात्मक पोषक, अने आठमुं अंग प्रभावना गुणरूप ॥ ३६ ॥

हवे अंगना लक्षण कहे छे -- अथ अंग लक्षण -

सवैया इकतीसा -- धर्ममें न संसै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभको देखि न गिलानि आनै चित्तमें, साचि दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति ठानै बोध चित्तमें, प्यारे निजरूपसों उछाहके तरंग उठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें, ताहि समकितको धरे सो समकितवंत, वहे मोषपावे जे न आवे फिर इतमें ॥ ३७ ॥

अर्थः— धर्मनेविषे संदेह न होय ते निःशंकित गुण, शुन्न कर्मना फलनी इच्छा न होय ते निस्पृही गुण, अनिष्ट वस्तुने जोइने चित्तमां ग्लानी न लाववी ते अग्लान गुण, कोईना भगाव्या भगवुं नही ने साचनेविषे दृष्टि राखवी ते अमूढ दृष्टिगुण, कोई प्राणीनो दोष केहेवो नही ते दोषाकथन गुण; चंचलता त्यागीने ज्ञानरूप चित्तनेविषे स्थिरता राखवी ते थिरीकरण गुण; आत्म स्वरूपमां प्रेम राखवो ते वछल गुण; अने आत्मस्वरूप साधननेविषे उछाह लहरी के० तरंग उववापणुं लीधो रहे ते प्रनावना गुण, एम एक समकेतना आठे अंग ज्यारे जागे, अने ते आठ गुणे सहित सम्यक्तनुं धारण करे, ते समकितवंत केहेवाय ने तेवाज समकिती मोक्ष पामे, ने फरीथी आ संसारमां आवे नही ॥ ३७ ॥

हवे निर्जराधारी चैतन्यनुं नाटक कहे छेः-- अथ चैतन्य नाटक कथनंः--

सवैया इकतीसाः-- पूर्व बंध नासे सोतो संगित कला प्रकाशे, नव बंध रुंधी ताल तोरत उछरिके; निसंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरी, समता अलाप चारि करे सुख नरिके; निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग वाजे, छक्यो महानंदमें समाधि रीझि करिके; सत्तारंग नूमिमें मुकत नयो तिहूं काल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ३८ ॥

अर्थः— जेम पूर्वकालनेविषे उत्कृष्ट स्थीतिथकी बंध करतो हतो तेवी रीते न करता अनुत्कृष्ट स्थितिथकी करवो एम पूर्व बंध नासे, तेतो संगित कला आलाप चारी प्रकाशे, अने नवा बंधने रोधवुं ते रूपताल उछले छे तालतोर छे, निशंकित प्रमुख जे समकितना आठ अंग कह्यां, ते सहाय जोडी समता समाधि धारी तद्रूप स्वर बांधीने आलाप करे छे, अंही कर्मनी निर्जरा हेतु छे, एटले कर्मनास करवारूप कार्यनुं निर्जरा कारण छे, ते ध्याननेविषे एक स्वरूपनाद गाजे छे, अने सोहं धुनी छे तेरूप मृदंग वाजे छे, अंही जे महानंदमय थईने छक्यो तेतो सुखी थयो, ते जाणिये रीझ थई, ने पोतानी आत्मसत्ता तेज कोई रंगनूमि छे एटले रंग मंफप थयो, तेनेविषे त्रणे कालमां शुद्ध दृष्टीसहित ज्ञानरूप वेष स्वांग पहेरी धरीने नटरूप चैतन्य मुक्त थईने नाचे छे ॥ ३८ ॥

इतीश्री समयसार नाटकविषे बालबोधरूप निर्जराद्वार सप्तम संपूर्ण.

दोहाः— कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधनहार; अब कछु बंध प्रबंधको, कहुं अल्प विस्तार ॥ ३९ ॥

अर्थ — मोक्ष मार्गनी साधनकार जे निर्जरा तेनी कथा हती ते कही, हवे जे बंध थाय छे तेना अधिकारनो अल्प विचार कहेछे ॥ ३९ ॥

हवे बंध जे छे ते छांडवा योग्य छे, माटे ते बंधनो विदारणहार जे समकित तेने नमस्कार करेछे — अथ बंध विदारन सम्यक्त वर्णन —

सवैया इकतीसा — मोह मद पाई जिन संसारी विकल कीने, याहिते अजानु बाहु विरद वहतु है, ऐसो बंध वीर विकराल महाजाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहतु है; ताको बल भंजिवेकों घटमे प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उ देस महतु है, सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताही, निरखी बनारसी नमो नमो कहतु है ॥ ४० ॥

अर्थ — जे बंधरूप सुभट छे ते मोहरूप मदिरा पाईने सर्व संसारी जीवने विकल करेछे, एथी ए बंधरूप वीर छे ते आजानुबाहुनुं बीरुद वहावेछे के० सार्व भोम थई रहेला छे, एवो विकराल ए बंधरूप वीर शुभट छे, वली ए महाजाल समान छे, अने एज ज्ञान प्रकाशने मंद करेछे, कोनी पठे जेम राहु चंद्रने मंद करेछे तेनी पठे जाणी लेवु, हवे एवा बंधरूप वीरनो प्रतिपक्षी जे छे, ते एवुं बल तोडवाने घटनेविषेज प्रगट थयो छे, जेनो उद्यम उद्धत छे, एटले कोईथी रोक्यो रेहे एवो नथी, अने उदार छे के० श्रेष्ट छे. तथा महत के० मोटो छे, तेतो समकितरूप शूरवीर जाणवो, ते आनंद अंकूर लईने उदय थयो छे, ते सम्यक्त शूरवीरने जोईने पोताना अंग उल्लसित थको बनारसीदास नमो नमो कहेछे ॥ ४० ॥

हवे चेतनाविना कर्म बंध नथी थता, माटे ज्ञानचेतना तथा कर्म चेतना ए बेउनी समज पाडेछे — अथ कर्मचेतना ज्ञानचेतना वर्णन —

सवैया इकतीसा — जहां परमातम कलाको परगास तहां, धरम धरामें सत्य सूरजको धूप है, जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है, फेली फिरै छटासी घटासी घट घन बीच, चेतनकी चेतना दुहोंधा गुपचूप है, बुद्धिसो न गही जाय वेनसों न कही जाय, पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडुप है ॥ ४१ ॥

अर्थ — जे चेतनामां परमात्मानी कलानो प्रकाश थाय छे, ते धर्म धरती छे, ते धरतीमां सत्यरूप सूर्यनो तडको छे, एटले उजली जगा छे वली जे चेतनानेविषे शुभ अशुभ कर्मना रसनी गढास छे, एटले शुभाशुभ कर्मना रस वडे जे चेतना घोलाइ रही छे, त्यां मोहराजा विलास करे छे, तेतो घोर अंधकार छे,

ए रीते चेतन पुरुषनी जे चेतना के० संज्ञा छे, तेतो घटावन बीच के० शरीररूप मे घवचे छटानी माफक फेली रही छे, अने घटानी माफक फेलीयकी फरे छे, अने ए चेतना ते परमात्मानी कलाना प्रकाशमां तथा मोहविलासमां ए बेउ तरफ गुपचुप छे, एटले चुप थई रही छे; एवी ए चेतना बे तरफ प्रवेश करे छे, ए वात बुद्धीथी ग्रहण थाय छे; पण वचनथी कही जाय एवी नथी; जेम पाणीना तरंग पाणीमां गुरुप्प छे तेम चेतना बेउ तरफ गुरुप्प छे. ॥ ४१ ॥

हवे बंधद्वारनेविषे बंधनो हेतु कहे छेः– अथ बंधनिदान कथनः–

सवैया इकतीसाः– कर्मजाल वर्गनासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों; चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंचविषे विखरोगसों; कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसौं अबंध जिन हिंसासौं अबंध साधु ज्ञाता विषे भोगसों; इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४२ ॥

अर्थः– कोई कहे छे के कर्मजाल वर्गणा थकी जगतमां जीव बंधाय छे, ते वात खोटी एटले कर्म वर्गना जीवना बंधनो हेतु नथी, एवी रीतें कदाचित मनवचन कायाना योगथी पण जीव बंधातो नथी; चेतन तथा अचेतननी हिंसाथकी पण जीवने बंध थतो नथी. अलक्ष पती छे, तथा अलक्षरूपी छे, ते पंचेंद्रियना यिपयरूप विपरोग वडे पण बंधातो नथी. कर्म वर्गनाथी सिद्धना जीव बंधाता नथी, वली जिनेश्वर देव छे तेतो त्रणे योगमां छे तोपण अबंध छे, साधुजे छे, ते अनाभोग पणे हिंसा करे छे, तोपण अबंध छे, ज्ञाता विषय भोगवेछे, तो पण ते अबंध छे, एरीते कर्म वर्गना प्रमुख वस्तुना मिलापथी जीव बंधातो नथी. पण मात्र एक राग द्वेषने मोह अने जीव बंधरूप अशुद्ध उपयोग थीज जीव बंधाय छे ॥ ४२ ॥

हवे राग द्वेष अने मोहनेज दृढपणे बंधना हेतु ठरावे छेः–

अथ बंधनिदानदृष्टी करन व्यवस्थाः–

सवैया इकतीसाः– कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मन वच काको निवास गति आउमें; चेतन अचेतनकी हिंसा वसै पुग्गलमें, विषे भोग वरते उदेके उरझाउमें; रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी. यहे उपादान हेतु बंधके बढाउमें; याहिते विचछन अबंध कह्यो तिहूं काल, राग दोष मोहनादि सम्यक् सुभाउमें; ॥ ४३ ॥

अर्थ.–कर्म जाल वर्गणानो वास तो लोकाकाशमांज छे, केवल कर्म वर्गणा कारण थकीज जो अमूर्त्ति चेतनद्रव्य बंधनावने पामे, तो लोकाकाशनो बंध केम नही थाय? तेमज मन वचन अने कायाना योगनो वास तो चारे गतिनेविषे छे, अने चारे आउषामा छे, त्यारे योग ते आत्माना बंधना हेतु केम थाय? चेतनना प्राण हर्णथी हिंसा थाय छे, ते पुद्गल बंधरूप प्राणमांज हिंसा थाय छे, एमज अचेतननी हिंसा पण पुद्गलमां छे, ते आत्मासाथे स्पर्शती नथी, तो बंध केम थाय? अने विषय नोग जे वरते छे, तेतो कर्मना उदयमा छे, अरुजी रह्या छे, अने आत्मा तो तेथी निराळो छे, ते बंधाय केम? माटे राग द्वेषने मोहथकी जे शुद्धता के० मुग्धता थाय ने परवस्तुनै पोतानी करी मानवी ते अलख पुरुषनी अशुद्धता छे अने एज अशुद्धता बंधने वधारे छे, ए माटे विचक्षण पुरुषने त्रण काळविषे अबंध कह्यो, केमके, तेने सम्यक् स्वनावमां राग द्वेष अने मोह नथी ॥ ४३ ॥

हवे ज्ञाताने अबध कह्यो तोपण उद्यमी थईने क्रिया करवी ते समजावेछे –

अथ उद्यम प्रशंसा –

सवैया इकतीसा – कर्मजाल जोग हिंसा नोगसों न बधे पै तथापि ज्ञाता उद्यमी बखान्यो जिन बैनमे, ज्ञानदृष्टि देतु विषै नोगनिसों हेतु दोउ, क्रिया एक खेत यों तौ बनै नांहि जैनमे, उदै बल उद्यम गहै पै फलकौ न चहे निरदै दसा न होइ हिरदेके नैनमे, आलस निरुद्यमकी नूमिका मिथ्यात मांहि, जहा न संनरै जीव मोहनींद सैनमे ॥ ४४ ॥

अर्थ – जीव छे ते कदापी कर्मजालथी बंधाय नही, अने जोगथकी पण बंधाय नही, अने हिंसाथकी पण न बधाय, नोगवडे न बंधाय, तोपण जिनेश्वरना वचनथकी ज्ञाता जीवने उद्यमीज वखाण्युं छे ज्ञाननेविषे दृष्टि पण आपेछे, अने विषयनोगमा प्यार पण राखेछे, एवी बे क्रिया एक खेत के० एक आत्माविषे एक स्थानकविषे करेछे, एवु तो जैनवासीमा बने नही, अने जे ज्ञानी होय ते एटलुं तो करेके जे संहनन के० संघयण प्रमुख कर्मनो उदय बळ छे, तेथी यथायोग्य ते क्रियाविषे उद्यमवत थाय, अने तेना फलने इछे नही, ने हृदयरूप नेत्रनेविषे निर्दय दशावत न थाय, अने आलस निरुद्यम तो मिथ्यात्वमाज पामिये, एथी आलस ने निरुद्यमनी मिथ्यात्व नूमिका छे, जे नूमिकानेविषे जीव मोहनिद्रा लेतो थको सयनदिशामा रहेछे, अने पोताना स्वरूपने सनारतो नथी ॥ ४४ ॥

हवे जे उदय माफक क्रिया कही तेथी उदय बलनी व्यवस्था कहेछेः—

अथ उदै व्यवस्था वर्णनंः—

दोहाः— जब जाको जैसे उदै, तब सो है तिहि थान! सकति मरोरै जीवकी, उदै महा बलवान ॥ ४५ ॥

अर्थः— जे कालनेविषे जेनो जेवो उदय थाय ते कालनेविषे ते स्थान के० ते स्वरूपमां जीव रहे छे, ते जीवनी शक्ति मरोडीने पोतानी शक्ति प्रगट करे, एथी कर्म उदय महा बलवान छे ॥ ४५ ॥

हवे उदय बल उपर दृष्टांत आपैछेः—अथ उदै बल वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः—जैसे गजराज पर्यो कर्दमके कुंमवीच उद्यम अहूटै न पै छूटै दुःख दंदसों; जैसे लोह कंटककी कोरसों उरार्यो मीन, चेतन असाता लहै साता लहै संदसों; जैसे महाताप सिरवाहिसों गरास्यो नर, तकै निजकाज उठी स कै न सुछंदसों; तैसे ज्ञानवंत सब जानै न बसाई कछु, बंध्यो फिरै पूरब करम फल फंदसों ॥ ४६ ॥

अर्थः— जेम हाथी कर्दमना कुंममां पडयो पछे तेमांथी निकलवाने उद्यम अहूटै के० करेछे, पण ते दुःखदंमथी छूटी शक्तो नथी, जेम हृदयमां लोह कटकी के० लोढाना कांटानी अणीमां नरायो एवो मछ छूटो थई शकतो नथी, तेथी मत्सनुं चेतन अशाता पामे, अने संद के० छूटे तो शाता लहे पण छूटे नही, वली कोई माणस तापज्वर अने माथाना दरदथी हेरान थतो पथारीमां पडी रह्यो होय अने ते मनुष्य पोताना कार्य करवाने वास्ते तेहांथी उठवाना अनेक उपाय करतो छतां पोताना स्वछंदथी उठी शकतो नथी, तेमज ज्ञानवंत जीवतो सर्व हेय उपादेय जाणे छे पण कोई पोतानुं बल चाले नही पूर्व संचित कर्मना फलना फंदथी एटले कर्मना उदयथी बांध्यो फिरे छे॥ ४६ ॥

हवे आलसी ने निरुद्यमीनी जेवी अवस्थाछे तेवी बतावे छेः—अथ यथावस्था वर्ननंः—

चौपाईः—जे जिय मोहनींदमें सोवै, ते आलसी निरुद्यमि होवै; दृष्टिखोलि जे जगै प्रवीना; तिन्हि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ४७ ॥

अर्थः— जे जीव मोहरूप निद्रानेविषे सुई रह्या छे, ते जीवने आलसु कहीए ने तेज निरुद्यमी केहेवाय. अने जे प्रवीण जीव ज्ञानदृष्टि खोली जागृत छे, ते आलस तजीने उद्यम करे छे ॥ ४७ ॥

हवे आलसु ने उद्यमीनी क्रियानुं वर्णन करे छेः—अथ यथावस्थातथा क्रिया कथनंः—

सवैया इकतीसा – काच बाधै सिरसों सुमनी बांधै पायनिसों, जानै न गवार कैसी मनी कैसो काच है, योंही मूढ जूठमें मगन जूठहिको दैरै, जूठ बात मानै पै न जानै कहा साच है, मनीकों परखि जानै जोहरी जगत माहि, साचकी समु की ज्ञान लोचनकी जाच है, जहाको जु वासी सो तो तहाको मरम जानै, जाको जैसो स्वाग ताको तैसेरूप नाच हैं ॥ ४८ ॥

अर्थ – काचने माथाउपर बाधे अने मणीने पगे बाधे, एवा गमार लोकने खब र नथी होती के काचशी वस्तु छे, अने मणी शी वस्तु छे, एम मूढ अज्ञानी जीव जू ठी वातमा मग्न रहे, जूठा कार्यमां दोडे, अने जूठी वात माने, पण एम न जाणे के एमां साच केटलुं छे, मणी रत्ननी तो जे जवेरी होय तेज जगतमा परिक्षा करीशके, तेमज साचानी समज पण तेनेज पडे, जेने ज्ञानरूपी लोचननी उत्पत्ति थई होय केमके, जे जिहानो वासी होय ते तिहांनो मरम जाणे, एटले मिथ्यात भूमिकानो वासी मिथ्यातनेज ग्रहे अने सम्यक्त भूमीकानो वासी ते समकितनेज साचु माने, मतलब जे जेवो वेष धरी आवे ते तेवोज नाच नाचेछे ॥ ४८ ॥

हवे जे जेवी क्रियाकरे ते तेवु फल पामे ते कहेछे --अथ यथाक्रिया तथा फलकथनं

दोहा – बंध बधावे अंध व्है, ते आलसी अजान, मुक्ति हेतु करनी करै, ते नर उद्यमवान ॥ ४९ ॥

अर्थ – जे भाव अंध थईने बंधने वधारे, ते अजाण आलशी केहेवायछे अने जे मुक्ति हेतुने अर्थे क्रिया करेछे, ते मनुष्य उद्यमवत केहेवाय छे ॥ ४९ ॥

हवे जो ज्ञानहोय तो वैराग्यपण होय अने जो वैराग्य न होयतो ज्ञान पण न होय तेथी ज्ञान वैराग्यनु सहचारपणु कहेछे –अथज्ञानवैराग्य सहचारत्ववर्णनं –

सवैया इकतीसा --जबलगु जीव शुद्ध वस्तुकों विचारे ध्यावे तबलगु भोगसो उदा सी सरवंग है; भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नाहि, भोग अभिलापकी दशा मिथ्यात अंग है, तातें विषै भोगमें मगन सो मिथ्याति जीव, भोगसों उदासि सो स मकिति अभग है, ऐसी जानि भोगसों उदासि व्है मुगति साधै, यहे मन चग तो कठोत माहि गग है ॥ ५० ॥

अर्थ – जाहासुधी जीव शुद्ध वस्तुना विचारमा दोडतो होय, ताहांसुधी सर्व अगनेविषे भोगथी उदासीनपणु जोवामां आवे, अने ज्यारे भोगमा मगन रेहेतो होय, त्यारे तो ज्ञाननी जगन के० जागृती न होय, केमके भोग अभिलापनी द शामा वर्त्तवु तेतो मिथ्यातनु अग छे, तेथी विषयभोगमा मगन रहे ते जीव मिथ्या

ती केहेवाय, अने जे विषय भोगथी उदासी रहे ते तो अभंग समकेती छे. एवुं जाणीने अहो भव्यलोको भोगथी उदास थई, ने मुक्तिने साधो ते उपर दृष्टांत कहे छे के, जेनुं मन चंगुछे तेने कथरोटमांज गंगा छे, मतलब के कथरोटमां नातां थका गंगा स्नाननुं फल पामेछे. ॥ ५० ॥

हवे मोक्षना अधिकारनेविषे चार पदार्थनुं स्वरूप कहे छेः—

अथ पदार्थ चतुष्क कथनंः—

दोहाः— धरम अरथ अरु काम सिव, पुरुषारथ चतुरंग; कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरवंग ॥ ५१ ॥

अर्थः— धर्म, अर्थ, काम, ने मोक्ष, पुरुषार्थना ए चार अंग छे, ए पुरुषार्थ विषे कुधी के० कुमतिवालो पोतानी मति कल्पनाने झालीने बेसे छे, अने सुधी के० पंडित पुरुष छे ते सर्वांगनुं ग्रहण करे छे ॥ ५१ ॥

हवे चारे पदार्थनी न्यारी न्यारी व्यवस्था सुमति अनेकुमतिना मन आश्री कहे छेः— अथ पदार्थ व्यवस्था कथन—

सवैया इकतीसाः— कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंडित धरम कहै वस्तुके सुभाउकों; खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहै, ज्ञानी कहै अरथ दरव दरसाउको; दंपतिको भोग ताहि डरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाष चित आउको, ईइलोक थानकों अजान लोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंधके अभाउकों ॥ ५२ ॥

अर्थः— जे मूर्ख जन होय ते पोताना कुलना आचारने धर्म कहे छे, अने पंडितजन तो वस्तुनां स्वभावने धर्म कहे छे, अज्ञानी जन होय ते खेहना खजाना जे सोनुं रुपुं जवाहिर वगैरे छे तेने अर्थ के० द्रव्य कहि बतावे छे, अने ज्ञानी जन होय ते द्रव्यना दरशावने अर्थ कहे छे; एटले षट्द्रव्यने अर्थ कहे छे. दुर्बुद्धि जन स्त्री भरतारना भोग संयोगने काम कहे छे, पण सुधी के० पंडित जन तो चित्तनी इछा अभिलाषने काम कहे छे, अने जे ईइनो स्थानक छे, तेने अजाण लोक मोक्ष कहे छे, अने जे मतिमान एटले पंडित लोक छे तेतोजे थकी बंधनो अभाव थाय छे, एटले बंधना नाशने मोक्ष कहे छे ॥ ५२ ॥

हवे चारे पुरुषार्थने अध्यात्मरूप कहे छेः—अथ पुरुषार्थ चतुष्क अध्यात्मरूपकथनः-

सवैया इकतीसाः— धरमको साधन जु वस्तुको सुभाउ साधै, अरथको साधन विलेछ दर्व षटमें; यहै काम साधना जु संगहै निरास पद, सहज स्वरूप मोष सु

द्धता प्रगटमे, अतर सुदृष्टिसों निरतर विलोकै बुध, धरम अरथ काम मोख निज घटमें, साधन आराधनकी सोज रहै जाके सग, नूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमें॥५३॥

अर्थ —धर्मनुं साधन तो तेने कहीये के जे वस्तुना स्वनावने साधवो एटले व स्तुना स्वनावने यथार्थ जाणवो, अर्थनुं साधन तेने कहीये के जे षट् द्रव्यने वि लक्षण के० जुदा जुदा जाणवां, काम साधन तेनुं नाम ले के, जे निरास पदनो संग्रह करवो, एटले निस्पृह दशामा रेहेवु, मोक्षनु साधन ते ले, के जेवडे पोता नी सहज स्वरूप शुद्धता प्रगट नावमा करवी, ए रीते अतरदृष्टि वडे एटले ज्ञान दृष्टि थकी बुद्धिमान पुरुष धर्म अर्थ काम ने मोक्ष ए चारपुरुषार्थने निरतर पो ताना घटमां देखे, एम चारे पुरुषार्थ साधवानी जेना सघाते सोज के० सा मग्री रहे ले, तोपण मूर्ख जे ले ते मिथ्यातनी अटलमां नूल्या फिरे ले ॥५३॥

हवे शुद्ध व्यवहार नये करी वस्तुनुं सत्य स्वरूप कहेले -

अथ शुद्ध नय वस्तु स्वरूप कथन –

सवैया इकतीसा – तिहूं लोकमाहि तिहूं काल सब जीवनिको, पूरव करम उदै आइ रस देतु है, कोउ दीरघाउ धरै कोउ अलपाउ मरै, कोउ डुखी कोउ सुखी कोउ समचेतु है, याहीमे जीवायो याही माखो याहि सुखी कखो डुखी कखो एसी मूढ आपु मानी लेतु है, याही अह बुद्धिसो न विलसै नरम मूल यहै मिथ्या धरम करम बंध हेतु है ॥ ५४ ॥

अर्थ – त्रणे लोक तथा त्रणे काल तेनेविषे जगतवासी सर्व जीवने पूर्व सं चित कर्म उदय आवेले, ने ते पोतानो कडवो तथा मीगे रस आपेले, तेणे करी ने कोई दीर्घ आयुष्य नोगवी मरेले, ने कोई अल्प आयुष्यमांज मरेले, कोई ड खी ले, अने कोई सुखी होयले, कोई समचित के० सम नावमां रहेले, एम पोत पो तानी कमाईथी सर्व जीव सुखी अथवा ड खी ले तेने मूढ प्राणी जे ले ते पोताना साधन मानेले के, जो में फलाणाने जीवाड्यो, फलाणाने मारी नाख्यो, फलाणाने ड खी कीधो, ने फलाणाने सुख आप्यु एवो मूढ अह बुधीथी नर्ममां झुल्यो फरेले, अने ए नूल एनी मटती नथी, एज मिथ्या धर्म मूढने कर्मबधनो हेतु थायले॥५४॥

हवे फरी मूढनीज व्यवस्था कहेले – अथ मूढता कथन –

सवैया इकतीसा -- जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सवै असहाय कोक काहुको न धनी है, जैसी जैसी पूरव करम सत्ता बाधि जिन, तैसी तैसी उदैमै अवस्था आइ बनी है, एते परि जो कोउ कहै कि में जीवावो मारों इत्यादि अने

क विकलप वात घनी है; सो तो अहं बुद्धिसों विकल भयो तिहूं काल, मोले नि ज आतम सकति तिन्ह हनी है. ॥ ५५ ॥

अर्थः– ज्यांहांसुधी जीव जगतमां निवास करेछे त्यांहांसुधी एक बीजाने असहाय पणे रहेछे, कोई कोईनो सहायकारी नथी, तेम कोई कोईनो धणी नथी, अने जेवी जेवी पूर्व काळनेविषे कर्मसत्ता बांधी राखीछे, तेवी तेवी उदय काळनेविषे जीवनी अवस्था बनेछे; एटला उपर जे कोई कहे के में आने जीवाड्यो ने अने मार्यो, इत्यादि अनेक मनना विकल्पनी वातो घणी छे, ते सघली अहंबुद्धि थकी थाय छे, अने ते जीव त्रणे काळने विषे अहंकार बुद्धिमां मोले छे, तेणे शुद्ध ज्ञानशक्ती ने हणी छे, अने ते जीवनी ए मूढ अवस्था केहेवाय छे ए रहस्य छे ॥ ५५ ॥

हवे चार प्रकारे करीने जीवनी व्यवस्था उपर चार दृष्टांत आपेछेः–

अथ चार प्रकार जीव व्यवस्था कथनं:--

सवैया इकतीसाः– उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस डाख, बाहिज अभिंतर विरागी मृदु अंग है; मध्यम पुरुष नारीयर केसी भांति लिये, बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है; अधम पुरुष बदरीफल समान जाके बाहिरसों दिसै नरमाइ दिल संग है; अधमसों अधम पुरुष पुंगीफल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है॥

अर्थः– उत्तम पुरुषनी दशा किसमिस द्राक्ष जेवी छे, जेम किसमिस द्राक्ष बाहिरथी ने अंदरथी कोमल छे, तेमज उत्तम पुरुष बाह्य व्यवहार अने अभ्यंतर व्यवहारमां पण मृदु अंग के० कोमल छे, मध्यम पुरुष नारीयल सरीखो छे, जेम नारीयल बाह्य व्यवहारमां कठोर अने अभ्यंतर कोमल छे, तेम मध्यम पुरुष पण बाहारथी कठण अने हृदयामां कोमल होय छे, अधम पुरुष बोर समान छे, जेम बोर बाह्य व्यवहारनेविषे नरम देखायछे, ने मांहेथी कठोर छे, तेम अधम पुरुष बाहार नरमाइ राखे पण अंतरमां संग के० पाषाण जेवो कठण होयछे, अने अधमाधम पुरुष पुंगी फल के० सोपारी जेवोछे, जेम सोपारी बाहरने अंदर सर्वांगमां कठोर छे, तेम अधमाधम पुरुष मांहे अने बाहार सघले कठोर होय छे ॥ ५६ ॥

हवे उत्तम पुरुषनी दशा कही बतावेछेः– अथ उत्तम पुरुष कथनं:--

सवैया इकतीसाः-- कीचसो कनक जाके नीचसो नरेसपद, मीचसी मित्ताई गरवाई जाके गारसी; जहरसी जोग जानि कहरसी करामाति हहरसी हौंस पुदगल छबि छारसी; जालसो जग विलास भालसो भुवन वास, कालसो कुटंब का

ज लोक लाज लारसी, सीठसो सुजस जानै वीठसो वखत मानै, ऐसी जाकी री ति ताही वदत वनारसी ॥ ५७ ॥

अर्थ – जे पोताना हैयानेविषे सुवर्णने कादव सरखुं जाणे, अने नरेश पद के० राज्य गादीने नीच सरखी जाणे, मित्राईने मीचसी के० मर्ण जेवी जाणे, ने गरवाई के० वडाई ते लीपवानी गार जेवी जाणे, रसायन प्रमुख द्रव्यजोगनी जा तीने ते जेर सरिखी जाणे, मत्र शक्तीवडे जे करामत थाय तेने कहर सरखी जाणे, देशी नापानेविषे हहर के० अनर्थ ते सरखी होस छे, अने पुदगलनी छवी ते राख समान जाणे, माया रूप जाल तथा जगतनो विलास तेने जाल जेवो जा णे, जुवनवास के० घरवास ने तीरना नाल समान जाणे, कुटुब कार्यने का ल समान करी जाणेछे, लोकलाज राखवी ते मोहडानी लाल जेवी जाणेछे, सु यशने सीठ के० नाकना मेल समान जाणे, नाग्योदयने विष्टासमान जाणे, एवी जेनी रीत होय तेने बनारसीदास वदना करेछे ॥ ५७ ॥

हवे मध्यम पुरुषनी दशा बतावे छे – अथ मध्यम पुरुष यथा –

सवैया इकतीसा – जैसे कोउ सुनट सुनाय ठग मूरखाय, चेरा नयो ठगनीके घेरामे रहतु है, ठगोरी उतरि गई तब ताहि सुधि नई, पखो परवस नाना सकट सहतु है तैसेही अनादिको मिथ्याति जीव जगतमे, मोलै आठो जाम विसराम न गहतु है, ज्ञान कला नासी नयो अतर उदासी पे तथापी उदै व्याधिसो स माधि न सहतु है ॥ ५८ ॥

अर्थ – जेम कोई स्वनावे सुनट होय ने तेने कोई ठग मले ने ते सुनटने को ई जडी मूली खवरावे, तेथी ते सुनट ठगनो चेलो थई जाय, अने ठगना घेरामा पड्यो रहे, पछी ते सुनटे जे मूली खाधेली तेनी असर नीकली जाय ने पाछो पो तानी शुद्धिमा आवे, तेवारे ते ठगने डुर्जन करी जाणे, पण पोते परवश पड्यो ते थी नाना प्रकारना सकट सहन कख्या करे छे, तेम अनादि कालनो मिथ्यात्वी जी व परवस पडेलो नाना प्रकारना सकट सहन करेछे, ने आठ प्रहर ससारमा वि कल थई ने मोले, पण विश्राम लिये नही, एटलामा ज्ञान कलानो नास थयो, तेवारें अतरमा उदासी थयो तो पण कर्मना उदयरूप व्याधी वडे समाधि लहेतो नथी, आश्रवमाज रहेछे ॥ ५८ ॥

हवे अधम पुरुषनी दशा दृष्टात दईने दृढावे छे –अथ अधम पुरुष यथा –

सवैया इकतीसा – जैसे रांक पुरुषके नाये कानी कोडी धन, उलूवाके नाय

जैसे संग्राई बिहान है; कूकरके नाये ज्यों पिंमोर जिरवानी मगा, सूकरके नाय ज्यों पुरीष पकवान है; वायसके नाये जैसे नींबकी निबोरी दाख, बालकके नाये दंत कथा ज्यों पुरान है; हिंसकके नाये जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके नाये सुन्न बंध निरवान है ॥ ५९ ॥

अर्थः– जेम रांक पुरुषने काणी कोडी छे तेहीज धन मनाय छे, अने जेम घुवडने संध्याकाल प्रनात मनाय छे, अने कुकडाने पिंमोर जीरवानी के० गाय नें सनुं पाणी ते दहीनो घडो मनाय छे, अने सूकर के० सूअरने पुरीप के० विष्टा तेज पकवान मनायछे, अने कागडाने लींबोमी तेज डाक्ष जेवी मनायछे, अने बालकने दंत कथा के० लोकनी कथा छे तेज पुराण मनाय छे, ने हिंसकने हिंसा मांज धरम मनाय छे. तेमज मूर्खने पुन्यबंध ते निरवाण के० मोक्षपद मनाय छे, ए अधम पुरुषनी दशा जाणवी ॥ ५९ ॥

हवे अधमाधम पुरुषनी दशा दृष्टांतेकरी दृढावेछेः–अथ अधमाधम पुरुष यथाः–

सवैया इकतीसाः– कुंजरकों देखि जैसे रोष करी झुंसे स्वान, रोष करै निर्धन बिलोकि धनवंतकों; रैनके जगैयाकों विलोकि चोर रोष करे मिथ्यमति रोस करै सुनत सिद्धंतको; हंसकों विलोकी जैसे काग मनि रोष करे, अभिमानी रोष करै देखत महंतकों; सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करै त्योंही डुरजन रोष करै देखि संतकों ॥ ६० ॥

अर्थः– जेम हाथी जोईने कुतरा रीशे नराईने ज्ञुंकेछे, जेम निर्धन पुरुष धनवानने जोईने रीशे नराय छे, जेम राते जागनार पुरुषने जोईने चोर रीशे नराय छे, जेम मिथ्याती सिद्धांतने शांनली रीशे नराय छे, जेम हंसने जोईने कागडो रीशे नराय छे, जेम महंतने जोईने अनिमानी रीश करे छे, जेम सुकवि के० सारा कविने जोईने कुकवि के० नगारो कवि रीशे बले छे. तेम अधमाधम पुरुष साधुने जोईने डुष्ट मन वडे रीशे नराय छे ॥ ६० ॥

हवे वली अधमाधम पुरुषनी चाल कहेछेः–अथ पुनः अधमाधम पुरुष वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः–सरलकों सठ कहै वकताकों धीठ कहै, बिनो करे तासों कहै धनको अधीन है; छमीको निबल कहै दमीकों अदत्ती कहै, मधुर वचन बोलै तासों कहै दीन है; धरमीकों दंनी निसप्रहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै नागहीन है; जहां साधु गुण देखै तिन्हकों लगावै दोष, ऐसो कछु डुर्जनको हिरदो मलीन है. ॥ ६१ ॥

अर्थ – सरल चित्तवालाने शठ के० मूर्ख कहे, वक्ता के० कथा कीर्तन वाचनारने धीठ कहे, विनय करनारने कहेके एतो धननी आधीनतायी करेछे, क्षमावतने निरबल कहे, इंद्रिय दमन करनारने अदाता कहे, अने मधुर नाषण करनारने कहे एतो गरीब बीहामणो छे, धरमीने दंनी कहे, अने निस्प्रहीने अहकारी कहे छे, तृष्ना छोडनारने नाग्यहीन कहे, ज्यां एवा सरलतादिक गुण देखे त्या दूषण लगाडे, एवु डुर्जननु हृदयु मलीन के०मेलु होय छे अने एवा डुर्जननेज अधमाधम पुरुषनी प्रकृति जाणवी ॥ ६१ ॥

हवे मिथ्यादृष्टीनी अहबुद्धिनुं वर्णन करे छे – अथ मिथ्यादृष्टी वर्णन –

चोपाई – मे करता मे कीन्ही कैसी, अब यो करो कहौ जो ऐसी, ए विपरीत नाव है जामे, सो वरते मिथ्यात दसामे ॥ ६२ ॥ दोहरा – अह बुद्धि मिथ्या दसा, धरै सु मिथ्यावत, विकल नयो ससारमे, करै विलाप अनत ॥ ६३ ॥

अर्थ – हु कर्त्ता बु, आ वर्त्तमान कालमा केवी वात करुबुं, नविष्य कालमा जेवी कहीस तेवी करीश, एवी अह बुद्धी ए विपरीत नाव छे, अने ए नाव मिथ्यात दशाना छे ॥६२॥ जे एवी अहबुद्धि छे तेज मिथ्यात दशा छे, अने ए मिथ्यातदशाने धारण करे, तेज मिथ्यावत केहेवाय छे, अने एवा पुरुषोज ससारनेविषे विकल थका ससारमा नटकता डुःख सहता अनत विलाप करेछे ॥ ६३ ॥

हवे मूढ प्राणीनी व्यवस्था कही देखाडे छे – अथ मूढ व्यवस्था कथन –

सवैया इकतीसा –रविके उदोत अस्तहोत दिनदिन प्रति, अजुलीके जीवन ज्यो जीवन घटतु है, कालके ग्रसत छिनछिन होत छीन तन, आरके चलत मानो काठसो कटतु है, एते परि मूरख न खोजै परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम नारथ ठटतु है, लग्यो फिरै लोगनिसो पग्यो परजोगनिसो, विषै रस नोगनिसो नेकु न हटतु है ६४

जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपतिमाहि तृषावत मृषा जल कारण अटतु है, तैसे नववासी मायाहीसो हित मानिमानि ठानिठानि भ्रमनूमि नाटक नटतु है, आगेको ढुकत धाय पाछे वछरा चराय, जैसे दृग हीन नर जेवरी वटतु है, तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हसत फल खोवत खटतु है ॥ ६५ ॥

अर्थ – सूर्यना उदयथी ते अस्तसुधीमा अजुलीना पाणीनी परे आयुष्य घटतु जायछे, अने क्षण क्षणविषे काल जे छे ते शरीरने ग्रासेछे, तेथी शरीर क्षीण थायछे, ए रीते तन आर के०शरीर तरफ काल ग्रसी रह्योछे, एटले जेम शस्त्र कोई वस्तुने कापे छे तेम कालरूपी शस्त्र शरीरने कापेछे एवु कार्य थई रह्युछे तोपण मूर्खजन जे छे

ते परमार्थने खोजतो नथी, पण पोताना स्वार्थने माटेज भ्रमना भारथने खेंची रहे छे; लोग के० परवस्तु जे काम क्रोधादिक ते साथे लागो फिरेछे, अने परपुद्गलजोग तेथी पग्यो के० हलि मली रहेछे, तेथी विषयरसने भोगवतां जरा पण हटतो नथी.

अर्थः—वली जेम कोई जबरो मृग होयछे ते वृषादित्य के० वृषसंक्रांतनो सूर्य एटलेजे ग्रीष्ममास तेना तापनेविषे अती तृषावंत थयो थको मृषा के० जूठी इछा थकी पाणीने माटे अटतु हे के० भटकेछे, तेवी रीते संसारी जीव परस्वरूप मायाजालनेविषे हेत राखीने एटले तेने हितकारी मानीने भ्रमरूपी भूमीनेविषे ठराव करी नटनी पेठे नाची रह्यो छे. ते केहेवो छे तो जेवो कोई दृगहीन के० आंखविनानो पुरुष होय ने ते दोरी वाटतो होय त्यां पासे वाछडुं होय ते दोरीने चावी नाखतो होय तेने ते जाणी शकतो नथी तेथी तेनी मेहनत व्यर्थ जायछे. तेम मूढ प्राणी जे छे ते सुकृतनी क्रिया करेछे त्यारे रोवत हसत के० अरति अने रतियें करी क्रियाकरेछे तेथी ते करेली क्रियाना परम फलने खोई देयछे. ॥ ६५ ॥

हवे फरी बंधना करनार मूढ विषयिनी अवस्था कहेछेः—अथ मूढ विषयी वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः-- लिये द्रिढ पेच फिरे लोटन कबूतरसो, उलटो अनादिको न कहो सुलटतु है, जाको फल दुःख ताही सातासो कहत सुख, सहित लपेटी असी धारासी चटतु है; ऐसे मूढ जन निज संपती न लखे क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशिवासर रटतु है; याही ममतासों परमारथ विनसी जाइ, कांजीको फर स पाई दूध ज्यों फटतु है. ॥ ६६ ॥

अर्थः— जेम लोटण खबुतर होय ते जो पांख बंध करीने पेच लाग्यो तेथी उलट पालट फरेछे, तेम मूढ प्राणी अनादि कालना कर्मबंध पेचमां पडेलोछे माटे अवलो मार्ग धरेछे, पण कोई रीते सवलो मार्ग धरतो नथी. अने जेनुं फल दुःख छे एवा विषय भोगवडे जे कंईक साता उपजे, तेने सुख मानेछे, जेम कोई मधे ल पेटी तरवारनी धारने चाटे, जेमां मधनी मीठास थोडी होय ने तरवारनी धार ते मीठास चाखवा जतां जीभने छेदी नाखे तेनुं दुःख बहु थाय, तेम मूर्ख प्राणी पोतानी ज्ञानादिक संपतीने कदी ओलखतो नथी, पण परवस्तुने रात दिवस मारी मारी मानी रह्योछे, एज जूठी ममतावडे परमार्थ जाणवानुं विनास थई जायछे; जेम कांजीना पाणीना स्पर्शथी दूध फाटी जायछे, तेम ममताथी परमारथ बगडी जायछे. ॥ ६६ ॥

हवे मूढनी अहंबुद्धिनी व्यवस्था कही बतावेछेः—अथ पुनः मूढ व्यवस्थाः—

सवैया इकतीसा —रूपकी न झांक हिये करमको झाक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिर गाक जैसे घनमे, लोचनकी ढांकसों न मानै सदगुरु हांक, मोलै पराधीन मूढ राक तिहू पनमे, टांक इक मांसकी मलीसी तामे तीन फाक, तीनि कोसो अक लिखि राख्यो काहु तनमे, तासों कहै नाक ताके राखिवेको करे काक, लाकसो खरग बांधि वाक धरै मनमे ॥ ६७ ॥

अर्थ —आत्मानुं रूप हृदयामा नथी दीठुं, तेथी कर्मनो झाक पीधो, एटले कर्मनो रस व्यापी गयो, तेणे करी आत्मानुं स्वरूप जे शुद्ध ज्ञान ते दबाई रह्यु, कोनी पेठे जेम घन के० मेघरूप वादलानेविषे चड़ ढंकाई रेहेछे तेम तथा ज्ञानरूप लोचम उपर मिथ्यातनी ढाक पडी तेथी सदगुरुनी हांक के० आज्ञा तेने मानतो नथी, अने मूर्ख पराधिन थको राक वचन बोलेछे, अने त्रणे कालनेविषे निशक रहेछे हवे मूढता प्रगट करी बतावेछे जे नाकछे ते टांक के० एक मासनी लीमरी छे ते नेविषे त्रण फाक छे ते प्रत्यक्ष प्रमाणे देखिये छैये, ते त्रण फाक केवा देखायछे ते कहेछे, ते जाणे त्रणनो आंक त्रण फाकवालो कोइए शरीरमाज लखी राख्योछे, ते औदारिक अवयवने नाक कहेछे, अने ते नाकने राखवाने काक के० लडाई करे ने विचारे जे मरीजईश तो पण नाक तो रहेसे एवा विचारथी लडाई करेछे खड्ग धरेछे अने मनमा वाक धरीज राखेछे ॥ ६७ ॥

हवे मूढना विषय रागीपणानी दशा कहे छे·— अथ मूढ विषय वरनन —

सवैया इकतीसा —जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनिकी कोर चिहू उर चुभे मुखमे, गाल तालू रस मास मूढनिको मास फाटे चाटै निज रुधिर मगन स्वादसुखमे, तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाने, तामे चित साने हित माने खेद दु खमे, देखै परतछ बल हानी मल मूत खानी गहे न गिलानि पगी रहे रागरु खमे॥ ६८

अर्थ — जेम कोई कुतरो भुख्यो थको हाडकाने चावे छे, ते हाडकु सूकु होय छे, तो पण तेने चारे तरफ फेरवीने ते चाटे छे, ने तेम चाटता तेना गाल जीनने तालवानी चामडी फाटे छे, अने तेथी लोही नीकले छे ने तेज पोताना लोही ना स्वादथी मगन थई जाय छे, तेमज जे मूढ विषयी पुरुष छे, ते रती के० स्त्री पुरुष सयोगनी रीति जे शृंगार रस तेनेविषे मगन रहे छे, अने तेथी खेद दु ख उपजे छे, तो पण तेमां सुख माने छे, अने ते कार्यथी प्रत्यक्ष पणे बलनी हाणी थती जाणे छे, तथा तेने मल मूत्रनी खाण जुए छे तेम छतां तेमां गि

लानपणुं ग्रहण करतो नथी, डुगंछा पामतो नथी, अने रागरूप रुख के० वृक्षमां मली रहेछे, तेनो शोक आणतो नथी, उलटो तेमां चित लगावी आनंद मानेछे॥६७॥

हवे संसारीनी विकलता कहीने साधु जननी व्यवस्था कहे छेः

अथ संसारी तथा मुनी व्यवस्था कथनः—

अडिल्ल छंदः— सदा करमसों भिन्न सहज चेतन कह्यो; मोह विकलता मानि मिथ्याती व्है रह्यो; करै विकल्प अनंत, अहंमति धारिके; सो मुनि जो थिर होइ ममत्त निवारि के ॥ ६९ ॥

अर्थः— निश्चयनय वडे सहजरूपे चेतन छे, ते सदा कर्मथी भिन्न कह्युं छे, पण व्यवहारमां पडीने मोहनुं विकलपणुं मानीने मिथ्यामती थई रह्यो छे, तेथी मन मां अनंत विकल्प धरीने अहंबुद्धि धारी रह्यो छे, अने जेणे ममत्व निवारण कीधुं ने स्थिरता पाम्यो तेज साधु थयो ॥ ६९ ॥

हवे मिथ्यात भावथकी व्यवहारनुं असंख्यातपणुं कहे छेः—

अथ मिथ्यात्वभाव व्यवहार एकत्व कथनः—

सवैया इकतीसाः—असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव तेई, व्यवहार भाव केवली उकत है; जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन विवहारसों मुकत है; निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सगुन मो छ पंथकों ढुकत है, तेई जीव परम दशामें थिररूप व्है के, धरममें ढुके न करम सों रुकत है ॥ ७० ॥

अर्थः— एक लोकाकाश छे, तेनी असंख्यातपणे कल्पना करीयें, तेना प्रदेश असंख्यात छे, तेप्रमाणेज मिथ्यात भाव छे. जीवना अध्यवसाय स्थान छे, ए व्य वहारभावें केवलीनुं केहवुं छे, अने जेनुं मिथ्यात गयुं सम्यक् दर्शन थयुं निश्चय लीन थयो, अने व्यवहारथी मुक्त थाय. जेमां विकल्प नथी ते निरविकल्प, अने जेमां उपाधि नही ते निरुपाधि, एवी समाधिथी जे सगुण थईने एटले ज्ञानादिक गुणमय थईने मोक्ष मार्गने लुए छे. ते जीव परम दशामां स्थिर रूप थईने आ त्मिक धर्ममां ढुके पण कर्मथी रोकाय नही ॥ ७० ॥

हवे गुरुने शिष्य प्रश्न पूछे छेः— अथ शिष्य प्रश्न कथनः—

कवित्तछंदः—जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सब; संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हिको मूल हेतु कहु अब; कै यह सहज जीवको कौतुक, कै नि मित्त है पुग्गल दव; सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव॥७१॥

अर्थ – मोह कर्मनी जे जे परिनति छे, एटले राग द्वेषादिक छे, ते तो तमे स वे बंधनुं निदान कह्यु, अने एतो निरतर शुद्ध चेतन थकी भिन्न छे, ते माटे ए बं धनो हवे मूल हेतु कहो, ए बंध थाय छे ते शु जीवने सहज कौतुक छे, के ए ने पुद्गल द्रव्य निमित्त छे ते कहो एम शिष्य माथुं नमावीने गुरुने पूछे छे हवे गुरु उत्तर आपे छे के हे भव्य प्राणी एनु उत्तर सांभळजो ॥ ७१ ॥

अथ गुरु वचन –

सवैया इकतीसा – जैसे नाना वरन पुरी बनाइ दीजे हेठि उज्जल विमल म नु सूरज कराति है, उज्जलता भासे जब वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसो वरन भाति भाति है, तैसे जीव दरबको पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममता सो मोह मदिराकी माति है, भेद ज्ञान दृष्टिसो सुभाव साधि लीजे तहा, साचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शाति है ॥ ७२ ॥

अर्थ – जेम सूर्यकाति मणी छे तेम बीजो काश्मिरी पाषाण तेवोज छे, ने ते महा उज्वल छे, ने तेनी नीचे तरेतरेना रगनी पुरी बनावी आपिये त्यारे तेमां भात भातनो रग देखाय, पण ज्यारे ते सूर्यकाति मणीना स्वभावनो विचार करि ये, तारे तो तेनी काति जे उज्वल छे, तेज मनमा आवे, अने दीठामा तो नीचेनी बनावेली रगनी पुरणीनी झलक पडेछे तेथीज तरेवार रग वरण देखायछे, तेरीते जीव द्रव्यनी अशुद्ध दशानु निमित्त कारण पुद्गल द्रव्य छे, तेनी ममताथी मोह रूप मदिरानुं उन्मत्तपणुं छे, अने ज्यारे जड चेतननी भेद ज्ञान दृष्टीवडे चेतन नो स्वभाव साधीये, त्यारे साची शुद्ध चेतनाज भासे अने अवाच के० वचन गोचर नही, एवी रीतनी सुख शाति छे तेज भासे ॥ ७२ ॥

हवे वस्तुना सयोगथी स्वभावमा भेद पडेछे, ते उपर दृष्टात आपेछे –

अथ संयोगिका स्वभाव वर्णन –

सवैया इकतीसा – जैसे महिमडलमे नदीको प्रवाह एक ताहीमें अनेक भाति नीरकी ढरनि है, पाथरको जोर तहा धारकी मरोरि होति काकरिकी खानि तहा झागकी झरनि है, पौनकी झकोर तहा चचल तरग उठे, भूमिकी निचानि तहा भौरकी परनि है, तैसे एक आतमा अनत रस पुदगल दुहूकी सयोगमे विभाव की भरनि है. ॥ ७३ ॥

अर्थ – जेम पृथ्वी मंडल उपर नदीनो प्रवाह एकरूप छे, अने तेज नदीना प्रवाहमां पाणीनु व्हेवु अनेक तरेनु छे, जे ठेकाणे नदीना प्रवाहमां मोटा मोटा

पथरा आवी अडेला होय त्यां धार मरडाईने पडे छे, अने जांहां कांकरी घणी हो य तां झागनी झरनी के० झाग एटले पाणीना जरा जनकी उठेछे. अने जांहां पव ननी झकोर चालती होय तांहां चंचल तरंग उठेछे, अने जे ठेकाणे जमीन नीची होयछे तांहां जोर पडेछे वमल थायछे, तेम आत्मद्रव्य छे, तेने पुद्गल द्रव्यनो सं योग छे अने रस जे छे ते षट गुणी हानी वृद्धीथी अनंत छे, तेनो संयोग थये आ त्मानेविषे विभावनी भरणी थायछे. ॥ ७३ ॥

हवे आत्मा अने शरीर एक मेक बंधाई रह्या छे पण लक्षण भेद जुदा जुदाछे ते बतावे छेः-- अथ आत्मशरीर लछन भिन्न कथनः-

दोहराः- चेतन लछन आतमा, जड लछन तन जाल; तनकी ममता त्या गि के, लीजें चेतन चाल ॥ ७४ ॥

अर्थः- आत्मानुं चेतन लक्षण छे. शरीरनुं जड लक्षण छे, तेथी शरीरनी म मता छोडीने चेतननुं शुद्ध ज्ञानपणुं तेनुं ग्रहण करी लेवुं. ॥ ७४ ॥

हवे निःकेवल आत्मानी शुद्ध चाल कहेछेः-- अथ आत्मा यथाः-

सवैया तेईसाः-- जो जगकी करनी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई; देह प्रमान पै देहसुँ दूसरो देह अचेतन चेतन सोई; देह धरे प्रभु देहसुँ भिन्न रहे पर छन्न लखै नहि कोई; लछन वेदि विचछन बूझत अछनिसों परतछ न होई.॥७५॥

अर्थः- जे पदार्थ सर्व जगतनी करणी करेछे, एटले चतुर्गति गमन करेछे, अ ने जे जगतने जाणेछे, अने जोवत के० देखेछे, पोतानी देहने प्रमाणे छे, पण देहथी ते जुदो छे. देह अचेतन पिंड छे, अने आत्मा चेतनपिंड छे. देहधारी छे, प्रभु छे पण देहथी भिन्न छे. देहनेविषे प्रछन्न के० ढंकाई रह्यो छे, एने कोई ल खतो नथी, पण एना जे लक्षण छे तेने वेदी के० जाणीने विचक्षण पुरुष एने उ लखेछे. एवो ए आत्मा अक्ष के० इंद्रियथी प्रत्यक्ष नथी. ॥ ७५ ॥

हवे देहनी चाली कहेछेः- अथ देह यथाः-

सवैया तेईसाः- देह अचेतन प्रेत दरी रज रेत भरी मल खेतकी क्यारी; व्याधिकी पोट अराधिकी उंट उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी; रे जिय देह करे सुख हानि इते परि तोहि तु लागत प्यारी; देह तु तोहि तजेगि निदान पि तूंहि त जे क्युँ न देहकि यारी. ॥ ७६ ॥

अर्थः- देह अचेतन छे, प्रेत दरी के० जडतारूप प्रेतनी गुंफा छे. रज के० लोही, रेत के० वीर्य ते थकी भरेली छे, अने मलरूप खेतरनी क्यारी छे. व्याधी

रोगनी पोट छे, आराध के० आत्माने ढुपावाने ठंट छे अने उपाधिनी जोट के० मेलारूप छे, एने विषे असमाधिज रहेछे, समाधि रेतो नथी माटे अरे जीव ए देह ते सुखनो नाश करे छे एवी छे, तोपण तने ए देह प्यारी लागेछे अरे जीव तूं समज के ए देह निदान तनेज तजशे पण तु ए देहनी यारीनो त्याग करतो नथी

दोहरा – सुनु प्रानी सदगुरु कहै, देह खेदकी खानि, धरै सहज दुख दोष को, करै मोछकी हानि ॥ ७७ ॥

अर्थ -- सदगुरु कहेछे के अरे प्राणी साजनो देह छे ते खेद के० धुलनी खाण छे. एनो सहज स्वजाव वात पित्त कफ रूप दु ख दोषने धरनारो छे अने मोक्ष नी हाणी करे छे ॥ ७७ ॥

हवे देहनुं वर्णन करेछे -- अथ देह वर्णनं --

सवैया इकतीसा – रेतकीसी गढी किधो मढी है मसान केसी अंदर अधेरी जैसी कदरा है सैलकी, ऊपरकी चमक दमक पट भूखनकी, धोखे लागे भली जैसी कली है कनैलकी, औगुनकी ओंडी महा भोंडी मोहकी कनोडी, मायाकी मसूर ति है मूरति है मैलकी, ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसो व्है रही हमा री मति कोलू केसे बैलकी ॥७८॥ ठौर ठौर रकतके कुंड केसनिके झूंड, हाड नि सों भरी जैसे थरी है चुरेलकी, थोरेसे धकाके लगे ऐसे फट जाइ मानो, कागदकी पुरी किधो चादर है चैलकी, सूचै भ्रम वानि ठानि मूढनिसो पहिचानि करै सुखहा नि अरुखानि बदफैलकी, ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसो व्है रही ह मारी मति कोलू केसे बैलकी ॥ ७९ ॥

अर्थ – जाणे रेतीनी गढी बाधी होय के मसाणनी मढी एटले अपवित्र ठेका णे हाड मासनुं एक थवु कशु होय, वली जेनी अदर सैल के० पहाडनी कदर के० गुफा जेवु अधारूं छे, एवा अपवित्र देहरूप स्थानछे तेउपर भूषणना चमक दमकथी शो भे छे, धोखे के० फूग भनकाथी देह भली लागे छे ते उपर दृष्टात छे के, जेम कनेरनी कली उपरथी सुदर देखाय छे, पण तेमा अंदर बिलकुल सुवास होती नथी, तेथी उचाटकारी लागे छे, अवगुणनी ठरमी छे महालुमी छे, अने मो हनी कनोडी के० मोहनी काणी आव छे, तेथी सूजतु नथी, अने मायानी मसू रति के० मायानो समुदाय छे , एवी मेलनी मूरती ए देह छे, एना स्नेहथी अने संग तथी अमारी मति ठोलडी पीलवानु कोल्हु तेना बलद सरखी बनी गई छे॥७८॥

वली ए देहनेविषे ठेकाणे ठेकाणे लोहीना कुमला छे, ने अपवित्र केशनी फुंद

छे, तेमां हाडकां भरेलां छे. जेम चुडेल व्यंतरीनुं स्थानक होय तेवी ए देह छे. थोडो धको लागवाथी ए देह एवी फुटी जाय छे के, जेम कागलनी पुडी अने जुंनी मेली चादर छे, ते जेम जरा टकोराथी फाटी जाय, तेम देह फाटी जाय छे, एवी ए देहनी ममताथी भ्रम वाणी के० मिथ्यावाणी सुचे के० कहे, अने मूढ लोक एनी पिछान राखे छे, अने ए देह सुखनी हानी करता छे, अने बदफेलीनी खाण छे. एवी ए देहना स्नेह तथा एनी सोबत थकी अमारी बुद्धि शेलडी पीलवाना कोल्हाना बलदनी गति जेवी थई गई छे. ॥ ७९ ॥

हवे कोल्हुना बलदनी अवस्था अने तेनी बराबर संसारी जीवनी गती छे, एवुं स्पष्ट करी बतावे छे, अथ कोल्हुका बैलकी अरु संसारी जीव समानरूप कथनः—

सवैया इकतीसाः—पाटी बंधे लोचनसों संकुचे दबोचनिसों कोचनिकोसोचसोनि वेदे खेद तनको; धाइवोही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, वार वार आरस है कायर है मनको; भूखसहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहे छिनको; पराधीन घूमै जैसो कोल्हुको कमेरो बेल तेसोइ स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥ ८० ॥

अर्थः— जेनी आंख उपर पाटी बांधी छे. दबोच के० पगथी ठेलवुं, तेथी संकोचाय छे, अने परोणानी आरना धोंच वागे छे, तेनी सोचनांथी शरीरने खंचवा देन ही, ने दोडतो फिरे पोताना धंधामा धावतोज रहे, ने खांधे जोतर लागो रहे छे, वार वार आरनो मार पडे छे, ते सहन कर्यां करे, अने मननो कायर छे, भूखने पण वेठे छे, अने दुर्जननो त्रासपण खमे छे, अने स्थिरता पकडतो नथी, क्षण वार पण सुखे मोडेथी स्वास लई शकतो नथी, एरीतें पराधीन थको जेम कोल्हुनो कमेरो, के० काम करनारो बलद घूमेछे, तेम जगत वासी लोक घूमे छे, अर्थात हे भाई कोल्हुना बलद सरखो तेमनो पण स्वभाव छे ॥ ८० ॥

हवे जगतवासी जीवनी व्यवस्था कहे छेः— अथ जगतवासी यथाः—

सवैया इकतीसाः— जगतमें डोले जगतवासी नर रूप धरी, प्रेतकैसे दीप किधों रेत केसे धुहे है, दीसे पटभूखन आडंबरसों निके फिरे फीके छिनमांझि सांझी अंबर ज्यों सुहे है; मोह के अनल दगे मायाकी मनीसों पगे दाभकी अनीसों लगे ऊसकेसे फुहे है, धरमकी बुझि नाही उरझे भरम माहि नाचि नाचि मर जाहि मरीकेसे चुहे है ॥ ८१ ॥

अर्थः— जगतवासी जीव मनुष्यरूप धरीने डोली रह्या छे; ए केवा छे जाणियें

प्रेतना दीप छे, ते जेम जलदी मटी जाय छे, तेम ए पण समजवा वली रेतिना घुमाडा जेवा छे, तथा वस्त्र नूपणना आडंबरथी शोनायमान देखाय छे, अने क्षणेकमा फीका थई जाय छे, जेम साफ सम आकाशमा वादल रग बदले छे, तेम जाणवा वली मोहनी अगनीथी दाझे छे, ने मायानी मनी के० पोतापणु तेथी पगे के० व्यापी रह्या छे, जाणिये डाननी अणीउपर लागेला पाणीना बिंदु सरखा छे, गारना बिंदु जेवा छे धरमनी ओलखाण जेने नथी अने भ्रमनेविषे अरुझी रह्या छे, जेम मरी उतपादना उदरडां नाची नाची ने मरी जाय छे तेम ए संसारी जीव नाची नाचीने मरण पामेछे ॥ ७१ ॥

हवे जगतवासीनी मोह व्यवस्था कहेछे – अथ जगत व्यवस्था कथन –

सवैया इकतीसा – जासो तू कहत यह संपदा हमारी सोतो, साधनि अमारी ऐसे जैसे नाक सिनकी, जासों तू कहत हम पुन्य जोग पाई सोतो, नरककी साई है वमाई देढ दिनकी, घेरा माहि पर्यो तू विचारे सुख आखिन्हिको, माखिनके चूंटत मिगाई जैसे जिनकी, एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव, जगमे असाता है न साता एक छिनकी ॥ ७२ ॥

अर्थ – अरे प्राणी जेने तूं कहेछे के आ मारी सपत्ति छे, तेने तो साधु लोके एवी रीते नाखी दीधीछे, के जेम नाकना मेलने नाखी देयछे अने जे बडाईने तु कहेछे के पुन्यना जोगथी हुं पाम्यो छु ते तो नरकनी सहायी छे, जे राजादिकनी साहेबीछे ते दोड दिवसनी छे ए परीवारना घेरामां तु पड्यो थको आखनु सुख समजे छे, पण ते मिगाईनी उपर माखीनी पेठे टोलानो नणनणाट थई रहे तेम परीवारनो घेरोछे एवु छता जगवासी जीव उदास थतो नथी साचु जो जोइये तो जगतनेविषे असाताज छे, एक क्षणमात्र पण शाता नथी ॥ ७२ ॥

दोहरा.– यह जगवासी यह जगत, इनसो तोहि न काज, तेरे घटमे जग वसै, तामे तेरो राज ॥ ७३ ॥

अर्थ – ए जे पुर्वे वखाण्या एवा जगतवासी लोक छे, अने ए लोकोनो ज्या वास छे, तेने जगत जाणवु, ए साथे सबध राखवानुं तारुं काम नथी, पण तारा घटनेविषेज जगतनो वास छे, अने ते जगतमा तारु राज्य छे ॥ ७३ ॥

हवे जे पिंडे ते ब्रह्मांडे ए वात साची छे, एवु सिद्ध करी आपेछे –

अथ पिंड ब्रह्मांड वर्नन –

सवैया इकतीसा – याही नर पिंडमे विराजे त्रिभुवन थिति, याहिमे त्रिविध प

रिणाम रूप सृष्टि है; याहिमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख बारिदकी वृष्टि है; यामें करतार करतूति याहिमें विभूति, यामें भोग याहीमें वियोग यामें घृष्टि है, याहिमें विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहिकों प्रगट जाके अंतर सु दृष्टि है ॥ ७४ ॥

अर्थः—मनुष्य पिंमनेविषे कटीनी नीचे पाताल लोकछे, नाभि ते तिर्यक लोकछे, ते उपर उर्ध्व लोकछे, एवी त्रिभुवननी स्थिति जाणवी, अने एनेविषेज कईक परिणाम उपजे छे, ने कईक नाश पामे छे, ने कई स्थिर छे, एवी त्रिविध सृष्टि बनी रही छे; अने एज पिंममां आत्माने कर्मनी उपाधि वलगी छे, तेज दुखकारी दावानल के० अग्निनो समुद्र लाग्यो छे; अने एज पिंममां कोईवारें समाधि सुख आवेछे तेज वादलनी वृष्टी जाणवी, ते दावानल उपर मेघनी वृष्टी छे, एज पिंममां कर्मनो कर्त्ता पुरुष छे, एज पिंममां कर्त्तानी क्रिया छे; ए पिंममांज विभूति के० ज्ञानादिक संपत्ति छे, एज पिंममां कर्मनो [illegible] ने कर्मनो वियोग छे, अने एज पिंममां आत्मानुं घृष्ट के० दलन जे [illegible] गुणोमां घसडाई रहेवुं ते छे; ए रीते ए पिंममां गर्भित के० मध्यभाग [illegible] वे विलास छे. पण जेना अंतरमां सुदृष्टीनो प्रकाश छे, तेने सर्व [illegible] पणे जणाय छे ॥ ७४ ॥

हवे ए वातनो उपदे[illegible] वागे छेः— अथ गुरूपदेश कथनः—

सवैया तेईसाः— रे रुचि[illegible] पचारि कहै गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही; खोज हिये निज चेतन लछन है निजमें निज गूझत नांही; सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, मायके फंद [illegible]त नांही; तोर सरूप न दुंदकि दोहिमें तोहिमें है तुहि सूझत नांही ॥ ७५ ॥

अर्थः— पचारी के० बोला[illegible] गुरु कहे छे, के रे रुचिवंत भव्य, तूं पोतानुं पद के० स्थान तेने जाण[illegible]तो नथी. पोतानुं चेतन लक्षण हृदयामां खोज, ए पोतानुं लक्षण पोताने विषे [illegible] गूझत के० गुप्त नथी; तारूं स्वरूप सिद्ध समान छे स्वछंद के० निज आधीन छे, [illegible] अति निर्मल छे, पण मायानी जालना फंदमां पड्युं छे, तेमांथी छूटी शकतो नथी; तारूं स्वरूप द्वंद्वनेविषे नथी एटले भ्रमजालनी द्विविध दशामां नथी, तारामांज छे, पण तने सूजतूं नथी ॥ ७५ ॥

हवे ज्ञानना प्रकाश वडे ईश्वरताने पमाय ते समजावे छेः—

अथ ज्ञान माहात्म्य कथनः—

सवैया तेईसाः— केइ उदास रहै प्रभु कारन, केइ कहीं उठि जाहि कहींके; के

इ प्रनाम करे गढि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके, केइ कहे असमान कें ऊपरि, केउ कहे प्रभु हेठि जमीके, मेरो धनी नहि दूरदिशातर मोमहि है मुहि सूजतनीके

अर्थ – कोई पोताना परमेश्वरने उलखवाने उदासी थई वेसी रहे छे, कोई कई क्षेत्रनेविषे जतो रहे छे, कोई परमेश्वरनी घडेली मूरतिने प्रणाम करे छे, कोई परमेश्वरने पामवाने छीकामा वेसी पर्वतने उपर चढे छे, कोई परमेश्वरने आस्मान उपर छे एवु कहे छे, कोई कहे छे के, परमेश्वर जमीननी नीचे छे, ए कुरानवालानी श्रद्धा छे, पण एविषे मारो निश्चय तो ए छे के मारो धणी तो कांई दूर देश नथी, पण माराविषेज छे एम अनुभवथी मने सारुं मालम पडे छे ॥ ७६॥

दोहरा – कहे सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ, सुथिर चित्त अनुभौ करे, यह पद परसै सोइ ॥ ७७ ॥

अर्थ – सद्गुरु कहे छे के जे समकिती होय ते परम उदासी रूप थई चित्तने स्थिर राखीने निज अनुभव अभ्यासथी पोताना पदने पामे ॥ ७७ ॥

हवे मननी चचलता दर्शावी तेने स्थिर केम राखवु ते उपदेशे छे –

अथ मन स्वरूप कथन –

सवैया एकतीसा – छिनमें प्रवीन छिनहीमे मायासों मलीन, छिनकमे दीन छिन माहि जेसो शक्र है, लिये दोर धूप छिन छिनमे अनतरूप कोलाहल ठानत मथान कोसो तक्र है, नट कोसो थार किधों हार है रहट कोसो नदी कोसो भौर कि कुभार कोसो चक्र है, ऐसो मन भ्रामक सुथिर आजु केसो होइ ओरहिको चचल अनादिहीको वक्र है. ॥ ७८ ॥ धायो सदा काल पै न पायो कहू साचो सुख रूपसो विमुख दुख कूपवास वसा है, धरमको घाती अधरमको सघाती महा, कुराफाती जाकी सनिपातीकीसी दसा है, मायाकों झपटि गहै कायासो लपटि रहै, भूल्यो भ्रम भीरमें वहीरकोसो ससा है, ऐसो मन चचल पताका कोसो अचल सु ज्ञानके जगेसे निरवान पथ धसा है ॥ ७९ ॥

अर्थ – आ मन क्षणमा प्रवीण थायछे, क्षणमा मायानेविषे मलीन थायछे, क्षणमा दीन दशा धरेछे, क्षणमा शक्र के० इद्र जेवु वनेछे, क्षणमा दोड धाम करेछे, क्षणमा अनतरूप धरे छे, जेम दहीने वलोवता कुलाहल थायछे, तेवु कुलाहल ए मन करेछे, वली नट जे नाचनार घुमे तेवु, के अरहटनी माला घुमे तेवु, के नदीनो वमल घुमेछे तेवु, अथवा कुभारनु चक्र फरेछे तेवु कहुं, एवो सदा काल मननो भ्रामक स्वभाव छे, एवु ए मन आज केम स्थिर थाय? जाते चच

ल अने अनादि कालथी वाकुं चालनारुं मन छे. वली केवुं छे ? ॥ ८८॥ हमेशा दोडतुं फरेछे, पण एने किहांय साचुं सुख प्राप्त थतुं नथी, पोताना समाधिसुखथी विमुख थयुंछे, अने दुःखरूप कूप वासमां वस्युं छे, वली ए मन धर्मनुं घाती छे, अने अधर्मनुं संघाती छे, एवुं महा कुराफाती छे, ए मननी दशा तो जेम कोई पुरुषने सनेपात थयो होय तेना सरखी छे. द्रोह तथा वंचनाने जट ग्रही लिये ने कायाना मोहथी मगन रहे, ने भ्रम जालमां पक्षी ज्ञुलुंज फरे, जेम कटकनी भीडमां ससलुं आवी पडे ने भमतुं फरे, तेवुं मन छे. ने पताका के० ध्वजा तेना अंचल के० छेडानी पठे जाणवुं. ते ज्यारे ज्ञान प्रगटे त्यारे निरवाण के० मोक्ष मार्ग तेने विषे गमन करे एवुं छे ॥ ८९ ॥

दोहरा.– जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ; जो मन ध्यान विचार सों, रुके सु अविचल होइ ॥ ९० ॥ ताते विषय कषायसों, फेरि सु मनकी वानि; शुद्धातम अनुभोविषे, कीजे अविचल आनि ॥ ९१ ॥

अर्थः– जो मन विषय कषायरूप राग द्वेषमां वर्त्ते तो चंचल जाणवुं. अने जो ए मन राग द्वेष छांडी ध्यान विचारथी रोक्युं रहे तो अविचल जाणवुं ॥ ९० ॥ माटे विषय कषायमां मननी लागणीछे तेने काढी निज शुद्धात्मना अनुभवमां लगाडीने आ मनने अविचल करियें. ॥ ९१ ॥

हवे मन स्थिर करवाने आत्मानो विचार करवो ते कहेछेः–

अथ विचार शिक्षा कथनंः–

सवैया इकतीसाः–अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है; नानारूप भेष धरे भेष को न लेस धरे, चेतन प्रदेस धरे चेतनाको पंध है; मोह धरे मोहीसो विराजे तोमें तोहीसो न तोहिसो न मोहीसो निरागी निरबंध है; ऐसो चिदानंद याही घटमें निकट तेरे, ताही तूं विचार मन और सर्व धंध है. ॥ ९२ ॥

अर्थः– ए आत्मा अलक्ष छे, अमूरति छे, अरूपी छे, अविनाशीछे अज के० जन्म्यो नही एवो छे, अने जेने कोईनो आधार नही, ज्ञानरूपी छे, तथा रंगविनानो छे, ने छिद्र विनानो छे, व्यवहारमां जोईये तो नाना प्रकारना वेष धरनारो छे, निश्चयमां जोईये तो वेषनो लेश धरे नही मात्र चेतनाना प्रदेशनुं धारण करनारो छे,अने चेतनानो पंध के० पुंजरूप छे, ए उपदेश मनने बाह्यात्मानो छे, ते बाह्यात्मा मनने कहे छे के, ए चिदानंद जेछे ते राजाछे, ने आ पिंडनो मोह धरेछे, अने हे मन ए चिदानंद

तारामां ताराजेवो विराजे छे, पण निश्चेनयथकी तारेविषे ने मारेविषे एने मोह नथी, एवु निरागी निरबंध छे, एवो जे चिदानद भगवान छे, ते अरे मन जे घट मांहे जिहां तु वसेछे तेज घटमा ते पण वसेछे माटे ते ईश्वरनोज विचार तु कर, बीजो विचार सर्व दंद रूपछे. ॥ ए२ ॥

हवे ए चिदानदनो जे रीते शुद्धानुभव थाय, ते रीते मनने उपदेश करेछे –

अथ शुद्धानुभव शिक्षा कथन.–

सवैया इकतीसा – प्रथम सु दृष्टिसो सरीररूप कीजे भिन्न तामैं और सूछम शरीर भिन्न मानिये, अष्ट कर्मभावकी उपाधि सोई किजे भिन्न ताहुमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानिये, तामे प्रभु चेतन विराजित अखमरूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रवान ठीक आनिये, वाहिको विचार करि वाहिमे मगन हुजे, वाको पद साधि वेकों ऐसी विधि ठानिये. ॥ ए३ ॥

अर्थ –प्रथम सम्यक् दृष्टिवडे शरीररूप बाह्यात्मा भिन्न राखवो, ते बाह्यात्मा नेविषे बीजु सूक्ष्म शरीर कर्म सबधी अतरात्मा छे ते पण भिन्न जाणवो, ते अत रात्माथी परमात्माना ज्ञान दर्शननु आच्छादन थायछे, एवु अष्ट प्रकारनुं कर्म तेना भावनी उपाधि ते पण भिन्न जाणवी, अने ते अतरात्मानेविषे सुबुद्धिनो विलास जे भेद ज्ञानादिक ते पण भिन्न जाणीये, अने ते सुबुद्धि विलासमा चेतनरूपी प्रभु जे छे ते अखंमरूपे विराजे छे, अने ते चेतन श्रुत ज्ञानना प्रमाणथी हृदयमा सारीपठे ठराविये, ए रीते हे मन तु तेनाज विचारमां मग्न रेजे, ने ते चेतननुं पद साधवाने एटले मोक्ष मार्ग ग्रेहवाने एज विधी युक्त छे एम जाणजे ॥ ए३ ॥

हवे ज्ञाता जीवनुं स्वरूप वर्णवे छे – अथ ज्ञानी जीव कथन –

चोपाई – इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने, रागादिक निजरूप न माने, तातें ज्ञानवत जगमाही, करम बधको करता नाही ॥ ए४ ॥

अर्थ – ए रीते वस्तुनी व्यवस्था जाणे अने राग द्वेषादिक जे भाव छे, तेने पोतानुं रूप न माने, तेणे करीने ज्ञानवतने जगतमा कर्म बंधनो कर्त्ता कह्यो नथी आठ कर्म तेने बध करी शकता नथी ॥ ए४ ॥

हवे ज्ञातानी क्रिया कहे छे – अथ ज्ञाताकी क्रिया कथन –

सवैया इकतीसा –ज्ञानी भेद ज्ञानसों विलेछि पुदगल कर्म, आतमाके धर्मसों निरालो करि मानतो, ताको मूल कारन अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो, याही अनुक्रम पररूप भिन्न बध त्यागि, आपुमाहि अ

पनो सुनाउ गहि आनतो; साधि शिवचाल निरबंध होतु तिहू काल, केवल विलोक पाई लोकालोक जानतो. ॥ ए५ ॥

अर्थः— ज्ञाता होय ते नेद ज्ञानवडे पुदगलिक कर्मनुं विलक्षण केम करे ते कहे ठे, आत्मिक धर्मथी पुदगलिक धर्मने जूदो करी जाणे, एम विलक्षण करे, अने ते पुदगल धर्मनुं मूल कारण अशुद्ध रागद्वेषादिक नाव ठे, तेनो नाश करवाने शुद्ध अनुनव अन्यास जे रीते पूर्वे कह्यो ते प्रमाणे अवस्था देखी अन्यास राखे, ए रीते अनुक्रमे प्रथम सुदृष्टिथी शरीररूप निन्न करवुं, ए अनुक्रमें पूर्व संबंधथी अनादि कर्म बंधने त्यागीने पोतानेविषे पोतानोज ज्ञानादिक स्वनाव ग्रहण करे, एम शिव पदनी साधना करीने त्रणे काल निर्बंध थाय, तेवो थई केवल ज्ञान पामीने लोकालोकने जाणनार थाय. ॥ ए५ ॥

हवे सम्यक्त धारीनुं पराक्रम कही बतावे ठेः—अथ सम्यक्तधारी वैनव वर्णनः—

सवैया इकतीसाः— जैसे कोउ हिंसक अजान महा बलवान, खोदि मूल बिरख उखारे गहि बाहुसों; तैसे मतिमान दर्वकर्म नावकर्म त्यागि, व्है रहै अतीत मति ज्ञानकी दसाहुसों; याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे ज्योति केवल प्रधान सवि ताहुसों; चुके न सकतिसों लुके न पुदगलमांहि, ढुके मोपथलकों रुके न फिरि काहुसों. ॥ ए६ ॥

अर्थः— जेम हिंसक पुरुष नील प्रमुख जे हिंसाना फलथी अजाण ठे, अने महा बलवान ठे, ते वृक्षना मूलने खोदीने पठी पोताना नुजना बले करी तेने उखेडी नाखे ठे, तेम मतिमान के० सम्यक्ती पंमित जे ठे, ते पुदगल स्वरूपी द्रव्य कर्मने, अने ज्ञानावरणी दर्शनावरणी इत्यादि आठ नाव कर्मने त्यागीने ज्ञान दशावडे अतीत के० कर्मरहित थई रह्यो ठे, अने क्षण क्षणमां ए क्रियाना अनुसारे मोह अंधकारने मटावे ठे, अने तेथी केवल ज्ञाननी ज्योति उदय थाय, ते ज्योति मति ज्ञान प्रमुख सर्व ज्ञानोमां प्रधान ठे, अने एथी अनंत वीर्य प्रगटे, ने फिरि ए शक्ती ते चुके नही, अने मोक्ष स्थानने जई ढुके, अने कोईथी रोकाय नही॥ए६॥

इतिश्री नाटक समयसारविषे बंधद्वार बालावबोध रूप अष्टम समाप्तः

दोहराः— बंध द्वार पूरन नयो, जो दुख दोष निदान; अब बरनों संठेपसों, मोक्ष द्वार सुखखान ॥ ए७ ॥

अर्थ — इखने दोषनु निदान जे बंध तेनो द्वार संपूर्ण थयु हवे सुखनु स्थान जे मोक्ष तेनो द्वार संक्षेपथी वरणवु छुं ॥ ए७ ॥

हवे मोक्ष द्वारने आदि ज्ञान विलासने नमस्कार करे छे — अथ ज्ञान विलास वर्णन —

सवैया इकतीसा — भेद ज्ञान आरासे डुफारा करै ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै, अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचै, योही मोखमुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि लहै पूरनके परचै, भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बानारसी अरचै ॥ ए८ ॥

अर्थ — जेम कोई परिक्षानुं करनार पुरुष सुद्रा प्रमुख द्रव्यने सुलाकनी आर वडे भेदी सुधातु छे, के कुधातु छे, तेनो निश्चय करे छे, तेम ज्ञानी जीव छे, ते भेद ज्ञानरूपी आर वडे आत्मा तथा कर्म ए बेउने जुदा करे छे, अने ते बेउने जुदा जुदा चरचे के० तेमा आत्मिक धारानेविषे तो अनुभवनो अभ्यास धारण करे, तेथी परम धरम के० शुद्ध समाधि तेनु ग्रहण करे, अने कर्मजालने जुदी जाणी छे, तेने सत्ता कर्मरूप खजानो खोलि खरचे के० विखेरी नाखे, तिहा निर्जरा थाय, एवी क्षपक श्रेणीने लीधे मोक्षना सुखने धाय, त्या केवल ज्ञान ढुकडो आवे, अने पूर्ण आत्म स्वरूपना परिचय थकी पूर्ण समाधि पामे, पछी भव भ्रमणनी दोर-छामीने निरदोर थाय ते पछी तेने कइ बीजुकृत्य करवानु बाकी रहे नही, ने तेथी ते विश्वनो नाथ थयो, तेने बनारसी दास पूजे छे ॥ ए८ ॥

हवे सुबुद्धि विलास वडे आत्मस्वरूप सधाय ते अधिकार कहेछे —

अथ सुबुद्धि विलास वर्नन —

सवैया इकतीसा — काहु एक जैनी सावधान व्है परम पैनी, ऐसी बुद्धि छैनी घटमाहि मारि दीनी है, पैठी नौ करम भेदि दरव करम छेदि, सुभाउ विभाउ ताकी सधि सोधि लीनी है, तहा मध्य पाती होइ लखी तिन्हि धारा दोइ, एक सुधामई एक सुधारस भीनी है, सुधासों विरचि सुधा सिंधूमे मगन भई, ए ती सब क्रिया एक समै बीच कीनी है ॥ एए ॥ दोहरा — जैसी छैनी लोहकी, करै एक सो दोइ, जड चेतनकी भिन्नता, त्यो सुबुद्धिसो होइ ॥ ३०० ॥

अर्थ — कोई एक जैनी जैन आगमना जाणनारे सावधान थईने परमपैनी के० अति तीक्ष्ण एवी बुद्धिरूप छैनी के० सोनीनी छीणी ते शस्त्र विशेष, पोताना घटमा नाखी दीधी, पछी ते सुबुद्धिरूप छीनी नौ कर्म के० आत्म प्रदेशनेविषे

श्लेष्म रूप जे राग द्वेष परिणाम छे, ते नौ करमना भेद तेना पुद्गलरूपी द्रव्य कर्म ने छेदीने स्वभाव अने विभावतानी संधी सोधी लीधी छे, तहां सांधनेविषे मध्य पाती के० त्रिहाईत बनीने ते पुरुषे बे धारा लखी, तेमां एक तो मुधामइ के० अ ज्ञान मय छे, ने बीजी सुधारस भीनी के अमृत रस भीनी ज्ञान समाधिमय छे, अहीं राग द्वेषादिकनी दशा छे, ते मुधा दशा छे, तेथी विरचि के० वैराग धारीने सुधा सिंधुमां मग्न थवुं, ज्ञान समाधिरूप सुधा समुद्रमां मग्न रेवुं, ए जे क्रिया क ही ते सर्व क्रियानो विचार एक समयमां करे ॥ ९९ ॥ जेम लोढानी छीणी एक ना बे भाग करे छे, तेम जड चेतननी एकता भांगीने भिन्नता करवी ते सुबुद्धिथ कीज थाय छे. ॥ ३०० ॥

हवे जेवुं सुबुद्धिनुं विलास छे, तेवुं कहे छेः– अथ सुबुद्धि विलास कथनः–

सवैया इकतीसाः– (सर्व ह्रस्वक्षर चित्रालंकार) धरति धरम फलहरति कर म मल, मन वच तन बल करत समरपन; भखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन; कहति मरम धुर दहति भरमपुर, ग हति परम गुर उर उपसरपन; रहति जगत हित लहति भगति रति, चहति अग ति गति यह मति परपन ॥ १ ॥

अर्थः–सुबुद्धि जे छे ते धरम रूप फलने धारेछे, कर्मरूप मलने हरे छे, अने ए क्रिया नेविषे मन बल वचनबल अने कायानुं बल तेने समरपण करे एटले ए त्रणे बल ते क्रियामां कामे लगाडे. भखति के० खाय छे, सित के० शीतल भोजन ते र सनरित के० जीभनना स्वादविना भोजन जमे, अमित वितके० परिमाण विनानुं पोतानुं ज्ञानादिक धन चित्तरूप दर्पण वडे जुए, मर्म धुर के० मर्मनी वात जे जीवनुं स्वरूप ते कहे, भ्रम पुर के० मिथ्या नगर तेने बाले, अने अंतरनेविषे उ त्कृष्ट गुरुना वचनने ग्रहण करे, अने हृदयनेविषे उपसरपन के० स्थिरता धारे अने जगतनो हितकारी थको रहे, त्रणे लोकनी भक्ति अने रति के० सुख तेने लहे, एटले सर्व लोकने पूजनीक थाय. होई अगति गति के० जेनेविषे बीजा सा मान्यनी गति थती नथी, तेवी मोक्षगति चाहे, एवो सुमतिनो उत्कृष्ट विलास छे.

हवे ज्ञातानो विलास कहे छेः– अथ ज्ञाता वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– (सर्व गुरु अक्षर चित्रालंकार) रानाकोसो बाना लीने आपा साधे थाना चीने, दाना अंगी नानारंगी खाना जंगी जोधा है; माया वेली जेती तेती रेतेमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोसो जोधा है; बाधा

सेती हाता जोरे राधासेती तांता जोरे बादी सेती नाता तोरै चांदी कोसो सोधा है, जानै जाही ताही नीके माने राही पाही पीके, ठानै बाते माही ऐसो धारावाही बोधा है. ॥ २ ॥

अर्थ – जे बुध के० ज्ञानी छे, ते राणा के०राजा जे पातसाहनुं स्वांग लेतो थको रहे छे जेम राजा पोताना आत्मानुं साधन करे, अने पोताना मम्हलनो साज राखे, पोताना थाणाने चीन्हे के०नीघेबानी राखे, दानाइ राखे पण नादानी नही राखे, ए चारे उपाय वडे नाना रग करे, खाना जगी के०लडाईनेविषे जोद्धा थई रहे, तेम ज्ञानी पुरुष आत्म साधन करे, गुणगणा चिन्हे अने त्यागी थको कर्म निर्जरानेविषे नाना प्रकारना रंग धारे, राग द्वेष दुर्जन साथे लमी हटावी देय, एवी रीते एक पदना बे अर्थ थाय छे, जेम लुहार रेतरमीवडे लोढाने घसी नाखे छे तेम जेटली जेटली माया वेली के०कर्मजाल तथा गजवेल जे क्रोध तेने मेधा के०सुबुद्धि ते रूप रेतरमी वडे घसी नाखे, अने फदना कदने खोदेछे जेम लोधा के० खेडुत खेतरनी धरतीने कद के० मूलथी खोदी नाखे छे, तेम बाधा के० कर्मबंध तेथी हाताजोरे के० जुदाई करे, अने राधा के० सुबुद्धि ते साथे नातो जोडे, बादीके० कुबुद्धि तेनो नातो के०संबंध ते तोडे, जेम सोना रूपानी चांदी सोधनार वस्तु उज्वल करेछे, तेम जे जेने तेने जाणे, हेय जे छांडवा योग्य वस्तु अने उपादेय जे आदरवा योग्य वस्तु तेने पण नीके के० ठीक जाणे, पण हेयाने राहीपाही के० फुल समान पीकसमान जाणे जीनासथी खीलावेछे, ए रीते माही वातो ठरावे एवो सम्यक्त धारानो वेहेनार अबोधा के० पंडित ने ज्ञानी कहीये ॥ २ ॥

हवे ज्ञाताने चक्रवर्त्ति समान कही बतावेछे'–अथ ज्ञाता चक्रवर्त्ति समान कथन –

सवैया इकतीसा – जिन्हिके दरब मिति साधत छ खम्ड थिति, बिनसै बिभाव अरिपकति पतन है, जिन्हिके भगतिको विधान पईनो निधान, त्रिगुनके भेदमान चौदह रतन है, जिन्हिके सुबुद्धि रानी चूरि महा मोह वज्र, पूरे मगलीक जे जे मोखके जतन है, जिन्हिके प्रमान अग सोहै चमू चतुरग, तेई चक्रवर्त्ति तनु धरै पै अतन है ॥ ३ ॥

अर्थ – जेणे छए द्रव्य प्रमाण करी साध्या तेज जाणे छये खम्ड साधी लीधा, अने जेना रागद्वेषादि विभावदिशा वणसी जाए तेज जाणिये शत्रुनी पक्तिनुं पतन के० नाश थयो, अने तेने नव प्रकारनी भक्तिनु विधान के० करवु तेज तेने नव निधान छे, ज्ञान दर्शन ने चारित्ररूप जे त्रण गुण छे, अने तेना क्षयोपशम

माफक जे नेद उपजेछे, ते जेना चौद रतन प्रगटमान छे, अने जेम चक्रवर्त्तिने स्त्रीरत्न होयछे, ते तेना छ खंम साधवाना राज्याभिषेक समय होय त्यारे वज्र रत्न हाथवडे चूरी ने, मुख आगल मंगलीक पूरे तेम जेने सुबुद्धिरूप स्त्री रत्न छे, ते महा मोहरूप वज्रने चूरीने मोक्षना जतनने माटे मंगलीक पूरे छे, एटले मंगल कार्य करे; अने जे प्रत्यक्ष प्रमाणे करीने अर्थनुं ग्रहण करेछे, तथा परोक्ष प्रमाणे करीने पण अर्थने ग्रहेछे, एवा जेना प्रमाणरूप अंग छे, तेज तेनी चतुरंगी सेना थई एम जाणवुं, ए रीतें ज्ञाता पुरुषे चक्रवर्त्तिनी देह धारी छे, तेम छता पण ज्ञाता अतनके० अशरीरी जेवुं छे. ॥ ३ ॥

पूर्वे कही जे नवधा नक्ति तेनुं हवे वर्णन करेछेः—अथ नवधा नक्ति वर्णनंः—

दोहाः— श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान; लघुता समता एकता, नौधा नक्ति प्रमान. ॥ ४ ॥

अर्थः— उपादेय स्वरूपने सांनलवुं, किरतन करवुं, चिंतवन करवुं, सेवा पूजा करवी, वंदन स्तुति करवी, ध्यान धरवुं, तन्मयता करवी, समाधि करवी, एकमेकपणुं, ए नौधा के० नव नेदवडे नक्ति प्रमाण थायछे. ॥ ४ ॥

हवे जे ज्ञाता मोक्ष सन्मुख थयो तेनी अनुनव दशा कहे छेः—

अथ अनुनवी वचनः—

सवैया इकतीसाः— कोई अनुनवी जीव कहे मेरे अनुनौमें, लछन विनेद निन्न करमको जाल है; जानै आप आपुकों जु आपु करी आपुविषे, उतपति नास ध्रुव धारा असराल है; सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरो निहचै सुनाउ यह विवहार चाल है; मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिन मुद्रा धारी, प्रनुता हमारी एक रूप तिहू काल है ॥ ५ ॥

अर्थः— जे आत्मानो अनुनव पाम्यो तेज अनुनवी जीव एवुं कहे छे, के मारा अनुनवमां लक्षण नेदथकी कर्म जाल हवे निन्न दीसवा लागी. अने आत्माज कर्त्ता कारक आत्माज करण कारक आत्माज आधार कारकविषे आत्माज कर्म कारकने जाणे. अने अही कोई पर्यायनी उत्पत्ति अने नाश छे, अने द्रव्य ध्रुवता पणे छे, ए त्रणे धारा अही असराल पणे वही रही छे, तो पण ए त्रणे धारा विकल्परूप छे, अने मारेथी तो सर्व विकल्प सर्वथा जुदाज छे, विकल्पमां तो कंही निश्चय नथी. अने मारो तो चेतना स्वरूप निश्चे स्वनाव छे, अने आगल कही जे त्रण धारा तेतो व्यवहार नयनी चालमां छे. आ जे सिद्धांत वचन

कहुं छु तेणे करीने हुंतो शुद्ध चेतना स्वरूपी छुं, अनंत चिन मुद्रा धारी के० अनं त ज्ञाननो धरवा वालो छु, एहवी महारी प्रभुता त्रणे कालने विषे एक रूपेछे॥५

हवे चेतनानुंज स्वरूप बतावे छे — अथ चेतना वर्नन.—

सवैया इकतीसा — निराकार चेतना कहावे दरसन गुन साकार चेतना शुद्ध ज्ञान गुण सार है, चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरवमाहि, सामान विशेष सत्ताही को विसतारहै, कोउ कहै चेतना चिनह नाही आत्मामे, चेतनाके नास होत त्रि विध विकार है, लछनको नास सत्ता नास मूल वस्तु नास, तातें जीव दरवको चेतना आधार है॥ ६ ॥ दोहरा — चेतन लछन आतमा, आतम सत्ता माहि, सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमे नाहि ॥ ७ ॥

अर्थ — आत्मानो दर्शन गुण जे निराकार कहीये छइये तेतो निराकार चेत ना थई, अने जे आत्माने शुद्ध ज्ञान गुण सारभूत कहीये छइये तेतो साकार चे तना थई, विशेषताने लीधो रह्यो छे माटे साकार कहिये, ए रीते निराकार अने साका रपणे दर्शन तथा ज्ञाननेविषे द्वैत भाव थयो, पण चेतनानेविषे तो अद्वैत भाव ज रह्यो छे, अने चेतनागुण थकी चेतन द्रव्य छे, तेथी चेतन द्रव्यमा बेउ समाई गया वली निराकार ने साकारपणु सामान्य ने विशेषपणाथकी छे, ते तो सामा न्यता अने विशेषता चेतना द्रव्यनी सत्तानो विस्तार छे, कोई मूढमति वैशिषिक प्रमुख दर्शन वाला कहे छे, के, आत्मानेविषे चेतन चिन्ह नथी, चेतना लक्षण नथी, तेने केवु के, अरे मूढ, जो चेतन चिन्ह न कहिये तो चेतनानो नाश थवाथी त्रिविध विकार उपजशे, ते कया तो मन वचन ने कायाना विकार जाणवा, माटे लक्षणनो नाश थवाथी वस्तुनी सत्तानो नाश थशे अने वस्तुनी सत्तानो नाश थवाथी मूल रुप वस्तुनो पण नाश थशे, माटे जीवने जाणवानो तो एक आधार चेतनानोजछे ॥६॥ आत्मानुं चेतना लक्षण छे, सत्ता धर्मविना आत्मा ठरे नही तेथी आत्मा स त्ताने लिपेज छे, अने पोतपोतानी सत्ता प्रमाणेज सर्व वस्तु छे, वस्तु द्रव्य विचारी जोइये त्यारे उत्पादादि त्रणे वस्तुमा भेद कोई नथी ॥ ७ ॥

हवे चेतना लक्षणनु शाश्वत तथा अविनाशीपणु दृढ करावेछे —

अथ चेतना अविनासी यह कथन.—

सवैया तेईसा - ज्यों कलधौत सुनारकि संगति, भूषन नांव कहे सब कोई, क चनता न मिटी तिहिं हेतु वहै फिरि औटि तु कचन होई, त्यों यह जीव अजीव सयोग भयो बहु रुप भयो नहि दोई, चेतनता न गई कबहू तिहि, कारन ब्रह्म

कहावत सोई. ॥ ८ ॥ देखु सखी यह आपु विराजत याकि दसा सब याहिकुँ सोहै; एकमँ एक अनेक अनेकमँ, द्वंद लिये डुविधामहि दो है; आपु संजारि लखै अपनो पद, आपु विसारकैं आपुहि मोहै; व्यापक रूप यहै घट अंतर, ज्ञान मँ कौन अज्ञानुमँ कोहै! ॥ ए ॥ ज्यों नट एक धरै बहु नेप कला प्रगटे जग कौतुक देखै; आपु लखै अपनी करतूति वहै नट निन्न विलोकत पेखै; त्यों घटमें नट चेतन राउ विनाउ दसा धरि रूप विसेखै; खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, डुंद विचार दसा नहि लेखै; ॥ १० ॥

अर्थः— जेम कलधोत के० सोनुं तेने सोनी घडीने नूषण बनावेछे, त्यारे ते घाटना संयोगथी लोको तेने नूषण केहेवा लागेछे. पण मूल वस्तु जे कंचन ते कांई जतुं रहुं नथी, केमके, ज्यारे ते घाटने अग्नीमां गाली नाखे त्यारे पाछुं ते सोनुं केवाय, तेम आ जीव जे छे, ते अजीवरूप कर्म पुदगल इत्यादिक बीजा पण पुद्गलना संयोगथी एक कोडी शाडी संताणुं लाख कुल कोडीमां बहुरूपे थयो, तो पण द्विविध नथी थयो, केमके, चेतनता कंई गई नथी; तेमाटे ते स्वरूपमां जीव ब्रह्मज केवाय छे, जेनो विस्तार मोटो तेने ब्रह्म कहीये. ॥ ८ ॥ आत्मानी अनुनूति ते सुबुद्धि सखीने कहेछे, हे सखी, जो आ आपणो ईश्वर विराजे छे, अने ए ईश्वरनी दशा सर्व एनेज शोनेछे, एवी विरुद्धता बीजे ठेकाणे न शोने. लक्षण वडे एकतामां जोईये तो एक रूप छे, अने अपर सत्ताए देखीये तो अनेकरूप छे; अने द्वंद दशामां देखीये एटले अज्ञान दशामां देखीये अने ज्ञान दशामां देखीये तो द्विविध रूप छे, ते द्विविधपणुं कहेछेः— क्यारे तो पोतानुं पद जे पोतानुं स्वरूप तेने संनारीने जुए, अने क्यारेक तो पोताने विसरीने पोते मोहमां पडे. हे सखी, एहिज ईश्वर घटने अंतर व्यापक रूप छे, तेथी जे जे अवस्थामां व्यापे छे. तेवारे ज्ञाननेविषे पण बीजो कोइ नथी अने अज्ञाननेविषे पण बीजो कोइ नथी.॥ए॥ हवे एना उपर दृष्टांत कहेछेः—जेम कोई नट होय ते बहु वेष धरेछे, ने तेते वेषनी कला प्रगट करेछे, त्यारे जगत तेने कुतुहल समजे, पण नट पोते पोतानी क्रिया जाणेछे, ने तेणे धरेला वेषथी पोते जुदोछे, एवुं जाणेछे. तेम घटनेविषे चेतन राजा रूप नट छे, ते विनाव दशा धरीने रूप विशेष करेछे, पण ज्यारे सुदृष्टि खोली जुए त्यारे तो पोतानुं पद उलखे अने द्वंद विचारनी दशाने पोते लेखामां गणे नही. ॥ १० ॥

हवे चेतन नटनी सघली चेतना एक छे, ते कहेछेः—अथ चेतनाउपादेय यह कथनः—

अडिल्ल छंदः— जाके चेतननाव चिदातम सोइ है; और नाव जो धरे सु औरे

कोइ है, यों चिनमंडित नाव, उपादे जानते, त्याग जोग परनाव पराये मानते ॥
अर्थ.—जेनेविषे चेतन नाव छे, तेने चिदात्मा अथवाचिद्रूप कहिये छे, अने ए चेतनानावथी बीजो नाव जे धारेछे, तेतो कोई बीजो छे, एथी चेतना मंडित जे नाव छे तेतो उपादेय रूप जाणवो, अर्थात् पोतानो करी जाणवो, अने चेतना नावथी जे परनाव छे, ते सघलो त्यागवा योग्यछे ने तेने पारको करी मानी लेवो॥११॥
हवे जे सम्यक् दृष्टि चेतना उपादेय राखीने मोक्ष मार्गना साधक थया तेनी अवस्था कहेछे — अथ सम्यक्दृष्टि मोक्ष मारगको साधक कथन —
सवैया इकतीसा — जिन्हके सुमति जागी नोगसों नये विरागी, परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिनुवनमें, रागादिक नावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्हे न रहै धाम धनमे, जे सदीव आपको विचारै सरवंग सुद्ध, जिन्हके विकल ता न व्यापै कब मनमे, तेई मोक्ष मारगके साधक कहावें जीव, नावै रहो मंदि रमें नावे रहो वनमे ॥ १२ ॥
अर्थ — जेना हृदयामा सुबुद्धि जागी, अने विषय नोगथी जे वैरागी थया, अने जे रागद्वेषादिक परनाव छे, तेनो सेवना संग के० त्रण लोकनेविषे तेनो त्यागी जे पुरुष छे, अने जे रागद्वेषादिक नाव पदार्थ छे ते थकी जेनी रेहेणी न्यारी छे, तेथी धाम के० घर अने धन तेनेविषे मग्न थई न रहे, अने जे सदा निश्चय दृष्टीए देखीने आत्माने सर्वांग शुद्ध विचारे छे, तेथी जेना मननेविषे विकलता नही व्यापे, एवी दशा लईने जे जीव रह्या छे, तेज जीव मोक्ष मार्गना साधक केहेवाय, पछी ते नावे तो मंदिरमा रहे, ने नावे तो वनमा रहे, पण तेनी दशा सर्व स्थानके एकज होय छे ॥ १२ ॥
हवे मोक्षगामी जीव विचक्षण पुरुषनी दशा कहेछे —अथ विचक्षणदशा वर्णन —
सवैया तेईसा — चेतन मंडित अंग अखंडित शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो, राग विरोध विमोह दशा समुझे न्रम नाटिक पुग्गल केरो, नोग सँयोग वियोग व्यथा अविलोकि कहै यह कर्मज घेरो, है जिन्हकों अनुनौ इहि नांति सदा तिन्हिकों परमारथ नेरो ॥ १३ ॥
अर्थ — जे परमात्मानेविषे दृष्टि दैने एवो विचार करे के, जे मारो पदार्थछे, ते चेतन मंडित छे, अने अखंडित छे, अछेद्य छे, अनेद्य छे, अने शुद्ध छे, पवित्र छे, अने एथी जुदी जे राग द्वेषने मोहनी दशा थई र्हीछे, तेने तो न्रमरूप मिथ्याजाल पुदगलनु नाटक करी समझे छे, अने पचेंद्रियना नोगसंयोग ने वियोग एवी बाह्य

त्माने विषे व्यथा अवलोकी ने एवुं कहे के. एतो कर्मनो घेरो छे, कर्मनो उदय छे, एवो अनुभव जेने नित्य रहे, तेने परमार्थरूप मोक्ष ते सदा नेरो के० नजीकछे. १३

हवे जे मोक्षथी दूर ते चोर, ने मोक्षथी निकट ते साहुकार एवुं कहेछेः–

अब चोर तथा साहुकार वर्णनंः–

दोहराः– जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अज्ञ; जो अपनो धन विवहरै, सो धनपति धरमज्ञ. ॥ १४ ॥ परकी संगति जो रचै, बंध बढावे सोइ; जो निजस त्तामें मगन, सहज मुक्त सो होइ. ॥ १५ ॥

अर्थः–जे पुमान के० पुरुष परधनने हरे, ते अपराधी जीव अज्ञ के० अजाण कहीये, ने जे पोतानाज धननो व्यवहार राखे, ते धनपती कहिये, धर्मज्ञ के० ध र्मने जाणनार कहियें. ॥ १४ ॥ तेम जे परवस्तुनी संगतीए राचे ते चोर केहेवाय, ने तेज पोताना बंधने वधारे, अने पोतानी सत्तामां सदाकाल मगन रहे तेज मुक्तरूप थाय. ॥ १५ ॥

हवे वस्तु कोने कहिये अने सत्ता कोने कहियें ते बतावेछेः–अथवस्तुसत्तावर्णनं

दोहराः– उपजे विनसे थिर रहे, यह तो वस्तु वखान; जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवान. ॥ १६ ॥

अर्थः– उत्पत्तिवंत, विनाशवंत, स्थिरतावंत एतो वस्तुनुं वखाण छे, अने जे वस्तुनी मरयादा जे परिमाण ते धर्म ने सत्ता कहीये, ए अनुभव प्रमाण ग्राह्य छे. १६

हवे केवा केवा द्रव्यनी केवी केवी सत्ता छे ते कहेछेः–

अथ सत्ता व्यवस्था वर्ननंः–

सवैया इकतीसा–ः लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश दर्व, धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमिति है; लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व, कालके अणु असंख सत्ता अगनिति है; पुदगल शुद्ध परवानकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है; कोउ सत्ता काहुसों न मिलै एकमेक होई, सबे अस हाय यों अनादिहीकी थिति है. ॥ १७ ॥

अर्थः– आकाश द्रव्यनी मर्यादा लोकालोक लगे एक छे, तेथी आकाश द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकप्रमाण एक रूप छे तेथी धर्म द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने अधर्मास्तिकाय द्रव्य पण लोक प्रमाण एक रूप छे तेथी अधर्म द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने कालना द्रव्यना अणु छे ते लोकाकाश प्रदेश परिमाणे असंख्यात छे, तेथी काल अणुनी असंख्यात सत्ता छे ए कहेवुं दिगंबर संप्रदायनुं

छे, अने योग शास्त्रमा पण कह्यु छे, अने लोकविषे पुद्गलरूपी शुद्ध परमाणुनी पण अनंत सत्ता छे, अने लोकविषे जीव अनत छे, तेथी जीवनी पण अनत सत्ता छे, तेथीज जीवाजीवनी जुदी जुदी क्षेत्रावगाहना छे, जे द्रव्यनी जे सत्ता होय ते बीजी कोई द्रव्यनी सत्ता साथे मळे नही, जो एकमेक थई जाय तो सर्व सत्ता असहाय पणे वर्त्ते, माटे एकमेक न थाय एवी अनादि काळनी स्थितिछे ॥१७॥

हवे चेतन द्रव्यनी सत्तानुं वर्णन करेछे — अथ चेतन सत्ता वर्ननं —

सवैया इकतीसा — एइ छहो द्रव्य इन्हहीको हे जगतजाल, तामे पांच जड एक चेतन सुजान है, काहुकी अनत सत्ता काहुसों न मिले कोई, एक एक सत्ता मे अनत गुन गान है, एक एक सत्तामे अनत परजाय फिरे, एकमें अनेक इह भांति परवान हैं, यहे स्यादवाद यहै संतनिकी मरजाद, यहे सुख पोष यहै मोक्षको निदान है ॥ १८ ॥

अर्थ — ए छए द्रव्ये करी एथीज जगतजाल वर्त्तेछे, ते छनेविषे पांच द्रव्य जडरूपी छे, ने एक चेतनरूपी द्रव्य छे ते जाणनार छे, अंही पुदगलनी अनत सत्ता कही, अने जीवनी अनत सत्ता कही, एवा अनंतपणे करीने कोईनी सत्ता कोई साथे मळे नही, एटले जुदी जुदी अनत सत्ता छे, अने प्रत्येक सत्तामा अनत गुणनु ज्ञान छे, अने एक एक सत्तामा अनत पर्याय अनंत अवस्था भेदफिरे तेथी जे पूर्वे एकमा अनेक कह्यु ते एरिते छे, स्याद्वाद मतमा ए वात प्रमाण छे, अने सतपुरुषना वचननी पण एज मरियादा छे, तथा एज मत सुखनु पोषण करनार छे, अने मोक्षनु निदान एटले मूळ कारण छे ॥ १८ ॥

हवे ए वचन थकी जे वस्तुनो धर्म ग्रह्यो जाय तेज सत्ताधर्म कहीये तेथी एक जीव द्रव्यनी सत्ता कहेछे — अथ एक जीव द्रव्यसत्ता वर्नन —

सवैया इकतीसा — साधि दधि मथनि अराधि रसपथनिमें, जहा तहा ग्रथनिमे सत्ताहीको सोर है, ज्ञान भानु सत्तामे सुधा निधान सत्ताहीमे सत्ताकी दुरनि साझि सत्तामुख भोर है, सत्ताको सरूप मोख सत्ता भूले यहै दोष, सत्ताके उलंघै धूम धाम चिहू ओर है, सत्ताकी समाधिमे विराजि रहे सोई साहु सत्तातें निकसि ओर गहे सोई चोर है ॥ १९ ॥

अर्थ —जे वस्तुनेविषे छती देखाय,जेम दहीना मथनमां घीनी सत्ता साधिये,जे औषधमां मधुर रस छे, तो तेथी वस्तु नीपजे छे, माटे रस मार्गमां सत्ताविना सिद्ध नथी जे वस्तुमां छतापणुछे तेने सत्ता कहिये,शास्त्रमा ज्या त्या ग्रथोनेविषे सत्तानोजसोरके०

शब्दछे ज्ञान रूपी भानुनो उदय जीवनी सत्तामां निपजे, वळी सुधा के० अमृत ते पण सत्तामांज पामिये, निधान पण सत्तामांज पामिये जे सत्तानुं ढुरनि के० ढुपाववुं ते संध्या रूपछे, अने जे सत्तानी मुख्यताछे तेज भोर के० प्रभात रूपछे. जीवनी सत्तानुं जे स्वरूप छे तेज मोक्ष छे, अने सत्ताने छुळी जवुं एज दोषरूप छे. सत्तानुं उलंघन करवाथी चीहोउर के० चारे तरफ धामधुम नीपजे, जे पोतानी सत्ता सद्भूतपणुंछे, तेमां बिराजमान थई रहे तेने साहुकार कहिये, अने जे पोतानी सत्ताथी नीकळीने अन्यनी सत्ताने ग्रहे तेने चोर कहीये. ॥ १९ ॥

हवे सत्तानी समाधिनुं वर्णन करेछेः—अथ समाधि वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः— जामें लोक वेद नांहि थापना उछेद नांहि पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नाहि करनी; जामें राग दोष नांहि जामें बंध मोष नांहि, जामें प्रभु दास न आकास नाहि धरनी; जामें कुलरीत नांहि जामें हारजीत नांहि जामें गुरु शिख नांहि विष नांहि भरनी; आश्रम वरन नांहि काहुकी सरनि नांहि ऐसी शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी. ॥ २० ॥

अर्थः— जेमां लौकिक वेदवुं नथी, अने जेमां स्थापनानो उछेद नथी, जेमां पाप पुन्यनो खेद नथी, जेमां कोई क्रिया करणी नथी, जेमां राग द्वेष नथी, जेमां बंध मोक्ष नथी, जेमां प्रभुताने दासपणुं नथी, जेमां आकाश अने धरती नथी, जेमां कुलनी रीत नथी, जेमां हारने जीत नथी, जेमां गुरु अने शिष्य नथी, जेमां विष भरनी एटले चालवुं हालवुं नथी, जेमां कोई आश्रम व्यवहार नथी, तथा वर्ण व्यवहार नथी, जे कोईनी शरण रूप नथी. एवी शुद्ध सत्तानी भुमी ते समाधिरूप वरणवी छे. एटले स्वरूपनी शुद्ध समाधिने विषेज शुद्ध सत्ता पामीये. २०

हवे मिथ्यादृष्टिने चोर अने अपराधी कही देखडावेछेः—

अथ मिथ्यादृष्टि अपराधि यद्द कथनः—

दोहराः— जाके घट समता नही. ममता मगन सदीव; रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥ २१ ॥ अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध; परकों माने आतमा, करे करमको बंध ॥ २२ ॥ झूठी करनी आचरे, झूठे सुखकी आस; झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥ २३ ॥

अर्थः— जेने केवल जाणपणुं जे समता ने समाधि ते नथी. अने जे सदा पर वस्तुनी ममताविषे मगन थई रहे, ने निज घट अथवा स्वरूपनेविषे रमी रह्यो एवो जे आत्मराम तेने जेणे जाण्यो नथी तेनेज अपराधी चोर जीव कहीये॥२१॥

अर्थ – जे पर वस्तु लेय ते अपराधी ने तेज मिथ्यामति, तेज निरदय ने तेज हैयानो अधकहिये, एटले जे पररूप पुद्गलने आत्मा माने ते कर्मनो बंध करेछे २२

ज्यांसुधी पोतानी वस्तुने न जाणे त्यांसुधी तो जे क्रिया आचरे ते सर्व फूठी छे, अने तेने जे मोक्ष सुखनी आशा छे, ते सर्व फूठी छे पोताना प्रभु जाण्या विनानी जे भक्ति हियामा धरे छे, ते सर्व फूठी जाणवी, अने परमेश्वरने ओलख्याविना दासपणुं राखवु ते पण सघलुं फूठुं छे ॥ २३ ॥

हवे मूढ लोकना फूठपणानी व्यवस्था कहे छे – अथ मूढ व्यवस्था यथा –

सवैया इकतीसा – माटी भूमी सैलकी सु संपदा बखाने निज, कर्ममे अमृत जाने ज्ञानमें जहर है, अपनोन रूप गहे ओरहीसो आपु कहे, साता तो समाधि जाके असाता कहर है, कोपको कृपान लिये मान मदपान किये, मायाकी मरोरि हिये लोभकी लहर है, याही भाति चेतन अचेतनकी सगतिसो, साचसो विमुख भयो फूठमे बहर है ॥ २४ ॥ तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है, तासो कहै यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरोई परोई मेरोई पहर है, पेहको खजानो जोरे तासो कहे मेरो गेह, जहा वसे तासो कहे मेरोई सहर है, याहि भाति चेतन अचेतनकी सगतिसो, साचसो विमुख [illegible]ने फूठमे बहर है ॥ २५ ॥

[illegible] – सात धातु जे छे पहाडनी धरतीनी माटी जेवी छे, तेने सपत्ति करी व[illegible] पोतानी अशुद्ध क्रियामा अमृत जाणे छे, अने ज्ञानमा फेर समजे छे, [illegible]नी सिद्धि जाणे, ने ज्ञान थकी नही जाणे जे पोतानुं चिदानद [illegible] नही, पण शरीरादिक जे छे तेने आत्मारूप जाणेछे अने जे [illegible]जे छे तेने तो समाधि करी जाणे छे, असाता वेदनीयने कहर [illegible]ने छे, कोपनु कृपान जे खड्ग ते लईने रहे छे, मान ने अहकार [illegible] पीइने रहेछे, हैयानेविषे मायानो मरोड राखेछे, लोभनी फेर खाया करे छे, एवी रीते अचेतननी सगती थकी एटले जड पुद्गलनी सगतीथी साच थकी विमुख थयोछे, ने फूठमा बहर हे के०तत्पर थई रह्योछे, ॥२४॥ अर्थ स्पष्ट २५

हवे सम्यक् दृष्टि साहुकारनी व्यवस्था कहे छे – अथ सम्यक्दृष्टि व्यवस्थाकथन –

दोहरा – जिन्हके मिथ्या मति नही, ज्ञान कला घटमाहि, परचे आतम राम सों, ते अपराधी नाहि ॥ २६ ॥

अर्थः– जेनी मिथ्यामति नाश पामीने घटनेविषे ज्ञान कला प्रगटी छे, जेणे आत्मारामने उंलख्यो छे, ते लोक अपराधी नथी साहुकार छे ॥ २६ ॥

हवे ज्ञानीनी व्यवस्था कहे छेः– अथ ज्ञानी यथाः–

सवैया इकतीसाः– जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसे मोह विभ्रम विरष तीन्यो वढे हैं; जिन्हकी चितौनि आगे उदे स्वान भूसि भागे लागे न करमरज ज्ञान गज चढे हैं; जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग आगममें, आगममें निपुन अध्यातममें कढे हैं; तेई परमारथी पुनित नर आठों जाम, राम रस गाढ करे यहै पाढ पढे हैं ॥२७॥ जिन्हकी चिहुंटी चिमटासी गुन चूंनवेकों कुकथाके सुनवेकों दोउ कान मढे हैं; जिन्हको सरल चित कोमल वचन बोले, सोम दृष्टि लिये मोले मोम कैसे गढे हैं; जिन्हिके सगति जगि अलख अराधिवेकों परम समाधि साधिवेगो मन वढे हैं; तेई परमारथी पुनित नर आठों जाम, राम रस गाढ करे यहै पाढ पढे हैं२७

अर्थः– जेना हैयामां धर्म ध्यानरूप पावक के० अग्नि प्रगट थयो, तेथी संशय मोह अने विभ्रम ए त्रणे वृक्षरूप छे, ते वढे के० वली गया छे, जेनी चितोनी के० ज्ञानदृष्टि आगल उदयरूप कुतरो भसीने भागी जाय छे, अने ज्ञानरूपी गजराज उपर चढी रहेछे, तेथी कर्मरूप रज लागती नथी, बीजानुं जे अगम अंग छे, तेमां जेनी समजना तरंग उठी रह्या छे एवा आगम के० जैन वाणीमां निपुण थयो ... थी, जेने अध्यात्म ज्ञानमां पूर्ण थयो छे, तेनेज सम्यक्दृष्टि कहियें, परमार्थने ... नथी, ते पुनित के० पवित्र रूप थयो जाणवो. आत्मारामना अनुभव रसमां ... नी भुमी ते स गढे के० संपूर्ण मग्न थई, एज पाठ पढे छे, एटले भणे छे, ॥ २७ ... सत्ता पामीये. २० मटी के० हाथनी चिमटी अथवा चिपीयो तेवडे कई नानी वस्तुने ... छेः– ये, तेम पारका गुण चुंटी लेवाने जेनी एवी चपटी छे, अने विक... बने कानने बंध करी राखे छे, जेनुं चित्त सरल ने निष्कपटी छे, जे... न जान कोमल वचन बोले छे काम क्रोधादिक विकारविना सौम्य दृष्टी राखे छे, वली ... केसेगढेहैं के० मीणना घडाजेवुं हृदय कोमल राखे छे, अने पोताना अलख समाधि स्वरूपने साधवाने जेनी सुमति जागी छे, अयोगी अवस्थामां जेनी परम समाधि थई छे, तेने साधवाने जेनो मन वध्यो छे तेज सम्यक दृष्टि परमार्थना पामनार पुनीत के० पवित्र रूप थई रह्या छे, ने तेज आत्मारामना अनुभव रसमां आठे पहोर दृढ मग्न थई एज पाठ पढे छे. ॥ २७ ॥

हवे समाधिनुं स्वरूप कहे छे -- अथ समाधि वर्णन -

दोहरा - राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननकों दोइ, जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहि कोइ ॥२९॥ नदन वदन थुति करन, श्रवन चितवन जाप; पढन पढावन उपदिसन, बहुविध क्रिया कलाप ॥ ३० ॥ शुद्धातम अनुभौ जहा, सुभाचार तिहि नांहि, करम करम मारगविशे, शिव मारग शिवमाहि ॥ ३१ ॥

अर्थ - आत्माराम जे छे ते रसिक के० रस भोक्ता छे, अने राम के० रमवु ते रसरूप छे, केवाने साभलवाने रसिकने रस बेउ छे, पण जेवारे एनेविषे समाधि प्रगट थाय छे त्यारे बे पणु नथी रेतु त्यारे तो रसिक अने रस ए बे एकज वस्तु छे ॥२९॥राम के० रसिक अवस्था धारतो एटली क्रिया करे छे के, नदन के० आनद पामे छे, वदन के० प्रणाम करे, थुती के० भात भातना गुणनी स्तुती करे छे, अने एवाज गुण साभली एनुंज चितवन करे, एनोज जाप जपे छे, भणे भणावे उपदेशे, एवी रीतें रसिक अवस्थामा भात भातना क्रिया कलाप छे ॥ ३० ॥

पूर्वे कही जे क्रिया तेने करता करता जहा शुद्ध आत्मानो अनुभव थाय तहां शुभाचार छुटीजाय, कृत कृत्यपणे ते अयोगी दशामा छे, कर्म जे छे ते कर्म मार्गमांज रहे, एटले ससार मार्गनेविषेज रहे, शुभ कर्म पण ससार मार्गमा छे अने शिव मार्ग ते शिवमांहे एटले शुद्ध आत्माने विषेज छे. ॥ ३१ ॥

चोपाई - इहि विध वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनिद कही में तैसी, जे प्र[illegible]ति मुनि राजा, तिन्हिको शुभाचारसो काजा ॥ ३२ ॥ जहा प्रमाद द[illegible]व्यपे, तहाँ अवलंब आपनो आपे, ता कारन प्रमाद उतपाती, प्रगट [illegible]पाती ॥ ३३ ॥ जे प्रमाद संयुक्त गुसाई, उठहि गिरिहि गिंडुककी [illegible]ते उद्धत होही, तिन्हिको मोष निकट द्रग सोही ॥ ३४ ॥ [illegible]बताई, पराधीन प्रानी तबताई, जब प्रमादकी प्रभुता नासे [illegible]नुभो परगासे ॥ ३५ ॥

[illegible] - ए रीते श्री जिनेंद्र देवे वस्तुनी व्यवस्था कही छे, ने तेवीज आज्ञा प्रमाणथी मे पण कही छे, अने जे मुनिराज प्रमाद दशामा छे, तेने तो शुभाचार एटले शुभ क्रियानु आलबन लीधाथीज कार्य सिद्धि थाय ॥ ३२ ॥

अने जे मुनिराजने आत्माना अधिक वीर्याशने लीधे प्रमाद दशा न व्यापे त्या पोतानु आलबन पोते लिये, तेमाटे प्रमाद तो उतपाती छे, अने प्रगट रीते मोक्ष मार्गनो घात करनार छे, अने अतरायनो करनार छे ॥ ३३ ॥

गुसांई देशी जाषानो शब्द ठे, एनो अर्थ मुनिराज थाय ठे, जे मुनिराज प्रमाद संयुक्त ठे, ते तो गिडुक के० दडानी रीते उठे ठे, ने पडे ठे, पण स्वस्थताने पामे नही अने जे प्रमाद ठोडीने अप्रमादपणे उठीने उजा रहे ठे, तेने पोतानी दृष्टी नजीक मोक्ष ठे. ॥ ३४ ॥ जांहां सुधी घटमां प्रमाद ठे, त्यांसुधी ते पराधीन ठे, अने ज्यारे आत्मानी शक्ती जागे ठे, त्यारे प्रमादनी प्रचुता नाश पामे ठे, त्यारे तो पोताना प्रधान अनुजवनो प्रकाश थाय ठे. ॥ ३५ ॥

दोहराः— ता कारन जग पंथ इत, उत शिव मारग जोर ; परमादी जगकों ढूके, अपरमाद सिव ओर ॥ ३६ ॥ जे परमादी आलसी, जिनके विकलप जूरि ; होहि सिथिल अनुजौ विषे, तिन्हिको सिवपथ दूरि ॥ ३७ ॥ जे अविकलपी अनुजवी, शुद्ध चेतना युक्त ; ते मुनिवर लघु कालमें, होहि करमसों मुक्त ॥ ३८ ॥ जे परमादी आलसी, ते अजिमानी जीव ; जे अविकलपी अनुजवी, ते समरसी सदीव॥३९॥

अर्थः— तेमाटे जगतनो मार्ग प्रमादीनी तरफ ठे, अने अप्रमादीनी तरफ मोक्ष मार्ग ठे, केमके, जे प्रमादी होय ते जगतने जुए अने अप्रमादी मुक्ती तरफ जुए ठे ॥ ३६ ॥ जे प्रमादी ठे, ते आलशी ठे. तेने जूरि के० घणा विकल्प उठे ठे, अने पोताना अनुजवमां तेने शिथिलपणुं रहे ठे, अने तेने मुक्ति मार्गरूप स्वरूपाचरण दूर ठे ॥ ३७ ॥ अने जे विकल्पविना अनुजवमां वसे ठे, ने शुद्ध चेतना युक्त ठे, ते मुनीश्वर थोडा कालमां कर्मथी मुक्त थाय ठे ॥ ३८ ॥ जे मादी अने आलशी ठे. तेने अहंबुद्धिथी अजिमानी कहियें. ने जे वि नथी, त त पोताना अनुजवमां ठे, तेने तो सदाय समरसी कहियें ॥ ३९ ॥ नी जुमी ते स

हवे अजिमानी तथा ज्ञानीनी अवस्था उपर दृष्टांत सत्ता पामीये. २०

अथ अजिमानी तथा ज्ञानी व्यवस्था कथनः— ठेः—

कवित्त ढंदः—जैसें पुरुष लखे पहार अढि, जूचर पुरुष तांहि ल रुष लखे ताकों लघु, उतर मिलै डुहुको च्रम जग्ग, तैसें अजिमानी न जान जीवकों लघुपद दग्ग ; अजिमानीकों कहे तुठ सब, ज्ञान जगे समतारसजग्ग

अर्थः— जेम कोई माणस पहाड उपर चडयो होय तेने जूचर के० तलोटीपरना माणसो न्हानोठे एम जुए, अने तलोटी वाला माणसने पहाड उपर चडेलो न्हानो जुए, अने पठी पहाड उपर चडेलो हेठे उतरी तलोटी वालाने मले त्यारे बेउनो च्रम नाना पणानो दूर थाय, तेम अजिमानी पुरुष उंची गरदन राखनारो अन्य जीवने नाना जुए, तुठ जाणे, अने बीजा पुरुषो ते अजिमानी पुरुषने तुठ जाणे,

एम अरपरस विचारमा विपमता रहेछे ते ज्यारे ज्ञान जागे त्यारे वेउना मनमां विषमता मटीने समपणुं आवी जाय ॥ ४० ॥

हवे एकला अनिमानीनी व्यवस्था कहे छे — अथ अनिमानी यथा —

सवैया इकतीसा — करमके नारी समुझे न गुनको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे है, होहि न नरम चितगरम घरमहुते, चरमकी दृष्टिसो नरम चूली रहै है, आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर नाएहू न मोले मानो पाथरके चहे है, देखनके हाउ नव पथके वटाउ ऐसे, मायाके खटाउ अनिमानी जीव कहे है ४१

अर्थ —जे करम बंधथी अती नारी छे हेषने गुण जाणेछे, पण गुणनो मर्म जाणतो नथी अने परम अन्याय तथा अधर्मनी रीत ग्रही राखेछे चित्तनेविपे नरमास तथा दया परिणाम नथी हेपनो अती घर्म ताप छे, तेथी गरम रहेछे, ज्ञान दृष्टी नथी अने चर्मरूप दृष्टीवडे नरममा चूल्यो फरे छे कोई विकट आसन वाधे तेने खोले नही, ने मोढेथी वचन बोले नही, मौन व्रती रहे, तेने ज्ञानी महा पुरुष जाणीने कोई माथु नमावे, तो तेनो सत्कार ने अग चेष्टा पण न करे, जाणिये पथर थवानीज इछा करतो होय नीवली जेम बालकने मरावववाने हाउ कहीये छइये तेम लोकोने मरावववाने वेप धरी हाउ वनीने वेसे, अने नव न्रमणना मार्गमा वटाउना सरखो चाले, एरीते माया जालना खाटनारा अनिमानी जीवने [illegible]ये ॥ ४१ ॥

हवे ज्ञानी जीवनी व्यवस्था कहे छे — अथ ज्ञानी यथा —

[illegible] इकतीसा — धीरके धैरया नवनीरके तरैया नयनीरके हरैया वर वीर [illegible]मारके मरैया सुवीचारके करैया सुख ढारके ढरैया गुनलोसो लह[illegible]िया सवनैके समुझैया सवहीके लघुनैया सबके कुबोल सहेहै [illegible]रदामके दमैया ऐसे रामके रमैया नर ज्ञानी जीव कहे है ॥४२॥

[illegible]ने धरनार, ससार सागरने तरनार, नवनीडने हरनार, मोटा सूर [illegible] पोताने साह्य आपवाने उमगी रह्याछे, कदर्पने मारनार, नला विचारनु करनार, सुख समाधिना ढालामा ढलनार, आत्माना गुणनो लव एटले अस तेमा लहलिहि रह्या छे, आत्मरूपना रीझनार, सर्व नयना सारनो रस समझनार, निरहकारी पणे सर्वना नाना भाई थई रह्याछे क्षमावतपणे सर्वना दुष्ट वचन सहेछे काम के० स्त्रीने वमैया के० छोडनार, दुखनी परपराना दमनार, एवा आत्मारामने विषे रमनारा मनुष्यने ज्ञानी जीव कहीये ॥ ४२ ॥

हवे शुद्धात्मना अनुभवनी प्रशंसा करेछेः—अथ शुद्धात्म अनुभव प्रसंसाः—

चोपाईः— जे समकिती जीव समचेती; तिन्हिकी कथा कहों तुमसेती; जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई; निर्विकल्प अनुभौ पद सोई.॥४३॥ परग्रिह त्याग जोग थिर तीनो; करम बंध नहि होइ नवीनो; जहां न राग दोष रस मोहे; प्रगट मोषमारग सुख सोहे. ॥ ४४ ॥ पूरव बंध उदे नहि व्यापे, जहां न भेद पुन्न अरु पापे; दरब भाव गुन निर्मल धारा, बोधविधान विविध विस्तारा. ॥ ४५ ॥ जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी; तिन्हिके हिरदे दुविधा केसी; जे मुनिषिपक श्रेणि चढि धाये; ते केवलि भगवान कहाये. ॥४६॥ दोहराः— इहिविधि जे पूरन भये, अष्ट करम वनदाहि; तिन्हिकी महिमा जो लखे, नमे बनारसि ताहि.॥ ४७ ॥

अर्थः— जे समकिती जीव छे ते समचेती के० वीतरागपणे समतावंत छे, अहो भव्य प्राणी, तेनी कथा हुं तमने कहुछुं. जांहां कोई प्रमादनी क्रिया नथी, तेने निर्विकार निर्विकल्प अनुभव पद कहीये, एटले अनुभवमां विकल्प नथी. ॥४३॥ जहां परिग्रहनो त्याग छे, अने त्रणे जोग स्थिर छे, त्यां नवीन कर्मनो बंध नथी थतो, वली जहां जीवने राग द्वेष रस मोह नथी, तेज प्रगटपणे मोक्ष मार्गनुं सुख के० प्रारंभ छे. ॥४४ ॥ वली जहां पुर्वे जे कर्मबंध छे, तेनो उदय नथी, अने जांहां पुन्य पापना भेदनो विचार नथी, अने जांहां साधुना सतावीस गुण द्रव्यपणे भावपणे निर्मल धाराये वही रह्या छे, वली जांहां बोधविधान के० ज्ञान[illegible], जे कार भात भातना विस्तारमां छे. ॥४५॥ जेनी एवी सहज अवस्था थई [illegible] नथी, त हृदयमां आत्म ओलखवानी दुविधा केम रहे! अने एज अवस्थाम[illegible] भुमी ते स ज क्षपक श्रेणी चढी उर्ध्व मुख धाये तेतो केवली भगवंत जाए[illegible]सत्ता पामीये. २०

अर्थः— ए रीते करी अष्ट कर्मरूप वनने बालीने पूर्ण आत्मा[illegible]:—
अने तेना महिमाने जे सत् पुरुष होय तेहिज जुएछे, एटले स[illegible]
तेने वणारसीदास नमस्कार करेछे ॥ ४७ ॥ [illegible] न जान

हवे मोक्ष पदार्थनी उत्पत्तिनो क्रम कहेछेः— अथ मोक्ष उत्पत्ति वन[illegible]

छप्पय छंदः—भयो शुद्ध अंकूर, गयो मिथ्यात् मूर नशि; क्रमक्रम होत उदोत, सहज जिम शुक्लपक्ष शशि; केवल रूप प्रकासि, भासि सुख रासि धरम ध्रुव; करि पूरन थिति आउ, त्यागि गतभाव परम हुव; इह विधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बूंद सागर भयो; अविचल अखंड अनभय अखय, जीव दरब जगमहि जयो. ॥४८॥

अर्थः—शुद्धतानो अंकुर प्रगट थतां मिथ्यात मूलथी नाश पाम्युं, तेवारे जेम अ

जवालीया पखवाडीयामा चद्रमा क्रमे क्रमे उद्योतवत थायछे, एरीते आत्मापण क्रमे क्रमे उद्योत थता केवल ज्ञान रूपनो प्रकाश थाय, अने आत्मानो निश्चल ध्रुव धर्म सुख समुद्र ते जाले, ते पछी आयुष्य कर्मनी स्थिती पूर्ण करीने अने मनुष्य गतिनो जाव छोडीने परमात्मारूपे थाय, एरीते अनन्य प्रभुता एटले सर्वथी श्रेष्ट ता धारण करे, कोनी पेठे तो जेम पाणीनी बुंद बुद एकठी मली समुद्र थायछे तेम आत्मा गुणना अस क्रमे क्रमे प्रगट करतो पूर्ण थयो, ते पछी अविचल अ खंड अजय ने अक्षय एवु जीव द्रव्य जगतनेविषे सदा जयवत थायछे. ॥ ४८ ॥

हवे अष्ट कर्मनो नाश थयेथी जे आत्माना सहज आव गुण प्रगट थायछे ते कहेछे — अथ अष्ट कर्म नाशते अष्ट गुन प्रकाश वर्ननं —

सवैया इकतीसा — ज्ञानावरनीके गये जानिये ज्रु है सु सब, दसनावरनके गयेते सब देखिये, वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चा रित विसेखिये, आउ कर्म गये अवगाहन अटल होइ, नाम कर्म गयेते अमूरती क पेखिये, अगुरुलघुरूप होई गोत कर्म गये, अतराय गयेते अनत बल लेखिये ४९

अर्थ — ज्ञानावरणीय कर्म नाश थता लोकालोकमांजे वस्तु छे, ते सर्व जणाय, एटले, केवल ज्ञान प्रकाश थाय, अने दर्शनावरणीय कर्मनो क्षय थवाथी लोकालोकना भाव [illegible]मान्यपणे जोईये, एटले केवल दर्शनगुण प्रगट थाय, अने वेदनीय कर्मना क्षय [illegible]बाध रस उपजे एटले आत्मा बाधपणाथी मुक्त थाय, ते अबाधपणे अन [illegible] गुण उपजे, वली मोहनीय कर्मनो नाश थयेथी विशेषपणे शुद्ध चारित्र [illegible]ले यथाख्यात चारित्र स्पष्ट गुण होय, आयु कर्मनाश थयेथी अव[illegible] अनत स्थिति थाय, (आयुकर्मगते निश्चला स्थितिर्निवर्तति) नाम कर्म [illegible]त्तिकपणु जीवनु शुद्ध स्वरूप उपजे, गोत्र कर्मनो क्षय थयेथी [illegible]पजे, जेथी जीवमा लघुपणु तथा गुरुपणु न होय, अने अतराय [illegible] थयेथी अनत बल उपजे, एटले अनत वीर्यपणानो गुण उपजे छे ए [illegible] गुण उपजे ॥ ४९ ॥

इति श्री नाटक समयसारनो बालबोधरूप नवमो मोक्ष द्वार समाप्त

दोहरा — इति श्रि नाटिक ग्रथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार, अब बरनों संक्षेपसों, सरब विशुद्धीद्वार ॥ ५० ॥

टले वस्तुनो स्वभाव विचारीने परभावने त्यागीने पोताना सहज स्वभावमां आवे छे, तेथी सुखी दुःखी इत्यादि विकल्पविना कर्म संयोगरूप उपाधिविना, एवा आत्माने आराधीने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जोगनी जुगति साधी समाधि एटले सहज स्वरूपमां समायछे. ॥ ५६ ॥

हवे भोक्ता जीवनी अवस्थानुं वर्णन करेछेः—अथ जीव भोक्ता वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः— चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन भंडारि अपहारी कर्म रोगको; प्यारो पंडितनिको हुस्यारो मोख मारगमें न्यारो पुदगलसों उजियारो उपयोगको; जाने निजपर तत्त रहे जगमें विरत्त गहे न ममत्त मन वच काय जोगको; ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करमको, करता न होइ भोगता न होइ भोगको. ॥ ५७ ॥ दोहराः— निरभिलाष करनी करे, भोग अरुचि घट मांहि; तातें साधक सिद्ध सम, करता भुगता नांहि. ॥ ५८ ॥

अर्थः— चेतना चिन्हनो धरनार, निश्चल स्वभाव ज्ञातापणुं तेनो अधिकारी, ज्ञानादिक गुणरूप रत्नना भंडारनो भंडारी छे, कर्मरूप रोगनो विनाश करनार, पंडितनो प्यारो एटले तत्व ज्ञानीने वल्लभ, मोक्षमार्गमां हुशीयार के० सावधान, पुद्गलिक धर्मथी जुदो रेनार, मतिश्रुत प्रमुख उपयोगनुं अजवाळुं जेना हृदयमां थयुंछे, पोताना अने परका सर्व तत्वनो जाणनार, जगतमां विरक्तपणे रेनार, एटले वेरागी, मन वचन ने कायाना योगनी ममता नही राखनार माटे ज्ञानी जीव ज्ञानावरणी प्रमुख कर्मनो कर्त्ता पण नथी, अने दुःख सुखना भोगनो भोक्तापण नथी. ॥ ५७ ॥ इछाविना क्रिया करवी, अने घटपिंडमां भोगनी रुची नही राखवी, तेथी मुक्तिनो साधक पुरुष सिद्ध समान कह्यो, अने ते कर्त्ता तथा भोक्ता नथी. ॥५८॥

हवे अहंबुद्धि थकी कर्त्तापणु थायछे ते कहेछेः— अथ अहंबुद्धि वर्ननंः—

कवित्तछंदः— ज्यों हिय अंध विकल मिथ्यात धर मृषा सकल विकलप उपजावत; गहि एकंत पछ आतमको, करता मानि अधोमुख धावत; त्यों जिनमती दरव चारित कर, करनी करि करतार कहावत; वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विनु समकित भवपार न पावत. ॥ ५९ ॥ चोपाईः— चेतन अंक जीव लखि लीन्हा, पुद्गल करम अचेतन चीन्हा; वासी एक खेतके दोऊ; यदपि तथापि मिले नहि कोऊ. ॥ ६० ॥ दोहराः— निजनिज भाउ क्रिया सहित, व्यापक व्यापि न कोइ; करता पुद्गल करमको, जीव कहांसों होइ. ॥ ६१ ॥

अर्थः— जेम कोइ हृदय अंधपुरुष विकल मिथ्याधारीने हैयामां विकल्प उप

जावे, ते सर्व जूठा छे ते क्रियावादीनो एकांत पक्ष ग्रहीने आत्माने कर्त्ता मानीने अधोमुख के० नीची गतीने पकडी रह्योछे, एवो जे जिनमती छे ते भाव चारित्र विना अने द्रव्य चारित्रयुक्त करणी करेछे, ने क्रिया करण एटले शुभ क्रियानो कर्त्ता पोते केहेवायछे, ते मुक्तिने वाछे तोपण मूढमतिछे, भवनो पार समकित विना पामतो नथी ॥ ५९ ॥ अने जीवनो अक के० चिन्ह चेतना जाणवी, अने पुद्गल तथा कर्म ए बेउने जड जाणवा चेतन अने अचेतन बेउ एक क्षेत्रा वगाहीछे एटले एक क्षेत्रवासी छे, तथापि कोई कोईथी मळे एवा नथी ॥६०॥ जे पदार्थ छे ते पोतपोताना भावनी क्रिया सहित रहे छे, जेमा व्यापी रहे ते वस्तुने व्याप्य कहीये अने व्यापी रहेनार पदार्थने व्यापक कहीये तेथी पुद्गल व्याप्यमा जीवनुं व्यापकपणु नथी, माटे पुद्गलीक कर्मनो कर्त्ता जीव क्याथी थाय अर्थात् न ज थाय ॥ ६१ ॥

हवे व्यवहारमा जे रीतें जीवनुं कर्त्तापणुं ठरेछे ते जाणवेछे'-अथ कर्त्ता कथन -

सवैया इकतीसा -जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है, लछन सरूप गुन परजे प्रकृति भेद, दुहूमें अनादिहीकी दुविधा व्हैरही हे, एते परि भिन्नता न भासे जीव करमकी, जौलों मिथ्या भाउ तोलों ओंधी वाउ वही हे, ज्ञानके उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई, जीव कर्म पिंडको अकरतार सही हे ॥ ६२ ॥ दोहरा.- एक वस्तु जेसी जु हे, तासों मिले न आन, जीव अकर्त्ता करमको,यह अनुभो परवान. ॥ ६३ ॥

अर्थ - जेम आकाश प्रदेशमा पुदगल कर्म अवगाहि रहे छे, तेज आकाश प्रदेशमा जीव प्रदेश पण अवगाहि रहे छे. एम जीव अने पुद्गल एक क्षेत्रना वासी छे, तथापि चेतननी सत्ता अने जडनी सत्ता ए बे जुदी छे अनादि कालनी लक्षण भेदवडे स्वरूप भेदवडे गुणपर्यायवडे ने प्रकृति भेदवडे ए बेउनेविषे द्विविधता चाली आवेछे तेम छता लक्षण प्रमुखनी भिन्नता मिथ्यात्व भावने लीधे जीव अने कर्मनी ज्या सुधी भासे नही, त्या सुधी उंधोवायु वहे छे एटले जीवने कर्त्ता मानीये छये अने ज्ञाननु उद्योत थवाथी सम्यक्तनी एवी शुद्धता थई के तेथी कर्म पिंडनो अकर्त्ता जीव सही थयो छे एम जाण्वु ॥ ६२ ॥ जे वस्तु जेवीरीते छे ते साथे आनके० बीजा स्वरूप वाळी वस्तु मळती नथी एकमेक थती नथी एथी जीव कर्मनो अकर्त्ता छे ए अर्थ अनुभव प्रमाणथी समजाय छे ॥ ६३ ॥

हवे मूढ जीव कर्मनो कर्त्ता मानी लेय छे ते कहे छेः—अथ मूढकर्त्तायहकथनः-

चोपाईः— जेडुरमती विकल अज्ञानी; जिन्हि सुरीति पररीति न जानी; माया मगन भरमके भरता; ते जिय भाव करमके करता ॥ ६४ ॥ दोहराः— जे मिथ्यामति तिमरसों, लखे न जीव अजीव; तेई भावित करमके, करता होइ सदीव ॥ ६५ ॥ जे अशुद्ध परिनति धरे, करे अहं परवान; ते अशुद्ध परिनाम के, करता होइ अजान ॥ ६६ ॥

अर्थः— जे जीव डुष्ट बुद्धिवडे विकल छे, अज्ञानी छे, जे पोतानी ने पारकी रीत जाणता नथी माया जालमां मग्न छे, भ्रमनाभरता के० धणी छे, ते जीव भाव कर्मना करनारा छे ॥ ६४ ॥ जे जीव मिथ्यामति अंधकारथी जीव अजीव ने भिन्न पणे जाणता नथी, ते जीव सदाकाल भावित कर्मना कर्त्ता छे, एटले पोतपोताना कर्मनो जे स्वभाव तेनेज भावित कर्म कहिये ॥ ६५ ॥ जे जीव अशुद्ध परिणतिने धरेछे, सर्व क्रियामां अहंकार बुद्धिथी अहं कर्त्ता एवुं प्रमाण करछे, ते जीव अजाण थका अशुद्ध परिणामना कर्त्ता थायछे ॥ ६६ ॥

अथ शिष्य प्रश्नः—

दोहराः— शिष्य कहै प्रभु तुह्म कह्यो, डुविध करमको रूप; दर्व कर्म पुदगल मई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ ६७ ॥ करता दरबित करमको, जीवन होइ त्रिकाल; अब इह भावित करम तुम, कहो कौनकी चाल ॥ ६८ ॥ करता याको कौन है, कौन करै फल भोग; के पुदगल के आतमा, के डुहुको संयोग ॥ ६९ ॥

अर्थः— हवे शिष्य प्रश्न पुछे छे के, हे प्रभु तमे कह्युं छे के, कर्मनुं स्वरूप बे प्रकारनुं छे; एकतो पुदगलमय ते पुदगल पिंमरूप ड्रव्य कर्म छे, अने बीजुं भाव कर्म छे ते चिद्रूप के० चेतनाविकार रूप छेः॥ ६७॥ वली स्वामी तमे एवुं कह्युं के ड्रव्य कर्मनो करनार जीव त्रणे कालमां नथी, त्यारे भावित कर्म तमे कोनी चाल कहो छो? ॥ ६८ ॥ ए भावित कर्मनो कर्त्ता कोण छे, ने एना कर्म फलनो भोक्ता कोण छे? पुद्गल कर्त्ता भोक्ता छे? के आत्मा कर्त्ता, भोक्ता छे? किंवा पुद्गल अने आत्मा ए बेहुनो संयोग कर्त्ता भोक्ता छे ॥ ६९ ॥

हवे आ प्रश्ननो गुरु उत्तर आपेछेः— अथ गुरु उत्तर कथनः—

दोहराः— क्रिया एक करता जुगल, यों न जिनागम मांहि; अथवा करनी औरकी, और करै यों नाहि ॥ ७० ॥ करे और फल भोगवे, और बने नहि एम;

जो करतासो नोगता, यहे यथावत जेम॥३१॥ नाव कर्म कर्त्तव्यता, स्वयं सिद्ध न हि होइ, जो जगकी करनी करे, जग वासी जिय सोइ ॥३२॥ जिय करता जिय नोगता, नाव कर्म जिय चालि, पुदगल करे न नोगवे,डुविधा मिथ्या जालि॥३३॥ताते नावित करमको, करे मिथ्याती जीव, सुख डुख आपद सपदा,नूजे सहजसदीव॥३४॥

अर्थ – क्रिया करणी एक होय अने तेना करनारा जुगल के० वे एवी वात जिनेश्वरना आगममा नथी कही, तेम पुद्गल अने जीव ए बेउ एक क्रिया करे नही, अथवा बीजानी क्रिया ठे अने करनार वली बीजोज ठे, एवु पण ठे नही, एटले पुदगलनी क्रिया जीव न करे अने जीवनी क्रिया पुदगल न करे॥३०॥ए रीते करे एक अने तेनु फल नोगवनार बीजोज होय एवु बने नही, एवुं जिनेश्वरना आगममा नथी कह्यु, एटले पुद्गलनी क्रियानु फल जीव नोगवे नही, केमके जे कर्त्ता तेहिज नोगता, जे कर्म करे तेज फल नोगवे, ए वात केवल प्रमाणे खरी ठे ॥३१

नाव कर्मनी कर्त्तव्यता के० क्रिया तेतो स्वयं सिद्ध न थाय, एटले नाव कर्म पोतानी मेले सिद्ध नही थाय तेथी एवु ठरे ठे के जे जगतनी क्रिया करे ते नाव कर्मनो कर्त्ता ठे, एटले गमनागमन क्रिया करे तेज नाव कर्मनो कर्त्ता जगत वासी जीव ठे॥३२॥जीवज कर्त्ता अने जीवज नोक्ता ठे, जीवनी चल विचलताथी नाव कर्म उपजे ठे, एथी नावित कर्म जीवनी चाल ठे. ए नावित कर्मने पुद्गल करे नही, तेम नोगवे पण नही, एमा जे अद्वैत मतवाला द्विधा राखे ठे ते मिथ्या जाल ठे ॥ ३३ ॥ तेमाटे जे मिथ्याती जीव ठे, ते नावित कर्मने करे ठे तेणे करी सुख डुख आपदा सपदा सदा सहजे नोगवे ठे ॥ ३४ ॥

हवे एकांत वादिसांख्यमतना वचननु वर्णन करे ठे – अथ एकात वादी वर्नन –

सवैया इकतीसा – केई मूढ विकल एकत पठ गहे कहे आतमा अकरतार पूरन परम है, तिन्हसों जु कोउकहे जीव करता है तासो, फेरी कहे करमको करता करम है, ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्म घाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोहको नरम है, तिन्हको मिथ्यात्त दूरि करिवेको कहे गुरु स्यादवाद परवान आतम धरम हे ॥ ३५ ॥

अर्थ – कोई मोह मूढ जीव ज्ञानवडे विकल एकात पक्ष ग्रहीने एम कहे ठे के, आत्मा अकर्त्ता ठे, परम पूर्ण ठे, ते एकात वादीने कोई एवु कहे के, आत्मा कर्त्ता ठे, तेने साख्यमति प्रमुख एकात वादी कहे ठे के, कर्मनु कर्त्ता कर्मज ठे. एवा मिथ्यातमा मग्न मिथ्याती जीव ब्रह्म घाती ठे तेमना हैयामा अनादि का

नथी मोह कर्म जाग्युं रहे छे, ते मिथ्याती जीवनुं मिथ्यात दूर करवाने स्याद्वाद रूप जे आत्म धर्म छे. ते धर्मज बधी रीत प्रमाण करी कहे छे ॥ ७५ ॥

हवे जेम स्याद्वाद वस्तु स्वरूप छे तेम कहे छेः—अथ स्याद्वाद कथनः—

दोहाः— चेतन करता नोगता, मिथ्या मगन अजान; नहि करता नहि नोगता, निहचे सम्यकवान ॥ ७६ ॥ सवैया इकतीसाः— जैसें सांख्यमति कहै अलख अकरता है सर्वथा प्रकार करता न होइ कब ही; तैसें जिनमति गुरु मुख एक पक्ष सुनि, याही नाति मानै सो एकंत तजो अबही, जोलों डुरमति तौलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सब ही; जाके घट ज्ञायक सुनाउ जग्यो जब ही सो, सोतो जग जालसों निरालो नयो तबही ॥ ७७ ॥

अर्थः— मिथ्यातमां मग्न अजाण थको चेतन कर्त्ता छे. अने नोगता पण छे अने समकेति जीव निश्चेथी कर्त्ता पण नथी अने नोक्ता पण नथी ॥ ७६ ॥

जेम सांख्यमति पोताना मतमां एवी प्ररूपणा करेछे के, जे अलक्षरूप छे ते सर्वथा अकर्त्ता छे, पण क्यारे कर्त्ता थतो नथी, अने सत्व रज तम गुण प्रकृति कर्त्ता छे, एरीते जे सांख्यमतिवाला कहे छे, तेम कोई जिनमती पण कोई गुरुना मुखथी निश्चे नयनो एक पक्ष सांनलीने एमज माने, एटले जीवने अकर्त्ता माने छे. पण श्री जिनेश्वरना मतमां स्याद्वाद पक्ष छे. ते एवुं ठरावे छे के जांहां सुधी डुष्ट बुद्धि मिथ्यामती अहं बुद्धिमां छे, तांहां सुधी जीव कर्मनो कर्त्ता छे; अने सुमती आवेथी सदा अकर्त्ता छे, जेवुं छे तेवुंज अकर्त्ता कह्यो, जेना घटमां पोतानो ज्ञायक स्वनाव ज्यारे जाग्यो ते वखतथीज ते जगजालथी निरालो थयो, तेणे अर्ध पुजल परावर्त्तमां संसार लावी मुक्यो ॥ ७७ ॥

हवे एकांत वादी बोधमतीनि बुद्धिनुं वर्णन करेछेः— अथ बोध मति वर्णनं

दोहराः— बोध छिनक वादी कहै, छिनु नंगुर तनुमांहि; प्रथम समे जो जीव है, डुतिय समे सो नांहि ॥ ७८ ॥ ताते मेरे मतविषे, करे करमजो कोइ; सो न नोगवे सरवथा, और नोगता होइ ॥ ७९ ॥

अर्थः— बोध क्षणिक वादी छे, ते एवुं कहे छे के शरीरमां रेहेनारो जे पदार्थ छे ते क्षणनंगुर छे एटले प्रथम समयमां जे जीव पदार्थ शरीरने विषे छे, ते बीजा समयमां न पामियें, एथी सर्व क्षणनंगुर छे ॥ ७८ ॥ वली बोध कहे छे के मारा मनमां एवी श्रद्धा ठरी छे, के जे कोई कर्म करेछे, ते तो कर्मना फलनो नोगता नथी. क्षणनंगुर पणाने लीधे बीजोज नोगता थाय छे ॥ ७९ ॥

हवे एकात वादी बोधमतीना खमननो उपदेश करछे —अथ मतखमन उपदेश —

दोहरा —यह एकत मिथ्यात पप, दूरि करनके काज, चिद विलास अविचल कथा, नाषै श्री जिनराज ॥ ८० ॥ बालापन काहू पुरुप, देख्यो पुर कइ कोइ, तरुन नये फिरिके लख्यो, कहे नगर यह सोइ ॥ ८१ ॥ जो डुहु पनमे एक थो, तो तिन्हि सुमिरन कीय, और पुरुपको अनुनव्यो, और न जाने जीय ॥ ८२ ॥ जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जेनमत शुद्ध, तब इकात वादी पुरुप, जैन नयो प्रति बुद्ध ॥ ८३ ॥

अर्थ — ए जे एकात क्षणनंगुरपणुं ते मिथ्यात पक्ष छे, तेने दूर करवाने चिदविलास अविचल कथा के० जीवना अचल पदनी वात सामान्य केवलीना राजा श्री जिनेश्वर देव कहेछे. ॥ ८० ॥ कोईक पुरुपे बाल्यावस्थामा एक नगर दीठुं होय ने ते पछी ज्यारे जुवानीमा आव्यो त्यारे फरीथी तेज नगरने तेणे जोयु त्यारे तेने रेता रेता स्मृती आवी के, आ नगर तो में बालपणामा जोयु हतु तेज छे ॥ ८१ ॥ हवे अंही जीवना अचलपणानो संनव देखाडेछे — के, बेहु कालमा जो ते एकज हतो, तेवारे ते पुरुपे बालपणामा ते नगर जोयु हतु त्यारे तेने जुवानीमा तेनु स्मरण थयु ए वात सत्य छे, एटले बने वखतमा नगर तेज खरु छे, तेम एक पुरुषनो अनुनव के० नोगवेलु कार्य तेने बीजो पुरुप जाणी शके नही. ॥ ८२ ॥ ज्यारे आ वात प्रगट सांनली अने जैनना शुद्ध मतनी वात सानली त्यारे एकांतवादी पुरुपे प्रतिबोध पामीने जैनमत ग्रहण कीधो अने बोधमतने छोडी दीधो ॥ ८३ ॥

हवे बोधमतीना क्षणनंगुरपणामा सद्दहणा केम थई ते कहे छे —

अथ बोध मतीकी सद्दहना कथन —

सवैया इकतीसा — एक परजाय एक समैमे विनसि जाइ, दूजी परजाय दूजे समै उपजति है, ताको छल पकरिके बोध कहे समै समै, नवो जीव उपजे पुरातनकी षति है, ताते मानै करमको करता है और जीव, नोगता है और वाके हिए ऐसी मति है, परजै प्रवानको सरवथा दरब जाने, ऐसे डुरबुद्धिको अवश्य डुरगति है ॥ ८४ ॥

अर्थ — हर कोई डव्यनो एक समयमा जे एक पर्याय छे, डव्य क्षेत्र काल नावने लीधे अवस्था नेद छे, तेतो पर्याय ते समयमाज विनाश पामे छे, अने बीजा समयमां बीजो पर्याय उपजे छे, एवी जेननी वाणी छे ते वातनेज बोध

मतीवाळा निश्चळपणे पकडी राखीने कहे छे के, समय समय नवो नवो जीव उपजे छे, अने पाछला जूना जीवनी हाणी थायछे; वळी आम मानेछे के कर्मनो कर्त्ता कोई बीजो जीवछे अने कर्मनो भोगता कोई बीजोज जीव छे. एम बौधमति क हेछे; द्रव्यना पर्यायतो समयमां फरे छे, तेने बोधमति पर्याय प्रमाणने सर्वथा प्रकारे द्रव्यज जाणे छे. एवा दुर्बुद्धिने अवश्य दुर्गतीज प्राप्त थाय छे. ॥ ७४ ॥

हवे दुर्बुद्धि अने दुर्गतीनु लक्षण कहे छेः—अथ दुर्गति स्थिति लक्षणः—

दोहराः— दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल; गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुगति न होइ त्रिकाल ॥ ७५ ॥ कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम शुद्धि, रहै अध्यातमसों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि ॥ ७६ ॥ सवैया इकतीसाः— कायासें विचारि प्रीति मायाहिमें हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी; चूंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंहि पाई गाडे पें न छाडे टेक पकरी; मोहकी मरोरसों भरमको न छोर पावे, धावै चिहु और ज्यों वढावे जाल मकरी; ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूली, फूली फिरे ममता जंजीरनिसों जकरी. ॥७७॥ बात सुनि चौक उठे बातहिसों भौकी उठे, बातसों नरम होइ बातहींसो अकरी; निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी; मोख न सुहाइ दोख देखै तहां पेंठि जाई, कालसो डराई जैसे नाहरसों बकरी; ए सी दुरबुद्धि भूली झूठके झरोखे झूली, फूली फिरे ममता जंजीरनिसों जकरी॥७८

अर्थः— मिथ्यामतिने दुर्बुद्धि कहियें, अने मिथ्या चालने दुर्गति कहियें, जे दु ष्ट बुद्धि छे, ते एकांत मतीने ग्रहणकरी रहेछे, तेने त्रणे काळमां मुक्ति न थाय. ॥ ७५ ॥ हवे दुर्बद्धिनी व्यवस्था कहेछेः— जे आत्माथी भिन्न होय ते अनात्मा कहिये. तेअनात्मानी कथा करे आत्मानी शुद्धता न जाणे, अने जे आत्मने आ श्रय विचार छे तेने अध्यात्म कहियें, ते तेनाथी दुराराध्य के० दुःखे समजायो जाय तेनाथी दुर्बुद्धि जीव विमुख रहे छे ॥ ७६ ॥ दुर्बुद्धिनो विचार कहेछेः—कायासाथे प्रीति विचारे हारं जीत करी मायामां गही रहे, हठ पकडी रहे, जेम हारल प क्षी पोताना पगमां लाकडी पकडीज राखे छोडे नही. वळी बीजो दृष्टांत एक छे; जेम कोई एक चोर चुंगलीना बंध देई करी गोहने मेहल अथवा हवेली उपर चडावे छे, ते बंधना जोरथी गोह भुमीने पकडी राखे, ने त्यां पोताना पग घटी राखे, पण जे टेक पकडी ते मूके नही, तेम मोह कर्मनी मरोड लागी तेथी भ्र मनुं ठेकाणुं पामे नही, एटले भ्रम छोडे नही. जेम मकडी जाल वधारती पसार

ती चारे तरफ दोडे छे, तेम चारे तरफ दोडतो फरे, ए रीते दुर्बुद्धिये चूली जुवने ऊरुखे फुली रहेछे, ने ममतारूप दुर्बुद्धिना जंजीरनी बेडीने जकडी रह्यो छे, ॥८७॥
वली एवाने कोई अध्यात्मनी वात कहे त्यारे चोंकी उठे, ने जो जो करी उठे, कदाग्रह करे अने पोताना मनने रुचती वातथी नरम थाय ने मनमानती वात न थाय तो प्रकृति आकरी करे, मोक्षमार्गना साधकनी निंदा करे, अने जे हिंसक अधर्म कहेछे, तेनी प्रशंसा करे, पोतानी मोटाईने साता सुख समजे असाताने फकीरी जाणे, मोक्षनी वात सुहाय नही, ज्या कोई दोष जुए त्या चतुराईनुं अभिमान बतावे. अने मृत्युथी एवो डरे के, जेम नाहीरथी बकरी डरे, ए रीते डरतो रहे एम दुर्बुद्धि जीव चूल्यो फरेछे, ने जूवने ऊरुखे जुलतो ममतारूप बेडीमा बंधाई रह्योछे ८८

हवे एकात पक्षीना मतनी स्थापनाउपर अनेकांत स्याद्वादी मतनी प्रशंसा करेछे –

अथ अनेकात श्लाघा कथन –

कवित्त छंद – केई कहे जीव छिन भंगुर, केई कहे करम करतार, केई कर्म रहित नित जपहि, नय अनत नाना परकार, जे एकत गहे ते मूरख, पंडित अनेकात पखधार, जैसे भिन्न भिन्न मुगतागन, गुनसो गहत कहावे हार ॥ ८९ ॥
दोहरा – जथा सूतसंग्रहविना, मुक्तमाल नहि होइ, तथा स्याद्वादी विना मोख न सधे कोई. ॥ ९० ॥
अर्थ – कोई बोध मती जेवा तो जीवने क्षण भंगुर कहे छे, कोई मीमासक सरखा कर्मने कर्त्ता मानेछे, कोई सांख्यमती सरखा तो सदा जीवने कर्मरहित कहे छे, एरीते अनत नय नाना प्रकार कहे छे, एमाथी जे एकात पक्ष ग्रही रहेछे ते तो मूर्ख छे अने पंडित जन जे छे, ते अनेकात पक्ष ग्रहेछे, जेम एक माला मा मोतीनो समुदाय आपणी आपणी सत्तामा सउ जुदा जुदा छे पण ते सुतर मा परोव्याथी सर्वेनु एक हार नाम पडे छे,॥८९॥ तेवो अनेकात मत छे, केम के, सूतरना संगविना मोतीनी माला बने नही, तेम स्याद्वादमत धारण कीधा शिवाय मोक्षनो साधनहार थाय नही ॥ ९० ॥
हवे मत भेदनु कारण पाच नय छे तेनुं वर्णन करेछे – अथ पच नय वर्नन –
दोहरा.– पद सुभाउ पूरवउदे, निह्चे उद्दिम काल, पक्षपात मिथ्यात पथ, सरबंगी सिव चाल ॥ ९१ ॥
अर्थ – कोई पद वस्तु स्वभाव माने कोई पूर्व कर्मनो उदय माने, कोई निश्चय

नी संगतीथी उलट पालट थई रह्योछे, जाणे नटनी बाजीनो खेल करतो होय नी तेम खेल करेछे. ॥ ए५ ॥

अथ अनुभव व्यवस्था कथन.

दोहराः— नट बाजी विकलप दसा, नाही अनुभौ जोग; केवल अनुभौ करन को, निर विकलप उपयोग. ॥ एद ॥

अर्थः— अनुभवमां आत्मद्रव्यनी जे अवस्था पामिये ते कहेछे. पूर्वे कही जे नट सरखी जीवनी उलट पालट बाजी छे, ते तो विकल्प दशा छे. ए दशा अनुभवमां योग्य नथी निःकेवल अनुभव करवाने निर्विकल्प उपयोग आपवो तेज सत्य छे. ॥ एद ॥

हवे अनुभवमां निर्विकल्प उपयोग आपवुं तेनु दृष्टांत कहेछेः—

अथ अनुभो दृष्टांत कथनः—

सवैया इकतीसाः— जेसे काहु चतुर संवारी हे मुगतमाल मालाकी क्रियामें नाना भांतिको विज्ञान है; क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वालो, मोतीनकी शोभमें मगन सुखवान हैं; तेसें न करे न भुजे अथवा करे सु भुजे, ओर करे ओर भुजे सब नै प्रवान है; यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग निरविकलप अनुभो अमृत पान हैं. ॥ ए७ ॥

अर्थः— जेम कोई चतुर पुरुषे मोतीनी माला समारीने बनावी ने तेमां भात भातनुं विज्ञान छे, पण ते मालानो पहेरनारो तेनी क्रियानो विकल्प जोतो नथी, पण मोतीनी शोभाथी मगन ने सुखवान थई रहे छे, जेम मोतीनी मालामां अनेक विज्ञान छे, तेम अही पण अनेक विकल्प छे, आत्मा कर्त्ता नथी, भोक्ता नथी, अथवा कर्त्ता छे, भोक्ता छे, अथवा राग द्वेषादिक करनारा बीजा छे, अने भोगवनारा बीजा छे; ए सर्व नय प्रमाण छे. यद्यपि ए सर्व नय प्रमाण छे, तथापि ए सर्व विकल्प विधि त्यागवा योग्य छे. केमके अनुभव जे छे तेतो निर्विकल्प छे अने अमृतपान समान छे उपादेय छे. ॥ ए७ ॥

हवे स्याद्वादी आत्माने कर्मनो कर्त्ता जे नयथी मानेछे ते कहेछेः—अथ कर्त्ताकथनः—

दोहराः— दरब करम करता अलख, यहु विवहार कहाउ; निहचे जोजे सो दरब, तेसो ताको भाउ. ॥ ए८ ॥

अर्थः— पुदगल द्रव्यरूप कर्मनो कर्त्ता अलख पुरुष आत्मा छे, ए व्यवहार

मां केवाई शके ने, निश्चय नयमा तो ए वात ठे के जेवु जे द्रव्य होय तेवु तेनुं नाव स्वरूप होय, एथी पुद्गल द्रव्यनी क्रिया पुद्गलवडेज बनेठे ॥ ९८ ॥

हवे जेवु विपरीतपणुं बुद्धिमा नासेठे, तेवु कहेठे –अथ विपरीत बुद्धिकथन –

सवैया इकतीसा – ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिनमे यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञान रूप कह्यो है, ज्ञेयज्ञय रूप यो अनादिहीकी मरजाद, काहु वस्तु काहुको सुनाउ नहि गह्यो है, एते परि कोउ मिथ्या मति कहे ज्ञेयाकार प्रति नासनिसो ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है, याहि डरबुद्धिसो विकल नयो मोलत है समुझे न धरम यो नर्ममाहि वह्यो है ॥ ९९ ॥

अर्थ – ज्ञाननो ए सहज स्वनाव ठे के, घट पट प्रमुख ज्ञेय के० जाणवाजोग जे पदार्थ ठे, तेनो जे आकार ठे, तेजरूपे आत्मानु ज्ञान परिणमे, यद्यपि ए वात प्रमाण ठे तो पण ज्ञान जे ठे, ते ज्ञानरूपज कहेवाय पण ज्ञेयरूप न कहेवाय अने जे ज्ञय पदार्थ ठे ते ज्ञानमा परिणम्यो ठे तोपण ज्ञेयरूपज केवाय, पण ज्ञानरूप न केवाय एवी अनादि काळनी मर्यादा ठे, कोई वस्तु बीजी वस्तुनो स्वनाव ग्रहण करे नही, तेम जुदो जुदो स्वनावपण धारण करे नही, एवी मर्यादा बंध वातठे, तेम ठता कोई वैशेषिक प्रमुख मिथ्यामति कहेठे के ज्ञेय पदार्थना आकार प्रति नासे ठे, तेथी ज्ञान पदार्थ अशुद्ध थई रह्योठे, ज्यारे ए अशुद्धपणु मटी जशे तारे मुक्तिथशे, एज डुष्ट बुद्धिथी मिथ्यात्व मोहनो विकल्प थयो, तेथी अहि तहि विकल थईने मोळे ठे, अने धर्म के० वस्तुनो स्वनाव जाणतो नथी तेथी न्रममां वह्यो फिरे ठे ९९

हवे सर्व पदार्थ पोताना स्वनावमा व्यापीरह्याठे ते कहेठे –अथव्यापकताकथन –

चोपाई – सकल वस्तु जगमे असुहाई, वस्तु वस्तुसो मिले न काई, जीव वस्तु जाने जग जेती, सोक निन्न रहे सबसेती ॥ ४०० ॥

अर्थ – जगतनेविषे सर्व नाव असहाय पणे वर्त्ते ठे कोई कोईनो सहाय कारी नथी, एज अर्थ प्रगट पणे कहे ठे, के एक वस्तु बीजी विलक्षण वस्तु साथे मळे नही जगतमां जेटली वस्तु ठे, तेटलीने जीव जाणे ठे एटले सर्व ज्ञेय वस्तु जीवना ज्ञानमा परिणमे ठे, तोपण जीव सर्व वस्तुथी जुदोज रहे ठे, एम पोतपोताना जुदा लक्षण ठे तेथी जुदा रहेठे ॥ ४०० ॥

हवे व्यवहारनी केवत देखाडेठे -- अथ व्यवहार कथन --

दोहरा – करम करे फल नोगवे, जीव अज्ञानी कोइ, यह कथनी व्यवहार की वस्तु सरूप न होइ ॥ ४०१ ॥

अर्थः-- कोई अज्ञानी जीव छे, ते कर्मने करेछे अने तेनुं फल पण भोगवेछे, ए केवल व्यवहारमां छे. पण जेवुं वस्तुनुं स्वरूप छे, तेवी केवल नथी ॥ ४०१ ॥

हवे व्यवहारने प्रमाण करे एवी विपरीत बुद्धिनुं वर्णन करे छेः--

अथ विपरीत बुद्धि वर्ननंः--

कवित्त छंदः-- ज्ञेआकार ज्ञानकी परिनति, पैं वह ज्ञान ज्ञेय नहि होइ; ज्ञेय रूप खट दरव भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पदसोइ; जाने भेद भाउ सुविचछन गुन लछन सम्यक दृग जोइ; मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहिकोइ १

अर्थः-- जेवो ज्ञेय वस्तुनो आकार छे, तेवी ज्ञाननी परिणती छे. एटले ज्ञान घट पटादिक ज्ञेयना आकार परिणाम छे, पण ज्ञान छे ते ज्ञेय रूप न थाय. जगतमां जे ज्ञेय वस्तु छे ते छ ड्व्य छे तेतो भिन्न पद के० जूदा जूदा स्वभावथी केवा योग्य छे, अने जे आत्मापणुं कहियें तेतो ज्ञानरूप छे एवो भावनो भेद छे, ते गुण लक्षण उलखीने जे भलो विचक्षण अध्यात्मनो वेत्ता सम्यक दृष्टी होय तेज जाणे. पण वैशेषिक मति जेवो मूर्ख होय ते ज्ञानमां आकार विकल्प जोईने कहे अहो आ ज्ञानमां आकार भासे छे तेतो प्रगट कलंक छे. तेने कोई केम लखे नही ॥ २ ॥

हवे मिथ्यामति जीव पोतानी मतीने दृढ करेछेः-- अथ मिथ्यामति कथनः--

चोपाईः--निराकार जो ब्रह्म कहावे; सो साकार नाम क्यों पावे; ज्ञयाकार ज्ञान जबताई; पूरन ब्रह्म नाहि तबताई ॥३ ॥ ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने; नास करनको उदिम ठाने; वस्तु सुभाउ मिटे नहि क्योंही; ताते षेद करे सठयोंही ॥४॥ दोहराः-- मूढ मरम जाने नही, गहे इकांत्त कुपक्ष; स्यादवाद सरवंगमें, माने दक्ष प्रत्यक्ष ५

अर्थः-- ब्रह्मतो निराकारज छे, ते साकार नाम केम धारण करे, जो ब्रह्मने आकार मानीये तो साकार केवुं जोये, ते केम बने, जांसुंधी ज्ञेयनो आकार ज्ञानमां प्रति भासे छे, तहां सुधी पूर्ण ब्रह्म न केवाय ॥३॥ ज्ञेय वस्तुनो जे आकार के० प्रति भासछे ते ब्रह्मने मलरूप माने छे, ते मलनो नाश करवाने उद्यम करे, जे वस्तुनो जेवो स्वभाव होय तेवोज रहे पण कदी मटे नही, तेथी मूर्खजे सठ लोकछे ते श्रमथी जूवो खेद करे छे ॥४॥ जे मूर्ख छे ते मर्मनी वातने न ओलखे ने एकांत पक्ष जे जे कुपक्ष छे तेनेग्रहे अने जे माह्यो पुरुष छे, ते स्याद्वाद मतना आश्रयथी सर्वांगमय प्रत्यक्ष पणे माने, एटले निराकार साकार सर्व नय माने ॥ ५ ॥

हवे स्याद्वादने ग्रहण करनार जेसम्यक्ति छे तेनी स्तुती करे छे —अथसम्यक्त स्तुती —

दोहरा — शुद्ध दरव अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि, ताते सम्यक् वतनर, सहज उछेदक नाहि ॥ ६ ॥

अर्थ.— सम्यक्तिना हृदयमा जे अनुभव छे, तेज शुद्ध द्रव्यने शुद्ध करे छे केमके, हृदयमा वस्तु स्वभाव जाणवाथी शुद्ध दृष्टी छे, तेथी जे सम्यक्तवत पुरुष छे, ते सहज स्वभावनो उछेदक थतो नथी, एटले सहज भावनो उछेद मानतो नथी

हवे परवस्तुमा परद्रव्यनुं अव्यापक पणु दृष्टांतवडे दृढ करेछे —

अथ अव्यापक द्रव्य कथन —

सवैया इकतीसा — जैसे चंदकीरन प्रगटि भूमि सेत करे, भूमिसीत होति सदा जोतिसी रहती है, तैसे ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयकों गहती है; शुद्ध वस्तु शुद्ध परजायरूप परिनमें, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहती है, सोतो औररूप कवहो न होई सरव था निहचे अनादि जिनवानी यो कहती है ॥ ७ ॥

अर्थ — जेम शरदपुनमनी रात्री समे चंद्रना किरण प्रकाश वडे पृथ्विने श्वेत रुप करेछे, पण ते चंद्रमानी ज्योती कइ पृथ्वी बनती नथी, सदा ज्योतीरूप रहेछे, तेम ज्ञान शक्ती एहवी छे के जे हेय उपादेय वस्तुने प्रकाशे त्यारे ज्ञान, ज्ञेय वस्तुने आकारे देखायछे पण ज्ञेय वस्तुनु स्वरूप ग्रहण करे नही केमके, जे शुद्ध वस्तु छे ते शुद्ध पर्यायरूप पणेज परिणमे अने जेनी पोतानी सत्ताछे ते जेटलामा वस्तुनु सद्रूप पणु छे, तेटला प्रमाण माहे शुद्ध पर्यायनेज परिणमे छे, पण ए वस्तुनु स्वरूप ढाक्युं रहे नही, तेतो शुद्ध वस्तु कोईनी सगतीथी सर्व प्रकारे बीजे रुपे न थाय ए वात निश्चयमां छे, एवी अनादि काळनी जिनवाणी कहेछे॥७॥

हवे वस्तुनु यथार्थ स्वरुप कहे छे — अथ जथा स्वरूप कथन —

सवैया तेईसा — राग विरोध उदे तवलों जवलों यह जीव म्रपा मग धावे; ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब कर्म दशा पररूप कहावे, कर्म विलेछि करे अनुभौ तब मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे, मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध भयो जगमाहि न आवे ॥ ८ ॥

अर्थ — ज्यासुधी आ जीव मिथ्यात मार्गमां दोडे छे त्यां सुधी राग द्वेषनो उदय छे, अने तेथी सत्य मार्गने पामतो नथी ज्यारे शुद्ध चेतन वस्तुनु ज्ञान जाग्यो त्यारे तो कर्म दशा जे छे ते पररूप जणाय, अने आत्मा तेथी जुदो जोवामां

आवे. ज्यां चेतननो अनुभव छे त्यां सत्यार्थ पणे जाणवुं होय ते कर्मनुं विलक्षण पणुं करे. एटले भेद विज्ञानवडे भिन्न लक्षण पणे जाणे, अने त्यां मोहरूप मिथ्यात प्रवेश करी शके नही. मोह गयाथी सुख समाधिमां केवल ज्ञान प्रगटे अने त्यारे जीव सिद्ध थाय अने फरीथी जगतने विषे आवे नही ॥ ८ ॥

हवे जेम अनुक्रमें वस्तु स्वरूपने प्रगट पणे स्वभावने वधारे ते कहेछे:—

अथ अनुक्रम वस्तु स्वरूप वर्द्धमानता कथनः—

छपय छंदः— जीव करम संयोग, सहज मिथ्यात रूप धर; राग दोष परिनति, प्रभाव जाने न आपापर; तम मिथ्यात मिटिगयो, भयो समकित उदोत ससि; राग दोष कछु वस्तु, नाहि छिनु माहि गये नसि; अनुभो अभ्यासि सुखराशी रमि, भयो निपुन तारन तरन, पूरन प्रकाशनिहचलि निरखी, बनारसी वंदत चरन ॥ ९ ॥

अर्थः— अनादि कालनो जीवने कर्म साथे संयोग छे. तेथी सहज संबंधे मिथ्यात स्थिति रूपी धारी जीव छे, अने क्यारेक जीव रागमां परिणम्यो रहेछे, अने क्यारेक द्वेषनी परिणतिना प्रभावथी पोताने तथा परने जाणतो नथी. एवामां क्यारेक मिथ्यातरूप अंधकार मटी गयुं ने समकितरूप चंद्रमानो प्रकाश थयो तेथी खबर पडीके रागद्वेष कंइ वस्तु नथी, एटले भली वस्तु नथी, एम जाणी एना अनादरथी राग द्वेष क्षणमां नाश पाम्या अने ते पछी पोताना अनुभवनो अभ्यास कीधो तिवारे तो सहज समाधिरूप सुखराशीमां रमी रह्यो. एरीते निपुण सर्व ज्ञानी, तरण तारण समर्थ प्रभु थयो हवे ए पूर्ण प्रकाश अनंत काल लगी निश्चल थयो तेना ध्यानने निरखी बनारसी दास ते प्रभुना चरणने नित्य प्रतें वंदेछे. ॥ ९ ॥

रागद्वेषना हेतुनुं शिष्य प्रश्न करछे. गुरु उत्तर आपेछेः—अथ प्रश्नोत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ शिष्य कहे स्वामी राग दोष परिनाम ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोनहै; पुग्गल करमजोग किधों इंद्रिनिको भोग; किधों धन किधों परिजन किधों भोन है; गुरु कहे छहों दर्व अपने अपनेरूप, सबनिको सदा असहाई परीनोन है; कोउ दर्व काहु को न प्रेरक कदाचि ताते, राग दोष मोह मृषामदिरा अचोन है ॥१०॥

अर्थः— कोइ शिष्य आचार्यने विनय पुर्वक पुछवा लाग्यो के अहो स्वामी, आत्माने राग द्वेष परिणाम उपजे छे. तेनो प्रेरक निश्चय पणे तमे कांने ठेरावो छे. एटले आत्माने पुद्गलिक कर्मनो योग छे, तेज इहां हेतु छे, के पंचेंद्रियनो भोग

हेतुछे के धन हेतु छे, के परिवार हेतु छे, अथवा मदीर हेतु छे? इत्यादिकोमांथी राग द्वेष परिणामनो हेतु कोण छे, ते कहो गुरु कहे छे, हे शिष्य ए पुद्गल संबंध हेतु नथी, तेम द्रव्य इंद्रिय छे, तेतो पोतपोताने रूपे पोतपोतानी सत्तामा रहे छे, अने सर्व द्रव्योनुं परिणमन सदा असहाई छे, कोई कोईनु सहाय करतु नथी तेथी कोई काले कोई द्रव्य कोईनुं प्रेरक नथी एटले हेतु नथी, माटे राग द्वेष परिणामनो हेतु तो मिथ्यात्व मोहकर्मरूप मदिरानी अचौन के० उन्मत्तपणुं छे॥१०॥

हवे कोई मूर्ख राग द्वेष परिणामनुं प्रेरक पुद्गलनुं बल छे एम कहेछे, तेने गुरु समजावे छे - अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथन -

दोहरा - कोऊ मूरख यो कहे, राग दोष परिनाम, पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ ११ ॥ ज्यो ज्यों पुग्गल बल करे, धरि धरि कर्मज भेष, राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ॥१२॥ इहविधि जो विपरीत पख, गहे स दहे कोई, सो नर राग विरोधसों, कबहू भिन्न न होइ॥१३॥सुगुरु कहे जगमे रहे, पुग्गल संग सदीव; सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहे न जीव ॥१४॥ ताते चिदभावनविषे, समरथ चेतन राउ, राग विरोध मिथ्यातमे, सम्यकमेंसिव भाउ॥१५॥

अर्थ - कोई मूर्ख लोक एम कहेछे के, आत्मारामविषे जे राग द्वेष परिणाम छे, ते पुद्गलनी जोरावरीथी छे, एटले एज पुद्गलनुं जोर छे ॥ ११ ॥ जेम जेम कर्म भेख धारीने एटले कर्म वर्गनारूप धारीने पुद्गल द्रव्य आपणुं बल विस्तारेछे, तेम तेम रागद्वेषनु परिणाम विशेषरूपे थाय छे, एम आत्मानेविषे देखाय छे, ए साख्यमतिनुं केहेवु छे ॥ १२ ॥ ए रीते जे साख्यमतिवाला आवुं विपरीत ग्रहण करेछे, अने सर्दहेछे, ते पुरुष राग द्वेषथी एवी श्रद्धावडे पण कदी जुदो थाय नही ॥१३॥ हवे सतगुरु कहेछे, अरे प्राणी जगतमा पुद्गलना संगमा जीव सदा रहेछे अनादीथी ए पुद्गलने जीवनु सश्लेषपणु छे, तेथी सहज शुद्ध परिणामवालो जीव अवसर न पामे, एटले पोतानु शुद्ध परिणाम ग्रहि शके नही ॥ १४ ॥ चेतनराय जे छे ते चिदभावने विषे एटले ज्ञान भावविषे समरथ छे, एटले जाणपणाना कार्यमां समर्थ छे. अने मिथ्यामति निमग्नताथी जाणपणामा राग द्वेष परिणाम देखाय छे, अने जीव सम्यक्त भावमा रहेछे, त्यारे शिव भाव उपजेछे ॥ १५ ॥

हवे ज्ञान भावमां पुद्गलनो भाव व्यापी शकतो नथी तेथी परभावनुं अव्यापक पणु कहेछे - अथ अव्यापकता कथन -

दोहराः— ज्यों दीपक रजनी समै, चिहु दिसि करे उदोत; प्रगटे घट पट रूप में, घट पट रूप न होत ॥ १६ ॥ त्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म; ज्ञेयाकृति परिनमन पे, तजै न आतम धर्म ॥ १७ ॥ ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ; राग विरोध विमोह मय, कबहू भूलि न होइ ॥ १८ ॥ ऐसी महिमा ज्ञानकी, निहचै है घटमांहि; मूरख मिथ्या दृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥ १९ ॥

अर्थः— जेम दीवो रात्रे चारे दिशाने प्रकाशमान करेछे, अने तेथी घटपटादिक पदार्थ प्रगटेछे, पण दीपकनो प्रकाश घटपटरूप थतो नथी.॥१६॥तेमसुज्ञान जे छे, ते सर्व ज्ञेय वस्तुनो मर्म जाणेछे, तेना ज्ञानमां ज्ञेय पदार्थनो आकार पण परिणमेछे तो पण ज्ञान जे छे ते आत्म धर्म शुद्ध पणुं छांमतुं नथी॥१७॥ ज्ञान धर्मथी जाणपणुं ते सदा अविचल छे. ए जाणपणामां कोई विकार प्रवेश करे नही. राग द्वेषमोहमां जीव वहेछे खरो, तोपण जाणपणाने कदी भूलतो नथी ॥ १८ ॥ एवो ज्ञाननो महिमा निश्चे स्वरूपे घटमां छे. पण मूरख मिथ्या दृष्टीथी सहज स्वरूपने विलोकतो नथी ॥ १९ ॥

हवे अनादिकालथी जीवनो मूढ स्वभाव छे ते कहेछेः—अथ मूढ स्वभाव कथनः

दोहराः— परसुभावमें मगन व्है, ठाने राग विरोध; धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध ॥ २० ॥

अर्थः— शुद्ध चेतन स्वभावथी बीजा स्वभाव जे छे ते पर स्वभाव छे, तेमां मग्न थईने राग द्वेषमां घेरी रह्योछे, अने एज राग द्वेषथी परिग्रहनी धारणा धरेछे पण आत्मद्रव्यनो सोध करे नही ॥ २० ॥

हवे मूढने कुबुद्धि अने पंमितने सुबुद्धि होय ते कहेछेः-अथ कुबुद्धि तथा सुबुद्धि विवरनः-

चोपाईः— मूरखके घट दुरमति भासी; पंमित हिए सुमति परगासी; दुरमति कुबजा करम कमावे; सुमति राधिका राम रमावे ॥२१॥ दोहराः—कुबजा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद; अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥ २२ ॥

अर्थः— मूर्ख प्राणीना घटमां दुर्मति भासी रहीछे, अने पंमितना हैयामां सुबुद्धि प्रकाश थई रही छे. दुर्बुद्धि जे छे ते कंसराजानी दासी जे कुबजा तेना सरखी छे ते कर्मनी कमाई करेछे; अने सुबुद्धि जे छे ते राधिका सरखी छे. ते आत्माराम नायकने रमाडनारी छे ॥ २१ ॥ कुबजा दासी काली अने कुबडी छे, ते जगतमां खेद प्रयास उपजावे एवा काम करनारी छे, अने सुबुद्धि राधिका

जे छे, तेतो अलख नायकनेज आराधे छे अने एज माहारो श्रेष्ट इष्ट नायक छे, अने बीजा सर्व पर छे, एवो नेद जाणे छे ॥ २२ ॥

हवे कुबुद्धि अने कुबजानुं एकसरखु वर्णन करेछे – अथ कुबुद्धि यथा –

सवैया इकतीसा – कुटिल कुरूप अंग लगी है पराए संग, अपनो प्रवान करि आपुहि बिकाई है, गहे गति अधकीसी सकती कमधकीसी, बधको वढाउ करे धधहीमें धाई है, रांडकीसी रीतिलि ए मांड कीसी मतवारी सांड ज्यो सुछंद मोले नांडकीसी जाई है, घरको न जाने नेद करे पराधिन खेद, याते दुर्बुद्धि दासी कुबजा कहाई है ॥ २३ ॥

अर्थ–जे कुबुद्धि छे ते मायाथी कुटील छे, तेज कुबजा कुरूप अग वालीछे, अने कुबुद्धि पारका संगमां लागी रहेछे, तेम कुबजा पण एवीछे कुबुद्धि पोताना अशुद्ध प्रमाण वडे पोतेज परवस थईछे, अने कुबजा पण तेम वेचाईछे कवंध एटले म स्तकविना लडाई करे तेनी शक्ती बेफाम होयछे, ते आधलानी माफक गति लई मोलतो फिरेछे तेम कुबुद्धिने कुबजापण माथा विनानी फिरेछे अने दुर्बुद्धि छे ते कर्मना बंधने वधारेछे, ने धंध के० राग द्वेष विग्रहमां दोडेछे, तेम दासी प ण पारका घर धधामा दोडती फरेछे कुबुद्धि पोताना नायकने ओलखती नथी, तेथी रांड जेवी रीती राखेछे, तेम दासीपण नायकविना रांडनी रीतेछे वली सोहागननी रीते मतवारी थकी फरेछे. जेम सांढ जनावर स्वछंदे मोलेछे, अने नांडनी छोकरी लाज विनानी होयछे, तेवी ए कुबजा दासी छे जेम कुबुद्धि पोताना घरनो नेद जे ज्ञानादिक वित्त छे ते जाणे नही, तेम दासी पण घरनो नेद जाणे नही, ने प राधीन थकी खेद कर्या करे माटे दुर्बुद्धिरूप दासी ते कुबजा दासी सरखीछे॥२३

हवे सुबुद्धि अने राधिका ए बेनु एक स्वरूप कही देखाडेछे –अथ सुबुद्धि यथा –

सवैया इकतीसा – रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है, प्राची ज्ञान नानकी अजाची है निदानकी सुराची नरवा ची गेर साची ठकुराई है, धामकी खबर दार रामकी रमन हार राधा रस पंथ निमें ग्रथनि मेगाई है, संतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है. ॥ २४ ॥ दोहरा – वह कुबजा वह राधिका, दोउ गती मति मान, वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककी खान. ॥ २५ ॥ दरव करम पुग्गल दसा, नाव कर्म मति वक्र, जो सुज्ञानको परि नमन, सो विवेक गुनचक्र २६

अर्थ – सुबुद्धि आत्मारूपनी रसीली ने, अने राधा पण रुपनी रसीली छे, अने

भ्रमरूप तालाने खोलवानी कुंची छे. सुबुद्धि शील रूप सुधा समुद्रमां फली रहेछे अने राधा पण तेवी छे, एम ए बेउ शील प्रकृतीयेंकरी महा सुखदायी छे, ज्ञानरूप भानुनो उदय करवाने प्राची के० पूर्व दिशा जेवीछे, निदाननी जाचनारी नथी, एटले निस्ने हीपणे सुबुद्धि अने राधिका छे. निरवाची के० वचन गोचर नथी, एवे ठेकाणे राची रहेछे, जेनी साची ईश्वरता छे धाम के० जे पोतानुं आत्म घर तेनी खबरदार छे, जेनी साथे रमी रहीछे ते राम एटले पोताना इष्टनी साथे रमनारी छे राधा रस पंथ ए टले राधावल्लभीना मार्गना रसग्रंथमां राधानामे ईश्वरनी प्यारी छे, तेवीज सुबुद्धि पण छे एवी संतजननी मानेती छे अने स्वस्थपणे रेनारी अने नूर के० शोभानी नि शाणी छे एवी सुबुद्धि वर्त्तेछे, माटे सुबुद्धिने राधिका राणी कहेवी. ॥ २४ ॥ ए रीते कुबुद्धि कुबजा थई अने सुबुद्धि राधिका थई ए बे पोतपोतानी गति अने मति लीधी रहेछे ते कुबुद्धि जे कुबजा तेतो करम बंधनी अधिकारणी छे, अने सुबुद्धि राधिका तो विवेकनी खाण छे. ॥ २५ ॥ ज्ञानावरणीय आदिक द्रव्य कर्म छे, ते पुद्गलरूप छे अने मतिनी वक्रता छे ते भाव कर्म जाणीए, जे सुज्ञाननो परिणमन होय तेने विवेक गुणनुं चक्र कहीए. ॥ २६ ॥

हवे भाव कर्मना चक्रनी उपर दृष्टांत कहेछेः— अथ कर्म चक्र यथाः—

कवित्त छंदः— जैसे नर खेलार चोपरको, लाभ विचार करै चित चाउ; धरि स वारि सा बुद्धी बलसों, पासाको कुंबु परे सु दाउ; तैसें जगत जीव स्वारथको करि उद्यम चिंतवे उपाउ; लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही सुभाउ ॥ २७॥

अर्थः—जेम कोई चोपटनो खेल करे, ते पुरुष चित्तमां लाभ विचारी खेलवानो चाह राखे, एटले हौस राखे, पोतानी बुद्धि बलने जुग प्रमुखनो यत्न राखीने त्रिक चोक प्रमुख दाव उपर सारी संभाल राखीने रमे, पण दाव तो पासाने आधीन छे. तेम जगतनो जीव उद्यम करीने पोताना स्वारथनो उपाय चिंतवे, पण पोताना ल लाटमां लख्युं होय तेज फल थाय, कर्म चक्र उदय माफक थाय एनो एज स्वभाव छे २७

हवे विवेक चक्र उपर दृष्टांत कहे छेः— अथ विवेक चक्र यथाः—

कवित्त छंदः— जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात; चले चाल निरखै दोउ दल, मोह राग न विचारे मात, तैसे साधु निपुन शिव पथमें लक्षन लखे तजे उतपात; साधे पुन्य चिंतवे अभै पद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ २८ ॥ दोहराः— सतरँज खेले राधिका, कुबजा खेले सारि; याके निसिदिन

जीतवो, वाके निसिदिन हारि ॥ २९ ॥ दोहरा – जाके उर कुवजा वसे, सोई अलख अजान, जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यक वान ॥ ३० ॥

अर्थः– जेम कोईमाणस सेतरजनो रमनार सेतरजना खेलनी सर्व धात के० युक्ति अने दाव समजेछे पोताना पराया दल उपर नजर राखी चाल चाले, पोताना पारका वजीर हाथी प्रमुख मोहोरा गणतिमा राखी मनमा परने मात करवो विचारेछे तेम साधु लोक पंडित छे, ते मोक्ष मार्गमा खेले. लक्षणथी वस्तुने जोय तेमां उत्पातरूप कार्य होय ते ठामी वे, अने पोतानु साधन करे, चित्तमां अभेद पद विचारे ए विवेक चक्रनी वात छे ॥ २८ ॥ सुबुद्धि राधिका ते सेतरज खेली रही छे, अने कुमति कुवजा पासा सरखो खेल खेलेछे तेमा आ सुमती राधिका तेनुं विवेक चक्रमा रातदिन जीतवु थायछे अने कुमति कुवजा ते कर्म चक्रमां रातदिन हारेछे ॥ २९ ॥ जेना हैयामा कुमति कुवजा वसे, तेतो अलख आत्माना अजाण छे. अने जेना हैयामा सुमति राधिका वसेछे. तेज समकेतवत बुद्ध कहेतां ज्ञाता कहिये ॥ ३० ॥

हवे ज्या शुद्धज्ञान छे त्या शुद्धक्रिया थाय ते कहेछे –अथ ज्ञानक्रिया सहकार कथन

सवैया इकतीसा – जहा शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत दीसे तहा शुद्ध परवान शुद्ध चारित्रको अंस है, ता कारन ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग विलास धर्म वाको सरवस है, राग दोप मोहकी दसासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्मजालको विध्वंस है, निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरन परमहंस है, ॥ ३१ ॥ दोहरा –ज्ञायक भाव जहा तहा, शुद्ध चरनकी चाल, ताते ज्ञान विराग मल, सिव साधे सम काल ॥ ३२ ॥

अर्थ – जे प्राणीविषे जे शुद्ध ज्ञाननी कलानो उद्योत देखायछे, ते प्राणीविषे तेज वखतमा आत्मानी शुद्धता प्रमाण करीने शुद्ध चारित्रनो पण अंस थाय ते कारणथी जे ज्ञाता होय तेतो ज्ञेय के० हेय उपादेयरूप सर्व जाणवा योग्य वस्तुनो मर्म जाणे, त्यारे ते हेयने छांडे अने उपादेय रूप सर्व जाणवु तेने ग्रहे छे, एवो वैराग्यना विलासनो स्वभाव सर्व अंसे करी प्रगट थाय अने वैराग्य आव्याथी राग द्वेप मोहनी दशाथी प्राणी भिन्न रहेछे, तेथी पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा थायछे, अने वर्त्तमानकालमा कर्म न बांधे, जे प्रकृति तुटी गई ते आगामिक कालमां बांधे नही, एम सर्वथाप्रकारे कर्मजालनो विध्वंस थाय तेवारे राग द्वेषादिक उपाधि रहित आत्म समाधिमा बिराजे तेथी तेने पूरण परमहंस प्रगटपणे क

हिये ॥ ३१ ॥ जिहां ज्ञायक भाव छे तिहां शुद्ध चारित्रनी चाल पामियें तेथी ज्ञान अने वैराग्य मळीने समकाळें शिवमार्ग साधेछे ॥ ३२ ॥

हवे ज्ञानक्रिया उपर अंध पंगुनुं दृष्टांत देछेः– अथ ज्ञान क्रियाको दृष्टांतः--

दोहराः– यथा अंधके कंध परि, चढै पंगु नर कोइ; वाके दृग वाके चरण, होहि पथिक मिलि दोइ, ॥ ३३ ॥ जहां ज्ञान किरिया मिले, तहां मोक्ष मग सोइ; वह जानै पदको मरम, वह पदमें थिर होइ. ॥ ३४ ॥

अर्थः– कोई पांगळो नर जेम कोई आंधळाना खभा उपर चढवाथी, पांगळानी आंख अने ते आंधळाना पगथी चाले, त्यारे पंथ मार्ग होय तो बनेना मळवाथी गमन थाय हालवुं चालवुं बने, तेम ज्ञान वैराग्य मळेथी मोक्षमार्गें चलाय ३३ ज्यां ज्ञान अने क्रिया ए बे एकठा थई रहे त्यां मोक्षनो मार्ग थाय. एटले ज्ञानथी वस्तुनो मर्म जाणे अने क्रियाथी पोताना वस्तुस्वभावमां स्थिर थाय ॥ ३४ ॥

हवे ज्ञान अने क्रियानुं जेवुं स्वरूप छे तेवुं कहेछेः– अथ ज्ञानक्रियाको स्वरूप

दोहराः– ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीवकी भूल; ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगतको मूल. ॥ ३५ ॥ ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम; कर्म चेतनामें वसे, कर्म बंध परिनाम. ॥ ३६ ॥

अर्थः– ज्ञान छे ते जीवनी सजगतता छे एटले जीवने जगावे छे, कर्म केω क्रिया कार्य करवो ते जीवनी भूल छे, त्यां ज्ञान छे ते मोक्षनो अंकुर छे, एटले मोक्षनो हेतु छे, क्रिया कार्य करवो तेतो भवभ्रमणनुं मूळ छे ॥ ३५ ॥ चेतना बे प्रकारनी पूर्वें कही छे, तेमां ज्ञानचेतनाना जागवाथी केवळ राम प्रगटे ते शुद्ध परमात्मा प्रगटे छे,अने बीजी कर्मचेतना कहिए तेमां आत्मानो बंधपरिणाम उपजेछे.

हवे ज्ञाननो प्रभाव अने क्रियानो प्रभाव भिन्न भिन्न कही देखाडे छेः–

अथ ज्ञानक्रियाको प्रभाव भिन्न कथनः–

चोपाईः–जबलग ज्ञान चेतना भारी, तब लगु जीव विकल संसारी, जब घट ज्ञान चेतना जागी, तब समकिती सहज वैरागी. ॥ ३७ ॥ सिद्ध समान रूप निज जाने; पर संजोग भाव परमाने, सुद्धातम अनुभो अभ्यासे, त्रिविध करमकी ममता नासे. ॥ ३८ ॥

अर्थः– ज्यांलगी क्रिया परिणामे करीने ज्ञान चेतना भारी थई एटले चेतना कर्मरूप थई, त्यांलगी तो संसारी जीव विकळरूप थई रह्योछे अने ज्यारे घटमां ज्ञान चेतना जागृतरूप थई, त्यारे ते समकिती कहेवायछे; तेने सहज वैरागी

कहिए ॥३७॥ अने ज्ञान चेतनाना जाणवाथी पोताना रूपने निश्चय सिद्धसमान जाणे, अने पर पुद्गलना सयोगथी जे नाव उपजे, तेने तो पररूप माने, शुद्धात्म ना अनुनवनो अन्यास राखे, द्रव्यकर्म, नावकर्म, नोकर्म, एवी त्रण जातिना कर्मनी ममता गमावे ॥ ३८ ॥

हवे ज्ञाता थईने जे पूर्वकालविषे कर्म कीगंछे तेनी आलोयणाले, अने पोतानी विगतवार कहेछे – अथ ज्ञाता पूर्व कृत कर्म आलोचन कथन.–

दोहरा –ज्ञानवत अपनी कथा, कहै आपसो आप, मे मिथ्यात दसाविषे, कीने बहु विधि पाप ॥३९॥ सवैया इकतीसा –हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताही ताते हम करुना न कीनी जीव घातकी, आप पाप कीने ओरनको उपदेश दीने हूती अनमोदना हमारे याही बातकी, मन वच कायमे मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमे कहाए हम पातकी; ज्ञानके उदे नए हमारी दशा ऐसी नई, जेसी नान नासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ४० ॥

अर्थ – ज्ञान चेतना जागे ते ज्ञानवत पोतानी कथा पोतानी मेले करे, के मे पूर्वकालमा मिथ्यात दशामा बहु जातना पाप कीधा छे ॥ ३९ ॥ हमारा हैया मा पूर्वकालविषे महामोहनी विकलता थई, तेथी अमे जीव घातनी करुणा न कीधी, ने निर्दयदशा राखी, पोतानी कायाथी तो पोतेज पाप कीधा अने बीजा ने वचने करी पापनो उपदेश दीधो, अथवा कोईने पाप करतो देखीने मे तेनी अनुमोदना करी एवी रीते मन वचन कायाना अशुद्ध व्यवहारमा मगन थईने कर्मनी कमाणी करी मिथ्या जालमा एवी रीते दोडया, तेथी अमे पातकी के हेवाइए छैये; हवे ज्ञाननो उदयथता हमारी दिशा एवी थई के जेम सूर्यना नास वाथी प्रनात कालनी अवस्था उद्योतवत थाय, तेम हमारी पण एवी अवस्था थई४०

हवे ज्ञाता ज्ञानना प्रनावथी जेवी आपणी अवस्था जाणे तेवी कहेछे

अथ ज्ञाता ज्ञान प्रनाव कथन –

सवैया इकतीसा – ज्ञान नान नासत प्रवान ज्ञानवान कहे, करुना निधान अमलान मेरो रुप है, कालसों अतीत कर्म चालसों अनीत जोग जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है, मोहको विलास यह जगतको वास मेंतो जगत सो शुन्य पाप पुन्य अध कूप है, पाप किन कियो कौन करे करिहे सु कोन, क्रियाको विचार सुपनेकी धोर धूप है. ॥ ४१ ॥

अर्थ –ज्ञानरूप सूर्यनो प्रकाश होवाथी प्रमाण ज्ञानवान के० ज्ञाता पुरुष एम

कहेछे के, माहारुं स्वरूप करुणा निधान छे. तथा सर्वनो पोतानाजेवुंस्वरूप जाणीने सर्वनो हित वत्सल छे. अने अम्लान कहेता निर्मल छे कालने वश नथी एटले शाश्वत छे. कर्म चालनो तेने भय नथी, एटले कर्म जेना स्वभावनो नाश करी शके नही, मन वचन अने कायना योगनी जाल तेथी अजीत छे, अने आ जगतनो वास छे, तेतो मोहनो विलास छे, पण माहारो विलास नथी, जगत कहीए भव भ्रमण तेथी हुं शून्य छुं, गति कर्म जगत करेछे, तेतो मारा स्वरूपमां पाप पुन्य अंधकूप समान छे, एथी पाप कोणे कीधुं, हवे कोण करेछे, आगल कोण करशे, आ जे क्रियानोविचार दीगमां आवेछे तेतो स्वप्नानी दोरधाव समान मिथ्या व्यवहार छे ॥ ४१ ॥

हवे मिथ्या परिणामनुं वरणन करेछेः— अथ मिथ्यात परिनाम वर्णनः—

दोहराः— मैं यौं कीनौ यौं करौं, अब यह मेरो काम, मन वच कायामें वसे, ए मिथ्यात परिनाम, ॥ ४२ ॥ मन वच काया करम फल, करम दशा जड अंग ; दरवित पुग्गल पिंडमें, भावित भरम तरंग ॥ ४३ ॥ तांते भावित धरमसो, करम सुभाउ अपूठ ; कोंन करावे को करे, कोसर लहे सब जूठ ॥ ४४ ॥

अर्थः— मैं आवुं कीधुं आम करुंछुं, हवे आ माहारुं काम छे, ते कहुछुं, एरीते ज्ञान चेतना जाग्याविना मन वचन कायामां मिथ्या परिणाम वसेछे,॥४२॥ आ जे मन वचन कायाना जोग छे, ते कर्मनुं फल छे, अने कर्मनी दशा जडरूप अंग छे, ए जे मन वचन काया छे, ते पुग्गल द्रव्यनो पिंड छे, तेथी आ मिथ्या तरंग भाव उपजेछे, ॥ ४३ ॥ तेमाटे आत्मानो भावित धर्म एटले शुद्ध जाणपणुं, तेथी मिथ्या तरंगरूप कर्म स्वभाव विपरीत छे, तेने करावे कोण अने करे कोण? अने सरल कोण छे, एटले अनुमोदे कोण ए प्रपंच सर्व जुठोछे, ॥ ४४ ॥

हवे आ जोगथी क्रिया होय तेनी निंदा करेछेः— अथ क्रियाकी निंदा कथनः—

दोहराः— करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि ; गनी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुप मांहि, ॥ ४५ ॥ सवैया इकतीसाः— करनीकी धरनीमें माहा मोह राजा बसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरीहे, करनी करम काया पुग्गलकी प्रती छाया करनी प्रगट, माया मिसरीकी छुरी है, करनीके जालमें उरझि रह्यो चिदानंद करनीकी उट ज्ञान भान दुति दुरी है; आचारज कहै करनीसों विवहारी जीव करनी सदीव निह्चै सरूप बुरी हैं. ॥ ४६ ॥

अर्थः— करणी जे क्रिया छे ते सदा अहितनी करनारी छे, मुक्तिने देवा वाली

नथी, आ क्रियाने आगममां तो बंध पद्धतिमांज गणी छे, तेथी क्रिया महा दुःख सहित छे ॥ ४५ ॥ क्रियानी भूमिमां महा मोह राजा वसेछे, अने क्रिया छे ते तो अज्ञान भाव राक्षसनी नगरी छे एटले क्रियामा अज्ञान राक्षस रही शकेछे. अने ए क्रिया छे ते तो कर्मनो पडछायो छे, अने काय योगनो पडछायो छे अने पुद्गलनो पडछायो छे क्रिया छे ते प्रगट माया जाल छे, तथा ते साकरनी छरी छे, मीठास आपी मारेछे. आ करणीनी जालमां चिदानंद परमात्मा छरजो के० मग्न थई रह्यो छे, अने क्रियाना ओथे ज्ञानरूप सूर्यनी ज्योति छपी रही छे श्री आचार्य कहेछे के क्रिया करतो थको जीव व्यवहारीज कहिए. पण निश्चल रुप देखवाथी क्रिया सदा सर्वदा बुरी छे, एटले खोटी छे ॥ ४६ ॥

हवे पोतानी समज पामे तेने ज्ञाता कहेछे — अथ ज्ञाता कथन.—

चोपाई.— मृषा मोहकी परिनति फेली, तातें करम चेतना मैली; ज्ञान होत हम समुझी एती, जीव सदीव भिन्न परसेती ॥ ४७ ॥ दोहरा —जीव अनादि सरूप मम, करम रहित निरुपाधि, अविनाशी अशरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥४८॥

अर्थ — अमारामां पहेला मिथ्या मोहनी परिनति फेलाई छे, एटले मोहथी अशुद्ध थई, त्यारे फेलाणी तेनो उदय गाढो थयो, तेथी चेतना शुद्ध हती पण अशुद्ध थई, कर्मसहीत चेतना मलीन थई हवे ज्ञान चेतना प्रगट थता अमे एटली वात जाणी, के जे जीव छे ते निश्चे परजोगथी न्यारो छे ॥४७॥ अनादि कालथी जे जीव प्राणधारी केहेवायछे ते मारुं स्वरूप छे ते स्वरूप केवु छे ते कहेछे कर्म रहित छे अने सयोगादिक उपाधि रहित छे वली विनाश न पामे, सदा ईश्वर छे; कोईनु शरण न राखे, अने आ स्वरूप सिद्धसमाधिना सुखमय छे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञानस्वरूप कर्म उपाधिथी भिन्नछे ते कहेछे — अथ ज्ञान स्वरूपी कथन —

चोपाई — में त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिदविलास पद जगत उज्यारा; राग विरोध मोह मम नाही, मेरो अवलंबन मुझमांही ॥ ४९ ॥ सवेया तेइसा — सम्यकवत कहे अपने गुनमे नित राग विरोधसुं रीतो, में करतूति करों निरवछक, मोह विषे रस लागत तीतो, शुद्ध सुचेतनको अनुभो करि, मे जग मोह महा भड जीतो, मोष समीप भयो अब मो कहुं काल अनत इही विधि वीतो ॥५०॥ दोहरा — कहे विचछन मे सदा, रह्यो ज्ञान रस राचि, शुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होइ कदाचि ॥ ५१ ॥ पूर्व करम विष तरु भए, उदे भोग फल फूल, में इन्हको नहि भोगता, सहज होहुं निरमूल ॥ ५२ ॥

अर्थः— हुं त्रणे काळमां क्रिया करणीथी न्यारो छुं. माहारे कर्मथी संगनथी तो क्रीयाथी संग केम थाय माहारुं पद के० स्वरूप, चिदविलास के० ज्ञानविलास छे, ते जगतमां अजवाळु छे. अने राग द्वेष मोहभाव वर्त्ते छे. तेतो माहारुं स्वरूप नथी. माहारो अवलंब आधार माहारा स्वरूपमां छे ॥ ४९ ॥ समकेती जीव पोताना गुण कहेछे. हुं नित्य प्रत्यें राग द्वेष मोहथी, रीतो के० रक्त एटले रहित छुं. हुं जे क्रिया करुंछु ते राग द्वेष विना वांछारहित करुंछुं. अने जे ए विषय रस छे ते, मोहतीतो के० मने तिक्त लागेछे एटले कडवां लागेछे. शुद्ध पोतानी चेतनानो अनुभव करीने हुं जगतमां मोहरूप महासुभट जीत्यों, माहारुं एवुं स्वरूप पामीने हुं मोक्षने सन्मुख थयो, हवे मने एवी रीतथीज अनंत काळ वीतो एटले अनंत काळ लगे एवोज रहुं ए आशंसा छे ॥ ५० ॥ विचक्षण ज्ञानी पुरुष आशंसा करीने कहे के हुं सदा ज्ञान रसमां राची रहुं अने हुं शुद्ध आतमाना अनुभवथी कोइ पण काळमां खलित न थाउं ए आशंसा छे॥ ५१ ॥ ए पूर्व कृत पुन्यपापरूप जे कर्म छे, ते विष वृक्ष जाणवा अने ते कर्मना उदयनो जे भोग छे ते विष वृक्षना फळ फुल छे. हुं आ उदय भोगनो भोक्ता नथी. राग द्वेषथी रहित छुं अनादिकाळना साथे लागेला विषय भोग छे तेसहज निर्मूळथाय ५२ हवे उदासीनताने वैराग्य कहियें तेनो महिमा कहेछेः—अथ वैराग्यमहिमाकथनः—

दोहराः—जो पूरव कृत कर्म फळ, रुचिसों भुंजे नांहि; मगन रहे आठो पहुर, शुद्धातम पदमांहि. ॥ ५३ ॥ सो बुध कर्मदसा रहित, पावे मोष तुरंत; भुंजे परम समाधि सुख, आगम काळ अनंत. ॥ ५४ ॥

अर्थः— जे पूर्वकाळमां कर्म कर्युं. तेनुं फळ उदय थयुं ते फळथी रुचि लगाडी भोगवे नही अने आठ प्रहर शुद्ध आत्मपदमां मगन रहे. ॥ ५३ ॥ तेज पंमित कर्मदशा रहित थईने तरत मोक्षपद पामे, ते पछी आगमिक काळमां अनंत काळ लगे परम समाधिनुं सुख भोगवे. ॥ ५४ ॥

हवे ज्ञानि पुरुषनो क्रमे क्रमे महिमा वधे ते कहेछेः— ज्ञानी पुरुष महिमा कथनः—

छप्पय छंदः— जो पूरव कृतकर्म, विरष विष फळ नहि भुंजे, जोग जुगतिकारज करंत ममता न प्रजुंजे; राग विरोध, निरोध संग विकळप सबि छंडे, शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि सिव नाटक मंडे, जो ज्ञानवंत इह मग चलत, पूरन व्है केवळ लहे; सो परम अतींद्रिय सुखविषे, मगन रूप संतत रहे. ॥ ५५ ॥

अर्थः— जो ज्ञाता थईने पूर्व कृतकर्म रूप वृक्षना विष फळने भोगवे नही

एटले इष्ट फलथी रति न उपजे अनिष्ट फलथी अरति न उपजे एवो ज्ञाता जे छे ते मन वचन कायाना योगे करी युक्त छे तेथी जोगनी गति के० प्रवृत्तिये कार्य करेछे, पण कार्यविषे ममता प्रजुजे नही एरीते राग द्वेषनो विरोध करीने योग ना संगथी जे विकल्प उठेछे, ते सर्व छांमे, शुद्ध आत्माना अनुभवनो अभ्यास करीने शिवनाटक के० जे थकी जीवन्मुक्ति होय एवो नाटक मांमे जो ज्ञानवंत पुरुष एहिज मार्गे चाले तो पूरण स्वभाव पामीने केवल ज्ञान पामे पछी केवल ज्ञान पामीने उत्कृष्ट अतींद्रिय सुखनेविषे निरंतर मगन रहे ॥ ५५ ॥

हवे शुद्ध आत्मा द्रव्य छे तेनुं वर्णन करेछे —अथ शुद्ध आत्मदर्वेवर्नन —

सवैया इकतीसा — निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद, जाके परगासमे जगत माईयतु है, रूप रस गंध फास पुदगलको विलास, तासो उदवश जाको जश गाइयतु है, विग्रहसो विरत परिग्रहसे न्यारो सदा, जामे जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है, सो है ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है, ॥ ५६ ॥ जैसो नर भेदरूप निहचे अतीत हुंतो, तैसो निरभेद अब भेदको न गहैगो, दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज थान फिरि बाहिर न वहेगो, कबहु कदाचि अपनो सुभाव त्यागि करि, राग रस राचिके न परवस्तु गहेगो, अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगम अनंत काल रहेगो ॥ ५७ ॥ जबहिते चेतन विभावसो उलटि आपु समौ पाइ अपनो सुभाव गहि लीनो है, तबहीते जोजो लेन जोग सो से सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांमि दीनो है, लेवेकौ न रही ठोर त्यागिवेको नाही और, बाकी कहा उबर्यो जु कारज नवीनो है, संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा सुद्ध कीनो है ॥ ५८ ॥

अर्थ — जे निर्भय केवाय छे, निराकुल केवाय छे निगम के० उत्कृष्ट अर्थ केहेवाय छे वेद के० ज्ञानरूप केहेवाय छे जेनो भेद नथी एवो प्रकाशवंत पदार्थ छे जेमां सर्व जगत समाय छे अने जे ए रूप रस गंध स्पर्श जे विनाशी पदार्थ छे, तेतो पुजलनो विलास छे, तेना उदवस के० तेथी रहित जे छे तेनो जस गाइए छे वली जे विग्रह के० शरीर तेथी विरत के० रहित अने द्रव्यभावरूप परिग्रह तेथी जुदो छे जेमां सदाय त्रणे योगथी रहित पणानुं चिन्ह के० लक्षण पामीए छे एवु पदार्थ तो ज्यां ज्ञान छे त्यां ते पदार्थ छे तेथी ज्ञान प्रमाण छे. अने चेतनानो निधान छे तेने अविनाशी ईश्वर मानीने मस्तक नमावीए

छे. ॥५६॥ हवे बीजुं पण शुद्धात्म द्रव्य सिद्धनुं वर्णन करेछेः— अतीत कालमां पण शुद्धात्म द्रव्य निश्चेय नयथी अभेद रूप हतो अने व्यहारनयें भेदरूप हतो हवे केवल रूप पामिने निर्भेद के० भेद रहित जाणीए. हवे एवी दशामां कोण मूर्ख भेद ठरावसे. नैयायिक लोक जे पोतानी परूपणामां समाधि योग आत्माने कर्म रहित मानीने फरी संसारमां अवतार मानीने छे तेने नमस्कार करेछे पण जे कर्म रहित थयो सुख समाधान सहित थयो. पोतानुं स्थानक पाम्यो ते पाछो बाह्य संकटमां केम पडशे. जेम धरतीनो भार उतारवा ईश्वर अवतार लेइने दुःख पामेछे एवुं मिथ्यादृष्टिनी केवतमांछे पण जीव शुद्ध थईने फरी राग रसमां राचि ने कोई कालमां आपणु स्वभाव त्याग करीने पर वस्तुने ग्रहे नही. केमके अम्ला न ज्ञान के० जे ज्ञान फरी करमाय नही एवुं ज्ञान विद्यमान कालविषे प्रगट थयुं तेतो आगमिक कालमां अनंत काल लगी रहेशे. ॥ ५७ ॥ हवे फरीथी अवतार लेवाना कारणनो अभाव कहेछेः— अनादिकालथी चेतन मिथ्यात भावरूप विभावमां रमि रह्यो हतो ते समयप्रस्ताव पामीने, विभावथी उपरागो थई पोतानो शुद्ध स्वभाव हतो ते पोतेज लइ लीधो, तेथी ज्ञान दर्शनादिक भाव लेवा योग्य हतो ते लीधो, अने राग द्वेषादिक भाव त्यागवाजोग हतो ते सर्वे त्यागी दीधो ते लेवानुं बीजुं ठेकाणुं रह्युं नही, अने त्यागवानुं पण बीजुं ठेकाणुं रह्युं नही हवे इहां बाकी नवुं कार्य करवानुं क्यो रह्योछे जे कार्य करवाने फरी अव तार लेवुं पडे जे उपाधिसंग हतो तेतो सर्वे त्यजी ने एटले अंग त्याग के० काय योग त्यागिने वचन तरंग त्याग के० वचन योग त्यागीने तथा मनो योग त्यागिने बुद्धि त्याग के० विकल्प त्यागीने आत्माने शुद्ध करी लीधो ॥ ५८ ॥

हवे बाह्य भेष धरवो ते द्रव्यलिंग कहिए ते एकांतपणे मोक्षनुं कारण नथी ते कहेछेः— अथ एकांत द्रव्यलिंगीकी निंदाः—

दोहराः— शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ; ताते कारन मोषको, दर्वलिंगि नहि होइ ॥ ५९ ॥ द्रव्य लिंग न्यारो प्रगट, कला बचन विन्यान; अष्ट महारिधि अष्ट सिधि, एक होहि न ज्ञान ॥ ६० ॥

अर्थः—आत्मा तो शुद्ध ज्ञानमय छे. अने शुद्ध ज्ञानने देह नथी, अने ज्यारे देह नथी त्यारे ज्ञान ने मुद्रा भेष पण कोइ नथी. तेथी मोक्षनुंकारण द्रव्य लिंगहोय नही. एटले भेप लीधे मुक्ति नथी ॥ ५९ ॥ ज्ञानथी द्रव्यलिंग तो प्रगट पणे जुदोज छे. कलाविज्ञान, वचन विज्ञान, ते ज्ञानथी न्यारो छे. तथा आचार, श्रुत शरीर,

वचन, वाचना, बुद्धि, उपयोग, संग्रह संलीनता, ए अष्ट महा रिद्धि छे अने अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, इशित्व, वशित्व, ए अष्टमहा सिद्धि छे ते पण ज्ञान नथी ॥ ६० ॥

हवे एटला महिमावत स्थानक छे, सो पण ए ज्ञानना स्थानक नथी ते कहेछे.-

अथ ज्ञान अभाव स्थानक कथन –

सवैया इकतीसा – भेषमें न ज्ञान नहि ज्ञान गुरु वर्त्तनमे, मत्र जत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है, ग्रंथमें न ज्ञान नहि ज्ञान कवि चातुरीमें वातनिमे ज्ञान नही ज्ञान कहा वानी है, ताते भेष गुरुता कवित्त ग्रथ मंत्र वात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानी है, ज्ञानहीमे ज्ञाननही ज्ञान उरठोर कहू, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञानको निदानी है ॥ ६१ ॥

अर्थ – भेषमा ज्ञान न पामीए अने गुरुवाई के० गर्वपणुं महोटाइ पणुं तेमां पण ज्ञाननु स्थानक नथी अने मत्र तंत्र यत्रमां ज्ञाननी कहेणी नथी तथा ग्रंथ शास्त्र पढवाथी पण ज्ञान प्राप्त थतु नथी कवितामां चातुर्यतामां ज्ञान नथी वातनी चतुराइमां ज्ञान नथी अने जे वाणी छे ते सु ज्ञान छे, अर्थात् वाणी पण ज्ञान नथी माटे भेख गुरु वाइ कविताई, ग्रंथ मत्र यंत्र तंत्र वात ए सर्वथी अतीत के० जुदोज ज्ञान वस्तु छे, ते चेतननी सहिनाणी छे. ज्ञानतो क्यारे जाणवु के जे अशुद्ध पणे होय तेतो ज्ञान न कहेवाय, माटे पूर्वे जे स्थानक कह्या तेथी जूदोज कोइ ज्ञान वस्तु छे माटे जेना घटमां ज्ञान प्रगट्यु, तेज ज्ञाननु मूलकारण छे ॥ ६१ ॥

हवे जे पूर्वे भेष प्रमुखना धारक कह्या तेनी मूढता कहि देखाडे छे –

अथ भेषादि धारक मूढ यहु कथन –

सवैया इकतीसा – भेष धरे लोगनिको वचे सो धरम ठग, गुरुसो कहावे गुरु वाई जाते चहियें, मत्र तत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पंमित कहावे पंमिताई जामें लहिये, कवित्तकी कलामे प्रवीन सो कहावे कवि, वात कही जाने सो पवार गीर कहिये, ए तो सब विषेके भिखारी मायाधारी जीव, इन्हकों विलोकिके दयाल रूप रहिये ॥ ६२ ॥

अर्थ – भेष धरीने लोकोने, ठगे भरमावे ते धर्म ठग कहेवाय, एटले तेने गुरुतानी चाहना होय ते गुरु केवाय मत्र यंत्र तंत्रादिक गुणनुं जे साधक होय ते जादूगर केवाय अने जेमा पंमिताई रही छे ते पमित केवाय, कवित चातुरिनी

कळामां जे प्रवीण होय तेतो कवि केवाय, वातो बनावी बनावीने कही जाणे ते पवारगर केवाय एटली अवस्थाना धरनारा छे. ते सर्व इंद्रियविषयना याचक मायाधारी जीव छे. तेने जोईने मनमां एवुं विचारिये के अहो इति आश्चर्य ए बापडा केम पोतानो स्वार्थ खोयछे. एवी रीते तेना उपर दयाळरूप थई रहेवुं

हवे जीवना अनुभवनी योग्य दशा कहे छेः— अथ अनुभो जोगता कथनः—

दोहराः— जो दयाळता भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग; पें तथापि अनुभो दशा, वरतै विगत तरंग ॥ ६३ ॥ दरशन ज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोइ, थिर व्है साधे मोष मग, सुधी अनुभवी सोइ ॥ ६४ ॥

अर्थः— जे आत्माने शुद्ध दयाळता भाव प्रगटेछे. तेतो ज्ञाननुं अंग प्रगट थयुं एम जाणीए. पण अनुभव दशा जे छे. ते तो विगततरंग के० विकल्प रहित वर्त्ते ॥ ६३ ॥ वळी दर्शन ज्ञान चारितनी दशाने विकल्प रहित एकपणे आत्माने जुएछे, एज रीते स्थिररूप थईने मोक्ष मार्गने साधे छे तेनेज सुधी के० सुबुद्धिवंत अनुभववंत केहियें ॥ ६४ ॥

हवे निःसंदेह सुद्ध स्वरूप पामवुं तेनो महिमां कहे छेः—अथ अनुभो महिमाकथनः—

सवैया ईकतीसाः— जोइ दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठोर भयो, निरदोर पर वस्तुकों न परसे; सुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतामें केलि करे, सुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा बरसै; त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमकों, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे; सोई विकलप विजई अलप काळमांहि, त्यागि भो विधान निरवान पद दरसे॥६५॥

अर्थः— जे कोई दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी आत्मानेविषे ज्ञानने ठेकाणे ठेरावीने वाट बांधे, त्यां निरदोर के० संशय रहित थईने परवस्तुनो स्पर्श न करे त्यां निश्चे नय ग्रहण करीने शुद्धताज विचारे, शुद्धताज ध्यावे अप्रमादि थईने शुद्धतामां केलि करे शुक्ल ध्यानना प्रथम पायामां प्रवेशकरी शुद्धतामां थिर थईने महा आनंदरूप अमृतनी धारा वरषावे, आंही अवयवरूप लक्षण छे. तेथी शरीरना कष्टने त्यागेछे. लीनताथी शरीर कष्ट न जाणे त्यारे स्पष्ट थईने एटले वीर्य फोरवीने आठे कर्मनो स्थान भ्रष्ट करे एटले कर्मोने सत्ता थकी चळायमान करे अने नष्ट करे के० निर्जरा करे ऐसे औरहुंकैसे के० ते जीव कर्मोने आकर्षिने निर्जरावे ते जीव विकल्प जाळनो विजय करीने अल्प काळमांज विधान के० भवे श्रेणिने त्यागी मोक्ष पद देखे एटले पामे ॥ ६५ ॥

हवे शिष्य पुछे छे के ए अनुभव पामवो महा विषम छे ते उपर गुरु शिक्षादे छे —

अथ अनुभो शिक्षा कथन —

चोपाई — गुन परजेमें दृष्टि न दीजे, निरविकलप अनुभो रस पीजे, आप समाइ आपमें लीजे, तनपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ६६ ॥ दोहरा — तजि विभाव हुइजे मगन, सुद्धातम पदमाहि; एक मोष मारग यहे, और दूसरो नाहि ॥६७॥

अर्थ — आत्माना गुण पर्याय अनेक छे पण तेमा दृष्टि न देवी मात्र निर्विकल्प द्रव्यनो अनुभव रस पीवो आत्मा आधारमा आत्मानो समास करी लेवो एटले लय लगाडवो, एटले आपणे शरीर धारी छोए, ते दशानो काय योग पणु छे ते मटावी आत्म स्वरूप करीए ॥ ६६ ॥ आत्माना मूल स्वभाव विना बीजो सर्व विभाव पणुं छे, तेहने त्यजीने शुद्ध आत्माना चिदानद स्वभावमाज मगन थइ ये, एक अद्वितीय मोक्षनो मार्ग एज छे तेथी बीजो कोइ मोक्षनो मार्ग नथी॥६७

हवे शुद्ध आत्मस्वरुपना अनुभवविना महाव्रतिपण द्रव्यलिंगी जाणवा ते कहेछे —

अथ द्रव्यलिंगी व्यवस्था कथन —

सवेया इकतीसा — कइ मिथ्या दृष्टि जीव धारे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहे कहे हम जती है, अतुल अखंड मलरहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भावसो विमुख मूढमति है, आगम सभाले दोष टाले विवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती है, आपुको कहावे मोष मारगके अधिकारी मोषसों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरगति है॥ ६८ ॥ दोहरा — जे विवहारी मूढ नर, परजे बुद्धी जीव, तिनको बाहिज क्रीयको, है अवलंब सदीव ॥ ६९ ॥

अर्थ — केक जीव मिथ्या दृष्टि छे अने आचार्य उपदेश रसथी जिन मुद्राभेष धारी छे अने साधुनी क्रियामा मगन रहेछे, अने पोताना मनथी अथवा कोईना पूछवाथी अमे जती छइये एम कहेछे एटले महाव्रत्ति छैये अने जेनी तुलना नथी एवु अखंड के० संपूर्ण विभाव मलरहित सदा प्रकाशवत पोतानु अनुभवरूप जे ज्ञान भाव छे तेथी विमुख छे माटे मूढमती छे जोपण ते क्रिया करेछे आगम सिद्धांत संभारेछे अने आहारादिकना दोष टाली व्यवहारमां दृष्टि राखेछे एम जद्यपि महाव्रत्त पाले छे तो पण निश्चे नयथी ए अविरतीज कहीए एवा जे जीवछे ते पोते मोक्ष मार्गना अधिकारी लोकमा कहेवायछे पण मोक्षथी ए सदा रुष्टाज रहेछे एटले अभव्यने पण क्रिया केवल नवमा ग्रैव्यकशुद्धि गति कही छे पाछो ए दुष्ट दुर्गतिमा पडेछे ॥ ६८ ॥ जे कोइ मूर्ख मनुष्य व्यवहार

माज रहे अने जे जीव पर्याय बुद्धिवंत छे ते शुभगतियो जीव होय तो नलो एवी पर्याय बुद्धि धारेछे तेने तो बाह्य क्रियानो अवलंबन सदाय कह्योछे ॥६९॥

हवे व्यवहारे महामूढ छे तेनुं वर्णन करेछेः— अथ महामूढ वर्ननः—

चोपाईः—जेसे मुगध धान पहिचाने; तुष तंडुलको नेद न जाने; तैसे मूढमती व्यवहारी; लखे न बंध मोष विधि न्यारी.॥७०॥दोहराः—कुमती वाहिज दिष्टिसों, वाहिज क्रिया करंत, माने मोष परंपरा, मनमें हरष धरंत. ॥ ७१ ॥ शुद्धातम अनुनो कथा, कहे समकित्ती कोइ, सो सुनिके तासों कहे, यह सिवपंथ न होइ७२

अर्थः—जेम कोइ मननो नोळो पुरुष छे ते धानने तो ओळखे पण तूस अने तंडुल मां निन्नता छे ते न जाणे तेम जे व्यवहारी मूढमत्ती छे तेतो बंधविधि अने मोक्षविधि जूदी जूदी लखी शके नही केवळ विधिज जाणे. ॥७०॥ जे कुमती होय ते पर्याय बुद्धिथी शाता वेदनी पणे समाधि सुख जाणीने बाह्य इष्टिथी तेनी हेतुरूप बाह्यक्रिया करे अने बाह्यक्रियामां मगन होय तो तेथी तेने निर्जरा मानीने मोक्ष परंपरा माने अने मनमां आनंद पामे. ॥ ७१ ॥ ते मूढने कोइ समकित्ती जीव शुद्ध आत्मानी अनुनव दशाने मोक्षनुं कारण कहे तो तेनुं वचन सांनळीने तेने एवुं कहे के ए रीतेतो मोक्षमार्ग थाय नही. ॥ ७२ ॥

हवे मूढ तथा ज्ञानीनुं लक्षण कहेछेः—अथ मूढ तथा ज्ञानी लक्षण कथनः—

कवितः— जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि; ते हिय अंध बंधके करता, परम तत्वको नेद न जानहि; जिन्हके हिये सुमतिकी कनिका, वाहिज क्रिया नेष परमानहि; ते समकिती मोष मारग मुष, करि प्रस्थान नव स्थिति नानहि. ॥ ७३ ॥

अर्थः— जेना हीयामां देह बुद्धि रहेछे एटले देहधारी ने पण निन्नपणे जाणतो नथी अने मुनीश्वरनी मुद्रा धारिने क्रियानेज प्रमाण करेछे. तेतो हीयानो अंध छे अने बंधनो करनार छे अने परम तत्वके० मोक्ष तत्वना नेद ने जाणतो नथी अने जेना हीयामां सम्यग द्रष्टिने लीधे सुबुद्धिनी करणीका जागी तेतो बाह्य क्रियाने नेष रूप प्रमाण करेछे. तेनेतो समकिती कहीए ते जीव मोक्ष मार्ग ने सन्मुख प्रस्थान के० प्रयाण करी करीने नवस्थितिने निश्रेंनांजे छे. ॥ ७३ ॥

हवे संक्षेपथी निःकेवळ उपादेयरूप मोक्ष मार्गनो उपदेश दे छेः—

अथ मोक्षको उपदेश संक्षेप मात्र कथनः—

सवैया इकतीसाः— आचारिज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है

कहेंगे हम कितनो ! बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप जली, बोलीए सु वचन प्रयोज न है जितनो, नाना रूप जलपसों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन जलो तितनो; शुद्ध परमातमको अनुजौ अन्यास कीजे, यहे मोष पंथ परमारथ हे इतनो ॥ ७४ ॥ दोहरा — सुद्धातम अनुजोकिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर, मु कति पथ साधन वहे, वाग जाल सब ओर ॥ ७५ ॥

अर्थ — आचार्यजी शिष्यने कहे ठे अहो शिष्य जिनेश्वरना वचननो विस्तार तो नय प्रमाण करीने अगम अपार ठे अमे केटलोक कहीए, आहीं बहु बोलवु ते अमारे मकसुद नथी तेथी चुप रहेवु तेज ठीक ठे, अने जेटलुं प्रयोजन ठे. तेटलुंज बोलवु पण नाना प्रकारनु जल्प के० बोलवु कहिये तो नाना प्रकारना विकल्प उठेठे तेथी जे एक कार्य ठे तेपुरतुज बोलवु बस ठे, शुद्ध परमात्म द्रव्यना अनुजव योगनु अन्यास करीए एज मोक्ष मार्ग जाणीए, बधी वातमा एटलोज परमार्थ ठे ॥ ७४ ॥ जे क्रियाथी शुद्ध आत्मानो अनुजव थाय तेज क्रियावे अने शुद्ध ज्ञान दृष्टिनी दोर तेज मुक्ति पथनु कारण ठे बीजु सर्व वचनाम्बरठे ॥७५॥

हवे शुद्ध जीव द्रव्यनुं वर्णन करेठे — अथ शुद्ध जीव द्रव्य वर्नन —

दोहरा — जगत चक्षु आनदमय, ज्ञान चेतना जास, निर्विकल्प साश्वत सुथिर, कीजे अनुजौ तास ॥ ७६ ॥ अचल अखमित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व, ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥ ७७ ॥

अर्थ — जे पदार्थ जगतमां चक्षूजेवु ठे अने आनंदमय ठे जेनी ज्योति ज्ञान अने चेतना ठे जेमा कोई विकल्प नथी जेद नथी अने शाश्वतो ठे तथा स्थिर ठे. जे पदार्थनो अनुजव करीए तो मुक्ति पामीए ॥ ७६ ॥ जे कोईकाले पोताना स्वजावथी चलायमान थाय नहीं एवो अखमित ज्ञानमयठे. सपूर्ण समाधिवत अने ममत्व रहित, इंद्रिय ग्राह्य नही तेथी ज्ञान गम्य ठे अने अठेद्य अजेद्यपणाथी बाधा रहित ठे तेज आत्म तत्व कहीए ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसार ग्रथनो दशम सरव विसुद्धि नामा द्वार बालाबोधरूप सपूर्ण थयो

दोहरा — सरव विसुद्धी द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपथ ; कुंद कुंद मुनिराजकृत, पूरन जयो गरथ ॥ ७८ ॥

अर्थ — जे द्वारमा आत्मानी सर्व विशुद्धि पामिये तेज द्वार कह्यो ते प्रगटप

ए मोक्षनो मार्ग कह्यो छे, श्री मंधर स्वामीनी वाणी सांजलीने श्री कुंदकुंदाचार्ये आ ग्रंथ कीधो. एवी संप्रदाय वातछे, ते ग्रंथ संपूर्ण थयो. ॥ ७८ ॥

हवे ग्रंथ कर्तानुं नाम अने ग्रंथनो महिमा कहेछेः— अथ ग्रंथ व्यवस्था कथनः—

चोपाईः— कुंद कुंद मुनिराज प्रवीना; तिन्ह यह ग्रंथ इहालों कीना; गाथा बद्ध सु प्राकृतबानी; गुरु परंपरा रीति बखानी. ॥ ७९ ॥ जयो ग्रंथ जगमें विख्याता; सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता; जे नव रस जगमांहि बखाने; ते सब रसमें सार समाने. ॥ ८० ॥ दोहराः— प्रगट रूप संसारमें, नव रस नाटक होइ; नव रस गर्भित ज्ञानमें, विरला जानै कोइ ॥ ८१ ॥

अर्थः— कुंद कुंद नामे मुनिराज ते अध्यात्ममां प्रवीण थया, ते आचार्ये आ सर्व विशुद्धिनामा द्वार लगि आ ग्रंथ कीधो. ते ग्रंथ प्राकृत गाथाबद्ध जलीवाणी प्रकाशी आ वाणीने गुरु संप्रदायथी अमृत चंद आचार्ये वखाणी ॥ ७९ ॥ आ ग्रंथनी टीका व्याख्यान करवाथी कुंद कुंदाचार्यनो करेलो ग्रंथ जगतमां विख्यात थयो, तेने सांजली ज्ञाता होय ते महा सुख पामे, जगतमां जे नव रस वखाण्या छे, ते सर्व रसमां सार रस ते ए समयसार नाटकमां समाई रह्याछे. ॥ ८० ॥ संसारमा ए वात प्रगट छे के जे नाटक होय ते नव रसमय होय, पण शांतरसमां जे ज्ञान छे. तेमां नवे रस गर्भित छे. तेने तो कोई विरलाज जाणेछे. ॥ ८१ ॥

हवे नव रसनुं वर्णन करतां नव रसनां नाम कहेछेः—अथ प्रथम नव रसके नाम

कवित्त छंदः—प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, करुना तृतिय जगत सुखदायक; हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छठ्ठम सुरस बिजत्त्व विजायक; सत्तम जय अष्टम रस अदभुत, नवमो शांत रसनिको नायक; ए नव रस एई नव नाटक, जो जहाँ मगन सोइ तहाँ लायक ८२

अर्थः— प्रथम शृंगार रस, बीजो वीर रस, त्रीजो करुणा रस, ते जगतमां सुखदायक छे. चोथो हास्य रस, पांचमो रौद्र रस, छठो बिजत्स रस, ते विजायक कहेतां चित्तनो जंग करनार छे. सातमो जय रस, आठमो अद्भुत रस, नवमो शांत रस छे, ते सर्व रसनो नायक छे, ए नव रस कहिए. ते नव रस नाटक रूप होय. जे प्राणी जे रसंमां मगन थई रह्यो छे तेने ते रस लायक छे. ॥ ८२ ॥

हवे नव रसना स्थाई जाव कहेछेः— अथ रस अवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— सोजामें सिंगार बसै वीर पुरुषारथमें, हियेमें कोमल करुना रस बखानियें; आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें बिराजे रुद्र, बीजछ तहां जहां गिलान मन आनियें; चिंतामें जयानक अथाहतामें अदद्भुत, मायाकी अरुचि ता

में शांत रस मानिये , एई नव रस नवरूप एई नावरूप, इन्हको विलेछन सुद्द ष्टि जग जानिये. ॥ ७३ ॥

अर्थ – शोनामा शृंगार रसनो निवास छे अर्थ साधन रूप पुरुषार्थमां वीर रसनो वास छे हृदयना कोमलता पणामां करुणा रसनो वास छे. आनंदनी प्राप्तिमा हास्य रसनो वास छे रण संग्राममा रुंम मूंमपडेलां होय, त्यां रौद्र रस नो वास छे कोई सुगामणु स्थानक जोई मनमा ग्लानी आवे, त्या बिनत्स रस नो वास छे चिंतामा नय रसनो वास छे जे कोई अथाग अघटमान वस्तु जा णिए त्यां अद्भुत रसनो वास छे. ज्या मायानी अरुचि होय तदा शात रसनो वा स प्रमाण कहिए ए नव रस छे ते नवरूप के० संसार रूप पण छे, अने एहिज नव रस नाव के० उत्तम नावरूप पण छे, ए नव रसनो विलेछन के० विवेक जे छे ते तो जगतमा सुदृष्टिथी जाणीए ॥ ७३ ॥

हवे एज नव रस नावरूप ज्ञानमा गर्भित छे ते एकज ठेकाणे देखाडे छे –

अथ नव रस ज्ञान गर्भित एकीनूत कथन –

छपय छंद – गुन विचार सिंगार, वीर उद्दिम उदार रुप, करुना सम रसरी ति, हासहिरदे उछाह सुख, अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरते तिहि थानक, तन विलेछ बीनछ, दुंद दुखदसा नयानक, अदभुत अनंत बल चितवत, शात सहज वै राग धुव, नव रस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ ७४ ॥

अर्थ -- ज्ञानादिक गुणेकरी आत्म विनूषित देखिये त्यातो शृंगार रस उप ज्यो १ अने आत्मानेविषे निर्जरा प्रमुखनो उद्यम देखिये त्यातो उदार प्रधान वीर रस छे २, ज्यारे आत्माने उपशम रसनी रीते देखिये त्यारे करुणा रस जा णीए ३, ज्यारे एने अनुनवमा उत्साह अने सुखउपजे छे ते तो हैयामां हास्य रस उपजे छे ४, महा वलवान आठ कर्मना अनत प्रदेशी दल छे तेनो दलन करतां देखीए तो तदा आत्मा रौद्र रसमयि थई रह्यो छे ५, ज्यारे पुजलनु स्वरूप विचारीपे छीए त्यारे बिनत्स रस छे ६, ज्यारे आत्मा पोतानुं स्वरूप न जाणे अने दुंद दुखदशामां पडयो छे, त्यारे तो नय रसमा देखीए ७, अनत वीर्यनुं ज्यारे चितवन करीए त्यारे तो आत्मा अदभुत रस पामे ८, ज्यारे राग द्वेष निवारीने स हज वैराग्यने धुव के० निश्चल धारे छे, त्यारे आत्मा शात रसमय पामीए ९, ए नव प्रकारना नाव रसना विलास नो प्रकाशतो ज्यारे घटमां सुबुद्धि प्रगट थाय त्यारेज थाय. ॥ ७४ ॥

हवे कुंद कुंदाचार्यकृत आ ग्रंथ छे तेनी स्तुति करेछेः— अथ ग्रंथ स्तुतिः—

चोपाईः— जब सुबोध घटमें परगासे, तब रस विरस विषमता नासे, नव रस लखे एक रसमांही, तातें विरस भाव मिटि जांही. ॥७५॥ दोहरा—सब रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ; जाके सुनत प्रवान जिय, समुझे पंथ कुपंथ. ॥ ७६ ॥ चोपाईः— वरते ग्रंथ जगत हित काजा, प्रगटे अमृतचंद मुनि राजा, तब तिन्ह ग्रंथ जानि अति नीका, रची बनाइ संसकृत टीका ॥७७॥ दोहराः— सर्व विशुद्धि द्वारलों, आए करत बखान; तब आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुन ज्ञान. ॥ ७८ ॥ चोपाईः—अदभुत ग्रंथ अध्यातम वांनी, समुझे कोऊ विरला ज्ञानी, यामें स्या द्वाद अधिकारा, ताको जो कीजे विसतारा ॥ ७९ ॥ तो गरंथ अति शोभा पावे वह मंदिर यह कलस कहावे, तबचित अमृत वचन गढखोले, अमृत चंद आचारज बोले ॥८०॥ दोहराः— कुंदकुंद नाटकविषे, कह्यो दरव अधिकार, स्यादवादनें सा धि में, कहों अवस्था द्वार ॥ ८१ ॥ कहों मुकति पदकी कथा, कहों मुक्तिको पंथ, जैसे घृत कारज जहां, तहाँ कारन दधिपंथ ॥ ८२ ॥ अर्थ स्पष्ट ॥ चोपाईः— अमृत चंद बोले मृडुबानी, स्यादवादकी सुनो कहानी, कोऊ कहै जी व जगमांहीं, कोऊ कहै जीव है नाही ॥ ८३ ॥ दोहराः— एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग; छिन भंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥ ८४ ॥ नय अनं त इह विधि कही, मिले न काहू कोइ, जो सब नय साधन करे, स्यादवाद है सोइ ॥ ८५ ॥ स्यादवाद अधिकार अब, कहों जैनको मूल, जाके जाने जगत जन, लहै जगत जल कूल ॥ ८६ ॥

अर्थः— हवे संगतनी वात कहेछेः— ज्यारे घटमां सुबोध प्रकाशे छे, त्यारे ए रसस हित छे अने ए विरस छे. एवो विषय ममता भाव छे ते सर्व नाश पामेछे एनो हेतु ए छे के जे नव रस छे तेने एक भाव रसमांज लखे के० जुवे, तेथी विरस भाव मटीने एकज रसमां आत्मानुं रहेवुं थाय. ॥ ७५ ॥ एम सर्व रसोमां गर्भित एक रसमय थयलुं एवुं आ समयसार नाटक नामे ग्रंथ श्री कुंद कुंदा चार्यजीए कह्यो, जेना अर्थ भावने सांभलता प्रमाणिक जीव छे ते मारग कुंमा रगनो विचार समजे. ॥७६॥ प्रथम जगत वासी जीवोने हितकारी कार्यनो ग्रंथ प्रवर्त्त मान थयो ते पछी अमृतचंद नामा आचार्य प्रगट्या तेणे आ ग्रंथ अति श्रेष्ट जाणीने आ ग्रंथनी टीका बनावी, गाथानुं रहस्य लइने काव्य बंध कह्यो ते कहीए छीए. ॥ ७७ ॥ श्री अमृतचंदजी एज ग्रंथनुं व्याख्यान करतां सर्व विशुद्धि द्वार

सुधी आव्या. आही ग्रंथ सपूर्ण थयो जाणी श्री अमृतचद आचार्य भक्तिना वश थी ग्रंथनुं गुण ज्ञान करे छे. ॥ ८८ ॥ आ ग्रंथ अध्यात्म वाणीमा अद्भुत थयो, पण आ ग्रंथने कोई विरला ज्ञानवत पुरुष समजे, आ ग्रथमा स्याद्वादनो अधिकार छे ते अल्प बुद्धि स्थूलमतिने समजवो मुशकेल छे तेथी ते स्याद्वादनो जो विस्तार करीये तो सारु ॥ ८९ ॥ जेथकी आ ग्रंथ अति शोभा पामे एम विचारी आ ग्रथरूप मंदिर तेना उपर स्याद्वादनो विस्तार करियें तो ते कलशरूप थाय. त्यारे म्हारा चित्तमां अमृत जेवा वचन गढी के० धारण थइने खुले एम दोष रहितनी परे श्री अमृतचद आचार्य बोले छे के ॥ ९० ॥ श्री कुंद कुदाचार्यना करेला नाटक ग्रंथमा जीव अजीव द्रव्यनो अधिकार कह्यो. हवे हुं स्याद्वाद नयनो अवस्थानो द्वार कहुंछु. अने साध्य वस्तुनी अवस्थानो द्वार कहुंछु ॥ ९१ ॥ वाणुमां दोहरानो अर्थ सुलभ छे ॥ ९२ ॥ अमृतचद आचार्य एवी कोमल वाणी बोल्या के अहो शिष्य स्याद्वादनी कथा हु कहुंछु ते सांभलो कोई अस्तिवादि तो एम कहे छे के जगतमा जीव-वस्तु छे, अने कोई नास्तिवादी कहे छे के, जगतमा जीव वस्तु नथी ॥ ९३ ॥ कोई अद्वैतवादी ब्रह्मने एकरूप कहेछे कोई नैयायिक वैशेषिक जीवने अगणितपणे कहेछे कोई बौध मतीने लीधे जीवने क्षणभगुर कहेछे, कोई साख्य मतीने लीधे जीवने अजगज कहेछे ॥ ९४ ॥ अर्थ समजवाना मार्गने नय कहिए, ते समजवाना मार्ग अनत छे; तेने लीधे नय पण अनत कहिये, तेमां कोई नय कोई नयने मले नही, विरोधी छे हवे आंही जे सर्व नयनुं साधन करे, एटले सर्व नयने साचा साधिने देखाडे, तेने स्याद्वादि जाणीए ॥ ९५ ॥ ते स्याद्वादनो अधिकार हवे हु सर्व कहु छु एज स्याद्वाद आगमनु मूल छे जे स्याद्वादना जाण प्रवीण जगतवासी लोक छे ते ससार जलधिना कांठो पामेछे ॥ ९६ ॥

हवे नयजालथी शिष्यने सदेह उपज्यो त्यारे प्रश्न करेछेः— अथ शिष्यप्रश्न गुरु उत्तर कथन —

सवैया इकतीसा — शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीन के पराधीन, जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिये, जीव है सदीव किधौ नाहि है जगतमाहि? जीव अविनस्वर के नस्वर कहीजिये, सतगुरु कहे जीव है सदीव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये, जीव पराधीन छिन भगुर अनेकरूप, नाहि तहां जहां परने प्रवान कीजीए. ॥ ९७ ॥

अर्थः— प्रथम शिष्य पुछेछे, स्वामी जीव स्वाधिन छे के पराधिन छे? जीव एक छे के गणतिमां अनेक छे? ए केम मनमां जाणवुं. अने जीव कहेवाय छे तो जगतमां सदायछे के नथी, ए अस्तिपणानो संदेह छे, अने जीव अस्ति के० अविनासी छे के विनाशी छे. हवे आवी रीतना प्रश्न उपर सद्गुरु कहेछे. के हे शिष्य जीव वस्तु जगतमां छे, पण नास्ति न कहीए, अने ते जीव आपणे स्वाधिन छे. अने एक छे यद्यपि गिणतीयें अनेक छे, तो पण लक्षणथी एक छे. अविनाशी द्रव्य दृष्टि दीजे तो एमज छे, अने जो पर्याय नय प्रमाण करीये तो जीव पराधीन छे, कर्माधीन छे. अने अवचित मरण देखतां क्षणभंगुर छे. गत्यादिक देखतां अनेकरूप छे. वली अजीव पदार्थ स्थापनानी अपेक्षाये नथी. अने जहां पर्याय प्रमाण छे तिहां एछे. ॥ ५७ ॥

हवे द्रव्य क्षेत्र काल भावें करीने सर्व वस्तुनुं अस्तिनास्तिपणुं कहेछेः—

अथ दरव क्षेत्र काल भाव अस्तिनास्ति कथनः—

सवैया इकतीसाः—दर्व खेत्र काल भाव चारो भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियें, परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग, ताको भेद दर्व परजाय मध्य जानिये, दरवतो वस्तु खेत्र सत्ता भूमिकाल चाल, सुभाव सहज मूल सकति बखानिये, याही भांती परविकलप बुद्धि कलपना, विवहार दृष्टि अंशभेद परवानिये. ॥ ५८ ॥ दोहराः— है नाही नाही सु है, है है नाही नाहि; यह सरवंगी नयधनी, सबमाने सब मांहि. ॥ ५९ ॥

अर्थः—द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए चारें भेद वस्तुमां विचारीए, आंही आपणे वस्तु छे, ते अस्तिरूप मानीए, एटले स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावथी विचारीए त्यारे तो सर्व वस्तु अस्तिरूपें छे, अने जो परवस्तुथी ए चारने विचारियें तो वस्तुनुं नास्तिस्वरूप नीपजे छे. एटले परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावथी सर्व वस्तु नास्तिरूपे छे. नियत्त अंग के. निश्चेनयथी. अस्ति छे तेनो भेद द्रव्य पर्यायथी जाणवो. ए चार भेदमां द्रव्यथी वस्तु कहीए, वस्तुनी सत्तानी भूमिने क्षेत्र कहियें, वस्तुनी परिणाम चालथी काल कहीए, सहजनी मूलशक्तिने स्वभाव कहीए. ए रीते बुद्धिनी कल्पना करीने परद्रव्य क्षेत्रादिकना जो विकल्प ग्रहण करियें जेम के घट वस्तु ग्रहण करवाथी परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावनी कल्पनाथी नास्ति छे. ए व्यवहार दृष्टिथी वस्तुना अंश भेद प्रमाण थाय. ॥ ५८ ॥ अने ए नथी एवुं कहेवामां स्वद्रव्यादिकनुं आस्तिपणुं लईने परद्रव्यादिकथी नास्तिपणुं लईए तथा नही ते छे एम

कहेवामां प्रथम परद्रव्यादिकनुं अस्तिपणु ग्रहीए, छे अने नथीज एम केहेवामा फरी परद्रव्यादिकनुं केवल नास्तिपणुज ग्रहण करिये छे, एथी सात भांगा उपजे छे, आंही सवांग नयना धणी स्याद्वादी सर्व वस्तुमा सर्व भागा माने छे ॥ ९९ ॥

हवे चौद नयना भेदथी एकेक भेदे एकात पक्षीनी जेवी केहेणी छे तेवी कहेछे.—

अथ चतुर्दश नय भेद एकात पक्ष कथन नाम स्थापन —

सवैया इकतीसा — ज्ञानको कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोक मेय, ज्ञेयसो अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है, जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्वमे विज्ञाज्ञेय क्षेत्र ज्ञान जीव वस्तु नाही है, देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ताअंसमाही है, जीव छिन भंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकत अवस्था मूढ पाही है ॥ ५०० ॥

अर्थ — प्रथम चउद नयना नाम स्थापना कहेछे — जे ज्ञेय वस्तुमा ज्ञान उपजेछे, तेथी ज्ञाननु कारण ज्ञेय छे ए नाम छे, १ त्रण लोक प्रमाणे आत्मा छे, तेथी त्रिलोकमय एवु नाम छे, २ जेम अनेक ज्ञेय छे, तेम ज्ञान पण अनेक छे ते अनेक ज्ञान ए नामछे ३ ज्ञानमा ज्ञेयनी छाया छे ते मेलवु छे तेथी मेलन ज्ञेय ए नाम छे ४ ज्या सुधी ज्ञेय छे त्या सुधी ज्ञान छे ज्ञेय उपरांत ज्ञान नथी तेथी ज्या लगी ज्ञेय ए नामछे ५ सर्व दर्व मयीविज्ञान छे तेनु तेज नामछे ६ ज्ञेय क्षेत्रने प्रमाणेज ज्ञान छे, तेथी ज्ञेय क्षेत्रमान ए नाम छे ७ जीव वस्तु जगतमा नथी तेथीनास्ति जीव ए नामछे,८ देहनो नाश थवाथी जीवनो पण नाश,तेथी जीव नाश ए नामछे ९, देह उपजवाथी जीव विराजे छे, तेथी देह त्या जीवोत्पाद ए नामछे १०आत्मा छे ते अचेतन पदार्थ छे तेथी अचेतन ज्ञाता ए नाम छे ११ सत्ताना अंस ते जीव कहिए छे, पण आत्मा अंस मात्रछे ए नाम छे १२ जीव छे, ते क्षणभगुर छे तेथी एज नामछे १३, ज्ञान छे ते ज्ञायक स्वरूपमा नथी तेथी अज्ञायक ज्ञान ए नाम छे १४ एवी एवी एकात अवस्था मूढ लोको पामे छे, ए नयना भेद जाणवा ॥ ५०० ॥

हवे ज्ञाननुं कारण ज्ञेय. एजे प्रथम नय कह्यु तेनो प्रपच करी देखाडेछे —

अथ ज्ञानको कारन ज्ञेय प्रथम नय यहु कथन.—

सवैया इकतीसा — कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम समारि भीति, पीछे ताके उपर सु चित्र आछो लेखिये, तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहा ज्ञान रूप कारज विशेखिये, ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोई सुभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न

भिन्न पद पेषिये; कारन कारज दोउ एकहीमें निहचे पें, तेरो मत साचो विवहार दृष्टि देखीये ॥ ५०१ ॥

अर्थः— कोई मूढ मीमांसक ते शिष्य लोकने एम समजावे छे के, जेम प्रथम भिंतने समारी होय तोपछी तेना उपर चित्र सारुं थाय, अने नरसी उपर नरसुं चित्र थाय; तेम ज्ञाननी उत्पत्तिनुं कारण मन छे, पण जेवो घटपट प्रमुख पदार्थ होय तेवुंज तिहांज्ञानरूप कार्य विशेष थाय छे, जो घटपदार्थ जाणवा योग्य होय तो घट ज्ञान होय, अने पट पदार्थमां पट ज्ञान होय, तेथी ज्ञाननुं कारण ज्ञेय छे, हवे तेने स्याद्वाद ज्ञानी एम कहेछे के, अहो भाई, जे जेवी वस्तु छे तेनो स्वभाव पण तेवोज छे, जे ज्ञानपदार्थ छे तेनो स्वभाव जाणवानोज छे, अने जे ज्ञेयपदार्थ छे ते जाणवा योग्यज छे, आ अर्थ भेदथी ज्ञान अने ज्ञेय ए बने जुदा पद जाणवा. अहीं जे ज्ञेय कारण पणे कह्यो तेज ज्ञान विकल्पे कह्युं, तेथी घटपटादि जगत छे ते जड पदार्थ दूर रह्या, अने ज्ञान छे तेज सामान्य पणे छे. तेथी निश्चे नयथी तो ज्ञानमां ज्ञेय पामिये, पण व्यवहार दृष्टि आपतां तो ताहारुं मत पण साचुंछे ५०१

हवे बीजा एकांत नय आत्मा त्रिलोकमय छे तेनो प्रपंच देखाडे छेः—

अथ द्वितिय नय आतमा त्रिलोक प्रमानयह कथनंः—

सवैया इकतीसाः— कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समुझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है; याहितें सुछंद भयो डोले मुष हू न बोले कहे याजगतमें हमारोई खरब है; तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न पै जगतको विकासी तोहि याहीते गरव है; जो वस्तु सो वस्तु पररूपसों निराली सदा, निहचे प्रमान स्यादवादमें सरव है; ॥ ५०२ ॥

अर्थः— कोई नैयायिक वैशेपिक मिथ्याति छे. ते ज्ञानने लोकालोक व्यापी मानीने एवुं समझे छे के जीवछे ते विज्ञाननो पिंड छे. अने विज्ञान छे ते लोकालोक व्यापी छे. तेथी आत्मद्रव्य त्रण लोक प्रमाण छे. तेथी पोताने सर्व व्यापी ईश्वर मानीने स्वछंद थयो डोले छे अभिमानमां चढ्यो थको बीजाने मूर्ख मानीने कोईनी साथे मुखथी न बोले. जो बोले तो एम कहे के आ जगतमां हमारीज खरब के० सर्व रचना छे. हवे तेने स्याद्वाद ज्ञानी कहे छे के अहो भाई जीव जे छे ते जगतथी भिन्न छे पण तेना ज्ञानमां जगतनो विकास छे तेथी ईश्वरपणानो गर्व चढ्योछे पण जे वस्तु छे तेतो पोताना स्वरूपमांज रहे छे अने परस्वरूपथी सदा जुदी रहे छे तेथी जगत अने आत्माने निश्चे नयना प्रमाणथी स्याद्वादमां सर्वथा विवरोध पामिए. ५०२

हवे त्रीजो एकांत नय ते ज्ञेयथी ज्ञाननो अनेक प्रपंच कहि देखाडेछे –

अथ त्रितीय ज्ञेयसो अनेक ज्ञान कथन –

सवैया इकतीसा – कोउ पशु ज्ञानकी अनत विचित्राई देखे, ज्ञेयको आकार नाना रूप विसतर्यो है, ताहीको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकंत पक्ष लोकनिसों लर्यो है, ताको भ्रम भंजवेकों ज्ञानवत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्यो है, ज्ञायक सु भाई परजाईसों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासो नहि टर्यो है, ॥ ५०३ ॥

अर्थ.– कोई पशु के० मूर्ख ज्ञाननी अनंत विचित्रता देखेछे तेनो हेतु कहे छे. जगतमा ज्ञेय वस्तु अनत छे, तेना आकार अनत छे ते ज्ञानमा परणमे छे तेथी ज्ञानपण नानाप्रकारथी विस्तरे छे, अने तेना नाना रूप विस्तारने विचारीने ज्ञाननी अनत सत्ता माने छे एवो एकांत पक्ष लईने प्रतिवादी लोकथी लडे छे हवे स्याद्वादी ज्ञानवत ते एकान्तपक्षीना भ्रम भाजवाने एम कहेछे के, अहो भाई तु ज्ञानने ज्ञेयनो आकार परणम्यो जाणीने केम भूले छे? ज्ञान छे ते अगम्य वस्तु छे निराबाध रसथी भर्यो छे ज्ञाननो ज्ञायक स्वभाव छे, तेथी यद्यपि पर्याय शक्तिथी ज्ञान अनेकरूप थयु छे तथापि ज्ञायक स्वभावथी ज्ञाननी एकताज छे. पण ते एकताथी ज्ञान टलतुं नथी ॥ ५०३ ॥

हवे चोथा नयमा ज्ञाननेविषे ज्ञेयनी छायानो प्रपंच देखाडे छे.–

अथ चतुर्थ ज्ञेय छाया यह कथन –

सवैया इकतीसा – कोउ कुधी कहे ज्ञानमाहि ज्ञेयको आकार, प्रतिभासि रह्यो है कलंक ताहि धोइए, जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइए; तासों स्याद्वादी कहे ज्ञानको सुभाव यहे, ज्ञेयको आकार वस्तु नांहि कहा खोइए, जैसे नाना रूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे, जदपि तथापि आरसी विमल जोइए. ॥ ५०४ ॥

अर्थ –कोई कुधी के० कुबुद्धि वैशेषिक मतवालो एम कहे छे के, जो जगत वासी जीवना ज्ञानमांज ज्ञेयनो आकार प्रतिभासे छे, ते आकार तो निराकार ज्ञाननुं कलंक उपजेछे तेने धोई नाखवो जोइए, तेथी निराकारनु ध्यान लगाडवु तेतो जल थयु, ते जलथी प्रक्षालीने ते ज्ञानने उज्वल करिये तेवारें निराकार शुद्ध ज्ञानमय थवाय छे, हवे आही स्याद्वादी तेने कहे छे अरे भाई ज्ञाननो एज स्वभाव छे,

के ज्ञेयनो आकार वस्तुमां भासे तो आंही आकार गमावी नाखवानी शुं मतलब छे. जेम आरसीमां नाना रूप प्रति बिंबनो झलकाट देखाय छे तो पण आरसी निर्मल जोइए पण तेने प्रतिबिंबनुं कलंक कोई न कहे. ॥ ५०४ ॥

हवे पांचमो एकांतनय ते ज्यां लगें ज्ञेय त्यां लगें ज्ञान तेनो प्रपंच कही देखाडेछे

अथ पंचम जौलों ज्ञेय तौलों ज्ञान यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम जौलों विद्यमान तौलों ज्ञान परगट है; ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनास होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अलट है; तासों समकितवंत कहे अनुभौ कहान. परजे प्रवान ज्ञान नानाकार नट है; निरविकलप अविनस्वर दरव रूप, ज्ञानज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है. ॥ ५०५ ॥

अर्थः— कोई अजाण पुरुष एवुं कहेछे के जेवो ज्ञेयनो आकार तेवुं ज्ञाननुं परिणाम थायछे, तेथी ज्ञेय विद्यमान ज्यां लगी होय, त्यां लगी ज्ञान प्रगट रहेछे अने ज्ञेयनो विनाश थये ज्ञाननो पण विनाश थायछे, एवी वात मिथ्यामतीना हृदयमां मिथ्यानी अलट लागी रहेछे; हवे तेनाथी सम्यकवंत स्याद्वादी अनुभवनी कथा कहेछे. अरे भाई, जेम कोई नट पुरुष छे ते नाना प्रकारना भेष धारीने नाना प्रकारनां नाम धरावेछे, तेम ज्ञानरूप नट छे, ते नाना आकार धरीने पर्याय प्रमाणे बहुरूपी थायछे पण जेवुं नट द्रव्य एक छे तेवुं ज्ञान वस्तु पण निर्विकल्प एक छे, द्रव्यपणे अविनस्वर छे. अने ज्ञान वस्तु ते ज्ञेय वस्तुथी अव्यापक छे, एटले ज्ञेयवस्तु ज्ञान वस्तुमां एक मेक न थाय तेथी ज्ञान ज्ञेयनी एकता अघटती छे ॥ ५०५ ॥

हवे छठा एकांतनय सर्व द्रव्यमयी आत्मानो प्रपंच कही देखाडे छेः—

अथ षष्टम सर्व दर्वमय आतमा यह कथनः—

सवैया इकतीसाः—कोउ मंद कहे धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें; जाने न मरम निज मानें आपा परवस्तु बंधे दिढ करम धरम खोवे डगमें; समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासे तातें परको ममत्व त्याग करे पग पगमें; अपने सुभावमें मगन रहे आठों जाम, धारा वाही पंथिक करावे मोष मगमें ॥ ५०६ ॥

अर्थः— कोई मूर्ख ब्रह्माद्वैतवादी एवुं कहे छे के जो कोईनां मतमां धर्म अधर्म आकाश काल जीव पुद्गल ए छ द्रव्य कहेवाय छे ते सर्व ब्रह्म छे. तेथी मारुं पणरूप सर्व जगतमां विस्तरि रह्युं छे. बीजो पदार्थ कोई नथी. आंही गुरु शि

ष्यने कहे छे. अहो शिष्य एतो ब्रह्माद्वैतवादी मूढ मती छे, ते पोतानो मर्म जाण तो नथी, अने पर वस्तु छे तेने आत्मा जाणे छे एवा मिथ्यात्वथी ए दृढ कर्म बा धे छे अने जगतमा पोतानो धर्म खोवे छे पोतानो स्वनाव गमावे छे. जे सम केती जीव होय तेतो सोहं बीजना ध्यानथी शुद्ध अनुनवनो अन्यास करे, तेथी आत्मतत्व शुद्ध पामे अने पगले पगले परवस्तुनो त्याग करे, अने पोताना शु द्ध स्वनावमा आठे प्रहर मगन रहे, तेथी ज्ञान धारामां वहेनारो मोक्ष मार्गमा चालनारो कहेवाय छे ॥ ५०६ ॥

हवे सातमो एकांत नय जे ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान तेनो प्रपच कहि देखाडेछे

अथ सप्तम ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान यह कथन –

सवैया ३१सा – कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परवान, तेतो ज्ञान ता तें कछु अधिक न औंर है, तिहूं काल पर छेत्र व्यापी परनयो माने, आपा न पि छाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है, जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेयसों अ व्यापक जगत सिर मोर है, ज्ञानकी प्रनामे प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथा पि थिति न्यारी न्यारी ठौर है ॥ ५०७ ॥

अर्थ – कोई मूर्ख एम कहे छे के जेटलु ज्ञेय वस्तुनो आकाररूपनु प्रमाण छे एटले ज्ञेयनो जेटलुं एक नाहानुं मोहोटुं प्रमाण छे तेटलु ज्ञाननुं प्रमाण छे ते थी कोई वधारे बीजो प्रमाण नथी एम ज्ञानने त्रणे कालमा परक्षेत्र व्यापी अ ने पर वस्तुथी परिणम्यो, एटले ज्ञेयथी एक मेक थयो ज्ञानने माने छे पण ज्ञानने आत्मारुप जाणे नहीं, एवी मिथ्या दृष्टिनी दोर छे. हवे तेने जैनमती स्याद्वादी कहे छे अहो नाई, जेटला आकाश क्षेत्रमा जीव सत्ता छे तेटलाज प्रमाण ज्ञान छे अने ज्ञान छे ते घट पटादिक ज्ञेय पदार्थथी अव्यापक छे एज जगतना मस्तके मुगट समान छे जो पण ए ज्ञाननी प्रनामां नाना प्रकारना ज्ञे य पदार्थ प्रतिबिंबित थई रह्याछे, तोपण ज्ञाननी स्थिति जूदीज छे अने ज्ञेयनी स्थिति पण जुदीज छे अने ज्ञाननुठेकाणु आत्मा छे ते पण जुदोज छे, अने ज्ञेयना पृथिवी प्रमुख जे ठेकाणा छे ते पण जुदाज छे ॥ ५०७ ॥

हवे आठमो नय नास्तिकवादी एम कहे छे के वस्तु नथी एज एकांत नय छे तेनो प्रपंच कही देखाडे छे – अथ अष्टम नास्तिकवादी वस्तु नाही यह कथन –

सवैया ३१सा.–कोउ शून्यवादी कहे ज्ञेयके विनास होत, ज्ञानको विनाश होइ कहो कैसे जीजियें, तातें जीवितव्यताकी थिरता निमित्त अब, ज्ञयाकार परि

नासनिको नास कीजियें; सत्यवादी कहे भैया हूजें नाही षेद खिनज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानी लीजीयें; ज्ञानकी शकती साधि अनुभो दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजियें ॥ ८ ॥

अर्थः– कोई बौध मतिनो भेद शुन्यवादी एम कहे छे के, ज्ञेय छते ज्ञान उपजे छे, अने ज्ञेयनो विनाश थए ज्ञाननो पण विनाश थाय छे. अहो प्रतिवादी तमेज कहोछो के ज्ञान ते जीवनुं रूप छे. तो ज्ञाननो विनाश थएथी जीव पण विणसी जाय. तो जीववुं केम होय? तेनो उत्तर के जीवितव्यनी स्थिरताने कारण एटले शाश्वत जीव राखवा निमित्त ज्ञानमां जे ज्ञयाकार परिणाम उपजे छे, तेनुं नाश करियें तो जीवनी स्थिरता थाय, हवे ते उपर सत्यवादी जैनी कहे छे. अहो भाई एम खेदमां खिन्न के० आकुलव्याकुल न थावुं. ज्ञेयथी विरचिने उदासीन थईने ज्ञान वस्तु भिन्नज मानी लइयें. ए ज्ञाननी ज्ञायक शकती छे ते शक्तिनुं साधन करीने अनुभव दशामां ए ज्ञायकने आराधिने कर्मने त्यागी परम रस पीजीए॥ ८ ॥

हवे नवमो एकांत नय देहनो नाश थातां जीवनो नाश तेनो प्रपंच कही देखाडेछे

अथ नवम देहके नाश होत जीवको नाश यह कथनः–

सवै इकतीसाः– कोउ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसैगी तबहीं जीव मरेगो; छायाको सो छल किधों मायाकोसो परपंच, कायामे समाइ फिरि कायाकों न धरेगो; सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव, समोपाइ परको ममत्व परिहरेगो; अपने सुभाउ आइ धारना धरामे धाइ, आपुमें मगन व्हेके आपा शुद्ध करेगो. ॥ ९ ॥ दोहराः– ज्यों तन कंचुकि त्यागसों, विनसे नांहि भुयंग; त्यों शरीरके नासतें, अलख अखंडित अंग. ॥ १० ॥

अर्थः– कोई चारवाक मती क्रूर एम कहे छे के, काया अने जीव बने एक पिंड छे, तेथी ज्यारे देह नाश पामसे त्यारे जीव पण नाश पामशे. जेम वृक्षनो विनास थये तेनी छाया पण विनाश पामे छे, तेम काया अने जीवनी छायानो छल बनी रह्यो छे. अथवा इंद्र जालनी मायानो प्रपंच बनी रह्यो छे, तेथी ते कायामां समाइने एटले दीपकनी परे ओलवाइने पाछो कायाने धरशे नही. हवे तेने सुधि के० पंडित स्याद्वादी कहेछे. अहो भाई जीव छे ते देहथी सदा अव्यापक छे. एटले जीव देह पणे परिणम्यो नथी. आ जीव पोतानो समय प्रस्ताव पामीने परनो ममत्व छोडशे. त्यारे पोताना शुद्ध स्वभावमां आवीने, धारनाधरामेंधाइके एटले स्थिरता रूप भूमिमां रहीने आप स्वरूपमां आपज मगन थईने आत्मानी शु

-हता करशे. ॥ ९ ॥ जेम सर्पना शरीर उपर कांचली आवे, ते कांचलीना त जवाथी भुजंग विणशे नही. तेमज शरीरनो त्याग थाता अलप जीव छे ते अखं मित अंगे रहेछे पण जीवनुं विनाश थतु नथी. ॥ १० ॥

हवे दशमो एकांत नय देह उपजवाथी जीव उपजे तेनो प्रपच कही देखाडेछे —

अथ दशम देह उपजत जीव उपजे यह कथन —

सवैया इकतीसा — कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उ पज्यो हे अब आइके, जोलों देह तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहेगो अलप ज्योति ज्योतिमें समाइके, सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देह धारी, जब ज्ञान, होइगो कबहीं काल पाइके, तबही सो पर तजि अपनो सरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसाइके ॥ ११ ॥

अर्थ — कोई दुष्ट बुद्धि धरनार एक ममत्व वालो एम कहेछे के, पेहेलो जीव हृतो नही अने पृथवी, जल, तेज, वायु, ए चार भूतना मिलापथी देह उपज्यो ते मां ज्ञान शक्तिरूप जीव पण आवी उपज्यो हवे ज्यांसुधी देह वर्ते त्यांसुधी देह धारी नाम धरावे छे अने पाछो देहनो नाश थशे त्यारे अलख पुरुष ज्योति रु पी छे, ते ज्योतिमां समाइ जाशे हवे सद्बुद्धि स्याद्वादी कहेछे, अहो भाई जीव अना दि कालथी देह धारी मूर्त्तिक छे एटले नवो उपनु नथी अने ए जीव कोई काले काल लब्धी पामीने ज्ञानी थाशे त्यारे देहादिक पर वस्तुने त्यागिनें पोताना स्व रूपने भजसे. पछी कर्मोनो नाश करीने परम पदने पामशे ॥ ११ ॥

हवे अग्यारमो एकांत नय आत्मा अचेतन तेनो प्रपच विस्तारथी कहे छे.—

अथ एकादशम आतमा अचेतन यह कथन —

सवैया इकतीसा — कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार परिनयो ज्ञान ता तें चेतना असत हे, ज्ञेय के नसत चेतनाको नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत हे, पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित हे, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत हे, चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रवान जीव तत हे ॥ १२ ॥

अर्थ — कोई पक्षपाती हठवादी जीव कहेछे ज्ञान छे ते ज्ञेयनो आकार परिण म्यो होय, अने आकार परिणाम असत छे, तेथी चेतना पण असत छे. तेनो हे तु कहे छे, जुओ ज्ञेयनो नाश थाय तेवारें चेतनानो नाश थाय छे. जे सत् वस्तु होय तेनो तो विनाश किवारे पण न थाय ते कारणथी चेतना असत् थई तेथी

त्रणे कालमां आत्मा अचेतन थयो, एवुं माह्यरो मत छे. हवे पंमित स्याद्वादी कहे छे अहो नाई ज्ञान वस्तु सहज स्वनावे अखंमित छे, अने ज्ञेयनो आकार धरेछे तोपण ज्ञेयथी विरक्त छे. जेम आरसीमां आकार नासे तोपण ते आकाररूप आरसी न थाय, जो चेतना लक्षणनोपण नाश मानीए तो जीवनी सत्तानो पण नाश थाय, त्यारे जीव वस्तु पण असत् थाय, तेथी जीव तत्व जे छे ते ज्ञान चेतनाना प्रमाणथीज मानीए ॥ १२ ॥

हवे बारमो एकांत नय अंसप्रमाण जीव सत्तानो प्रपंच कही बतावे छेः—

अथ द्वादशम अंस प्रमान सत्ता यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ महा मूरष कहत एक पिंममांहि, जहांलों अचित चित अंग लहलहे हे; जोगरूप नोग रूप नाना कार ज्ञेय रूप, जेते नेद करम के तेते जीव कहे हे; मतिमान कहे एक पिंममांहि एक जीव, ताहीके अनंत नाव अंस फेलि रहे हे; पुग्गलसों निन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता सुनाव गहे है. ॥ १३ ॥

अर्थः—कोई बौधमती महा मूर्ख एम कहेछे के, एक शरीरमां ज्यां लगी अचित चित अंग के० घटपटादिक अचेतन विकल्प अथवा नर अमर तिर्यंचादि चेतन अंग ते सचित विकल्प चकचकी रह्याछे, योगपरिणामथी योगरूप नोगपरिणामथी नोगरूप एम ज्ञेयनां नानाप्रकार रूप जेटलां कर्म के० क्रियाना नेद थायछे. तेटलाने जीव संख्या कहेछे, एटले जीव सत्ता अंस प्रमाण थई, हवे बुद्धिवंत स्याद्वादी एम कहेछे के, अहो नाई एक पिंममां एक जीव छे अने ते जीवना ज्ञान परिणामे करीने अनंत नाव नासनरूप अंस फेली रह्या छे. पण जीव छे ते पुदगलथी निन्न छे, अने कर्मयोगथी अनिन्न के० निराकुल छे, तेमां नाव अंस अनंत उपजेछे. अने अनंत विणसे छे पण जीवतो स्थिरतारूपज ग्रही रह्यो छे ॥ १३ ॥

हवे तेरमो एकांतनय क्षणनंगुर जीवनो प्रपंच कही देखाडे छेः—

अथ त्रयोदशम छिनन्नंगुर जीव यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ एक छिनवादी कहे एक पिंममांहि, एक जीव उपजत एक विनसतु है; जाही समै अंतर नवीन उतपति हुइ ताही समै प्रथम पुरातन वसतु है; सरवंग वादी कहे जेसे जलवस्तु एक, सोइ जलविविध तरंगनि लसतु है तेसें एक आतम दरव गुनपरजेसों अनेक नयो पें एक रूप दरसतु है ॥ १४ ॥

अर्थः— कोई एक क्षणवादी बौध एम कहेछे के एक पिंममां एक जीव उपजे

छे एक जीव विणसे छे जे समे पिम्मां नवा जीवनी उत्पत्ति न थाय ते समे पे हलो पुराणो जीव छे ते वसे छे; पछी ते विणसेछे एम शृंखला बंध उपजे विणसे छे, तेने सर्वांगवादी जैनमती एम कहेछे के अहो नाई, जेम तलाव प्रमुख ज लाश्रयमां जल वस्तु एक छे तेल जल विविध तरंगे करी लसित के० निन्न निन्न देखाय छे, तेम एक आत्मा द्रव्य छे ते गुण पर्यायथी अनेक रूप थयो छे तोपण द्रव्यार्थिक नये एक रूपेज देखीए छे ॥ १४ ॥

हवे चउदमो एकातनय ज्ञायक अज्ञायकनो प्रपंच कही वतावे छे —

अथ चतुर्दशम अज्ञायक ज्ञायक नय यह कथन —

सवैया इकतीसा — कोउ बाल बुद्धि कहे ज्ञायक सकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये, ज्ञायक सकति काल पाई मिटि जाई जब, तब अ विरोध बोध विमल वखानिये, परम प्रवीन कहे ऐसी तो न बने वाही, जेसे विनुं परगास सूरजन मानिये, तेसे विनु ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यहतो न पठ परतक्ष परवानिये ॥ १५ ॥

अर्थ — जेनी बालकना जेवी तुच्छ बुद्धि छे एवो कोई शुन्य वादी तथागत कहेछे के, ज्या लगे ज्ञानमा ज्ञायक शक्ति छे, त्या लगे जगतमा ज्ञान अशुद्ध कहे वायछे, तेनो एज परमार्थ छे, के जे ज्ञायकपणु छे ते विकल्परूप छे अने विकल्प थी ज्ञान अशुद्ध थाय छे, तेथी निर्विकल्प ज्ञान शुद्ध छे ज्यारे नवितव्यताने व शथी पोतानो समय प्रस्ताव पामीने ज्ञायक शक्ति छे ते मटी जाय, त्यारेज विक ल्पना विरोधथी रहित एवु बोध के० ज्ञान ते विमल के० शुद्ध वखाणीए हवे एने परम प्रवीण स्याद्वादी कहेछे — अरे नाई जे तु ज्ञायक एकतामां विकल्प मानीनें शका पामेछे, अने ज्ञायक पणुं अशुद्ध मानेछे, ए वात बने नही जेम प्रका शविना सूर्य मान्यो न जाय, अने प्रकाशथीज सूर्य मान्यो जाय, तेम ज्ञायक श क्तिविना ज्ञानपण कहेवाय नही, जो तमे अनुमानप्रमाणथी तमारो पक्ष साधन करता नथी, तो प्रत्यक्ष प्रमाणथी पण तमारो पक्ष प्रमाण कीधो न जाय, तेथी तमारो पक्ष छे ते पक्षानास छे. ॥ १५ ॥

हवे जेणे चउद एकात नय हटावी दीधा एवो जे स्याद्वाद तेनी स्तुतिकरेछे -

अथ स्यादवाद प्रशसा कथन —

दोहरा — इह विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परवान, जाके वचन वि चारसों, मूरख होइ सुजान ॥ १६ ॥ स्यादवाद आतम सदा, ता कारन बल

वान, शिव साधक बाधा रहित, अषै अखंमित आन ॥१७॥ स्यादवाद अधिकार यह, कह्यो अलप विसतार, अमृत चंद मुनिवर कहे, साधक साधि दुवार ॥१८॥

अर्थः– आवी रीते आत्माना ज्ञाननो हितकारी स्याद्वाद मत छे, तेज प्रमाण जाणवो. जे स्याद्वादनी वचन युक्तिमां पूर्वे मूर्ख होय ते सुजाण थाय. ॥१६ जे स्याद्वाद स्वरूप छे तेज आत्मानी दशा छे. ते कारणथी स्याद्वाद छे ते महा बलवान छे. मोक्षनुं साधक छे, अने कोई युक्तिथी भांगे नही, तेथी ते बाधा रहित छे अक्षय छे. अने सर्व नयमां फेलि रह्यो छे तेथी अखंमित एनी आण छे ॥१७॥ श्री आचार्य एम कहे छे के, आ कंईक स्याद्वादनो अधिकार अल्पविस्तारथी कह्यो हवे श्री अमृतचंद आचार्य बारमो साध्य साधक द्वार कहे छे. ॥ १८ ॥

इति श्री नाटक समयसारना इग्यारमां स्याद्वाद नामा द्वारनो अधिकार बालाबोध सहित समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥

हवे साध्य वस्तु अने साधक वस्तुनुं स्वरूप देखाडे छेः–

अथ श्री साध्य साधक स्वरूप कथन–

सवैया इकतीसाः–जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अजोगी अमूरतिक परदेशवंत है; उतपतिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण भेदसों अनंत है; सोई जीव दरब प्रवान सदा एकरूप, ऐसो शुद्ध निहचें सुभाउ विरतंत है; स्यादवाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेकों साधक सिधांत है ॥ १९ ॥

दोहराः– साधि शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत; साधक अविरत आदिबुध, छीन मोह परजंत. ॥ २० ॥

अर्थः– जे कोई जीव वस्तु छे ते द्रव्यथी अस्तिपणे प्रमेयपणे अगुरु लघु पणे अजोगीपणे अमूर्त्तिक पणे, प्रदेशवंत पणे; प्रवर्ते छे, तेमां जे नास्तिपणुं नही ते अस्तिपणुं जाणवुं, अने प्रमाण ग्रहण करवा योग्य छे, तेथी प्रमेयपणुं छे अपुदगलीक पणाथी अगुरु लघुपणुं छे, इत्यादि धर्म छे. उत्पत्तिरूप पर्यायथी विनाश रूप पर्यायथी अविचलरूपथी ज्ञान दर्शन चारित्र रत्नत्रय कहिए. इत्यादिक गुणोना भेदथी अनंत पणुं लीधो वर्त्ते छे. तेज जीवद्रव्य एकरूपज सदा प्रमाण छे. ते एकरूपने अस्तित्व प्रमेयत्वादिक धर्मे करी आगल कह्यो तेज शुद्ध निश्चयनयथी एनो एवो स्वभाव दृष्टांत छे तेज साध्य पद कह्युं एटले साधवालायक वस्तु ते स्याद्वाद अधिकारमां कह्युं. हवे आगल एने साधवानुं सिद्धांत साधकछे

॥ १९ ॥ सुद्ध-केवलीनी दशाने साध्य वस्तु कहीए अथवा महंत सिद्धपणुं ते साध्य वस्तु छे. अने चोथा अविरत गुणठाणाथी मांमीने बारमां क्षीण मोह गुणठाणा पर्यंत नव गुणठाणाना धणी जे बुध के० पंमित छे, ते सर्वेने साध्य कहीए २०

हवे अविरत्यादि साधकनी व्यवस्था कहेछे — अथ साधक व्यवस्था कथन —

सवैया इकतीसा — जाको अधो अपूरव अनवर्त्ति करनको, नयो लाभ नई गुरु वचनकी बोहनी, जाके अनंतानुबंध क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी, सातों परकिति खपी किंवा उपसमी जाके, जगी उरमाही समकित कला सोहनी, सोइ मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शगतिगुन थानक आरोहनी ॥ २१ ॥ सोरठा — जाको मुगति समीप, भई भव स्थिति घट गई; ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन. ॥ २२ ॥

अर्थ.— जे जीवने अधो के० यथाप्रवर्त्ति करणनो अने अपूर्व करणनो तथा अनिवृत्त करणनो लाभ थयो, एटले ए सम्यक्त प्राप्तिना त्रण करण छे तेनो लाभ थयो, अने जेने गुरु वचननी बोहनी थई एटले गुरु उपदेशनो लाभ थयो, तेथी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया अने लोभ, तथा अनादिकालनी मिथ्यात मोहनी, मिश्रमोहनी अने सम्यक्त मोहनी, ए सात प्रकृति जेनी क्षय थई, अथवा उपशमी अथवा सातेमा कइ खपी कइ उपशमी, एवी जेना हैयामा सुहामणी समकितनी कला जागी तेज जीव मोक्षनो साधनारो कहेवाय तेना सर्व अंगमां एटले बाह्य अभ्यंतर अंगमा गुणस्थानक आरोहणी के० चढवानी शक्ति प्रगटी॥२१॥ जेने भवस्थितिना परिपाकथी मुक्ति समीप थई, अने संसारनी स्थित घटी गई, ते पुरुषनी मनसा शीप समान थई, त्या सदगुरु ते मेघ समान थयो, ते सदगुरुना वचन तेनी मनसारुप सीपमा अमौलिक मोती जेवा थयां थका रुचे छे॥ २२ ॥

हवे सदगुरुने मेघनी उपमा कहीने स्तवे छे — अथ गुरु प्रशंसा —

दोहरा — ज्यों वरषे वरषा समे, मेघ अखंमित धार, त्यों सदगुरु वानी खिरें, जगत जीव हितकार ॥ २३ ॥

अर्थ — जेम वरसाद कालमां मेघ अखंमित धारायें वरसे तेमज सदगुरु होय ते जगतवासी जीवने हित कारक अमृत वाणी खेरे छे ॥ २३ ॥

हवे सदगुरुना उपदेश आक्षेपणी धर्म कथा कहे छे — अथ उपदेश कथन —

सवैया तेईसा — चेतनजी तुमजागि विलोकहु लाग रहे कहाँ मायाकि तांई, आय कहाँसुँ कहाँ तुम जाउगे माया रहेगि जहाकि तहाई, माया तुह्मारि

न जाति न पाति न वंसकि वेली न अंसकि झांई; दासि किए बिनु लातनि मारत, एसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ २४ ॥ दोहराः— माया गया एक है, घटे बढे छिनमांहि; इन्हकी संगति जे लगे, तिनहिं कहुं सुख नांहि ॥२५॥ सवैया तेईसाः— लोगनिसों कबु नांतों न तेरों न तोसों कहू इह लोगकों नांतो; ए तों रहेरमि स्वारथके रस, तूं परमारथके रस मातो; ए तनसों तनमें तनसे जड, चेतन तूं त नसों नित हांतो; होहि सुखी अपनो बल तोरिकें राग विराग विरोधकों तांतो. ॥ २६ ॥ सोरठाः— जे डुखबुद्धीजीव, ते उतंग पदवी चहे; जे समरसी सदीव, तिन्हकों कहू न चाहिए ॥ २७ ॥ सवैया इकतीसाः— हांसीमें विषाद बसे विद्यामें विवाद बसे, कायामें मरन गुरुवर्त्तनमें हीनता; सुचिमें गिलान बसे प्रापतिमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता; रोग बसे भोगमें संयोगमें वियोग बसे, गु नमें गरव बसे सेवामांहि दीनता; और जगरीति जेती गर्भित असाता सेती, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ २८ ॥ दोहराः— जिहि उतंग चढि फिरि पतन, नहि उतंग बहिकूप; जिहि सुख अंतर भयवसे, सो सुख है डुखरूप ॥ २९ ॥ जो विलसे सुष संपदा, गये ताहि डुख होइ; जो धरती बहु त्रिणवती, जरे अगनि सों सोई ॥ ३० ॥ इति गुरुउपदेस समाप्तः दोहराः— सबदमांहि सतगुरु कहै, प्रगटरूप जिन धर्म; सुनत विचक्षण सद्दहै. मूढन जानै मर्म ॥ ३१ ॥

अर्थ.— अहो जीव चेतन, तमे मोह निद्रा तजीने जागो, अने सत्य स्वरूप दे खीने मायारूप संपदाने शुं वलगी रह्याछो; पृथिवी प्रमुख अढार भारादीक जे छे तेमां तमें क्यांथी आव्या छो? अने कही दशामां जाशो? अने जेनी सा थे तमे राची रह्याछो, तेतो मायाजाल संपदा ज्यांनी त्यां रहेशे. ए मायाजाल तमा री जाती नथी, तथा पाती नथी अने माया तमारा वंसनी वेली नथी, अने तमा रा अंश के० एक देशनी पण कांई नथी, तेथी तमारे अने मायाने संबंध तो को ई पण नथी. अने तमे पोतानी करीने जाणोछो. तेथी ए कहेवत साची करो छो, के दासी कर्या वगर लात मारो छो, तेथी उतपात थाशे. माटे हे महंत पुरुषो एवी अनीति न करवी ॥ २४ ॥ माया अने छाया एक सरखीज छे. क्षणमां वधे छे अने क्षणमां घटे छे. तेथी ए मायानी संगते जे लागी रहेछे. तेने क्यारे पण सुख थातुं नथी ॥ २५ ॥ आ जे पुत्र कलत्रादिक तुं पोताना जाणे छे. तेतो पारका लोको जेवा छे, ए लोकोनी साथे तारो कांई नातो नथी. अने ए लोकोने पण ता हारी साथे कोई प्रकारनो नातो नथी. ए जे पुत्रकलत्रादि लोको छे तेतो पोता

ना स्वारथना रसथी ताहरी साथे रमी रह्या छे, अने अरे चेतन तु तो पोतानी चेतना रूप परमारथना रसमां राची रह्यो छुं वली ए जे लोको छे ते तारा तनथी तनमय थई रह्या छे, एटले ताहारा शरीरथी मोहीत छे, अने ए शरीर तो जड छे अने तु तो चेतन छे. तेथी ते जडथी ताहारी सदा जिन्नता छे माटे राग अने द्वेष रूप मोह कर्मनो नातो तोमी पोतानुं वल फोरवीने सुखी था ॥ २६ ॥ जे जीव राग द्वेषथी दुष्ट बुद्धि थई रह्यो छे तेतो इन्द्रादिकनी उची पदवी चाहे छे, अने जे जीव सदाई समरसी जावमा रहे छे तेने कोई उंच पदवीनी चाहना थाती नथी ॥ २७ ॥ हांसीने सारी मानीए छे पण तेमा विषवाद वसे छे, विद्याने सारी जाणीए छीए पण तेमा विवाद जगडो वसे छे, कायाने सारी जाणीए छीए पण तेमा मरणदोष छे, गुरुताई के० वडाईने सारी जाणीए छीए, पण तेमा कोईकवारे हीणता छे, पवित्राई सारी जाणीए छीए, पण एने आदि के० अते दुगछा उपजे छे, प्राप्ति सारी जाणीए छीए पण तेनी साथे हाणी लागी रही छे, जीतवु जलुं छे पण तेनी साथे हारवु लाग्युज छे, ज्ञानीनी सुदर दशा जली छे पण अते काती क्षीण थई जाय छे, जोगनुं सुख सारुं छे, पण तेमा रोगनी उत्पत्ति छे, इष्ट सयोग जलो छे पण तेनी साथे वियोगपण तैयार थई रहे छे, प्रीती जली छे पण तेनीसाथे अप्रीति पण उपजे छे, औदार्यादिक गुणमां गर्व अहंकार वसे छे, राज सेवा सारी छे, पण तेमां दीन पणु वसे छे, अने वीजी जेटली जगतवासी जीवोनी रीत सारी जाणीए छे, तेतो सर्व अंतर गर्भित अशाता सहित छे तेथी एकली उदासीनताज शातानी साहेली छे. माटे समरस जावज श्रेष्ट छे ॥ २८ ॥ जे उंचे ठेकाणे चढीने पछी नीचे पडवु थाय, ते उत्तम ठेकाणु न कहेवाय पण ते ठेकाणु कुवा जेवु कहेवाय, तेम जे सुखना अदर दुःख वसे छे ते सुख पण दुःखरूप कहेवाय छे॥२९ केमके सुख सपदा विलसे छे पण पछी तेना नाशथी दुःख थाय छे जेम तृणोवाली धरती अग्निथी वली जाय छे पण तृणविनानी धरती कोई रीते वलती नथी, ए दृष्टाते जाणी लेवु ॥ ३० ॥ एरीते गुरु उपदेश सुचनीकामात्र सपूर्ण थयु, सद्गुरु जे छे ते जिनधर्मने प्रगट रूप शब्दमाज कहे छे. एटले वचनमा वखाणे छे. ते जिन धर्मने सांजली विचक्षण पुरुष होय ते सर्द्दहे छे, अने मूर्ख होय ते तेनो मर्म जाणे नही ३१

हवे कोईकने उपदेशनी रुचिछे, अने कोईकने नथी तेनुं सरूप कहे छे.—

अथ उपदेश रुचि अरुचि कथन —

सवैया तेइसा — जेसे काहू नगरके वासी द्वे पुरुष जूले, तामें एक नर सुष्ट ए

क दुष्ट उरको; दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिकको पूछे पंथ पुरको; सोतो कहे तुह्मारो नगर हे तुमारे ढिग, मारग दिखावे समुझावे खोजपुर को; एते पर सुष्ट पहिचाने पें न माने दुष्ट, हिरदे प्रवान तेसे उपदेश गुरुको ॥३१॥ सवैया इकतीसाः— जेसे काहू जंगलमें पावसको समो पाई अपने सुभाई महा मेघ बरषतु हे; आमल कपाय कटु तीषन मधूर षार, तेसो रस वाढे जहां जेसो दरषतु है; तेसो ज्ञानवंत नर ज्ञानकौ बखान करे, रसको उमाहो हे न काहू परष तु है; वहे धुनि सुनि कोउ गहै कोउ रहै सोई, काहूकों विपाद होई कोउ हरषतु है॥ ३२ ॥ दोहराः— गुरु उपदेश कहा करे, दुराराधि संसार; वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ ३४ ॥

अर्थः—जेम कोई नगरना वासी बे पुरुष नगरमांथी निकलीने दिशा भूली गया, ते बे पुरुपमां एक तो सुष्ट के० हैयाना सरल स्वभावनो हतो, अने एक हैयानो दुष्ट हतो, पछी ते बने पुरुप नगरनी समीपज फरवा लाग्या पछी कोई बीजा वाटमार्गुने नगरनो मारग पूछवा लाग्या, त्यारे ते कहेवा लागो जे तमारुं गाम तो तमारी समीप छे, एम कही ते बेनेने मारग देखाडे, अने रुडी रीते पुर के० नगरने खोज करी समजावे, पण बतावे तेमां जे सरल हैयानो छे, तेतो साचुं माने, पण दुष्ट हैयानो छे ते माने नही, तेम गुरुनो उपदेश छे तेपण पुरुषना हैया प्रमाणे छे ॥ ३१ ॥ जेम कोई अरण्यमां वरसाद पोतानो समय पामीने स्वभावथी महा मेघ वरषे छे. त्यारे आंबली प्रमुख खाटा रसवाला तथा बावल प्रमुख कसाएल रसवाला, अने लिंबडा प्रमुख कडवा रसवाला, जाल प्रमुख तीख रसवाला, जेठी मध प्रमुख मधुर रसवाला, अने लोण प्रमुख क्षार रस- वालां झाडोमां तेउना गुण प्रमाणे रस वृद्धि थाय छे, तेम ज्ञानी आचार्य प्रमुख पोताना वचन वर्गणा वचन योगे खिरे के० प्रकाशे छे, ते ज्ञाननुं वखाण करतां पोताना अनुभव रसमां उमग थई रह्या छे, पण ते वखते कोई योग्य अयोग्य श्रोतानी परिक्षा करता नथी, पछी ते श्रोता पुरुषोमां ते ज्ञाननी ध्वनि सांभलीने कोई तेनी वाणीने ग्रहे छे, कोई सुई रहेछे, निद्रा करे छे, कोई मिथ्यादृष्टिने विषादपण थाय छे, अने कोई सम्यक् दृष्टि छे ते हर्ष पण पामे छे ॥ ३२ ॥ माटे गुरुनो उपदेश शुं करे आ संसारी लोक दुराराध्य छे, समजाववा कठण छे, जे संसारना उदरमां पांच प्रकारनी श्रद्धावाला जीवो छे, ते सदा वसीज रह्या छे. ॥ ३४ ॥

हवे पाच प्रकारना जीवनां नाम कहे छे — अथ पंच प्रकार यथा —

दोहरा —मूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक सुद्ध, ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध ॥ ३५ ॥

अर्थ —एक तो मुंघा तेतो प्रभु स्वामी छे, बीजा चुंघा के० चतुर छे, त्रीजा सुंघा के० रुचिवत छे, चोथो ऊंघाके० दुष्ट दुरबुद्धि छे, अने विकल छे पाचमा घूंघा के० घोर कुबुद्धि छे ॥ ३५ ॥

हवे मूघानु लक्षण कहे छे — अथ मूंघा यथा —

दोहरा — जाकी परम दशाविषे, करम कलंक न होइ, मूंघा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोइ ॥ ३६ ॥

अर्थ — जेनी उत्कृष्ट दशा वर्णवेली छे, जेमा कोई कर्मरूप कलंक देखाय नही, एवो जे अगम तथा अगाध पद छे एटले सिद्ध पद छे जे वचननो विषय थई शके नही तेने मूंघा कहिये ॥ ३६ ॥

हवे चुघानु लक्षण कहेछे — अथ चुघा यथा —

दोहरा —जे उदास व्हे जगतसों, गहे परम रस पेम, सो चूघा गुरुके वचन, चूपे बालक जेम. ॥ ३७ ॥

अर्थ —जे जीव जगतथी उदासी थई रहे छे, अने जे परम दशामां रही तेना प्रेम सवादने ग्रहे छे. एटले उत्कृष्ट दशा चावे छे, तेतो गुरुना वचनने बालकनी परे चुपे छे अने पुष्ट थाय छे, ते चुघा कहेवायछे. ॥ ३७ ॥

हवे सुघानु लक्षण कहेछे — अथ सुघा यथा —

दोहरा — जो सु वचन रुचिसा सुनें, हिए दुष्टता नांहि, परमारथ समुझे नही, सो सुघा जगमांहि ॥ ३८ ॥

अर्थ —जे रुचियें करी आगमना अग जे सु वचन तेने सांभले छे. जेना हृदयमां दुष्टता नथी. पण सूक्ष्म तत्वने समजे नही तेने जगतमां सुघा पुरुष कहीये ॥ ३८

हवे उघानुं लक्षण कहेछे — अथ उघा यथा —

दोहरा — जाकों विकथा हित लगे, आगम अग अनिष्ट, सो उघा विषई विकल, दुष्ट रिष्ट पापिष्ट ॥ ३९ ॥

अर्थ —जेने विकथानां वचन हितकारी लागे छे, अने आगम अग अनिष्ट लागे छे. तेतो विकल विषयी जीव उंघा कहेवाय, दोषवत रोसवत पापकर्मी थई रहेछे.

हवे घूंघानुं लक्षण कहेछे.— अथ घूंघा यथाः—

दोहराः— जाके श्रवन बचन नही, नहि मन सुरति विराम; जडता सो जड वत नयो, घूंघा ताको नाम. ॥ ४० ॥ चोपाईः-- मूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ; सुंघा उंघा मूरख दोऊ; घूंघा घोर विकल संसारी; चुंघा जीव मोष अधिकारी. ॥ ४१ ॥ दोहराः— चूंघा साधक मोषको, करे दोष दुःख नास; लहे पोष संतोष सों, वरनों लछन तास. ॥ ४२ ॥

अर्थः-- जेने वचन नथी एटले एकेंद्रिय छे अने जेने श्रवण नथी एटले बेंरिंद्रिय तेरिंद्रिय, चोरंद्रिय छे. अने जेने मननी सुरता नथी एटले असंज्ञी छे, वली जे विराम के० विरती नथी. अज्ञानरूप जडताथी जडरूप थई रह्या छे. तेने घुंघा कहीए. ॥ ४० ॥ डुंघा पुरुषने तो सहु कोई सिद्ध कहे छे, सूंघा अने ऊघा ए बंने मूर्ख छे, अने घूंघा होय तेतो अघोर अंधारामां विकल संसारी जीव छे. अने चुंघा जीव छे तेतो मोक्षना अधिकारी होय, अने मोक्षना वांछक होय ॥ ४१ ॥ चूंघो छे तेतो मोक्षनो साधक छे, दोष अने दुःखनो नाश करे छे, अने संतोषथी पुष्टता पामे छे, तेनुं लक्षण वरणुं छुं. ॥ ४२ ॥

हवे मोक्ष साधननुं उदाहरण कहेछेः— अथ साधक लक्षणः—

दोहराः— कृपा प्रसम संवेग दम, अस्ति नाव वैराग; ए लछन जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग. ॥ ४३ ॥

अर्थः--कृपा जे दया, तथा जे कषायना उदयनुं दबाववुं ते, प्रसम अने संवेग ते मोक्षना अनिलाषनु पद के० स्थानक छे, तथा दम ते इंद्रियदमन, आस्ति एटले जिनोक्त वचन उपर श्रद्धा, एहवो वैरागीनाव छे. एटला लक्षण जेना हृदयमां रहे छे. अने सात व्यसननुं त्याग करे तेज साधक होय. ॥ ४३ ॥

हवे साते व्यवसनना नाम कहेछेः—अथ सप्त व्यसन नामः—

चोपाईः— जूवा आमिष मदिरा दारी; आषेटक चोरी परनारी; एई सात व्यसन दुख दाई; दुरित मूल दुर्गतिके नाई. ॥ ४४ ॥ दोहराः—दर्वित ए सातों व्यसन, दुरा चार दुख धाम; नावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम. ॥ ४५ ॥

अर्थः— जुगार १, मांस नक्षण २, मदिरापान ३, वेश्या गमन ४ आखेटक के० शिकार खेलवो ५, चोरी करवी ६, परस्त्री गमन ७, ए सात व्यसन कहेवाय छे, ते संसारमां दुःखदाई छे. पापना मूल छे अने दुर्गतिना नाई छे. ॥ ४४ ॥ ए जे क्रियारूप साते व्यसन छे ते द्रव्यरूप छे. ए दुष्ट आचाररूप दुःख धाम

के० ऊ खत्तुं घरछे अने जेना अंतरमा वृथा के० फूग मोह परिणामनी कल्पना
के० विचारणा ध्यावना थाय छे. ते नावित व्यसन कहीए ॥४५॥
हवे नावित सात व्यसननी व्यवस्था कहेछे —अथ नावित व्यसन व्यवस्था कथन —
सवैया इकतीसा — अशुनमे हारि शुन जीति यहे दूत कर्म देहकी मगनताई
यहे मास नषिवो, मोहकी गहलसों अजाने यहै सुरापान, कुमतिकी रीति गनिका
को रस चाखिवो, निरदे व्हे प्राण घात करिवो यहे सिकार, परनारी सग परबु
ध्दिको परषिवो, प्यारसों पराई सोंज गहीवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन वि
मारि ब्रह्म लखिवो ॥ ४६ ॥

अर्थ — अशुन कर्मना उदयथी हार मानिये अने शुन कर्मना उदयथी जीत
मानिये तेतो जुगार खेलवो छे, देह उपर मगनता रहे तेतो मास नक्षण जाण
वो, मोह कर्मथी मूर्छित थई रह्याथी अजाण थई रह्यो होय तेज सुरापान
व्यसन छे, कुबुध्दिनी रीते चालवु तेतो वेश्याना रसनु चाखवु छे, निर्दय परिणा
म राखीने प्राणघात करवो, तेज शिकार खेलवो छे पररूप जे पुद्गलादिक तेनी
बुध्दिने परखवी तेतो परनारी सेवा व्यसन छे, पारकी सोंज सामग्री उपर प्री
त राखीने प्यार मेलववानो चाह राखे तेज चोरी छे, ए नावित सात व्यसन
नु विदारण करवाथी ब्रह्म लख्यो जाय छे ॥ ४६ ॥

हवे मोक्षना साधकनी व्यवस्था कहेछे — अथ साधक व्यवस्था —
दोहरा — विसन नाव जामे नही, पोरुष अगम अपार, किये प्रगट घट सिंधु
मथि, चौदह रतन उदार ॥ ४७ ॥

अर्थ — जेना चित्तमा व्यसननाव पामिए नही, अने अगम अपार पुरुषातन
पामिए, तेणे घटरूप समुद्र मथन करीने उदार के० अमुल्य चौदे रत्न प्रगट कीधां४७

हवे नावित चौद रत्ननु वर्णन करेछे —अथ नावित चौद रतनको वरनन —
सवैया इकतीसा — लछमी, सुबुध्दि, अनूनूति, कउस्तुनमनि, वैराग कलपवृक्ष,
संत सुवचन है, ऐरावत उदिम प्रतीतिरना, उदैविष कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमो
द धन है, ध्यान चाप प्रेमरीति मदिरा निवेक वैद्य शुध्दनाव चंद्रमा तुरगरूप मन है,
चौदह रतन ए प्रगट होइ जहा तहा, ज्ञानके उदोत घट सिंधुको मथन है ॥ ४८ ॥

दोहरा — किए अवस्थामें प्रगट, चौदह रतन रसाल, कछु त्यागे कछु समहे, विधि
निषेधकी चाल ॥ ४९ ॥

अर्थ — सुबुध्दि उपनी तेतो लक्ष्मी उपनी १, आत्मानो अनुनव उपनु तेतो

कौस्तुभमणि उपनुं २, वैराग उपज्यो तेतो कल्पवृक्ष उग्युं ३, भाषा सुमति उपजी तेतो संख उपज्यो ४, उद्यम उपज्यो तेतो ऐरावत हाथी उपज्यो ५, प्रतीत उपजी तेतो रंभा उपजी ६, कर्मनो उदय तेतो विषय उपज्युं ७, कर्म निर्जरा थइ तेतो कामधेनुं उपजी. ८, आनंद उपज्यो तेतो अमृतघन उपज्युं. ९, ध्यान उपज्युं तेतो चाप के० सारंग धनुष उपज्युं. १०, प्रेमरीत के० प्रेमनी लय उपनी तेतो मदीरा उपनी. ११, विवेक उपनो तेतो धनवंतरि वैद्य उपनुं. १२, शुद्धभाव उपनो तेतो चंद्रमां उपनुं. १३, मन शुद्ध थयुं तेतो सात मुखो अश्व उपनु. १४, एच उद रत्नतो त्यां प्रगट थाय छे ज्यां ज्ञाननो उदय थवाथी पोताना ज्ञानरूप घट समुद्रनुं मंथन थाय छे तिहां उपजे छे एम जाणवुं ॥ ४८ ॥ साधनी अवस्थामां ए चौदे रत्न रसाल हतां ते प्रगट कीधा, ए चौद रत्नमां विधि निषेधनी चालमां एटले हेय, उपादेयनी चालमां कंइक त्यागे छे अने कंइक संग्रह करेछे ॥ ४९ ॥ हवे भावित चउद रत्न तेमां आठ रत्न त्यागवा योग्यछे अने छ रत्न ग्रहण करवा योग्य छे ते कहेछेः— अथ अष्ट रतनषट उपादेय कथनः—

दोहराः— रमा, संष विष धनु सुरा, वेद धेनुं हय हेय, नति रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥ ५० ॥ इह विधिजो परभाव विष, वमे रमे निजरूप, सो साधक शिवपंथको, चिदविवेक चिद्रूप, ॥ ५१ ॥

अर्थः— रमाके० लक्ष्मि तेतो सुबुद्धि १ सुवचनशंष २, उदय विषय, ३ ध्यान धनुष, ४ प्रेम रीत मदिरा, ५ विवेक वैद्य ६ निर्जरा काम धेनुं, ७ मन शुद्धते घोडो, ८ ए आठ अथिर छे तेमाटे छांडवा योग्य छे अने अनुभव मणि, १ प्रतिति रंभा, २ उद्यमहाथी, ३ वैराग्य कल्पवृक्ष, ४ आनंद सुधा, ५ शुद्ध भाव चंद्रमां, ६ ए छ रत्न गृहण करवा योग्य छे. ॥ ५० ॥ आ रीतिथी पररूप जे कर्मादिक भाव छे. तेज विष थयुं. तेनो जे वमन करे छे. अने पोताना स्वरूपमां रमे छे. तेज पुरुष मोक्ष मर्गनो साधक जाणीये जे ज्ञान भावनो जाणनार अने ज्ञान स्वरूपी तेज साधक कहीए ॥ ५१ ॥

हवे मोक्षपदना साधकनी व्यवस्था कहे छेः— अथ साधक व्यवस्था कथनः—

कवित्त छंदः—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर निरखेदरव सुगुन परजाइ, जिन्हके सहजरूप दिन दिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाइ, जे केवल प्रतीत मारग मुषचिते चरन राषें ठहराइ, ते प्रविण करिछिन मोह मल अविचल होइ परमपद पाइ ॥५२॥

अर्थः— जेने घट अंतरमां ज्ञाननी दृष्टि जागी तेथी द्रव्यने देखे जाणे ते द

व्यना गुण जाणे गुणना पर्याय जाणे अने जेने सहज रूपेज एटले नवतव्यताना प रिपाकथी दिन दिन प्रत्ये स्याद्वादनुं साधन अधिक थई रह्यो छे अने जे केवलीना कहे ला मारगने सन्मुख थई रहे एज चित राखे अने एज मारगविषे चरण ठरावी राखे, ते प्रवीण पुरुष मोहरूप मलने क्षीण करी परम पद पामी अविचल थायछे॥५१॥

हवे सम्यक् दृष्टिनी व्यवस्था अने मिथ्यात्व दृष्टिनी व्यवस्था कहेछे.--

अथ सम्यक् दृष्टि मिथ्या दृष्टि व्यवस्था --

सवैया इकतीसा -- चाकसो फिरत जाको ससार निकट आयो, पायो जिनि सम्यक मिथ्यात नाश करिके, निरद्वंद मनसा सुनूमि साधि लीनी जिनि, कीनी मोष कारन अवस्था ध्यान धरिके, सोई शुद्ध अनुनौ अन्यासी अविनाशी नयो, गयो ताको करम नरम रोग गरिके; मिथ्यामति आपनो सरूप न पिछाने तामे, मोले जग जालमें अनत काल नरिके ॥ ५२ ॥

अर्थ -- जेम रात्रिनेविषे चकवो फिरतो फरतो रहे छे, तेम ससारमा फिरतां फिरता जेनो अंत निकट आव्यो, सम्यक पाम्यो, मिथ्यात्वनो नाश करीने राग द्वे षादिक रहित एवी मनसारूप नली नूमिका जेणे साधि लीधी, अने ध्यान धरिने पोतानी अवस्था मोक्षपदना कारणरूपी कीधी, तेज सम्यक दृष्टि शुद्ध अनुनवनो अन्यासी थयो, एम कर्म रोगने गमावीने अविनासी थयो एटले जन्म मरण टल्यो सिद्ध थयो, एवी सम्यक दृष्टि पाम्याविना मिथ्याती पोतानु स्वरूप ओलखे नही तेथी अनतकाल नरिके के० लगी जगतनी जालमा मोले ॥ ५२ ॥

हवे जे आत्मानो अनुनव पाम्यो तेनो विलास कहेछे -- अथ अनुनव विलास --

सवैया इकतीसा -- जे जीव दरवरूप तथा परजायरूप, दोउ नै प्रवान वस्तु सुद्धता गहत है, जे अशुद्धनावनिके त्यागी नए सरवथा विषेसों विमुष व्है वि रागता चहत है, जो ग्राहजनाव त्यागनाव दुहू नावनिको, अनुनौ अन्या सविषे एकता कहत है, तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोष, मारगके सा धक अबाधक महत है. ॥ ५४ ॥

अर्थ -- जे कोई जीव द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक ए बे नय प्रमाण करीने वस्तुनी शुद्धताने ग्रहेछे, जे जीव राग द्वेष मोहथी आत्मामा जे अशुद्ध नाव छे तेना सर्वथा त्यागी थया छे, तेथी पाच इंद्रियोना विषयथी विमुख थईने वैरागतामा वर्त्तवा लागेछे, अने जे नावित चोदे रत्नमा छ नाव रत्न ग्रहण करवा योग्य छे अने आठ नाव रत्न त्यागवा योग्य छे, एटले आठ हेयने छ उपादेय छे, ते अ

नुभवना अभ्यासविषे बंने भावनी एकता करेछे, एटले जे द्रव्यमां दृष्टि रहे अने पर्यायमां दृष्टी न रहे, तेने एकता कहेछे. ते जीव ज्ञान क्रिया जे मोक्ष मार्गनुं कारण कह्युं छे तेना आराधक थया. अने सहजरूपमां मोक्ष मार्गना साधक थया; फरी तेने कर्म बाधा न होय, तेथी अबाधक थया महिमावंत थया पुजनीक थया. ५४

हवे जे ज्ञान अने क्रियाने भिन्नभावे माने छे तेने एनी एकता कही देखाडे छेः—

अथ ज्ञान क्रिया एकता कथनः--

दोहराः—विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष; ता परनतिकों बुध कहे, ज्ञान क्रियासों मोष. ॥ ५५ ॥

अर्थः— अनादि काळनी जे अशुद्धता छे तेनुं जिहां विनाश थायछे त्यां शुद्धतानुं पोषण थायछे. एवी जे आत्मानी परिणति थाय तेज ज्ञाननी क्रिया कहेवायछे तेने बुध के० पंडित पुरुष एवुं कहेछे के ए ज्ञान क्रियाथी मोक्ष थाय, आंही ज्ञान तथा क्रियानी जे दुविधा लखेछे ते शब्दनयथी जाणवी. ॥ ५५ ॥

हवे ज्ञाननी व्यवहार नयथी थापना देखाडे छेः— अथ ज्ञान द्रव्य स्थापनाः

दोहराः— जगी शुद्ध समकित कला, वगी मोषमग जोइ; वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥ ५६ ॥ जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम; जेसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम. ॥ ५७ ॥

अर्थः— जेणे शुद्ध समकेतनी कला जाणी अने जे कला मोक्षना मुखमां जावा लागी. ते पुरुष कर्मने चूरण करीने क्रमें क्रमें पूरण थाय ॥ ५६ ॥ जेना घटमां एवी दशा थई रही छे. ते पुरुषनुं साधक नाम केहेवाय जेम दीवानुं अजवाळुं थएथी घरमां पण अजवाळुं थाय, तेम ज्ञानक्रिया तो मोक्ष साधक छे, पण ज्ञानक्रियाने धरतां पुरुष पण साधक थाय ॥ ५७ ॥

हवे ज्ञाननुं फल कहेछेः— अथ ज्ञानकला वर्ननः—

सवैया इकतीसाः— जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो परगास शुद्ध समकित भानको; जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अवाची भगवानको; जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुष पोष समरस सुधा पानको; ताही सु विचक्षन को संसार निकट आयो, पायो तिनि मारग सुगम निरवानको ॥ ५८ ॥ जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमाको अनुभौ प्रगट भयो है; जाकों संकलप विकलपके विकार मिटि, सदा काल एकी भाव रस परिनयो है; जिनि बंध विधि परिहार मोष अंगी

कार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दयो है, जाकी ज्ञानमहिमा उदोत दिनदि न प्रति, सोइ भवसागर उलंघि पार गयो है ॥ ५९ ॥

अर्थ – जेना घटमा अनादिकालनो मिथ्यात अंधकार हतो ते गयो, अने शु द्ध सम्यक् रूप सूर्यनो प्रकाश थयो राग द्वेष मोह निद्रा जेनी घटी गई, ममता रूप पलक लागी हती ते फिटि गई तेथी जिन अवाची भगवाननो एटले सिद्ध स्वरूपनो मर्म पाम्यो, जेनुं ज्ञान तेज वध्यु एटले प्रकाश थयु प्रधान उद्यम जाग्यो अने उपशम रस रुप अमृत पानना सुखनो पोष थयो, ते सु विचक्षण पुरुषने संसार निकट आव्यो तेणे तो सुगम वातमा मुक्तिनो मारग पाम्यो ॥ ५८ ॥

जेना हृदयमा स्याद्वाद स्वरूपनी साधनाथी शुद्ध आत्मानो अनुभव प्रगट थयो अने जेने संकल्प विकल्पनो विकार बहु भातनो हतो ते मटीने सदा कालमां एक चेतना रस जे एकी भावपणुं छे ते पणे परिणम्यो, तेणे करीने बंध विधिनो परि हार जे संवरनु धरवो ते थयुछे अने निस्पृह दशाथी मोक्षनो जे अगीकार तेना विचारनो पक्ष धार्यो छे ते पक्ष छांमी दीधोछे, जेना ज्ञाननो महिमा दिन दिन प्र ते उद्योत थयोछे तेज जीव भव समुद्र उतरीने पार पहोच्यो एम जाणवु ॥५९॥

हवे अनुभवीनी व्यवस्था तेज उपादेय छे ते कहे छे –अथ अनुभो व्यवस्था कथन

सवैया इकतीसा –अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारुप जीव कहिये, दीसे एक नैकी प्रतिक्षनी अपर दूजी नैकों न दिपाइ वाद विवादमें रहिये, थिरता न होइ विकलपकी तरगनिमें, चचलता वढे अनु भौ दशा न लहिये, तातें जीव अचल अवाधित अपंभ एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ६० ॥

अर्थ – कोई नयथी अस्तिरूप छे, कोई नयथी नास्तिरूप छे कोई नयथी अ नेक कोइ नयथी एक. कोई नयथी स्थिररूप कोई नयथी अस्थिररूप, इत्यादि नाना प्रकार स्वरुपथी जीव कहीए अहीं एक नय जे स्वरूप साधे छे, त्या ते न यनो प्रतिपक्षी के० उलटी रीते वीजो नय देखाय छे, तेतो पेला नयथी विपरी तपणुं साधे छे, तेथी जो एकांतनयपणुज ग्रहीए अने ते उपर वीजो नय नदेखामीये तो वादविवाद थई जाय तेथी नय भेद करणीथी कुविकल्पना तरग उठेते तरगथी चे तन स्थिर न थाय, अने चचलतापणु वधे तेथी अनुभव दशाग्रही न जाय माटे नय पक्ष तजीने अनुभव अभ्यासने कारणे जीव द्रव्य अचल छे. अवाधित छे, अग म छे, एक छे एवा स्वरुपनो स्थानक साधिने समाधि सुख ग्रहण करिये ॥ ६० ॥

हवे द्रव्य क्षेत्र काल भावे करीने आत्मानुं अखंडितपणुं कहे छेः—

अथ द्रव्य क्षेत्र काल भाव कथनः—

सवैया इकतीसाः—जेसे एक पाको आंबफल ताके चारि अंस, रसजाली गुठली छीलक जब मानियें; यों तो न बनें पें एसें बने जेसें दहेफल रूपरस गंध फास अखंड प्रवानिये; तेसें एक जीवकों दरव षेत्र कालभाव, अंस भेद करि भिन्न भिन्न न वषानिये; दर्व रूप षेतरूप कालरूप भावरूप, चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये॥६१

अर्थः— शिष्य कहेछे. हे स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप वस्तुना चार अंशत मे कह्यो छो, त्यां एवुं दृष्टांत आपवुं के, एक आंबफल छे तेना रस, जाली एट ले रेसो गोटली अने छाल ए चार अंस छे, तेमज वस्तुना द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अंश होय के न होय, हवे गुरु कहे छे. हे शिष्य आहीं तुं अंशके० खंड समज्यो ते थी ए दृष्टांत दीधुं. तेतो बने नही पण आंही अखंडपणामां चार अंस लाववा तेनुं दृष्टांत ए छे. के तेज आंब फल छे तेमां रूप, रस, गंध ने स्पर्श ए चारे अखंडप णे प्रमाण करिए ए चार रस छे, तेम एक जीवनुं द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप अंस भेद करीने रस जाली गोटलीने छाल ए खंड खंड वखाणीये नहीं. आंही जे सा ध्यरूप आत्म सत्ता छे ते द्रव्यथी अखंडितपणे, आत्मा द्रव्यरूप छे. अने क्षेत्रथी अखंडपणे असंख्यात प्रदेशाअवगाहपणे छे, कालथी अखंड त्रिकाल वर्त्तिछे भा वथी अखंड ज्ञायक भावपणे छे ; एम जीवना चार अंश अखंडपणे मानीये॥६१॥

हवे साध्यपदमां ज्ञान ज्ञेयनुं विशेष पणुं अने अविशेष पणुं कहेछेः—

अथ ज्ञान ज्ञेय विशेष कथनः—

सवैया इकतीसाः—कोउ ज्ञान वान कहे ज्ञान तो हमारो रूप, ज्ञेय षटदर्व सो हमारो रूप नांही हे; एक नै प्रवान एसें दूजी अब कहों जेसें, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है; तेसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अनंत मुज पाही है ; ताकारण वचनके भेद भेद कहों कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही हे ॥ ६२ ॥ चोपाईः—स्वपर प्रकाशक सकति हमारी; तायें ब चन भेद भ्रम भारी; ज्ञेय दसा द्विविधा परगासी; निज रूपा पररूपा भासी, ॥ ॥ ६३ ॥ दोहराः— निजरूपा आतम सकति, पररूपा परवस्त, जिनि लखि लीनो पेच यह, तिनि लिख लियो समस्त ॥ ६४ ॥

अर्थः— कोई ज्ञानवंत प्राणी पोताना अनुभव प्रमाणथी एम कहेछे के जे ज्ञा न छे तेतो अमारुं रूप छे. अने जे षट द्रव्य ज्ञेयछे तेतो अमारुं रूप नथी तेथी

ज्ञान अने ज्ञेय विशेष पणामा छे गुरु कहे छे, एतो एकज नय प्रमाण छे. हवे बीजा नयथी जेम अविशेष पणु थाय छे तेम कहु छु जेम सरस्वती के० विद्यारुप अर्थ छे तेम अक्षर के० विद्यारुप अर्थ एकठो रहे, तेम ज्ञाता ते तो माहारु नाम थयु अने जे ज्ञान छे तेतो चेतनानो विराम के० प्रकार छे. अने जे ज्ञान ज्ञेय पणे परिणम्यो छे. ते तो ज्ञेयरुप शक्ति छे एवी अनंत शक्ति माहारीज पासे छे. ते कारणथी वचन भेद करीने ज्ञान अने ज्ञेयनो भेद कोई नजे कह्यो पण बीजो नय देखवाथी ज्ञाननो ने ज्ञेयनो विलास आत्म सत्तामाज छे तेथी अविशेष पणु छे ॥ ६२ ॥ जेथी ह्मारी शक्ति एवी छे जे पोतानो प्रकाश करे अने परनो पण प्रकाश करे तेथी स्व पर प्रकासक छे, तेथी ज्ञान अने ज्ञेय ए वचन भेदे जे भेद छे, तेज मारी भ्रम उपजावेछे पण वस्तु एक छे. ज्ञेय के० जे जाणवा योग्य तेतो दशा बे प्रकारे करीने कही एक तो निजरूपा बीजी पर रूपा कही छे॥६३ आही जे निजरुप ज्ञेय दशा कहीए ते तो स्वरुप प्रकाशक आत्म शक्ति छे, अने जे बीजी पर रुप ज्ञेय दशा ते परवस्तु छे जेणे एवातनो पेच जाण्यु तेणे तो समस्त जाण्यु६४

हवे एज पेच स्याद्वादमा जोइए ते स्याद्वादरुप वस्तुनुं वर्णन करेछे –

अथ स्याद्वाद रुप वस्तु वर्नन

सवैया इकतीसा -- करम अवस्थामें अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है, उभे नै प्रवान समकाल सुद्धासुद्धरुप, एसो परजाइ धारी जीव नाना रंग है, एकही समेमें त्रिधारुप पें तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंग है, यहे स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जानें, मूरख न माने जाको हियो द्रग भंग है ॥ ६५ ॥ निह्चे दरब द्रिष्टि दीजें तब एकरुप, गुन परनति भेद भावसों बहुत है, असंख प्रदेश संयुगत सत्ता परवान, ज्ञानकी प्रभासों लोकालोकमान जुत है, पर्जे तरंगनिके अंग छिनभंगुर है, चेतना सकति सो अखंडित अचुत है, सोहै जीव जगति विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है, ॥ ६६ ॥ विभाव सकति परिनतिसों विकल दीसे, सुद्ध चेतना विचारतें सहज संत है, करम संयोग सों कहावे गतिको निवासी निह्चे सरुप सदा मुकत महंत है ज्ञायक सुभाव धरे लोकालोक परगासी सत्ता परवा न सत्ता परगास वंत है, सोहै जीव जानत जहां न कौतुकी महान जाके कीरति कहान अनादि अनंत है ॥ ६७ ॥

अर्थ – कार्मण शरीर सहित आत्मानी कर्म अवस्थामां द्रष्टि दईए तो आत्माने अशुद्ध देखीए छीए अने कर्म कलंक रहित केवल आत्मामांज द्रष्टि द

द्रए तो जो शुद्ध अंग छे. अने ए बेउनय समकालेज प्रमाण करीए तो शुद्धाशु द्धरूप कह्युं जाय. एमां पर्यायनी धारायें करीने जीवना विचित्र प्रकार छे. शुद्ध अशु द्ध अने शुद्धाशुद्ध ए त्रणरूप आत्माना एकज समे पामीए, यद्यपि एम छे तथा पि त्रणेरूपमां आत्मानी अखंडित चेतना शकति सर्व अंगमां नरि रहि छे, तेज स्याद्वाद कहीए, तेनो भेद जे स्याद्वादी होय, तेज जाणे पण जेनुं हइयुं द्रगभंग के० सम्यक दृष्टि रहित छे. ते मूर्ख एनो भेद न जाणे. ॥ ६५ ॥ निश्चयनयथी द्रव्य उपर दृष्टी आपियें तो आत्म द्रव्य एकरूप छे अने ए आत्म द्रव्यना गुण परिणतिरूप भेद भावथी जोइयें तो आत्मा बहुरूपे छे अने आत्मानी सत्ता अ संख्यात आकाश प्रदेश संयुक्त छे, अने ते सत्ताने प्रमाण आत्मा कह्यो जायछे. अने ज्ञाननी प्रभा विचारीएतो लोकालोक प्रमाण क्षेत्रथी संयुक्त आत्मा कह्यो जायछे, तथा क्षणक्षणमां पर्याय रूप तरंगना अंग विचारीएतो जीव क्षणभंगुरज कहेवाय छे, अने तेने चेतना शक्तिथी विचारीए तो सदा सर्वदा अखंडज कहेवा य, अने अच्युत कहेवाय छे. तेज जीव जगतनो विनायक के० धणी अने जगत मां सारभूत पदार्थ छे. जेनी मोज अने महिमा अपार छे अने अद्भूत छे ॥ ६६ ॥ हवे बीजुं पण स्यादवाद कहेछेः--रागद्वेषादिक विभाव शक्तिथी परिणम्यो देखीए तो आत्मा विकल देखाय छे, अने तेनी शुद्ध चेतनाज विचारीएतो सहज संतरूप दीसे छे, कर्म संजोग सहित आत्मा विचारीये तो चारे गतिनो वासी अने चोरा सी लाख योनीनो वासी कहेवाय छे, अने निश्चयनयथी एनुं स्वरूप जो विचारी ए तो सदा सर्वदा मुक्तिरूप महंत छे, अने जो एने ज्ञायक स्वभाव धारी विचारीए तो लोकालोक प्रकाशक अमेय कहेवाय, अने जोए आत्मानी प्रकाशवंत सत्ता वि चारियें तो पोतानी सत्ता प्रमाण आत्मा होय, ते जीव वस्तु साध्य छे. जे जहांन के० जगतने जाणेछे, जे महोटो कौतुकी पुरुष छे, जेनी कीर्ति अने कथा अनादि अनंत काल लगी एवीज चालती आवेछे ॥ ६७ ॥

हवे साध्यरूप केवल दशानुं वर्णन करे छेः— अथ केवल दशा वर्ननः—

सवैया इकतीसाः— पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है; ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पें एकता में रसपगी है; याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत, अनंत शकति फोरि अनंत सों लगी है; नरदेह देवलमें केवलमें सरूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सि षा समाधि जगी है ॥ ६८ ॥

अर्थः— मति ज्ञानावरण प्रमुख पांच प्रकारना ज्ञानावरणीय कर्मनो नाश करीने प्रसिद्ध के० प्रत्यक्षपणे प्रगटी एवी जे ज्ञान ज्योतिनी सिषा जगतमा जगमगी रही छे ते ज्ञान ज्योतिनी शिषा पोताना ज्ञायकपणारूप प्रनामा नाना प्रकारना ज्ञेयनी अवस्था धरीनें अनेक रुप थई छे, तेपण ज्ञायक पणानी जे एकता छे तेना रसथी मली रही छे तेज रीते अनत काल पर्यंत रहेशे अने अनंत वीर्य फोरवीने अनत पदथी जागी रहे जे जेवारे मनुष्यना देहरूप देवलमां शुद्ध केवल ज्ञान स्वरूपे एवी ज्ञान ज्योतिनी सिखा जेवी समाधि छे, ते जागृत थई एटले सर्व विपमता नाव मटि गयो ॥ ६८ ॥

हवे अमृतचद आचार्य छे ते चद्रमा छे अने तेनी कलारुपि त्रण धाग छे, तेनुं जुदा जुदा अर्थथी वर्णन करे छे—अथ अमृत चद्र कलाके तीन अर्थ कथन —

सवैया इकतीसा — अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी, अमल अवाधित अलप गुन गावना है, पावना परम शुद्ध नावना है नविकी, मिथ्यात तिमर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उने जाम ज्यों किरन दीपे रविकी, ऐसी है अमृत चदकला त्रिधारुप धरे, अनुनो दशा गरथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ६९ ॥ दोहरा — नाम साधि साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक, समय सार नाटक सकल, पूरन नयो सटीक ॥ ७० ॥

अर्थ — अमृतचदनी अनुनव दशारूप कला छे तेतो अक्षर अर्थमा के० मोक्ष पदार्थमा सदाकाल मगन रहे छे, अने जेवी कामधेनुनी सेवा सुखदायक थाय तेवी सुखदायक छे, अने अमृत चदनीग्रथ टीकारूप कला छे तेज पाछला वर्णने करी युक्तछे, अने अमृतचद कविनी बुद्धि छे, तेतो अक्षर अर्थ के० शब्दार्थ तेमा मगन रहे छे, आगल बीजु वर्णन पूर्वली रीते जेम अमृत चदनी अनुनव दशानी कला अने ग्रंथनी टीकानी कला अने कवीकला ए त्रणे कला अमल छे, अवाधित छे, अलख पुरुषना गुणनो गायन करतीज रहे छे तेथी पावन छे, नव्यत्व पणानी परम शुद्ध नावना छे,अने ए त्रणेकला, मिथ्यात्वरूप अधकारनी अपहरण करनार छे, अने चडते परिणामे छे, जेम चढता वे पोहोर लगी सूर्यना किरण चढता चढता दीपे छे, तेम ए कलापण वधती वधती दीपे छे, एवी अमृतचद आचार्यनी कला छे ते त्रण प्रकारनु रूप धारण करे छे, एक तो अनुनव दशा बीजी ग्रंथनी टीका करी ते अने त्रीजी काव्य बंध करतां कविकला कीधी॥६९

साध्य साधीक नामे बारमों द्वार ठीक कह्यो, अमृतचंद आचार्यनुं करेलुं कलस रूप समयसार नाटक ग्रंथ टीका समेत संपूर्ण थयुं ॥ ७० ॥

इतिश्री नाटक समयसारनो साध्य साधकनामा बारमु द्वार बालावोधरूप संपूर्ण थयो. ग्रंथाग्रंथ ८००० मान छे.

हवे ग्रंथनी अंते अमृतचंद्र आचार्य कवि आलोचनाकरेछे:—अथ कविआलोचन:—

दोहरा:— अब कविजन पूरव दशा, कहै आपसों आप ; सहज हरप मनमें धरै, करै न पश्चाताप. ॥७१॥ सवैया इकतिसा:— जो में आप छांडि दीनो पररूप गही लीनो, कीनो न वसेरो तहां जहां मेरो थल है; भोगनिको भोगी रहि करमको कर्ता भयो, हिरदे हमारे राग दोप मोह मल है; ऐसी विपरीति चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरी क्रियाकी ममताताको फल है; ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनको सो छल है. ॥७२॥ दोहरा:—अमृत चंदमुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ; समयसार नाटक प्रगट, पंचमगतिकोपंथ. ७३

अर्थ:-- हवे कलसनो करनार कविछे ते पोतानेज पोतानी पूर्वदशा कहेछे. पोताना मर्म जाण्याथी सहज हर्प उपज्यो छे ते आलोचनामां धारे छे, पण पस्तावो करतो नथी. ॥७१॥ अतीत काले जे म्हारुं आत्मानुं स्वभाव हतो ते में छांडि दीधो, अने पर जे कर्मादिक पररूप हतो ते में लई लीधो, अने ज्यां समाधिविषे माहारो निवास हतो, त्यां में वास न कीधो. पांच इंद्रियोना विपय भोगनो भोगी थईने कर्मनो कर्त्ता थयो, अमारा हैयामां राग द्वेषरूप महा मोह मल हतो. एवी उलटी चाले चाल्यो तेतो अतीत कालमां वात वीती. एवुं जे कार्य थयुं तेतो मारी क्रियामां ममता राखी तेनुं फल थयुं. हवे तो ज्ञान दृष्टि भासी तेथी क्रियाथी उदासी थयो, अने जे अतीत कालमां अवस्था थई तेतो मोह मिथ्यात निद्रामां स्वपना जेवो खेल थयो.॥७२॥अमृत चंद आचार्यनो करेलो ग्रंथ संपूर्ण थयो, आ समयसार नाटक जे ग्रंथ छे ते प्रगट पणे पंचम गतिके० मुक्तिनो पंथ छे.॥७३॥ इति श्री समयसार नाटक ग्रंथ अमृतचंद आचार्यकृत संपूर्णम् ॥

हवे बणारसीदाश कहेछे:— दोहरा:— जाकी भगति प्रभावसो, कीनो ग्रंथ निवाहि; जिन प्रतिमा जिन सारषी, नमे बनारसी ताहि. ॥ ७४ ॥

अर्थ:— जेनी भक्तिना प्रभावे करीने गहनार्थ ग्रंथहतो ते निर्वाहकीधो. एवी आ कालमां जिन प्रतिमा छे ते श्रीजिनेश्वर सरषी छे. तेने बणारसीदास नमेछे.

हवे जेवा श्री जिनेश्वर देव महात्म्यवत छे, तेवी जिन प्रतिमा पण महात्म वत छे ते कहेछे – अथ जिन प्रतिमा महात्म्य कथन –

सवैया इकतीसा – जाके मुख दरससो भगतके नैननिको थिरताकी बानी बढी चचलता विनसी, मुद्रा देखे केवलीकी मुद्रा यादि आवे जहा, जाके आगे इंद्रकी विभूति दिसे तिनसी, जाको जस जपत प्रकास जगे हिरदेमे, सोई सुद्ध मती होइ हुती जो मलिनसी, कहत बनारसी सु महिमा प्रगट जाकी, सोहे जिनकी सवी हे विद्यमान जिनसी ॥ ७५ ॥

अर्थ – श्री जिन प्रतिमाना मुख दर्शन थवाथी जे तेना भक्तजन छे तेना नयनने कइ आगल सम्यक् दशा के० सवर दिशा पामेली होय तेनी स्थिरतानी वाणी वधे, अने जे भावपदार्थमा चचलता होय तेनो नाश थाय अने पद्मासन स्थित मुद्रा आकार ज्यां देखे, त्या केवलीनी मुद्रा याद आवे छे ते केवलीनी मुद्रा एम संभारवामा आवे छे के. जेनी आगल इद्रनी सपदा छे ते त्रण समान देखायछे, एटले चोसठ इद्र महिमा करेछे, अने ते दशा सामजवामा आवे तेवारे त्या जे केवलीना जश कहेवायछे, तेना गुणनो प्रकाश हृदयामा जागेछे, अने त्या जे पहेली मति सम्यक् दशामा मेली जेवी हती ते शुद्ध थई, तेथी बणारसीदास कहेछे के जिन प्रतिमानी एवी प्रगट महिमा छे के ते विद्यमानजिनेश्वर समानज मानवी ॥७५॥

हवे जिन प्रतिमानो भक्तिवत छे तेनु वर्णन करेछे –अथ प्रतिमा माने ताको वर्णन

सवैया इकतीसा –जाके उर अतर सुदृष्टिकी लहरि लसी, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी समारपी, सैली जिन सासनकी फैली जाके घट भयो, गरबको त्यागी षट दरबको पारपी, आगमके अक्षर परे है जाके श्रवनमे, हिरदे भडारमे समानी वानी आरपी, कहत बनारसी अलप भवस्थिति जाकी, सोइ जिन प्रतिमा प्रवाने जिन सारपी ॥ ७६ ॥

अर्थ – जेना हीयामा सम्यक् दर्शननी लेहेर विराजमान थई रही छे अने मिथ्यात मोहनीय रूप निद्रानी मुर्छा ते विनास पामी छे, तथा जेना घटमाथी जिन शासननी सेली के० तत्व समजवामा अने तत्व समजणमा अहं बुद्धिरूप अभिमाननो त्याग थयोछे, अने जे छ ए द्रव्यने परखनारो छे जेना श्रवणमा आगमना अक्षर पडे छे एटले सिद्धात सामले छे, वली ऋषेरिय आर्ष आर्षित ऋषि सबंधी वाणी ते जिनवाणी कहिये, ते जेना हृदयरूप भडारमा समाणी छे.

एटले नरी छे, वणारसी दास कहे छे के जेनी नवस्थिति अल्प आवी रही छे, तेज पुरुष जिन प्रतिमाने जिन सरिषी प्रमाण करेछे ॥ ७६ ॥

हवे वणारसी दास पोतानी कथनी कहेछेः— अथ वणारसी कथनः—

चोपाईः— जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे; सीस नमाइ वनारसिवंदे; फिरि म नमांहि विचारे ऐसा; नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ ७७ ॥ परम तत्व परचे इ समांही; गुन थानककी रचना नांही; यामें गुनथानक रस आवे; तो गरंथ अति शोना पावे ॥ ७८ ॥ दोहराः— यह बिचारि संक्षेपसों, गुनथानक रस योज, वरनन करे बनारसी, कारन सिव पथ खोज ॥ ७९ ॥

अर्थः— जिन प्रतिमां छे तेज मनुष्यना राग द्वेष मिथ्यातनुं निकंदन करनार छे, तेथी वणारसीदास मस्तक नमावीने तेने वंदे छे. पछी वनारसीदास मनमां एम विचारे छे के, आ नाटक ग्रंथमां जेवुं परमपद छे तेवुं आहीं कहेछे ॥७७॥

आ ग्रंथमां उपादेयरूप परम तत्व, आत्म तत्वनो परिचय छे. पण गुणस्थानकनी रचना आ ग्रंथमां नथी. हवे जो आ ग्रंथमां गुणस्थानकनो रस आवे तो आ ग्रंथ सारी शोना पामे ॥ ७८ ॥ ए प्रमाणे विचारीने संक्षेप मात्र गुणस्थानकना रसनी चोजनो वणारसी दास वर्णन करे छे. ते वर्णन शिवपंथनुं कारण छे अने शिवपंथनी खोजना छे. ॥ ७९ ॥

हवे गुणस्थानकनुं स्वरूप छे तेवुं कहेछेः— अथ गुनथानक सरूप कथनः—

दोहराः— नियत एक विवहारसों, जीव चतुर्दश नेद; रंग जोग बहु विधि नयो, ज्युं पट सहज सुपेद. ॥ ८० ॥

अर्थः— निश्चे जीव एकरूप छे. अने व्यवहारनयथी जीव चौद नेदे छे. आहीं दृष्टांत आपेछे, जेम वस्त्र सहज रंगमां सफेद छे. पण रंगना जोगथी विचित्र प्रकारना रंगनो थाय तेम गुणस्थानकथी जीवनो तेवो नेद छे. ॥ ८० ॥

हवे चौद गुण स्थाननां नाम कहेछेः— अथ चतुर्दश गुनथानक कथनः—

सवैया इकतीसाः— प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथो अव्रत पंचमो व्रतरंच है; छठो परमत्त सातमो अपरमतनाम, आठमो अपूरव करन सुख संच है; नौमो अनिवर्त्तनाव दशमो सूछमलोन, एकादशमो सु उपसंत मोह वंच है; द्वादशमो छीन मोह तेरहों सजोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है. ॥ ८१ ॥ दोहराः— वरने सब गुन थानके, नाम चतुर्दश सार; अब बरनों मिथ्यातके, नेद पंच परकार. ॥ ८२ ॥

अर्थः— प्रथम मिथ्यात, वीजो सास्वादन, त्रीजो मिश्र, चोथो अविरत, पाच मो रच मात्र व्रत एटले देशव्रती, ठ्ठो प्रमत्त, सातमो अप्रमत्त, एवा नाम ठे. आठमो अपूर्वकरण अथवा निवृत्ति वादर, ए बे नाम ठे ते आही सुखनो संच के० मिलाप ठे, नवमो अनिवृत्ति वादर, दशमो सूक्ष्म लोज, अग्यारमो उपसांत मोह, आंही मोहनी वचना ठे एटले मोहथी ठुटवु ठे वारमो क्षीण मोह क हीए, तेरमो सयोगी जिन, ते केवली थयो, चौदमो अजोगी जिन, जेनी स्थिति अ इ उ ऋ ऌ ए न्हस्व पांच अक्षर जेटली ठे ॥७१॥ एम सर्व चउदे गुण स्थान ना नामनु सत्यार्थ वर्णन कीउ ते शोजे ठे हवे अनुक्रमे पहेला मिथ्यात गुणवा णाना पाच प्रकारथी पाच जेद ठे ते कहुंडुं ॥ ७२ ॥

हवे पाच मिथ्यात्वना नाम कहेठे — अथ पंच मिथ्यातके नाम कथन —

सवैया इकतीसा — प्रथम एकत नाम मिथ्यात अजिग्रहीक, दूजो विपरित अ जिनिवेसिक गोत हैं, तीजो विनै मिथ्यात अनाजिग्रह नाम जाको, चोथो ससे जहा चित जोरकोसो पोत हे, पचमो अज्ञान अनाजोगिक गहलरुप, जाके उदे चेतन अचेतनसो होत हैं, ए पाचो मिथ्यात जमावे जीवको जगतमें, इन्हके वि नास समकितको उदोत हे ॥ ७३ ॥

अर्थ — पाच मिथ्यात्वमा पेहेलो एकात पक्षना ग्राही अजिग्रहिक नामे मिथ्या त्व ठे. बीजो मिथ्यात पेहेला मिथ्यातथी विपरित ठे तेनु अजिनिवेसिक एवु गो त के० नाम ठे, त्रीजो विनय मिथ्यात सर्वनो पूजनार ठे जेनु नाम अनाजिग्र हिक ठे, चोथो ससयिक मिथ्यात ज्या चित्त ठे ते जमण करतु रहे जमराना वचानी माफक, पाचमो अज्ञान मिथ्यात, ए अनाजोगीक पणाथी अजाणपणे एकेंद्रिया दिकमा गहलरुपी ठे निद्रानी ठाकनु स्वरुपी ठे जेना वदयथी चेतन ठे ते अ चेतन थई रहुठे जेना नाम लीधा ते एज पाचे मिथ्यात जीवने जगतमा जमा वेठे ए पाचे मिथ्यात्वनुं विनाश थएथी समकेतनो उद्योत थायठे ॥ ७३ ॥

हवे एकातवादी अजिग्रहीक मिथ्यातनुं लक्षण कहेठे — अथ एकांत यथा —

दोहरा — जो इकत नय पक्ष गहि, ठके करावे दक्ष, सो इकत वादी पुरुष, मृषावत परतक्ष. ॥ ७४ ॥

अर्थ — साते नयमां हर कोई एक नयनो पक्ष ग्रहीने पोताना जाणपणामां ठ की जायठे, अने दक्ष के० तत्ववेत्ता कहेवाय, ते एकात मतनो स्थापक मीमांसक नैयायक प्रमुख पुरुष ठे ते प्रत्यक्षपणे अजिग्रहीक मिथ्याती ठे ॥ ७४ ॥

हवे जाणपणामां तो काईक अनेकांतपणुं छे. पण द्रव्यकी विपरीत कहेछे माटे तेनुं लक्षण कहेछेः— अथ विपरीत यथाः—

दोहराः— ग्रंथ उकति पथ उछपे, थापे कुमत सुकीय, सुजस हेत गुरुता ग्रहे, सो विपरीती जीय ॥ ७५ ॥

अर्थः— ग्रंथमां जे कह्यो एवो मार्ग तेने उथापीने नन्हवादिक पोतानी कुमति थापे पोतानी प्रसिद्धि थवाने माटे गुरुता के० आचार्यपणो ग्रहेछे, ते जीव अनेकांततायी विपरीत थयो तेने आभिनिवेसिक मिथ्यामती कहीए ॥ ७५ ॥

हवे जेनो विनय मिथ्यात छे एवा अनभिग्रहिक मिथ्यातीनुं लक्षण कहेछे
अथ विनय मिथ्यात यथाः—

दोहरा— देव कुदेव सु गुरु कु गुरु, गिनें समान जु कोइ; नमें भगतिसों सब निकों, विनय मिथ्याती सोइ ॥ ७६ ॥

अर्थः— सु देवने अने कुदेवने सु गुरुने अने कु गुरुने जे कोइ समानज गणे छे, अने तामली तापसनीपरें परिणाम प्रवज्यां लेइने भक्तियी सर्वेने नमेछे, पण गुणदोषनी खबर न होय ते विनय मिथ्यात्व कहियें ॥ ७६ ॥

हवे जेना जाणपणामां संदेह छे, ते संशय मिथ्याती कहियें तेनुं लक्षण कहेछे
अथ संसय यथाः—

दोहराः— जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हेरान; थिर व्हे तत्व न सद्दहे, सो जिय संसयवान ॥ ७७ ॥

अर्थः— जे अपार नय जाल देखिने जीवमां संशय राखे, नानाप्रकारना चित्त विकल्प ग्रहे अने हेरान थई रहेछे. स्थिरता राखीने तत्वने सर्दें नही तेज जीव संशयवंत मिथ्याती कहीये ॥ ७७ ॥

हवे पांचमा अज्ञान मिथ्यातीनुं लक्षण कहेछेः— अथ अज्ञान यथाः—

दोहराः— जाको तन दुख दहलसों, सुरति होति नहिं रंच; गहल रूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ ७८ ॥ पंच भेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ; सादि अनादि सरूप अब, कहों अवस्था दोइ ॥ ७९ ॥

अर्थः— शरीरमां दुःखना दहेलथी जेने हेय उपादेयनी, रंचमात्र सुरता रेती नथी, मुर्छित रूपे जे सदा वर्त्ते छे ते एकेंद्रियादिक तिर्यंच अज्ञान मिथ्याती कहिये ॥७८॥ श्री जिनेश्वरना आगम सिद्धांत जोईने मिथ्यातना पांच भेद कहेछेः-- जे

नी आदि पामीए तेतो आदि मिथ्यात्व कहीए, अने जेनी आदि न पामीए तेतो अनादि मिथ्यात्व कहिये, एवी एवी मिथ्यात्वनी अवस्थानुं स्वरूप हवे कहेछे॥८९॥

प्रथम सादि मिथ्यात्वनु लक्षण कहेछे — अथ सादि यथा —

दोहरा — जो मिथ्या दल उपसमे, ग्रंथ भेद बुधि होइ,
फिरि आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥ ९० ॥

अर्थ — जे मिथ्यात मोहनीयना दलने उपसमावीने मिथ्यात्व ग्रंथी भेदीने ज्ञाता समकेती थईने पाछा मिथ्यातमां आवे ते सादि मिथ्यात्व कहीए एना मिथ्यातमा हवे आदि थई तेथी सादि मिथ्याती कहिये ॥ ९० ॥

हवे बीजो अनादि मिथ्यातनुं लक्षण कहेछे — अथ अनादि यथा कथन —

दोहरा — जिनि गरथि भेदी नही, ममता मगन सदीव, सो अनादि मिथ्या मती, विकल वहिर्मुख जीव ॥ ९१ ॥

अर्थ — जे जीवे मिथ्यात्व ग्रंथी भेदी नथी अने सदासर्वदा काल लगण ममता मांज मगन रहे, ते जीव अनादि मिथ्यात्ती कहीए, अने जे वहिर्मुख रहे जेने परमात्मा द्रव्यनी दृष्टि नथी, ते वहिर्मुख जीव कहीए ॥ ९१ ॥ इति श्री वणारसीदास कृत नाटक समयसारनेविषे प्रथम गुनस्थानकनो अधिकार संपूर्ण थयो

दोहरा.— कह्यो प्रथम गुण थान यह, मिथ्या मत अभिधान, अलप रूप अब वरनवु, सासादन गुन थान ॥ ९२ ॥ सवैया इकतीसा — जैसें कोउ क्षुधित पुरुष खाइ खीर खांम, वोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे हे, तेसे चढि चोथे पाचएके छठे गुनथान काहु उपसमीको कषाइ उदे आवे हे, ताहि समे तहा गिरे परधान दशा त्यागी, मिथ्यात अवस्थाकों अधोमुख व्हे धावे हे, वीच एक समे वा छ आवली प्रमान रहे, सोइ सासादन गुनथानक कहावे हे. ॥ ९३ ॥

अर्थ — जेनु मिथ्यात एवु नाम छे, ते पेहेलु गुणस्थानक सूचना मात्र कह्यु, हवे संक्षेप मात्र सास्वादन गुन स्थाननुं स्वरुप कहुछु. ॥ ९२ ॥

अर्थ — जेम कोइ क्षुधावत्त पुरुष छे ते खीरखांम खाय पछी तेने वमन करेछे ते वमननी पछी पण खीरखांमना भोजननो लगारेक स्वाद पामेछे तेम कोइ जीव उपशम सम्यक पामीने चोथे अविरत गुनस्थाने रह्यो छे अथवा उपशम सम्यक पामताज सरखो समान पांचमा गुणठाणे अथवा छठे गुणठाणे चढ्यो त्यां समकेतनी उज्वलता न थई, अने अनंतानुबंधी उपशमि कषाय हतो ते उदय थयो, ते समयमा ते त्रणे गुण ठाणाथकी ते उपशम सम्यक्ती प्रधान

दशा जे श्रेष्ट दशा तेने त्यागीने फरी मिथ्यात दशाने उंधे मुखे उलटो रहेछे, एटले मिथ्यात्व पामतामां अने सम्यक्त छूटतामां वचे एक समयकाल प्रमाणे अथवा उत्कृष्ट छ आवलिका प्रमाणे जे सम्यक अंश रहेछे तेनेज सास्वादन गुन स्थानक कहिए. ॥ ९३ ॥ इति द्वितीय गुन थानक समाप्तः

दोहराः— सासादन गुन थान यह, जयो समापत बीय; मिश्र नाम गुन थान अब, बरनन करों त्रितीय. ॥ ९४ ॥ सवैया इकतीसाः— उपसमी समकिती केतो सादि मिथ्यामती, दुहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है; अनंतानुबंधी चोकरीको उदे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहेहे; जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल, ज्ञान भाव मिथ्या भाव मिश्र धारा वहे है; जाकी थिति अंतर मुहूरत वा एक समे, एसो मिश्र गुन थान आचारज कहे है

अर्थः— आ बीजो सास्वादन नामे गुणस्थान संपूर्ण थयुं हवे त्रीजुं मिश्र गुनथाननुं वर्णन करुंछुं. ॥ ९४ ॥

अर्थः— उपशम सम्यक्ति मिथ्यात मिश्र अने सम्यक्त रूप त्रण पुंज करीने ज्यारे मिश्र पुंजमां जीव वर्त्ते, अथवा सम्यक्तथी पडीने फरी मिथ्यात्वमां आवी सादि मिथ्यात्वी थईने मिश्र पुंज उदय थयाथी मिश्रमां वर्त्ते, ए बेउने मिश्र गुण स्थानक कहियें, केमके मिथ्यात्व सम्यक्त थको वर्त्ते छे. जेथी संसार अनंतो वधे ते अनंतानुबंधीनी चोकडी कहिए, तेनो जेमां उदय नथी अने मिथ्यातपणुं शमे तथा उपशमेछे, त्यां मिथ्यात्वनी प्रकतिनो उदय रहेतो नथी. ज्यां समकाले सत्यासत्य रूप श्रद्धा छे. एटले श्रद्धामां साचुं खोटुं बेउ छे तिहां ज्ञान भाव छे, ते मिश्र धारामां वहेछे. अने मिथ्यात्व भाव पण सम्यक्त धाराथी मिश्रित धारा थकी वहेछे. जेनी उत्कृष्टि स्थित अंतर्मुहूर्त कालनीछे, अथवा जघन्य एक समयनी छे एवुं नाम त्रीजुं मिश्र नामे गुणठाणुं आचार्यजी कहेछे. इति तृतीय गुनस्थान समाप्तः९५॥

दोहराः— मिश्र दशा पूरन भई, कही यथा मति भाषि; अथ चतुर्थ गुनथान विधि, कहों जिनागम साषि, ॥ ९६ ॥

अर्थः— मिश्र गुणठाणानी जेवी दशा छे, ते जेवी पोतानी बुद्धि छे तेवी रीतें भाषारूप कही ते संपूर्ण थई, हवे श्री जिनागमनी शांष लईने चोथा सम्यक्त गुणठाणानी विधि कहुंछुं ॥ ९६ ॥

हवे चोथा सम्यक्त गुणठाणानुं वर्णन करेछेः—अथ सम्यक वर्णनः—

सवैया इकतीसाः— केई जीव समकित पाइ अर्ध पुदगल, परावर्त्त काल तांई

चोखे होई चित्तके, कोई एक अंतर मुहूरतमे ग्रंथि नेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोष वितके, तातें अतरमुहूरततो अर्द्ध पुग्गलो, जेते समे होही तेते नेद समकितके, जाही समे जाको जब समकित होई सोई, तबहीसो गुन गहे दोष दहे इतके ॥ ए७ ॥ दोहरा – अथ अपूर्व अनवर्त्ति त्रिक, करन करे जो कोइ, मिथ्या ग्रंथि विदार गुन, प्रगटे समकित सोइ ॥ एए ॥

अर्थ – सम्यक्त पामीने चित्तनो चोखो थईने अर्द्ध पुदगल परावर्त्त काल ल गण ससारमा रहेछे, अने कोईक जीव तो एकज अतमुहूर्त्त कालमा मिथ्यात ग्रंथी नेदी समक्त पामीने चारे गतिनो मार्ग उलंघन करी मोक्षरूप वित्तना सुख वेदे, पण ससारमा रहे नही तेथी सम्यक्त पामीने जघन्य संसार स्थित एक अतर मुहूर्तनी छे अने उत्कृष्ट ससार स्थित अर्द्ध पुदगल परावर्त्तनी थायछे, हवे एटली ससार स्थितिनी वचमा एक एक समयनी वृद्धि करता जेटला ते स्थितिना नेद थाय तेटला सम्यक्तना नेद पामीए ए रीते सम्यक्तना घणा नेद पामिये, जे समे जेने सम्यक्तनु उदय होय ते समे ते जीव त्यारथी पोताना गुण ग्रहेछे, अने इ तके के० ते ससार अवस्थाना दोषनुं दहन करेछे ॥ ए७ ॥ अथ के० यथाप्रवृत्ति करण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण ते त्रणे करण जे कोई नव्यजीव करे छे त्या कोईक वखते एक, आयुकर्मविना शाते कर्मनी स्थिति अंत कोडा कोडी सागरोपम प्रमाण रहे, त्यारे यथाप्रवृत्ति करण थाय पछी मिथ्यात ग्रंथी नेदवाथी अपूर्वकरण थाय, अने सम्यक्त प्रगटवाथी अनिवृत्तिकरण थाय, जे कोई ए त्रणे करणे करी मिथ्यात ग्रथी विदारीने सम्यक्त स्वरूप पामे तेज सम्यक्त कहिये

हवे अष्ट प्रकारथी सम्यक्त विवरण करे छे – अथ अष्टरूप कथन –

दोहरा – समकित उतपति चिन्ह गुन, नूषन दोष विनास, अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनों विवरन तास ॥ एए ॥

अर्थ – सम्यक्तनुं सरूप, १ सम्यक्तनी उत्पत्ति, २ सम्यक्तनु चिन्ह, ३ सम्यक्तनो गुण, ४ सम्यक्तनुं नूषण, ५ सम्यक्तना दोष, ६ सम्यक्तनो विनाश, ७ सम्यक्तना अतिचार, ८ ए सर्व आठ प्रकार थया, तेनो विवरो करुं ॥ एए ॥

हवे प्रथम सम्यक्तनुं सरूप कहेछे – अथ सम्यक्त यथा –

चोपाई – सत्य प्रतीति अवस्था जाकी, दिन दिन रीति गहे समताकी, छिन छिन करे सत्यको साको, समकित नाउ कहावे ताको ॥ ६०० ॥

अर्थ.– सत्यमां जेनी प्रतीत छे ते साचानेज सरदहेछे, एवी जेनी अवस्थाछे

अने दिवसे दिवसे वधती वधती क्षमा निर्लोनता प्रमुख समतानी गीत ग्रहण करेछे. एवुं सत्य कार्य पहेलां कदीन कर्युं, तेथी हवे क्षण क्षणमां सत्यनो सा को के० महा कार्य करेछे. ते नावनुं नाम सम्यक्त कहीए ॥ ६०० ॥

हवे सम्यक्तनी उत्पत्ति कहेछेः— अथ उत्पत्ति यथाः—

दोहराः— केतो सहज सुनाउको, उपदेशे गुरु कोइ; चिहुं गतिसेंती जीवकों, सम्यक् दरशन होइ, ॥ ६०१ ॥

अर्थः— नदीने किनारे उजा पाणीना कल्लोल आवता जाताना न्यायथी एट ले सरिउपल घोलना न्यायथी कोइने सहज स्वनावमांज समकित उपजे, कोई गु रुना उपदेश थकी सम्यक्त उपजे, जे जीव चारे गतिमां सयन निद्रा करी रह्यो हतो तेने जे सम्यक्त उपजे छे ते एवा एवा प्रकारथी उपजेछे ॥ ६०१ ॥

हवे जेथी सम्यक्त उपज्युं जाणीए ते सम्यक्तनां लक्षण कहे छेः—अथ लछन यथा

दोहराः— आपा पर परचेविपे, उपजे नहिं संदेह: सहज प्रपंच रहित दशा समकित लक्षण एह ॥ ६०२

अर्थः— आत्मा अने आत्माथी बीजां जे कर्मादिकना पुंजज छे, एटले बीजा पांचे द्रव्य तेना परिचय प्रतीतिमां, संदेह उपजे नही अने सहज सनावमां आ त्मदशा ते मायानी प्रपंच रहितथाय ए सम्यक्तना लक्षण कहिये ॥ ६०२

हवे सम्यक्तना गुण कहेछेः— अथ गुन यथाः—

दोहराः— करुना वछल सुजनता, आतमनिंदा पाठ; समता नगति विरागता, धरम राग गुन आठ ॥ ६०३ ॥

अर्थः— दया तथा सर्वनुं हित वांछक पणुं सर्व साथे मैत्री नाव राखवुं आत्मनिं दातुं पठन करवुं, इष्ट अनिष्ट उपर समनावें रहेवो, देव गुरुनी नक्ति, वैरागरस मांज निज्यो थको रहेवुं धर्मथी राग राखवो. ए सम्यक्तना आठ गुण छे ॥६०३॥

हवे सम्यक्तनां पांच नूपण कहे छेः— अथ पंच नूपण यथाः—

दोहराः— चित प्रनावना नावजुत, हेय उपादयवानि; धीरज हरप प्रवीनता नूपन पंच बखानि ॥ ६०४ ॥

अर्थः— चित के० ज्ञान एटले जिन शासननो जेवी रीतें प्रनाव वधे तेवा ना वमां रहेवुं हेय उपादेयनुं ज्ञानवंत थई, धैर्यमां रहेवुं, सम्यक्तपामीने हर्ष राखवुं, तत्वविचारमां प्रवीणता राखवी, ए पांच सम्यक्तनां नूषण वखाणिए ॥ ६०४ ॥

हवे सम्यक्तना पचीस दोष कहेछे – अथ पंचवीस दोष यथा –

दोहरा – अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष, तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसी एष. ॥ ६०५ ॥

अर्थ – अष्ट महामद छे, अने आठ मल छे, छ आयतन विशेष छे, अने त्रण मूढता छे, ए सर्व एकठा करीए तो पचीस दोष थाय. ॥ ६०५ ॥

हवे आठ जातना मद कहेछे - अथ अष्ट मद यथा –

दोहरा – जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार; इन्हको गरब जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥ ६०६ ॥

अर्थ – जातिमद, लाभमद, कुलमद, रूपमद, तपमद, बलमद, विद्यामद, तथा अधिकार के० ऐश्वर्यमद ए आठ वस्तुनो जे गर्व करवो तेज आठ प्रकारना मद कह्याछे ॥ ६०६ ॥

हवे आठ प्रकारना मल कहे छे – अथ अष्ट मल कथनः–

चोपाई – आसंका अस्थिरता वांछा, ममता दृष्टि दशा दुरगछा, वत्सल रहित दोष परभाषे, चित्त प्रभावना माहि न राषे ॥ ७ ॥

अर्थ – धर्म उपर अने जिनशासन वचन उपर शंका राखे, धर्ममां स्थिरता नही स्वर्गादिकनी वांछा धरे, कुटुंबादिकविषे ममत्व भाव राखे, ए धर्म मलीन छे एवी दुगंछा करे, स्वामी वत्सल न करे, पारका दोष प्रकाशे, ज्ञान प्रमुख विविध प्रकारनी प्रभावनामा चित्त न राखे ए आठ मल जाणवा ॥ ७ ॥

हवे छ आयतन दोष कहेछे ते छ स्थान मिथ्यात्वना कहेछे –अथ षडायतनयथा –

दोहरा – कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म, इनकी करे सराहना, यह षडायतन कर्म ॥ ८ ॥

अर्थ – कुगुरुने माननार, कुदेवने सेवनार, कुधर्मने माननार, कुगुरु प्रशंसा, कुदेव प्रशंसा, कुधर्म प्रशंसा, ए छएनी प्रशंसा करे ते आयतन कर्म दोष छे ॥ ८ ॥

हवे त्रण मूढता दोष कहेछे – अथ मूढत्रय यथा कथन –

दोहरा – देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष, आठ आठ षट तीनि मिलि, ए पचीस सब दोष ॥ ९ ॥

अर्थ – सुदेव समजे नही ए पेली मूढता, सुगुरुने समजे नही ए बीजी गुरु मूढता सुधर्मने समजे नही ए त्रीजी धर्म मूढता ए अविद्यानो पोषक छे ए रीतें आठ मद, आठ मल, छ आयतन, त्रण मूढता, सर्व मली पचीस दोष थया. ९

हवे पांच प्रकार सम्यक्तनो नाश करे ते कहेछेः-- अथ नाश पंचक यथाः–

दोहराः-- ज्ञान गर्व मतिमंदता, निठुर वचन उदगार; रुद्रभाव आलस द सा, नास पंच्च परकार. ॥ १० ॥

अर्थः-- ज्ञानना गर्वथी, बुद्धिनी मंदताथी, कठण वचनना उदगार के० कहेवाथी, रौद्र भाव धरवाथी, आलसु पणाथी, एवी रीतें पांच प्रकारे सम्यक्तनो नाश थायछे.

हवे दिगंबर संप्रदायथी सम्यक्तना पांच अतिचार कहेछेः–अथ अतीचारपंचकयथाः-

दोहराः– लोग हास भय भोग रुचि, अग्रसोच थिति चेव; मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दरसनी सेव॥११॥चोपाईः–अतीचार ए पंच प्रकारा; समल करहि स मकितकी धारा; दूषन भूषन गति अनुसरनी; दसा आठ समकितकी बरनी१२॥

अर्थः– सम्यक्तनी क्रियाथी मने लोक हससे एवो मनमां भय राखे, पांच इं द्रियना विषयभोगनी रुचि राखे, आगल माहारुं शुं थाशे एवी पोतानी स्थितिनुं चिन्तन करतो रहे, मिथ्यात दर्शनना जे आगम सिद्धांत छे तेनी भक्ति करे, पांच मुं मिथ्या दर्शननी सेवा करे ॥ ११ ॥ ए पांच प्रकारना अतीचार ते सम्यक्त नी उज्वल धाराने मल सहित करेछे, एवी दूषण गतिनी पाछल लागी अने भूष ण गतिने पाछल लागी रहे ए समकितनी आठ दशाने वरणी ॥ १२ ॥

हवे जे सात प्रकृतिना क्षय अथवा उपशमथी सम्यक्त उपजे ते कहेछेः–

अथ सप्त प्रकृति यथाः–

दोहराः– प्रकृति सात अब मोहकी, कहों जिनागम जोइ; जिन्हको उदै नि वारिके, सम्यक दरशन होइ ॥ १३ ॥ सवैया इकतीसाः– चारित मोहकी चारि मिथ्यातकी तीनि तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी; बीजी महामान रस भीजी माया मई तीजी, चोथी महालोभ दसा परिगह पोहनी; पांचइ मिथ्यात म ति छठी मिश्र परनति, सातई समें प्रकृति समकित मोहनी; एई षट विंगवनि तासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ १४ ॥

अर्थः– हवे मोहनीयनी सात प्रकृति श्री जिनेश्वरनो आगम जोई कहुंछुं. जे सात प्रकृतिनो उदय निवारवाथी सम्यक्त दर्शन प्रगट थायछे ॥ १३ ॥ मोहनी कर्मना बे भेद छेः– एकतो चारित्र मोहना, बीजी मिथ्यादर्शन मोहनी, तेमां चारित्र मोहनीयनी चार प्रकृति, अने मिथ्या दर्शन मोहनीनी त्रण प्रकृति मली सात प्रकृति छे; तेमां प्रथम प्रकृति अनंतानु बंधी कोहनी के० क्रोधनी, बीजी प्रकृति म हा अभिमानना रसमां भीनो थको रहे ते अनंतानुबंधी मान, अने त्रीजी प्र

कृति महामायामय ते अनंतानुबंधी माया, चोथी प्रकृति महालोभ दशामा प रिग्रहनी पोषण करनार ए अनंतानुबंधी लोभ, पांचमी प्रकृति मिथ्यात मोह नी, छठी प्रकृति मिश्रपरिणाम एटले मिश्र मोहनी, सातमी प्रकृति जे छे ते पहेली छए प्रकृतिनुं सम थयो एटले दबाई गई ते सातमी सम्यक्त मोहनी जाण वी, एमा छुरली छ प्रकृतितो विगवनितासी के० वाघणी जेवी छे एनी गैल लागी तो काइ छूटती नथी, अने एक सातमी प्रकृति कुतियासी के० कुतार्यां जेवी छे तेनोपण नरोसो नथी ए साते मोहनीयनी प्रकृति ते जीवना सद्भावनी रोकनार छे ॥१४॥

हवे साते प्रकृतिथी सम्यक्तना नेद उपजे ते कहे छे — अथ सम्यक्त नेद कथन

छप्पय छंद — सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंमित, सात प्रकृति छय करन, हार छायकी अखंमित, सातमाहि कछु षिपहि, कछुक उपसम करि रखे, सो छय उपसमवत, मिश्र समकित रस चखे, षट प्रकृति उपशमइ वा षिपइ, अथ वा छय उपशम करें, सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे ॥ १५॥

अर्थ — जेने ए सात प्रकृति उपसमी जाय तेतो उपसमी, पंमित के० ज्ञाता होय तेनुं नाम उपशम सम्यक्त कहीए, अने जे ए साते प्रकृतिनो क्षय करनार होय तेने क्षा यकी कहीए, ते अखंमित ज्ञायक सम्यक्त होय, वली ए साते प्रकृतिमा कई खपावे, कई उपशमावी राखे, तेतो उपशम लक्षण सहित, तेमा मिश्ररूप सम्यक्त रसने चा खे, ए सातो प्रकृतिमा छ प्रकृति उपशमे अने सातमी सम्यक्त मोहनीय तो प्रकृति उ दय आवी वेदे छे अथवा छ प्रकृति क्षय थईछे अने सातमी वेदे छे अथवा छ प्र कृतिमा कोई प्रकृतिनो क्षय थयो छे अने कोइनो उपशम थयोछे, अने सा तमी प्रकृति वेदे छे ते वेदक सम्यक्त धारी कहीए ॥ १५ ॥

हवे सर्वे सम्यक्तना नव नेद कहे छे — अथ नवविधि सम्यक्त वर्ननं

दोहरा — छय उपसम वरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार, छायक उपशम जुग लजुत, नौधा समकित धार ॥ १६ ॥

अर्थ — क्षयोपशमसमकित त्रण प्रकारनो वर्ते छे. वेदक सम्यक्तना चार प्रकार छे, क्षायक सम्यक्तनो एक प्रकार छे अने उपशम सम्यक्तनो एक प्रकार, ए क्षायकने उपशम बेहुना मलवाथी सर्व मली नव प्रकारनो सम्यक्तधारी थाय ॥ १६ ॥

हवे क्षयोपशम सम्यक्तना त्रण प्रकार कहेछे — अथ क्षयोपशम त्रई यथा —

दोहरा — चारि षिपहि त्रय उपसमहि, पण षय उपसम दोइ, पै षट उपसम एक यों, षय उपसम त्रिक होइ ॥ १७ ॥

अर्थः—साते प्रकृतिमां अनंतानुबंधीनी चोकडी खपी गइछे, अने त्रण दर्शन मोह नी उपसमी छे, तेने क्षयोपशम सम्यक्त कहिए. अथवा चार अनंतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति क्षय गईछे, अने बे उपशमी छे. तेने पण क्षयोपशम सम्यक्त कहीए, अथवा मिश्र मोहनी लगण छ प्रकृति क्षय गई, अने सातमी उपश मावी छे,तोपण क्षयोपशम सम्यक्त कहीए,एम त्रण प्रकारे क्षयोपशम सम्यक्त थाय. हवे क्षयोपशम सहित सम्यक्त मोहनी वेदवाथी जे क्षयोपसम वेदक नीपजे छे ते ना बे प्रकार छेः-- अथ क्षयोपशम वेदक द्विक यथा कथनः--

दोहराः-- जहां चारि प्रकरती षिपहिं, द्वे उपसम इक वेद; षय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद. ॥ १७ ॥ पंच षिपे इक उपसमे, इक वेदे जिहि ठौर, सो षयउपसम वेदकी, दशा द्वतिय यह और ॥ १८ ॥

अर्थः-- ज्यां अनंतानुबंधी चार प्रकृति क्षय थाय छे. अने मिथ्यात मिश्र ए बेउ प्रकृति उपशमेछे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदेछे. आवी दशामां जे क्षयो पशम सहित वेदक समकित थयोछे. तेनो आ प्रथम भेद छे. ॥ १७ ॥ वली ज्यां चार अनंतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति खपीछे, अने एक मिश्र मोहनी उपशमी छे. अने एक सम्यक मोहनी वेदे छे. त्यारे क्षयोपशम सहित वेदक समकितनी आ बीजी दशा थई. ॥ १८ ॥

हवे जे क्षायिक सहित वेदकछेः-- अने उपसमसहित वेदक छे. तेनो प्रकार कहे छेः—

अथ क्षायक वेदक उपशम वेदक यथा कथनः-

दोहराः— षय षट वेदे एक जो, ष्यायक वेदक सोइ, षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ. ॥ २० ॥ खायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद मांहि, कही प्रगट अब पुनरुकति, कारन वरनी नांहि. ॥ २१ ॥

अर्थः— ज्यां चारे अनंतानुबंधि अने मिथ्यात मोहनी मिश्र मोहनी ए छ प्रकृति खपी छे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदे छे, त्यारे क्षायिक वेदक सम्यक्त कहिये, अने ए जे पूर्वे छ प्रकृति कही ते जेणे उपशमावी छे, अने एक सम्यक्त मोहनीय वेदे छे, त्यारे उपशम वेदक सम्यक्त कहिये. ॥ २० ॥ क्षयोपशम नामे जे मोहर्क कहीए, तेनी दशा तो पाछला षटपद के० छपय छंदमां कही छे, तेहां ए प्रकृति छर्ईक उपशम करी राखे, एवुं प्रगट कहेलुं छे. तेथी आंहि फरी कहेवाया हा अभिमा दोष लागे ते कारणथी फरी वरणवी नथी. ॥ २१ ॥

हवे सम्यक्तना मूल नेद चार अने उत्तर नेद नव ठे ते कहेठे — अथ नेद विवरन —
दोहरा — षय उपसम वेदक पिपक, उपसम समकित च्यारि, तीन च्यारि इक इ क मिलत, सब नव नेद विचारि. ॥ २२ ॥

अर्थ —क्षयोपशम सम्यक्त, वेदक सम्यक्त, क्षायक सम्यक्त, उपशम सम्यक्त, एवा मूल चार नेद समकितना थया वली क्षयोपशमना त्रण नेद वेदकना चार नेद अने क्षायकनो एक नेद, उपशमनो एक नेद, ए सर्व मली समकितना नव उत्तर नेद थया हवे निश्चयादिक सम्यक्तनी व्यवस्था कहेठे —अथ निश्चे व्यवहार सामान्यविशेष —

सोरठा — अब निहचे विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि, कहों च्यारि परकारि, रचना समकित नूमिकी ॥ २३ ॥ सवैया इकतीसा — मिथ्या मति गांठि नेद जगी निरमल ज्योति, जोगसों अतीत सोतो निहचे प्रवानिये, वहे दुंद दसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुति ज्ञान नेद विवहार मानिये, चेतना चिहन पहिचान आपपर वेदे, पोरुप अलप ताते समान बखानिये करे नेदानेदको विचार विसताररूप हेय गेय उपादेयसों विशेष जानिये. ॥ २४ ॥ सोरठा — थिति सागर ते तीस, अतर मुहुरत एक वा, अविरति समकिति रीत, यह चतुर्थ गुन थान इति२५

अर्थ — हवे निश्चेथी अने व्यवहारथी सामान्य विशेषपणे कहेठे सम्यक्तनी नूमिनी चार प्रकारनी रचना ठे ते कहेठे. ॥२३॥ प्रथम मिथ्यात ग्रंथी नेदिने जे आत्मानी निर्मल ज्योति जागी ठे अने जे ज्योति मन, वचन, कायाना जोगथी अतीत ठे तेतो सम्यक निश्चेनयथी प्रमाण करीए बीजु ते सम्यक द्वंद्व दशाथी वर्तमान थाय ठे एटले बहु विकल्पथी धामधूम दशाथी वर्त्ते ठे त्यारे तो एवुं कहेवाय ठे के ए जोग मुद्रा धारी ठे आ मति ज्ञानी ठे आ श्रुत ज्ञानी ठे एवा नेद व्यवहारनयथी मानिये ठे त्रीजु ए आत्माना चेतनारूप चिन्ह के० लक्षण जाणीने आत्म द्रव्य अने परद्रव्यने वेदे ठे परतु अतरायना उदयथी पुरुष पराक्रम अल्प ठे एटले अविरति ठे तेथी ए सामान्यपणे सम्यक्त कहीए, चोथु गुण अने गुणिनो नेदानेद विचार विस्ताररूप करे जेम आत्मा गुणिठे ज्ञानादिक गुण ठे तेना नेदानेदनो विचार करवो एवा हेय ज्ञेय उपादयनो विचार राखवो ए विशेषपणे सम्यक्त जाणिए ॥ २४ ॥ अविरत सम्यकतनी उत्कृष्टि तेत्रीस सागरोपम स्थिति अथवा जघन्यथी एक अंतर मुहूर्तनी स्थिति होय, अविरति सम्यक्तनी रहस्य मर्यादा ए बे प्रकारें होय, ए चोथु गुणस्थानक समाप्त थयुं ॥२५॥

हवे पांचमां गुणस्थानकना विवरणनो आरंभ करेछेः—अथ पंचमगुनथानक आरंभ

दोहराः— अब वरनो इकवीस गुंन, अरु बावीस अनभ्य; जिन्हके संग्रह त्यागसों, सोहे श्रावक पय्य. ॥ २६ ॥

अर्थः— तेमां प्रथम पांचमा गुणस्थानक लायक श्रावकना एकवीस गुण कहुंछुं. अने बावीस अभक्ष छे ते कहुंछुं जे गुणने संग्रह करवाथी अने जे अभक्षने त्यागवाथी श्रावकनो पक्ष गुणसंग्रहीत शोभायमान थाय ते कहुंछुं. ॥ २६ ॥

हवे श्रावकना एकवीस गुणनां नाम कहेछेः—अथ श्रावक इकवीसगुन कथनः—

सवैया इकतीसाः— लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत परदोषकों ढकैया पर उपगारी है; सोम दृष्टि गुन ग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट सीष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरग विचारी है; विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, नदीन न अभिमानी मध्य विवहारी है; सहजे विनीत पाप क्रियासों अतीत एसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुन धारी है॥ २७॥

अर्थः— लज्जावंत १, दयावंत २, संतमूर्ति ३, प्रतीतवंत ४, परदोषनो ढांकनार ५, परउपकारी ६, सोमदृष्टि ७, गुणग्राहक ८, गुरुवाई ९, सर्वेनो वल्लभ १०, सिष्टाचारनुं पक्षी ११, मिष्टवचन बोलनार १२, ऊंमो विचार विचारे १३, विशेष ज्ञाननो जाणनार १४, शास्त्ररस जाणनार १५, करेला उपकारने जाणे १६, ते उपकारने जाणे १७, धर्मने जाणनार १८, अदीनपणुं ग्रहे अभिमानी रहे नहीं १९, एवा मध्यम वेहेवारमां रहे. के जेथी सहज स्वभावे विनयवंत होय २०, अने पापक्रियाथी रहित होय २१, एवा पवित्र श्रावक एकवीश गुणना धरनार थाय. ॥ २७ ॥

हवे जघन्य श्रावकने बावीस वस्तु अभक्ष छेः—अथ बावीसअभक्ष वर्ननः—

कवित्त छंदः—ऊरा घोरवरा निसभोजन, बहु बीजा वेंगन संधान; पींपर वर ऊंबरि कठूंबरी, पाकर जोफल होइ अजान; कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माषन अरु मदिरापान; फल अति तुछ तुसार चलित रस, जिनमत ए बावीस अषान.॥ २८॥

अर्थः— गमोरा हेमा करहा १, काचा धोलना वमा २, रात्री भोजन ३, बहु बीज फल ते दाडम प्रमुख ४, वेगण ५, अथाणुं पाणीमाहेलो ६, पीपलनी पीपी ७, वमवृक्षना फल ८, घोलरना फल ९, कतुंबरनां फल १०, पाकरीनां फल ११, अजाण्यांफल १२, कंदमूलनी जाति सर्व १३, माटीनीजाति १४, अफीमप्रमुख १५ मांस १६ मधु १७, मांखण १८, मदिरापान १९, बहु तुछ फल काचुं फल २०, हीम २१, जेनो वर्ण, रस, गंध, स्पर्श फरी गयो होय ते चलित रस २२, ए बावीस वस्तु श्री जिनेश्वरना मत धारीने अभक्ष छे. ते खावी नही ॥ २८ ॥

दोहरा — अब पचम गुन थानकी, रचना वरनो अल्प,
जामे एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥ २९ ॥

अर्थ —हवे देशविरतीनामें पाचमा गुनथाननी रचना अल्पमात्र वर्णवु छुं सक्षेपमात्र करीने ते गुणथानमा अग्यार प्रतिमा धारी छे प्रतिमा एवुं नाम चारित्र विकल्पनुंछे २९

हवे अगीआर प्रतिमाना यथार्थनाम कहेछे --अथ एकादश प्रतिमा नामकथन

सवैया इकतीसा — दसन विशुद्धकारी वारह विरतधारी सामायक चारी पर्व पोसह विधि वहे, सचित्तको परिहारी दिवा अपरस नारी, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी व्है रहे, पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त करे सो वस्त न गहे, एते देस व्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवतजी कहे ॥ ३० ॥

अर्थ — दर्शन विशुद्धनी करनारी दर्शन प्रतिमा १, बारे व्रतनी धरनारी विरति प्रतिमा २, जहा सामायकनो उच्चार छे ते सामायक प्रतिमा ३ जहा पर्व आव्याथी पोसह करवो ते पोसहप्रतिमा ४, जहा सचित्त वस्तुनो परिहार कहिये ते सचित्त परिहार प्रतिमा ५, ज्या दीवसे स्त्री स्पर्श न करवो ते दिवस अस्पर्श प्रतिमा ६, आठे प्रहर ब्रह्मचर्यमा रहेवु ते ब्रह्मचर्य प्रतिमा ७, सर्व आरंभनो जिहा त्याग करवो ते निरारंभी प्रतिमा ८, परिग्रहने त्यागवो ते परिग्रह त्याग प्रतिमा, ९, ज्या पापोपदेश न देवु ते पापोपदेश त्याग प्रतिमा १०, कोई आपणा निमित्त आहारादिक वस्तु करे तेजे नही ते उद्देशिक त्याग प्रतिमा ११, ए अगीयार प्रकारे करीने देश विरत धारी सम्यक्ति जाव कह्या छे तेनी आ इग्यार प्रतिमारूप प्रतिज्ञा भगवतजी कहे छे ॥ ३० ॥

हवे ए प्रतिमानो अर्थ कहेछे — अथ प्रतिमा कथन —

दोहरा — संयम अंस जग्यो जहा, भोग अरुचि परिनाम, उदे प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥ ३१ ॥

अर्थ -- जहा सयम चारित्रनो अस जाग्यो, अने भोग अरूचिना परिणाम थया, त्या कोई प्रतिज्ञानो उदय थयो तेनु नाम प्रतिमा कहीए ॥ ३१ ॥

हवे प्रथम दर्शन प्रतिमानुं विवरण करेछे -- अथ प्रथम प्रतिमा यथा --

दोहरा — आठ मूलगुण सग्रहे, कुवसन क्रिया न कोइ, दर्शन गुन निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ३२ ॥

अर्थ —आठी पेहेला कह्या छे करुणा वत्सल सुजनता इत्यादिक सम्यक्तना आठ मूल

गुण छे तेनो संग्रह करे, ज्यां साते व्यसननी क्रिया नथी एवा सम्यक्त दर्शनना गुण निर्मल करे, तेज दर्शन प्रतिमा कही इहां व्रत नथी एनो काल एक मासनो छे ॥३२॥

हवे बीजी प्रतिमानो विवरो कहेछेः–अथ द्वितीय प्रतिमा यथाः–

दोहराः– पंच अनुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाल; सिक्षा व्रत च्यारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल. ॥ ३३ ॥

अर्थः– पांच अणुव्रत, त्रण गुणव्रत अने सामायक धारे १, पोसह धारे २, देशावगासग करे ३, अतिथ संविभाग करे तथा चार शिक्षाव्रत धारे, ते व्रत प्रतिमा जाणवी तेनो काल बे महीनानो छे. ॥ ३३ ॥

हवे त्रीजी सामायक प्रतिमानो विवरो कहेछेः-- अथ तृतिय प्रतिमा यथाः–

दोहराः-- दर्वभाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक; तजि ममता समता गहे, अंतर मुहुरत एक. ॥ ३४ ॥ चोपाईः-- जो अरिमित्र समान विचारे, आरत रूद्र कुध्यान निवारे; संजमसहित भावना भावे; सो सामायकवंत कहावे. ॥ ३५ ॥

अर्थः– दश दोष वचनना टालवा, बार दोष कायाना टालवा, ए द्रव्यविधि अने दश दोष मनना टालवा ते भावविधि जाणवी, तेणे करीने संयुक्त; अने हैयामां एक शो आठ पंचपरमेष्टी मंत्रनो स्मरण लागो रहे. एम बीजी पण कोई प्रतिज्ञानी टेक राखीने, ममता तजीने, समता ग्रहण करवी, एम एक अंतरमुहूर्त काल पर्यंत सामायक चारित्र थाय ॥ ३४ ॥ जे कोई शत्रु मित्रने समान विचारे, आर्तध्यान रौद्रध्याननुं निवारण करे, पंच संवर सहित थाय, बार भावना भावे, तेज सामायकधारी श्रावक कहिए; ए त्रीजी प्रतिमा त्रण मासनी होय ॥ ३५ ॥

हवे चोथी पोसह प्रतिमानो विवरो कहेछेः– अथ चतुर्थ प्रतिमा यथाः–

दोहरा.– सामायक कीसी दसा, चार पहर लों होइ;
अथवा आठ पहर रहे, पोसह प्रतिमा सोइ. ॥ ३६ ॥

अर्थः– जे पूर्वे सामायकनी दशा कहीछे तेवी दशा चार प्रहर लगी होय, अथवा तेवी दशा आठ प्रहर लगे रहे, तेज पोसह प्रतिमा धारी श्रावक कहीए, ए चार मासनी प्रतिमा जाणवी इहां आठम चउदश अमास पूनमने दहाडे तथा पर्वदिन आवेथी पोसह करे ॥ ३६ ॥

हवे पांचमी सचित्त परिहार प्रतिमानो विवरो कहेछेः–अथ पंचमी प्रतिमायथाः–

दोहराः– जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर;
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञागीर ॥ ३७ ॥

अर्थ — जे सचित्त भोजननो त्याग करे अने फासु जल पीए, ए रीते जे पुरुष सचित्त वस्तुनो त्याग करे ए पेहेली प्रतिमाथी एटली वधती क्रिया करे तेतो पाचमी प्रतिमानो धरनार जाणवु ए प्रतिमा पाच मास सुधी रहे ॥ ३७ ॥

हवे छठी ब्रह्मचर्यप्रतिमानो विवरो कहेछे — अथ षष्टी प्रतिमा यथा —

चोपाई — जो दिन ब्रह्मचर्यव्रत पाले, तिथि आए निसि द्यौस संभाले,
गहि नौवाभी करे व्रत रक्षा, सो षट प्रतिमा साधक अक्षा ॥ ३८ ॥

अर्थ — सचित्तनो परिहारि तो प्रथमनीज रीते छे अने दिवसे ब्रह्मचर्य व धारे पाले अने पचमी पर्व आवे दीवसरात्रमा एटले आठ प्रहर ब्रह्मचर्य पाले तिहा नववाडे करीने ब्रह्मचर्यवृत्तनी रक्षा करे ते पुरुष छठी प्रतिमानो साधनहार होय ते छमास लगणनी जाणवी ॥ ३८ ॥

हवे सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो विवरो कहे छे — अथ सप्तमी प्रतिमा यथा —

चोपाई — जो नववाडि सहित विधि साधे, निशिदिन ब्रह्मचर्य आराधे, सो सप्तम प्रतिमाधर ज्ञाता, शील शिरोमनि जगत विख्याता ॥ ३९ ॥

अर्थ —जे श्रावक नववाड सहित जे ब्रह्मचर्यवृत्तनी विधि छे, ते विधिये ज रात दिवस ब्रह्मचर्यने आराधतो रहे अने जे आगल छ प्रतिमानी क्रिया कही छे तेने तो लीधोज रह्यो छे एवो जे श्रावक छे, तेतो सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो धरनार ज्ञानी पुरुष शील शिरोमणि जगतमा प्रख्याति पामेलो जाणवो ॥ ३९ ॥

हवे आहीं प्रसगथी नव वाडनो विवरो कहे छे — अथनोवाडि यथा —

कवित्तछद — तियथलवास प्रेमरुचि निरषन, देपरीछ भाषन मधुवेन, पूरवभोगकेलि रसचितन, गुरु आहार लेत चितचेन, करि सुचि तन सिगार बनावत, तियपरजक मध्यसुखसेन, मनमथ कथा उदरि भरि भोजन, ए नववाडि जान मतजेन ४०

अर्थ — ज्या स्त्रीउ वसे त्या वासन करवो, प्रेमरुचि राखीने स्त्रीना अगोपाग देखेवानहीं, दृष्टिदोषलु निवारण करीने आडु पडडु आपीने स्त्रीना मधुर वचन सानले नहीं, पूर्व कालमा जे भोग क्रीडा करी होय तेनो रस चितवे नहीं, चित्तना चेनने अर्थे घृतादिक सहित गरिष्ट आहार लेनहीं, स्नान मजनथी शरीरने पवित्र करीने शृगार शोभा सजे नहीं, स्त्रीने सुवाना पलगमा सुखसेन करे नहीं, मनमथ जे कदर्प तेनी कथा कहे नही, पेट भरीने भोजन न करे, ए नव वाडो जैन मतमा जाणवी ए वहुज आनद कारी छे ॥ ४० ॥

हवे आठमी निरारंभ प्रतिमानो विवरो कहे छेः– अथ अष्टमी प्रतिमा यथाः–

दोहराः– जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ; सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजे रन थंभ ॥ ४१ ॥

अर्थः– जे कोई श्रावक पाछली सर्व क्रिया करतो थको विवेक सहित विधि विशेष आदरे, अने पापनो आरंभ पोताना हाथे न करे तेतो आठमी निरारंभ प्रतिमानो धरनार श्रावक कुगतिना विजयनो रणथंभ रूप थई रह्यो छे ॥ ४१ ॥

हवे नवमी परिग्रह प्रतिमानो विवरो कहे छेः– अथ नवमी प्रतिमा यथाः–

चोपाईः– जो दसधा परिग्रहको त्यागी; सुख संतोष सहज वैरागी; समरस चिंतित किंचित ग्राही; सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ४२ ॥

अर्थः–जे नवविध परिग्रहनो त्यागी होय, सुख संतोष सहित वेरागी होय, उपशमरसथी भीज्यो रहेतो होय, किंचित ग्राही कहेतां कंईएक असन वशननु ग्रहण करनारो होय अने बीजी क्रिया सर्वे आठमी प्रतिमानी परें होय, ते श्रावक नवमी प्रतिमानो धरनार होय ए प्रतिमा नवमास लगी रहे ॥ ४२ ॥

हवे दसमी पापोपदेश त्याग प्रतिमा कहेछेः– अथ दसमी प्रतिमा यथाः–

दोहराः– परकों पापारंभको, जो न देइ उपदेश; सो दशमी प्रतिमासहित, श्रावक विगत कलेश. ॥ ४३ ॥

अर्थः– नवमी प्रतिमा लगण गृह कुटुंब परिवारने पापनो उपदेशआपे पण आहीं पापारंभनो उपदेश त्यागे ते श्रावकने दशमी प्रतिमासहित जाणिये तेज श्रावक क्लेश रहित थयो एम जाणवुं. ॥ ४३ ॥

हवे अग्यारमी उचितग्राही प्रतिमानो विवरो कहेछेः–अथ अग्यारमी प्रतिमा यथा

चोपाईः– जो सुछंद वरतें तजि मेरा, मठमंडपमहिं करे वसेरा; उचित अहार उदंड विहारी; सो एकादश प्रतिमा धारी.॥ ४४ ॥

अर्थः– जे आपणां घर बार मेरा छांडीने स्वछंद वर्त्ते, अने मठ मंडपमां वास करे, आधाकर्मि आहार त्यागे, योग्य आहार लें अने उद्दंड व्यवहारी थइ साधु जेवुं थाय, ते अगीआरमी प्रतिमनो धरनार थाय ए श्रावकनी करणी छे. ॥ ४४ ॥

हवे अग्यारमी प्रतिमानी व्यवस्था कहेछेः–अथ एकादश प्रतिमा यथाः–

दोहराः– एकादश प्रतिमा दशा, कही देशव्रत मांहि; वही अनुक्रममूलसों, गही सु छूटी नांहि ॥ ४५ ॥

अर्थः– ए अगीआर प्रतिमांनी दशा पांचमां देशविरति गुणस्थानकमांहे क

ही हवे प्रथमथी जे आगलनी प्रतिमाओ ग्रहण करेली छे तेतो अनुक्रमे ग्रहीज रह्यो छे पण तेथी छुटो नथी अने चढति चढति क्रिया करतो रहेछे ४५॥
हवे अग्यार प्रतिमा धारीमा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, दशा कहेछे –
अथ जघन मध्यम उत्कृष्ट कथन –
दोहरा – पट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नव परजत, उत्तम दशमी ग्यार मी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ४६ ॥
अर्थ – छठी दिवश ब्रह्मचर्य प्रतिमा लगण जघन्य श्रावक होय, अने नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा लगण मध्यस्थ श्रावक थाय, दशमी अगीआरमी प्रतिमानो धणी उत्तम श्रावक होय एटले प्रतिमानुं वृत्तात कह्यु इति प्रतिमा अधिकार समाप्त
हवे पाचमां गुणस्थाननी स्थिति कहेछे – अथ पचम गुनस्थानक स्थिति –
चोपाई – एक कोटि पूरव गनिलीजें, तामे आठ वरप घट कीजे, यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी, अत मुहुर्त्त जघन्य दसाकी ॥ ४७ ॥
अर्थ – एक कोटि पूर्ववर्पनी सख्या कीजे तेमा आठ वर्प घटामीए पछी जे वर्प रहे ते देश व्रति गुणस्थानकनी उत्कृष्टि कालस्थिति जाणवी, अने आदेशव्रत्ति गुणस्थाननी जघन्यदशानी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त्त कालमान होय ॥ ४७ ॥
हवे एक पूर्वकालनी वर्पसंख्या कहेछे – अथ पूर्वसख्या कथन –
दोहरा – सत्तरि लाख करोड मिति, छप्पन सहस करोडि, एते वरप मिलाइ करि, पूरव सख्या जोडि ॥ ४८ ॥
अर्थ –सितेरलाख कोटि वर्प एटली मिती के० प्रमाणता उपर छपन हजार कोटि वर्षे मेलवीयें तेवारे पूर्वकालनी जोमिना वर्प सख्या थाय तेना ७०५६००००००००००.
एटला अक थाय, लोक वेहेवारमा सात लल पांचननील साठ अर्व कहिए ॥४८॥
हवे अतर्मुहूर्त्त कालनो जघन्य उत्कृष्ट प्रमाण कहुंछुं –अथ अंतमुहुरतप्रमान
दोहरा – अतर मुहुरत द्व घडी, कछुक घाटि उतकृष्ट, एक समे एकावली, अंत मुहूर्त्त कनिष्ट ॥ ४९ ॥ यह पचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र, अव छम गुनथानकी, दसा कहुं सुनु मित्र ॥ ५० ॥
अर्थ – बे घमीमा एक समय ओछो थाय, त्यारेतो उत्कृष्ट अतमुर्त्त थाय अने एक आवलीने एक समय ते कनिष्ट के० जघन्य अंतमुहूर्त्त काल होय ए दिगवर सप्रदायथी छे ॥ ४९ ॥ एम देशव्रति पाचमा गुणस्थाननी विचित्र पुरुपे रचना कहीछे हवे हे मित्र छठा गुणस्थाननी दशा कहुछु ते साभलो ॥ ५० ॥

हवे प्रमत्तनामे छठ्ठा गुणठाणानी अवस्था कहुछुं:—अथ प्रमत्तगुनस्थानकः—

दोहराः— पंचप्रमाद दशा धरे, अठाइस गुनवान; थविर कल्प जिन कल्प जुत, है प्रमत्त गुनथान. ॥ ५१ ॥

अर्थः--धर्मरागादि पांच प्रमादनी दशा धारेछे. अने साधुना अठ्ठावीस गुण धारेछे आंही अठ्ठावीस गुण कह्या ते दिगंबर संप्रदायथी थिवर कल्पथी थिवरनो आचार अने जिनकल्पथी जिननो आचार तेणेकरी युक्त छे. एम प्रमत गुण स्थान होय

हवे पांच प्रमादना नामनी गणती करेछे.-- अथ पंच प्रमाद यथाः--

दोहराः— धरमराग विकथा वचन, निद्राविषय कषाइ; पंच प्रमाद दसासहित, परमादी मुनि राइ. ॥ ५२ ॥

अर्थः—धर्मउपर राग राखे, विकथा वचन बोले, निद्रासेवे, रस ते इंद्रिप्रमुखना विषय सेवे, कषाय सेवे, ए दशासहित जे मुनिराज होय ते प्रमादी कहीए. ॥ ५२ ॥

हवे श्री मुनिराजना अठावीस मूळ गुण कहेछेः--अथ अठाइस मूळगुन कथन

सवैया इकतीसाः-- पंच महाव्रत पाळे पंच सुमती संभाळे, पंच इंद्रि जीति भयो भोगी चित चैनको; षट आवशक क्रिया दर्वित भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको; मंजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पें सुगंध स्वास चैनको; ठाढो करषें अहार लघु भुंजी एकवार, अठाइस मूळ गुन धारी जती जैनको ॥ ५३ ॥

अर्थः-- सव्वाउ पाणाइ वायाउवेरमणं इत्यादिक पंच महाव्रत पाळे इर्यासुमति प्रमुख पांच सुमति संभाळीने करे अने पांच इंद्रिनो जीतनार एटले जेने इंद्रियोनाविषय सेवतां चित्तमां चैन नउपजे, तेथी विषयोनो त्यागी थाय सामायक प्रमुख छ आवश्यकक्रिया छे, ते द्रव्यथी पण साधे अने भावथी पण साधे ए २१ गुण थया फासू पृथ्वी प्रमुख सय्यामां प्रमाणोपेत एक शयन आसन राखे ए २२ गुण थया स्नान न करे केश लोच करे शरीरविषे वस्त्रनो त्याग करे दांतण नकरे स्वासवदननो सुगंध मूखशुण प्रमुख नले, उभो उभो अहारकरे लघुता के० अंतप्रांत आहार भुंजे तेपण एक टेक खाय ए अठावीस मूळ गुणनो धरनार जैन दर्शनी जती होय ॥ ५३ ॥ ए दिगमबर संप्रदायथी गुण कह्या छे.

हवे पांच महाव्रत कहेछेः— अथ पंच महाव्रत यथाः—

दोहराः— हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज;
किंचित त्यागी अनुव्रती, सवि त्यागी मुनिराज. ॥ ५४ ॥

अर्थ.— जीवघात असत्य चोरी मैथुन परिग्रहसामग्री ए पांचे आश्रवने किंचित त्यागे ते अणुव्रती श्रावक कहिए अने सर्वथा त्यागे ते मुनिराज कहिए॥५४॥

हवे पाच प्रकारनी समिति एटले सावधानपणु कहेछे —अथ पंच सुमति यथा.—

दोहरा — चले निरखि भाषे उचित, भषे अदोष अहार,
लेइ निरखि डारे निरखि, सुमति पच परकार ॥ ५५ ॥

अर्थ — जोईने चाले ते इर्या सुमति, योग्य वचन बोले ते भाषा सुमति, दूषणरहित आहार लीए ते एषणा सुमति, वस्त्र पात्र निरखीने ले ते अदान सुमति मलमुत्रादिक जोइने परठवे ते पारीठावणीया सुमति, ए पाच प्रकारे सुमति॥५५॥

हवे जे अवश्य करीए ते आवश्यक कहीए तेना नाम कहेछे, अथषष्ठावश्यकयथा

दोहरा — समता वदन थुति करन, पडिकमनो सज्झाउ, काउसग्ग मुद्राधरन ए षडावसिक भाउ ॥ ५६ ॥

अर्थ — सामायक करवी १ गुरुवदना करवी २ चोवीशजिनेश्वरनी स्तुति करवी ३ अतिचारथी निवर्त्तनाते पडिकमना ४ स्वाध्याय करवी ५ काउसग्गमुद्रा धरवी ए छ आवश्यक कहीए. ॥ ५६ ॥

हवे थिवर कल्प अने जिनकल्पनो भेद कहेछे—अथ स्थिविर कल्पी जिनकल्पी —

सवैया इकतीसा — थविर कलपी जिनकलपी दुविध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत है, दोउ अठाईस मूल गुन के धरैया दोउ सरव तियागी व्है विरागता गहत हैं, थविर कलपिते जिन्हके सिष्य साषा होई,वेठके सभामें धर्म देसना कहत है, एकाकी सहज जिन कलपी तपस्वी घोर, उदेकी मरोरसुं परिसह सहत हैं ॥ ५७ ॥

अर्थ — थिवर कल्पी अने जिन कल्पी ए बे प्रकारना मुनिश्वर होय ए बे वनवासमां रहे अने बेहु नागारहे ए बे अठावीस मूल गुणना धारनार ए बे सर्वस्व के० सर्व परिग्रहना त्यागी थईने वैरागभाव धरे एवा कह्या पण ते बेमा स्थिवर कल्पी ते कहीए जेने शिष्य शाखा होय, अने सभामा बेसिने धर्म देशना करे अने जे जिन कल्पी होय ते एकाकी होय घोरतपस्वी होय अने कर्म उदयनी मरोरथी जे परिसह उपजे छे ते सहन करे ए दिगमवर सप्रदायिक वचनो छे ॥५७॥

हवे प्रसगथी बावीस परिसह साधुने सहेवा योग्य तेना नाम कहेछे —

अथ बावीस परीसह यथा कथन.—

सवैया इकतीसा —ग्रीषममे धूप थिति सीतमें अकपचीत, भूखेधरेधीर प्यासे नीर न चहतु है, डंस मसकादिसो न डरे भूमि सैन करें, वध बंध विथामे अडोल व्है र

हतु है; चर्या दुख भरे तिन फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलान न गहतु हैं; रोगनकौ न करैं इलाज एसो मुनिराज, वेदनीके उदे ए परीसह सहतु है. ॥ ५८ ॥

अर्थः— उष्ण कालमां तडकामां आताप सहे, शीत कालमां शीत सहेवाथी चित्तमां कंपे नही, भुख्यो छतां धीरज राखे अनेषणी ग्रहे नही प्यासवंत थको स दोष पाणीनी चाहना करे नही नागा शरीरने डांस मसकादि करडे तोपण डरे नही धरतिये सय्या करे मरणांत कष्ट आवे भातभातना वध बंधनादिक कष्ट तेथी अडोल रहे पण चलायमान न थाय चर्या के० विहारनुं दुःख भरे तदरीले विहारमां तथा सयनासनमा कठोर त्रण स्पर्शथी थरहरे नही मेलनी जे दुर्गंध छे तेथी तेनी दुगंछा न करे रोगनी वेदना सहे पण तेनो इलाज न करे एवा मुनिराज होय ते वेदनीय कर्मना उदयथी ए इग्यार परिसह उपजे छे तेने सहे छे. ॥ ५८ ॥

कुंडलीयाः— एते संकट मुनि लहे, चारित मोह उदोत; लज्जा संकुच दुःप धरे, नगन दिगंबर होत; नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे; त्रियसनमुख दृग रोकि, मान अपमान न वेवे; थिर व्हे निर्भय रहे, सहे कुवचन जग जेते; भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट एते. ॥५९॥ दोहराः—अल्प ज्ञान लघुता लखे मति उतकरप विलोइ, ज्ञानावरन उदोत मुनि; सहे परीसह दोइ ॥ ६० ॥ सहे अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत; रोकेउमग अलाभकी, अंतरायके होत.

अर्थः— हवे चारित मोहनीना उदय थवाथी मुनिराज संकट सहेछे ते संकटनी गणतरी कहेछे नगन दिगंबर थई जे लज्जाथी संकोच दुःख उपजे छे तेने धरे. एटले संकटथी न भागे १ वली नगन दिगंबर थइ श्रोत के० इंद्रीयना रति स्वादने न सेवे, २ स्त्रीना हाव भावथी चुके नही ३ कोइ सत्कार करे कोइ असत्कार करे तेउपर विषम भाव लावे नही ४ कोइ भयथी भागे नही स्थिर रहे निर्भय रहे ५ जगतमां जे कंइ कुवचन छे आक्रोसना वचन छे ते सर्व सहन करे ६ भिक्षा ग्रहणथी भिक्षुक पद संग्रहे पण ते संकटथी भाजे नही ए सात संकट चारित्र मोहनीना उदयथी मुनि लहेछे ते सहन करे छे ॥ ५९ ॥ हवे भण्याविना अल्पज्ञानथी सर्वमां पोतानी लघुता थाय ते सहन करे पोताना मतिना उत्कर्षथी उत्कृष्टपणुं जोइने गुरुता सहे, एवी ज्ञानावरणी कर्मनो उदय थातां अज्ञान परिसह अने प्रज्ञापरिसह ए बे परिसह उपजे छे ते सहन करे ॥६०॥ दर्शन मोहनीयना उदय थवाथी सम्यक् दर्शननी मलिनता उपजे तेनी दुष्ट दशा सहे पण सम्यक् दर्शनथी न भागे अंतराय कर्मनो उदय थवाथी जे

लाननो उमग रोकी रहे तेथी अज्ञाननने सहन करे ए बावीस परिसह कह्या॥६१॥
हवे जे कर्मथी जे परिसह उपजे ते कहे छे अथ बावीस परिसह विवरनन –
सवैया इकतीसा – एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरनीकी दोइ एक अंतरायकी, दंसन मोहकी एक द्वाविसति बाधा सब, केई मनसाकी केइ बाकी केई कायकी, काहुकों अलप काहूसो बहोत उनी साता, एकही समेमे उदे आवे असहायकी, चर्याथित सज्जामाहि एक सीत उस्नमाहि, एक दोइहोहि तीनि नाही समुदायकी ॥ ६२ ॥ दोहरा – नानाविध संकटदशा, सहिसाधे शिव पंथ, थिविरकल्प जिन कल्पधर, दोऊ सम निगरथ ॥ ६३ ॥
अर्थ – अग्याआर सकट तो वेदनी कर्मना उदयथी उपजे छे चारित्र मोहनीय कर्मथी सात बाधा उपजे छे ज्ञानावरणनी करेली बे बाधा उपजे छे अतरायनी कीधी एक बाधा उपजेछे दर्शन मोहनीनी करेली एक बाधा उपजे छे, सर्वे मली बावीस बाधा थइ ते बावीसने परिसह कहीए बावीस बाधामा कोई मननी छे कोइ वचननी छे कोइ कायानी छे आ बावीस बाधामाहेली कोइने अल्प एक बे उपजे कोइने बहु उपजे तो एकज समे ओगणीस बाधानुं उदय थाय तेमा असहायनी के० जे बाधा बाधासाथेज बोलेछे पण साथे बने नही त्यारे तेमा एकज बाधा एक समे थई ते असहायनी कहीए जेम चर्यापरिसह चालवाथी उपजे छे निषेद्या परिसह रहेवाथी उपजेछे शय्या परिसह रहेवाथी उपजे छे अने शितबाधा तथा उष्ण बाधामा एक समयमा एकज बाधा उपजे तेथी आ पांच परिसहमा एक अथवा बे अथवा त्रण एक समयमा थाय पण समुदायरूप पांचे न थाय ॥ इति परिसह अधिकार समाप्त थयो इति परिसह अधिकार –
अर्थ – एवा नाना प्रकारना सकट छे तेनी दशा सहन करीने मुक्तिमार्ग साधे, तेथी थिविर कल्पना धरनार अने जिन कल्पना धरनार ए बेहु निर्ग्रंथ समान छे
हवे थिवर कल्पमा अने जिनकल्पमा कइ तफावत छे ते कहेछे –
अथ स्थिविरकल्प जिनकल्प तारतम्य कथन –
दोहरा – जो मुनि सगतिमे रहे, थविरकल्पि सो जानि, एकाकी जाकी दसा, सो जिनकल्प बखानि ॥ ६४ ॥ चोपाई –थविर कलप मुनि कछुक सरागी, जिन कलपी महांत विरागी, इति प्रमत्त गुनथानक धरनी, पूरन भई जथारथ बरनी ६५
अर्थ – जे मुनीश्वर गछना गणनी सगतमा रहेछे, तेतो थिवरकल्पी जाणीए जेने गणनी निश्रा नथी जेनी एकाकी दशा छे तेतो जिनकल्पी कहिए ॥ ६४ ॥

ए बेउ निर्ग्रंथमां थिवरकल्पनो धरनार कइक सराग दशामां छे, अने जे जिनक ल्पी छे ते महावैरागी छे एटले प्रमत्त गुणगणानी जे नूमिका वांधी अने यथार्थ साचपणे वरणी ते पूर्ण थई ॥ ६५ ॥

हवे सातमा गुणस्थाननु वर्णन करेछेः— अथ सप्तम गुनथानक वर्ननंः—

चोपाईः— अब बरनो सत्तम विसरामा; अप्रमत्त गुनथानक नामा; जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे; धर्मध्यान थिरता परगासे ॥ ६६ ॥ दोहराः—प्रथम करनचारित्रको, जासु अंत पद होइ, जहां अहार विहार नहि, अप्रमत्त हे सोइ ॥ ६७ ॥

अर्थः— मुक्तिरूप मंदिरमां चढतां ते सातमो विसामो छे, अने अप्रमत्त गुणस्थानक जेनुं नाम छे ते हवे वखाणे छे जे गुणस्थानमां धर्मरागादिकेकरी प्रमादनी विधि नासेछे, जे पूर्वेला गुणस्थानकमां धर्मध्यान चंचल हतो ते आंही स्थिरपणे प्रकाश करेछे. ॥ ६६ ॥ प्रथम गुणस्थानना अंतपदमां एटले छेला समयमां चारित्रमोहनी कर्मने नेदवानो यथा प्रवृत्तिनामे प्रथम करण थयुं, आंही धर्मध्याननी स्थिरता एवी छे के ज्यां अहार विहार क्रिया नथी. ते अप्रमत्त गुणस्थानक होय ए वचन दिगंबर संप्रदायनुं छे. ॥ ६७ ॥

हवे आठमा गुणस्थानकनुं वर्णन कहेछेः— अथ अष्टम गुनस्थानक वर्ननंः—

चोपाईः— अब बरनो अष्टम गुनथाना, नाम अपूरव करन बखाना, कछुक मोह उपसम करि राखे, अथवा किंचित क्षयकरि नाखे ॥ ६८ ॥ जो परिनाम नये नहि कबहीं, तिन्हको उदो देखिये जबहीं, तब अष्टम गुनथानक होई, चारित करन दूसरो सोई. ॥ ६९ ॥

अर्थः— जेनुं नाम अपूर्व करण वखाणीए छीए, हवे आंही श्रेणी चढवामां जे उपशमीक थको चढेछे तेतो आंही कंइक मोहने उपशमावी राखेछे, अथवा जे क्षपक थको चढे छे तेतो आंही चारित्र मोहनो कंइक क्षय करि नांखेछे ॥ ६८ ॥ एवुं जे परिणाम पेहेलां कोइ कालमां थयुं नथी ते परिणामनुं ज्यारे प्रगट पणुं देखियेछीए, त्यारेतो आठमुं गुणस्थानक होय तेने छेले समय चारित्र मोहनीय कर्म नेदवाने अपूर्व करण नामे बीजुं करण होय तेनुं नाम निवृत्ति पण छे.॥६९॥

हवे नवमा गुणस्थाननुं वर्णन करेछेः— अथ नवम गुणस्थानक वर्णनंः—

चोपाईः— अब अनवर्त्ति करन सुनुं नाई, जहां नाव थिरता अधिकाई, पूरव नाव चलाचल जेते, सहज अमोल नए सब तेते. ॥ ७० ॥ जहां न ना

व उलटि अध आवे, सो नवमो गुनथान कहावे, चारित मोह जहा बहु छीझा, सो है चरन करन पद तीजा ॥ ७१ ॥

अर्थ — प्रथम अनिवृत्ति करण गुणस्थाननो व्यवहार कहुं छु ते सांजलो. जे गुणस्थाननेविषे स्थिरता नावनी अधिकाई छे अने पूर्वनाव कषायना उदयथी जेटला चलाचल नाव होय तेवा सर्व आंही सहज अमोल थया छे ॥ ७० ॥ ज्या नावथी चढीने फरी तिहाथी पडी नीचेना गुणस्थानके न आवे एवो अनिवृत्ति कहेवाय, आंही अनिवृत्तिनो परमार्थ सिद्धातमा बीजीरीते छे, ते तो नवमुं गुणस्थान कहेवाय, ज्या चारित्र मोहनीय कर्म घणुंज त्रुटी गयो छे तेज ए चारित्र मोहनीय कर्म नेदवानो त्रीजो अनिवृत्ति करण थयो ॥ ७१ ॥

हवे दशमु गुन स्थानक कहु छुं — अथ दशम गुनथानक वर्नन —

चोपाई —कहों दशम गुन थान डुसाखा, जहा सूछम शिवकी अनिलाषा, सूछम लोन दसा जहाँ लहिए, सूछम सपराय सो कहिए ॥ ७२ ॥

अर्थ.— जिहा उपशम्यक् अने क्षपक एवी बे शाखा वर्त्ते छे जे गुण स्थानमा सूक्ष्म शिव पदवीनी अनिलाषा छे एवी ज्या सूक्ष्म लोन दशा पामिये, ते सूक्ष्म सपराय कहीए, सपराय एवु कषायनुं नाम छे ॥ ७२ ॥

हवे अग्यारमु उपसत मोह नामे गुणथान कहुछुं —अने तेनी प्रभुतानु प्रमाण कहुछु अथ एकादशम गुनथान वर्नन —

चोपाई --अब उपसतमोह गुनथाना, कहो तासु प्रभुता परवाना, जहा मोह उपसमे न नासे, जथाख्यात चारित परगासे ॥ ७३ ॥ दोहरा -- जाहि फरसके जीव गिरि, परे करे गुन रद्द, सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद्द ॥ ७४ ॥

अर्थ — जे गुणस्थानमा मोहनीय कर्म सर्वे उपशमी जाय पण उदयमा नासे नही अने यथाख्यात चारित्रनो प्रकाश थईने जेवु निसग आत्मानु सहज रुप छे तेवु प्रगटेछे ॥ ७३ ॥ जे उपशम श्रेणि चढिने अने जे गुणस्थानने फरसीने अवश्यज जीव तिहाथी पडे अने जे गुण प्रगटे ते सर्व रद करे, ए अगीयारमी दशा थई, एटले उपसत मोह गुणस्थान थयु एटले उपशमनी मर्यादा थई ७४॥

हवे बारमां क्षीणमोह गुनस्थाननु वर्णन करुंछु --अथ द्वादशम गुनथानक वर्ननं —

चोपाई — केवल ज्ञान निकट जहाँ आवे, तहा जीव सब मोह खिपावे, प्रगटे यथाख्यात परधाना, सो द्वादशम छीन गुन थाना ॥ ७५ ॥

अर्थ -- जे गुणस्थानने केवल ज्ञान निकट आवे छे अने त्या जीव सर्व मो

हनीय कर्म खपावीने बीजा पण घाती कर्म सर्व खपावे, अने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथा ख्यात चारित्र प्रगटे एवा प्रकारथी जे छे ते बारमो क्षीण मोह गुणस्थानक कहीए॥७५

हवे आंही लगण पाछला छगथी मांमी सात गुणस्थानमां उपशम श्रेणीनी अपेक्षाये जेकाल स्थिति छे ते कहेछेः-अथ षष्ट गुनथानक स्थितिकथन उपशम श्रेणिक अपेक्षा

दोहराः— षट सत्तम अठम नवम; दश एकादश बार, अंतर मुहुरत एक वा, एक समे थिति धार. ॥ ७६ ॥ छीन मोह पूरन नयो, करि चूरन चित चाल; अ व सजोग गुण थानकी, बरनों दसा रसाल. ॥ ७७ ॥

अर्थः—छठुं, सातमु, आठमु, नवमु दशमु, अग्यारमु, बारमु, ए सात जे गुणस्थान छे. तेनी स्थिति एक अंतर मुहूर्त्तनी छे. अथवा सात गुनस्थाननी जघन्य एक समयनी स्थिति धारो. ॥७६॥ मोहमय जे चित्तनी चाल हती तेनुं चूर्ण करीने क्षीण मोह गुण स्थानक पूरण थयुं. हवे सजोगीगुन थानकनी रसाल दशानुं वर्णन करुंछुं. ॥७७॥

हवे तेरमा गुणथाननुं वर्णन करुंछुंः— अथ त्रयोदशम गुन स्थानक वर्ननः—

सवैया इकतीसाः— जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनसगई चोकरी अघा ती जरी जेवरी समान है; प्रगट नयो अनंत दंसन अनंत ज्ञान, वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है; जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति ऐसी एक्यासी चोरासी वा पंचासी परवान है; सो हे जिन केवली जगत वासी नगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुन थान है. ॥ ७८ ॥

अर्थः— जे आत्म गुणना घातना करनार एवा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अंतराय, ए घाती कर्मनी चोकडी दुःख दाता हती ते जेनी विनाश थई गई, अने जे आत्माना गुणनो घात न करे एवा वेदनी, आयु, नाम, गोत्र, ए चार अघाति कर्मनी चोकडी रही ते बलेली दोरी समान रही छे. दर्शनावर णीय कर्मक्षय थयाथी जिहां अनंत केवल दर्शन प्रगट थयो. अने ज्ञानावरणी क्षय थयाथी जिहां केवल ज्ञान प्रगट्युं. अंतराय कर्म क्षय थयाथी अनंत वी र्य प्रगट्यो. मोहनीय कर्म क्षय थयाथी अनंत सुखसत्तामय अने समाधि प्रगटी अने जेमां आयु कर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीकर्म, एचारनी सर्व ८५ प्रकृति रही छे. तेमां कोईना आहारिक शरीर आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन, आहारक बंधन, तथा जिननामविना, ऐसी प्रकृती रही छे अने कोईने जिननाम सहित छे. तेथी (८१) रही छे तथा काईने अहारक चतुष्कछे अने जिननामनथी माटे ८४ छे तथा को ईने जिननाम सहित पचासी प्रकृतिनुं प्रमान छे. एवी दशानो धरनार जे छे ते

जिन होय केवली होय जगतनुं भगवान होय तेनी जे अवस्था छे तेनेज सयोगी गुणस्थानक कहीए ॥ ७८ ॥

हवे सजोगी गुणस्थानकवाळानी मुद्रा देखाडेछे —

सवैया इकतीसा -जो अमोल परजक मुद्रा धारी सरवथा अथवा सुकाउसग्ग मुद्रा थिरपाल हे, खेत सपरस कर्म प्रकृतिके उदे आए, बिना मग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल हे, जाकी थिति पूरव करोडि आठवर्ष घाट, अंतरमुहुरति जघन्य जग जाल हे, सो हे देव अठारह दूपन रहित ताकों वनारसी कहे मेरी वदना त्रिकाल हे ७९

अर्थ — जे अमोलपणे सर्वथा प्रकारे पर्यंक मुद्रा धारी होय एटले पद्मासनवाळीने सदा सर्वदा बेसेछे, अथवा काउसग्गमुद्रा स्थिरपणे पाले ए वचन दिगंबर संप्रदायनुं छे, अने क्षेत्र, स्पर्श रूप जे कर्म प्रकृति छे तेनो उदय थयाथी केवली विहार करेछे पण बीजा पुरुषनीपठे चाले नही पण केवली भगवुं नसाविनाज आकाशमां अधर चालें चाले ए परूपणा दिगबर सप्रदायनी छे, जे सयोगी गुणस्थाननी स्थिति आठ वर्षे न्यून पूर्वकोटी वर्षनी थाय केमके जन्मथी आठ वर्षलगी केवलज्ञान उपजतो नथी,अने आ गुनथानानी जघन्यस्थिति एक अंतरमुहूर्त्तनी थाय जगतजालमां एटलुंज रहेवु होय आही जे एवी अवस्थानो धरनार होय तेतो अढार दूपण रहित देवाधिदेव थाय वनारसीदास कहेछे के तेने मारी त्रिकाल वदना छे॥७९

हवे अढार दूपणनां नाम कहेछे — अथ अठारह दोप कथन:—

कुंमलीया —दूपन अठारह रहित, सो केवलि सजोग; जनम मरण जाके नहीं, नहि निद्रा भय रोग, नहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोहमति, जरा खेद परस्वेद, नाहि मद वैर विपे रति, चिता नांही सनेह, नाहि जह प्यास न भूपन, थिर समाधि सुख सहित, रहित अठारह दूपन ॥ ८० ॥ कुंडलीया — वानी ज हा निरक्षरी, सप्तधातु मल नांहि, केस रोम नख नहि बढे, परम उदारिक मांहि, परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि , लोकालोक प्रकास, करन केवल रजधानी, सो तेरम गुनथान; जहां अतिशय मयवानी ॥ ८१ ॥ दोहरा —यह सजोग गुनथानकी, रचना कही अनूप, अव अयोग केवल कथा, कहों यथारथ रूप ॥ ८२ ॥

अर्थ — जे अढार दूपणथी रहित ते सजोगी केवली कहिए जेने जन्म नथी मरण नथी, निद्रा नथी, भय नथी, रोग नथी, सोग नथी, विस्मय नथी, मोहम ति नथी, जरानो खेद नथी, परसेवो नथी १० मद नथी ११ वैर नथी १२ विपय

उपरति नथी १३ चिंता नथी १४ स्नेह नथी १५ जेने तरस लागे नही १६ नूप ला गे नही १७ अस्थिरपणुं नथी १८ तेथी समाधिसुख सहित स्थिररूप थायछे, एवा अढार दूषण रहित छे. ए अढार दोष दिगंबर संप्रदायथी छे. सिद्धांत संप्रदायमां १८ दूषण जुदां कह्या छे. ॥ ८० ॥ आ गुणस्थाननी अवस्थामां निरक्षरी वाणी होय ने मस्तकमां अर्हंकार ध्वनीरूप होयछे; अने शरीरमां सात धातु अने सात धातुना मल थता नथी. ए दिगंबर संप्रदायथी कहेलुं छे. अने जेना शरीरमां केश, रोम, नखनी वृद्धि थती नथी, एतो उदारीक शरीरमां पण एटला दोष नथी, तेथी देवाधिदेव परम उदारीक शरीरमांज कहिए; ज्यां जेने इंद्रियविकार नासी गयाछे, ने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट थयुं छे, ज्यां शुक्ल ध्यानरूप चंद्रमा स्थिररूप थयोछे. अने ज्यां लोकालोकना प्रकाशनी करनारी केवल ज्ञानरूप राजधानी बिराजी रही छे; ते तेरमुं संयोगी गुणस्थानक कहिए, ज्यां पांतरीश अतिशय मयवाणी छे.॥८१॥ए सयोगी गुणथानननी सर्वथी अधिक अनूप रचना कहीछे. हवे अयोगी केवलीनी दशा यथार्थरूप के० जेवीरीते बनीछे तेवी रीतनी कहुंछुं. ८२ हवे चौदमा अयोगी गुणस्थाननुं वर्णन करुंछुं. अथ चतुर्दश गुनस्थानक वर्ननं.

सवैया इकतीसाः– जहां काहू जीवकों असाता उदे साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदे पाइये; मन वच कायसों अतीत भयो जहां जीव जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये; जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जागी जिनकीसी, अंतकाल द्वेसमेमें सकल खिपाइये; जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रवान सोइ, चोदहो अयोगी गुन थाना ठहराइये. ॥ ८३ ॥

अर्थः– जे गुणस्थानमां कोई जीवने अशाता वेदनीनो उदय छे अने शाता वेदनीयनो उदय नथी, एटले शाता वेदनी सत्तारूप छे. अने कोइने शाता वेदनीनो उदय छे, अने अशाता दुःखरूप उदयमां नथी, एटले सत्तामां छे. अने ज्यां सैलेसी करण करीने मनोयोग, वचनयोग, काया जोगथी जीव अतीत एटले रहित थयो. जेना जशनु वर्णन जगतने जीतवा रूप गाइए छीए एटलो छे अने जेमां जोगी जन केसी के० सजोगी केवलीनी रीते कर्म प्रकृतिनी सत्ता रहिछे. ते अंतकालमां अंतना बे समयमां समस्त खपावेछे. अने जे गुणस्थानकनी स्थिति पंच लघु अक्षर अ, इ, उ, ऋ लृ ए अक्षर कहेतां जेटलो काल प्रमाण होय एटलो काल प्रमाण स्थिति छे तेज चौदमुं अयोगी ठेरावीए. ॥ ८३ ॥ इति श्री चतुर्दश गुणस्थानक अधिकार बालाबोधरूप समाप्तः

, दोहरा -- चौदहगुनथानक दशा, जगवासी जियनूल, आश्रव संवर नाव हे, बंध मोक्षके मूल ॥ ७४ ॥

अर्थ -- जगतवासी जीव अशुद्ध थको नूलमा पड्यो ठे तेनी ए चौद गुण स्थानकथी चोद दशा थाय ठे आही तत्व दृष्टिमा जोता जे आश्रव सवर नाव ठे तेज वध मोक्षना मूल ठे, एटले आश्रव बंधनुं मूल ठे अने संवर मोक्षनुं, मूलठे हवे आश्रव सवरनी जुदी जूदी अवस्था कहेठे अथ आश्रव संवर व्यवस्था कथन

चोपाई - आश्रव सवर परनति जोलों, जगत निवासि चेतना तोलों, आश्रव सवर विधि विवहारा, दोऊ नवपथ शिवपथ धारा ॥७५॥ आश्रव रूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोष पद दाता, जा सवरसो आश्रव ठीजे, ताको नमस्कार अब कीजे ७६

अर्थः– ज्या सुधी आश्रव संवरनु परिणाम परिणमे ठे, त्यासुधी चेतन रूप ईश्वर जगत निवासी थई रह्योठे आही आश्रवनी विधि ठे ते व्यवहारमा ठे अने सवरनी विधि ठे ते पण व्यवहारमा ठे ए उनौ केण्वे व्यवहार पथ ते ससार मार्गनी धारा अने मोक्ष मार्गनी धारा पण ठे ॥७५॥ ससारमा जे बधरूप उत्पात ठे ते तो आश्रवरूप ठे अने जे मोक्षपदनो दाता ज्ञान ठे ते सवर रूप ठे. जे सुवरथी आश्रव क्षय थयो होय तेने हवे नमस्कार करीए ठीए ॥ ७६ ॥

हवे ग्रथनी अंते मगलाचरण रूप सवर रूपी ज्ञानने नमस्कार करेठे –

सवैया इकतीसा --जगतके प्रानी जीवव्हैरह्यो गुमानी एसो, आश्रव असुर डु ख दानी महा नीम हे, ताको परताप खंमिवेको परगट नयो, धर्मको धरेया कर्म रोगको हकीम हे, जाके परनाव आगे नागे परनाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम हे, सवरको रूप धरे साधे शिवराह एसो, ज्ञानी पातसाह ताको मेरी तसमील हे ७७

अर्थ – जगतना वासी जेटला प्राणी ठे ते सर्वेने जीतीने जे गुमानी थई रह्यो, एवो आश्रवरूप जे असुर ठे ते महा डुखदायक ठे तेनो प्रताप खंमवाने जे ज्ञानरूप बादशाह प्रगट थयो ठे ते केवो ठे के धर्मनो धारण करनारो ठे अने कर्मरूप रोग गमाववानो हकीम ठे जे ज्ञान बादशाहना प्रनाव आगल काम क्रोधादिक राग द्वेषरूप पुजलना नाव ठे ते सर्व नासी जाय ठे, अने नागर केण्चतुर ठे, जे पेहेला कोइ वारे न पामेलो एवो जे नवो सुख समुद्र ते लगण जेनी सीम ठे सवररूपनो धरनार अने मुक्तिमार्गनो साधनार एवो जे ज्ञानरूपी बादशाह ठे. तेने माहारी सलाम ठे एटले नाटक करीने ज्ञान बादशाहने मुजरो कीधो ठे ॥ ७७ ॥

इति श्री समयसार नाटक बालावबोधरूप अर्थ सहीत समाप्त थयो.

चोपई:—नयो ग्रंथ संपूरन भाषा, बरनी गुनथानककी साषा; बरनन ओर कहां लौं कहिये, जथा सकति कही चुप व्हे रहीयें ॥८८॥ लिहए छरन ग्रंथ उदधिका; ज्यों ज्यों कहिये त्यों त्यों अधिका; ताते नाटक अगम अपारा ; अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ ८९ ॥ दोहरा:— समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होइ; तातें कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ. ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा:—जेसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि जीते केही भांतिचक्री कटक सों लरनो; जेसें कोउ परविन तारू भुज भारु नर,तरे केसे स्वयंभूरमन सिंधु तरनो; जेसें कोउ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे केसें कारज विधाताको सो करनो; तेसे तुछ मती मोरी तामें कविकला थोरी, नाटक अपारमें कहांलों याहि बरनो ? ९१

अथ जीव महिमा कथन:--

सवैया इकतीसा:-- जेसे वटवृक्ष एक तामें फल हें अनेक फल फल बहू बीज बीज बीज वट है, वटमांहि फल फलमांहि बीज तामे बट कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है; तेसे एक सत्तामें अनंत गुण प्रजा प्रजामें अनंत नृत्य नृत्यमें अनंत ठट है; ठटमें अनंत कला कलामें अनंत रूप, रूपमें अनंत सत्ता एसो जीव नट है. ॥ ९२ ॥ दोहरा:— ब्रह्म ज्ञान आकाशमें, उडे समति षग होइ; जथा सकति उद्दिम धरे, पार न पावे कोइ. ॥ ९३ ॥ चोपाई:-- ब्रह्म ज्ञान नभ अंत न पावे; सुमति परोछ कहालों धावे; जिहि विधि समयसार जिनि कीनो ; तिन्हके नाम धरे अब तीनो. ॥ ९४ ॥

अथ कवि त्रयी कथन नाम:--

सवैया इकतीसा:-- कुंदकुंदाचारज प्रथम गाथा बद्ध करे, समेसार नाटक विचारी नाम दयो है; ताहीके परंपरा अमृतचंद भये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो है; प्रगटयो बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अबकिये हें कवित्त हिए बोध बीज वयो है; शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादियों अनादिहिको भयो है.

अथ कविव्यवस्था कथन:-

चोपाई:— अब कछु कहुं यथारथ वानी; सुकवि कुकविकी कथा कहानी ; प्रथम सुकवी कहावै सोई; परमारथ रस बरने जोई. ॥ ९६ ॥ कलपित वात हिए नहिं आने; गुरु परंपरा रीति बखाने; सत्यारथ सैली नहि छंडे; मृषा वादसों प्रीति न मंडे.॥९७॥ दोहरा:-- छंद सबद अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान; जो इहि विधि रचना रचे सो हे सुकवि सुजान. ॥ ९८ ॥

चोपाई -- अव सुनु कुकवि कहूं हे जेसा, अपराधी हिय अंध अनेसा, मृषा नाव रस वरने हितसों, नई उकति नहि उपजे चितसों ॥ ए९॥ ख्याति लाज पूजा मन आने, परमारथ पथ भेद न जाने, वानी जीव एक करि बूझे, जाको चित जड ग्रथि न सुझे ॥ ३०० ॥ वानी लीन भयो जग मोले, वानी ममता त्यागि न बोले, हे अनादि वानी जगमाही, कुकवि वात यह समुझे नाही ॥ ३०१ ॥

अथ वानी व्यवस्था कथन -

सवेया इकतीसा -- जेसे काहू देसमे सलिलधार कारजकी, नदीसों निकसि फिरि नदीमे समानी हे, नगरमे ठौर ठौर फेली रही चहूं ओर, जाके ढिग वहे सोई कहे मेरो पानी हे, त्योंही घट सदन सदनमे अनादि ब्रह्म, वदन वदनमे अनादिहीकी वानी हे, करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनि एसो मूढ प्रानी हे ॥ ३०२ ॥ दोहरा -- एसे मूढ कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर, रहे मगन अभिमानमे, कहे ओरकी ओर ॥ ३०३ ॥वस्तु सरूप लखे नही, वाहिज दृष्टि प्रमान, मृषा विलास विलोकके, करे मृषा गुन ज्ञान ॥ ३०४ ॥

अथ मृषा गुन ज्ञान यथा -

सवेया इकतीसा -- मासकी गरथि कुच कचन कलस कहे, कहे मुख चद जो सलेखमाको घरु हे, हाडके दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि, मासके अधर ओठ कहे विंव फरु हे, हाड दम भुजा कहे कौलनाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जघा कहे रभा तरु हे, योही झूठी जुगति वनावे औ कहावे कवि, एते पर कहे हम सारदाको वरु हे ॥ ३०५ ॥ चोपाई -- मिथ्यावत कुकवि जे प्रानी, मिथ्या तिनकी भाषित वानी, मिथ्यावत सुकवि जो होई, वचन प्रवान करे सव कोई ३०६ दोहरा -- वचन प्रवान करे सुकवि, पुरुष हदे परवान, दोऊ अग प्रवान जो, सोहे सहज सुजान ॥ ३०७ ॥ अथ नाटक समयसार व्यवस्था कथन -

चोपाई -- अव यह वात कहों हे जेसे, नाटक भाषा भयो सु एसे, कुद कुद मुनि मूल उधरता, अमृतचद टीकाके करता ॥ ३०८ ॥ समेसार नाटक सुख दानी, टीका सहित ससकृत वानी, पडित पढे दृढमती वूझे अलपमतीकों अरथ न सूझे ॥ ३०९ ॥ पाडे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटकके मर्मी, तिन्ह गरथकी टीका कीनी, वालावोध सुगम करि दीनी ॥३१०॥ इहि विधि वोधवचनिका फेली, समोपाइ अध्यातम सेली, प्रकटी जगतमाहि जिनवानी, घर घर नाटक कथा वखानी ॥ ३११ ॥ नगर आगरामांहि विख्याता, कारन पाइ भए वहुज्ञाता,

पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने, निसिदिन ज्ञानकथा रस भीने.॥ ७१२ ॥ दोहराः— रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम, तृतिय भगौती दासनर, कौंरपाल गुनधाम. ॥ ७१३ ॥ धर्मदास ए पंच जन, मिलि बेसें इक ठोर; परमारथ चरचा करे, इन्हके कथा न और. ॥ ७१४ ॥ कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं ओर सिद्धांत, कबहूं विंग बनाइके, कहे बोध विरतंत. ॥ ७१५ ॥ अथ विंगयथाः—

दोहराः— चित चकोर करु धरम धरु, सुमति भगौती दास; चतुर भाव थिरता भए, रूपचंद परगास. ॥ ७१६ ॥ इहि विधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे मांहि; देसदेस महि विस्तर्यो, मृषा देश महि नांहि. ॥ ७१७ ॥ चोपईः— जहां तहां जिनवानी फेली, लखे न सो जाकी मति मेली, जाके सहज बोध उतपाता, सो ततकाल लखे यह बाता. ॥ ७१८॥ दोहराः— घटघट अंतर जिन वसे, घटघट अंतर जैन; मत मदिराके पानसों, मतवाला समुझे न. ॥ ७१९ ॥

चोपाईः-बहुत बढाउ कहालो कीजें, कारजरूप वात कहि लीजें, नगर आगरा माहे विष्याता, वनारसी नामे लघु ज्ञाता. ॥७२०॥ तामें कवित कला चतुराई, कृपा करे ए पंचो भाई, ए परपंच रहित हिय खोले, ते वनारसीसों हसि बोले.॥७२१॥ नाटक समैसार हित जीका, सुगमरूप राजमली टीका, कवित बद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रंथ पढे सब कोई. ॥ ७२२ ॥ तब बनारसी मनमहि आनी, कीजे तो प्रगटे जिनवानी, पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी, कवित बंधकी रचना कीनी.॥७२३ सोरहसें तिरानवे विते, आसुमास सित पक्ष वितीते, तिथि तेरसि रविवार प्रवीना, तादिन ग्रंथ समापत कीना. ॥७२४ ॥ दोहरा॥ सुख निधान सकबंध नर, साहिब साहि किरान; सहस साहि सिर मुकुटमनि, साह जहां सुलतान. ॥ ७२५ ॥ जाके राज सुचेनसों, कीनो आगम सार, इति भीती व्यापी नही, यह उनको उपगार. ॥ ७२६ ॥ अब सबका छंद कथनः—

सवैया इकतीसाः-- तीनसें दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ, जुगलसें तेतालीस इकतीसा आने हैं; छासी सु चोपईये सेंतीस तेइसे सवैये, वीस छप्पै अगारह कवित्त वषाने हैं; सात फुनिही अडिल्ले चारि कुंडलीए मिले, सकल सातसें सत्ताईस ठीकठाने हैं; बत्तीस अक्षरके सलोक कीने ताके लेखे ग्रंथ संख्या सत्रहसें सातअधिकाने है. ॥ ७२७ ॥ दोहराः-- समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत; सोहे आगम नाममें, परमारथ विरतंत. ॥ ७२८ ॥

॥ इति परमागम समयसारनाटक नाम सिद्धांत संपूर्णम् श्री रस्तु ॥

॥ श्रीपार्श्वजिनायनम. ॥

अथ

॥ श्री सम्यक्त्व स्वरूपस्तव बालावबोध सहित प्रारम्भ ॥

प्रथम ग्रंथकर्त्तानुं मंगलाचरण

श्रीमद्वीरजिनं नत्वा, गुरुश्रीज्ञानसागरं ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्या र्थो,- लिखामि लोकभाषया ॥ १ ॥ गुरुपदेशात· सम्यग्किंचित शास्त्रानुसारत ॥ वृद्धपरंपराज्ञात्वा, क्रियतेबोधिसंग्रहं ॥ २ ॥

अर्थ – श्रीमद्वीरपरमात्माने नमस्कार करीने तथा ज्ञानदृष्टिना दाता परमोपकारी श्रीगुरुना चरणारविंदने नमस्कार करीने पौज्ञलिकसुख तथा आत्मिकसुखनो एक अवध्यहेतु एटले पोज्ञलिकसुख तथा आत्मिकसुखने भिन्न भिन्न दर्शावनारो एहवो श्रीसम्यक्त्वगुण, तेनी मूलोत्पत्ति सप्रभेद कहेनारुं सम्यक्त्व पचवीसीनामे प्रकरण तेनो अर्थ श्रीगुरु उपदेशथकी तथा काईक शास्त्रानुसारथकी तथा काईक वृद्ध परंपराथकी एटले बहुश्रुतोनी वातो शाभलीने मारी बुद्धिने अनुसारे किंचित्मात्र संक्षेपथकी लोकभाषामा वार्तिकरूपे कहुंछुं.

प्रथम सूत्रकारनी गाथा लिखेछे –

जह सम्मत्त सरूव, परूविअं वीरजिणवरिंदेण ॥
तह कित्तणेण तमहं, थुणामि सम्मत्त सुद्धिकए ॥ १ ॥

अर्थ – जह के० जेम उपशम क्षायोपशमादि प्रकारे सम्यक्त्वनुं स्वरूप श्रीवीर जिनवरेंद्रे परूप्युछे, गणधरादिकने उपदेश्युछे तहकित्तणेण के० तेम कीर्तनकरवेकरीने एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरे सम्यक्त्व प्राप्तिनी प्रनालिका उपदेशी, तमहंथुणामि के० तेज प्रनालिका गर्भित वीनतिये करीने श्रीवीरपरमात्माने स्तवीश. एरीतें प्रकरण कर्त्तायें वस्तुनिर्देशात्मकरूप मंगल कर्युं, हवे प्रकरण करवानुं प्रयोजन कहेवे –ए प्रकरण शावास्ते करेछे के सम्मत्तसुद्धिकए के० सम्यक्त्वनी शुद्धिथवाने अर्थे एटले क्षायिकनावें सम्यक्त्व शुद्धि पामवाने अर्थे करेछे यदुक्त आगमे –ययथुईम

गत्तेणं नंतेकिंजणइ? गोयमा, नाणं दंसण चारित्त बोहिलानं जणइ. व्याख्या—श्री गौतमे वीरपरमेश्वरने पूछ्युं जे थय के० स्तोत्र अने थुई के० चार गाथारूप एट ले परमेश्वरनुं स्तवन तथा थुई करतां केवो लान थाय? तेवारें परमेश्वरें कह्युंके हे गौतम, ज्ञान दर्शन चारित्ररूप बोधलाजथाय. एटले रत्नत्रयी पामवानो हेतु थाय केमके निश्चयनये ज्ञान दर्शन अने चारित्र ते अप्रमतनावे होय, तिहांज संपूर्ण सम्यक्त्व कहियें. जंसम्मंतिपासहा तंमोणंतिपासहा जंमोणति इत्यादि आगमनेविषे कह्युंछे, एरीतें सम्यक्त्व शुद्ध करवारूप प्रयोजनने अर्थें एप्रकरण करेछे. ए ग्रंथकरवा नुं प्रयोजन कह्युं ॥ १ ॥ इति प्रथमगाथार्थ ॥

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनी अगाउ जेवी जीवनी अवस्था होय ते
व्यतिकरगर्नित बीजी गाथायें स्तुति करेछेः—

सामि अणाइ अणंते, चउगइ संसारघोरकांतारे ॥
मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवागवसउ नमइ जीवो ॥ २ ॥

अर्थः— हेस्वामि, मारासरिखा संसारीजीव, ते जेनी आदिपण नपामियें अने अंत पण नपामियें तेने अनादि अनंत कहियें, एटले जेनी आदि अंतनथी एवो चतुर्गति नमणरूप संसार, तेहिज जाणियें एक घोर कांतार एटले नयानक अटवी, तेहने विषे मोहाइकम्म गुरुठिई के० मोहनीयादिक आठे कर्मनी उत्कृष्टस्थितिना वि वागवसओ के० विपाक वेदवाना परवशपणाथकी नमइजीवो के० एजीवनमणक करेछे सर्व जीवोनी मूलस्थिति एहवीछे के अनादि निगोदजे सूक्ष्मवनस्पतिकाय जा ति निगोद, तेमां खाणसंपन्न कनकोपल न्याये अनादिना रहेछे; एसर्वेजीवोनी मू लस्थितिछे, तेमां अंगुलने असंख्यातमें नागें शरीरहोय, अने बशोछपन्न आवलिका नुं आयुहोय, एटले रोगरहित मनुष्यना एक श्वासो श्वासमांहे सत्तरनव फेरा करे, एम केवल तुछ आयुष्यवेदतां खुलकनवरूपें अनादि निगोदमां चय उपचय एटले तिहांज जन्म मरण करता रहेछे, एरीते सर्वे संसारीजीवोने निगोदमां न टकतां अनंतानंत पुजलपरावर्त्त वीतिगया.॥ २॥

तिहां रहेताथका कोई घुणाक्षरन्यायें नियतकारणना परिपाक थवाथी कोई सम ये एकादिकम बे स अध्यवसायना तरतमयोगथी; तत्तुल्यलघुकर्मि थाय एटले जेम अ क्षर गुणतां गुणतां कोई समयें अचानक कांई नियम सिद्ध थईजाय छे, एम नियत कारणना परिपाकथवाथी ते जीव एक बे इत्यादिक आत्माना अध्यवसायनी तारत

स्यता सहित थयो थको ते अध्यवसायना जेवा परिणाम होय तत्तुल्य के० तेवा परि णामतुल्य लघुकर्मि थायछे (ए रीते मने उपला न्यायनो खोलासो सुज्यो ते लखी जणाव्यो छे.) ते लघुकर्मिपणानायोगे सूक्ष्म निगोदथी निकलीने बादर निगोदमा आवे तिहा आयुकर्म स्थित्यादिकनी वृद्धिथाय, कोईकरीते बीजाजीवोने दृष्टिगोचर पण आवे, एहवोथाय, बादर शरीर छे माटे स्वकाय परकाय शस्त्रथी छेदन नेदन योगे जो अकाम निर्जराथवा लागी तो तेना योगथी बेइन्द्रीयादिकमा आवे, तिहाव ली प्राण अने पर्याप्ति तथा इन्द्रीय अने शरीरनी वृद्धिथाय इहा कर्मबंध वधतुथाय केमके जिव्हा इन्द्रिय तथा नाषा अने शरीरादिक अधिकरणनी वृद्धिथई राग द्वेष न योत्पादक नाषा अनेकरस आस्वादनानिलाषी जिव्हाथाय, वलीअनेक जीवने डुःख दायी महोटामा महोटुं बारयोजननुं शरीरथाय, उत्कृष्टआयु बारवर्षनुथाय, तेणेकरी शुनाशुन अध्यवसायनी पण तरतमता थाय, तो तिहापण अकाम निर्जरानी बहु लता होय तो, उंचो तेंन्द्रियादिकमा आवे, अनेजो अधिकरणनायोगे हिंसादिकदोष नी बहुलता थाय, तो फरी एकेन्द्रीयमा पण जाय, तिहां वली एकेन्द्रियमा उत्कृष्टो अनत कालरही फरीकोईकवारे कोईक अकाम निर्जराना योगथी विकलेंद्रियमां आवे तिहा बेइन्द्री तेइन्द्री चोरेन्द्री एत्रणे विकलेंद्रीय कहिये इहां जेम जेम इन्द्री प्राण अने पर्याप्ति वधे तेम तेम अधिकरण पण वधे

हवे तिहा जो हिंसादिक कारणोनी वृद्धिथाय तो पाछो पमी एकेन्द्रियादिकमां आवीजाय, अनेजो सामान्ये रहे तो पोतानी कायस्थितिप्रमाण द्वींद्रियादिकनावेज रहे, अनेजो छेदन नेदनरूप अकामनिर्जरा थायतो तेनेयोगे उंचोपण आवे, इहां विकलेंद्रियथी एकेन्द्रियमाजाय अने एकेन्द्रियथी विकलेंद्रियमांजाय, एरीतें अनता फेराथाय, तिहा एकेका फेरामा प्राये अनतकालपण वहीजाय

एरीते करता विकलेंद्रियथी अकामनिर्जराने योगे प्राये तिर्यंच पचेन्द्रीयथाय,ते तिर्यंच पचेन्द्रिना बेनेदछे, एक गर्नज अने बीजा समूर्छिम तेमां समूर्छिम ने मन न होय तोपण तेमा शरीर प्राण पर्याप्ति आयुप्रमुख अधिकरणनी वृद्धिथाय, तेथी जो हिंसादिक अधिकरणनी बहुलता थई तो पहेली नरके जवु पडे, अथवा पा छो पमी एकेन्द्रियादिकमा पण जाय, जो नरकेजाय तो उत्कृष्ट असख्यात कालसु धी क्षेत्रवेदना परमाधामिकृत तीव्रडुःख तथा परस्परकृत तीव्रडुःख अनुनवे, तथा एकेन्द्रियमा गयोतो फरी छेदनादिक अनेक डुःख सहन करे फरी अनंतकाल नमे

कदाचजो समूर्छिम पचेन्द्रियमां छेदन नेदन सीत तापादिक महाडुःख सहन

थी अकाम निर्जराने योगे गर्न्नज मनुष्य थाय, अथवा गर्न्नज तिर्यंच पचेंड्रिय था य, ते जेवारे गर्न्नज पचेंड्रितीर्यंच अथवा गर्न्नज मनुष्य थाय, तेवारे प्रबल अ धिकरणी थयो, तिहां पांचे आश्रव प्रबलपणे सेवे तिहां प्राण तथा पर्याप्ति पूरणहोय तेनेलीधे त्रिकाल वेदन स्वकीय परकीयना विकल्पजालमां पडे, तेथी उत्कृष्ट कर्मस्थितिनुं धणी थाय, आर्त्त रौद्र ध्याननी प्रबलता थाय, ते डुर्ध्या ननायोगें कर्मस्थिति दीर्घकरे, इहां कोइकजीव प्रबल हिंसादिक कारणनेयोगें सातेनरकोने विषे जाय, अथवा किवारेक मुर्छादिक अधिकरण योगे पाछो एकें ड्रियमां पण जाय, तिहां अनंतकाल रुले.

अथवा किवारेक छेदन नेदन ताडन तर्जन शीत तापादिक सहनकरतो जा ति शरलपरिणामी माटे तीव्रसंक्लेश न करे तो अकामनिर्जराकरी कोइकजीव देवगति पामे, अथवा कोईजीव मनुष्यथाय तेमांजो देव थयोतो अतिशय विषयाशक्तमां माचीने तीव्रसंक्लेशे विषयाशक्त थको मरीने प्रायें तिर्यंच पंचेड्री गर्न्नजथाय, तिहां बहुल हिंसादिक सेवनकरी नरकेजाय, अथवा पाछोपडी एकेंड्रियचक्रमां जाय, फ री तिहांथी निकली पंचेंड्रियपणुं पामतां उत्कृष्ट कायस्थिति योगे असंख्य पुजल परावर्त्त वीतीजाय.

अथवा कोईदेवमरी मनुष्यथाय, तिहां कारण अपरिपाकपणाथी बहुलतायें अनार्यक्षेत्र अनार्यकुलमां उपजे, तिहां प्रबल कषाय विषयादिक अशुद्धहेतुना योगे अढारे पापस्थानकसेवी, किवारें सातेनरकोंनेविषे जेवां जेवां कर्म बांधे तेवां तेवां कर्मानुसारे ते ते नरकमां जई उपजवुंथाय, एम यथाबंधी उपजे, तिहां नरक संबंधी आकराडुःख असंख्यकाल पर्यंत सहन करे, ते नरकडुःखना विपाक नव नावनादिक ग्रंथथी जाणवा.

अथवाकोई तो मनुष्यन्नवपामी घरकुटंबनी तीव्र मूर्छामां मूर्छितथको अज्ञान योगे परिणम्यो तो फरी तिर्यंचगति यावत् एकेंड्रिय चक्रमांपडे, वली ते दशापाम ता अनंतानंत काल व्यतिक्रमीजाय, तथा कोईमनुष्य विशिष्टज्ञानविना मूढचेतना वंत प्रकृतियें सरलथको सहेजे कषायनी मंदतायें मनुष्यपण थाय, तिहांवली का लपरिपाकविना अशुद्धकारणनी बहुलतानेयोगे मिथ्यात्वादिक अशुद्धहेतुनी पुष्ट तायें कर्मस्थिति उत्कृष्टिकरे, ते उत्कृष्टकर्मस्थिति लखियेंछयें ॥ गाथा ॥ मोहेको डाकोडी, सत्तरिवीसंचनामगोयाणं ॥ तीसायराणि चउन्नं, तित्तीसायराइ आ

वस्त ॥ २ ॥ अर्थ ॥ तेकर्मबंध बांधवाना चारहेतुछे, मिथ्यात्व अविरति कषाय अने योग, ए चारहेतुनी प्रबलतायें कर्मस्थिति उत्कृष्टी बांधेछे.

तिहां सर्वकर्मनो उत्पादकपोषक मोहनीय कर्म छे, जेम इंडाथी मुरगी अने मुरगीथी इंडुं तेम मोहनीयकर्मथी आठेकर्मबाधे, आठे मली मोहनीयकर्मनी पुष्टीकरे, माटे मोहनीयकर्मनी मुख्यताकही, मोहनीयकर्मने राजपदनी उपमाकही, ते मोहनीयकर्मनी अठ्यावीस प्रकृतिमा मिथ्यात्व मुख्य कर्मप्रकृतिछे, समस्त संसारमां सर्वजीवोने समस्त दुखनोहेतु एकमिथ्यात्वछे. ते मिथ्यात्वमोहनीय एकवारनुंबांध्युं उत्कृष्टो सित्तेरकोडाकोडी सागरोपमसुधी विपाकआपे, तेहनो विपाक अत्यंत मदिरापाननी घुमि सरिखोछे, जेम मदिरानुं पानकरनार पुरुष मित्रने शत्रुनी बुद्धियें मारवादोडे अने शत्रुने हसीहंसी मलवादोडे

तेम तीव्रमोहना उदयथी जीवने अजीवजाणे अने अजीवने जीवजाणे तथा धर्मने अधर्मजाणे, अधर्मने धर्मजाणे, मार्गने उन्मार्गजाणे, उन्मार्गने मार्गजाणे, साधुने असाधुजाणे, असाधुने साधुजाणे, मुक्तने अमुक्तजाणे, अमुक्तने मुक्तजाणे, ए दशप्रकारें मिथ्यात्व विपाक आपे.

तथा नामकर्म अने गोत्रकर्म एकवारनुंबांध्युं उत्कृष्टो वीसकोडाकोडी सागरोपम स्थितिरहे, ते नामकर्मनो विपाक चित्रकार सरिखो विचित्रपणे छे केमके जे वर्ण रहित गंधरहित स्पर्शरहित रूपरहित रसरहित अने समस्तदोष रहित, असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाण अखंड अनत ज्ञान दर्शन चारित्र स्वरूपी सघयण संस्थान रहित, एवा अरूपी आत्माने एकेंद्रिय बेंद्रिय कुरूपी सुरूपी गीगणो कुबडो कालो धोलो अतिमहोटो तो हजारयोजनप्रमाण अति सूक्ष्म तो वालनी अणीउपरें असख्यगोला गोलेगोले असख्य निगोद निगोदे निगोदे अनत जीव, इत्यादिक जीवने अन्याख्यान रूप विपाकआपे एवु ए नामकर्मछे.

गोत्रकर्मनो विपाक कुंभारना भांडा सरखो छे, केमके एजीव जगत् शिरोमणी सिद्धसमान जगतने वदनीय स्वरूपी छे, तेज जीवने चमार मातंग हलालखोर जेने कोई अडके नही कदापि अडके तो जलादिके स्नानकरी शुद्ध थाय, जो विष्टा चर्म हाडनुं भक्षण करनारो स्वान घरमां आवे, अथवा तेनो स्पर्श थाय तो तेनी कोई शंका न आणे, शोचपण न करे, अने पचेंद्रिय तेवली मनुष्य दश प्राणनो धारक तत्वातत्व सर्व उचित वस्तुनो जाण, सर्व मनुष्य जेहवो मनुष्य धर्माचरण करणी करवा समर्थ, तेहनुं दर्शन स्पर्श अथवा निकट रहेवानी कोई चाह

ना करेनही, तेथी तेने वस्ति बाहिर रहेवुं पडे, ए सर्व विपाक नीच गोत्रना जाण वा तथा उंच गोत्रना विपाक ते जे कोई जीव मूर्ख जड दुष्ट निर्धन निर्गुण कुरूपो कुत्सित होय, अने कुकर्मनो कर्त्ता होय, कर्म चंमाल होय, एवुं छता पण महोटा कुलमां अवतार लीधो होय, तो दोषे नखो पण लोकमां आदर सन्मान सत्कार पामे, जो अशुद्धाचरण देखी निंदा थाय, तोपण अवशर उपर तेहने सउ कोई तेडीने विनयकरे, जे ए महोटा छे, महोटा कुलना छे, ओलादीछे, केटलाक दोष ढाक्या जाय. इति गोत्र कर्मविपाक.

ज्ञानावरणी अने दर्शनावरणी तथा वेदनीय अने अंतराय एचारेकर्मनी स्थि ति एकवार बांध्या त्रीसकोडाकोडी सागरोपम पर्यंत विपाकआपे.

तेमां ज्ञानावरणीकर्म आंखनापांटा समानछे, जेने एकर्मनो तीव्रोदयहोय ते प्राणी कांईज जाणेनही, केमके जीवना सर्व आकाश तथा काल प्रमुख द्रव्यप र्यायथी अनंतगुणा ज्ञानगुणना पर्यायछे, ते सर्वपर्याय ए ज्ञानावरणीकर्मे आव र्याछे, एक अक्षरना अनंतपर्यायछे, तेमांहेलो एकपर्यायनुं ज्ञान निगोदिआ जीव ने उपजतांहोय, बाकी सर्वपर्यायनुं ज्ञान ढाक्युंछे, एक अक्षरनो अनंतमो नाग उ घाडोरहे, तेपण द्रव्यस्वनावेरहे, पण कर्मनी रायतिनथी, एक जीवद्रव्य ते बीजा स र्वद्रव्यना द्रव्य गुण पर्यायना त्रिकालिक उत्पाद व्ययनो एकसमयमां ज्ञायक चिदा नंदघनरूपी एहवुं चेतनराजछे. तेने ए ज्ञानावरणीकर्म जडरूप अतिगुप्तकरीनाखे, पण तेहना उपर कोईरीते अनुकंपाकरेनही, काष्टप्रायकरे, चेतनना मुख्य ज्ञानगुण ने आवरे, ए ज्ञानावरणीय कर्मना विपाक जाणवा.

दर्शनावरणीयकर्म वैत्रीसरिखुं दरवान दोढीदार सरिखुं छे, जेम राजाप्रसन्न थ योछतां दरवान खुसी नहोयतो ते अटकावी राखे, पण राजानी नेटकरवानआपे तेम एकर्मनो विपाक जे पूर्वोक्त स्वरूप जीवने अंधकरे, न्यूनइंद्रीय शून्यइंद्रीयकरे बधिर करे सर्व शुनकरणीआदरे, ते अवसरे सर्वघाती निद्रा आवी तेनो शुननिमित्त व्यर्थकरी नाखे, ए दर्शनावरणीय कर्मनो विपाक जाणवो.

वेदनीयकर्म मधुलिप्त तरवारनी धारा समानछे. तेमां मधुना आस्वाद सरिखी शातावेदनीयछे. अने जीन छेदायाना दुःख सरिखी अशाता वेदनीयछे. एकर्मना विपाक गर्नगतदुःख जन्मसमयना दुःख समस्त रोगोत्पत्तिनादुःख मरण समय नादुःख वियोगोदयनादुःख विषय अप्राप्तिनादुःख आठ महानयनादुःख शीतदुःख तापदुःख तथा तिर्यंचना नवमां वध बंधन नारवहन शकटवहन कृषिक्रियागत दुः

ख खासीक्रियाडु ख नासावेधडु ख क्षुधाडु ख प्यासाडु ख मृगयाडु ख असवारी नाडु ख दूरपथ गमनडु ख जातिवैरीनाडु ख धर्मबुद्धिये हनन समयना डु ख पिंजरामा पडवानाडु ख इत्यादिक अनेकडु ख तिर्यंचगतिमाछे, तथा नरकगतिमा क्षेत्रवेदना शरीरगत अनेक रोगजन्यडु ख परमाधामिकृतडु ख अन्योन्य प्रहरण प्रहार डु ख ए सर्वे अशातोदय वेदनीयना विपाकजाणवा, तथा शातावेदनीयोद यथी सर्वेप्सित खावा पीवानाभोग वली खेलवु स्त्रीविलास राग रंग सुख सच्या मान महत्व राजलीला कामनासिद्धि निरोगता इत्यादिक सर्वे शातावेदनीयना वि पाक छे एकर्म जीवना अव्याबाधगुणने बाधकरनारुंछे समस्त देव मनुष्यना त्रिकालिक पुद्गलिकसुख एकठाकरीने तुल्यनाकरिये तो सिद्धनासुखने अनंतमे भागे पण न आवे, एहवा सहजानंदी जीवने एकर्म शुभाशुभ पुद्गलपिंडमा रखडावे ए वेदनीयकर्मनो विपाककह्यो

अंतरायकर्म राजाना भंडारीशरिखुंछे. जेम राजा सुप्रसन्नथई कोईने द्रव्य आप वानो आदेशकरे, पण जो भंडारी अनुकूल न होय, तोकोईपण निमित्ते विलंबक रीआपे, धकाखवरावे, पण द्रव्य आपेनही, तेम ए कर्मनाविपाके दान शक्ति न पामे कदापि दानइछा न करे अने इछाकरेतो उलटो कोई एहवो विकल्पउठे के, जेथकी दानआपवानी बुद्धिज भूलीजाय, पण आपीशकेनही, तेमज लाभ मेलववाने अर्थे पण घणीज पोतानी बुद्धि केलवी चतुराईथी उद्यमकरे, सर्ववातें खबरदारीराखे, अने कार्यपण सवुखार्डमा आवे, जेथकी एवी आशा थायके आ उद्यममा रूडीप्रा प्ति अवश्यथशे तेथी हर्षवंत पण थाय एटलामा कोईलाभांतराय कर्मना उदयथी एहवा कारणो आवी बने के जेथकी लाभने ठेकाणे उलटो त्रोटोथईपडे, ते ला भांतराय कर्मनो विपाक जाणवो तेमज भोगांतरायकर्मना विपाके भोग न पामे,कदा पि पामे तो रोग शोग भयादिक कारणे भोगवी शकेनही एमज उपभोग वस्तुपण एना उदयथी न पामे, कदापिपामे तो तेनो कोईपण हरकतनेलीधे उपभोग करीशके नही, तेमज वीर्यांतरायना उदयथी शरीर निर्बलतापामे, अनेक औषध रसायन खाय तोपण उलटो कोई कुपथ्यादिकने योगे रोग थाय, दुर्बलतानी वृद्धि थाय, परवसादिकने योगे मननीहोंस मनमांसमें पण चिंतितकार्य करी शकेनही, एरीतें अंतरायकर्मनो विपाक जाणवो

आयुकर्मनी उत्कृष्टीस्थिति तेत्रीस सागरोपमनीछे, ते एक शुभायु बीजु अशु भायु ए बे प्रकारेछे, ए कर्म हेड शरिखुंछे, जेम ज्या लगण हेडमा पग प

ड्युंहोय त्यांलगण किहांपण जवाई शकायनही, तेम आयुकर्म बांध्यापछी गमे एटली धर्मकरणीकरे क्षायिक सम्यक्त्वादिक उपार्जे, तोपण बांधेलीगती अवश्य नो गववीपडे, पण छूटेनही, बीजा कर्मोनोउदय तोअपवर्त्तन संक्रमणादि करण योगे निःफलकरे, पण ए कर्मतो भोगव्याविना छूटेजनही, बीजा शुभाशुभकर्म उंच नी च परिणाम योगें दल वृद्धि हानीथाय, पण एकर्मतो यथाबंधें अवश्य भोगव्युंज जोय; जोपण नरकादिकना दुःखघणाय अनिष्ट लागे, तोपण छुटेनही, एरीते आयुकर्मनो विपाक जाणवो.

एरीतें आठेकर्मनी प्रकृति स्थिति रस अने प्रदेशबंधना परवशपणे अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्त थया जन्ममरणादिरूप, भीषण कांतारमां भम्यो, एम भमतां भमतां कोईकवारें दुर्लभ मनुष्यभवादि सामग्रीयोग मल्यो, पण मिथ्यात्वनी प्रबलता हे तुयें अथवा पांचकारणना परिपाकविना किहांपण सम्यक्त्वनी प्राप्ति नथई, केवल भवपूर्णथयो इहां प्रसंगे योगबिंदुग्रंथमां कहेली सम्यक्त्व प्राप्तिनी शैली लखियेंछइयेः-

जे भव्यजीवछे तेने भव्यताना उदयेंकरी अकाम निर्जरायें कर्मखपावतां पांच कारणनी अनुकूलतायेंकरी बे पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहे, तेवारें धर्मशब्द सामा न्ये सद्दहे, जे धर्मशब्द शांभलवा सन्मुख निर्विवेकपणेहोय तेने श्रवणसन्मुखी भा वकहियें, पण तथाविध आदरपीपासाकांईहोयनही पण सहज मिलेतो विमुखनही.

पछे तिहांथी संसार परिभ्रमणकरतो जीव उच्च भावमां आवे, तेवारें दोढपुद्ग ल परावर्त्तरहे मार्गगवेषणा मार्गश्रवण मार्गसन्मुख मार्गानुसारी मार्गप्राप्ति इत्यादि कनाम इहांथी आगेंथाय, धर्मभणीधसे जिनोक्तमार्गनुं श्रवणहोय कोइकरीतें रुचि थाय पण तीव्रभावें गवेषणानहोय, एने मार्गपतित कहियें, एटले मार्गेपड्यो कोइ भवें एवीरुचीथईपमी, संसारपरिभ्रमणकरतां एकपुद्गल परावर्त्तरहे तेवारें जिनमा र्गानुसारीपणुं शुद्धाशुद्धनी गवेषणामात्रहोय, एरीतेकरतां इहां धर्मयौवनकालआ वे न्यायसंपन्न विभवप्रमुख पांत्रीसगुणपामे, मित्रादिकदृष्टी पामवानो अवशर होय, एहने मार्गानुसारी कहियें, इहां षटदर्शननी भिन्नताजाणे, जिनोक्तमार्गें व्यव हारें प्रवर्त्ते, इहांथी मिथ्यात्वमंदपड्युं, तेथी व्यवहारें द्रव्यधर्मपणपामे, पण सम्यक्त्व प्राप्ति न थाय, इहां पहेला त्रण अनुष्टाननी प्रबलता होय, सर्वक्रियाकरे तेदेखी बी जा अनेकजीव धर्मपामे, पण पोताने नहोय तेक्रियानुंफल स्वर्गादिकथाय, पण नि र्जरा अर्थे नथाय ॥ २ ॥ इतिद्वितीय गाथार्थ

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपायकहेछे —

पल्लोवलमाइअद्दा, पवत्तिकरणेणकोविजइकुणई ॥
पलिआ असखन्नागुण, कोमिकोमि अरठिइ सेसं॥ ३ ॥

अर्थ ॥ इहा चरम पुद्गलपरावर्तमा मिथ्यात्वनी मंदताथाय तिवारें सम्यक्त्व पामवाना कारण त्रण करणछे, तेनानाम एक यथाप्रवृत्ति बीजोअपूर्व त्रीजोअनिवृत्ति, तेमा इहाप्रथमकरणनो अवसरछे तेकहेछे, ए सम्यक्त्वगुण पामता सुधीमा सर्वसाधारण आठ दृष्टांतकह्याछे तेमा यथाप्रवृत्तिकरणकरतां बे दृष्टांतलागे ते दृष्टांतनी आवश्यकोक्त गाथा लिखुंछुं

"पल्लयगिरि सरिउवला, पिवीलिआ पुरिसपह जरगहीआ ॥कोद्दव जल वत्थाणिअ सामाइयलाभदिट्ठंता ॥ १ ॥ एगाथानोअर्थकहेछे एक पालानुंदृष्टांत, बीजु पर्वतथी नदिप्रपातस्थानेरहेला पाषाणनु दृष्टांत, त्रीजु पीपीलिका ते कीमीनुंदृष्टांत, चोथु त्रणपथीपुरुषनुं दृष्टांत पाचमु ज्वरग्रहीतनुं दृष्टांत, छठु मदनकोद्रवनुं दृष्टांत, सातमुं मलिनजल दृष्टांत, आठमुं समलवस्त्रदृष्टांत, ए आठ दृष्टांत सर्व सम्यक्त्वनो लाभ थतासुधीमा लागे, ते यथा स्थानके लखीसु, पण इहातो यथा प्रवृत्तिकरणे बे दृष्टांतलागेछे ते कहिये छैये

तिहा सम्यक्त्वपामता करण त्रणछे १ यथाप्रवृत्तिकरण २ अपूर्वकरण ३ अनिवृत्तिकरण, तेमा यथाप्रवृत्तिते 'अनतिक्रम्यकरोतीति' यथाप्रवृत्ति, ए व्युत्पत्तिनो अर्थ —यथाके० जेम अनादिनी चालछे तेमनीतेम प्रवृत्तिनुं करणके० जीवपरिणामनुं प्रवर्तनछे जिहां, तेने यथाप्रवृत्तिकरणकहिये, एटले अनादिनुजे चाल परिणामछे ते प्रवर्तन फरयुनथी, अनादिचालें प्रवर्तेछे पण कारणपरिपाकना जोरथी मिथ्यात्वनी मदताथाय, तेथी पालाने दृष्टांते जेम पूर्वे भर्यो धाननोपालो तेमा थोडुंथाननाखियें अने घणु धानकाढीये तेवारें तेपालो कालांतरे खालीथाय तेम कर्मरूप धानेकरी समस्त आत्मप्रदेशरुप पालोभर्योछे तेपालो जीवने अनाभोगथी एटले इछाविना सहजें अकामनिर्जराथी छेदनभेदनादिकथी अशुभविपाकावशरें मिथ्यात्व तथा अनतानुबधी कषायनी मदतानायोगें कर्मविपाके बहु व्यापकर्न होय तेवारे कष्टमाफक निर्जराथवीथाय, अने मिथ्यात्व कषायनी मदता माटे नवाकर्मपण घणाबांधेनही, मदवीर्यमाटे प्रदेशरस पण थोडुग्रहणकरे एटले घणी निर्जरा थाय अने बध अल्पथाय तेथी कर्मस्थिति रूपधान्यनु पालो घटाडे.

तथा बीजुं दृष्टांत नदीना पाषाणनुं, जेम पर्वतथी नदीधारापडे तिहां नीचेरहे लुं पाषाण तेनउपरनी जलधारा पडवाथी अरहां परहां घोलाय अथडाय, ते पाषाण घोलना घंचनाना योगें घसाईने घोलघाटमांआवे, फरसमां सुहालोथाय, एरीते सहेज स्वनावेकोईक घाटमांआवे पण कोइए एनो विचारपूर्वक घाट कर्योनथी.

तेम जीवते पाषाणरूप, नदीप्रवाह ते कर्मोदय प्रवाहें पचतो अकाम निर्जराथी पूर्वोक्तन्यायें निर्जरायेंकरी कोइक धर्मप्रवृत्तियोग्य घाटमांआवे. (आकारमांआवे) ए बेदृष्टांतेकरी एकआयुकर्मवर्जिने बाकीसातेकर्मनी उत्कृष्टिस्थितियोग्य बंधपरिणामने घटाडे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण निर्जरे, तेवारें सित्तेरकोडाकोडी मिथ्यात्व बांधतोहतो ते परिणाम टलीने पल्योपमने असंख्यातमें नागें न्यून एक कोमाकोडीनी स्थित्तिबंधना परिणाम राखे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण सर्व स्थिति घटीने एक कोमाकोडीनी स्थिति सेपरहे. एरीतें एक आयुकर्मनी मूकी बाकी साते कर्मनी स्थितिघटामीनाखे एटले त्रीसकोमाकोमी स्थितिवाला कर्मोमांनी ओगणत्रीस कोडाकोडि घटाडी पल्योपमने असंख्यातमेंनागें न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम राखे, ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अने अंतराय ए चार कर्मनी एटली स्थितिराखे, तथा नाम अने गोत्र ए बेकर्मनी उत्कृष्टी वीसकोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिमांथी ओगणीस कोडाकीडीघटाडीने पल्योपमने असंख्यातमें नागें न्यून एक कोडाकोडिराखे, एटलासुधी जे जीवना परिणामनी योग्यताथयी एनुं नाम यथाप्रवृत्तिकरण कहियें; ए करण जीव संसारमां नमतां नमतां अनंतिवार करे, पल्योपमने असंख्यातमेंनागे उंगी एककोडाकोडी सागरोपमनी शातकर्मनी सेषस्थितिरही तिहांसुधी यथाप्रवृत्तिकरण कहियें, आगलें ग्रंथीदेशआव्यो खरो पण ए करणयोग्य परिणामे आगल न जवाय इति प्रथमकरण.

बीजुं अपूर्वकरण ते जे पहेला संसार परिभ्रमण करता कदापि एवुं, करण जे जीवपरिणाम विशेष ते पाम्योनथी माटे अपूर्वकरण कहियें; ए अपूर्वकरण परिणामें घन निबड रागद्वेष परिणतीमयी जे ग्रंथी तेने नेदवामांमे, जे नेदे तेह अध्यवसायने अपूर्वकरण कहियें.

त्रीजुं अनिवृत्तिकरण ते जे अध्यवसाय फल प्राप्तिविनानिवर्त्ते पडेनही, एटले पूर्वें आव्योजे अपूर्वकरणरूप परिणाम ते पाछो जायनही तेने अनिवृत्तिकरण कहियें, ते अनिवृत्तिकरणरूप परिणामेकरी जीव सम्यक्त्व पामे ते त्रीजुंकरण इहां ए त्रण करणनो सांखआपवाने कल्पनाष्यनी गाथा लिखेछे "अंतिमकोडा

कोडी, सवंकम्माण आउवझाणं ॥ पलियाअसखिज्जइ, नागेखीणेहवइगंठी ॥ १ ॥ गंठित्तिसुडप्भेउ, करकडघणरूढमूढगठीव ॥ जीवस्सकम्मजणिउ, घणरागदोसपरिणामो ॥ २ ॥ जागठीतापढम, गठीसमइछ्ठउनवेवीय ॥अनियट्टी करणपुण, सम्मत्तपुरक्कडे जीवे ॥ ३ ॥ ए त्रणगाथानो अर्थ लेशमात्र लखियेछे.

आयुवर्जीने सातेकर्मनी अंतिम के० रहेली कोडाकोडिस्थिति पल्योपमने असख्यातमेंनागे न्यूनरहे बाकीसर्वखपीजाय एहवे इहा गठी कठणस्थानकछे ॥ १ ॥ गंठीकहेवीछे सुडप्भेउ के० अत्यतडुखें नेदवायोग्य कर्कश वक्र गूढ गुप्त कोइ खदिराटि कठीण काष्टनागांठनीपरे जेवीतेवीरीतें नेदाय छेदायनही ए उपमाये अनादिनु जीवने कर्मजनित घन के० निवड राग द्वेष परिणति सचयरूप ग्रंथी ते वज्रवत् डुर्नेद्यछे ॥ २ ॥ जिहांगंठीछे तिहांसुधीआवे तेने पढम के० प्रथम यथाप्रवृत्तिकरण होय, पछी गंठीसमइछ्ठउ के० ग्रंथी समर्थनकरतां साम्यर्थवतथई ग्रंथी नेदता बीजु अपूर्वकरण होय, तथा पुण के० वली अनियटीकरण के० अनिवृत्तिकरण ते सम्मत्तपुरक्कडे के० सम्यक्त्व अवश्यप्राप्त नव्यपणे आगलकर्युं जेणे जीवे, एटले सम्यक्त्व अवश्यपामवु जेना मुखआगल रह्युंछे तेजीवने त्रीजुंकरण होय॥३॥

एरीतें धाननोपालो तथा नदीनुपछर ए बे दृष्टातें कोइकजीवे यथाप्रवृत्तिकरणें पल्योपमने असख्यातमेनागे न्यून एककोडाकोडि सागरोपमनी सातेकर्मनी शेप स्थिति कीधी, एटले सम्यक्त्व प्राप्तिनो निश्रेंथयो एरीते शिप्यबोल्यो तेवारे गुरुकहेछे इहां सम्यक्त्व प्राप्तिनुं निश्रेंघयोनथी ते गाथाये करीकहेछे

तछविगठीघणराग दोसपरिणइमयं अभिहितो ॥
गंठियजीवो विहहा, नखहइ तुह दंसण नाह ॥ ४ ॥

अर्थ – तछविके० तिहांपण काइकउणी एककोडाकोडी स्थिति शेप सातकर्मनी कीधी तोपण अनव्य अथवा डुर्नव्यत्वादिक दूपण ने लीधे हाहाइतिखेदे रागद्वेषपरिणाममईग्रथीदेशगत जीवपण ग्रथीने अणनेदतोथको हे नाथ ताहरुं दर्शनजे श्रीमुखे कहेलु सम्यक्त्वते पामीशकेनही? केमके ए यथाप्रवृत्ति करणछुधीतो अनव्यपण आवे एवु आवश्यक वृत्तिमा कह्युंछे के अनव्यपण कोइक अकामनिर्जराकरतो ग्रंथीदेशसुधीआवे तिहां अरिहतनी ऋद्धीदेखीने अथवा अन्यकोई पुजलीकऋद्धीनी इछायें प्रवर्त्तमानथको चारित्रलीये तिहांमात्र श्रुतसामायकनो लान्न तेने होय, पण शेप दर्शन सामायिकादिक पामेनही, एम ससारमा नमताथका ः व्यव

हार राशियाजीवप्रायें जिहांसुधी चरमावर्त चरमकरण न पामे तिहांसुधी अनंतिवार ग्रंथीदेशसुधीआवी पाठापडे ॥ ४ ॥ इतिचतुर्थगाथार्थ.

हवे जीव जे रीतें ग्रंथीनेदे ते रीत कहेछेः—

पहिलिय पविलिय नाएण, कोविपज्जत्त सन्निपंचिंदी॥
नवो अवड्ढपुग्गल, परियट्टवसेस संसारो ॥ ५ ॥

अर्थः—पहिलियपिविलियनाएणके० इहां ग्रंथीदेशपाम्यापठी कोइकजीव अपूर्वकरणकरे ते पंथीजे वाटमार्गु तथा पिपिलीकाजे कीडी तेने नायण के० न्यायें दृष्टांतेंकरे तेदृष्टांत देखाडवाने नाष्यनी गाथाउ लिखुंछुं.

जहइहतिन्निमणुस्सा, जंतडविपहंसहावगमणेणं ॥ कालाइक्कमनीया, तुरंतिपत्तायदोचोरा ॥ १ ॥ दहुंमग्गतडछे, तेएगोमग्गउपडिनियत्तो ॥ बीउगहियोतइउ, समइक्कंतोपुरंपत्तो ॥ २ ॥ अडवीनवोमणुस्सा, जीवोकम्मट्ठिईपहोदीहो ॥ गंठीयनयठाणं, रागदोसायदोचोरा ॥ ३ ॥ नग्गोठिइपरिवुढ्ढी, गहियोपुणगंठिउगउतइउ ॥ समत्तपुरंएवं, जोइज्जा तिन्निकरणाइ ॥ ४॥ खिईसहावियगमणं, थाणूसरणं तउसमुप्पयणं ॥ ठाणंथाणुसिरेवा उहरणंवामुअंगीणं ॥ ५ ॥ खिइगमणंपिवपढमं ॥ थाणूसरणंचकरणमप्पुव्वं ॥ उप्पयणंपिवतत्तो, जीवाणंकरणमनियट्टिं ॥ ६ ॥ थाणुव्वगंठिदेसो, गंठियसत्तस्सतब्बठाणं ॥ उसरणंपिवतत्तो, पुणोविकम्मठिइविवड्ढि ॥ ७ ॥

हवे ए सातगाथानो अर्थ किंचितमात्र लिखुंछुं जहइह के० जेमइहां कोइक तिन्निमणुस्सा के० त्रणमनुष्यछे, ते सहावगमणेणं के० स्वनावगमनेकरी सहेजे निःप्रयोजने जंतिपहं के० अटवीपंथेंजायछे ते जातांजातां घणी अटवी उलंघीगया पछी कालाइक्कमनीया के० कालअतिक्रमवेकरी नयपाम्या, एटले असूरवखतें अटवीनो पंथ तेथी मरवालागा, एटलामां तुरंति के० तुरत पत्तायदोचोरा के० बेचोर आवी लागा. ॥ १ ॥ पछी ते त्रणमनुष्यें दहुंमग्गतडछे के० मार्गनेतडे एटले मार्गनेमुखें ढुकडा बे चोरोदेखीने ते के० ते त्रणमांथी एगोमग्गाउ के० एकतो मार्गथकी पाछो निवर्त्यो, एटले पाछोनासीगयो तथा बीउगहियो के० बीजानेतो ते चोरलोकोये ग्रहणकीधो एटले पकडीलीधो, अने तइयोसमइक्कंतो के० त्रीजोमनुष्यतो चोरोने सम्यक्प्रकारें अतिक्रम्यो, एटले पोतानुं बलवीर्यफोरवी चोरोने हतप्रहतकरी पुरंपत्तो के० पुरप्रतेपहोतो एटले इछितस्थानके निर्नयपणे पहोतो ॥२॥ ए दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिमां उपनयनावे उतारेछेः—

अडविन्नवो के० नवन्नमणरूप तो अटवीकहियें, तेमा मणुस्साजीवो के० म नुष्य ते त्रण उत्कृष्ट जातना ससारी जीव कहिये, अने कम्मठिईपहोदीहो के० कर्मस्थितिते महोटो दीर्घ मार्गकहियें, तथा गठियनयहाण के० ग्रंथीदेश ते नयनुं स्थानक कहियें, वली रागदोसायदोचोरा के० राग अने द्वेपरूप वे चोरजाणवा ॥ ३ ॥ तेत्रणमाथी डुर्नव्य अथवा अनव्यजीव तेतो नग्गो के० पाठो नागो (नासीगयो) तथा अचरमकरणी अथवा अपरिपक्व कारणीतो ग्रंथीदेशेंजरह्यो, इहा ग्रंथीदेशे नव्य अथवा अनव्य उत्कृष्टो संख्यात असंख्यात कालसुधीरहे पढी नव्यने शेष अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त संसाररह्योहोयतो ग्रंथीनेदे अधिक ससारीपाठोफिरे इहां ग्रंथीदेशें नव्य अथवा अनव्य रह्याथका ड्व्यश्रुत निन्न दशपूर्वसुधी पामे ड्व्यचारित्रपामे

अनव्य पूर्वश्रुत न पामें, केटलाक ग्रंथोने अनुसारें तथा वृद्ध परपरायेंपण अनव्यने पूर्वश्रुत न होय, तथा कोइक ग्रथने अनुसारे लब्धिदशपूर्वसपूर्णने पूर्वलब्धिक हियें, ते अनव्यने न होय पण शेपहोय, पढी बहुश्रुतकहेतेखरु पुरेपुरा दशपूर्व तथा अधिक यावत् चउदपूर्वसुधि जे नणे ते नियमा सम्यक्त्वीहोय केमके कल्प नाष्यमा कह्युठे यत चउदस दसय अनिन्ने, नियमासम्मत्तसेसएनयणा ॥ इति तेमाटे उत्कट कारणयोगे वीजो पुरुपतो ग्रंथीदेशेज टकीरह्यो, तथा त्रीजो चरम करणी प्राप्त नव्य सम्यक्त्ववत वीर्योल्लासवधते राग द्वेप परिणतिरूप ग्रंथीनेदी ने सम्यक्दर्शन रुप नगरेंज पहोचे एम त्रणेकरणनो उपनय जोईश्रा के० जोडवो॥४॥

हवे त्रणगाथायें पीपीलिकानु दृष्टात समजावेठे – खिइसहाव के० जेमक्षिति जे पृथ्वी तेनाउपरे सहजस्वनावें कीमीफिरेठे गमनकरेठे पण तेमा कोइनी प्रेरणानथी, हवे तेमा एक कीडीतो फरती फरती थाणुजे खीलो अथवा नीतप्रमुख तिहासुधी आविने वली पाठीफरीजाय, तथा कोइक कीडीतो थाणुजे खीलो नीतते उपरे चढवामाटे तेचढीने थाणुना उपर वेसी रहे, तथा वली कोइक कीडी थाणु उपरे चढीने उडीजाय, तथा कोइक कीडी खिलाथी अथवच पाठीउतरे ए मूइअगीण के० मृदगीजे कीडी तेनु दृष्टात जाणवुं ॥ ५ ॥

हवे एनो उपनय उपमान देखाडेठे, खिइगमणके० क्षितिगमन एटले कीडीनुं पृथवी उपर फरवु खीलाना मूलसुधी आववु ते पढमंके० प्रथमना यथा प्रवृत्तिकरण सरिखुंठे, तथा कोइक कीडी थाणुलरणचके० खीलेचढी ते सरिखुं वीजुं

मपुव्वंके० अपूर्वकरणछे, तथा कोइक कीडी खीलेचढीने तेखीलाथी उपयणंके० उ डीगई ते सरिखुं जीवने त्रीजुं अनिवृत्तिकरण कहियें ॥ ६ ॥

थाणुंवगंठिदेसोके० थाणुंजे खीलो तिहांज टकीरहेवुं ते ग्रंथीदेशें रहेवुं एटले गंठीयसत्तस्सतब्भवठाणंके० ग्रंथीगतजीवनुं कोइकालसुधी तिहां रहेवुंहोय, ते सरिखुंछे, तथा उसरणंपिवतत्तोके० ते खीलारूप गंठीदेशथी ओसरे एटले पाछुफिरे ते पुणोवि के० फरी कर्म्मस्थितिनी वृद्धिकरे फरी उत्कृष्टी कर्मस्थितिवधारे ॥ ७ ॥

ए सातगाथायें बे दृष्टांतकह्या तेणेकरी कोइ संज्ञीपर्यासो पंचेंद्री नव्यजीव मुक्तिजावा योग्यहोय, जेने अवड्ढपुग्गलपरियट्ट के० अर्द्धमात्र पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार बाकी रह्यो होय, एहवो एटले लक्षणेपूरण जे जीव होय ते जीव जे करे ते आगली गाथायें कहेछे ॥ ५ ॥ इति पंचमगाथार्थ.

अपुव्वकरणमुग्गर, घायविहिय दुठ्ठगंठिनेउसो ॥
अंतमुहुत्तेणगउ, नियट्टिकरणे वि सुज्झंतो ॥ ६ ॥

अर्थः– हवेपूर्वोक्त लक्षणवंत जीव ते ग्रंथीदेशसुधीआवे, तिहां परिणाम निर्मलतानी वृद्धिहोय ते कहेछे, अपुव्वके० पूर्वेकोइवारें पाम्योनहो, एहवुंजे परिणाम तेने अपूर्वकरण कहियें, ते अपूर्वकरण कहेवुंछे जे निबड आकरी अत्यंतकठिण एवी पूर्वोक्तरूपजे ग्रंथी तेने नेदवाने मुग्गरके० वज्र सरिखुं छे तेने घायके० घायेंकरीने विहियके० विहित एटले कस्योछे दुष्टग्रंथीनुं नेदजेणे, सोके० तथानूत ते जीव प्रतिक्षणे विशुद्धमान परिणामनी निर्मलता वधते थके अंतर मुहूर्त मात्रमां पूर्वोक्त अनीवृत्ति करणेगयो एटले ग्रंथीनेदकरतां अंतर मूहूर्तलागे तिहां चढते परिणामें ग्रंथीनेदकरी अनिवृत्तिकरणे जाय, इहां अपूर्वकरणनी विशुद्धता थकी अनिवृत्तिकरणनी निर्मलता वशुंद्धतरछे, माटे अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणनी निन्नता थई ॥ ६ ॥ इतिषष्टिगाथार्थ.

हवे ते अनिवृत्तिकरणे गयोथको जीव जे करे ते कहेछे

सो तछरणे सुहभोव, वयरी जय जणियपरमआनंदं ॥
सम्मत्तंलहइजीवो, सामन्नेणं तुह पसाया ॥ ७ ॥

अर्थः– ॥ सोतछके० तेजीवने तिहां अनिवृत्तिकरणे अती विशुद्ध परिणामना जोरथी मिथ्यात्व मोहनीयना पुंजनीस्थिति बे थाय, तेमां पहेली स्थिति अंतरमुहूर्तवेद्य एटले एक अंतरमुहूर्तमां खपीजाय, एटली स्थितिना मिथ्यात्व मो

हनीय नामा कर्मनादलीया ते महोटीस्थितिजे कोडाकोडी सागरोपममा पल्योप मना असख्यातमा नागे न्यूनछे ते स्थितिमाथी नजीकखेचीले, एटले वीजी पल्यो पमने असंख्यातमेंनागे न्यून एककोडाकोडी सागरोपम प्रमाणहती तेमाथी अ तर मूहुर्तप्रमाण वेद्य नीची खेंचीने जूदीकीधी, वाकी शेपरही तेनु महोटो पुज अजगोराख्यो एटले न्हानीस्थिति तथा महोटीस्थितिने वचमा आतरोपडयो ते वारे ए बेहुस्थितिनी वचमा जे खाली जगारही तेनेअतरकरणकहिये एम इंहा अनिवृत्तिकरणना जोरथी अंतरकरण करे.

अने प्रथम स्थितिगत दलियाने अतरमूहूर्तमां खेपवे अने महोटीस्थितिमांथी आवता दलियाने उपशमावे विष्कंनित उदयकरे अंतरमुहूर्त उदयनआवे एवाकरे एटले अनिवृत्तिकरणे वे कार्यकरे एकतो मिथ्यात्वस्थितिना वेनागकरी अंतर करणकरे अने वीजु अंतरमुहूर्तवेद्य प्रथम लघुस्थितिने खपावे एटले अनिवृत्तिकर णनो कालपूरोथाय तेवारे आगल अंतरकरणमा धसे दोडे जाय प्रवेशकरे, तेवारे तिहां अतरकरणने प्रथमसमये हेनाथ तमारे प्रसादे क्षायिकादिकनीपरें विशिष्टतो नही पण सामान्यपणे अल्पकालीन उपशमनासा समकितपामें, ते सीरीतेपामे ते नी उपमाकहेछे,रणेसुहमोववेरि जयजणियपरमआणदके० जेमसुनटहोय ते रणने विपे वैरीने जीतवाथी परमानदपामे, तेम अनादिनाजे राग द्वेषरूप महोटाशत्रु तज्ज नित गुरुकर्मस्थित्यादि अनतानुवधिया चार वैरीने जीतवाथी परमानद सरिखुं स म्यक्त्व जीवपामे यडुक्तं आवश्यकादिग्रंथे

पावति खवेऊण, कम्माइ अहा पवत्ति करणेण ॥ उवलनाएण कहमवि, अ निन्नपुवि तउगवि ॥ १ ॥ तंगिरिवरंच नेतु, अपुवकरणुग्गवज्जधाराए ॥ अंतोमुहु त्तकाल, गतुमनियट्टिकरणमि ॥ २ ॥ पइसमयंसुझतो, खविउ कम्माइ तछवढुआ ६ ॥ मिछतं मिवईणो, खीणेणुइयमिउवसंते ॥ ३ ॥ ससारगिम्मतवियो ॥ तत्तोगो सीसचदणरसोव, अईपरमनिवुइकर, तस्सतेलहइसम्मत्त ॥ ४ ॥

हवे ए चारगाथाओनो अर्थ लिखेछे अनादिकालनुं ससारचक्रमा नमतोथको जीव पावतिके० पामे, मिथ्यात्वमोहनीयादिक कम्माइके० कर्मोने खवेऊणके०ख पावीने ते अहापवत्ति करेऊणके० यथाप्रवृत्तिकरणेकरीने कर्मो खेपवे, तेनुंदृष्टांत उवलनाएणके० उपलजे पूर्वोक्त नदीना प्रवाहनो पासाण, तेना दृष्टातेखेपवे, प ठी अनिन्नपुविके० पूर्वकोइवारें नेदीनथी एवीजे रागद्वेष परिणतिमई मिथ्यात्वग्रथी तं के० ते ग्रंथीने शीरीतेनेदे के गिरिवरंके० गिरवरजे पर्वतते नेतु के० नेदवाने जेम व

ज्र बलवानछे, तेम अपूर्वकरण परिणामरूप उग्र वज्रधारायें करीने जीव ग्रंथी नै दतो अंतर मुहूर्तकालमां अनिवृत्तिकरणेगयो, पछीते अनिवृत्तिकरणे गयोथको शुं करे तेआगली गाथायें कहेछे ॥ २ ॥

पइसमयंके० प्रतिसमये एटले समय समयप्रते विशुद्धमान परिणामिथको ति हां बहुलाकर्मोने खेपवे, तेवखते जे मिथ्यात्वना दलियां उदयआव्या, तेने क्षयकरे अने जे उदय न आव्या उदयाभिमुख न थया ते दलियाने उपशमावे, एटले उदी रणादिक करणबलें पण विपाकोदय अथवा प्रदेशोदय जे थईशकेनही तेने उपश माव्या कहियें, एम इहां अनिवृत्तिकरणे केटलाक मिथ्यात्वना दलियाखेपव्या, अने केट लाक उपशमाव्या, अने मिथ्यात्व स्थितिना बे भागकरी विचमां अंतरकरण कर्युं ॥ ३॥ हवे ते अंतरकरण करतां जे थयुं ते आगली गाथायें कहेछे.

संसारगिम्मके० जेम कोईक पंथी जन ग्रीष्मकालमां मध्यान समये निर्जलव नमां सूर्यनापडेला किरणने परितापें पडेला लूना अजडतापेकरी अतिव्याकुल थयो होय, तेने कोई शीतल स्थानकमले वली तिहांकोई बावनाचंदननुं रसछांटे तेवारे ते पंथी सातापामे केवो आनंदमग्न होय.

तेम इहां भव्यजीव रूप पंथी अनादिकालनुं संसाररूप उग्र गीष्म कालें जन्म मरणादिकरूप निर्जलवनमां कषायरूप उग्रतापे पीड्यो रोगशोगादिरूप लू अजड एटले सुख तेणेकरी असुज्यो (दग्धथयेलुं) अने तृष्णारूप महोटी पीपासा ते णेकरी पराभव्यो थको एवो भव्यपंथी ते अनिवृत्तिकरणरूप शुद्ध शरलमार्ग पा मि दूरथी अंतरकरणरूप शीतलस्थानकदेखी हर्षवंतथको धसीतिहां पहोतो, एटले गोशीर्षजे बावनाचंदन तेहनोजे रस तेहनीपरें शीतल अईपरमके० अतिशय परम उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरण परम सुखसाताकरण एहवुं तस्संतेके० ते अनिवृत्तिकरणने अंते अने अंतरकरणने प्रथमसमये घनसारवत् शीतल सम्यक्त्वपामे तेवारें अनंतानुं बंधी तथा मिथ्यात्वकृत परिताप सर्व मटीजाय गाढ तृष्णा पीपासा मटीजाय॥४॥

इहां अनादिकालनुं परमशत्रु परम दुःखदातारूप एहवा मिथ्यात्वनुं दुःख अं तर मुहूर्त्तसुधी दफेथाय (दूरथाय) अनादिनो प्रथम दुखांत इहांथयो इहां सि द्धांत सैलीमां कालनिष्टायें गुणदोष प्राप्ति तथा विरह आश्री चारभांगा कह्यांछे तेना नामकहेछे १ अनादिअनंत २ अनादिसांत ३ सादिसांत ४ सादिअनंत

ए चारभांगानुं अर्थकहेछे जेने मिथ्यात्वादिक अनादिनुंछे अने ते किवारें मट से पण नही एवा अभव्यादिकने अनादिअनंत प्रथमभांगोछे अने जे भव्यजीवें

प्रथम सम्यक्त्वपाम्युं तेवारे ते जीवे अनादिना मिथ्यात्वनुं अतआण्युं तेमाटे तेने अनादिसांत बीजोनांगो जाणवो, तथा जे जीव सम्यक्त्वपामी वली सम्यक्त्व वमन करी मिथ्यात्वें गया तेवारे मिथ्यात्वनी आदियथी, पठी केटलोक काल मिथ्यात्वे रही वली शुनसामग्रीना योगथी फरी सम्यक्त्व पाम्यो तेवारे मिथ्यात्वनो अंतथयो ए त्रीजो सादिसांतनामा नागोथयो, तथा चोथो सादिअनंतनामा नांगो तेक्षायिक सम्यक्त्वादि क्षायकनावें जेने जे गुण प्रगट थया तेगुण तेने होय पण मिथ्यात्वीने न होय, केमके ग्रंथी नेद कस्यापठी जे मिथ्यात्व होय, ते तो सादिसांत नांगे ज होय, माटे जेने सम्यक्त्वादिक क्षायकगुण प्रगटथ्या ते सादि, अने ते गुणआव्या जाय नही ते अनंत, एटले नव्य मिथ्यात्वीने त्रणे नागाहोय, अने अनव्य मिथ्यात्वीने एकज अनादिअनंत नागोहोय, यडुक्त —मिछत्तमनवाण, तमणाइमणंत येमुणेयवं॥नवाण तमणाइ, सपय्यवसियतु सम्मत्ते॥१॥अर्थ.—अनव्यने मिथ्यात्व अनादि अनंत नांगेहोय, अने नव्यने अनादि सपर्यवसित नागे मिथ्यात्वहोय इति॥१॥७॥

हवे सम्यक्त्व केटले नेदेंहोय ते आगमनी गाथाये कहेठे —

तचेगविहडुविह, तिविह तह चउविहच पचविहं ॥
तठेगविह जंतुह, पणीय नावे सु तत्तरुई ॥ ८ ॥

अर्थ —एक प्रकारे बे प्रकारे त्रण प्रकारे चारप्रकारें अने पाच प्रकारे पण आगममा सम्यक्त्व कह्युंठे, ते नेदोना स्वरूप विवरीने कहेठे —तठेगविहके० तिहा एकविध सम्यक्त्व ते जके० जे हे परमेश्वर तुहके० ताहरा पणियके० प्रकास्या जे जीवादिकनाव पदार्थ तेनेविषे तत्वरुचिहोय अर्थात् परमार्थ बुद्धिहोय, शकल दोषरहित अने शकलगुणे संपन्न एहवा अरिहंतदेवे नाष्युजे तत्वते सत्यठे एहवी रुचि परमार्थबुद्धि, तद्रूप आगममां कह्युठे 'तमेवसच्चनिस्संक जजिणेहिंपवेइय' इत्यादि रुचिरूप, यडुक्तं योग शास्त्रे —रुचिजिनोक्ततत्वेषु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते जायतेतन्निसर्गेण गुरोरधिगमेनय १

ए उपला श्लोकनो अर्थ करेठे —श्री जिनेश्वर नाषित जीवाजीवादिक तत्वनेविषे जे सम्यक्श्रद्धान के० निश्चल प्रतीत तेने तत्वरुचि कहिये, ते तत्वरुचि श्रद्धान मिथ्यात्वदलना रसनी मंदतायें जातिस्मरणादिक निमित्तें ईहापोह करता करता सहेजे पोतानीमेलें तत्वश्रद्धान पामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहेवाय, अथवा शुनगुरुनी उपाशना करता सिद्धांतवाणी सानलता जे पामे ते उपदेसिक श्रद्धान कहियें ॥ १ ॥ इत्यादिक लक्षण जे तत्वरुचि ते एकविध सम्यक्त्व कहियें ॥ ८ ॥

हवे द्विविध सम्यक्त्व त्रणप्रकारें कहेछेः—

उविहंतु दव्व नावा, निछय ववहारठवि अहवावि ॥
निस्सग्गुवएसाठ, तुहवयण विऊहिंनिहिठं ॥ ए ॥

अर्थः— हे जिनेश्वर ताहरा नाष्यांजे द्वादशांग तेना जाण एहवाजे प्रवीण पुरुष तेणे एक द्रव्य सम्यक्त्व अने बीजुं नाव सम्यक्त्व ए बेप्रकारें सम्यक्त्व कह्युंछे, अथवा एक निश्चयसम्यक्त्व अने बीजुं व्यवहारसम्यक्त्व एरीतें पण बे प्रकारकह्याछे. तथा वली एक निसर्गसम्यक्त्व अने बीजुं उपदेश सम्यक्त्व ए पण बे प्रकार कह्याछे. एम त्रण प्रकार द्विविध सम्यक्त्वना ते तुहवयण के० ताहरां वचनना विऊहिंके० वेत्ता एटले आगमार्थना जाण पुरुषें निहिठंके० देखाड्याछे.ए

हवे त्रणप्रकारे द्विविधसम्यक्त्वकह्युं तेनालक्षण कहेछेः—

तुह वयणे तत्तरुइ, परमठ मजाणठवि दव्वगयं ॥
सम्मं नावगयं पुण, परमठ वियाणठ होई ॥ १० ॥

अर्थः— हेप्रच्नु तुह के० ताहरां वयण के० वचननो परमठ के० परमार्थ जे रहस्य तेनो मजाणठवि के० अजाणछे, पण ताहरां वचननेविषे तत्तरुइ के० तत्त्वरुचिछे, केमके जे राग द्वेष अज्ञान ए त्रण दोषनो नाशथवाथी वीतरागथयाते असत्य नाषण करेनही, माटे श्रीजिन नाषित वचन सर्व सत्यछे, एम ते जाणेछे तो एवीजे तत्वरुचि ते दव्वगयं के० द्रव्यगत सम्यक्त्व कहियें. यडुक्तं सिद्धांतेः—नावे णसद्दहंतो अयाणमाणेविसम्मत्तं, इतिवचनात्. जे सूक्ष्म अर्थने नथीजाणतो एहवा अजाणनेपण जो नावे सद्दहणाछे के जे अरिहंत ते शुद्ध नाषण करनाराज छे एहवी उंये प्रतीतछे तो अजाणपुरुषने पण द्रव्यथी सम्यक्त्वछे.

बीजुं नावगयं के०नावगत सम्मं के० सम्यक्त्व ते पुण के० वली परमठवि याणठ के० परमार्थना जाणपुरुषने होई के०होय. यडुक्तं सिद्धांतेः—जीवाइ नव पयछे, जो जाणइ तस्स होइ संमत्तं. इतिवचनात्. माटे जे नव्यजीव जीवादिक नवेपदार्थने समस्त नय गंम नंग प्रमाण निक्षेप प्रमुख स्याद्वाद सैलीपूर्वकजाणे, सद्दहे, ते नव्य जीवने नावगत सम्यक्त्व कहियें ॥ १० ॥ एमद्रव्यसम्यक्त्व तथा नावसम्यक्त्व कह्युं

हवे निश्चयव्यवहार रीतें बेप्रकारनासम्यक्त्वनुं लक्षण कहेछेः—

निच्छयठसम्मत्तं, नाणाइमयप्प स्सुहपरिणामो ॥ इ
यरंपुण तुहसमए, नणियंसम्मत्तहेऊहिं ॥ ११ ॥

अर्थ — ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप शुद्ध श्रद्धा जासन रमणता पूर्वक रत्नत्रयीरू प आत्मानुंजे शुभपरिणाम तेने निश्चयउसमम्मत्तंके० निश्चय सम्यक्त्व कहिये, एटले आत्मानेज निश्चय सम्यक्त्व कहिये, केमके आत्मा ने आत्माना गुण ते काईजूदानथी परिणामे अनन्यछे एकछे गुण गुणी नावे अनेदेज रह्याछे केमके अनेदपरिणामे परिणम्योजे आत्मा ते तद्गुणरूपज कहेवाय. यदुक्त योगशास्त्रे — आत्मेवदर्शनज्ञान चारित्राण्यथवायते ॥ यस्तदात्मैवस्वगुणै शरीरमधितिष्ठति॥१॥

प्राये अप्रमत्तसाधुने निश्चयनय सम्यक्त्व पूर्णकहेवायछे केमके जेवु जाण्युं ते वोज त्यागनावछे अने श्रद्धापण तदनुरूपछे माटे स्वरूपोपयोगी जीवने आत्मा तेहिज ज्ञान दर्शन चारित्रछे कारणके आत्मा रत्नत्रयात्मक अनेदनावे शरीरमा रह्योछे, माटे रत्नत्रयीने शुद्धोपयोगे वर्त्तताजीवने निश्चय सम्यक्त्व कहिये

तथा इयरके० इतर ते बीजु व्यवहारसम्यक्त्वछे ते हे प्रनु तहारा सिद्धातने विषे सम्यक्त्वना हेतुजे मिथ्यात्वीनु सस्तव परिचय प्रमुख जे अतिचारादिक दोषछे तेना त्यागथी थाय तथा देव गुरु नक्ति बहुमान योगे शासनोन्नति हेकहिं के० हेतुये थाय यदुक्त गुणस्थानक विचारग्रंथे — देवेगुरुचसघेच सद्भक्तिशासनोन्नति॥ अव्रतो पिकरोत्येव स्थितिस्तूर्येगुणालये ॥ १ ॥ अर्थ — देव गुरु तथा श्री सघ तेनी बहुमान सहित नक्तिकरे शासनोन्नतिकरे अविरति गुणगणे रह्योथको पण आगमोक्त विधिमार्गे निरतिचार सम्यक्त्वप्रवृत्ति सहितहोयतेने व्यवहार सम्यक्त्व कहिये ॥ ११ ॥

हवे त्रीजा बे प्रकारे सम्यक्त्व कहेछे तेमा एक निसर्ग सम्यक्त्व प्राप्ति अने बीजी उपदेशजन्य सम्यक्त्व प्राप्ति इहा शिष्यपूछेछेके निसर्गके० सहेजे सम्यक्त्वनी प्राप्ति केवीरीतेंथाय? तेवारे गुरु दृष्टात गर्भित सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेछे —

जल वत्थ मग्ग कुद्दव, जराइ नाएण जेणपन्नत्तं॥ नि
स्सग्गुवएसभवं ॥ समत्तं तस्स तुह्म नमो ॥ १२ ॥

अर्थ — ए गाथामा पांच दृष्टात कह्याछे, तेमा जलनो तथा वस्त्रनो अने कोद्रवनो ए त्रणदृष्टात आगल पुंज त्रय नावनावसरे कहीवतावसे अने मार्गनो तथा ज्वरनो ए बे प्रस्तुतछे ते कहेछे —जेमकोईक पंथी मार्गथी भ्रष्टथयो पछी बीजाकोईना उपदेश पाम्याविनाज नमतो नमतो पोतानीमेले सहेजे मार्गेचढे, अने कोईक पथ भ्रष्ट थयजो पथी तथाविध पापना उदयथी कोई सज्जननो योग न मलवाथी मार्ग पामेजनही तिहानुतिहाजरहे अनेत्रीजोपुरुष बीजानेपूछीमार्गपामे

तेमज वली ज्वरनो दृष्टांत कहेछे:-- जेम कोईकने तापज्वर आव्यो ते कोईने औषध कर्याविनाज पोतानी मेले जतोरहे, अने कोईकने तो औषध चूर्ण धागादि (दोरादिक) प्रयोगकरवाथी ज्वरजायछे, तथा कोईकनेतो असाध्यज्वर कोईरीतें जायजनही एरीतें ए बे दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिविषे जोडवा ते आवीरीतेः-

कोईक शुक्लपक्षी कालादिक कारण परिपाकवंत चरमावर्त्ति चरमकरणी एवो नव्य जीव ते सहेजे आपें आप विचारतेथके सम्यक्त्वपामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहियें; तथा कोईक जीव पूर्वोक्त कालादिक योग्यतावंत होय पण सद्गुरुने योगे उपदेश सांभली अनादिनी मूलमटाडी देव गुरु धर्म सद्दहणारूप सम्यक्त्वपामे तेने उपदेश सम्यक्त्व कहिये. एरीते नाएणके० ए न्यायें (दृष्टांत) द्वारायें निसर्गोद्भव सम्यक्त्व तथा उपदेशोद्भव सम्यक्त्व ते हे प्रभु तुमे कह्युं परूप्युं तेमाटे परमोपकारी एहवा तुजने माहरो नमस्कार थाओ ॥ १२ ॥ एम बेप्रकारनुं सम्यक्त्व त्रण रीते कह्युं.

हवे त्रणप्रकारें सम्यक्त्व कहेछेः--

तिविहं कारग रोअग, दीवग नेएहिं तुह मय विऊहिं ॥
खाउवसमोवसमिय, खाइय नेएहिं वा कहियं ॥ १३ ॥

अर्थः- हेनाथ तुहमय के० तहारा मतना विऊहि के० वेता जे गणधरादिक, तेणे कारक रोचक अने दीपक एम तिविहं के० त्रण नेएहिं के० प्रकारें सम्यक्त्व कह्युंछे, वा के० अथवा क्षायोपशमिक उपशमिक अने क्षायिक एरीतें पण त्रणनेदें सम्यक्त्व कहियंके० कह्युंछे ॥ १३ ॥

हवे कारकादिक सम्यक्त्वना लक्षण कहेछेः-

जं जह नणियं तुमए, तं तह करणं मि कारगो होइ ॥
रोअग सम्मत्तं पुण, रुइमित्त करंतु तुह धम्मे ॥ १४ ॥

अर्थः- हेनाथ जे जेम यथार्थनावें विधिमार्ग तुमे नणियं के० प्रकाश्यो ते तेमज आज्ञाने अनतिक्रमतोथको एटले तुमारी आज्ञासहित आगमोक्त शैलीपूर्वक यथाशक्तियें दान पूजा व्रत नियमादिक करे तेने कारक सम्यक्त्व कहियें; तथा पुनः के० वली बीजुं रोचक सम्यक्त्व, ते तुहधम्मेके० तहारा धर्मनेविषे रुईमित्तकरंतुंके० रुचिमात्रकरे, श्रीजिनोक्त धर्मकरवानी इच्छारहे शुद्धश्रद्धाराखे कोईने धर्म प्रवृत्ति करतोदेखीने रूडुंमाने परंतु पोते नारीकर्मी माटे क्रियानुष्टानादिक करी शके नही तेने रोचक सम्यक्त्व कहियें ॥ १४ ॥

हवे दीपक सम्यक्त्व कहेछेः—

सयमिह मिच्छद्दिठी, धम्मकहाईहिं दीवइ परस्स ॥
दीवग सम्मत्तमिणं, भणंति तुह समय मईणो ॥ १५ ॥

अर्थ — सयमिह के० स्वयं पोतेतो मिथ्यादृष्टी अभव्य दुर्भव्य होय, पण अंगारमर्दाकाचार्यनी परे धम्मकहाईहिंके० धर्मकथादिकेकरी आदिशब्दथी सामायिकणना अनुष्ठानना अतिशयेकरीने एटले दंभरचना विशेषेकरी, पर जे बीजा भव्य भद्रक जीवोहोय तेने धर्मकरी दीपावे, एटले आगला जीवोना घटमा प्रकाशक रावे, परतु पोताने अंतरगपरिणामें श्रद्धानहोय एहवाने हे प्रभु तहारा समयजे सिद्धात तेना जाणपुरुषो दीपक सम्यक्त्व कहेछे

इहा शिष्ये प्रश्नकर्युंजे पोते मिथ्यात्वी मिथ्यात्वे वासित अंत करण वालाने सम्यक्त्वी केमकहोछो ? तेवारे गुरुकहेछे हे शिष्य, जो मिथ्यापरिणामीछे तोपण आगला प्राणीउंने धर्म पमाडवानो हेतुथायछे, अथवा शासनोन्नतिकरेछे, माटे कारणे कार्यनो उपचारकरी सम्यक्त्व कहिये, सम्यक्त्वनो हेतुछे माटे सम्यक्त्व कहिये, यदुक्तं सिद्धाते —विहियाणुठ्ठाण पुण, कारग मिहरोयगं तु सद्दहणं॥ मिच्छद्दिठ्ठीदीवइ, जत्तेदीवग ततु ॥ १ ॥ अर्थ —विहियाणुठ्ठाण के० विहित एटले नीपजाव्युंछे कर्युंछे आगमानुसारें धर्मानुष्ठानजेणे ते कारक सम्यक्त्व कहिये, अने रोयगं के० रोचक सम्यक्त्व ते शुद्धसद्दहणारूप रुचिथाय तेने कहिये, वली मिच्छदिठ्ठी के० पोतें मिथ्यादृष्टीथको परने तत्वदीपावे, परने सम्यक्त्व प्रकाशकरे तेने दीपक सम्यक्त्व उपचारे कहिये॥ १५

हवे बीजीरीतें प्रकारातरे त्रणभेद सम्यक्त्वना कहेछे —

अपुव्वकय तिपुंजो, मिच्छ मुइन्न खवित्तु अणुइन्न ॥
उवसामिय अनियट्टि, करणाउ परं खउवसमी ॥ १६ ॥

अर्थ — इहां त्रण सम्यक्त्वनी विगत ए प्रकरणनेविषे प्रकरणकारना आशयथी अवचूरिकारनो आशय भिन्नप्रकारेछे पण ठीक शब्दार्थ मलतोनथी माटे आवश्यक विशेषावश्यक अर्थदीपिका सुदर्शनाचरित्र कल्पभाष्य प्रमुखग्रथोने सम्मत प्रकरणकारनो आशयछे ते विगत लखियेछे —प्रकरणकारें सिद्धात तथा कर्मग्रंथिक ए बेहुना अभिप्राय ग्रहणकरी प्रकरण रचनाकरीछे. तेमा सिद्धातकारनो ए आशय छे. जे अनादि मिथ्यादृष्टीने कोई तथाविध सामग्रीनो सद्भाव एटले प्राप्तिथई यथाप्रवृत्तिप्रमुख त्रणकरण करतां अपूर्वकरणना अध्यवसायथी ग्रथी भेदी उपमि

थ्यात्व स्थितिना त्रण पुंज करी प्रथम शुद्धपुंजजनेवेदे ए त्रणपुंजनी स्थापना करि येछैयेः–(○ शुद्धपुंज ⊛ मिश्रपुंज ● अशुद्धपुंज) ते कारणथी उपशम सम्यक्त्वपाम्याविनाज प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे, तथा वली कोईक नव्यजीव यथाप्रवृत्यादिक करणत्रय अनुक्रमें पूर्वोक्तविधियेंकरी अंतरकरणने प्रथम समये उपशम सम्यक्त्वपामे पण उपशमें रह्यो पुंजत्रण करेजनही; अंतरमुहूर्त काल प्रमाण शुद्धनिर्मल अपौद्गलिक उपशमनाववेदी तिहांथी चलायमान थयोथको अवश्य मिथ्यात्वेंजाय; अपरपुंजतो छेनही माटे इल्लिकाने दृष्टांतेफरीपाछो संगाणजे मिथ्यात्व स्थानकथी आव्यो तेफरी मिथ्यात्वेंज जाय, जेम इल्लिजे कोईजातनी लट इयल एककाष्ठादिक पदार्थथी आगल जावाने चाहनाकरे त्यारे आगलागात्रनुं विक्षेप के० विस्तारवुंकरे, आगला शरीरनाभागने चारेतरफविस्तारतां स्थानक अणपामता पाछीपूर्वस्थानके जिहांथी सरीर उपाडयुंहतुं तिहांजआवे. यडुक्तं कल्पभाष्येः– आलंबणमलहंति जहसंठाणंनमुंचएइलिया ॥ एवंअकयतिपुंजो मिछंचियउवसमीएइ ॥ १ ॥ ए गाथानो अर्थ सुगम प्रथम लखाइजगयोछे.

एम स्थानांतरगमनना भाव माटे उपशम सम्यक्त्वी मिथ्यात्वेंज जाय ए सिद्धांतिकनो अभिप्रायछे, तथा कर्मग्रंथ वाला एममानेछे के जेकोई अनादि मिथ्यादृष्टी संसारीजीव जेवारें चरमावर्त तथा चरमकरण करवाने अवसरें पहेला सम्यक्त्व प्राप्तिकालेज यथा प्रवृत्त्यादि करणत्रय करवा पूर्वकज अंतरकरणकरे, तिहां उपशम सम्यक्त्वपामी अवश्य त्रणपुंज करे, एटले यथाप्रवृत्तिकरणे ग्रंथीदेशेंआवे, तथा अपूर्वकरणे ग्रंथीभेदकरे, तथा अनिवृत्तिकरणे मिथ्यात्वस्थितिना बे भागकरे, एकअंतरमुहूर्तवेद्य न्हानीस्थितिकरे, बीजी देसूणी कोडाकोडी प्रमाण महोटी स्थितिकरे एवी बे स्थितिकरे.

एरीतें बे स्थितिकरी तेमांथी न्हानीस्थिति खेंचीलेई नेवचमां अंतरकरे एटले बे स्थितिनीवचमां खाली जायगारहे एमकरे, पछी न्हानीस्थितिने अनिवृत्तिकरणना अध्यवसायेंकरी खपावीने, पछी अंतरकरण जे बे स्थितीनावचें खाली जायगारहीछे, तेमां प्रवेशकरे, त्यां अंतरकरणमां प्रवेशकरवाने पहेले समयेंज उपशम सम्यक्त्व पामे, ते अंतरकरणओलंघतां अंतर मुहूर्त प्रमाण कालजाय तेनेज उपशम सम्यक्त्व कहियें.

हवे अंतरकरणमां वर्त्तता औषधसरिखुं जे उपशम सम्यक्त्व, ते सम्यक्त्वेंकरीने कोदरावा धान अथवा मलीनजल अथवा मलीनवस्त्र ए त्रणेना सरिखुंजे मिथ्यात्व मोहनीयकर्म तेने सोधीने त्रणेभागे वेंचीनाखे, तेमां पहेलो भागतो शुद्ध

निर्विष तथा स्वच्छ निर्मल जाणवो अने बीजोभाग अर्धशुद्ध तथा थोडोक गदलुं अने थोडोमलीन जाणवो वली त्रीजो भाग सपूर्ण अशुद्ध यथास्थित तथा कलुष अतिमोहोलो तथा मलीन गलीच जाणवो हवे ए त्रणे वस्तुना दृष्टांते विवरीने विषदरीतें देखाडेछेः—

जिम मीणसहीत कोद्रव धानने छाशजलादिक औषधनायोगे एकभाग मीणरहीतकर्यो, बीजोभाग अर्धशुद्ध कर्यो, अने त्रीजोभाग जेमहतो तेमनोतेमरह्यो, ते अशुद्धछे, तथा जेम कोईक वस्त्रमलीनहतु ते क्षारादिक औषधनायोगे अतिस्वच्छ निर्मल थाय, बीजुं थोडाऔषधनो प्रयत्नमाटे थोडुनिर्मलथाय अने त्रीजुं मलीनज रहे, तथामलीन जलजेमनिर्मल फलादिकनायोगे अतीस्वच्छथाय, बीजु थोडुंनिर्मल थाय त्रीजु मलीनज रहे, एम त्रण दृष्टांतें अतरकरण गत उपशमसम्यक्त्वरूप औषध नायोगे करी मिथ्यात्वमोहनीयना दलिया मिथ्यात्वरूप मीणमा भर्याहता तेनो एक भागतो शुद्धकर्यो मीणरहीत कर्यो, अने बीजोभाग अर्धमीणरहीत थयो, एटलामां अंतरमुहूर्तना कालनीसमाप्ति थई तेथीते बीजो भागतो अर्धशुद्धथयो अने त्रीजोभाग शुद्धकरवानेतो पोहोंची शक्योज नही तेथी ते त्रीजो भागतो सपूर्ण मिथ्यात्वरूप मीणसहित विषथी भरेलोज रहिगयो

हवे ते त्रणपुजना त्रण नामथया, तेमा पहेलो शुद्धपुजते दर्शनमोहनीयकहिये, हवे ते जीव अतरकरण गत उपशम काल, पूरोथयेथके एटले जेटलोवखत अतरकरणनो तेटलोज वखत उपशम सम्यक्त्वनोछे ते उपशम सम्यक्त्वनोकाल अंतरमुहूर्त्तप्रमाण पूरोथयेथके जो परिणामनी विशुद्धीरहे तो शुद्धपुजनो उदयथाय, तेनुंनाम क्षयोपशम सम्यक्त्व कहिये, एटले मिथ्यात्वरूप मीणामां भरेलां दलियांजे शुद्धकर्या तेहनो उदय क्षयोपशम सम्यक्त्वकहियें

इहा शिष्य प्रश्नकरेछे के जो निर्विषदलियांकर्या तोपण जातेंते दलियांपोते मिथ्यात्वनांछे, निर्विषथीतो रस रूप गधादिक गयुं पण गुणने आवरणकरनारा दलियातो तेमना तेमजछे, तो सम्यक्त्वश्रद्धा भासना केमथाय? तेवारें गुरुकहेछे के जेमकोई अभ्रक अथवा अपर पाषाणादिक ते जातेंमलीनहोय तेनेकोई औषधादिक योगेकरी ते पाषाणादिकमाथी कालासरूप कलुषता काढीनाखे तेवारे ते दल निर्मलथाय, पछीतेने आतरेजे वस्तुरहीहोय ते सर्वेदीगमांआवे, पण छानीरहेनही तेमज इहां दर्शनमोहनीयकर्मना दलमध्ये अशुद्धपरिणतिरूप मिथ्यात्व विषेकरी मलीनथयेलुं अत्यंतकालासपणुं भरेलुहतु ते उपशम सम्यक्त्वरूप औषधनी

मदीमाथी दूरथाय, पछी निर्विषदलियांरह्यां ते स्वच्छ अभ्रपटल सरिखांछे ते निर्म लदलियां कांईश्रद्धा नासनमां विपरिणाम करेनही, तेथी जो जातें मिथ्यात्वदलि यांछे तोपण निर्विषछे (निर्मलछे) तेथी तेने क्षयोपशम सम्यक्त्व कहियें.

यडुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौः--तद्यथेसुप्रदीपस्य स्वछाभ्रपटलेगृहं ॥ नकरो त्यावृति काचि द्देवमेतद्रुवेरपि ॥१॥ एकपुंजी द्विपुंजी च त्रीपुंजी वाननुक्रमात्; एने पश्चानुपू र्वेंलेवुं एटले त्रीपुंजी द्विपुंजी एकपुंजी. दर्शन्युन्नयवांश्चैव मिथ्यादृष्टिश्चकीर्तितः ॥ २ ॥ इहां लोकनेविषे जेम अभ्रखना पडांतरे रहेलुंदीपक सर्वस्थानके उद्योतकरे, पण तिहां अभ्रक जोआडोछे तोपण कांई न्यून प्रकाश दीपकनुं करीशकेनही, ते वीजरीते सोधेला मिथ्यात्वदल तेपण कांई न्यून श्रद्धाकरेनही.

तिहां त्रिपुंजी ते सम्यक्दर्शनी द्विपुंजी ते मिश्रदर्शनी अने एक पुंजी मिथ्या दृष्टिहोय, तथा उपशम सम्यक्त्वथी आगलें जो कांईक उज्वल कांईकमलीन एह वा मिश्रपरिणामथाय तो मिश्रमोहनीयनो उदयथाय, एटले मिश्रपुंजनो उदय आवे अनेजो अनंतानुबंधीना उदय वलयकी अतिमलिन परिणामथया तो मि थ्यात्व मोहनीयनो उदयथाय एटले अशुद्धपुंजनो उदयआवे.

एरीते संसारमां केटलाक त्रीपुंजी केटलाक द्विपुंजी केटलाक एकपुंजी, तेमां क्षयोपशमी त्रिपुंजीहोय तथा मिथ्यात्व क्षय करवाने सम्यक्त्व मोहनीयनी उज्व लताकरे तेवारें द्विपुंजीहोय, अथवा अपुंजी एटले पुंजरहित पण क्षायक सम्य क्त्वीहोय तथा जिवारें मिश्रउद्वेलन करे अथवा क्षपवे तेवारें एकपुंजीज होय इहां पुंजत्रयनो संक्रम कल्पनाष्ये एमकह्योछे प्रवर्द्धमान परिणामी जे सम्यक्त्वीहोय ते मिथ्यात्व दलिक पुञ्जने आकर्षीने सम्यक्त्वपुंजमां अथवा मिश्रपुंजमां संक्र मावे तथा मिश्रपुञ्जने सम्यक्त्वी सम्यक्त्वमां संक्रमावे.

तथा मिथ्यादृष्टी मिश्रपुञ्जने मिथ्यात्व पुंजमांनाखे अने सम्यक्त्व पुञ्ज मि थ्यात्वपुंजमां संक्रमावे, पण मिश्रपुंजमां न नाखे, तथाचोक्तंः–मिछत्तंमिअखीणे ति पुंजीसम्मदीछिणोनियमा ॥ खीणंमिउमिछत्तं डुएगपुंजीवखवगोवा ॥ १ ॥ एरीतें कर्मग्रंथिकमतें प्रथम उपशम सम्यक्त्वजपामे अने ते उपशमि नीयमा त्रणपुंजकरे; उक्तंच कर्मग्रंथेः-कम्मगगंथेसुधुवं पढमोवसमी करेइ पुंज तियं ॥ तवडिउपुणगछइ स म्मेमीसंमिमिछेवा ॥१॥ अर्थ सुगमछे. एरीतें सिद्धांतिकमार्गें तथा कर्मग्रंथिकमार्गे भिन्न भिन्न आशय छे ते प्रकरणकरनारे तो बेहुना आशयलेई प्रकरणनी रचना करीछे.

तिहां सिद्धांतकारना आशयें कोई मिथ्यादृष्टी यथाप्रवर्त्त्यादि करणत्रयें करी

अंतरकरणकरे तिहा अतरकरणमा उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुजत्रय करेनही अं तरमुहूर्त्त उपशम सम्यक्त्ववेदीने पछी मिथ्यात्वेजाय ए आशय प्रकरणकारे सातमी गाथामा अनिवृत्तिकरणे अतर करणकरी सामान्ये मात्र उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुजत्रण न कस्या एमकह्युछे, वली कोईजीव यथाप्रवृत्तिकरण करी पछी अपूर्वकरणे ग्रथीभेदी पुजत्रयकरी अनिवृत्तिकरणे क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे ए आशय अपुव्वक यत्तिपुंजो एम सोलमी गाथामा कह्योछे, एटले अनादि मिथ्यादृष्टी प्रथम क्षयोप शम सम्यक्त्वजपामे ए सिद्धांतसैलीछे

तथा कर्मग्रंथाभिप्राये तो अनादि मिथ्यादृष्टी जीव पहेला करणत्रयपूर्वक अं तरकरणे उपशम सम्यक्त्वीथईने त्रणपुंजअवश्यकरे पछी जे पुजनो उदयथाय ति हाजाय एटले कोई शुद्धपुजेजायतो क्षयोपशम सम्यक्त्वीथाय तथा जो मिश्रपुज नो उदय थायतो मिश्रगुणठाणेजाय अने अशुद्धपुजेगयो तो मिथ्यात्वीथाय ए अभिप्राय कर्मग्रंथसेलीनो छे, ते ग्रंथकारे सत्तरमीगाथाये अकयतिपुंजोऊस्सर इत्या दि आशयकह्यो, एरीते सिद्धातिक तथा कर्मग्रंथिक बेहुएमली उपशम सम्यक्त्व पाम वाना बे मार्गकह्या तथा क्षयोपशम सम्यक्त्वपामवाना पण बे मार्गकह्या, एटलीवा त प्रसगथी कही हवे मूलगाथानो शब्दार्थ लिखियेछे

अपुव्वकयत्तिपुंजो इत्यादिक अपूर्वकरणे कस्याछे त्रणपुंजजेणे मिच्छजे मिथ्यात्व तेनादल उइण्ण के० उदयआव्या तेने क्षेपवीने क्षयकरीने अने अणुइन्न के० उद य न आव्या जे मिथ्यात्वनादल तेने उपशमावीने अनियट्टीकरणाउ परखउवसमी के० अनिवृत्तिकरणथी आगल क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे ॥ १६ ॥

हवे कर्मग्रंथनी सेलीये उपशम सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेछे:—

अकय ति पुंजो ऊसर, दव इलिय दड्ढ रुख्ख नाएण ॥
अतरकरणुवसमिउ, उवसमियोवाससेणि गउ ॥ १७ ॥

अर्थ — अकयतिपुंजोत्ति के० जेणे त्रणपुंज पूर्वेकस्यानथी एटले पुजकस्याथी आगल जेम वनमा दावानल बलतो ऊसरके० उखरखेत्र एटले जिहां खारीजमी न रणरूपहोय अथवा केवल वेलुएटले रेतिनीभूमिहोय सुकी नदीप्रमुखनी, तेने कखरभूमिकहिये, तथा जेभूमिउपर पूर्वेदवलागी गयोहोय अने घासलाकडी तथा रुख्ख के० झाडप्रमुख बली साफथई गयाहोय ते दवदग्ध भूमिकहिये एटले एक ऊ खरभूमि अने बीजी दवदग्धभूमि ए बे ठेकाणा जो बलती इलियके० अग्नीपामे

तो पोतानीमेले उलवाइजाय नाएणके० एन्यायें मिथ्यात्व वेदनरूप जे दावानल ते अंतरकरणरूप ऊखरखेत्रपामीने सहेजे पोतानीमेले उवसमिउके० उपशमि जाय उलवाईजाय तेथी जीव उवसमिउके० उपसम्यक्त्व पामे.

केमके पूर्वें अनिवृत्तिकरणना जोरथी जे जे मिथ्यात्वना दलिया उदयआव्याते क्षयकीधा अने जे उदयनथी आव्या ते उपशमाव्या, एटले आवता रोकी राख्यां तथा विष्कंभित, उदयकखा अने वली दूरेंराख्यां एम विचमां अंतरमुहूर्त गम्य निर्मल, प्रदेशोदीरणादि करण ने अयोग्य एहवुं अंतरकरणकीधुं.

इहां शिष्य प्रश्नकरेछे के पूर्वें क्षयोपशम सम्यक्त्व पामवाने अवसरें एम कह्युं हतुं जे उदयआव्या मिथ्यात्वदल ते क्षयकीधां अने उदय न आव्या ते उपशमाव्या ए लक्षणकह्युं हतुं अने वली उपशम सम्यक्त्व काले पण एमजकहोछो तो क्षयोपशम तथा उपशममां कांई, फेरपडयोनही तेमछतां गणतिमां जूदाकेम कहोछो?

हवे गुरु उत्तर कहेछे के क्षयोपशममां तो शुद्धदलियानो उदयछे तेमां कोई मिथ्यात्व पुंजमांथी दलियुंभलीने उदय आवे ते प्रदेशोदयछे इतितत्वं.

हवे ते अनिवृत्तिकरणना बलथी मिथ्यात्वनी एक न्हानी अने एक महोटी एवी बे स्थितिकरी तेमां पेली लघुस्थितिने क्षपवी अने बीजी महोटी स्थितिने दूरथंभावी विचमां अंतरकखो, तेमां प्रवेशकरे तेने पहेलेसमयें उपशम सम्यक्त्व होय, पछीते उपशम सम्यक्त्वना जोरथी अंतरमुहूर्त्तमां शेष विष्कंभितउदय मिथ्यात्व स्थिति, तेना शुद्ध अर्द्धशुद्ध अने अशुद्ध एवा त्रणपुंजकरे एटले उपशम सम्यक्त्वनो कालपूरोथयो कहेवाय पछीते जीवना जहेवा परिणामरहे तेवा पुंजनो उदयथाय ए उपशम सम्यक्त्व एकजवार होय अने ए सहज मोक्षनुंबीजछे.

इहां प्रथम सम्यक्त्व पामतां कोईक जीवतो एकलुं सम्यक्त्वज पामीने रहि जाय अने कोईक जीव सम्यक्त्वसाथें देशविरतिपणुं पण पामे अथवा सर्वविरति पणुंपण साथेंज पामे ; यदुक्तं वृहत्शतकचूर्णौः— उवसमसम्मदिट्ठी अंतरकरणे ठिओ कोई देस विरयंपि लभेइ कोई पमत्तापमत्तभावंपि सासायणो पुण न किंपि लहेइ इति एनोअर्थ सुगमछे.

इहां उपशमकाल पूर्णथयाथी परिणामनी निर्मलतायें शुद्धपुंजनो उदयआवे तेथी क्षयोपशम सम्यक्त्वथाय ते वली कालांतरें संका कंखा कुतीर्थिसंसर्ग कुशास्त्र श्रवणादिक अतिचारनी प्रबलताथी मिथ्यात्वदलनी उदीरणताथी मिथ्यात्वे मिश्रितथाय तो तत्काल मिथ्यात्वगुणगणेजाय मिथ्यात्वीथाय ते वली सं

ख्यात् असंख्यात कालांतरे शुभनिमित्ते करी, प्रपतित सम्यक्त्वीजीव फरी सम्यक्त्व पामे तेवारेपण अपूर्वकरणे त्रणपुंजकरी अनिवृत्तिकरणे शुद्धपुंजोदय क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे इहां शिष्यपुछेछे जे पहेला सम्यक्त्व लाभकाले तो किवारे प्रथम न पाम्या तेमाटे अपूर्वकरणकह्यो पण हमणा तो जे पूर्वपाम्युं हतु तेनोज फरीलाभ थयो तो तेने शीरीतें अपूर्व कहिये ?

हवे गुरुकहेछे अपूर्वसरिखु अपूर्व एटले जे वस्तुने थोमाज वखतपामियें पण घणावखत नपामिये तेने अपूर्वजकहिये केमके संसारसंबंधी अन्यपर्याय प्राप्तिनी सख्याआगल ए सीगणतिमाछे माटे एने अपूर्वज कहिये एरीतें वृद्धवचनछे सिद्धां तिक नो ए अभिप्रायछे

तथा फरी सम्यक्त्वनी प्राप्तिनीपरें देशविरति अथवा सर्वविरति नी प्राप्तिना व खतेपण यथाप्रवृत्ति तथा अपूर्वकरण ए बन्नेकरे पण अनिवृत्तिकरण न करे मात्र अपूर्वकाल समाप्ति समयेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुंपामे जेवारे देशविर ति अथवा सर्व विरतिपणुंपामे तेवारे यावत् अंतरमूहुर्त्त लगे तो अवश्य ते जी वना प्रवर्द्धमान परिणामहोय अने अंतमुहूर्त्त वीत्यापछी कोईना प्रवर्द्धमान परिणामथाय अथवा कोईना हीन हीन थाय अने कोई स्वभावस्थजरहे

तथावली जे उपयोगविना सहेजे परिणामनी मलिनताये देशविरतिथी पड्यो अथवा सर्वविरतिथी पड्यो ते फरी परिणामनी निर्मलताने योगे करणकर्याविनाज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे, वलीजे उपयोगेपड्या एटले उपयोगीतोहोय पण पोताना कुमत कदाग्रहादिक दोषेकरी विपर्याशथई कुविकल्प पूर्वक पड्याथका मिथ्यात्वेगया ते जघन्यथी अंतरमुहूर्त तथा उत्कृष्टो प्रभूत् घणोकाल गये थके फरी देशविरति अथवा सर्वविरतिपणु पामे ते पूर्वोक्त करण कर्याथीज पामे एम कम्मपयमीग्रंथे टीकामा कह्युछे तथा सिद्धांतिक ने मतें तो विराधित सम्यक्त्वी गृहित सम्यक्त्वथकोपण कदाचकोईक छठीनरकपृथ्वी सुधीपणजाय खरो, अने कर्मग्रंथिक मतेंतो वैमानिक विना अन्यस्थानके न उपजे तेमाटे गृहीत सम्यक्त्ववंत छे एहवु प्रवचन सारोद्धार वृत्तिमाकह्युछे.

तथा आवाम सम्यक्त्वगुणथी पड्योथको कर्मग्रंथिकना मतेतो उत्कृष्टस्थितिक कर्मप्रकृतिबांधे अने सिद्धांतने अभिप्रायेंतो भिन्न ग्रंथिक उत्कृष्टस्थितें कर्मप्रकृति बांधेजनही ए सर्व प्रसंगेकह्युछे एटलें अंतरकरणगत उपशम सम्यक्त्वकह्यु

तथा उवसमियो वा स सेणिगउं के० अथवा उपशम सम्यक्त्व सश्रेणीयेहोय

एटले स्वश्रेणिने उपशमश्रेणि चढतांपण होय. यदुक्तं:—उवसमसेढिगयस्सय, होइ उवसामिउवसम्मत्तं, जोवा अकय तिपुंजो, अखवियमिछो लहइसम्मं ॥ १ ॥ ए गाथानो अर्थ सुगमछे.

हवे स्वश्रेणिजे उपशमश्रेणी तेनी विधि अनुक्रमे लिखेछे : तिहां प्रथम उपशम श्रेणि चढवायोग्यना लक्षण गुणस्थान क्रमारोह ग्रंथथीलिखियें छैयें:—पूर्वज्ञ शुद्धिमान् युक्तो, ह्याद्यसंहननैस्त्रिभिः संध्यायन्नाद्यशुक्लांशं स्वांश्रेणींश्रयतेंक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वगत श्रुतनो धरनारहोय शुद्धिमान् के० निर्मल अप्रमत्त निरतिचारवंत चारित्रियो होय, वली केटलाकने मतेतो अविरत्यादिक चारगुणगणावाला पण उपशमश्रेणीना प्रारंभक होय, तथा आद्यसंहनन के० वज्रऋषभनाराच ऋषभना राच नाराच ए आद्यना त्रण संघयणमांथी अन्यतर संघयणी अने ध्यायनाद्यशुक्लांशं के० शुक्लध्याननो प्रथम पाद ध्यातोथको एवोते उपशमश्रेणी मांडवायोग्य तिहां अप्रमत्त गुणगणे अनंतानुबंधी कषायनी चोकडी तथा मिथ्यात्व मिश्र अने सम्यक्त्व ए त्रणमोहनी मली साते प्रकृति उपशमावीने संज्वलननो लोभवर्जित वीस मोहनीय कर्मनीप्रकृति ते अपूर्वकरण गुणगणे तथा अनिवृत्तिकरण गुणगणे उपशमावीने पछी सूक्ष्मसंपराय गुणगणेलोभमोहनीय प्रकृतिने अणु अणु करी पछी उपशांत मोह गुणगणे तेहिज अणुरुप लोभप्रकृतिने उपशमावे एम सर्वोपशमकरे. यदुक्तं गुणस्थान क्रमारोहग्रंथेः— अपूर्वादिद्वयेकैक गुणेपु समकक्रमात् करोतिविंशतेशांति लोभाणुत्वंचततुसमं ॥ १ ॥ अर्थ सुगमछे.

तथा इहां उपशमश्रेणीकारक बेप्रकारेहोय एक स्वल्पायु बीजो दीर्घायु तिहां अल्पायुवंत तो श्रेणीसमाप्ति अवसरे मरणपाम्यो थको अहमेंद्रपणे उपजे सरवार्थसिद्धि पर्यंत देवताथाय. यदुक्तंः— श्रेण्यारूढकृतेकाले हमेंद्रष्वेवगच्छति पुष्टायुस्तुपशांतांत नयेचारित्रमोहनं ॥ १ ॥ अर्थः— जे स्वल्पायुहोय अने प्रथम संघयणीहोय ते सरवार्थसिद्धिपर्यंत जाय, अहमेंद्रते जेनाउपर कोइनुं हुकमनही एहवा कल्पातीत देवतामां उपजे अने बीजा तथा त्रीजा संघयणवालाते अच्युतांत बारमां देवलोकपर्यंत उपजे पण आगल न जाय.

तथा पुष्टायु सम्यक्त्वी तो उपशांतमोह गुणगणापर्यंत मोहनीयकर्मनुं पूर्ण उपशमकरे तेवारे उपशम सम्यक्त्व होय, यदुक्तंः—शांतिदृग्वृत्तमोहत्वा दत्रोपकम्मिकाभिधौ स्यातांसम्यक्त्वचारित्रे भावश्चोपशमात्मकः ॥ १ ॥ अर्थः—इहां उपशांत मोह गुणस्थानकें दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय उपशमावशरें सम्यक्त्व चारि

न्नते उपशम नावमांहोय तथा नावपण उपशमहोय तथा जेने तद्भवे मोक्षजवु होय तेने क्षायिक सम्यक्त्व पणहोय, तेने उपशातमोह गुणठाणे पांचेनाव होय पणतेजुदा जाणवा पण इहातो केवल उपशमलीज विवक्षाछे तथा इहा उपशांतमोह गुणठाणे चढयो ते अवश्यपडेज यदुक्तं —वृत्तमोहोदयंप्राप्यो पशमीच्यवतेत त. ॥ अधकृतमलंतोयं पुनर्मालिन्यमस्नुते ॥ १ ॥ अर्थ – उपशमी चारित्रमोहनीयनो उदयपामीने उपशातमोह थकी पडे फरी मोहजनित प्रमादनी कलुषता मापडे ए एमजघटमानछे केमके जेम मोहोलु गदलुप्राणी होय तेने कोई औषधनेजोरे मेलहेठोकरिये तेवारें निर्मलजल उपर तरतुरहे तेपाणी कोई वायुप्रमुखनी प्रेरणानिमित्त पामी फरी गदलु (मेलुथाय) ए प्रनाव प्रमादोदयनाछे यदुक्तं — सुअकेवलीआहारग उजुमइउवसतगाविउपमाया॥ हिंमंतिनवमणंतं तयणंतरमेव चउगइया ॥ १ ॥ अर्थ – श्रुतकेवलीजे चउदपूर्वि तथा आहारक शरीरनाधणी वली उजुमईजे मनपर्यवज्ञांनी ऋजुमतीवाला पण विपुलमतीना धणीनही तथा उपशातमोह इग्यारमां गुणठाणावाला ए सर्वप्रमादना योगथी तेहिजनवने अनंतर अनतानवन्नमण चारेगतिमा वासोकरे तेमाटे मोक्षने वाछनार प्राणीये सर्वथा प्रमाद नहीजकरवो

इहा शिष्यपूछेछे के उपशमीतो अवश्यपडे तो उपशमीने मुक्तिनी योग्यता छे के नथी? गुरुकहेछे सातलव प्रमाण अवशेष आयुवालो उपशमी खमश्रेणीक थको अधुरीश्रेणीथकोज पाछोफिरे ते सातमे गुणठाणेआवी फरी क्षपकश्रेणीचढे ते सातलवने निंतर क्षीणमोह बारमे गुणठाणेथई अतगड केवली थको मोक्षे जाय, इहां सातलवते मुहूर्त्तनो इग्यारमो नागकहियें जेप्राणी तद्भवमोक्षगामी होय ते एकजवार उपशमश्रेणीमांमें उपशमथी उतरी क्षपकश्रेणीयेंचढे अनेजे तद्भव मोक्षगामी नहोय ते एकनवमा बेवारपण कोईकजीव श्रेणीकरे पण तद्भवे सिद्धि वरे नही यदुक्तं सिद्धांते —जीवोहुइक्क जम्ममि, इक्कसेढी करेइ उवसमगो ॥ खयपिकस्सा नोकस्सा दोवारेउवसामगो ॥१॥ अर्थ – जे जीव एक जन्ममा एकवार उपशमश्रेणी करे ते मोक्षपणपामे अने जे बे वारकरे तेने क्षपकश्रेणीनहोय इहां अचरम शरीरी उपशमी पमधाथका प्रथम गुणस्थानके मिथ्यात्वे जाय यदुक्तं गुणस्थानक मारोहे.—अपूर्वाद्यास्त्रयोप्युर्ध मेकयातिसमोद्यता, चत्वारोपिच्युतायाद्यं सप्तमचात्यदेहिन ॥ १ ॥ अर्थ —उपशमश्रेणीचढता अपूर्वाद्याके० अपूर्व अनिवृत्तिने सूक्ष्मसपराय ए त्रणगुणठाणावाला उचाचढतां एकेक गुणठाणो चढे एटले अपूर्वगुणथी अनिवृ

त्तिबादरें जाय अने अनिवृत्तिबादरथी सूक्ष्मसंपरायें जाय अने सूक्ष्मसंपरायथी उप शांतमोह गुणेगाणे जाय एम एकेकगुणगाणेचढे तथा उपशमथी पडतां अपूर्वादिक चारगुणगणाथीपडतां मिथ्यात्वेंजाय अथवा अंतदेहीजे चरमशरीरीहोय ते पडतां सातमें गुणगाणे आवी अटके, तेवली सातमागुणगाणाथी फरी क्षपकश्रेणीयेंचढे परंतु जे एकवार उपशमीहोय ते क्षपकश्रेणीकरे पण बेवार उपशमी होयते क्षप कश्रेणी न करे यडुक्तः—उवसमसेणिचउक्कं जाईजीवस्स आजवं नूणं; तापुणदोणाज वे खवगसेणीपुणोएगा ॥ १ ॥ आ संसारमां रहेतोथको जीव मोक्षपामे तिहांसुधी चारवखत उपशमश्रेणीकरे तेवली एकजवमां बेवारकरे अने क्षपकश्रेणीतो आखा संसारमां एकजवारकरे इतिगाथार्थ ॥ एवात प्रसंगेथई. ॥ १७ ॥

हवे क्षपकश्रेणीनुं स्वरूपकहेछे प्रथम क्षायकनी अनुक्रमणिका कहेछेः—

मिछाइखएखइउ सोसत्तगिखीणिगाइबद्धाऊ ॥
चउतिजवजाविमुक्को तज्जवसिद्धीविइयरोवा ॥ १८ ॥

अर्थः— पूर्वें सिद्धांताजिप्रायें अपूर्वकरणेकस्याछे त्रणपुंजजेणे ते जीव शुद्ध पुंजोदयें वर्त्ततो यथा कर्मग्रंथाजिप्रायें अंतरकरणगत उपशमबलें कस्याछे त्रणपुंज जेणे ते जीव जेवारे शुद्धविपाकोदय वेदतो एटले क्षायोपशमसम्यक्त्वें वर्त्त तो चोथागुणगाणाथी मांमीने क्षायिकप्रारंजे तिहां प्रथम अनंतानुबंधी चार क षाय तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुंज मिश्रमोहनीयपुंज अनेसम्यक्त्वमोहनीयपुंज ए त्रणपुंज अने पूर्वोक्त चार कषाय ए सातेप्रकृतिनो क्षयकरे तेवारें क्षायक सम्य क्त्वीथाय तेना बे जेदछे एक बद्धायुक्षायिक सम्यक्त्वी बीजो अबद्धायुक्षायिक स म्यक्त्वी तिहांजे अबद्धायु एटले जे जीवें आगलाजवनुं आयुबांध्युंनथी एवो क्षा यिक सम्यक्त्वीजीवतो तद्भवेंज मोक्षेंजाय, अने जेणे आवताजवनुं आउखुंबांधीने पछी सातप्रकृति क्षयकरी क्षायक सम्यक्त्व पाम्यो ते जीव त्रणजवें अथवा चार जवें मोक्षजाय तिहांजो देवजवनुं अथवा नरकजवनुं आयु बांध्युंहोय तो त्रीजे जवें मोक्षजाय, तथा असंख्यात वर्षना आउखावंत युगलिया मनुष्य तिर्यंचनुं आयुबांध्युंहोय तो चोथेजवें मोक्षपामे, केमके युगलधर्मि अवश्य देवगतिपामे, ति हांथी चवी मनुष्यथई मोक्षजाय, माटे चारजवकरे. इहां आयुबांध्यापछी कोईजी व क्षायिक सम्यक्त्वपाम्युं तो ते जीव सातप्रकृति क्षयकरीछे एटलेजरहे पण आगल क्षपकश्रेणीचढेनही ते जवेतो क्षायिक मात्रेंजरहे पछी पूर्वोक्तरीतें त्रीजेज वें अथवा चोथेजवें सिद्धिवरे ए प्रसंगथी वातकही.

हवे क्षपक श्रेणीनु स्वरूपकहेछे –अणमिच्छमिस्ससम्मं अठ नपुसछिवेयछक्कंच पुमवेयंचखवेई कोहाइएयसंजलणा ॥ १ ॥ गइआणुपुव्विदोदो जाईनामचजावचउरे दी आयावउज्जोयं थावरनामचसुहुमच ॥ २ ॥ साहारणमपज्जत्तं निद्दानिद्दंचपय लपयलच थीणखवेइताहे ओसजचअठन्न ॥ ३ ॥ वी समिकुणनियठो ॥ दोहेस मर्णहिं केवलोसेसे पढमेनिद्दंपयल नामस्स इमाइ पयडीउ ॥ ४ ॥ देवगइ आणुपुव्वी निकविसंघयण पढम वज्जाइ अस्सुयरसठाण तिछयराहारनामच ॥ ५ ॥ चरिमेना णावरण पंचविहदसणंचउवियप्प पचविहमतराय खेवित्ताकेवलीहोइ ॥ ६ ॥ इ ति श्रेणीस्वरूपं ए त्रणप्रकारें सम्यक्त्व कह्यु ॥ १७ ॥

हवे चार प्रकारे सम्यक्त्व कहेछे –

चउहाउ सासाण, गुडाइ वमणुव मालं पडणुव ॥
उवसमिउ उपडंतो, सासाणो मिछ-मऽप्पत्तो ॥ १९ ॥

अर्थ -- चउहाउ के० चारप्रकारे सम्यक्त्वहोय ते आवीरीते के त्रण सम्य क्त्वतो पूर्वेकह्या अने जेवारें तेनीसाथे सासाण के० सास्वादन नामे सम्यक्त्व भेलीयें तेवारे चारप्रकारे सम्यक्त्वथाय हवेसास्वादननु स्वरूपकहेछे.

उपशम सम्यक्त्वनो काल अंतरमुहूर्तछे तेमाथी जेवारे कोइकजीवने भवित व्यतानायोगे मिथ्यात्वे अवश्यजावुछे तेवारे उपशमकालमा उत्कृष्ट छ आवलिका प्रमाण काल बाकी शेपरह्योहोय अने जघन्यथी एकसमय रह्योहोय अथवा तेनी वचमानो जेजेरहेते मध्यमकाल कहियें एटलो उपशम सम्यक्त्वनो काल शेपरहे तिवारे उपशमावेलाजे अनंतानुबंधी कपायनादल तेनो उदयथाय ते जीवने सम्य क्त्व थका गोलना वमननीपरें तथा माल पतननीपरे एटले जेम गोलप्रमुख मधु ररसनु भोजनकरी पाछु वमनकरे तेवारें भोजन करती वखतेंजे मधुरताना स्वाद नी लेजतहोय तेवी लेजत काई वमन करती वखते न होय पण काईक गल च टयो अनिछित स्वादलागे केमके जोपण वमनतोछे तोपण मीठासछुछे तेम उपश मथी पड्यो अने हजी मिथ्यात्वे पहोतुनथी तेना विचलाकालमा सास्वादन स म्यक्त्व ते गुडवमन सरखोहोय ते वमता सम्यक्त्वनो अनुभवदेखाड्यो अने मा लथकी पडवा शरिखो कालस्थिति देखाड्यो, जेम मालथकी पडता सावधानहोय तोपण वेछुडाइथी ते अवश्य भूमी फरसे तेम सम्यक्त्वनी श्रेणीगत सावधान होय तोपण अनतानुबधी दलना उदयबलें टकी सकेनही इति तत्व

हवे सास्वादन शब्दनो अर्थलिखेछे सहआस्वादेन वर्त्तते इति सास्वादनं सम्यक्त्वनो आस्वादमात्ररहे तेथी सास्वादनकहियें अथवा आके० समस्तपणे शातन करे पातनकरे मुक्तिमार्गथी भ्रंसकरे ते आशातनकहियें एटले अनंतानुबंधी कषायबले सम्यक्त्वगुणथी भ्रष्टकरेमाटे आशातने ते आशातनसहीत अवस्थहोय माटे साहाशातन कहियें अने प्राकृतसूत्र माटे सासायणकहियें यडुक्तं विशेषावश्यकेः– उवसमसम्मत्ताउ चइऊंपमिछंअपावमाणस्स ॥ सासायणसम्मत्तं तय तरालमिछावलियं ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमछे एरीतें चार प्रकारें सम्यक्त्वकह्युं.॥१९॥

हवे पांचप्रकारे सम्यक्त्व कहेछेः–

वेयग जुअ पंचविहं ॥ तंचतुडुपुंजखयंमितइयस्स ॥
खयकाल चरमसमए ॥ सुद्धाणु वेयगो होइ ॥ २० ॥

अर्थः– पूर्वें कह्याजे चार सम्यक्त्व तेनीसाथें वेयगके० वेदक सम्यक्त्व जुअके० युक्तकरियें तेवारें पंचविहंके० पांचप्रकारें सम्यक्त्वहोय जे सम्यक्त्वना अत्यंत शुद्धपुज्जलने वेदीयें अनुभवियें ते वेदकसम्यक्त्वकहियें तेहथी शुद्धपुज्जलथी अनर्थांतरछे अभेद छे माटे ए सम्यक्त्वपण वेदक कहेवाय एटले जे क्षपकश्रेणी प्रतिपन्न तंचके० ते प्रथम अनंतानुबंधीचोकडी तथा डुपुंजखयंमिके० मिथ्यात्वपुंज अने मिश्रपुंज ए बेपुंज क्षयथयेछते तइयस्सखयकाल चरमसमएके० शुद्ध छहेला सम्यक्त्व पुंजना दलियापण उदेरी उदेरी उदयें अनुभवी अनुभवी निर्जरा करतां करतां निठव्युंछे उदीरणा बल जिहां एटले चरमावलिकायें उदीरणा करण लागेनही एटले त्रीजा सम्यक्त्व पुंजने क्षये करता जेवारे छेल्लो सर्वोदित पुज्जलग्रास चरम समय वेद्य शुद्धअणुनुं वेदन एटले शुद्धक्षायोपशम पुज्जलनेवेदे ते वेदक सम्यक्त्व कहियें यडुक्तं विशेषावश्यकेः–वेयगसमत्तंपुण सव्वोइय चरम पुग्गलावछे ॥ खीणे दंसण मोहे, तिविहंमि रकाइयंहोइ ॥ १ ॥ इहां शिष्य प्रश्नकरेछे के तुमे चरम शुद्धग्रासनुं वेदन ते वेदक कहोछो तेवारें क्षयोपशममां अने वेदकमां श्यो फेरथयो केमके शुद्धपुंजनुं वेदन बे ठेकाणे सरिखुंछे तो जुडुंनाम केम कहोछो? तेवारे गुरु उत्तरकहेछे के तें साचुंकह्युं पण एमां विशेष एछे के ए वेदक तो अशेष समस्त पुज्जलानुभव वंत अत्यंत शुद्धछे अने इतरजे क्षयोपशम सम्यक्त्व छे तेतो उदित अनुदित बे पुज्जल उदयानुभव वंतछे एटलो विशेषछे. परमार्थें जोतांतो क्षयोपशमजछे समस्त मोहनीय क्षयकरवाना कालनो जे चरमसमय

मात्र ते वेदक सम्यक्त्व कहिये जेम सूक्ष्मलोजना खण्ड वेदवाथकी सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक कहियें, तेम शुद्धक्षयोपशम पुजना वेदवाथकी वेदक सम्यक्त्व था यछे, एम वेदक सम्यक्त्व सहित सम्यक्त्वना पाचनेद थाय इति वेदकस्वरूप२०

हवे ए पाचे सम्यक्त्वनो काल कहेछे.—

अंतमुहुत्तो वसमो, गवलिय सासण वेयगो समउ ॥
साहिय तित्तीसायर, खइउ उ गुणो खउवसमो ॥ २१ ॥

अर्थ.— उपशम सम्यक्त्वनो काल उत्कृष्टो अंतरमुहूर्त्तछे, अने सास्वादननो काल उत्कृष्टो ठ आवलिनोछे, तथा वेदक सम्यक्त्वनो काल एक समयछे, अने क्षायिक सम्यक्त्वनो उत्कृष्टकाल सर्वार्थ सिद्धिनी अपेक्षाये साधिक तेत्रीससागरोपमनो छे, साधिककह्यातेतो मनुष्यनवनी अपेक्षायेकह्या, केमके क्षायक सम्यक्त्ववतजीव ते त्रणनव अथवा चारनव उत्कृष्टो ससारमांरहे, उक्तच पचसंग्रहे —तइय चउत्थे तंमि, नवमि सिज्यति दंसणे खीणे । ज देव निरय सखाउ, चरम देहेसु ते हुति ॥१॥ अर्थ — बद्धायु क्षायकसम्यक्त्ववतजे होय ते देवगति अथवा नरकगतिये जाय, तेवारे तन्नवातरे तृतीयनव मोक्षजाय, तथा कोई क्षीण सप्तकी जो तिर्यचमाउप जे तो अवश्य असख्य वर्षना आउपावाला युगल तिर्यचमा उपजे, पण संख्यात वर्षायु तिर्यचमा क्षायक सम्यक्त्ववत न उपजे, पछी तिर्यचमाथी देवथाय, अने देवमाथी मनुष्यथई मोक्षजाय, अने जे अबद्धायुवत होय तेतो तेहिजनवे क्षपक श्रेणीपुरीकरी सिद्धथाय, तथा एकजीव आश्री अथवा अनेकजीवआश्री सम्यक्त्वनो उपयोग जघन्यथी तथा उत्कृष्टथी अतरमुहूर्तज होय अने क्षयोपशमरूप सम्यक्त्वनी लब्धीतो एकजीवने जघन्य अतरमुहूर्त अने उत्कृष्टीतो छगणो के० क्षायकथकी बमणो ठासठ सागरोपम अने मनुष्यनवें अधिकहोय, तेथी उपरात सिद्धजथाय, एटले बारमादेवलोकसुधी त्रणवार गमनथाय, तिहा उत्कृष्टायु बावीस सागरोपमनुंछे, अने मनुष्यनो नव अधिकगणता ठासठसागरोपम जाझेराथाय, अने विजयविमान आश्री बे नव करवापण्मे तिहापण उत्कृष्टायु तेत्रीस सागरोपमनुछे, अने मनुष्यनव गणता साधिक ठासठसागरोपम क्षयोपशम सम्यक्त्वनो कालमानथाय, एम नानाप्रकारना जीवो आश्री सर्वकाल ठाशठ सागरोपमछे, यदुक्त सिद्धाते —दोवारे विजयाइसु, गयस्स तिन्नीअ अचुए अहवा ॥ तइ अइरेग नरनविय, नाणा जीवाण सवद्धा ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमछे ए पाचेसम्यक्त्वनो कालकह्यो

हवे संसारमांभ्रमण करतां जीव ए पांचे सम्यक्त्वमां कियुं कियुं सम्यक्त्व केट लीवार पामे ते कहेछेः--

उक्कोसं सासायण, उवसमिया हुंति पंचवाराउ ॥
वेयग खयग इक्कसी, असंख वारा खउवसमो ॥ ७१ ॥

अर्थः--उत्कृष्टो मोक्षावधि सुधी संसारमां भमतां जीव सास्वादन तथा उपशमिक सम्यक्त्व पांचवारपामे, तेमां एकतो प्रथम सम्यक्त्व लाभकालें अंतरकरणगत उपश मिक होय, अने उपशमश्रेणी चारवखतपामे, तिहां चारवखत उपशमनो लाभहोय. तथा वेदक सम्यक्त्व अने क्षायक सम्यक्त्व ए बे एकजवार पामे अने क्षयोप शम सम्यक्त्वतो मोक्षावधि संसार भमतां असंख्यातिवार पामे; एरीतें सम्यक्त्व प्राप्तिनी संख्या कही, हवे एक भवमां केटलीवार आकर्षहोय ? आकर्षते गुणथी मंद थईने भूमीफरसीने वली सावधानथई गुणनी प्रबलता करे, एटले मूकीने व ली ग्रहण करवुं ते आकर्षकहियें. यडुक्तं आवश्यक सिद्धांते गाथाः- तिन्नंसह सपुहुत्तं ॥ सयप्पुहुत्तंच होइ विरईए ॥ एग भवे आगरिसा ॥ एवइया हुंति नायव्वा ॥ १ ॥ अर्थः- तिन्नंत के० एक श्रुतसामायक, बीजो सम्यक्त्वसामायक, त्रीजो देशविर तिसामायक, ए त्रणनेविषे एक भवमां सहस्रपृथकत्व होय, बेहजारथी मांमीने नवहजार सुधी सहस्र पृथक्त्व संज्ञाछे, तथा सयप्पुहुत्तं के० शतपृथक्त्व आकर्ष सर्व विरतिमांहोय, बसेंथीमांमी नवसेंसुधी होय, एरीते एकभवमां उत्कृष्टा आकर्ष होय, अने जघन्यथीतो एकज आकर्ष होय ए एकभवना आकर्ष कह्या.

हवे नानाप्रकारना भवमां भमतां गुणपामी पामी पडतां फरी पामतां आकर्ष नी संख्या केटली थाय ते कहेछे. गाथाः- तिन्नं सहस मसंखा, सहस पुहुत्तंच होइ विरईए ॥ नाणा भव आगरिसा, एवइया हुंति नायव्वा ॥ २ ॥ अर्थः--श्रुत, स म्यक्त्व, अने देशविरति ए त्रणे सामायकवंतने नानाप्रकारना भवभ्रमणकरतां मो क्षजाय तिहांसुधी उत्कृष्टा असंख्याताहजार आकर्ष थाय, तथा सर्वविरतिने ना नाभवें मोक्षजाता सुधीमां उत्कृष्टा पृथक्त्व हजार आकर्षहोय, एरीते सम्यक्त्व प्राप्तिसंख्याने प्रसंगे आकर्ष संख्या कही ॥ ७२ ॥

हवे कया गुणगणे कियुं सम्यक्त्व होय ते कहेछेः-

बीयगुणे सासाणो, तुरिआइसु अछिगार चउ चउसु ॥
उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमा हुंति ॥ ७३ ॥

अर्थ – बीयगुणेसासाणोके० सास्वादन सम्यक्त्वते बीजा सास्वादन गुणठाणा मांहेज होय, पण अन्यगुणस्थानके नहोय, अने उपशम सम्यक्त्व ते तुरियाइसु अछिगारचउचउसुके० चोथागुणठाणाथीमांमी आठगुणठाणासुधी होय, अर्थात् चोथागुणथीमांमी इग्यारमा उपशांत मोह नामना गुणठाणासुधीहोय पण अन्य गुण स्थानके नहोय, अने क्षायक सम्यक्त्व इगारसके० इग्यारगुणठाणेहोय, एट ले चोथागुणठाणाथी मामीने चउदमां अयोगी गुणठाणासुधीहोय अने क्षायोपश म सम्यक्त्व तथा वेदक सम्यक्त्व ए बे सम्यक्त्व चउचउके० अनुक्रमे चार चार गुणठाणानी संख्यासुधी पामिये, अर्थात् वेदक अने क्षायोपशम ए बे चोथागुण गणाथी मामीने सातमा अप्रमत्त गुणठाणासुधीजहोय पण अन्यगुणठाणे न पा मिये एवात सत्ताआश्रीजाणवी पण परमार्थेतो वेदकसम्यक्त्व अने क्षायोपशम सम्यक्त्व ए बे एकज कह्याछे यथा षमसीतप्रकरणे –वेयग खयग उवसमे, चउरो एगार अछतुरियाइ इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत षडसीतप्रकरणेकह्युछे, तथा बंधस्वा मित्वमा पण कह्युछे एरीतें गुणस्थानक निर्धार्ये सम्यक्त्वकह्यां.

हवे सम्यक्त्व पाम्यापछी देशविरति सर्वविरति क्षायिकनाव किवारें प्राप्तथा य ते कहेछे, गाथा – सम्मत्तमिउलध्वे, पलिय पुहुत्तेण सावउ हुआ ॥ चरणोवस म खयाण, सायर संखंतरा हुंति ॥ १ ॥ अर्थ –पूर्वोक्त नव्यजीव जेवारे ग्रंथीने दकरी सम्यक्त्वपामे तेवारपछी अतकोडाकोडीनो स्थितिबधछे, तेमांथी पलियपहु त्तके० पृथकत्व पल्योपम एटले बे थी मांमीने नव पल्योपम सुधी ओछीकरे, एट ले कोइक बे पल्योपम स्थितिउछीकरे, कोइ त्रण एम यावत् कोइ नव पल्योपम जेटली स्थिति अत कोडाकोडीमाथी उंछीकरे, तेवारें देशविरति गुणस्थानकनो क्षयोपशमथाय एटले नावथी देशविरति तेवारेथाय

तथा चरणोवसमके० चरणजे सर्वविरतिपणु तेनो क्षयोपशमतो जे स्थितियें देशविरतिगुण प्राप्तथयुंछे ते स्थितिमांथीपण सख्याता सागरोपमनी स्थिति उंछी करे, एटले सर्वविरतिवत स्थितिबाधेतो अतकोडाकोडी नवपल्योपमे न्यून जे देश विरतिनी स्थितिछे, तेथीपण सख्याता सागरोपम उंछीबाधे, एवा अध्यवसायें कषा यनी मदताहोय इतितत्व तेवार पछी सख्याता सागरोपम खपवाथी उपश्मश्रेणी पडीवजे तेवारपछी पण सख्याता सागरोपमनीस्थितिखपवाथी क्षपकश्रेणी पमीवजे

हवे जे जीव सम्यक्त्व पामीने पाछोपमी मिथ्यात्वेगयो तेफरी सम्यक्त्व कि वारेपामे ? केटलो अतरहोय ? तेकहेछे सम्यक्त्वनु आतरु जघन्यथीतो अंतरमुहूर्त

छे; केमके कोइकजीव सम्यक्त्व वमिने पाछो परिणामनी निर्मलताने योगें तदाव रण क्षयोपशमथी अंतरमुहूर्तने आंतरे फरी सम्यक्त्वपामे, तथा कोइकजीव बहु लकर्मी तीर्थंकरादिकनी प्रचूर आशातना करे ते जीव अर्द्धपुज्जल संसारमां प्रवर्तें, संसारमां जन्ममरणकरे, पछे अर्द्धपुज्जलगये फरी सम्यक्त्वपामे, एटले उत्कृष्टआं तरुं अर्द्धपुज्जल परावर्तछे. उक्तंच सिद्धांतेः—तिछयरं पवयण सुअ, आयरियं गणहरं महद्धीयं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत संसारियो होइ ॥ १ ॥ तीर्थंकरनी तथा प्रव चनजे समस्त जैनशासननी अने आचार्यजे गछना अधिपति तेनी तथा गण धरजे त्रिपदी ग्राहक अथवा महोटा प्रज्ञाविक पट्टोधर तथामहर्द्धिकते तप संय म श्रुतादिक अनेक लब्धिसंपन्न तेने ऋद्धिवंत कहियें एटला जीवोनी आसातना एटले तेमना अवर्णवाद बोले निंदाकरे अन्याख्यानबोले ते जीव अनंतसंसारीथा य एटले प्रकरणकारे पांच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकह्युं. ॥ २३ ॥

हवे ग्रंथांतरे दशविध सम्यक्त्वरुचिरूप कह्युंछे तेपण इहां प्रसंगें लखियेछइयें य डुक्तंमागमेः— एगविह डुविह तिविहं, चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ दवाइ कारयाई, उवसमन्नेएहिंवासम्मं ॥ १ ॥ अर्थः— जे निसंक तत्वरुचि श्रद्धान जि नमार्गनेविषे ते एकविध सम्यक्त्व कहिये अने डुविध सम्यक्त्वते इव्यथी तथा ज्ञावथी अथवा निसर्गथी अने अधिगमथी अथवा निश्चयथी अने व्यवहारथी अथवा पुज्जलिक अने अपुज्जलिक एम बे प्रकारेंछे.

त्रणप्रकारें सम्यक्त्वते उपशम, क्षायिक, अने क्षयोपशम अथवा कारक रोचक अने दीपक एपणत्रण जाणवा वली पूर्वोक्त त्रणमां सास्वादन नेलियें तेवारें चार प्रकारें सम्यक्त्वथाय अथवा वेदक युक्तकरियें एमपण चारप्रकारथाय तथा वेदक सास्वादन एबे पूर्वोक्त त्रणसाथें नेलियें तेवारें पांचप्रकारथायएनोविस्तार पूर्वें कह्योछे

तथा दशविध सम्यक्त्वते दशप्रकारनी रुचिवंतजीव ते रुचिन्नेदे सम्यक्त्वनो ने दकहिये ते दशरुचि केवाने सिद्धांतोक्त गाथालिखेछेः— निसग्गु वेएसरुइ, आण रुईसुत्त बीयरुइ मेव ॥ अन्निगम विछाररुई, किरिया संखेवि धम्मरुई ॥ १ ॥ एदशे रुचिना नामकह्यां हवे प्रत्येकें दशेना स्वरूप कहेछे.

नूअछेणाहिगया, जीवाजीवायपुन्नपावंच ॥ सहसंमइआसव, संवरोय रोएउ निसग्गो ॥ १ ॥ जो जिण दिठे नावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ॥ एमे अनन्नह त्तिय, सनिस्सगरुइत्तिनायवो ॥ २ ॥ अर्थः— नूअछेणके० सद्भूतार्थ एटले छतो जे अर्थ तेहने सहसंमइके० जातिस्मरणादिक बुद्धिविज्ञानेकरी जेजे श्रीजिनेश्वर

जीना दीठा जेजीवाजीव पुण्यपापादिकना भाव ते चउविहेके० द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेदे अथवा नाम स्थापना द्रव्य भावभेदे एव चारेप्रकारें सयमेव एटले पोता नीमेलेज सद्दहे जे एमजछे पण श्रीजिन भाषित अन्यथानथी एम जिनेश्वरना दीवाभावते निश्चलकरे ते निश्चलरुचि निसर्गरुचि जाणवी

एएचेव उवइठे, जोपरेण सद्दहइ ॥ छउमछेणजिणेण, उवएसरुइत्तिनायव्वो ॥ ३ ॥ अर्थ – एएके० ए श्रीजिनोक्त सिद्धातमा कह्याजेजे भाव ते उवइठेके० उपदेशद्वाराये परेणके० परथी एटले छद्मस्थथी अथवा जिनराजथी साभलीने अवितथ सद्दहे तेने उपदेश रुचि कहिये.

राग, द्दोसो, मोहो, अन्नाणजस्स, वग्गय, होइ ॥ आणाए रोयंतो, सोखलु, आणारुई नाम. ॥ ४ ॥ अर्थ – जेने रागदोष द्वेषदोष मोह अने अज्ञानदोष क्षयथईगया ते असत्य नबोले केमके ए त्रणदोषछते असत्यबोलाय रागभुलीयो अथवा द्वेषभुलीयो अथवा अज्ञानदोषे अणजाणे जुठुंबोले पण जेने त्रणदोष क्षयगया तेसावास्ते जुठुंबोले, हेतुविना कार्यथायनही एटले ए त्रणदोषरहित जे वीतरागपरमात्मा तेनी आज्ञानेविषे अत्यत आदरहोय ते त्रीजी आज्ञारुचि कहिये

जो सुत्तमहिज्जतो, सुएणउं गाहई समत्तं ॥ अगेण बाहिरेणव, सोसुत्तरुईत्ति नायव्वो. ॥ ५ ॥ अर्थ – सूत्रजे सिद्धात तेने भणवा तथा साभलवानी चाहना करे जेम जेम श्रुतअवगाहे तेमतेम सम्यक्त्वरसपामे एटले इग्यारेअग तथा बार उपाग अने बाहिरेणवके० बाहिरते मूलसूत्रप्रमुख एम जेकाले जे सिद्धात वर्त्त मानहोय ते सूत्राक्षरउपरें घणीचाहनारहे जे जे किरियाकरे ते सूत्राक्षरने मल तीजकरे ते चोथी सूत्ररुचि कहिये

एगेण अणेगाई, पयाइ जो सरइउ सम्मत्त ॥ उदएव तेल्लविंडु, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥ ६ ॥ अर्थ – जे भव्यजीव गुरुनामुखथकी एकादि जीवपदनो अर्थ सांभली अनेकपदमा मतिपसारे एटले मूलवात पामीने बीजी अणकहेलीवात पामीजाय उदकजेपाणी तेमा तेलनु बिंदु पडयो ते जेम विस्तरीजाय तेम थोडु सांभलीने घणुजाणीजाय ते पाचमी बीजरुचि कहिये

सोहोइ अभिगमरुई, सुअनाण जेण अच्छउदिठ्ठ ॥ इक्कारसमगाइ, पइन्नगंदिठ्ठी वाउअ ॥ ७ ॥ अर्थ – ते जीवने अभिगमरुचिहोय जेणे इग्यारअग तथा उ पाग अने पइन्नगके० प्रकीर्णक उत्तराध्ययन प्रमुख तथा दृष्टिवादना गभीर अ र्थजाणे वली अर्थजाणवानी चाहनारावे ते छठी अभिगमरुचि कहियें

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्सउवलद्धा ॥ सव्वाहिं नयविहीहिय, विच्छाररुइत्ति नायव्वो ॥ ८ ॥ अर्थः– द्रव्यजे धर्मास्तिकायादिक छ तेना सर्वभाव जे द्रव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय ध्रौव्य तेने सर्वनय भंग प्रत्यक्ष परोक्षादिप्रमाणे स्याद्वाद सैली सहित अनेक सप्तभंगी परुपणायेंजाणे ते सातमीविस्तार रुचि.

दंसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्चसमीइ गुत्तिसु ॥ जोकिरिया भावरुइ, सोखलु किरिया रुइनाम ॥ ए ॥ अर्थः–जेने दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनय समिति गुप्तिप्रमुख बाह्य क्रियाथी घणु रंगहोय क्रियाभावमां घणी चाहना रहे तेने आठमी क्रियारुची कहिये.

अणभि गाहिय कुदिठी, संखेव रुइत्ति होइ नायव्वो ॥ अविसारउ पवयणे, अणभि गहियो असेसेसु ॥ १० ॥ अर्थः– जेप्राणी अणभिगहिय के० अनभिग्रहिक कुदृष्टीजे कुमार्ग शांख्यादिक दर्शनोनो आग्रह धरेनही थोडुं कह्यायकी घणुंजाणे कुमतिये पम्नेनही समोविचारे चिलातिपुत्रनीपरें तथा प्रवचनजे जिनागम तेनेविषे घणुं अविसारद के० निपुणतो न होय तोपण सरलगुणेकरी कदाग्रह धरेनही जिनमार्गेनी प्रतीत माने तेने नवमीसंक्षेप रुचीकहियें.

जो अच्छिकाय धम्म, सुअ धम्मंखलुचरित्तधम्मंच ॥ सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइत्ति नायव्वो ॥ ११ ॥ अर्थः– जे भव्यजीव अच्छिकायधम्मं के० पंचास्तिकायनुं स्वरूप जाणे तथा श्रुतधर्म अने चारित्रधर्म ने बाह्य अंतरंगभावें श्री जिनोक्तमार्ग सद्दहे सकल स्वभाव विभाव स्वरूप जाणे तेने हेयोपादेय भावें यथायोग्य सद्दहे ते दशमी धर्मरुचि कहियें ए दशरुचि ते सम्यक्त्वना भेदछे.

हवे ए सम्यक्त्वगुणनी प्राप्ति ते मिथ्यात्वना त्यागथी थाय ते मिथ्यात्वना भेद पांचछे तेमांजे लौकिक प्रवाहधर्मे जेजे सारंभी सपरिग्रही कुशीलसेवनादिक जे धर्म बुद्धेंग्रह्यो तेहिज सारकरीजाणे तेनुं हठताणे अमारोधर्म तेज सारछे एम कदाग्रहकरे पण मध्यस्थथई परिक्षाकरी शुद्धनेग्रहेनही ते अभिग्रहिक मिथ्यात्व.

जे एम कहेके सर्व दर्शनरुडांछे सर्वने वांदियें पण नंदियेनही एवी पोतानी मंदबुद्धिजे जडतापणुं तेनेलीधे कांचने तथा मणीने सरखाकरे पण परिक्षाकरी शुद्धने ग्रही शकेनही ते बीजुं अनभिग्रहिक मिथ्यात्व.

जे जाणीजोईने जुठुं बोले कुमति कदाग्रहना जोरथी विरुद्ध परुपणाकरी दुरंत संसार वृद्धिकरे जमाली प्रमुख नन्हवनीपरें ते त्रीजुं आभिनिवेशिक मिथ्यात्व.

जे श्री जिनोक्त सिद्धातना भाव सांभली संशय धरे जे ए केमहसे एम मगम ग्योरहे ते चोथु सांशयिक मिथ्यात्व कहिये.

जे एकेंद्रियादिक समूर्छम जीवोने अनादिनुं पठवाडे लागोरह्योछे प्राये अस न्नीयासुधीतो अनाभोगिकज होय ते पाचमुं अनाभोगिक मिथ्यात्व जाणवु

अथवा संसारीजीवोने वीजापण चारप्रकारे मिथ्यात्वहोय ते कहेछे एक देव गत लौकिक बीजो गुरुगत लौकिक त्रीजो लोकोत्तर देवगत चोथो लोकोत्तर गुरु गत तेमां हरी हर शक्ति प्रमुखने माने पूजे ते लौकिक देवगत मिथ्यात्व, ब्राह्मण तापसादिकने गुरुबुद्धमाने पूजे ते लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, वलीजे सप्रभाव जि नाबिबने इंद्रिय सुखने अर्थे माने पूजे ते लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, अनेजे सुसा धुने इहलोक सुख यश मान प्रतिष्टा अथवा धन धान्य पुत्रादिकनी आस्याधरी माने इछे दानआपे ते लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहिये

तथा जीवे अजीवसन्ना अजीवेजीव सन्ना मग्गे उमग्गसन्ना उमग्गेमग्गसन्ना सुदेवेअदेवसन्ना अदेवेसुदेवसन्ना सुसाहुसु असाहुसन्ना असाहुसुसाहुसन्ना धम्मे अधम्मसन्ना अधम्मेधम्मसन्ना ए दशप्रकारे विपरीत वासनारुप मिथ्यात्वछे.

तथा जे वली रक्षाबंधन शक्रातिपूजन एम एकवर्षमा शतपर्व आराधन ते सर्व लौकिक पर्वगत मिथ्यात्वछे तथा दीवालीप्रमुख कल्याणीकना दिवसें इही यसुखने साधे विशेष पूजारचनादिक करे ते लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्वछे ए सर्व मली एकवीसभेदे मिथ्यात्व ते संसारीजीवोने संसारमा भमाडेछे

तथा वली धर्मार्थिजीवने चारप्रकारे मिथ्यात्व टालवानो उपयोग राखवो ते कहेछे तेमां प्रथम प्रदेशमिथ्यात्वछे ते जे आत्मप्रदेशें पूर्वबंध मिथ्यात्वनादलियां र ह्याछे ते सत्तागत अथवा उदयगत दलियाछे ते प्रदेशगत मिथ्यात्वछे ते जेवारे जीव जिनवाणीसांभली यथार्थभावजाणी सद्दहे सकल पुद्गलिकभावने हेयसद्दहे केवल स्वरूपज्ञानते यथार्थ परिणति परिणमन तेनेज सुखनुंमूलजाणी सद्दहे आदरकरे एवीराते प्रदेशमिथ्यात्व टलीजाय

बीजुं परिणाम मिथ्यात्व ते जे पोताना प्रमाददोषेकरी शुद्धश्रद्धाफरीने कुश्र द्धाथाय जेम पूर्वधरने निद्रादिक दोषेकरी पूर्वगलीतथाय मरीने निगोदादिकेजाय जेम प्रसन्नचद राजऋषी दूरवाक्य सांभली चेतनाफरीगइ ते परिणाम मिथ्यात्वक हिये ए मिथ्यात्व ते जिनवाणीनेविषे तीव्रोपयोगी रहेवाथी टलेछे

त्रीजु परुपणामिथ्यात्व ते उत्सूत्रभाषवाना जे महोटादोष तेने कहियें एथीअ

नंतसंसार भ्रमणकरे धर्मबीजनो ध्वंसकरे जे सद्दहणा राखीने मरणांत कष्टपडे तो पण श्रीजिनवाणी विरुद्ध प्ररुपणानकरे तेने ए मिथ्यात्वनुं दोषटले.

चोथुं प्रवर्त्तिमिथ्यात्व ते जे मिथ्यात्वनी करणीकरे मिथ्यात्व प्रवर्त्तावे तेने कहियें ए मिथ्यात्व सुसाधु तथा सुश्रावकनी संगति करवाथी तथा रागद्वेषने मंद करी मध्यस्थभावें थइ परिक्षाकरी शुद्धप्रवर्त्तन करवाथी टलेछे.

एमए मिथ्यात्वजेछे ते जगतमां जेटली दुःखनीजातोछे ते सर्वनुं मूलकारणछे कोप्योदुसमन कोप्योव्याल तथा वेताल जे नकरीसके ते दुःख एमिथ्यात्वआपेछे व्याधि मृत्युः दालिद्र तथा वनवासथीपण मिथ्यात्व सेवनते अनंतगुणु दुःखदाइ छे जेणे मिथ्यात्वजीत्यो तेणे सर्वजगतजीत्यो इंद्रादिकनी रुद्धिपामवी सुलभछे पण मिथ्यात्व टालवुं दुःकरछे तेमाटे आत्मसुखार्थिजीवें विशेषथकी मिथ्यात्व सोधन करवुं निर्मल श्रद्धान करी आठगुणयुक्त संकादिदोष विमुक्त सम्यक्त्व दृढकरवुं.

हवे आठगुणेकरी सम्यक्त्वनी पुष्टीकरे ते आठगुण कहेछे गाथा ॥ निस्संकिय निकंखिय, निवित्तिगिछा अमूढदिठीय ॥ अववुह थिरीकरणे, वछलप्पभावणेअठ ॥ १ ॥ श्रीजिनागमनेविषे सूक्ष्मविचार अतिंद्रियादिक भावजेछे ते साचा सद्दहे पण संदेहसंका नआणे अने सातभय पण मनमां आणेनही ते प्रथम निसंकगुण.

बीजो निकंषागुण जे अन्यदर्शनना कष्ट मंत्र चमत्कारादिक उन्नतदेखी तेनी चाहना नकरे आकंक्षाधरेनही अथवा धर्मना पुण्यरूपफलनी इछा नराखे केमके जिहां इछानी आतुरता तिहांपुण्यरस ओछोथाय जिहां इछा तिहांकर्मबंधछे अने पुण्यतो धर्मक्रियानो वस्तुस्वभावछे तेतो अवश्यजथाय तेने इछारूप दोष तो सामु कमरसकरे अने जे निस्पृहपणे धर्मक्रियानुंफलछे ते निरविधिछे माटे ए निकंषागुणथी धर्मफल वृद्धिनेपामेछे.

त्रीजुं निवितिगछागुण ते जे कर्मसंबंधी फलनो संदेह राखेनही जेम कोई मनुष्य धर्मकरणी करतो कोई पूर्वकृत पापप्रकृतिने उदयदुःखेपीडतो थको मंदबुद्धिनो धणी एमविचारे जे हुंधर्मकरुंछुं तोपण पीडाकेम पामुछुं ए धर्मक्रियानुं फल थासेके नही थाय एवीसंकाधरे पण एम नविचारेजे एतोपूर्वकृत कर्मफल उदय आव्याछे पण वर्त्तमान जे धर्मक्रिया करुंछुं ते आगल अवश्य आवसेज केमके श्रीजिनेश्वरें कह्युंछे कडाण कम्माण न मुरक अछि, माटे जे निवित्तिगछा गुणवंतहोय ते संदेह धरेनही श्रीजिनभद्रगणि खमाश्रमणे कह्युंछे, तिविहाय रिह विरहउवावि ॥ नेयग हणत्तणेण, नाणापरणो दगेणंच.॥१

अथवा अशुभपुजन एकसरखापणे पण अशुभपुजनदेखी दुगंछा करेनही तथा पुण्योदये शुभसयोग मिल्यायका खुसीनथाय अहंकार करेनही पापोदयथी अशु भसयोगमिल्या दिलगीरथायनही ते निर्विचिगंछा गुणकहिये.

चोथो अमूढदृष्टीगुण ते जे श्रीआगमसिद्धांतमा निगोदप्रमुखना सूक्ष्मविचार सांभळता मुझायनही जे पोतानी धारणामा आवे ते धारीराखे अने जे धारणाबुद्धिये नआवे ते सद्दहे, तिहा एमविचारेजे सर्वदोषथी विमुक्त एहवा जिनेश्वरते अन्यथा वादीनहोय. यडुक्तं आगमे –असइसहुजबुजिय्या, सव्वणुमय मवितह ॥ तहाचितएमइय, अन्नहान वयंतिजे॥१॥अणुवकय पराणुग्गह, परायणा जजिणा जगप्पवरा ॥ जिय राग दोसमो हाय, नन्नहा वाइणो तेण ॥ २ ॥ अर्थ – जेजिनवाणी सांभळता खबर नपडे, समजवामा नआवे, तेना हेतु लिखेछे कोईक श्रोतातो पूर्वभव कृत ज्ञानविराधन कर्मोदयथयेथके मतिदुर्बळताथी न समजे तिवारे आचार्य तथा विधि उपदेशक कोई हेतु दृष्टांतादिक वचनेकरी श्रोताना चित्तमा उतारे, एहवा महापुरुषोने विरहे तथा नीतीन्यायना अणजाणवाथकी एटले अनेक नय युक्तिना ग्रहणपणाविना अथवा ज्ञानावरणीकर्मना प्रबळोदयथी न समजे, तेवारे आत्मार्थि अमूढदृष्टी जीव एवो विचारकरे जे हेतु उदाहरण यवा अनेक युक्तिदृष्टांतें घणा वखत कहेताथका पण मने सारीपठे समजण पडतीनथी ते महारे पूर्वोक्त दोषना योग्यथी जाणवी, पण सर्वज्ञमत तो अवितथ सत्यजछे, एम कहे तेवारे कोई पृछाकरे जे एकांते जिनोक्त रचनाज सत्यछे एवु तें किमजाण्यु ? तेवारे अमूढदृष्टी श्रोता उत्तर कहेछे –अणुवकय के० जे जिनेश्वर ते केवाछे प्रत्युपकारनी चाहनाविना परने अनुग्रह उपकार करवाने तत्परछे, तथा जजिणा के० जे कारणमाटे जिनेश्वरते जगतमा प्रवर के० श्रेष्ठछे, रूप बळ तेजकांति बुद्धि ऋद्धि सिद्धिप्रमुख गुणे सर्वोत्कृष्टछे, अने वळी जियराग के० जीत्याछे मूळथी राग द्वेषने मोहजे अज्ञान ए त्रणदोष जेमाथी गयाछे माटे जिनेश्वर अन्यथावादी होयज नही तेथी परमयथार्थवात ते आगमनीजछे ए अमूढदृष्टीनामा चोथोगुण

पांचमो अवबूह गुण ते पोतानी आत्मामा अनंत ज्ञानदर्शनादिक गुणछे ते छुपावेनही उदैकडुख मेटवाने दीनतादिक न नापे शुद्धसत्ता जेवीछे तेवीजकहे अने पुद्गलिक सुखदुखते अज्ञानदशा कृत उपाधिछे आत्मा ए रागद्वेष उपाधिथी न्यारोछे, इमज परजे अन्यसाधक तेमापणजे गुणहोय ते प्रगटकरीकहे पण छुपावेनही ते पांचमोगुण

छठो थिरीकरणगुण ते पोताना परिणाम परभावमांथी काढी ज्ञानध्यानमां जोडे, नित्ये धर्मक्रियाकरतोहोय ते अवश्य थिरयोगवंत थयोथको करे, पण चप लताना कारणमिले तोपण अथिरपणुं ग्रहेनही. साध्यसाधनथी डगेनही, तथा कोई भव्यप्राणी शुभाशुभ कर्मोदयनिमित्ते धर्मथी पडतोहोय तेने सदुपदेशादिक आपी अथवा तेने कोईरीतें सहायीथईने तेनुं परिणाम थिरकरे, पण डगवा न आपे ते छठो स्थिरीकरण गुण जाणवो.

सातमो वत्सलतागुण आ वर्त्तमान शासनमां जे भव्य धर्मरुचि जीवोसाथें सामायक पोसह पडिकमण यात्रा पूजादिक धर्मकरणी करताहोय, जेहनी सद्दह णा एकहोय ते पोताना साधर्मी कहियें, तेनी भक्तिकरवी ते वत्सलताकहियें अ थवा सर्वजीव जाते आपणासाह्मीजछे, एकसत्तायें सरखाछे, वास्ते सर्वजीवनी वात्सलता करवी, जीवदयापालवी, अथवा अंतरंगभावें जीवना ज्ञानादिकगुण छे तेने ज्ञानध्यानेकरी पोषवा (पुष्टकरवा) एटले ज्ञान ध्याननो घणो अभ्यास करवो ए स्वनिष्ठा वात्सलगुण सातमोछे.

आठमो प्रभाविकगुण ते जैनशासननी उन्नतिकरवी, संघयात्रा रथयात्रा अथवा महोटा तप जप उजी उपधान प्रतिष्ठा पूजादिकना घणामहोत्सवें अढलक दाना दिकनी उदारताकरी जेथी अन्यदर्शनीउपण अनुमोदनाकरे एवी धारायें धर्म स न्मुखकरे, स्वदर्शननी वृद्धिकरे, घणाजीवोने धर्मजोडावे, एवा कारण मेलवे जेथकी जैनशासनने प्रभावे (दीपावे) ए बाह्यप्रभाविकगुण अथवा पोतानी आत्माना ज्ञानादिकगुण तेने वधारवा पुष्टकरवा ते अंतरप्रभाविक गुण ए प्रभावनागुण आठमो कह्यो.

हवे श्री सम्यक्त्वना सडसठभेद विशुद्ध व्यवहारथी कहेछेः—

तिस्सुद्धि लिंग लरकण, दूसण भूसण पभावगागारा ॥
सद्दहण जयण भावण, ठाण विणय गुरु गुणाईयं ॥ ९४ ॥

अर्थः— तिस्सुद्धि के० सम्यक्त्वनी त्रणसुद्धिछे, तेमां पहेली मनसुद्धिते श्रीजिन तथा जिनमत ए बे विना अपर सर्व असारछे इम चिंतवे ते मनशुद्धि; बीजी व चनसुद्धि ते श्रीजिनेश्वरनुं आराधन करतां सर्व कार्यनी सिद्धिथायज अने कोई पू र्वकृत दुःकृतना उदयथी जे कार्य न थयुं ते अन्य देवोथी शुंथवानुंछे, माटे अरिहं तनी सेवाथी कामना सिद्धिथायज, वास्ते स्वप्नमांपण अन्यदेवनी प्रार्थना न करुं,

एवुजे निसंकपणे बोलवु ते वचनसुद्धि कहियें त्रीजी कायशुद्धिते कोई पूर्वकृत अशुनोदयथी कोई मिथ्यादृष्टी दुष्टराजा अथवा चोर अथवा दुष्ट देवादिकजेठे ते णे खड्गादिके नेद्यो, निन्नादिके यंत्र घाणीप्रमुखे पीड्यो, अग्नी प्रमुखे दाज्यो, एवा महोटा मरणात कष्टआवे, पण एक श्रीजिनेश्वरविना अपर देवने वज्जजघनीपरे नमेनही ते कायशुद्धि कहियें

लिंगके० लिंगत्रणठे ते कहेठे —जे श्रीजिनागम सांनलवानी घणीज इछाराखे इंद्रियसुखना अनेककार्यमूकी आगम सांनलवाने तत्परहोय ते प्रथम सुश्रूषा लिंग कहियें बीजुलिंगते धर्मकरणी करवाने परमरागहोय जेटला धर्मकरणीयठे तेहिजकार्यमाने बाकी सर्व नवपूरणमाने ते बीजुलिंग त्रीजुलिंगते जे श्रीजिनेश्वर तथा जिनमार्गानुसारी गुरु तेना वैयावच्चमा यथायोग्य निश्चलानिग्रह रूप नियमें प्रवृत्ते ते त्रीजुलिंग जाणवु

हवे जेथकी हृदयगत् सम्यक्त्व लिखियें जाणिये तेलक्षण पांचठे --ते कहेठे तेमां पहेलुं लक्षण समठे, तेजेम रागद्वेपनी मंदता, तेम समतानी वृद्धि, सुखदुःखना उदये हर्षविषाद धरेनही ते समकहिये एटले समपणेहोय पापोदये पुण्योदयें अव्यापकहोय तेसम नामा प्रथम लक्षण जाणवु बीजु संवेग लक्षण ते नित्यें मोक्षानिलापरहे, जे जे मोक्षना कारणठे ते ते उपरें आदर घणुंहोय, परनावथी विमुखरहेते बीजु लक्षण त्रीजु निरवेद्यलक्षणते जे सराग सहित एकठत्र राज्यपाम्युंहोय तोपण एमजाणे जे ए बंदीखाने पड्योछु ए काऱागारथी केवारे छूटीस, सर्व पुद्गलिकनाव ते बंधनरूपगणे, समस्त संसारथी उदासरहे, ते निरवेद्य लक्षण त्रीजु जाणवु चोथु अनुकंपनलक्षण ते जे सर्व संसारीजीव उपरे अनुकंपाधरे, एटले संसारीजीवोना द्रव्यदुःख देखीने तेना उपर परम मैत्रीनावधरी, यथा शक्तियें उपकारकरे, मनमा एवी चाहना राखेजे कोई जीव पाप नकरे कोईजीव दुःखी नथाय, सर्व संसारीजीव द्रव्य नाव दुःखथी छुटे, धर्मपामे महारी शक्तिफुरे तो सर्वने धर्मरुचिवंतकरुं, जेम एना जन्ममरणना दुःखटले, एवी वासनाते अनुकंपा लक्षण चोथु जाणवु पाचमु आस्तिक्यता लक्षणते श्रीजिनशासन तथा जिनधर्मउपरें परम आसताहोय, परमरागहोय एरीतें धर्मरंग वासीतहोय ते आस्तिक्यता लक्षण पाचमु जाणवु

हवे पांच दूषण सम्यक्त्वना कहेठे —तेमा प्रथम संकादूषण ते जे जिनवाणीमां संदेहधरे ते शंकाकहिये तेना बे नेदठे —एक देशविषयी बीजो सर्वविषयी तेमां

सर्वविषयसंका ते धर्मछे के नथी अथवा जिनधर्म सत्यछे किंवा असत्यछे एवी वि चारणाते सर्वथी संकाजाणवी. अने जे देशसंकाते जीव सर्वगतछे के असर्वगतछे पृथ्वीमां जीवपणुं केमठरे अथवा निगोदादि स्वरूप केम घटमानथाय? कई युक्तिए मानियें अथवा वर्तमानकालें चारित्रछे के नथी इत्यादिक देशसंका जाणवी. तथा पूर्वेकहीजे सर्वसंका ए बे संका सम्यक्त्वने दूखवे ते संकानामे प्रथम दूषण जाणवुं.

बीजुं कांक्षादूषण. ते जे परदर्शननो अभिलापधरे तेने आकांक्ष, दूषणकहियें. ते बेप्रकारेछे एक देशथी आकांक्षा बीजी सर्वथी आकांक्षा तेमां सौगतादिक एकज दर्शननो अभिलापधरे ते तो देश विषय आकंक्षा, अने जे सर्वपाखंमीधर्मनी आकांक्षाध ते बीजी सर्वविषय आकांक्षा, एबीजुंदूषणकह्युं. सम्यक्त्व मलीनकरे ए श्रीजि.ागममां अविस्वास रूप दूषणछे.

त्रीजुं वितिगिछादूषण ते जे तपस्यादिक धर्मकरणीकरतां तज्जन्यफलनो संदेह धरे, ए धर्मक्रिया फलसे के नहीफलसे, केमके क्रिया बे प्रकारनी जगतमां देखाय छे, एक फलआपें बीजी अफलपण थाय, आषाढाचार्यनी परे संदेहमांपडे, इहां कोईशिष्यें पूछ्युं जे संकाते संदेहरूपछे, अने आ विचिकछापण संदेहरूप कहोछो तो ए बेमां शोविशेषपणुंछे जेथी भिन्न भिन्नकहोछो एम शिष्ये पुछयाथी गुरुकहे छे संका दूषणते द्रव्यगुण विषेछे अने विचिकछा क्रिया विषेछे ए त्रीजुं दूषण.

चोथुं प्रशंसादूषण ते कलिंगी तापस सांख्यादिक देखीने अहो ए महोटा त पस्वीछे, इयादिक वर्णन ते आसंसाकहियें, ए प्रसंसाकरतां असज्गुणाकरणे करी स म्यक्त्व मलीनकरे, मुग्धबुद्धि मिथ्यादृष्टी लोकने विषे अत्यादरथाय, मिथ्याधर्मनी सदापुष्टीथाय, केमके लोककहेके जैनधर्मीपण एनी प्रसंसाकरेछे, तो ए महागुणी छे. इत्यादिक दूषणोथी सम्यक्त्व मलीनथाय ए चोथुंदूषण.

पांचमुं दूषणते जे कुलिंगी अन्यदर्शनी सार्थे संस्तव परिचयकरे, नित्य भेगार हे, तेनी क्रियाना वर्णन महिमा सांभली श्रद्धादोषदलीथाय, अने तेनी शुलभ क्रियादेखी दर्शन दृढता सिथिलथाय, माटे अन्य दर्शनीनो परिचय त्यजवो ए पांचमुं दूषणछे.

हवे पांच भूषण कहेछेः—प्रथम स्थैर्यभूषणते जे श्रीजिनधर्मने विषे स्थिरताहो य, पण युक्ति कुयुक्ति सांभली चपलचित्त करेनही ते स्थैर्यभूषण. बीजुं प्रभावना भूषणते श्रीजिनशासननी अनेक संघयात्रा पूजा प्रतिष्टादिकना महोत्सव करेते बीजुं प्रभावना भूषण जाणवुं. त्रीजुं भक्तिभूषणते श्रीजिनशासन उपर घणीभक्ति

राखे, जेम कोई दलिद्री रोगी अपराधी कलंकी प्रमुख दोषनिधान महादुखियो दीन हीननिक्षाचरानुवस्था अनुनवतो, एवा दुःखी पुरुषने कोई उपकारी साम्यर्थ्यवान पुरुषे करुणानावी तेना सर्वदुःखफेडी महोटा धन धान्य राजऋद्धि समृद्धिये स हितकस्यो, हवेते दलिद्रीपुरुषने उपकारना करनार उपर केहवी नक्तिहोय तेथी अधिक नक्ति देव, गुरु, धर्म, उपरेंराखे ते त्रीजुं नक्तिनूषण कहिये. चोथुं नूषण श्रीजिनशासननेविषे कुशलता आगमसैलीयुक्ति प्रयुक्ति हेतुदृष्टांत माहे अतिनिपु ण ए नूषणवत क्याय खलायनही जिहाजाय तिहा आगमनी कुशलताथी अन्य दर्शनीमां जैनमार्ग दीपावे कोई स्थानके हारेनही, परिकर्म्मित बुद्धिवले प्रनुनो मार्गदीपावे घणाने जैनधर्मपमाडे ते चोथुनूषण.

पाचमुं तीर्थसेवा नूषण ते जे द्रव्यनावथी तीर्थनी सेवामां रसीयोहोय तिहां द्रव्यथी तीर्थ ते श्रीसिद्धाचलादिक पुण्यक्षेत्र जिहा तरतमयोगें घणाजीव सिद्धि वस्था घणाजीव रत्नत्रयीपाम्या घणासम्यक्त्वदृष्टी देवनिवासि ते एवा पुण्यक्षेत्रें अनेक जनसमुदाययुक्त विधिपूर्वक जायछे तिहा ते महापुरुषोना चरित्रने वहुया द करता पुण्यक्षेत्रना योगथी घणा कर्मोनी निर्जराथाय, केमके बंध तथा निर्जरा ते द्रव्य क्षेत्र काल नाव ए चारने अनुकूलता माफक थायछे शुनद्रव्यादिक चा रने निमित्ते पुण्यनी वृद्धिथायछे, तेथी निकटसंसारीथायछे. वली अशुनद्रव्यादिक चारने योगे संसारदुःख दुर्गतिनी वृद्धिथायछे, माटे कर्मक्षय निमित्तें द्रव्यतीर्थज वु अने नावतीर्थ ते द्वादसांगी अथवा चतुर्विध संघ तेनी सेवा नक्तिवहुमान क रतां आत्मा निर्मलथाय, वीजाजीव धर्मपामे ए तीर्थसेवानामे पांचमुनूषणकह्युंछे

हवे आवप्रनावक कहेछे पावयणी धम्मकही, वाई निम्मित्तउ तवस्सीय ॥ वि ज्जा सिद्धो अ कवि, अठेव पनावगा नणिया ॥ १ ॥ अर्थ – पावयणीके० प्रावचनीते जिनमार्गमां कुशल जिनमार्गदीपावे, तेथी प्रनावक कहीये. वीजुं धर्म कथामां अतिनिपुण होय ते घणा दुर्बोधजीवोने धर्मपमाडे, शासननी उन्नतिवधा रे, माटे वीजो प्रनावकजाणवु. त्रीजो प्रनावक वादी तेएकवातने शेकडावखततया पे, वलीतेज शेकडावखत उत्थापे पण किहा खलायनही प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत यु क्ति कुयुक्तिमां निपुण, एवा तीक्ष्णबुद्धिमान वादी स्याद्वादमां निपुण ते राजद्वारें बहुजनसमक्ष जयपताकावरे, शासनने दीपावे माटे वादीप्रनावकत्रीजो जाणवो चोथो निमित्तज्ञानी प्रनावक ते जे पूर्व आम्नायनायोगथी नूत नविष्य वर्तमान कालनी वातकहे ते निमित्त कुशल, कोई तथाविध अवशरे राजद्वारादिकमां शा

सननी उन्नति करवा माटे कोई लाजालाज गवेषी निमित्तकहे, सर्वप्राणीने चमत्कारपमाडी पोताने अनुकूलकरे, तेअनुकूलथयाथी धर्मनी वृद्धिथाय शासनदीपे, ए चोथो प्रजाविक जाणवो. पांचमो तपसी प्रजावक ते श्रीजिनागमोक्त विधिमर्यादा पूर्वकतपकरे, तेने अनेक कठिण कर्मनी निर्जराथाय, आमोसहीप्रमुख घणी लब्धि उ उपजे, तपस्याना महात्म्यथी इतिउपद्रव देवछलादिक सर्वे समीजाय, उपासना कष्टविनाश तेने देवता पोतानीमेले आश्रितथई महीमावधारे, एवा शक्तिवंत तपस्वी जिहांविचरे तिहां श्रीजिनशासनदीपावे, माटे प्रजावक कहिये. छठोविद्यासंपन्न प्रजावक ते आकाशगामिनी प्रमुख अनेक विद्यायें संपन्न महापुरुष कोई विषम वेलामां श्रीसंघनो उद्धारकरे, विघ्ननिवारे, दुष्टदमनकरी संघनीरक्षाकरे, शासनेदीपावे, घणाजीवोने धर्मसन्मुखकरे, माटे प्रजाविक कहियें, सातमो सिद्ध प्रजाविक ते जे पूर्व आम्नायें गुरुकृपाथी पाम्यो अंजनसिद्धि चूर्णसिद्धि मंत्रसिद्धि कनकसिद्धि प्रमुख अनेकसिद्धि संपन्न होय, ते कोई विषमताने योगे लाजालाजदेखी कोई अद्भुत सिद्धिनाबलेकरी संघनो विघ्नदूरकरे, शासननी महोटाई करी देखाडे माटे प्रजाविक कहिये. आठमो कविप्रजावक ते जे जिनमार्गेधर्मने अणदूषवतो समस्त वर्त्तमात श्रुतमां निपुण स्वपर शास्त्रवेता कोई शासनोन्नतिकारणे अथवा कोई विघ्नजय निमित्ते कोई महा गंजीरार्थे अतिशयोक्ति युक्त प्रकश्वरे जे सांजलतांज पंमितहोयते चमत्कारपामी अनुकूलथाय, एम ए प्रजावक चिंतितकार्य सर्वेकरे शासनोन्नतिकरे माटे प्रजाविक जाणवो ए आठप्रजावक कह्या.

हवे छ आगार कहेछे तेमां प्रथम आगार रायाभियोगेण एटले राजाने आदेशें कांई धर्मविरुद्ध करवुंपडे तेनो आगार, बीजो गणाभियोगेण एटले घणालोक न्यात जात प्रमुखना जोरथी विरुद्ध करवुंपडे तिहां प्रतिज्ञा जागेनही ते बीजो आगार, त्रीजो बलाभियोगेण ते कोई महाबलवान बलात्कारे पकडी परवशकरी जोरावरीथी अजक्ष प्रमुख मुखमांनाखे खवरावे तेथी प्रतिज्ञा जांगेनही ते त्रीजो आगार. चोथो देवाभियोगेण ते कोई दुष्ट देव पोतानी दिव्यशक्तियेंकरी मनुष्यनी चेतना विकलकरे, अथवा अत्यंत मरणांत कष्ट समस्त कुटुंबने आपे ते विकलतामां अथवा कष्टनो मार्यो राजवेठ समान कांई विरुद्ध करवुंपडे तिहां प्रतिज्ञा जांगेनही ए चोथोआगार. पांचमो गुरुनिग्गहेणं ते माता पिता वृद्धभ्राता प्रमुखना केहेवाथकी ते समजाव्या न समजे अने जो तेमनुं केहेवुं न करे तो लोक निंदा करे, एम विचारी तेमना केहेवाथकी कांई विरुद्ध करवुंपडे ते पांचमो आगार. छठो

वित्तिकत्तारेण ते वृत्ति कहेतां आजीविका तेहिज महोटा कातार एटले अटवी ए टले कोई पापोदयथी एवु द्रव्य क्षेत्रादिक योग मलिजाय के जेथकी आजीविका नी दुर्लनतायईजाय त्रणदिवश पर्यंत जिहांसुधी शक्तिपुरे परिणामटके तिहा सु धीतो टक्योरहे पछे जाणेजे हवे टकासेनही एवुदेखे तेवारें कोई विरुद्ध कारणे आजीविका करवीपडे ते छठो आगार जाणवो. ए छए आगारतो जे उत्सर्गे पाली शकेनही तेनेछे, पणजे दृढ परिणामी होय ते सावास्ते आलंबनलहे, जे मदहोय ते लाकडी लेइने चाले तो तेने कोई विरुद्धपण कहे नही.

हवे चार सद्दहणा कहेछे तेमा प्रथम परमार्थजे तत्वार्थ तत्वज्ञान शास्त्ररह स्य तेनो परिचयकरे, केमके तत्वज्ञान पाम्याविना जे उद्यमछे ते कष्टरूपछे, माटे तत्वज्ञान परिचय ए प्रथम सद्दहणाकहिये बीजी तत्वज्ञाननी सकलपरमार्थनाजा ण जे मुनिराज तेनी सेवाकरे, एवा मुनीने सेव्याविना तत्व प्राप्तिपणनथाय, माटे तत्व ज्ञाननी सेवना ते बीजी सद्दहणाजाणवी त्रीजी व्यापन्नदर्शनी वर्जन ते व्यापन्नके० गयुंछे दर्शन जेथकी, एटले श्रद्धानृष्ट थयेला स्वदर्शनी, तेनी सगतन करवी, हीणानी सोवतकरतां साधुजनपण हीणोकेहेवाय, वास्ते दर्शन भ्रष्टनुं सग वर्जवु ए त्रीजी सद्दहणा जाणवी चोथी कुदृष्टी संगवर्जन ते मिथ्यात्वी ता पसादिकनी संगतनकरे, रासन्नसगे गायकुटाणी माटे धर्मार्थियें कुलिंगीनु संगवर्ज वु एचोथी सद्दहणा जाणवी

हवे छ प्रकारे जयणाकहेछे तेमां प्रथम अन्यदर्शनी जे तापसादिक तथा तेना देवजे ब्रह्मा विष्णु महेस शक्ति प्रमुख २ तथा तेणे ग्रहणकरेलाजे अरिह तना चैत्य प्रतिमा वड्निाथ प्रमुख एटलानी साथे छप्रकारनो व्यवहार नकरवो छ प्रकारनी जयणा कहियें तेनानाम कहेछे एक वदननकरवु बीजु विशेष बहुमान पूर्वक पचाग प्रणिपातादिक तेने नमन कहीयें ते पण नकरवु त्रीजुं दानजे अन्न वस्त्रादिक तेपण नक्तिपूर्वक धर्मसाधनार्थे नआपवु उचित अनुकंप जाणीदेवु ते नी मनाई नथी चोथुं अनुग्रह प्रदान जे वारवार तेडीतेडीने देवु ते पण नकरवु पांचमुं आलाप ते बोलाव्याविना आगलथी एकवार बोलवु तेपण नकरवु, छठो सलापते वारवार बोलवु तेपण नकरवु ए छ थाना करतां सम्यक्त्वजाय माटे छ थाना वर्जवा ए छ प्रकारनी जयणा कहियें

हवे सम्यक्त्वनी भावना कहेछे —समस्त धर्मनु मूलते सम्यक्त्वछे एवु भाववु ते प्रथम भावना. तथा समस्त धर्मरूप नगरनो द्वार तेपण सम्यक्त्वछे एवु भाव

वुं ते बीजी भावना. तथा धर्मरूप प्रासादनो पाइयो अथवा पीठते पण सम्यक्त्व जछे एवुं भाववुं ते त्रीजीभावना, तथा सम्यक्त्वते आत्मार्थिकजीवोने निधान अखुट खजानोछे एवुं भाववुं ते चोथीभावना, समस्त धर्मनो आधार ते सम्यक्त्व जछे एवी वासना ते पांचमी भावना जाणवी, तथाधर्मरूप अमुल्यचीजने राखवा नुं भाजनते सम्यक्त्वछे एम भाववुं ते छठी भावना जाणवी.

हवे सम्यक्त्वना छ गण कहेछे. शुद्धपद पणामाटे अस्ति ते जीवछे एम दृढ निश्चे जाणवुं ते प्रथम गणछे. तथा सास्वत नित्यछे द्रव्यथी किवारे नाशनथी ए बीजुंगण. तथा पुण्य पापनो कर्त्ता तेपण ए जीवजछे ए त्रीजुंगण. तथा वली पुण्य पापनो भोक्ता तेपण जीवजछे ए चोथुंगण. तथा निर्वाण जे मुक्ति सिद्धछे ए पां चमुंगण. तथा ते मुक्तिपामवानो उपायपणछे ते छतुंगण. ए छ गणाविशेषनी च र्चा दर्शन सितरी प्रमुख ग्रंथथकी जाणवी. ए छगणनी अप्रतीत अविश्वास ते मिथ्यात्व जाणवुं. माटे छ गण रुडीरीते सद्दहवा आगमरुची गुरुपासेथी धारवा.

हवे सम्यक्त्वनी निर्मलताने अर्थे दशनो विनयकरवो ते कहेछेः– अरिहंत ते विचरता तीर्थंकर २ ज्योतिस्वरूपी सिद्ध ३ चैत्यजे प्रभुना देरासर ४ श्रुतसिद्धां त ५ वीतरागनो धर्म ६ मोक्षमार्गना साधक साधु ७ पांचप्रकारना आचार ते पोतेपण पाले अने परने पलावे ते आचार्य ८ जे इग्यारअंग पोते भणे अने प रने भणावे ते उपाध्याय ए पवयणीते चउदपूर्वधर १० दर्शनजे सम्यक्त्व ए दश नो विनयकरवो एदशनो यथायोग्य अनुकूलपणेथयीने विनय करताथका सम्य क्त्व अतिनिर्मल थाय.

विछारं तुह समया, सया सरंताण भवजीवाणं ॥
सामिय तुह प्पसाया, हवेऊ समत्त संपत्ति ॥ २८ ॥

अर्थः–हे स्वामिन् तुहसमया के० तहारा परूप्या सिद्धांतनो विछारं के० विस्तार तेने सया के० सदाकाल सरंताण के० अनुसरतां अभ्यासकरतां एवा भवजीवाणं के० भव्यजीवोने तुहप्पसाया के० ताहरा पशायथी सकल सिद्धांतनोपार एवोजे समत्त के० सम्यक्त्व तेनी संपत्ति के० प्राप्ति ते सम्यक्प्रकारे निरावरणभावें हवेयु के० थाउ. ए प्रकरण करनारनी आसीसछे. इति सम्यक्त्वस्तव बालावबोध संपूर्ण मगमत्.

॥ अथ प्रशस्तिलिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥ यह विधि समकित गुणतणी ॥ प्रापति आगम मांहि ॥ भापी नि

सुणी सद्दहे ॥ तस दो डुरगति नाहिं ॥ १ ॥ सुरपति सुख लेवो सुगम ॥ सुजन रक्ष इक रत्त ॥ डुर्लज नरजव जगतमे ॥ समकित गुण संपन्न ॥ २ ॥ दान दया सयम क्रिया ॥ समकित युत शिव हेत॥नहिं तो मडुक चूर्णपरि॥जव बंधन संकेत ॥ ३ ॥ विण समकित सयम क्रिया ॥ करे अनंती वार ॥ पार न पावे तेह सुल ॥ अड जवमे निस्तार ॥ ४ ॥ एक सहित दश गुण वधे ॥ शुन्य अक कहिवाय ॥ बोधियुक्त गुण सवि क्रिया ॥ नहितो कष्ट कहाय ॥५॥ पुन्यदिशी पूरव जली ॥ जिहाँ उदयाचल थान ॥ कल्याणक सवि जिनतणा ॥ तिण ए दिशि परधान ॥ ६ ॥ सुविहित सूरि गुणे जस्या ॥ (श्री) पुन्यसिंधु सूरीस ॥ वाचक ज्ञानसागर तणि ॥ नितु जस नामे सीस ॥ ७ ॥ तास शिष्य पूरव तणा ॥ तीरथ जेटण काज ॥ शुज सकुने सूरतथकी ॥ करि प्रयाण शुज साज ॥ ८ ॥ यमुना सुर तटनी तटे ॥ वद न श्रीजिनपाय ॥ नगर मगसुदावाद लगि॥ अनुक्रम पहुता जाय ॥ ए ॥ साउ स खा गोत्रें जलो ॥ साह सुगाल सु नाम ॥ डुखमा काले धर्मनो, कस्यो सुगाल सु गम ॥ १० ॥ समतसिखर गिरिराज पर ॥ वीसे टूंके स्तूप ॥ थापी तिम इकवी समो ॥ कस्यो प्रसाद अनूप ॥ ११ ॥ पचम आरे परगडो ॥ कस्यो उद्धार प्रसिद्ध ॥ मानव जव सफलो करी ॥ जगमाहे जश लीध ॥ १२ ॥ तसु सुत जागनिधी जलो ॥ दाता धर्मी दक्ष ॥ राजसजा मरुन समी ॥ अनिनव अजय प्रत्यक्ष ॥ ॥१३॥साह सुला नामे निपुण ॥ आगम रुचि प्रिय धर्म ॥ तास कहणथी ए कियो ॥जापामय स्तव मर्म ॥ १४ ॥ आगे वहुश्रुते वहु लिख्या ॥ समकित जेद विशेष ॥ वाकु लखि जापा लिखु ॥ उनमे कृण विशेष ॥ १५ ॥ तोजी तस आसय अगम ॥ हुं उद्मस्थ अयाण ॥ जूल चूक जे मुफतणी ॥ वुध जन लाजो गण ॥ ॥ १६ ॥ आगम जलधि अपार हे ॥ मुज मति नौका तुच्छ ॥ क्यो निवहे जादो नदी ॥ पकरे जेडी पुच्छ ॥१७॥ अल्पमति में अज्ञान हु ॥ जाणु न वहुत रहस्य॥ कृपाकरी मोपें कृति ॥ करजो शुद्ध अवस्य ॥ १८ ॥ सज्जन मुफशिरमोर हे ॥ हुं सज्जनको दास ॥ सतरुपाथी मुज हुसे ॥ ए सफलो सुप्रयास ॥१ए ॥ कुमति कदाग्रह ज्रमथकी ॥ वितथ लखाणु जेह ॥ श्रीसघ साखे मुफहुउ ॥ मिछाडुक्कड तेह ॥ २० ॥ दूर्लज चारुं अगमें ॥ समकित एह अमूल ॥ जविजन तस उद्यम करो ॥ जिम शिवसुख अनुकूल ॥ २१ ॥

इतिश्री सम्यक्त्व सरूपस्तव वालावबोध सहित समाप्त

॥ श्रीशासनतिलकाय नमः ॥

॥ अथ श्रीषष्टिशतक बालावबोध व्याख्यासहित प्रारंभः ॥

प्रथम व्याख्याकर्त्तानुं मंगलाचरण.

दोहाः— शासननायक जगतिलो, प्रणमी वीर जिणंद ॥ षष्टीशतक प्रकीर्णनो, अर्थ लिखुं मतिमंद. ॥ १ ॥ अर्थः— शासनना नायक एटले अधिपति, जगतिलो एटले त्रण जगतनेविषे तिलक समान, एहेवा जे श्रीवीरजिनेंद्र, तेमने प्रणाम करीने आ षष्टी शतक प्रकर्णनो अर्थ, मारी मंदमतिने अनुसारे लखुंछुं ॥१॥

मूलप्रकरणकर्त्तानुं मंगलाचरणः—

मूल आर्यावृत्तमः— अरिहं देवो सुगुरू, सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो ॥ धन्नाणं कयछाणं, निरंतरं वसइ हियम्मि॥१॥दोहाः—धन्य कृतारथके हिये, श्रीअरिहंतसुदेव ॥ सुगुरुवसे जिनधर्मपुनि,पांचनमणनितमेव॥१॥व्याख्याः—अरिहं--देवेंद्रकृत पूजादिकने योग्य, अथवा अ-नथी, रह—छानो कांई पदार्थ जेनाथी; अथवा अ-नथी रह—रथ जेने समीप; अथवा अ- नथी, रह—प्राप्ति पुत्रकलत्र धनादिकनी जेने; अथवा अ- नथी, रह—त्याग आत्मगुणगणनो जेने, एवो देवो—देव, तथा सु—रूडा शोभायमान ज्ञान क्रियावान, गुरू—धर्मशास्त्रार्थनो उपदेश देवावाला अथवा तेनुं कथन करवावाला, शुद्धं—निर्मल ते कषायमल रहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित एवो धम्मं—जे दुर्गतिनेविषे पडता प्राणीउने धारे ते श्रीवीतरागनो धर्म जाणवो, पण अन्य हरिहरादिकनो नही, च—समुच्चयार्थ छे, एटले जे पदनी साथे बोलवुं योग्य होय ते पदनी साथे एनाथी बोला यछे. वली पंच—अरहंतादिक पांच परमेष्टी, तत्संबंधी. नवकारो--नमस्कार, ए चारपदार्थ ते धन्नाणं--धन्य जे पुण्यवान प्राणीउ, कयछाणं--कृतार्थ प्राणीउना एटले निवड जे रागद्वेष तथा मोहरूप गांठी भेदीने निर्मल सम्यक्त्ववान थयाछे, तेउना हियम्मि—हृदयनेविषे एटले अंतःकरणनेविषे निरंतरं—अंतराय रहित एटले सदासर्वदा वसइ--वसेछे. एथी पापी दरिद्री एवा जे मिथ्यादृष्टि तेउना हृदयनेविषे वसे नही एवुं सूचन कर्युं. एनो फलितार्थ आछेः-- जे धन्य अ

ने कृतार्थ पुरुषो होय तेमना हृदयनेविषे सुदेव, सुगुरु, शुद्धधर्म तथा पचपरमेष्ठीने नमस्कार ए चार पदार्थो निरतर वास करी रहेछे, परतु बीजाना हृदयमा रहेता नथी ॥ १ ॥

अवतरण -पोताथी बीजुंकाई नबने तोपण अरिहत देवनु आराधन अवश्य करवु ते कहेछे – मूल –जइ न कुणसि तव चरण, न पढसि न गुणेसि देसि नो दाण, ता इत्तिय न सक्किसि, ज देवो इक्क अरिहंतो ॥ २ ॥ दोहा --जो न करै तप दान तूं, न पढै न गुणै तत ॥ तद आणद जपो सदा, देव एक अरिहत ॥ २ ॥ व्याख्या – जइ-जो तवचरण– तपचारित्रने तु न कुणसि– न करी शकतो हो न पढसि– सूत्र तथा प्रकरणादिने भणी शकतो न हो, न गुणेसि–प्रथम भणेला सूत्र अथवा प्रकरणादिकनुं मनन अथवा विचार करी शकतो न हो, अने दाण– सुपात्रादिकने काई पण दान देवु ते नदेसि–तु दई शकतो न हो ता–तो पण इत्तिय– आटलुं न सक्किसि– तु करी शकतो नथी? ज– जे, देवोइक्क अरिहतो– देव तो एक अरिहतज अमारे आराधवा योग्य छे, तेनी साथे सुगुरु तथा सुधर्म पण लई लेवा एनो भाव ए छे के, बीजु काई पोताथी बनी शकतु न होय तोपण अर्हद्देव, गुरु, सुसाधु तथा सुधर्म ऊपर श्रद्धा राखीने तेमनेज मानवु ते सर्वोत्तम छे ॥ २ ॥

अवतरण –ससारना दु खनो नाश करनार मात्र एक वीतरागनो धर्मज छे, बीजो कोई नथी एम कहेछे मूल – रे जीव भव दुहाइ, इक्कं चिय हरइ जिणमय धम्म ॥ इयराण पणमतो, सुह कय्ये मूढ मुसिओसि॥३॥ दोहा – भव दुष हरन जिनेंद्र मत, धर्म एक रे जीव ॥ परसुर नमतो तू मुस्यो, सुन कारजमे क्लीव ॥३॥ व्याख्या –रे जीव– हे जीव इक्कचिय– एकज जिणमय– जिनमत ते श्रीवीतराग भाषित धम्म–धर्म, भव दुहाइ– ससारसबधी जन्मजरा मरणादिक दु खोने हरइ– हरण करेछे एटले नाश करेछे. एमज सुदेव अने सुगुरु पण जाणवा पण इयराण–इतर जे वीतराग देवथकी अन्य देव हरि हर ब्रह्मादिक छे तेओने, सुहकय्ये–पोताने सुख थवाने अर्थे, पणमतो–प्रणाम करता मूढ–हे मूर्ख, मुसिओसि–तु मूसायो छे एटले ठगायो छे एनो फलितार्थ -- सुदेव सुगुरु तथा सुधर्मने मूकीने कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्मने जे सेववु तेथी काई कल्याण थतु नथी ॥ ३ ॥

अवतरण – वली पण एज भावनी पुष्टी करेछे – मूल – देवेहि दाणवेहि य, सुर्ख मरणाउ रक्खिउ कोई ॥ दढ कय जिण समत्ता, बहु अवि अजरामर

पत्ता ॥ ४ ॥ दोहाः-- सुण्यो न देव रु दानवे, मरणथि राख्यो कोय ॥ बहुत वि अजर अमर थया, निश्चल समकित जोय ॥ ४ ॥ व्याख्याः— देवेहिं— सुरोए, य— तेमज दाणवेहि— असुरोए मरणाओ— मरण थकी कोई— कोईने पण रक्खिओ—रक्षण कर्युं छे एवुं सुओ--सांभल्यामां अथवा दीगमां आव्युं नथी. अने दढकयजिणसम्मत्ता—जेणे निश्चय करी एकजजिन देव सत्य मान्यो छे, अथवा मिथ्यात्वमोह छेदकरूप जे जिनप्ररूपित धर्म तेना तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक् दर्शन जेणे निश्चय कर्यो छे, एवा बहुअवि—घणा प्राणीओ अजरामर—मोक्षस्थानने पत्ता—पाम्या, पामेछे अने पामशे. एनो भावार्थः— एवुं क्यांय सांभल्यामां अथवा दीगमां आवतुं नथी के कोईने देवे अथवा दानवे मरणथी बचाव्युं छे, परंतु जेणे श्रीजिननो भापेलो धर्म पाली सम्यक्त्व पाम्यो छे एवा घणा प्राणीओ मोक्षने पाम्या छे; उपचारथी पामे छे अने पामशे, ॥ ४ ॥

अवतरणः— सम्यक्त्व सकल सुखनुं कारण छे, अने मिथ्यात्व सकल दुःख अथवा अनर्थोनुं कारण छे; तोपण बधा सम्यक्त्वने अंगीकार करीने मिथ्यात्वने केम मूकी देता नथी? ते दृष्टांते करी कहेछेः— मूलः-- जह कुवि वेसा रत्तो, मुसिज्झमाणोवि मन्नए हरिसं ॥ तह मिछ वेस मुसिआ, गयंपि न मुणंति धम्मनिहिं॥५॥ दोहाः—जिम वेस्या रत कोइ नर, मने ठगातो सर्म ॥ तिम मिथ्या वेस्या ठग्यो, लखे न गत निधि धर्म ॥ ५ ॥ व्याख्याः—जह—जेम कुवि—कोईक माणस वेसारत्तो—वेस्यानेविषे रक्त एटले आसक्त थयो थको मुसिज्झमाणो—खराब थवा मांड्यो होय एटले वेस्याए तेनुं धन वगेरे स्त्रीना संगथी जेटली हाणी थायछे ते बधुं करवा मांड्युं होय तोपण ते हरिसं—हर्षने मन्नए—मानी लियेछे; तह—तेम मिछ वेस मुसिआ—मिथ्यात्वरूपिणी वेस्याएकरी ठगायला लोकनुं सर्वस्व गयंपि—गयुं छतां पण न मुणंति— जाणता नथी. एनो भावार्थ आ छेः— जे मनुष्यो मिथ्यात्वमां मुंझाई रह्या छे तेओ धम्मनिहिं—चारित्र धर्मनुं निधान जे सम्यक्त्व अथवा धर्मनिधि ते सम्यक्त्वरूप निधान तेनी हाणी थई छतां पण जाणता नथी.

अवतरणः— मिथ्यात्वी जीव धर्मरूप निधाननो नाश थएलो देखता नथी, एवुं पांचमी गाथमां सामान्यपणे कह्युं, तेज आ छठी गाथामां कुलाचार आश्री विशेषपणे कहेछेः— मूलः--लोअ पवाहे सकुल, कमम्मि जइ होइ मूढ धम्मुत्ति ॥ तामिछाणवि धम्मो,थक्काय अहम्म परिवाडी ॥ ६ ॥ दोहाः— लोक प्रवाह स्वकुल क्रमे, धर्म होय जो बाल ॥ तो धर्मी मिथ्यात्व कुल, थकि अधर्मकी चाल ॥ ६ ॥ व्या

ख्या – लोअ पवाहे–अजाण लोकोनी विचार रहित जे प्रवृत्ति ते लोकप्रवाह क हियें, ते रूप सकुल कमम्मि– स्वकुलक्रम एटले पोताना वंश परंपरानो आचार पाल्याथी मूढ–हे मूर्ख एटले विवेक विकल, जइ–जो धम्मुत्ति होइ–धर्म थतो हो य ता–तो मिछाणवि–चंडाल, माछीगर, भिल्ल तथा म्लेछादिक अनार्यने पण धम्मे–धर्म थाय, तथा अहम्म परिवाडी–अधर्मनी परिपाटी एटले पापपद्धति अथवा श्रे णी थक्काय–थाकी एटले एक ठेकाणे रहीने पुन्यपणाने पामी एवु थशे एनो भावा र्थ आ छे –हे मूर्ख, जो लोकप्रवाहरूप पोतानो कुलाचार पालवाथी धर्म थतो होय, तो म्लेछ लोकोने पण धर्म थवो जोये तथा अधर्मनी परिपाटी थाकी ए टले लोकमाथी अधर्मनो अभावज थई जवो जोये माटे जेओ लोकप्रवाहरूप स्वकुलाचारनेविषे धर्मने मानेछे, तेओए म्लेछादिक अनार्योनेविषे पण धर्मनु स्था पन कर्यु एम थशे, अने धर्म तथा पाप ए बे पदार्थ जुदा ठरशे नही ॥ ६ ॥

अवतरण – एनीज लोक अने लोकोत्तरनेविषे विशेषता बतावे छे – मूल लोयम्मि राय नीई, नाय न कुलक्कमम्मि कइयावि ॥ किं पुण तिलोय पहुणो, जि णिंद धम्माहि गारम्मि ॥ ७ ॥ दोहा –कुलाचार करि जो नही, राजनीतिमें न्याय॥ जैनराजमे तो किसुं, कुलाचार करि नाय ॥ ७ ॥ व्याख्या– लोयम्मि–लोकने विषे एवो नायं–न्याय छे के, कुलक्कमम्मि–कुलक्रम एटले कुलाचारनी अपेक्षाए क री कइआवि– कदापि रायनीई–राजनीति न–नथी प्रवर्त्तती, त्यारे पुण–वली कुलाचारे करी तिलोय पहुणो–त्रिलोक प्रभु एहवा जे जिणिंद–जिनेंद्र तेना ध म्माहि गारम्मि– धर्मरूप अधिकारनेविषे प्रवृत्ति किं– केम थाय? अपितु नज थाय अहीं अर्थनी योजना आवी रीते करवी – कुलनो आचार अवश्य पालवो, पछी ते सारो होय के नरशो होय तोपण तेनो तिरस्कार करवो नहीं, एवी कांई राजनीति पण होती नथी, केमके जो एहेवी राजनीति होय तो धर्म अने अ धर्मनी व्यवस्था भिन्नपणे थाय नही माटे राजनीतिनो संबंध कुलाचारनी साथे होतोज नथी एथी कुलाचार पालवो एहेवो नियम नथी, एटले कुलाचार धर्म थी विरुद्ध होय तो तेनो त्याग करवामा कांई अटक नथी एवु लोकमा पण सिद्ध था यछे, त्यारे त्रिलोकपति जे जिनेंद्र तेना धर्मरूप अधिराजना अधिकारनेविषे कुलाचा रनी अपेक्षा केम होय? एटले कुलाचारना आग्रहनेविषे धर्म होतो नथी. एनो भावा र्थ –जेम राजानी आज्ञाएकरी राजनीति होयछे, तेम जिनेंद्र देवनी आज्ञाए शुद्ध ध र्मरूप अधिराज अथवा अधिकार होयछे, अन्यथा न होय ॥ ७ ॥

अवतरण—एवी रीते लोकप्रवाहरूप कुलाचार सेव्याथी जिनधर्मनी पण सिद्धता थती नथी, त्यारे तेथी संसारनी निवृत्तिनो संभव ते शीरीते थाय! ते देखाडेछेः— मूलः— जिण वयण विअन्नूणवि, जीवाणं जं न होइ भव विरई॥ ताकह अवि अ न्नूणं, मिछत्त हयाण पासम्मि ॥ ७ ॥ दोहा ॥ कर्म जिन मत निपुनके, जो भव विरति न होय ॥ तौ मिथ्यात्व हत मूढके, पास विरति किम जोय ॥ ७ ॥ व्याख्याः— जिण वयण वियन्नूणवि जीवाणं—जेओ जिन वचनोना जाणनारा छे, एहेवा केटलाएक जीवोने पण कुगुरु तथा कुग्रहनायोगथी जं- जो भवविरइ—भवविरति एटले संसारनी निवृत्ति न होइ- नथी थती ता—त्यारे मिछत्तहयाण—मिथ्यात्वेक रीने हणायला एहेवा अवि अन्नूणं—जिनागमना अजाण लोकछे तेउने पासम्मि— पासे भवविरति एटले संसारनी निवृत्ति कह--केम थाय! अपितु नज थाय. एनो भावार्थः— केटलाएक जिनागमना जाणनारा मनुष्योने पण कुगुरु तथा कुग्रहजे डुराग्रहतेना प्रसंगथी संसारनी निवृत्ति थती नथी, तो मिथ्यात्वेकरी हणायला जे अजाण लोक, तेउने भवनी निवृत्ति ढुकडी ते केम होय! एटले ते चारित्र धर्म क्यांथी पामे के जेथी कर्मबंध त्रूटे! अर्थात् चारित्र धर्म नज पामे. ॥ ७ ॥

अवतरणः— एवी रीते विरतिनुं डुर्लभपणुं देखाड्युं; हवे अविरति जीवोने जो ईने विरति जीवोने शुं थायछे ते कहे छेः— मूलः—विरयाणं अविरए, जीवे दहूण होइ मण तावो ॥ हा हा कह भवकूवे, बुडंता पिछ नच्चंति॥ ए॥ दोहाः--देख अ विरती जीवकूं, ताप विरति मन होय॥ हा हा किम भव कूपमें, बूडत नाचै जोय ॥ए॥ व्याख्याः— अविरए— अविरति जे हिंसादि अढारे पापना सेववा वाला, जी वे— जीवोने दहूण— देखीने विरयाणं— विरतिवंत पुरुषोना मणतावो—चित्तनेविषे करुणारूप ताप होइ— थायछे. तेनुं स्वरूप आवुं छेः— हा हा— खेदनी वात छे. कह— केम भवकूवे--संसाररूप अंधकूपनेविषे बुडंता—बूडता ते अविरति अपच्चा स्काणी अनाणी प्राणी नच्चंति— नाचेछे एटले नृत्य करे छे अथवा खुशी थायछे. हे आत्मीन्, पिछ— देष, डुर्गतिनुं कारण जे पाप, ते करी करीने बापडा जीवो खुशी थायछे; एउनुं कल्याण ते अमे केम करी शकीये! एवी रीते अनेक प्रकारे विरतिवंत पुरुषोना मननेविषे ताप अथवा खेद थायछे; पण बीजा कोई प्रका रनो ताप विरतिवंत पुरुषोने थतो नथी. ॥ ए ॥

अवतरणः— अविरतिने जोईने विरतिना मनमां दयाभाव उत्पन्न थायछे, एम कह्युं; हवे बीजा सर्व पापोनुं फल कडवुंज छे, तेमां पण मिथ्यात्वनुं फल अति

दुष्ट छे ते देखाडे छे – मूल –आरंन जम्मि पावे, जीवा पावति तिरक दुरकाइ॥ ज पुण मिछत्त लव, तेण न लहति जिण बोहि ॥ १० ॥ दोहा –आरंनज पापे करी, जीव महा दुख पाय ॥ वलि मिथ्यात्व लवे करी, लहै न समकित नाय ॥ १० ॥ व्याख्या – आरंनजम्मि–जीवने उपद्रव करवो, ते आरंन थकी उत्पन्न थया जे पावे–पाप, ते कखाथी जीवा–जीवो तिरक दुरकाइ–तीक्ष्ण दुखोने पावति–पामेछे, एटले दुखनेज पामेछे पण तेथी सम्यक्त्व न पामे एम नथी थतु, किंतु सम्यक्त्व पामवानो तेउने संनव होयछे, अने प्राप्त पण थाय छे पुण–परतु ज-- जो मिछत्त लव- विपरीत प्ररूपणादिक मिथ्यात्वनो लवमात्र पण जो जीवने आवीने वलगे तो तेण–तेना योगथी जिणबोहि–जिनबोधि ते श्री जिननापित सम्यक् दर्शन, तेने पर नवे न लहति–पामतो नथी एनो नावार्थ –बीजा पापो कस्या उता पण नवांतरनेविषे सम्यक्त्वनी प्राप्ति थवानो संनव छे, परतु मिथ्यात्वना लवना संयोगथी नवांतरमा सम्यक्त्वनी प्राप्ति थती नथी माटे बीजा पापो करता मिथ्यात्व पापनुं वधारे दुष्टपणुं देखाडयुं छे ॥ १० ॥

अवतरण –जे उत्सूत्र तेज मिथ्यात्व छे ते प्रगट करी देखाडे छे – मूल –जिणवर आणा नंग, उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउ ॥ आणा नंगे पाव, ता जिणमय दुक्कर धम्म ॥ ११ ॥ दोहा –देशना य उत्सूत्रकी, होय जिणाज्ञा नंग ॥ आज्ञा नंगे पाप तद, दु कर जिण धरमग ॥ ११ ॥ व्याख्या – उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउ–उन्मार्गी उत्सुत्रनोलेश देखाडवाथी उत्पन्न थयो जे जिणवर आणानंग– जिनवरनी आज्ञानो नंग (नंग कह्याथी अत्यंतानाव नही पण नंगनी पठे अथवा खमनी पठे थायछे ते दु खनो हेतु होवाथी तेज अहीं जिनाज्ञानो नंग जाणवो) आणानंगे–जिन आज्ञानो नंग थयाथी पाव–पाप थायछे, ता–तेथकी जिणमय--जिनमत ते श्री जिनेश्वरनो नापेलो धम्म--सम्यक्त्वादिक धर्म ते दुक्कर--दुष्कर छे, एटले करवो घणो कठण छे माटे जेम जिन आज्ञानो नंग अथवा खम न थाय तेम नव्य जीवोए करवु जोये ॥ ११ ॥

अवतरण –आ–मर्यादाए करी ज्ञा– जणाय जीवादिक पदार्थो जेथी तेने आज्ञा कहेछे, एहवी श्रीवीतरागनी वाणी छे क्षायोपशमिक नाव तजीने उदयिक नावनु सेवन करवु ते उन्मार्ग, अने श्री वीतरागना वचनोथी जे उलटुं बोलवु तेने उत्सूत्र कहेछे तो जिन आज्ञा रहित जे धर्म ते पाप फलनो देनार छे, ते देखाडेछे मूल –जिणवर आणा रहिय, वद्धार ताविकेवि जिण दव॥ वुड्डंति नव समु

हे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १२ ॥ दोहाः– केइ मूढ अन्याय करि, आण नंग जिम थाय ॥ तिम जिण द्रव्य वधारतां, बुडे नवोदधिमांय. ॥ १२ ॥ व्याख्याः– केवि– केटलाएक मोहेण– मोहे करीने अन्नाणी– अज्ञानी शुद्धज्ञान विकल एह वा मूढ– मूर्ख तत्वज्ञानना अजाण जिणवरआणारहियं– जिनवरनी आज्ञाथकी रहित थया थका जिणदव्वं जिनद्रव्यने– वद्धारंतावि वधारता छतां पण नव समुद्रे– संसार समुद्रनेविषे बुड्डंति– बुडे छे नमेछे. ॥ १२ ॥

अवतरणः–अंगारकर्मादिक कर्मरूप कुव्यापार पोते कर्याथी अथवा कोईना हा थे कराव्याथी; अथवा देवद्रव्येकरी गृहादिक स्थावर मिलकत खरीद करी अथ वा करावीने नाडे आपवी तथा नीच लोकोने जिनद्रव्य व्याजनी आशाए धीरवा थी; तथा पोते बलवान छतां जोर देखाडीने जबरजस्तीथी कोईनी पासेथी कांई द्रव्य लई लेवुं तथा माली, सुतार, शिल्पी (कडिया) इत्यादिकनी पाशेथी वंचना करीए टले ठगीने जे देव द्रव्यनी वृद्धि करवी ते जिनआज्ञाथी रहित छे. ए वृद्धि जिन आज्ञा प्रमाणे कहेवाय नही पण जिनआज्ञाथी बाहेर कहेवाय. तथा कुकला एटले नरशी कलाए करी देवद्रव्य वधारवानो शास्त्रोनेविषे निषेध कर्यो छे. घणो लाभ थतो होय तोपण ए द्रव्य कोईने अंग उधार देवानो निषेध कर्यो छे. सुव र्ण तथा रत्नादिकनां आनूपणो रापीने तेना व्याजथी देवद्रव्यनी वृद्धिकरवी कही छे. अने सुकलाएकरी तथा न्यायोपार्जित धनना नागे करी देवद्रव्यनी वृद्धि क रवी एम शास्त्रोमां कह्युंछे. माटेज अयोग्य मनुष्यने देशना देवी नही ते कहेछेः–

मूलः– कुग्गह गह गहियाणं, मुद्धो जो देइ धम्म उवएसं ॥ सो चम्मासी कुक्कर, वयणम्मि खिवेइ कप्पूरं ॥ १३ ॥ दोहाः– कुग्रह ग्रह ग्रहि जीवकूं, जो कछु ध र्म सुणाय ॥ चर्मनखी कूकरमुखे, सो कर्पूर चवाय ॥ १३ ॥ व्याख्याः– कुग्गह अनिनिवेश मिथ्यात्वरूप जे कुग्रह तद्रूप गह–ग्रह जे नूतादिक तेणेकरी गहिया णं–ग्रहण थएला जे लोको तेओने मुद्धो–मुग्ध जो–जे धम्मउवएसं–धर्मना उ पदेशने देइ–दिये छे; सो- ते चम्मासीकुक्करवयणम्मि–चर्मादिकने नक्षण करनार कूतराना महोमां जाणे कप्पूरं–कर्पूर नोजन खिवेइ–क्षिपति एटले नाखेछे. एनो नावार्थः– जे मनुष्यो डराग्रहरूप नूतेकरी ग्रसायला छे. तेउने शुद्ध धर्मनी देश ना देवी ते कूतराना महोडामां उत्तम नोजन आपवानी परेछे; अर्थात् योग्य अधिकारी जोईने धर्मोपदेश करवो ए तात्पर्य छे. ॥ १३ ॥

सिद्धांतथी बाहेर पोतानी मतिए करी कल्पेलो पोते अंगीकार करेलो जे अस

स्थ पदार्थ, तेने कूडो उपदेश देईने पुष्ट करवो ते अनिनिवेश मिथ्यात्व कहेवाय ने अने जे हेय उपादेयना ज्ञानेकरी रहित होय तेने मुग्ध कहेने

अवतरण —अयोग्य पुरुषने उपदेश देवामा रोषनो संजव ने ते कहेने —मूल — रोसो विखमा कोसो, सुत्तं नासंतयस्स धन्नस्स ॥ उस्सुत्तेण खमाविय, दोस महा मोह आवासो ॥ १४ ॥ दोहा — सूत्र नापि नर धन्य तस, रोषवि उपशम कोश उत्सूत्रीकी पिण क्षमा, महा मोह घर दोष ॥ १४ ॥ व्याख्या —सुत्त नासतयस्स धन्नस्स—सूत्रनुं नाषण कर्त्ता जे धन्य पुरुष ने, तेनो रोसोवि—रोष एटले क्रोध ने ते पण खमाकोसो—क्षमानो कोश एटले नंडार ने, अने उस्सुत्तेण—उत्सूत्रेकरी खमावि य—क्षमा पण दोस—दोष अथवा द्वेषरूप ने, महामोह आवासो—ते महामोह एटले अज्ञाननो आवास एटले महेल ने एनो नावार्थ —सूत्र नाषी शुद्ध प्ररूप क गीतार्थ पुरुषनो क्रोध पण क्षमानो नंडार ने, केमके, ते शिष्यादिकने शुन सा धननो हेतु ने, अने उत्सूत्र नाषी अगीतार्थ पुरुषनी क्षमा पण क्रोधनो नंडार ने, केमके, ते शिष्यादिकने अशुन साधननो हेतु ने ॥ १४ ॥

अवतरण —कोईक नेकाणे क्रोध शुननो हेतु थायने अने क्षमा अशुननो हेतु थायने माटे जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणुं घणुं कठण ने ते कहेने मूल —इक्कोवि न संदेहो, ज जिण धम्मेण अन्धि मुख्क सुह ॥ त पुण डुविन्नेय, अइउक्कड पुन्न रहियाण ॥ १५ ॥ दोहा — जो शिवसुख जिणधर्मथी, एकनि नहि संदेह ॥ पुन्य हीणके जाणवो, कठिण मोक्ष सुख तेह ॥ १५ ॥ व्याख्या — इक्कोवि—एक पण नसदेहो—संदेह नथी, ज—जो जिणधम्मेण—जिणधर्मनु आराधन कर्यु उता मुख्कसु ह—मोक्षसुख अन्धि—ने, एटले जिनधर्मना आराधनथी निश्चये करी मोक्ष थायने एमा एके संदेह नथी पुण—वली त—ते जिनधर्म डुविन्नेय—डु खेकरी जाणवा योग्य ने, एटले जाणवाने अशक्य ने ते कोणेजे अइउक्कड पुन्नरहियाण—अति उत्कट ए टले अति प्रधान सम्यक्त्वरूप पुन्य थकी रहित प्राणी ने तेने, अर्थात् अनिनिवेश मिथ्यात्वीने जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणु थवु घणु कठण ने ए नाव ने ॥ १५ ॥

अवतरण —स्त्रीनी चोसठ कला अने पुरुषनी बोतेर कला इत्यादि स्थूल पदार्थोथी जिनधर्मनु डुर्लनपणु देखाडे ने — मूल — सव्वपि वियाणिज्जइ, लप्नइ तह चउरि माइ जणमज्झे ॥ इक्कपि नाय डुलह, जिण मय विदु रयण सुविन्नाण ॥ १६ ॥ दोहा — चतुराई सबही कला, लहिये जगत सुजाण ॥ पिण डुर्लन इक जैन मत विधी रत्न विज्ञान ॥ १६॥ व्याख्या — सव्वपि—सर्व पण वियाणिज्जइ—लोको

नेविषे जाणवामां आवेछे, तह–तिम चउरिमाइ–चतुराईपणुं एटले उचित कार्यने विषे कुशलपणुं जणमझे–अविवेकी लोकोनेविषे पण लब्भइ दीगमां आवेछे; कांइ दुर्लन नथी, केमके संसारनी चतुराई जीवे अनंत वार पामेली छे. परंतु जाय–हे जाई, इक्कंपि–एकज दुलहं–दुर्लन छे एटले दुःखे करी पमाय एवुं छे ते जिणमय विहि रयण सुविआणं–जिनमत संबंधी विधि रत्ननुं नलुं जाणपणुं तथा करवा पणुं तेज एक दुर्लन छे, केमके, विवेकी पुरुषने जिनशासन संबंधी विधिरत्ननुं सम्यक् जाणपणुं तथा करवापणुं संनवे पण बीजाने संनवे नही ए नाव छे.॥१६॥

अवतरणः--जिनमतविधिरत्नना सम्यक् जाणपणानुं दुर्लनपणुं देखाड्युं, ते जाणपणानेज सम्यक्त्व कहेछे, माटे हवे सम्यक्त्वनुं दुर्लनपणुं देखाडेछेः-- मूलः-- मिच्छत्त बहु लयाए, विसुद्ध सम्मत्त कहण नवि दुलहं ॥ जह वर नरवइ चरियं, पाव नरिंदस्स उदयम्मि ॥ १७ ॥ दोहाः-- बहुलताय मिथ्यात्वकी, दुर्लन सु समकित ख्यान ॥ जिम पापी नृपके उदै, वर नरनाथ कथान ॥१७॥ व्याख्याः–मिच्छत्त बहु लयाए--मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्वीओना बहुल पणाने लीधे, एटले वर्तमान दुषम कालमां देदीप्यमान असंयतपूजा नामे दशमा अछेराना महिमाए करी द्रव्यलिंगी कुलिंगी तथा तेओना सेवको अनिनिवेशादिक मिथ्यात्वीओ घणा छे माटे विसुद्धसम्मत्तकहणमवि--अनिनिवेश मिथ्यात्व मलरहित निर्मल सम्यक्त्वनुं कथन करवुं पण दुलहं--दुर्लन छे. अहीं दृष्टांत कहेछेः–जह– जेम पावनरिंदस्स उदयम्मि--पापी एटले अन्याई राजानो उदय थयो छतां वरनरवइ चरियं--प्रधान न्यायवंत नृपतिना चरित्रनुं वर्णन करवुं दुर्लन छे तेम ते पण जाणी लेवुं.॥१७॥

अवतरणः--विशुद्ध सम्यक्त्वनुं कथन करवुं पण दुर्लन छे, तथापि उत्सूत्र नाषी द्रव्यलिंगीनो त्यागकरवो योग्य छे ते कहेछेः-- मूलः-- बहु गुण विज्जा निलओ, उसुत्त नासी तहा विमुत्तव्वो ॥ जह वर मणि जुत्तो विहु, विग्घ करो विसहरो लोए ॥ १८ ॥ दोहाः-- बहु गुण विद्या गेहजो, तदपि उसूत्री हेय ॥ जिम वर मणिजुत विघ्न कर, विषधर लोक विषेय ॥ १८ ॥ व्याख्याः-- बहु गुण–लोपण घणी आकरी क्रिया करवादिरूप घणा गुण विज्जा–चौद श्रुतरूप विद्यानुं निलओ–घर छे, अथवा बहु गुणवाली विद्यानुं घर छे, तहावि–तोपण उस्सुअनासी–उत्सूत्र नाषण करनारा द्रव्यलिंगीनो मुत्तव्वो--त्यागकरवो योग्य छे. एविषे दृष्टांत कहेछेः–जह–जेम वरमणिजुत्तोवि–श्रेष्ट मणि रत्नेकरी युक्त छतां पण हु–निश्चय करी विग्घ करो–विघ्नने करनारो एहवो विसहरो–विषधर जे सर्प ते लोए–लोकने

विषे अथवा लोकोए छाडवा योग्य छे एनो भावार्थ.–जेम सर्प अमूल्य मणिने धारण करनारो छता विषमयी होवाथी त्याग करवा योग्य छे, तेम कोई पुरुष बहु गुणयुक्त विद्यावान छता उत्सूत्रभाषी होय तो अवश्य त्याग करवा योग्य छे ॥१८॥

अवतरण – अतिशय करी जे मोह ते व्यामोह कहेवायछे तेम उत्सूत्रभाषी द्रव्यलिंगी जे गुरु ते, कुलक्रमथी चाल्या आवेछे, माटे तेने केम मूकाय? जो हुं त्याग करुं तो सज्जन लोको मारो त्याग करे, अथवा वडाउए अंगीकार करेलो चाल मुकी दैये तो बाप दादानुं नाम जाय, इत्यादिक जे विचार करवो ते स्वजन व्योमोह कहेवायछे, तेज दर्शावेछे – मूल –सयणाण वामोहे, लोआ धिप्पंति अछ लोएण ॥ नो धिप्पंति सुधम्मे, रम्मेहा मोह माहप्प ॥ १९ ॥ दोहा – स्वजन नेह धन लोभ करि, सेवै लोक मिथ्यात ॥ रम्य धर्ममे नवि रमैं, है अज्ञान उतपात ॥१९॥ व्याख्या – सयणाणवामोहे--स्वजनना व्यामोहेकरी, अछलोहे--अर्थना लोभेकरी, एटले मत्र तन्त्रादिकनुं अर्थ जे प्रयोजन अथवा अर्थ जे धन तेना लोभेकरी, लोआ -सामान्य लोक जे छे ते, धिप्पंति--ग्रहण करेछे एटले पोताने वश करेछे, अने रम्मे- रमणीय जिन भाषित सुधम्मे--जे सारो धर्म छे ते नोधिप्पंति–ग्रहण करता नथी हा--मोटी खेदनी वात छे, जुवो मोहमाहप्प--मोहनु केटलुं माहात्म्य एटले महिमा छे एनो भावार्थ'–स्वजन अथवा धनना लोभे करीने लोको मिथ्यात्वनु सेवन करे छे, अने रम्य जे जिन धर्म तेने मूकी दिये छे ए मोहनुं महात्म्य छे ॥ १९ ॥

आशंका - सर्व लोक मोहने वश थया थका मिथ्यात्वनी सेवना करेछे एम कह्याथी सर्वने अधर्मनो प्रसग प्राप्त थशे? ए शंकानु निराकरण करेछे - मूल – गिहवावार परिस्सम, खिन्नाण नराण वीसमण ठाण ॥ एगाण होइ रमणी, अन्नेसि जिणिंद वर धम्म ॥ २० ॥ दोहा – गृह व्यापार परिश्रमे, खिन्न थया नर ताहि ॥ इकनारी विश्राम है, अन्य जिनागममाहि ॥ २० ॥ व्याख्या -- स्त्री पुत्रादिक कुटंब परिवार गिह एटले घरने अर्थे, वावार–दंत लाख रसादिक अनेक विध व्यापार करता थयो जे परिस्सम–परिश्रम एटले खेद तेणे करी खिन्नाण–खिन्न एटले थाक लाग्याथी आकुल थयला एवा एगाण–एकेक नराण– मनुष्यने वीसमणठाण–विश्रामनु स्थान ते रमणी–स्त्री होइ–छे केमके, तेउ भारी कर्मीजीवो छे माटे, अने अन्नेसि–बीजाने एटले सुद्दष्टिवंत जीवोने विश्रामनुं स्थान जिणदवर धम्म–जिनेंद्रनो भाषेलो प्रधान धर्म छे. अर्थात् जे भारी कर्मी माण

सो छे तेंउने स्त्रीनो संग प्रीय लागेछे, अने जे हलुकर्मी माणशो छे तेओने जिन धर्म कर्त्तव्य प्रीय लागेछे ॥ २० ॥

अवतरणः—मूढ तथा अमूढ पेट नरवामां सरखां छे, पण कर्मविपाकेकरी सरखा नथी ते कहेछे. मूलः— तुल्लेवि उअर नरणे, मूढ अमूढाण पिछ सु विवागं ॥ एगाण नरय डुरकं, अन्नेसिं सासयं सुरकं ॥ २१ ॥ दोहाः— सम पिण उदर नरे जुओ मूढ अमूढ विपाक ॥ मूढ लहे नरकादि डुख, निपुण लहे शिव नाक ॥ २१ ॥ व्याख्याः— जेना अरस परस उयर नरणो—उदरनुं नरवुं एटले पेट नरवुं अथवा घरना व्यापार कार्यनुं करवुं ते तुल्लोवि—तुल्य एटले सरखा छे तोप ण मूढ अमूढाण—मूढते अविवेकी अजाणलोक अने अमूढ ते विवेकी धर्मना जाण लोक छे, तेओना विवागं—विपाक एटले कर्मनो शुनाशुन रस ने पिछसु—हे नाई तुं देख; एगाण—एक एक केटलाएक निर्विवेकी महारंनी महापरिग्रही. तथा मि थ्यादृष्टि जीवो छे तेओने नरयडुरकं—नरकनुं डुःख छे. उपलक्षणथी तिर्यंच तथा निगोदनुं डुःख पण जाणवुं. अन्नेसिं—बीजा जे सम्यक्दृष्टि देशविरति धर्मज्ञ विवे की जीवो छे तेओनें सासयंसुखं मोटी स्थिति आश्री देवलोकसंबंधी शाश्वत सुख छे. उपलक्षणथी परंपराएकरी मोक्षना सुखनो पण संनव छे मूढ तथा अमूढ ना विपाकमां एटलुं फरक छे माटे मूढपणानो त्याग करवो योग्य छे ॥ २१ ॥

अवतरणः—हवे बे गाथाए करी अमूढपणानी प्राप्तिनो उपाय प्रगट करीने कहे छेः— जिण मय कहा पबंधो, संवेग करो जियाण सव्वोवि ॥ संवेगो सम्मत्ते, स म्मत्तं सुद्ध देसणया ॥२२॥ ता जिन आण परेणं, धम्मोसो अव्व सुगुरु पासम्मि॥ अह उचियं सढाओ, तस्सुवएसस्स कहगाओ ॥२३॥ दोहाः— जिनमत कथा प्रबंध सब, जण संवेग उपाय ॥ संवेग तु समकित छते समकित सुद्ध गिराय॥२२॥ तो जिन आण परे धरम, सुणवो सुगुरु सकाश ॥ अथवा तत उपदेशको, कथ क सु श्रावक पास ॥ २३ ॥ व्याख्याः— सव्वोवि— सर्व जिणमय कहा पबंधो— जिन मतनी कथानो प्रबंध अथवा निबंध ते जियाण—हलुकर्मी नव्य जीवोने संवेग करो—संवेग ते मोक्षानिलाष, तेनो करनार छे. अने संवेगो सम्म त्ते—संवेग ते सम्यक्त्व छतां छे एटले सम्यक्त्व छतां संवेग होय छे. सुद्ध देस णया—उत्सूत्र मल कलंक रहित सुद्ध देशनाए करी सम्मत्त—सम्यक्त्व होयछे. ए नो नावार्थः— हलु कर्मी जीवोने जिन मतनी कथाना सर्व प्रबंधो अथवा स र्व निबंधो संवेगना जनक छे. ॥ २२ ॥ ता—ते कारण माटे जिनआणपरेणं—

जिनराजनी आज्ञानेविषे जे तत्पर प्रधान छे ते मनुष्ये, सुगुरु पासम्मि–सारा गुरुनी पासे एटले सम्यक् ज्ञान दर्शन तथा चारित्रवान गुरुनी पासे धम्मो–धर्म सोअव्व–सांजलवु योग्य छे अह–अथ एटले जो तेवा मुनि महाराजनो योग न थाय तो उचिय- उचित प्रमाणे तस्सुवएसस्स- ते सुगुरु नाषित धर्म उपदेशनो कहगाओ--वक्ता पण पोतानी मतिथी कहेनार नही एहेवो सढ्ढाओ-श्रावक जे धारणादिक गुणेसहित होय तेने समीपे धर्म सांजलवो पण बीजानी पासेथी सांजलवु नही एनो नावार्थ --जिनाज्ञा पालनार प्राणीए सुगुरुनी पासेथीधर्मनु श्रवण करवु, तेनो योग न थाय तो कोई धारणादि गुणे सहित श्रावकनी पासेथी सांजलवु पण अनेरा पासेथी कदी पण सांजलवु नही ॥ २३ ॥

अवतरण – धर्मोपदेश सांजल्याथी सम्यक्त्वादिकनु जाणपणु थायछे ते श्रेष्ठने ते कहेछे -- मूल -- स कहासो उवएसो, तन्नाण जेण जाणई जीवो ॥ सम्मत्त मिछ नाव, गुरु अगुरू धम्म लोअ ठिई ॥ २४ ॥ दोहा – कथा ज्ञान उपदेशते जाणे जाते जीव ॥ समकित अरु मिथ्यात्वनो, नाव त्रिलोक थितीव ॥ २४ ॥ व्याख्या – सकहा- ते कथा सो उवएसो–ते उपदेश तन्नाण- ते ज्ञान जेण–जेणे करी जीवो- जीव सम्मत्तमिछनाव--सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वना नाव अथवा स्वरूपने गुरुअगुरू–सुगुरु अने अगुरु एटले कुगुरुना नावने तथा धम्म–जिन धर्मनी स्थितिना नावने अने लोअठिई लोकनी स्थितिना स्वरूपने जाणइ–उपादेय तथा हेयपणे जाणे एनो नावार्थ -- जेणेकरी जीव सम्यक्त्वादिकना स्वरूपने जाणी शके नही ते कथा पण नही ते उपदेश पण नही अने ते ज्ञानपण कहेवाय नही ज्ञानादि रत्नत्रय सयुक्त ते सुगुरु कहेवाय छे, तेथी विपरीत ते कुगुरु कहेवायछे रात्रि नोजननी विरति प्रमुख ते धर्मस्थिति कहेवायछे, अने धन धान्यादिके करी प्राये मद्दस्य शोनेछे, अथवा लोकविरुद्ध न करवु ते लोकस्थिति कहेवायछे ॥ २४ ॥

अवतरण -- जिन वचन सांजल्याथकी पण केटलाएक नारी कर्मी जीवोनु मिथ्यात्व जतु नथी ते कहेछे मूल – जिण गुण रयण महा निहि, लद्धूणवि किन जाइ मिछत्त ।। अह पत्तेवि निहाणे, किवणाण पुणोवि दारिद्द ॥ २५ ॥ दोहा – जिन गुण मणि निधि पाय कर, किम न थाय मिथ्यात ॥ निधि पाये पिण कृपणके, वधि दरिद्र विख्यात ॥ २५ ॥ व्याख्या -- जिण गुण रयण महा निहि–जिनराजना सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादिक गुणरूप रत्नना द्वादशाग सि

क्षांतरूप महा निधिने लद्धूणवि–पामीने पण एटले सांजलीने पण अजिनिवेश मिथ्यात्वी जीवोनुं मिछत्तं–मिथ्यात्व ते अतत्वश्रद्धानरूप किंनजाइ–केम जतुं नथी. एवो शिष्ये प्रश्न कर्यो तेनो गुरु उत्तर आपेछेः– अह–अथ निहाणे पत्त–रत्न तथा सुवर्णनुं निधान प्राप्त थयुं छतां पण किवणाण–कृपण पुरुषोनुं पुणोवि–तो पण दारिद्दं–दारिद्र्य केम जतुं नथी, अर्थात् कृपण पुरुषने रत्न अथवा सुवर्णादि कनुं निधान मल्युं छतां पण तेनुं दारिद्र्य जतुं नथी, तेम जिन गुण रत्न सिद्धांत महानिधिप्रते काने सांजलीने पण जारी कर्मी जीवोनुं मिथ्यात्व जतु नथी॥ २५॥

अवतरणः– जेम जिनागम सम्यक्त्वादिक धर्मनु कारण छे, तेमज जिनना उप देशेला पर्यूषणादिक रूडा पर्वो पण सम्यक्त्वादिक धर्मनुं कारणछे ते कहेछे. सूत्रः-- सो जयउ जेण विहिया, संवछर चाउमासिय सुपव्वा ॥ निद्धंधसाण जा यइ, जेसि पन्नावओ धम्ममई ॥ २६ दोहाः– धर्म पर्व संवत्सरी, चतुर्मासि आ देय ॥ थाप्या जेणे जयतु ते, पापी सुमति धरेय ॥ २६ ॥ व्याख्याः– सो–ते जिन जयउ–जयवंता थायो जेण–जेणे संवछर चाउमासिय सुपव्वा–सांवत्सरक पर्यू षणा पर्व तथा चतुर्मासिक त्रण (उपलक्षणथी चौदस पूर्णमासि अष्टम्यादि छपर्वि तथा कल्याणिक तिथि रूप्प पर्वन) विहिया--उत्पन्न कर्या छे, जेसि–जे पर्वोना प न्नावाउ--प्रजावथकी निद्धंधसाण--निर्द्दय प्राणीयोनी एटले निर्दय प्राणीयोनी पण धम्ममइ–धर्म करवानी मति तथा जिन धर्म प्रशंसवानी मति एटले बुद्धि जायइ–थायछे. एनो जावार्थः– पर्यूषणादिक सुपर्वनेविषे चतुर्विध श्रीसंघ, विशे ष पणे चतुर्विध धर्मनेविषे उद्यम करेछे ; तेने जोई निर्दय प्राणीउनी पण जैन धर्म अंगीकार करवानी अथवा प्रशंसवानी मति थायछे, त्यारे दयावंत प्राणीयोनी थाय तेमां शुं कहेवुं ! माटे जेणे सुपर्व थाप्याछे ते जिनराज जयवंता थाओ.॥२६॥

अवतरणः–सुपर्वनेविषे कहीने हवे कुपर्वनेविषे कहेछेः– सूत्रः– नामंपि तस्स असुहं, जेण निदिठाइ मिछ पव्वाइ ॥ जेसिं अणुसंगाउ, धम्मीणवि होइ पाव मई ॥ २७ ॥ दोहाः– पाप पर्व जेणे रच्या, अशुज नाम पण तास ॥ धर्मीने पण जेहथी, पाप मतीनो वास ॥ २७ ॥ व्याख्याः– तस्स–तेनुं नामंपि–नाम प ण असुहं– अशुज छे, एटले पाप छे. जेण–जेणे मिछ पव्वाइ–मिथ्यात्वना पर्व निदिठाइ–उत्पन्न कर्या छे अथवा तेनो उपदेश कर्यो छे. जेसिं– जे पर्वोना अ णुसंगाउ–अनुसंग थकी एटले प्रसंग थकी धम्मीणवि–धर्मी लोकोनी पण पाव मई–पाप मति एटले पाप करवानी बुद्धि होइ–थायछे. एनो जावार्थः–होली, धु

लेटी, विजयादशमी, गणेश चोथ, नाग पचमी, पाप नवमी, वछ बारस, तथा धन तेरस इत्यादिक अनेक मिथ्यात्वना पर्वोने दिवसे घणा पाप, उपद्रव, हास्य कुतुहल थाय छे, जेना प्रसगथी धर्मी पुरुषोनी पण पाप मति थाय छे त्यारे अधर्मी लोकोनी ते शी वात कहेवी ! माटे जे पुरुषे मिथ्यात्व पर्वोनी स्थापना करीछे ते पुरुष नु नाम पण अशुभ जाणवु, एटले तेनु नाम लीधाथी पण पाप लागेछे ॥२७॥

अवतरण--उपरनी बे गाथाना अनुसारे तो ज्यारे सुपर्व आवे छे, त्यारे सर्वने धर्ममति उत्पन्न होवाथी बधा धर्मी थवा जोये, अने ज्यारे कुपर्व आवे छे त्यारे फरी तेओनीज पाप बुद्धि थई जवाने लीधे बधा पापी थवा जोये त्यारे कोईनो स्थायीभाव सिद्ध थशे नही एटले सर्वे जन पापी अने धर्मी ठरशे ए आशका दूर करवाने उत्तर कहे छे -- मूल --मज्झठिइ पुण एसा, अणुसगेण हवति गुण दोसा ॥ उक्किठ पुस्स पावा, अणुसगेण न घिप्पति ॥ २८ ॥ दोहा - रहेवे सगे जे हवो, ते नर मध्यम होय ॥ अति धर्मी अति पातकी, ते तो फिरे न कोय ॥२८

व्याख्या -- पुण तेमा मज्झठिइ- मध्यम पुरुषनी स्थिति एटले मर्यादा एसा-ए छे, अणुसगेण- अनुसगे करीने एटले परना प्रसगे करीने गुणदोसा- गुणवान तथा दोषवान हवति-थायछे, एटले गुणीना प्रसगथी गुणी तथा निर्गुणीना प्रसगथी गुण रहित थाय छे, ए मध्यम पुरुषनी स्थिति छे, परतु उक्किठ पुणपावा- जे उत्कृष्ट पुण्यवत धर्मी तथा जे उत्कृष्ट पापी अधर्मी छे ते अणुसगेण- पर प्रसगेकरी न घिप्पति- ग्रहण करा जता नथी एनो भावार्थ - उत्कृष्ट धर्मीने पापीनो प्रसग थाय तो पण तेनी पापमति थती नथी, अने उत्कृष्ट जे पापी होय तेने धर्मीनो प्रसग थाय तोपण तेने धर्म मति थती नथी, अने जे मध्यम पुरुष होयछे तेजज न्यूनाधिकताने पामे छे जे अति पापी तेमज अति पुन्यवान नहोय ते मध्यम पुरुष कहेवाय छे ॥ २८ ॥

अवतरण --वली एनेज वली दृढावेछे --मूल --अइसय पाविय पावा, धम्मिअ पवेसु तोवि पाव रया ॥ न चलति सुद्ध धम्मा, धन्ना किविपाव पवेसु ॥२९॥दोहा -अतिशय पापी पापरत, रहे सुपर्व जेम ॥ पाप कुपर्वे धर्मथी, धन्य चले नहि तेम ॥२९॥

व्याख्या --जे माटे एम छे तो--तेमाटे अइसय पाविय पावा-अतिशय एटले उत्कृष्ट पाम्यु छे पाप जेणे, एटले जे उत्कृष्ट पापी पुरुष छे ते धम्मिअपवेसुवि-धर्मी पुरुषो सवधी पर्यूषणादिक पर्वोनेविषे पण पावरया--पाप रत होयछे, एटले पाप कर्मनेविषे आसक्त रहेछे किवि- तेमज केटलाएक धन्न--धन्य एटले पुन्यवत प्राणी

उ पापपवेसु--पाप पर्वोनेविषे पण शुद्ध धम्मा--शुद्ध धर्मथकी नचलंति--चलायमा न थता नथी. अने नवीन धर्मी जीवोने स्थिर राखवाने अर्थे दर्शन भ्रष्ट पासत्था दिकनो तथा अन्य दर्शनी कुलिंगीनो प्रसंग पण करता नथी, घणो कहेवाथी शुं

अवतरणः-- जेम सुपर्व अने कुपर्व ए बे प्रकारना पर्व कह्याछे, तेम सुलक्ष्मी तथा कुलक्ष्मी ए बे प्रकारनी लक्ष्मी छे ते बतावेछेः-- मूलः-- लच्छीवि हवइ डुविहा, एगा पुरिसाण खवइ गुण रिद्धि ॥ एगाय उल्लसंती, अपुन्न पुन्नाणु भावाउ ॥ ३० ॥ दोहाः-- लक्ष्मी दोविध एक तो, नर गुण धण क्षयकार ॥ एक दिपावे पुरुषकूं, पाप पुन्य अनुसार ॥ ३० ॥ व्याख्याः--लच्छीवि--लक्ष्मी पण डुविहा--बे प्रकारे हवइ- छे. तेमां एगा--एक तो अज्ञान कष्टादिके करी प्राप्त थएली जे छे ते पुरिसाण--पुरुषोनी गुणरिद्धी--ज्ञानादिक गुणरूप रिद्धिने खवइ--क्षय करेछे, एटले नाश करेछे. य--वली एगा--एक सुपात्र दानादिकेकरी प्राप्त थएली जे लक्ष्मीछे ते पुरुषोनी ज्ञानादिक गुणऋद्धिने उल्लसंती--उल्लासने पमाडे छे एटले वधारेछे. अपुन्न पुन्नाणु भावाउ--पाप धर्मना अनुभाव थकी एटले प्रभावथकी ते लक्ष्मी बे प्रकारे होयछे. अपुन्न--पाप अज्ञान कष्टादिक, तेना प्रभावथी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुणऋद्धिने नाश करेछे; अने पुन्न--पुन्य धर्म सुपात्र दानादिक, तेना प्रभावथकी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुण ऋद्धिनी वृद्धि करेछे. ॥ ३० ॥

अवतरणः-- ते लक्ष्मी लेवा देवामां जेम दोष थायछे तेम कहेछेः-- मूलः-- गुरुणो भट्टा जाया, सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइं ॥ डुन्निवि अमुणिय सारा, दूसम समयम्मि वुडंति ॥ ३१ ॥ दोहाः-- भाट थया गुरु श्राद्धने, स्तवी लेत दानादि ॥ तत्व अजाण दुए बुडे, डुसम्म समए प्रादि ॥ ३१ ॥ व्याख्याः--गुरुणो--नाममात्र गुरु केवल बाह्य लिंग रजोहरण मुख वस्त्र धारीने आजीविकानो करनार, भट्टा जाया--भाट थया एटले भाटनी पठे कीर्त्ति वंचनाना बोलनार थया सड्ढे--नाममात्र श्रावकने थुणिऊण--स्तवीने एटले अहो महाभाग्य, पुन्यवंत, अहो कल्पवृक्ष, मनोवंछित पूरक, देवगुरु भक्तिकारक, जिन आज्ञा प्रतिपालक, श्राद्धव्रत धारक, हीन दीनोद्धारक, धीर गंभीर औदार्यादि गुण गणैरलंकृत इत्यादिक स्तवना करीने दाणाइ--असनादि आहार वस्त्र पात्र कंबल पाद पुसणादिक वस्तु लिंति--लियेछे. डुन्निवि--ते बन्ने एटले स्तवना सांभलीने वस्तुने देवावालो गृहस्थ अने स्तवना करीने वस्तुने लेवावालो कुगुरु अमुणियसारा--जेउए सिद्धां

तनो सार एटले परमार्थ जाण्यो नथी, तेउ दूसमसमयम्मि–डुपम कालरूप समु
इनेविषे वुड्डंति–बूमेछे, एटले नरक निगोदादिकनेविषे प्राये घणा कालसुधीभमेछे ३१
अवतरण – गत गाथामा परमार्थने न जाणनारा बूडेछे एम कह्यु, ते परमा
र्थने न जाणनारा घणा छे अने परमार्थने जाणनारा थोडा छे ते कारण सहित
कहेछे मूल – मिछ पवाहे रत्तो, लोओ परमछ जाणओ थोवो ॥ गुरुणो गारव
रसिआ, सुद्ध धम्म निगूहंति ॥ ३२ ॥ दोहा – मिछ प्रवाहे रत घणा, लोक स्तो
क सबुद्ध ॥ गारविरस लपट गुरु, गोपै धर्म विसुद्ध ॥ ३२ ॥ व्याख्या – मिछप
वाहे–मिथ्या एटले विचार रहित रूगनेविषे रत्तो–रक्त एटले आसक्त एवा लोओ–
जे लोक छे, ते घणा छे ते लोकोथकी तथा सम्यक्त्वना पडिवाइ थकी परमछ
जाणओ–परमार्थना जाण पुरुषो हमणा घणाज थोवो–थोडा छे, कारण के गा
रव रसिआ–ऋद्धि रस साता गौरवनेविषे रसिक एवा गुरुणो–नाम मात्र गुरुछे, ते
सुद्ध धम्म–निर्मल जिन भाषित तपसयमरूप धर्ममार्गने निगूहंति–गोपवेछे केम
के, शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करीश तो मने कोण वादशे? तथा पूजशे? एवी स्था
पना करीने शुद्ध मार्गने प्रकाश करता नथी, माटे परमार्थना जाण पुरुष थोडाछे ३२
अवतरण – वली बीजो हेतु बतावे छे मूल – सव्वोवि अरिहं देवो, सुगुरु गुरू
भणइ नाम मित्तेण ॥ तेसि सुरूव सुहय, पुन्न विहूणा न पावंति ॥ ३३ ॥
दोहा – अरिहं देव सुगुरु गुरू, नाम मात्र सवि कहत् ॥ ताके सुभग सुरूपकूं,
पुन्यहीण नहि लहत् ॥ ३३ ॥ व्याख्या – परपरा गत जे श्रावक कुल, तेनेविषे
उपजेला ते सव्वोवि–बधाउने पूछीये तो नाममित्तेण–नामात्रे करीने भणइ–एम क
हेछे के, अरिहं देवो–अरिहंत जे वीतराग ते देव, सुगुरुगुरु–सविग्न गीतार्थ ते
गुरु, उपलक्षणथी श्रीवीतराग भाषित श्रुत चारित्ररूप ते धर्म, एम नाममात्र
थी कहेछे, केमके, तेसि–ते देव गुरु तथा धर्मनु सुहय–सुख दायक इष्टकारी एवु
जे सुरूव–स्वरूप, तेने पुन्नविहूणा–रूडा पुन्यथी रहित प्राणी न पावंति–पामता न
थी, माटे परमार्थना जाण वर्त्तमान कालनेविषे थोडा अथवा कोई विरला छे ॥ ३३ ॥
अवतरण – शुद्ध मार्गना उपदेशक तो छे तोपण हमणा परमार्थना जाण
पुरुष थोडा केम कहोछो? एवो शिष्यनो सशय दूर करवा निमित्त गुरु कहेछे के
अहो भद्र, सांभल – ॥ मूल – सुद्धा जिण आण रया, केसि पावाण हुंति सिर सूल,
जेसि ते सिरसूलं केसि मूढाण ते गुरुणो ॥३४॥ दोहा –शुद्ध जिनाज्ञा रत हुवे, कै
खलने गिर सूल ॥ जेने ते शिरसूल फुन, ते गुरु सठ अनुकूल ॥ ३४ ॥ व्याख्या –

जिण आणरया– जिन राजनी आज्ञा पालवानेविषे रक्त एटले सावधान होवाने लीधे सुद्धा– निर्मल चित्तवाला एवा जे संविज्ञ गीतार्थ शुद्ध मार्गोपदेशक छे ते केसिं पावाण–केटलाएक पापी श्रमणोना सिरसूलं–माथानुं सूल हुंति– थायछे; एटले शुद्ध मार्गनी देशना कोईक प्रकारे सांभलीने त्रासने पामे छे. एवा जेसिं–जे पापी श्रमण केवल वेशधारी होय छे, तेउने ते शुद्ध मार्ग उपदेशक पुरुष सिरसूलं–माथाना शूलना जेवा लागे छे. ते–ते पापी श्रमण निःकेवल वेषधारी केसिंमूढाण– केटला एक मूढ अजाण लोकोना गुरुणो–गुरु छे, एटले पूज्य छे. एनो भावार्थः– जे पापी श्रमण पार्श्वस्थ जैनाभास निःकेवल वेष धारी संविज्ञ पक्षीना गुणे करीने पण रहित एवा तथा तेउना सम्यक् ज्ञान विकल एवां भक्त लोक तो घणा होय छे, पण सत्य असत्यना विवेकी परमार्थ कुशल कोई विरलाज होय छे

अवतरणः– अशुद्ध मार्ग प्ररूपक कुगुरुने तथा तेना भक्त लोकोने जोईने ग्रंथकार खेद सहित वचन कहे छे ॥ मूलः– हा हा गुरु अ अकज्जं, सामी न हु अछि कस्स पुक्करिमो ॥ कह जिण वयण कह सुगुरु, सावया कह इय अकज्जं ॥३५॥ दोहाः– गुरु अकार्य हानहि घणी, करिये कहा पुकार ॥ सुगुरु श्राद्ध जिन वचन कह, कहा अकार्य असार ॥ ३५ ॥ व्याख्याः– हा हा–अति मोटो खेद थाय छे; गुरु अ अकज्जं–कुंगुरुने मानवुं तथा पूजवुं इत्यादिरूप वर्त्तमान समयनेविषे मोटुं अकार्य थाय छे, एवी रीते दयालु सुगुरुनां वचन सांभलीने कोई एक बोल्यो के त्यारे पुकार करो; एटले कोई सुधर्मी राजा प्रमुखनी पाशे फिरियाद करो. त्यारे गुरु कहेवा लाग्या के हे भद्र, सामी–सुराजकुलोत्पन्न लोकहित कारक दुर्नीति निवारक कोई राजा नअछी–नथी. तो हु–निश्चये कस्स–कोनी आगल पुक्करिमो–अमे पुकार करिये! माटे फिरियाद करवी निरर्थक छे; एवां गुरुनां वचन सांभलीने वली ते बोल्यो के, त्यारे प्रथम 'हा हा गुरु अ अकज्जं' ए वाक्य तमे केम बोल्या? गुरुए कह्युं एटला वास्ते के, कह–क्यांहां जिणवयणं–सकल नय समूह, अखिल दोष रहित, एवां जिनवचन एटले सर्वज्ञ भाषित वचन, अने कह– क्याहां सुगुरु सावया– सुगुरु तथा श्रावक अने कह– क्यांहां गुरु अ अकज्जं– सम्यक् ज्ञान क्रिया थकी भ्रष्ट अविधि मार्गना उपदेशक, एवा जे कुगुरु, तेउनी सेवनारूप मोटुं अकार्य जे छे ते केटलो अनर्थ कारी छे!! जिनराजना नामादिक लई, तथा अशुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करी करीने ते

कुगुरु पोताने तथा पोताना जक्त लोकोने डुर्गतिमां नाखे ठे, एवा करुणा जाव थी 'हा हा गुरु अ अकज्ज' ए वाक्य बोलवामां आव्यु ठे ॥ ३५ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामा कुगुरुनी सेवनारूप मोटु अकार्य कह्यु ते यथार्थ जाणीने कोईक लघुकर्मी जव्यजीव ते गुरुनो त्याग करे तेने मूढ लोक उष्ट क हेठे, ते दृष्टांतेकरि कहेठे –मूल –सप्पे दिठे नासइ, लोठ न हु किंपि कोइ अरके ई ॥ जो चयई गुरु सप्प, हा मूढा जणइ तं डुठं ॥ ३६ ॥ दोहा – साप देख नासे कुई, लोक कहे कछु नाहि ॥ कुगुरु सापथी जे नसै, मूढ कहै खल ताहि ॥ ३६ ॥ व्याख्या –लोठ–लोक सप्पे दिठे–सर्पनेदेखीने नासइ–नाशी जाय तेने कोइ–कोई माणस किंपि–काई अरकेइ–कहेता न–नथी हु–निश्चये, एटले तेने कोई एम कहेतो नथी के तु कायर ठे, बीकण ठे, अथवा नपुसक ठे इत्यादिक कोई नरशु वचन कहेता नथी, उलटु सारुं कहेठे, के तारु मोटुं जाग्य जे तु सा पनी पासेथी नाशी गयो अने जो–जे पुरुष कुगुरु सप्पं–कगुरुरूप सर्पने चयइ–त्याग करेठे एटले तेने मूकी दियेठे, हा–इतिखेदे मूढा–मूढ अज्ञानी लोक तं–ते कुगुरुरूप सर्पने मूकी देनारने डुठ–डुष्ट, जाग्यहीण, पोताना बाप दादादि पूर्वजोनी कुलमर्यादानु उल्लंघन करनार ठे एम जणइ–कहेठे; पण सारुं कहेता नथी, एटले तु कुगुरुरूप सर्पथी बची गयो ए घणुं सारुं थयु माटे तुं मोटो जाग्यवान ठे एम क हेता नथी, केमके सर्प अने कुगुरुमा केटलुं अंतर ठे ते तेठ जाणता नथी ॥३६॥

अवतरण – हवे सर्प अने कुगुरुमा घणो अंतरायठे ते कहेठे – ॥ मूल – सप्पो इक्क मरण, कुगुरु अणताइ देइ मरणाइ ॥ तो वरिसप्प गहियुं, मा कुगुरू सेवण जद्दं ॥ ३७ ॥ दोहा – एक मरणकूं साप दे, कुगुरू मरण अनत ॥ श्रेष्ट सा प ग्रहवु तदा, कगुरु सेव नहि सत ॥ ३७ ॥ व्याख्या –सप्पो–सर्प इक्कंमरण–एकजवार मरणने दियेठे, अने कुगुरु– अगीतार्थ तथा विधिमार्गना अजाण जे कुगुरु ते अनताइ मरणाइ देइ–अनतवार मरणने दियेठे, ज्यारे अगीतार्थ कुगु रुनी एवी कथा ठे, त्यारे जे सर्व गुणेकरी रहित कुगुरु होय तेवुं शु कहेवु ? तो–ते माटे जद्द–हे जड़, सप्पगहियु–सर्पने मणिलेवादिकने अर्थे जे ग्रहण करवु ते वर–श्रेष्ट ठे पण कुगुरुसेवण–कुगुरुनी सेवा अथवा पूजा मा- करीश मा अर्थात् हे जद्द, रखे कुगुरुनी सेवना तु करे कदापि करवी नही, तु पोतानुं कल्याण इ छनार तथा सरल स्वजावनो होवाथी आ उत्तम सीखामण हु तने आपुछुं॥३७॥

अवतरण –एवी रीते पूर्व गाथामां सर्पथकी पण कुगुरुने जूंमो कह्यो तेम

छतां तेने लोको गुरुबुद्धिए नमेछे तेनुं कारण शुं? ते छलायाने लीधे मानेछे एम दृष्टांत सहित कहेछे.:– जिण आणा विचयंता, गुरुणो नणिऊण जं न मिच्चंति॥ ता किं कीरइ लोओ, छलिओ गडुरि पवाहेणं ॥ ३७ ॥ दोहा:– जिण आज्ञाथी रहितने, गुरुकहि जो शिर नाय ॥ गम्मर प्रवाहे जण छल्यो, तो सुं करिये नाय ॥ ॥ ३७ ॥ व्याख्या:– जिण आणा– समिति गुप्ति महाव्रतादि जिण नाषित क्रिया अनुष्ठानरूप जे जिनराजनी आज्ञा, तेने विचयंता–विशेषे करी त्याग करनार एवो जे कुगुरु, तेने गुरुणो– गुरु नणिऊण– कहीने एटले जाणीने जं– जो नमिच्चंति–लोक नमेछे, ता–तो किंकरइ–शुं करिये! एनो कोई उपाय नथी. केमके, गडुरि पवाहेणं–गाडरीना प्रवाहनी पठे विचार रहित मूर्ख लोकोनी जे चाल तेणे करीने लोओ–लोको छलिओ–छलाई गया छे. ते जाणे दिग्मूढपणाने, अंधपणाने, बधिरपणाने पाम्या होयनी! एवा ए लोक थई गया छे. तथा तेओने जाणे डुष्टग्रह तथा नूत वलग्या होयनी! तथा तेओनी ऊपर योग चूर्णादिक नाषीने जाणे कोईये वश करी लीधा होयनी! केमके सिद्धांतथी बधुं विपरीत आचारे चालेछे, तेमज बीजाने पण चलावेछे. एवा कुगुरुने गुरु करीने मानेछे माटे ए लोक गाडरीया प्रवाहे करी छलाया छे, तेओने हवे सुधारवानो कांई उपाय विचारमां आवतो नथी. ॥ ३७ ॥

अवतरण:–पूर्व गाथामां कह्युं के लोको छलाई गयाछे ते ऊपर कोई एवी आशंका करेके, लोको गुरुने दाक्षिणताने लीधे नमता हशे! एटले चतुराईवाला जाणीने नमता हशे! तेने हितोपदेशक गुरु कहेछे के, नाई ए ठेकाणे लोको चतुराईथी रहितछे, ते सांनल:–मूल:–निद्दक्खिन्नो लोओ,जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिया खंमं॥कुगुरूण संग चयणे, दक्खिन्नंही महामोहो॥३९॥ दोहा:–लोक अदाक्षणि कोइ जो, मागे रुटिया नाग॥कुगुरु संगत्यागनविषे, दाक्षणता धिग राग॥३९॥ व्याख्या:–निद्दक्खिन्नो–दाक्षिणथीरहित लोअ-आ लोको छे, केमके, जइ-जो कुवि-कोई पण नूखेकरी पीडित रांक माणस रुट्टियाखंमं–रोटीनो खंम एटले रोटलीनो एक ककडो मग्गेइ–अन्नदाता, सेठ साहेब इत्यादिक चाटुक वचने करी मागेछे, तो पण तेने ते आपतां नथी, उलटां डुर्वचनो बोलीने कहाडी मूकेछे. अने कुगुरूण संग चयणे–कगुरुनो संग त्यागवाने विषे दक्खिन्नं–दाक्षिणपणुं करेछे. एटले एमने मारा बाप दादादिक मानता आवेला छे, वली मारा गछना कहेवायछे; माटे केम छोडाय! एम लोक कुगुरुनी दाक्षिणतामां पड्या छे; हा- मोटो खेद छे, महामोहो–ए मोटुं अज्ञान छे के,

दीन दुःखीने एक रोटीनो ककडो आपता करण लागेछे, अने दुर्ग—दुर्गति प्रापक जे कुगुरु, तेने अति सरस असन प्रधान वसन प्रमुखेकरी सन्मानेछे, माटे ए मोटुं अज्ञान लोकोनेविषे प्रवर्त्ते छे ॥ ३९ ॥

अवतरण — पूर्व गाथामां दृष्टीरागी लोकोनु मूढपणु कह्यु, हवे तेओना नाम मात्र गुरुनुं मूढपणु कहेछे — मूल — किं जणिमो किं करिमो, ताण हयासाण धिठ दुठाण ॥ जे दंसिऊण लिंग, खिवंति न रयम्मि मुद्ध जण ॥ ४० ॥ दोहा — नाखे नरके मुग्ध जन, देखाडी मुनि वेष ॥ ते हताश खल धीठने, कहिये किसुं विशेष ॥ ४० ॥ व्याख्या — हयासाण—उत्तरोत्तर कल्याणरूप हणाई छे आशा जेनी एवा धिठ दुठाण—धीठ एटले अकार्य करवामा अति चतुर अने दुष्ट एटले दोषवाला ताण— तेओने किं जणिमो— शु कहेवु! अने किं करिमो— शु करवु? जो उपकार करिये तो परघातादि उपद्रव करवाने सावधान थाय, ते आंधला सिंहना नेत्र उघाडवाना दृष्टांते जाणी लेवु, एटले कोई आंधलो सिंह जोई तेनी ऊपर दया आणीने कोई पुरुष कांई इलाज करीने तेने देखतो करे तो तेनाज प्राण लिये तेम कुगुरुनी ऊपर उपकार कर्यो होय तो तेना बदलामा अपकार शिवाय बीजो फायदो थवानो नथी त्यारे कोई कहेशे के तेओनी ऊपर अपकारज करवो तो ते पुण्यवानने अघटित छे, माटे तेओने शुं कहेवु! अने शु करवु कांई कहेवु! अथवा करवु उचितज नथी केमके, जे—जे लिंग—रजोहरण तथा मुख वस्त्रादिक साधुनो वेष तेने दंसिऊण—देखामीने मुद्धजण—मुग्ध जन एटले विवेक विकल लोक, तेओने नरयम्मि—नरकनेविषे खिवंति—नाखेछे ॥ ४० ॥

अवतरण —पूर्व गाथामां कुगुरुउनुं मूढपणुं देखाड्युं, हवे तेउनी स्तुतिने मिषे निंदा करे छे — ॥ मूल — कुगुरूवि ससिमोहं, जेसिं मोहाइ चम्मिमा दठुं ॥ सुगुरूण उवरि भत्ती, अइ निविमा होइ भव्वाण ॥ ४१ ॥ दोहा —ते प्रशसिये कुगुरु पण, ज सु मोहादिक देष ॥ सुगुरु परखिवी जीवके, थाए भगति विशेष ॥ ४१ ॥ व्याख्या — कुगुरूवि- कुगुरुने पण ससिमोहं- हु- प्रशसुं छु, केमके, जेसिं—जेना मोहाइ चम्मिमा—मोहादिके करी जे चमपणु अथवा, क्रूरपणुं, तेने दठुं—देखीने भव्वाण- मोक्षाभिलाषी भव्य प्राणीयोने सुगुरूण उवरि—सुगुरुनी ऊपर अइनिमिमा- अतिदृढ भक्ति होइ—थाय छे एटला वास्ते कुगुरुनी प्रशसा करिये छैये, परतु तेना गुणोनु वर्णन करी प्रशसा करता नथी. ॥ ४१ ॥

अवतरण— पूर्व गाथामा जे भव्य जीव कह्या ते सम्यक् दृष्टि जाणवा तेउनु

सम्यक्त्व उल्लासनने पामवानुं कारण कहे छेः— मूलः— जह जह तुट्टइ धम्मो, जह जह दुट्ठाण होइ अइ उदउ ॥ समदिट्ठि जियाणं ॥ तह तह उल्लसइ समत्तं ॥ ४२ ॥ दोहा ॥ जिम जिम खलनो अति उदे, जिम जिम तूटे धर्म ॥ तिम तिम समकित जीवको, उलसै समकित सर्म ॥ ४२ ॥ व्याख्याः— जह जह—जेम जेम धम्मो—जिन भाषित धर्म तुट्टइ—तूटेछे एटले हाणीने पामे छे, वली जह जह—जेम जेम दुट्ठाण- दर्शन भ्रष्ट, निन्हव, पासत्था, उसन्ना तथा कुशीलियादिक अने अन्य दर्शनी त्रिदंडी, परिव्राजक, तथा विप्रादिक दुष्ट लोकोनो अइ उदउ- अति उदय एटले अतिशय जोर सत्कार तथा पूजादिक होइ- थाय छे. तह तह— तेम तेम समदिट्ठि जियाणं- सम्यक् दृष्टि जीवोनुं सम्मत्तं- सम्यक्त्व उल्लसइ- उल्लासनने पामे छे, एटले विशेष दीपे छे ए मोटो आश्चर्य छे. शिष्यने गुरु कहे छे के, कांई आश्चर्य नथी, वस्त्र, पात्र, वसति, आहार तथा पोतपोताना श्रावक इत्यादिनी ऊपर लडी मरशे; अने साधु कहेवाशे. वली कलहना करनार, मारकूटना करनार गुर्वादिक मोटा सत्पुरुषने पण असमाधि उत्पन्न करनारा थशे. दुषम कालमां घणा असंयति थया थका संयति कहेवाशे; अने कोईक विरला धर्मार्थी सुसाधु थशे एवां श्री महावीर स्वामीनां वचन संभारी संभारीने तथा ते पूर्वोक्त लोकोने जोई जोईने श्री वीर वचननी आस्था ते सम्यक्त्वनुं आस्तिक्यता नामे पांचमुं लक्षण दृढ थाय छे. ॥ ४२ ॥

अवतरणः— पूर्वोक्त गाथामां जेम दुष्ट पापी लोकोनो हमणा अति उदय कह्यो तेम हमणा जिनमतनो अति उदय केम थतो नथी? ते प्रश्नोत्तररूप गाथा एकरी कहेछेः-- मूलः— जग्ग जंतु जणणि तुल्ले, अइ उदयं जं न जिणमए होइ॥ तं किठ काल संभव, जियाण अइ पाव माहप्पं ॥ ४३ ॥ दोहाः— जग जननी सम जिनमते, जो अति उदय न होय ॥ कलि कालज जणनो अति, पाप महातम सोय ॥ ४३ ॥ व्याख्याः— जग्गजंतुजणणितुल्ले—जगतना जीवने मातानी तुल्य, जिणमए—एवो जे जिनमत, तेनो अइ उदयं—अति उदय जं—जो न—नथी होइ—थतो तं—ते किठकालसंभवजियाण—क्लिष्टकाल एटले कलिकालमां उत्पन्न थएला जे जीव तेउना अइपावमाहप्पं--उत्सूत्र देशनादिक दोपरूप अति पापनुं महात्म्य छे. एनो भावार्थः-- जिनमतनो उदय तो श्री दुप्पसह अणगारसुधी वर्त्तशे; तोपण जेवो तीर्थंकर महाराज छतां जिनमतनो उदय हतो, तेवो जिनमतनो अति उदय नथी थतो तेनुं कारण दोप दुष्ट कलिष्ट पंचम कालनेंविपे उ

त्पन्न थया जे जीव पार्श्वमी लोक, तेना उत्सूत्र देशनादि महादोषरूप अति पापनो प्रताप छे माटे जैन मतनो अति उदय केवी रीते थाय ! ॥ ४३ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामां कह्यु के जिनमतनो अति उदय थतो नथी ते दुष्ट लोकोना अति पापनु महात्म्य छे, ते दुष्ट लोको पापे करीने पूर्ण होयछे ते कहेछे – मूल – धम्ममि जस्स माया, मिछत्त गहो उसुत्ति नोसका ॥ कुगुरूवि करइ सुगुरु, विउसोवि स पाव पुन्नत्ति ॥ ४४ ॥ दोहा – जिसके माया धर्ममें, लागो ग्रह मिथ्यात ॥ सो उत्सूत्री नरम नह, कहै उलटि सवि वात ॥ ४४ ॥ व्याख्या – जस्स–जेने धम्ममि–जिन धर्मनेविषे माया–कपट वर्त्तेछे, एटले पूजा धनादिक लाभ यश कीर्त्तिने अर्थे लोकनी दृष्टिए करी जे धर्म करवो ते बधी माया जाणवी ते जेने छे, मिछत्तगहो–अतत्व श्रद्धान मिथ्यात्वनो गृह छतवाद वर्त्तेछे जेने वली उसुत्ति– उत्सूत्र भाषी छे, नोसंका– उत्सूत्र भाषवा थकी नरक निगोदनेविषे अनत कालसुधी निवास थशे एवी जेने शंका नथी, वली जे कुगुरुवि–कुगुरुप्रते पण सुगुरु–सारो गुरु करइ–करेछे, एटले आ उत्तम गुरु छे एम मानेछे, स–ते विउसोवि–विद्वान छता पण एटले द्रव्यथकी घणा शास्त्रो भणेलो छता पण पाव पुन्नत्ति–हिंसादिक अढारे पापेकरी पूर्ण जाणवो ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा कह्या प्रमाणे जे पापेकरी पूर्ण होय ते कांई पण धर्म कार्य करी शके नही, धर्म कार्य जिनाज्ञा प्रमाणे कर्याथी सुखदायक थाय छे, अन्यथा न थाय ते कहेछे – मूल – किच्चपि धम्म किच्च, पूया पमुह जिणिद आणाए ॥ भूअ मणुग्ग हरहिअ, आणा भंगाउ दुहदाय ॥ ४५ ॥ दोहा – जिन पूजादिक कार्य पण, सफल जिनाज्ञा थाय ॥ आणा भगरहित दया, कार्य सवी दुखदाय ॥ ४५ ॥ व्याख्या – पूया पमुह–पूजा प्रमुख एटले जिन पूजा, सामायक प्रतिक्रमण, शास्त्राभ्यास, तथा जिनभुवन कराववा प्रमुख धम्मकिच्चं धर्मकृत्य जे किच्चपि–करवु तेपण जिणिद आणाए–जिनेंद्रनी आज्ञाए करी सुखदाई थायछे भूअमणुग्गहरहिअ–भूत अनुग्रह रहित एटले जीव दयाए करीने रहित जे जिन पूजा तथा सामायकादिक धर्म कार्य करवु ते जिन आणानो भग कर्या जेवु थायछे माटे सिद्धांतमा कह्यु छे के, वीतरागनी आज्ञानो भग करवा थकी पूर्वोक्त सर्व धर्मकार्य दुहदायं–जन्म मरणादिक दुःखना देनारा छे जिन राजनी आज्ञानुं आराधन कर्याथीज मोक्ष थायछे अने जिनराजनी आज्ञा विराधवा थकी नरकादिक दुःख थायछे ए जिनागमनु गुह्य छे ॥ ४५ ॥

अवतरणः-- जिनाज्ञाविना कष्टादिक जे करवुं ते सर्व संसारनो हेतु थाय छे ते कहे छेः-- मूलः- कठं करंति अप्पं, दमंति दवं चयंति धम्मठी ॥ इक्कं न चय ति मिछत्त विसलवं जेण वुड्ढंति ॥ ४६ ॥ दोहाः-- कष्ट करे आपा दमे, द्रव्य त जे पण जोय ॥ तजे नही मिथ्यात्व लव, बुडे जेहथी लोय ॥ ४६ ॥ व्याख्याः-- कठं करंति-- लोच करवो, उघाडे पगे चालवुं, धरती ऊपर सूवुं. तथा अणसणा दि अनेक प्रकारनुं बाह्य तप, इत्यादिक कष्ट जे छे ते मूर्ख करे छेः अप्पं--आत्मा ने, एटले मनने तथा इंद्रियोने दमंति--मूर्ख दमे छे, वली दवं--धनादिक द्रव्य ते ने धम्मठि--धर्मना अर्थी थका जे मूर्ख चयंति-- त्यागे छे, पण इक्कं मिछत्तविस लवं--एक मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विषलवने न चयति-- मूकी देता नथी. जेण--जे मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विषलवे करी मूर्ख अज्ञानी दुःख समुद्रनेविषे वुड्ढंति--बूडे छे; ए मोटी खेदनी वात छे. ॥ ४६ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां उत्सूत्र भाषीनुं मूढपणुं देखाड्युं, हवे शुद्ध पुरुष नो संग करवो अने अशुद्ध पुरुषनो संग त्यागवो ते कहे छे. ॥ मूलः- सुद्ध वि हि धम्म राउ, वढई सुद्धाण संगमे सुअणु ॥ सोविय असुद्ध संगे, निउणाण विग लइ अणुदियहं ॥ ४७ ॥ दोहाः- वधे मीत सतसंगथी, वर विधि धरम सुराग ॥ घ टे कुसंगे प्रति दिवस, विदुनो पण ते राग ॥ ४७ ॥ व्याख्याः-- सुअणु--हे सुजन, हे धर्मोपदेश योग्य, सुद्धाण--जे शुद्ध पुरुष, सुसाधु, तथा सुश्रावक होय तेनो संग मे--समागम अथवा परिचय कर्याथी सुद्ध विहि धम्मराउ--शुद्ध विधि ते राग द्वेष मल रहित रत्नत्रयी मोक्ष मार्ग विधि तद्रूप जे जिन भाषित धर्म तेनेविषे राग एट ले प्रीति वढइ-- वधे छे एटले वृद्धिने पामे छे. अने हे सुजन, सोविय--ते पण शुद्ध विधि धर्मनो राग, असुद्ध संगे--अशुद्ध पुरुष एटले उत्सूत्र भाषी पासत्थादिकनो संग अथवा परिचय कर्याथी निउणाणवि--निपुण पुरुषो पण अणुदियहं- निरंतर दिन दिन प्रते गलइ--गले छे एटले हाणीने पामे छे. त्यारे अनिपुण पुरुषोने हाणी थाय तेमां शुं कहेवुं! माटे उत्सूत्रभाषी पासत्थादिकनो संग सर्वथा वर्जवो; अ ने शुद्ध प्ररूपक आचारवंत पुरुषनो परिचय करवो ॥ ४७ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां अशुद्ध पुरुषना संगनो त्याग करवो एम कह्युं, एथी ए म जाणवुं के जे अशुद्ध पुरुष होय छे ते शुद्ध पुरुषनी ऊपर द्वेष करवा वाला होय छे; माटे तेना समीपे बलविनाना पुरुषे वसवुं नहीं, ते कहे छेः-- मूलः-- जो से वइ सुद्ध गुरु, असुद्ध लोआण सो महा सत्तू ॥ तम्हा ताण सयासे, बल रहिओ

मा वसिय्यासु ॥ ४७ ॥ दोहा -- शुद्ध गुरू जे सेवतो, ते अशुद्ध जण शत्रु ॥ तो बल रहित वसो नही, ज्हा असुद्ध जण तत्र ॥ ४७ ॥ व्याख्या – जो–जे लोक सुद्ध गुरु–निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र गुणे गुणवत गुरु प्रते सेवइ–सेवे छे, सो–ते लोक अशुद्ध लोआण–उत्सूत्र नाषी पासडादिकना दृष्टीरागी नक्त लोक, तेउने मं हासत्तू–महा शत्रु एटले वैरीना जेवा लागे छे, तम्हा- ते कारण माटे ताण–ते असुद्ध लोकोना सयासे–समीपे बलरहिउ–धर्म आश्री निर्नय पणुं अने शरीर धनादिक शक्ति सपन्न एम अन्यंतर बाह्य ए बे प्रकारना बले करी, रहितजे होय तेणे मा वसिज्यासु–वसवु नही, केमके, जे द्वेषी माणस होय ते सारा गुणने पण दूषण दिये छे, माटे अशुद्ध लोकोना समीपे वसवु तेमा घणो उपद्रव रह्यो छे, तेथी बीजे कोई ठेकाणे रहेवु ते सारु छे। ॥ ४७ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामा खल पुरुषोनी पासे रहेवानुं निवारण कर्युं तेनुं कारण कहेछे – मूल – समय विऊ असमछा, सुसमछा जछ जिणमए अविऊं॥ तछ न वढ्ढइ धम्मो, पराहव लहइ गुणरागी ॥ ४ए ॥ दोहा -- जिन मत विदु असमर्थ जन, जहा समर्थ अजाण ॥ धर्म न वाधे तह लहे, गुणरागी अपमान ॥ ४ए ॥ व्याख्या.– जछ–जहा समयविऊ–जिन आगमना जाण पुरुष असमछा–क्षेत्र कालादिक दोषेकरीने असमर्थ छे, अने जिणमए–जिन मतनेविषे अविऊ–जे अविद छे एटले अजाण छे, ते सुसमछा–अति कलह, क्लेश तथा मार कूट करवाने समर्थ छे; तछ–तिहा धम्मो–शुद्ध विधि धर्म नवढ्ढइ–वृद्धिने पामे नही, ब लहुं गुणरागो–गुणानुरागी पुरुष पराहव–पराजवने एटले तिरस्कारपणाने लहइ–लहे एटले पामेछे, माटे अशुद्ध पुरुषोना समीपे असमर्थ होय तेणे न वसवु ॥४ए॥

अवतरण – जे सामर्थ्यवान उन्मार्गी तथा उत्सूत्री होय तेनो जिनमार्गने विषे प्रवेश करवा देवो नही ते कहेछे – मूल – ज न करइ अइ नाव, अमग्ग सेवी समछउ धम्मे ॥ ता लछं अहकुय्या, ता पीडइ सुद्ध धम्मछी ॥ ५० ॥ दोहा सबल कुमार्गी धर्ममें, जो न करे अति नाव ॥ तो सुंदर अथ जो करे, तो सुध धर्मि डुख दाव ॥ ५० ॥ व्याख्या – समछउ–मुष्टि चपेटादिक प्रहारनी अपेक्षाए करी कुत्सित समर्थवत एवो जे अमग्गसेवी–अविधिमार्गी एटले उन्मार्गनो सेवनार, उत्सूत्रनो बोलनार, सम्यक्त्वरहित लिंगधारी लोक तथा तेउना नक्त लोक ते धम्मे–जिन धर्मनेविषे ज–जो अइनाव–अति नावप्रते नकरइ–करे नही, एटले त्या पसारो अथवा प्रवेश करे नही, ता–तो लछ–लष्ट छे एटले सुंदरछे अह–

अथ जो ते अविधि मार्गना सेवनार लोक जिनधर्मनेविषे अति नाव एटले प्रवेश कुय्या--करे ता--तो सुद्ध धम्मत्थी--शुद्ध धर्मना अर्थी जे नव्य प्राणी छे तेउनेपी डइ--पीडे एटले अछता आल प्रदान कुवचन हेलनादिके करी दुःख दिये. माटे ते उ न्मार्गि लोकोनो जिनधर्मनेविषे प्रसार न थाय एटले आववुं न थाय तोज सारुं ५०

अवतरणः-- पूर्व गाथामां कह्युं के, समर्थ उन्मार्गीनो जिनधर्मनेविषे प्रवेश थाय तो ते धमार्थीने पीडा करेछे; हवे धर्मार्थी पुरुषोनो कोई परानव करी श के नही ते कहेछेः-- मूलः - जइ सव्व सावयाणं, एगत्तं जं तु मिछवायम्मि ॥ धम्मछियाण संदर, ता कहणु परानवं कुय्या ॥ ५१ ॥ दोहाः-- मिथ्या वादे होय जो, श्रावक जन सब एक ॥ धर्मी जनकूं वर तदा, किम दे दुख अविवेक ॥ ५१ ॥ व्याख्याः- मिछवायम्मि--मिथ्यावादनेविषे सव्व सावयाणं--नाम मात्र सर्व श्रावकोनुं जं--जो एगत्तं--एकत्वपणुं छे, तु--वली जइ--जो एकत्वपणुं धर्मवि धिवादनेविषे धम्मछियाण--धर्मार्थी पुरुषोनुं होय ता--तो सुंदर--हे सुंदर, हे न इ, ते नाम मात्र श्रावक लोक धर्मार्थी पुरुषोनो परानव--परानव अथवा तिर स्कार तु--इति वितर्के कह--केम कुय्या--करे! अपि तु नज करे. धर्मार्थी पुरुषो नुं पण धर्मविधिवादनेविषे एकत्वपणुं नथी केमके, ए विषम कालनो प्रनाव छे. माटे नाम मात्र जे श्रावक छे ते धर्मार्थी पुरुषोनो परानव करेछे. एनो नावार्थ आ देरासरनेविषे अमारो तथा अमारा गोत्री होय तेओनो मूल नायकनी पूजा आरती करवानो अधिकार छे; बीजानो अधिकार नथी. तथा चंडिकादि गोत्र देवी देवता अमारा पूर्वज मानता आव्याछे, ते अमे तमारा कह्याथी केम मूकी ये? नगरादिकनेविषे सुविहितनो प्रवेश थतां पूर्वे कोई समये ओछव थयो नथी ते अमे बेगा छतां केम थाय! इत्यादिक जे मिथ्यावाद तेनेविषे नाममात्र श्रावकोनुं जे एकत्वपणुं छे, तेमां विधि चैत्यादिक धर्मविधिवादनेविषे धर्मार्थी पुरुषोनुं संघपट्टोक्त एकत्वपणुं होय तो हे सुंदर, कोई पण धर्मार्थी पुरुषोनो परानव करी शके नही.

अवतरणः-- पूर्व गाथामां धर्मार्थीनुं वर्णन कह्युं, हवे ते धमार्थीने सहाय क रनारा गुणोने कहेछेः-- मूलः-- तं जयइ पुरिस रयणं, सुगुणठ्ठं हेम गिरिवर मह ग्घं ॥ जस्सा सयम्मि सेवइ, सुविहिरउ सुद्ध जिण धम्मं ॥ ५२ ॥ दोहाः--सुगुण म हर्घ महा गिरि, जयसों पुरुष रतन्न ॥ जसु आश्रय आचार रत, करै सुधर्म जत न्न ॥ ५२ ॥ व्याख्याः-- तं पुरिस रयणं--ते पुरुष रत्न जयइ--जयवंत छे; अथ वा जयवंत थाओ, जस्स सयम्मि--जेना आश्रये एटले जेना आधारे सुविहिर

उं--सुविधिरत पुरुष एटले विधिमार्गनेविषे तत्पर पुरुष शुद्ध जिणधम्म कदाग्रहादिक मल कलंक रहित जिनधर्मप्रते सेवइ- सेवेछे एटले आराधेछे एवो पुरुषरत्न सुगुणइं--औदार्य, धैर्य, गभीर, क्षमा विनयादिक सुष्ट गुणरूप धनेकरीने सहित छे, वली ते पुरुष रत्न केवो छे? हेम गिरिवर मह्ग्घं--मेरु पर्वतनी पठे महर्घ छे एटले अति महोंगो अथवा अमूल्य छे ॥ ५२ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा कह्यु के, धर्मने सहायता करनारो अमूल्य पुरुष छे; तेनोज फरी पुष्टी करेछे – मूल – सुरतरु चिंतामणिणो, अग्घं न लहंति तस्स पुरिसस्स ॥ जो सुविहिरय जणाण, धम्माधार सया देई ॥ ५३ ॥ दोहा.– ते सुपुरुषके मूलकूं, सुरतरु मणी न पाय ॥ विधिरत जनकूं जो दिए, धर्म सहाय्य सदाय॥ ५३ ॥ व्याख्या – जो- जे पुरुष सुविहि रयणाण- सुविधि रत लोकोने धम्माधार- धर्मनो आधार एटले धर्मनो अवष्टंभ साह्य, देइ- दियेछे, सया- सदा सर्वदा, तस्स पुरिसस्स–ते पुरुषनो अग्घ–अर्घ एटले मूल ते सुरतरु चिंतामणिणो–कल्पवृक्ष चिंतामणिरत्न उपलक्षणथी कामधेनु कामकुंभ छे ते नलहंति–नथी पामता., केमके ते पुरुषने शिवसुखदायक अमूलक सम्यक्त्व रत्ननी प्राप्ति छे माटे कल्पवृक्ष चिंतामणि प्रमुख छे ते ते पुरुषना मूलने नथी पामता, एटले तेनी तुलना करी शकता नथी ॥ ५३ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा धर्मने सहाय्य करनार पुरुषना गुणनुं कीर्त्तन थयुं ते सांभलीने ते सत्पुरुषोतो लज्जाने पामेछे, त्यारे तेनुं गुण कीर्त्तन करवामां फल शुं छे एवी शंकानु निवारण करवानेअर्थे कहेछे – मूल – लज्जंति जाणि मोह, सप्पुरिसा नियय नाम गहणेण ॥ पुण तेसि कित्तणाउं, अम्हाण गलंति कम्माइ ॥ ५४ ॥ दोहा – लाजे निज नामोच्चरे, डु मानुं सत पुर्ष ॥ वलि त्हेना गुण गाय हम, कर्म टले कटु तुर्ष ॥ ५४ ॥ व्याख्या – सप्पुरिसा–सत्पुरुष जे छे ते जोपण नियय नाम गहणेण–निजक नामनु ग्रहण करवाथी एटले आ दाता, परोपकार कर्त्ता, इत्यादिक गुणे करी सहित पोतानु नाम सांभलवाथी लज्जंति--लज्जाने पामेछे जाणिमोह–एम छे ते हुं जाणुछुं, तोपण तेसि कित्तणाउं–तेना गुण कीर्त्तन करवाथी पुण–वली अम्हाण–अमारा कम्माइ--ज्ञानावरणादिक पाप कर्म गलंति–गलेछे, एटले क्षय थायछे, माटे सत्पुरुषना गुण कीर्तन निरंतर करवा

अवतरण – पूर्व गाथामां सत्पुरुषोनेविषे रहेला गुणोनुं जे वर्णन करवु ते निर्जरानो हेतु छे एम कह्यु, हवे आज्ञा रहित धर्म सेवनारनी वार्त्ता कहेछे –मूल

आणा रहियं कोहाइ संजुयं अप्प संसणठंच ॥ धम्मं सेवं ताणं नय कित्ती नेय धम्मं च ॥ ५५ ॥ दोहाः-- आण नंग क्रोधादि जुत, आप प्रसंस निमित्त ॥ धर्म सेवता लोकने, नही धर्म नहि कित्त ॥ ५५ ॥ व्याख्याः-- आणारहियं--आश्रव हेय, संवर, उपादेय, ए वीतरागनी आज्ञा तेणे करी रहित. वली कोहाइ संजुयं क्रोधादि संयुक्त एटले क्रोध मान माया लोन ए चार कषाये करीने सहित, तथा अप्प संसणठं--आत्म प्रशंसाने अर्थे पोतानी शोनाने अर्थे ए प्रकारे धम्मं--जिन धर्म प्रते सेवंताणं--सेवनारा लोकोनी नयकित्ती--कीर्त्ति नथी; एटले विवेकी पुरुष जे ठे ते तेउनी श्लाघा करता नथी. च--वली नेयधम्मं-- ते धर्म पण नही के जे डुर्गतिमां पमता प्राणीने राखे नही ॥ ५५ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां कह्युं के, आज्ञारहित धर्मना सेवनारनी कर्त्ति नथी होती अने तेउने धर्म पण नथी होतो; तो पण कांईक तो कीर्त्ति तथा धर्म थतो हशे, ए आशंका दूर करवाने कहेठेः-- मूलः-- इयर जण संसणाए, हिठा उस्सुत्त नासिए न नयं ॥ ही ही ताण नराणं, डुहाइ जइ मुणइ जिण नाहो॥५६॥ दोहाः-- नीच प्रसंसाए नणे, उत्श्रुत धीठ निलाज ॥ जो नावी डुःख तेहने, सो जानै जिन राज ॥ ५६ ॥ व्याख्याः-- इयर जण संसणाए--जिनोक्त धर्मना अजाण इतर जन सामान्य लोकोए करेली जे प्रशंसा, तेणे करीने हिठा--ह्रिष्ट थएला एटले प्रसन्न थया थका उस्सुत्त नासिए--उत्सूत्र नाषण करतां न नयं--जेने नरकादिकनेविषे नमवानुं नय नथी; ही ही--मोटी खेदनी वात ठे. ताण नराणं--ते नरोना अनागत कालसंबंधी डुहाइ--जे डुःख ठे, ते प्रते जइ- जो जिण नाहो--जिननाथ मुणइ--जाणे ठे; तो पण ते डुःखप्रते समस्त प्रकारे कहेवाने समर्थ नथी, केमके, डुख अनंत ठे माटे ॥ ५६ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां उत्सूत्र नाषीने अनंत डुःख थाय ठे एम कह्युं, हवे बोधीने अनंत संसार च्रमणनो नाश थाय ठे ते कहे ठेः-- मूलः-- उस्सुत्त नासगाणं, बोही नासो अणंत संसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न नासंति ॥ ५७ ॥ दोहाः-- बोधि नाश उत्सूत्रिके, जामण मरण अनंत ॥ प्राण तजे पण धीर तत, नहि उत्सूत्र नणंत ॥ ५७ ॥ व्याख्याः-- उस्सुत्त नासगाणं--जिनराजना वचनथी विरुद्ध ते उत्सूत्र कहेवाय ठे, तेनुं नाषण करनार एटले बोलनार, तेने बोहीनासो--श्री जिन धर्मनी प्राप्ति ते बोधी सम्यक्त्व तेनो नाश थाय अने अणंत संसारो--अनंत संसार थाय एटले अनंत कालसुधी चार गतिमां च्र

मवु थाय ता–ते कारण माटे पाणइअएवि–प्राण तज्याथी पण एटले प्राण कवने विषे आव्या छता पण धीरा- बुद्धिमान जे पंडित पुरुष छे ते उस्सुत्तं--जिन वचन थी विरुद्ध न भासति- बोलता नथी ॥ ५७ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा उत्सूत्र बोलवु नही, एटले जे धीर पुरुष होयछे ते उत्सूत्रनुं बोलवु अविधि जाणीने त्याग करेछे, हवे ते अविधिनी प्रशंसा पण न करवी ते कहेछे – मूल – मुद्धाण रंजणत्थं, अविहि पसंस कयावि न करिज्जा ॥ किं कुल बहुणो कइवि, थुणंति वेसाण चरियाइं ॥ ५८ ॥ दोहा – अविधि कीर्ति न कर कदा, ऋजु जन रंजन हेत ॥ सुन कुल वधु किं जी किया, वेस्या चरित थुणेत ॥ ५८ ॥ व्याख्या – मुद्धाण रंजणत्थ–अजाण लोकोने रंजन करवाने अर्थे अविहि पसंस–पोतानो गछ मूकी बीजानी पाशे जई सामायक पडिकमण शास्त्र श्रवणादिक कांई न करवु, जेम तेम पूजा सामायकादिक धर्मकृत्य करवु, विधि अविधि कांई न जोवु, इत्यादिक जे उत्सूत्र तेरूप अविधिनी प्रशंसा एटले नि कारण जे अविधि करवानी अभिलाषा जे अविधिनी प्रशंसा तेने सत्पुरुष कयावि–कदापि एटले कोई काले पण न करिज्या–करे नही, एज वात दृढ करवाने वास्ते अहीं दृष्टांत कहेछे – किं–शुं कुलबहुणो– कुलवधु एटले कुलवान स्त्रीओ कइवि– कोई ठेकाणे पण वेसाण चरियाइं– पोतानी इछाए चालवु, सरस आहार करवो, अति उज्वल वेश पहेरवो, परपुरुषने भोगववु, जोबननो लाभ मानवो, इत्यादिक वेस्याना जे चरित ते प्रते थुणंति–स्तवे अथवा वखाणे, अपितु नहीज वखाणे केम के जो तेना वखाण करे तो कलंक लागे तेम जे सत्पुरुष छे ते अविधिनी श्लाघा करेज नही केमके, जो करे तो तेने उत्सूत्रनो कलंक लागे ५८

अवतरण – पूर्व गाथामा अविधिनी प्रशंसा ते जिन आज्ञाना भंगनो हेतु होवाथी तेनो निषेध कर्यो, हवे ते जिन आज्ञाना भंगनो भय कोईने होयछे ने कोईने नथी होतो ते कहे छे – मूल – जिण आणा भंग भयं, भवसय भीयाण होइ जीवाण ॥ भवसय अभीरुयाणं, जिण आणा भंजणं कीडा ॥५९॥ दोहा – भवभयथी अति भीरु जे, आण भंग भय तास ॥ भवभयथकी अभीरुने, आणा भंग न हास ॥ ५९ ॥ व्याख्या – भवसय भीयाण– भवसतभीत एटले नरकादिकना शेकडा भवथकी बीहोना एवा जीवाण-- जीव जे छे तेओने जिणआणा भंगभय– जिन आज्ञाना भंगनो भय होइ -थाय छे , केमके, ते भवसत भीत जीव एवो विचार करेछे के जो राजानो आज्ञानो भंग कर्यो होय तो वधादिक अने

क प्रकारना डुःखनी प्राप्ति थायछे, तो जिन आज्ञानो ज्ञंग करवाथी जीव निश्चे करी नरकादि चार गतिमां प्राए अनंत कालसुधी अनंत डुःख जोगवे तेमां शुं कहेवुं! माटे जिन आज्ञाना ज्ञंगनो जय सत्पुरुष जवसतजीतने होयछे, अने ज वसय अज्ञीरुयाणं– जे नरकादिक जवना शोकडाथकी नथी बीहीता एवा जे जीव तेओने तो जिण आणाजंजणं कीमा– जिन आज्ञानो ज्ञंग करवो, तथा विराध वुं ते क्रीमारूप छे एटले एक हासीरूप छे. ॥ ५ए ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां कह्युं के, जे जीवोने जवनी जीति नथी ते जिन आज्ञाने विराधे छे; एथी एम न जाणवुं के, जे शास्त्रोथी अजाण होय छे तेज विराधे छे; अने जे जाण होय ते नथी विराधता! किंतु शास्त्रना जाण होय छे ते पण कोई डुष्ट कर्मना उदयथी जिन आज्ञाने विराधे एमां कांई आश्चर्य नथी ते कहे छेः– मूलः– को असुआणं दोसो, जं सुअ सहियाण चेयणा नघा ॥ धि द्धी कम्माणजउ, जिणोवि लद्धो अलद्धुत्ति ॥ ६० ॥ दोहाः–जोनसि स्तुत युत चेतना, किसो अस्तुतनो दोष॥ धिग् धिग् कर्मनकूं यदा, लजध अलज जिन पोस॥६०॥ व्याख्याः– सुअ सहियाण–श्रुत सहित जे लोक छे, तेउने एटले घणा सिद्धांत ना जाण लोकोनी जं–जो चेयणनघा–चेतना नाशने पामी एटले जिन आज्ञानी श्रद्धाने अजावे अजिनिवेश मिथ्यात्वना उदये करी चेतना विपरीत पणाने पामी तो असुआणं–अश्रुत लोकोनी एटले जे जिनोक्त सिद्धांत जण्या नथी एवा लोक छे तेउनो को दोसो–शुं दोष कम्माण–कर्मने धिद्धि–धिक् धिक् थाउ एटले कर्मने धिकार छे जओ–जे कारण माटे जिणोवि लद्धो–जिन एटले तीर्थंकर, पाम्या उतां पण अलद्धुत्ति–अण लाध्या अथवा अण पाम्या जेवुं थयुं ज मालि प्रमुखने, ते सत्य छे केमके, सिद्धांतमां कह्युं छे के, मनुष्य जन्म अने सिद्धांत सांजलवुं डुर्लज छे. ते कदाच सांजले पण सांजलीने तेनी श्रद्धा आववी परम डुर्लज छे. केमके, मोक्ष मार्ग सांजलीने पण घणा ज्रष्ट थाय छे ॥ ६० ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां कर्मने धिक्कार होजो एम कह्युं, माटे कोईनो उपहास करवो नही ते कहे छेः–मूलः– इयराणवि उवहासं, तम जुत्त जाय कुल पसूयाणं॥ एस पुण कोवि अग्गी, जं हासं सुद्ध धम्ममि ॥ ६१ ॥ दोहाः– करवुं पर उपहास जे, ते अयुक्त जिनदास ॥ कुल प्रसूतके अगनि ले, धरमविषे जो हास ॥ ६१ ॥ व्याख्याः– जाय–हे जाई इयराणवि उवहासं–इतर सामान्य नीच लोकोनो पण उपहास करवो तं–ते कुल पसूयाणं–कुल प्रसूत एटले कुलीन पुरुषोने अयुत्तं–अ

युक्त छे एटले अघटित छे पुण--तथा सुद्ध धम्ममि--निर्मल कषाय मल रहित धर्म नेविषे तथा शुद्ध धर्म छते ज हास--अज्ञानी लोकोने जे हास्य आवे छे एस-- ए कोई अग्गी--वचनथी न कहेवाय, एवो कोईक अग्नि छे केमके, हास्य छे ते क्रोधादि कषायनुं कारण छे ते कोड पूर्व संचित तप चारित्रने बाली नस्म करी नाखे छे, ने जीवने प्राये उत्कृष्ट अनत काल सुधी कुनकारना चाकनी पठे ससार कांतारमा नमावे छे माटे कोईनो उपहास करवो नही ॥ ६१ ॥

अवतरण -- पूर्व गाथामां कह्यु के जे शुद्ध धर्मनो उपहास करे ते अज्ञानी छे, तेने पण जे सुमण सुजन होय ते, परम हित देवानी इच्छा करे एम कहेछे -- मूल - दोसो जिणिद वयणे, सतोसो जाण मिच्छ पावम्मि ॥ ताणंपि सुद्ध हियया, परम हियं दाउ मिच्छति ॥ ६२ ॥ दोहा -- मिथ्यात्वे सतोष जस, जिन वर वचने द्वेष ॥ तसु पण सुद्ध मनादिए, परम सुहित उपदेश ॥ ६२ ॥ व्याख्या -- जाण-- जेओने जिणिद वयणे--जिनेंद्रना हास्य कषायादिक दोष वर्जित जे वचन, तेओनेविषे दोसो -द्वेष वर्त्ते छे अन मिच्छपावमि--हिंसा जाव मिथ्यात्व दर्शन शल्य अढार पाप तेनेविषे सतोसो--संतोष वर्त्तेछे एटले प्रसन्नता वर्त्ते छे, ताणपि--तेओने पण सुद्ध हियया--निर्मल छे हृदय जेओना एवा जे पुरुष ते परम हिय दाउं इच्छंति--सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र मोक्षना उपायरूप परम हित देवाने इच्छेछे ॥६२॥

अवतरण -- पूर्व गाथामा कह्यु के, जिनधर्मनो द्वेषी अने मिथ्यात्व पापनो अति रागी होय तेनी उपर पण उपकार करवो तेनुं कारण शु? ते कहेछे -- मूल -- अहवा सरल सहावा सुअणा सव्वछ हुंति अवियप्पा ॥ छड्डत विसजराणवि, कुणंति करुस डुजीआण ॥ ६३ ॥ दोहा -- सरल स्वनावी स्वजन व्हे निर्विकल्प सब ठौर ॥ मसित साप उपर अपी, करे कृपा क्या ओर ॥ ६३ ॥ व्याख्या -- अहवा--अथवा सरल सहावा--सरल एटले निष्कपट स्वनाव छे जे ओनो एवा जे सुअणा-- सुजन एटले सत पुरुष छे ते सव्वछ--सर्व स्थानकनेविषे अवियप्पा--इष्ट रागद्वेष विकल्प रहित हुंति-- होयछे एटले शत्रुमित्रनेविषे समचित्तवर्त्ती होयछे छड्डंतविसजराणवि डुजीहाण--मूकी दीधो छे अथवा वमनकर्यो छे मुखथकी विषनो नर एटले समूह जेणे, एवा जे द्विजिन एटले सर्प तेओनी उपर पण करुण--करुणा एटले दया कुणंति--करेछे, त्यारे बीजानी उपर दया करे तेमां ते शु कहेवु! अहो सर्प समान डुर्जन अने विष समान तेओनां डुर्व

चन जाणवा. एवा दुर्जननी उपर पण जेने दयाभाव वर्त्तेछे एवा सज्जन परम हित करवानी इच्छा केम नही करे! अपि तु करेज. ॥ ६३ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां श्रावकनुं सम्यक्त्व दृढ करवाने कथन कर्युं पण साधुनुं सम्यक्त्व कह्युं नही तेथी एवो विचार थायछे के साधुने सम्यक्त्व हशे? ते शंका दूर करवाने कहेछेः– मूलः– गिहि वावार विमुक्के, बहु मुणि लोएवि न हि सम्मत्तं ॥ आलंबण निरयाणं, सढ्ढाणं भाय किं भणिमो ॥ ६४ ॥ दोहाः– गृह व्यापार रहित घणा, मुनि पण समकित हीन ॥ इह सालंबन श्राद्धकूं कहिये किसुं कुलीन ॥ ६४ ॥ व्याख्याः– गिहि वावार विमुक्के–गृहस्थ संबंधी अंगार कर्म्मादिक अनेक प्रकारना व्यापार कुव्यापार थकी विमुक्त–रहित एटले द्रव्येकरी गृहस्थना व्यापारेकरी रहित एवा जे बहुमुणिलोएवि–घणा जे साधु जन तेउनेविषेपण नहि सम्मत्तं–सम्यक्त्व नथी तो आलंबण निरयाणं–माता पिता नो आग्रह, पुत्र कलत्र भ्रातादिकनो मोह, श्रेष्टादिकनी दाक्षिणता, इत्यादिक जे आलंबन तेनेविषे निरत–तत्पर एटले पूर्वोक्त आलंबनोएकरी कुदेव कुगुरु तथा कुधर्मने सेवता एवा जे सढ्ढाणं–नाममात्र श्रावक, तेउनेविषे सम्यक्त्वनी प्राप्ति नो भाय–हे भ्रात, किं भणिमो–शुं अमे कहिये? केमके, जो गृहस्थ व्यापारआलंबन रहित द्रव्य मुनिनेविषे सम्यक्त्वनी नास्ति छे; तो पुत्र कलत्रादिक अनेक आलंबनोएकरी सहित व्याकुल एवा जे नाम श्रावक तेउनेविषे सम्यक्त्व केम होय! अपि तु न होय ए भाव. ॥ ६४ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां सम्यक्त्व पामवानो उद्यम प्रथम करवो एम देखाड्युं, हवे उत्सूत्रनो निषेध करवो ते कहेछेः– मूलः– नसयं न परं कोवा, जइ जीअ उसुत्त भासणं विहियं ॥ ताबुड्डिसि निभ्भंतं, निरत्थयं तवफडा डोवं ॥ ६५ ॥ दोहाः– किमहिन उत् श्रुत भाषवुं, उत् श्रुत भाष्युं जोय ॥ तो सहि बूडिस भव्य तूं, निरर्थ जप तप होय ॥ ६५ ॥ व्याख्याः– सयं–स्वयमेव एटले पोतानी बुद्धिए करीने न–उत्सूत्र न बोलवुं; परं–गुर्वादिकनी अपेक्षाए करीने न–उत्सूत्र न बोलवुं, वा–अथवा कोण जाणे केम छे केम नथी! जिनागम अति गंभीराथी छे; विधि जोतां तो तीर्थनो उच्छेद थाय; माटे जेम चाले तेम चलाव्या जवुं. एम जे बोलवुं ते उत्सूत्र; इत्यादिक उत्सूत्र बोलवुं नही, तथा कोवा–कोप थकी. उपलक्षणथी मान माया लोभ हास्य भयादिकथी उत्सूत्र न बोलवुं. जीअ–रे जीव, जइ–जो उसुत्त भासणं–उत्सूत्रनुं भाषण एटले कथन विहियं–कर्युं

ता–तो संसार समुद्रनेविषे बुड्डिसि–तु बुडीश निब्भंत–निश्चे तवफडाडोव–तपनो फटाटोप एटले आमंबर ते उत्सूत्र बोलवायकी निरच्छयं–निरर्थक छे, एटले फो कट छे माटे तपक्रियाए करीने संसारथी तू छूटवानो नथी ॥ ६५ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा जेने जिनवचन परिणम्या नथी तेनु स्वरुप कह्यु, हवे जेने जिनवचन परणम्या छे तेनुं स्वरूप कहेछे – मूल – जह जह जिणिंद वयण, सम्म परिणमइ सुद्ध हिययाण ॥ तहतह लोअ पवाहे, धम्म पडिहाइ नड चरियं ॥ ६६॥ दोहा – जिम जिम जिनवच सुमनने, प्रगटे सम्यक् प्रकार॥ तिम तिम लोक प्रवाहमे, धर्म नाति नट चार ॥ ६६ ॥ व्याख्या – जह जह–जेम जेम सुद्ध हिययाण- निर्मल हृदयवत पुरुषोने जिणिंदवयण–जिनेंद्रना वचन सम्म–सम्यक् प्रकारे परिणमइ–परिणमे छे एटले अत्यत रुचेछे, तह तह–तेम तेम लोअपवाहे– लोक प्रवाहनेंविषे धम्म– जे आपमतिनो धर्म छे ते नडचरिय– नट चरित एटले नटना खेलनी परे तेने पडिहाइ– प्रतिभासेछे एटले देखाय छे, तेवा पुरुषोने सम्यक्त्व थाय. ॥ ६६ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा जिनेद्र वचन आश्री कह्यु, हवे तेनुंज दृढपणे कथन करेछे – मूल – जाण जिणिंदो निवसइ, सम्म हिययम्मि सुद्धनाणेण ॥ ताण तिण व विरायइ, समिच्छ धम्मो जणो सयलो ॥ ६७ ॥ दोहा – शुद्ध ज्ञान कर जसु हिये, सम्यक वशो जिनेश ॥ तसु आगे तृण जिम दिपे, मिथ्या धर्मि अशेष ॥ ६७ ॥ व्याख्या – जाण हिययम्मि- जेना हृदयनेविषे जिणिंदो–जिनेंद्र तीर्थनाथ सम्म–सम्यक् प्रकारे सुद्ध नाणेण–निर्मल ज्ञाने करीने निवसइ– वसे छे , ताण–तेने सम्मिच्छ धम्मो–मिथ्या धर्म सहित एवा जे सयलो–सकल जणो–लोक छे ते तिणव–तृणोनी परे अकिंचित्कर एटले काई हित बल करवा समर्थ नथी एवो ते मिथ्यात्वी लोक विरायइ–विराजे छे, भासेछे एटले देखायछे ॥६७॥

अवतरण – पूर्व गाथामा जेना हृदयमा सम्यक् प्रकारे जिनेंद्र देव वशेछे ते जिनधर्मथकी चलायमान थाय नही, एम देखाड्युं हवे तेथी जे इतर छे तेनुं स्वरुप कहेछे – मूल – लोअ पवाह समीरण, उद्दम पयम चम लहरीए ॥ दढ सम्मत्त महाबल, रहिआ गुरुआविहल्लंति ॥ ६८ ॥ दोहा – लोक प्रवाह पवन उदम, चम प्रचम लहरेय ॥ दढ समकित अति बलविना, गुरुआ पण हलेय ॥ ६८ ॥ व्याख्या – लोअ पवाह समीरण--लोक प्रवाहरूप पवन, तेने उद्दंड–आगम विरुद्ध अछता वचनरुप अति ऊची एवी पयम–प्रचड दुःखदायक क्रोध

ना वचनरूप माहोमांहे मलेली श्रेणी जे चंम– रोद्र अतिशय नयकारी एवी ल हरीए–लहेरीयोएकरी प्रेरया बतां एवा, वली दृढसम्मत्त महाबल रहिआ–दृढ स म्यक्त्वरूप महा बलेकरीने मोटा पराक्रमे करीने रहितबता एवा गुरुआवि– बा ह्य गुणेकरीने मोटा पण ते हल्लंति–हालेबे एटले मोलम मोला थायबे. अमुक एम कहेबे, अने अमुक एम कहेबे तेमां कोनुं खरुं मानिये! आनुं के पहेलानुं! शुं करिये! एवी रीते मोलम मोला थायबे पण तत्व निश्चे करी शकतो नथी. ॥६८॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां लोक प्रवादरूप पवननी लहेरोएकरी जे प्रेरया होयबे ते अज्ञानी होयबे, एम कह्युं, हवे तेनुं स्वरूप कहेबेः– मूलः– जिण मय लव हीलाहे, जं डुःखं पाउणंति अन्नाणी, नाणीण संजरित्ता, जएण हियय थरहरइ ॥ ६ए ॥ दोहाः– जिनमतनी निंदा करी, जो अज्ञानि डुख पाय ॥ ते सांजरि ज्ञानी तणो, जय करि कंपे काय ॥ ६ए ॥ व्याख्याः–जिणमय लवहीलाए–स्या द्वादनी एक लवमात्र हीलनाए करी अन्नाणी–अज्ञानी जीव जं डुक्कं–जे डुःखप्र ते पाउणंति–पामे बे, ते डुखने संजरित्ता–संजारीने अथवा तं संजरित्ता– ते डुःख ने समरीने नाणीण–ज्ञानवान पुरुषोनुं जएण–जयेकरीने हियर्य–हृदय थरहरइ– थर थर कंपायमान थाय बे; एटले ते अज्ञानी जीवनी ऊपर अनुकंपा आवे बे. अने पोते पण जिनमतनी हीलना थकी घणुंज बीहे बे ए जाव ॥ ६ए ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां जिनमतनी हीलना कस्याथी अज्ञानी जीव जे डुःखने पामे बे, ते डुःखने याद करीने ज्ञानी पुरुषनुं हृदय जये करी थर थर कंपे बे एम कह्युं, पण ते ज्ञानीजीव अज्ञानीना दोषने जोता नथी ते कहे बेः–मूलः–रे जीव अना णीणं, मिबदिठीण नियसि किं दोसे ॥ अप्पावि किं न याणेसि, नय्यंइ कठेण सम्मत्तं ॥ ७० ॥ दोहाः– मिथ्यादृष्टि अज्ञानिनो, दोष जुवे शुं योध ॥ नहि जा णे शुं आपने, कष्टे समकित बोध ॥७०॥ व्याख्याः–रे जीव–हे जव्य जीव, अन्ना णीणं मिबदिठीणं–अज्ञानी जे मिथ्यादृष्टि बे तेउना दोसे–जिनमतनी हीलनादिक दोषने किं– शुं नियसि–तुं देखे बे; तुं ताहरी अप्पावि– आत्माने पण किं न या णेसि–शुं नथी जाणतो, जे अनेक वार द्रव्य थकी जिनमत आश्रीने जिनमतनी हीलना कीधी तेथी में घणां डुःख पाम्यां; एम शुं तुं नथी जाणतो? अर्थात् तुं जाणे बे; वली नय्यंइ–वीतरागना वचनथी जणाय बे; जे सम्मत्तं–सम्यक्त्व दर्शन ते कठेण–कष्टे करी अनेकगमे उपदेश देवाथी पमाय अथवा जणाय बे; पण स हेजे पमाय अथवा जणाय नही. ॥ ७० ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा कष्टे करीने सम्यक्त्व जणाय छे एम कह्यु, त्यारे शिष्ये अशंका करी के, गोत्र देवतादिक तथा पासत्थादिकने पूजता लोकवृत्तिए करीने कोईएक खशी जाय तेमा शु दोष छे? इछा तो शुद्ध जिनधर्मनी छे? एनो उत्तर कहेछे – मूल – मिछत्त मायरतवि, जे इह वंछंति सुद्ध जिण धम्म ॥ तेग छावि जरेण, जुत्तु इछंति खीराई ॥ ७१ ॥ दोहा – आचरता मिथ्यात्वने, जे चाहत जिन धर्म ॥ ज्वर पीडित ते पय पिवा, वाछे विकल विशर्म ॥७१॥ व्याख्या – मिछत्त मायरतवि–कुदेव कुगुरु, कुधर्म सेवनरूप मिथ्यात्वने आचरता अथवा सेवता लोकनी वृत्तिए करी कोईएक दिवसे पण जे–जे पुरुष इह–आ जगतनेविषे सुद्ध जिणधम्म–निर्मल जिन धर्मने वंछंति–वाछे छे, ते पुरुष जरेण–ज्वरे करीने एटले तापे करीने घछावि–ग्रस्त एटले पीडाता थका पण खीराइ–क्षीरादिकप्रते जुत्तु–खावाने इछंति–इछेछे, एवा न्याय करेछे एटले जे मिथ्यात्वप्रते सेवतो थको जिनधर्मनी इछा करेछे ते करवु तेनुं सर्व नव दुखने अर्थे छे. ॥ ७१ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा मिथ्यात्वने आचरतो छतो पण जे जिनधर्म करवानी इछा करेछे, एम कह्यु, हवे तेना दोष देखाडता छता दृष्टात सहित दार्ष्टात कहेछे – मूल – जह केइ सुकुल वहुणो, सील मयलंति जिंति कुल नाम ॥ मिछत्त मायरतवि, वहंति तह सुगुरु केरत्त ॥ ७२ ॥ दोहा – जिम केईक सुकुल वधू, व्रत हत लियकुल नाम ॥ आचरता मिथ्यात्व तिम, वहे सुगुरु अनुगाम ॥ ॥ ७२ ॥ व्याख्या – जह–जेम केई–कोईएक सुकुल वहुणो–सारा कुलमा उत्पन्न थएली स्त्रीओ सील मयलंति– अग उपाग गोपीने राखवा, पर पुरुषोनी साथे वातो न करवी, अति उन्नट वेष न पहेरवो, नीची दृष्टि करी चालवु, कामविकारनी कथा न करवी, घरने बारणे ऊना न रहेवु, बारी गोखलानी बाहर मुख कहाडीने न जोवु, लाज तथा शरमने मूकीने वातनो विस्तार न करवो आलस न मोडवु, जाणी जोईने बगासा न नाखवा, कडकडा न कहाडवा, पर पुरुषने प्रेम सहित न जोवु, कार्यविना कोई सगावालाने घेर पण न जावु, इत्यादिक शील आचारने मलीन करती छती जिंतिकुलनाम–सेनापति, गाथापति श्रेष्टी इत्यादि मोटाना कुलनु नाम लेती एटले अमे मोटा कुलनी छए, एम कहेती मोटा कुलने कलंकित करेछे तह–तेम मिछत्त मायरतवि–कुदेव तथा कुगुरुसेवा, अने उत्सूत्रप्ररूपणादिक मिथ्यात्वने आचरता छता पण नामसाधु अने नामश्रावक ते सुगुरु केरत्तं–सौधर्मा स्वामी प्रमुख सुगुरुना केडवापणाप्रते वहंति– वहेछे एटले धारण

करेछे. अर्थात् पोते उत्सूत्री अनाचारी छतां संविज्ञ गीतार्थ सुगुरुना केडवापणाने धारेछे ते उलटुं आचारवंत गुरुने उत्सूत्री अनाचारी लोकमांहे प्रसिद्ध करेछे पण ते बापडाने अज्ञानने वसे खबर पडती नथी. ॥ ७२ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां मिथ्यात्वनुं आचरण करतां घणा दोष लागेछे एम कह्युं, हवे उत्सूत्रविषे वात कहेछेः-- मूलः-- उस्सुत्त मायरंतवि, ठवंति अप्पं सु साव गत्तम्मि ॥ तेरुद्दरोरघछवि, तुलंति सरिसं धनड्ढेहिं ॥ ७३ ॥ दोहाः-- आच रता उत्सूत्र जे, मानै आपसुसड्ढ ॥ रोड्ड दरिद्रे दुःखि ते, तुले साथ सुधनड्ढ॥७३॥ व्याख्याः--उस्सुत्त मायरंतवि--अविधिए जिनपूजा सामायक पडिकमणादिक उत्सूत्र प्रते आचरतां छतां पण एटले सेवतां थका अने जे सुसावगत्तम्मि--सुश्रावकपणा नेविषे अप्पं--पोताने ठवंति--स्थापेछे ते--ते पुरुष शुं करेछे ! रुद्दरोरगछवि--रोद्र रोरेकरी एटले अतिशय दारिद्रे करी ग्रस्तछता पण एटले पीड्या थका अने धणढेहि सरिसं--धनाढ्यनी साथे एटले महाधनवाननी साथे तुलंति- तुलना करे छे, एटले पोतें दारीद्री छतां धनाढ्यनीसाथें बरोबरीपणुं करेछे. ॥ ७३ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां उत्सूत्र बोले ते मूढ कहेवाय एम कह्युं, हवे जे मूढ होय ते न्याय जाणे नही ते कहेछेः-- मूलः-- किवि कुल कमम्मिरत्तो, किवि रत्ता सुद्ध जिणवर मयम्मि ॥ इय अंतरंम्मि पिछह, मूढा नायं न जाणंति ॥ ७४ ॥ दोहाः-- केइ कुलाचारे रता, केइ रत जिन मतमांहि ॥ जुओ भ्रात इति अंतरे, लखै न्याय सठ नाहि ॥ ७४ ॥ व्याख्याः-- किवि--केटलाएक पु रुष छे ते कुलकम्ममि--कुल कर्मनेविषे एटले सत्य असत्य विचार रहित, अ विधि मल कलंक सहित, लोक प्रवाहनेविषे रत्ता--रक्त छे एटले आसक्त छे, अने किवि--केटलाएक पुरुषो छे ते सुद्ध जिणवरमयम्मि--निर्मल अविधि मल कलंकरहित अनेकांत स्याद्वाद जिनवर मतनेविषे रत्ता--रक्त छे एटले सावधान छे; इय--ए प्रकारे अंतरम्मि--पुरुषोमां प्रगट अंतर छतां कुलक्रम मिथ्यात्वनेविषे जे रक्त ते अविवेकी, अने शुद्ध जिनमतनेविषे जे रक्त ते विवेकी, ए प्रकारे पुरुषो मां प्रगट अंतर छे ते मूढा--मूढ ज्ञान विकल प्राणी नायं--न्यायने नयाणंति-- नथी जाणता एटले कुलक्रम छे ते संसारनो हेतु छे, शुद्ध जिनेंद्रमत छे ते मोक्ष नो हेतु छे. ए खरे खरो जे न्याय तेने नथी जाणता. पिछ--हे श्रोताओ तमे जुओ ए केटली आश्चर्यनी वात छे ! ॥ ७४ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां कह्यो जे न्याय ने विपरीतपणे जाणीने कोई एक

जीव मिथ्या दृष्टि पाखंमीउंनो संगमात्र मूके पण तेणे कहेलो धर्म मूकी दिये नही ते अयुक्तपणुं छे एम कहे छे.– मूल – सगोवि जाण अहिउं, तेसि धम्माइ जे पकुव्वंति ॥ मुत्तूण चोर संग, करति ते चोरियं पावा ॥ ७५ ॥ दोहा – अहितकारि जसु सग पण, जे तसु धर्म करेय ॥ चोर सग तजि चोरिने, करै पापि न र तेय ॥ ७५ ॥ व्याख्या – जाण–जे मिथ्यादृष्टि पाषंमीउंनो संगोवि–सगपण अहिओ–अहितकारी छे, जन्म जरा मरणादिक दुःखने देवा वाळो छे, तेसि–ते मिथ्यादृष्टि पाखंमी लोकोनु कथन करेलु थापेलु जे धम्माइ–पाप नवमी चामुंडा कालिकादिक पूजना प्रमुख धर्म तेने जे– जे पुरुष पकुव्वंति–अतिशय करीने करे छे ते पावा–पापी जुओ शुं न्याय करे छे ! चोरसग–चोरना सगने मुत्तूण–मूकीने एटले सूली आरोपण, कान नाशिकादिक छेदन जेमा काईक संशय हतो ते चोर नो संग मुकीने तेना सगथी सतोप न पामीने पाप मति ते चोरीय–चोरी पणा प्रते करति– करेछे, एनो नाव–जेमा शूली देवानो अथवा कान नाशिकादिक छेदन क रवानो काई पण संशय नथी एवी जे चोरी तेने करे छे जुवो ए केटलो अज्ञान छे

अवतरण –पूर्व गाथामा मिथ्यात्वीना धर्मनी स्थापना करे ते पापी कहेवाय एम कह्यु हवे तेज वात विशेपे करी कहे छे – मूल – जछ पसुमहिस लरका, पव होमति पाव नवमीए ॥ पूअंति तपि सद्धा, हा हीला वीयरायस्स ॥ ७६ ॥ दोहा – पातक नवमी पर्वमे, पसु मरता जसु पास ॥ तेने पूजित श्राद्ध जन, हा जिन हेला हास ॥ ७६ ॥ व्याख्या – जछ–जे स्थानकनेविपे तथा जे चामुडा कालिका ज्वाला प्रमुखनी आगल पाप नवमीए पव–पाप नवमी शुक्ल आसु चैत्र संबंधी नवमी तिथी प्रमुख जे पर्व तेनेविपे पसुमहिस लरका लाखो गमे पशु छा ग बोकडा महीस पाडा उपलक्षणथी मनुष्य सूकरादिक होमंति–होमाया जाय छे, मराया जाय छे, रुधिरना कर्दम थाय छे तपि–ते चामुंडादिक देवीओप्रते सद्धा–कुल क्रमथी चालतु आवेलुं ग्रहण कर्यु छे जिनमत जेणे, ते श्रावक लोक पूअं ति–पूजे छे, हाथ जोडे छे, मस्तक नमावे छे, नैवेद्यादिक चडावे छे, जे श्रावक ना म धरावीने एम करे छे ते हा–इति खेदे करी वीयरायस्स–वीतराग देवनी हीला–हीलना एटले निंदा करे अथवा करावे छे, मिथ्यात्वी लोक एम बोले छे जे लगारेक रुधिर थकी पण जे मरे, एक कीडाना मरवाथी बीहे, एवा श्रावक लोको आवी आवीने अमारी चामुंडा देवीने पूजे छे माटे जैनना देवथकी अमारी चामुंडादि

क देवीओ अधिक छे; इत्यादिक हीलना वचन मिथ्यात्वी लोक बोले छे; तेना क राववा वाला ते श्रावको जाणवा ॥ ७६ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां हीलनाविषे कह्युं; हीलना छे ते मिथ्यात्व छे; हवे जे मिथ्यात्वनुं आरोपण करेछे, तेणे शुं कर्युं ते कहेछेः— मूलः— जो गिह कुटुंब सामी, संतो मिछत्त रोवणं कुणइ ॥ तेण सयलोवि वंसो, पक्खित्तो नव समुद्दम्मि ॥ ७७ ॥ दोहाः— गृहकुटंब स्वामी छतो, जे थापे मिथ्यात ॥ नाख्यो तेणे वंश सब, नव समुद्रमें भ्रात ॥ ७७ ॥ व्याख्याः— जो—जे गिह कुटुंब सामी संतो—गृह एटले नारी, कुटुंब ते स्वजनादिक एउनो स्वामी अथवा ऊपरी छतां मिछत्त रोवणं— मिथ्यात्वनुं आरोपण एटले स्थापन कुणइ—करे छे; तेण—ते पुरुषे शुं कर्युं! सयलोवि वंसो—सकल वंस पण नव समुद्दम्मि—संसार समुद्रनेविषे पक्खित्तो प्रक्षेप्यो एटले नाखी दीधो. सिद्धांतमां श्रावकने मिथ्यात्वनो त्रिविध त्रिविध त्याग करवानुं कह्युं छे. ए हेतु माटे घर कुटुंबनो स्वामी छतां जे श्रावक ते मिथ्यात्वनुं अरोपण अथवा स्थापन केम करे! उपलक्षणथी कोईना घेरमां केम करवा द्ये! अपितु करे पण नही अने कोईने करवा पण दिये नही ॥ ७७ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां जे मिथ्यात्वनुं आरोपण करे ते पोताने तथा सकल वंशने नव समुद्रमां नाखे छे एम देखाड्युं, हवे जे मिथ्यात्वने सेवे छे तेने सम्यक्त्व होतुं नथी ते कहे छेः— मूलः— कुंम चउछी नवमी, बारस्सी पिंम दाण पमुहाई ॥ मिछत्त भाव गाई, कुणंति तेसिं न सम्मत्तं ॥ ७८ ॥ दोहाः— बारस नवमी चौथ मृत, पिंम प्रमुख मिथ्यात ॥ जे नर सेवे तेहने, नहि समकित अवदात ॥ ७८ ॥ व्याख्याः— कुंड चउछी— गणेश चोथ, करवा चोथ, नवमी—शुक्ल चैत्त आशोनी पाप नवमी बारस्सी— वछ बारस, पिंम दाण पमुहाई— मुएला पित्रादिकने भोजननुं देवुं इत्यादिक मिछत्त भावगाइ— मिथ्यात्वनो भाव रह्यो छे जेमां, एवा जे लौकिक देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, अने लोकोत्तर देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, एमज लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, तथा लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व जाणवां ते मिथ्यात्वने जे पुरुष कुणंति—करे छे एटले सेवे छे. तेसिं— ते पुरुषोने न सम्मत्तं—सम्यक्त्व अथवा जिनोक्त तत्वनुं श्रद्धान नथी. ॥ ७८ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां जे मिथ्यात्वने सेवे तेने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय नही एम कह्युं; हवे ते मिथ्यात्वनेविषे पडेला जे कुटुंब तेने कोई एक धीर पुरुष कहाडेपणछे ते सर्वना हितने अर्थे दृष्टांतसहित कहेछेः—मूलः—जह अइकलंमि खु

तं, सगमं कड्ढंति केवि धुरि धवला ॥ तह मिच्छाउ कुडुंबं, इह विरला केवि कड्ढंति ॥ ७९ ॥ दोहा – जिम कादव खूतो शकट, काढे केइक धोरि ॥ तिम कुटुंब मिथ्यात्वथी, काढे केइ सजोर ॥ ७९ ॥ व्याख्या – जह– जेम केवि केटलाएक धुरिधवला– प्रधान वृषभ छे ते अइकलम्मिखुत्त– अति कादवमा खूतेलुं एवु जे शगमं– शकट एटले गाडुं तेने कड्ढंति– कहाडेछे' तह– तेम इह– आ दूसम आराने विषे केविविरला– केटलाएक विरला हलुकर्मी आसन्न सिद्धि कदाग्रह रहित पुरुष छे ते मिच्छाओ– पूर्वोक्त मिथ्यात्वरूप कादवमाथी कडुब– पोताना पुत्र कलत्रादिक कुटंब परिवारने कड्ढंति–कहाडेछे, अने जिनभाषित धर्मनेविषे जोडेछे पण सर्व प्राणी जोडवा समर्थ नथी ॥ ७९ ॥

अवतरण - पूर्व गाथामा मिथ्यात्वमा पडेला जे कुटुंब तेने कोई विरला पुरुष कहाडे पण बधा कहाडी शके नही एम कह्यु, पण जिनदेवने जोवाथकी सर्व जीव सम्यक्त्व पामशे ते शंका निवारण करवाने वास्ते कहेछे – मूल – जह वद्दलेण सूर, महियल पयडंपि नेय पिच्छति ॥ मिच्छत्तस्स य उदए, तहेव न नियंति जिण देव ॥ ८० ॥ दोहा – जैसे महितल प्रगट भी, घन युत रवि न दिखाय ॥ तैसे उदय मिथ्यात्वके, नहि दीसत जिनराय ॥ ८० ॥ व्याख्या – महियल पयडंपि सूर–घट पटादिक वस्तु देखाडवाथकी महीतल पृथ्वीमण्डलनेविषे प्रगट एवो जे सूर्य, तेने पण जह–जेम वद्दलेण--वादलाए करीने एटले मेघ घटाए करीने लोक नेयपिच्छति--नथी देखता तहेव--तेमज मिच्छत्तस्सय उदए--पूर्वोक्त मिथ्यात्वनो उदय थयो छता जिणदेव--जिनदेव प्रत्ये लोक न नियति--नथी देखता, च शब्दथी सुगुरु तथा सुधर्म प्रत्ये पण नथी देखता, जेम वादलाएकरीने सूर्यनो बिंब देखाय नही, तेम मिथ्यात्वना उदयथी सुदेव सुगुरु देखाय नही वादल खशी जाय त्यारे सूर्य देखायछे, तेम मिथ्यात्व टल्याथी जिनदर्शन थाय छे एटले तत्वथकी जिनदेवनु स्वरूप ओलखाय ए भाव, पण बीजी रीते नही एम जाणवु ८०

अवतरण -- हवे मिथ्यात्वनो उदय थयाथी जीव मिथ्यात्वनेविषे आसक्त थायछे अने गुणी पुरुषनेविषे मत्सर करे छे, एवा जीव थायज नही तो सारु ते कहेछे -- मूल -- किसोपि जणणि जाओ, जाओ जणणीइ किं गओ विद्धि ॥ जइ मिच्छरओ जाओ, गुणेसु तह मच्छर वहइ ॥ ८१ ॥ दोहा -- किम ते जायो जणनिये, जायो तो किं पुष्ट ॥ मिथ्या मगन थयो जदी, तिम गुण मत्सरि दुष्ट ॥ ॥ ८१ ॥ व्याख्या -- कि--शु सो--ते अपिनिश्चे जणणिजाओ– माताए जन्मो,

जणणीइ—जो माता ए जाओ—जन्म्यो तो ते विढिं—वृद्धिने किं—केम गओ—पा म्यो! एटले ते पुष्ट केम थयो! एम केम कहेवुं पडयुं! जइ—जो मिछरओ—मि थ्यात्वनेविषे रत एटले आसक्त एहवो जाओ--थयो वली जो गुणेसु—सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणे युक्त जे पुरुष तेनेविषे तह—तथा समुच्चय अर्थनेविषे मछरं—मछर इर्षा एटले द्वेषभाव प्रत्ये वहइ—वहेछे, करेछे एटला वास्ते हे शिष्य, कहेवुं पडयुं जे ते माताए केम जन्म्यो! अने जो माताए जन्म्यो तो केम ते वृद्धिने पाम्यो! केमके पूर्वोक्त जे लौकिक लोकोत्तर मिथ्यात्व, तेनेविषे पोते प्रवृत्ति कस्याथी परने प्रवृत्ति कराव्याथी अने गुणी पुरुषनेविषे द्वेषबुद्धि कस्याथी प्राए अनंत भवभ्रमण छे. वली कुपुत्रनी माता पण प्राए सारी होती नथी, कदाच कोई सारी होय तो कुपुत्रने जोगे माताने मलिनता आवे माटे कुपुत्र न जन्म्योज सारुं.

अवतरणः— पूर्व गाथानो अर्थसांभलीने कोई बोल्यो के, देव तथा देवी प्रमुख आपणने कोई उपद्रव करे नही माटे मानीए छैए. ते शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— वेसाण बंदियाणय, माहण डुंबाण जस्कसिरकाणं ॥ भत्ताभरकठाणं, वियाणं जंतिदूरेणं ॥ ७१ ॥ दोहाः— वेस्या ब्राह्मण भाट डुब, जक्षसिक्ष इन काय॥ भक्ष स्थान स्वजगत छे, विरतीथी अलगाय ॥ ७१ ॥ व्याख्याः— वेसाण—वेस्यानो बंदियाण—चारण भाटादिक लोकोनो माहण डुंबाण—ब्राह्मण लोकोनो डूंबोनो, जस्क सिरकाणं—जक्ष व्यंतर देव शेष गणेशादिकनो एटले मिथ्या दृष्टि देवी देवताओनो भत्ता—भक्त अथवा सेवक छे तेज तेओनो भरकठाणं—भक्षने मागवानुं स्थानक छे. एटले वेस्या चारण भाटादिक सरिखा जे मिथ्यादृष्टि देव देवीओने माने अथवा पूजेछे तेओनेज ते आवीने नडेछे अने दुःख दियेछे, ते तेओनीज पाशेथी भक्ष मागेछे पण विरयाणं—विरति पुरुषोथकी दूरेण—दूर जंति—जायछे. एटले ते मिथ्यादृष्टि देव देवीना त्यागी छे; वंदन नमस्कारादिक आदर पण कांई करता नथी तेथकी ते देव देवीउ दूर जायछे. ॥ ७१ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां विरति पुरुषोथकी मिथ्यादृष्टि देवता दूर जायछे एम कह्युं, माटे विरति पुरुष शुद्ध मार्गनेविषे सुखे चाले ते कहेछेः— मूलः— सुद्धे मग्गे जाया, सुहेण गछन्ति सुद्ध मग्गंमि ॥ जे पुण अमग्ग जाया, मग्गे गछंति तं चुय्यं. ॥ ॥ ७२ ॥ दोहाः— सुखे सुद्ध मारग चलै, थया सुद्ध मग जेय ॥ जात कुमार्गी मार्गमें, चाले अचरज तेय ॥ ७२ ॥ व्याख्याः— सुद्धे मग्गे जाया—शुद्धमार्गनेविषे उत्पन्न थया एटले जे शुद्ध परंपराए साधु श्रावकना कुलनेविषे उत्पन्न थया ते

जीव सुद्ध मग्गम्मि–सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप निर्मल जे मोक्षमार्ग तेनेविषे सुहेण–सुखे सुखे गच्छंति–गमन करेछे एटले जायछे, एमा कांई आश्चर्य नथी पुण–वली जे–जे प्राणी अमग्ग जाया–कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते एटले अन्य दर्शननेविषे तथा उत्सूत्र भाषी उन्मार्गे चालनार जैनाभास निन्हव पासत्था ओसन्नादिकना कुलनेविषे उत्पन्न थया ते जीव सुगुरुना मुखनी वाणी सांभलीने मग्गे–मोक्षमार्गनेविषे गच्छति–गमन करेछे अथवा जायछे त–ते चुज्जं–आश्चर्य छे ॥७३॥

अवतरण – पूर्व गाथामा कह्यु जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते मोक्षमार्गे चाले ते मोटो आश्चर्य छे एवु सांभलीने कोई कहेशेके एमां सुं आश्चर्य छे? ए आशंका दूर करवाने कहेछे – मूल – मिच्छत्त सेवगाण, विग्घसयाइपि विति नोपावा ॥ विग्घ लवम्मि विपडिए, दढ धम्माण पणच्चंति ॥ ७४ ॥ दोहा – मिथ्यात्वीके विघन सत, पण बोलत नहि दुष्ट ॥ पडे विघन लव धर्मिके, तो नाचे अव पुष्ट ॥ ७४ ॥ व्याख्या – मिच्छत्त सेवगाण– मिथ्यात्वनुं सेवन करनार, एटले कुदेव कुगुरु मिथ्यादृष्टि देवी देवताना पूजनारने विग्घसयाइपि–रोग सोग भय कष्ट मरणादिक शेकडा गमे विघ्न थायछे, पण ते शेकडा विघ्नोना समूह प्रत्ये पावा– जे पापी मिथ्यात्वी लोक छे ते नो–नथी विति– बोलता अने दढधम्माण–दृढ धर्मी पुरुषोने विग्घ लवम्मि विपडिए– लवमात्र विघ्न पड्याथी पण एटले लगारेक खास श्वास ज्वरादिक थयाथी पण ते पापी मिथ्यादृष्टि लोक पणच्चंति–अतिशय करी नाचे अथवा कूदेछे, दृढ धर्मी पुरुषोनो अवर्णवाद बोलेछे माटे जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थईने शुद्ध मार्गनेविषे चाले ते मोटो आश्चर्य जाणवो केम के कुमार्गमा उत्पन्न थईने सुमार्गे चाले एवो संभव थतो नथी ॥ ७४ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामा कह्यु के जे पापी लोक छे ते दृढ धर्मी पुरुषोने लगारेक विघ्न पडे ते जोईने नाचेछे, केमके, तेपोते उन्मार्गनेविषे उत्पन्न थया एवु जाणता नथी ते कहेछे – मूल –सम्मत्त सजुआण, विग्घपि हु होइ उच्छव सरिछं॥ परसुच्छवपि मिच्छ, त्त सजुअं अइ महाविग्घ ॥ ७५ ॥ दोहा – समदृष्टी के विघन पण, उछव सरिखो होय ॥ अति उछव मिथ्यात्व जुत, महा विघ्न भय जोय ॥ ७५ ॥ व्याख्या – सम्मत्त सजुआण–सम्यक्त्व सहित पुरुषोने विग्घपि हु–मरणादिक विघ्न पण निश्चये करी उच्छव सरिछ–उत्सवना जेवु होइ–थायछे केमके सम्यक्त्ववान प्राणी आ लोकनेविषे सम संवेगादिक गुणेकरी सदानंदी होयछे ते मरीने पण प्रधान देवगतिने पामेछे माटे तेने मरणादिक विघ्नपण उत्सवतु

च्यछे; अने जे मिछत्त संजुअ—मिथ्यात्व संयुक्त छे ते परमुछवंपि—परम उत्कृष्ट उ त्सव छतां पण अइ महाविग्घं—अति महा विघ्नभूत छे. केमके मिथ्यादृष्टि जीव महा मोह मिथ्यात्व दवानलने योगे संतप्तात्मा होयछे माटे अहीं दुःखी थईने मरीने दुर्गतिनेविषे जायछे एवी रीते परलोकनेविषे पण दुःखी थायछे ते वात उन्मार्गीमां जे उत्पन्न थाय ते जाणता नथी. ॥ ७५ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं के, सम्यक्त्ववान प्राणीने विघ्न पण उत्सवना जेवो थायछे, ते केवी रीते ते कहेछेः— मूलः— इंदोवि ताण पणमइ, हीलंतो नियय रिद्धि विछारं ॥ मरणंते वि हु पत्ते, सम्मत्तं जे न छड्डंति ॥ ७६ ॥ दोहाः— निज सं पतकूं हीलतो, नमे इंद्र पण तास ॥ जे समकित छांमे नही, पडे मरणकी त्रास ॥ ७६ ॥ व्याख्याः— हु—निश्चेकरी मरणंतेवि पत्ते—मरणांत समय प्राप्त छतां पण एटले कंठगत प्राण थया छतां पण जे—जे पुरुष सम्मत्तं—जिनोक्त तत्व श्रद्धान सम्यक्त्वने न छड्डंति—नथी मूकता ताण—ते पुरुषोने इंदोवि—देवेंद्र पण पणमइ— प्रणाम करेछे. ते शुं करतो थको प्रणाम करेछे? नियय रिद्धिविछारं—निजक संबं धी एटले पोता संबंधी ऋद्धि समृद्धिनो जे विस्तार तेने हीलंतो—हीलना करतो थको एटले तृण तुल्य मानतो थको प्रणाम करेछे. ॥ ७६ ॥

अवतरणः—पूर्व गाथामां कह्युं के, कंठगत प्राण छतां पण सम्यक्त्वनो त्याग करता नथी एहेवुं दृढपणुं होवानुं कारण शुं छे ते कहेछे.— मूलः— छड्डंति निय य जीयं, तिणंव मुरकछिणो न उण सम्मं ॥ लप्भइ पुणोवि जीयं, सम्मत्तं हारियं कत्तो ॥ ७७ ॥ दोहाः— मोक्षार्थी तृण जिम तजे, निज जीवित न समत्त ॥ जी वित वलि पण पामिये, हर्युं न समकित कत्त ॥ ७७ ॥ व्याख्याः— मुरकछिणो— जे मोक्षनो अर्थी छे ते, नियय जीयं—पोताना जीवितने एटले आयु तथा प्राण ने तिणंव—तृणनी पठे छड्डंति—छांमेछे अथवा त्यागी दियेछे. उण—पुनः एटले वली सम्मं—सम्यक्त्वने न—नथी मूकता. शुं जाणीने नथी मूकता? जीयं—जीवित छे ते तो पुणोवि—वली पण लप्भइ—प्राप्त थशे; केमके, 'ज्या सुधी मोक्ष नथी' त्यां सुधी जीवित तो जन्म जन्मनेविषे छे, पण सम्मत्तं हारियं—सम्यक्त्व रत्न हारेलुं कत्तो—क्यांथी प्राप्त थाय केमके सम्यक्त्व रत्न हारेलुं फरीने प्राप्त थवुं अति दु र्लभ छे. एम श्रीवीतरागे कह्युं छे. माटे पोताना जीवितनो त्याग करेछे पण मो क्षनो अर्थी सम्यक्त्वनो त्याग करतो नथी. ॥ ७७ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां सम्यक्त्व हारेलुं फरी प्राप्त थवुं दुर्लभ कह्युं ते तो

वीक पण ते सम्यक्त्व वडे करीने शु धनवान नही थाय' ए शंका दूर करवाने कहेछे – मूल – गयविहवावि सविहवा, सहिया सम्मत्त रयण राएण ॥ सम्मत्त रयण रहिया, सतेविधणे दरिद्दत्ति ॥ ७७ ॥ दोहा – विभव रहित पण विभव जुत, समकित रत्न समेत ॥ समकित रहित छते धने, दारिद्री वनप्रेत ॥ ७७ ॥ व्याख्या – सम्मत्त रयण राएण – सम्यक्त्वरूप रत्न राज एटले सम्यक्त्वरूप जे चिंतामणि रत्न तेणे करीने सहिया सहित जे पुरुष ते गयविहवावि–गतविभव थई जाय धन संपदा रहित थई जाय तो पण सविहवा–सहित विभव कहिये एटले धनसंपदाए करी सहित कहिये केमके, सम्यक्त्वरुप चिंतामणि रत्न जे भाव लक्ष्मी, तेनी पाशे धनधान्यादि बाह्य लक्ष्मी शा हिसाबमा छे' कांई पण हिसाबमा नथी सम्यक्त्व रत्न मोक्ष सुखनो देनार छे अने बाह्य लक्ष्मी जेछे तेतो सम्यक्त्वविना पुरुषने नरकादिकनी देनार छे. माटे एम कह्यु, अने सम्मत्त रयण रहिया–सम्यक्त्व रत्न रहित जे पुरुष छे एटले जेनी पाशे सम्यक्त्वरूप रत्न नथी ते पुरुष संतेवि धणे–धन छता पण दरिद्री छे एटले निर्धन छे ॥ ७७ ॥

अवतरण – पूर्व गाथामां सम्यक्त्वनु विशेषपणु देखाडयुं माटेज सम्यक्त्व शुद्धिना अवसरे कोई धननी कोटी आपे तोपण सम्यक्त्ववान श्रावक ते अवसरथी चूके नही, ते कहेछे – मूल – जिण पूअण पत्थावे, जइ कुवि सड्ढाण देइ धण कोडि॥ मूत्तूण त असार, सार विरअंति जिण पूअ ॥ ७९ ॥ दोहा – पूजा अवसर श्राद्धकू, कोइ दिए धन कोडि ॥ ते असार तजि सार जिन, पूजा रचे नि चोडि ॥ ७९ ॥ व्याख्या – जिण पूअण पत्थावे– जिन पूजा करवाना प्रस्तावे ए टले अवसरे सड्ढाण– सम्यक्त्ववान श्रावक लोको प्रति जइ–जो कुवि–कोई इंद्र नरेंद्र धनवान पुरुष धण कोडिं–धननी कोटीने देइ– दिए अथवा आपे तं–ते अ सार–असार अथिर धननी कोटीने मुत्तूण–मूकीने सार–सार प्रधान एवी जे जिण पूअ–जिनराजनी पूजा तेने विरअंति–विशेष पणे विधि पूर्वक रचे एटले करे ॥७९॥

अवतरण – पूर्व गाथामा जिन पूजा जे छे ते सार छे एम कह्यु, पण विधि पूर्वक जिनपूजा सार जाणवी अहीं शिष्य आशंका करेछे के, अविधिए केम सार नही? ते शका दूर करवाने कहेछे – मूल – तित्थयराण पूआ, सम्मत्त गु णाण कारिणी भणिया ॥ साविय मिच्छत्तयरी, जिण समये देसिया पूआ ॥ ८०॥ दोहा – दर्शनादि गुण कारिणी, कहि जिनवर पूजाय ॥ वलि मिथ्यात्व करी क ही, सा पूजा जिनराय ॥ ८० ॥ व्याख्या – तित्थयराण–तीर्थंकर एटले अरिहंतो

नी पूआ—जल पुष्प चंदन धूप दीपादिरूप विधिपूर्वक पूजा ते सम्मत्त गुणाए—सम्यक्त्व ज्ञानादिक गुणनी कारिणी— करवा वाली तथा सम्यक्त्व ज्ञानादिक गुण प्रगट करवाने कारणभूत नणिआ—जिनागममां कही छे. साविय— वली तेप ए पूआ— तीर्थंकरनी पुष्प चंदनादिरूप अविधि पूर्वक पूजा ते मिच्छत्तयरि—मिथ्यात्वनी करनारी जिण समये—जिन आगमनेविषे देसिआ—देखाडी छे. एम जाणीने अहो नइ, तीर्थंकरनी विधिपूर्वकज पूजा करवी श्रेय छे. ॥ ए० ॥

अवतरणः—पूर्व गाथामां जे तत्वने जाणनार होयछे ते विधिपूर्वक जिनपूजा करे एम देखाड्युं; पण एवी रीते तत्वने जाणनार कोण होय छे ते कहेछेः—मूलः— जं जं जिण आणाए, तं चिय मन्नइ न मन्नए सेसं ॥ जाणइ लोयपवाहे, न हु तत्तं सो अ तत्तविऊ ॥ ए१ ॥ दोहाः— जो जो जिन आज्ञा सहित, तेहिज माने जोय ॥ शेष न मानै तत्व नह, लोकिके विद सोय ॥ ए१ ॥ व्याख्याः— जं जं जिण आणाए—जे जे वचन जिन आज्ञाए करीने छे, तं चिय—ते वचननेज मन्नइ—जे पुरुष मानेछे सेसं—ते टाली शेष जिन आज्ञा विरुद्ध जे वचन तेने न मन्नए— नथी मानता वली जे हु—निश्चे लोयपवाहे— लोक प्रवाहनेविषे तत्तं—तत्व मोक्ष साधनरूप सार पदार्थ कांई पण न—नथी. जाणइ—जाणता. सो—ते पुरुष तत्तविऊ—तत्वज्ञानी जाणवो. पण एथी बीजो कोई तत्वनो जाणनथी॥ए१॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्यां जे अर्थ, ते प्रगट करवाने अर्थे उपनय सहित निगमन करतां छतां एटले समाप्ति करतां छतां कहे छेः— मूलः— जिण आणाए धम्मो, आणा रहिआण फुडं अहमुत्ति ॥ इय मुणि ऊणय तत्तं, जिण आणाए कुणह्रु धम्मं ॥ ए२ ॥ दोहाः— आणा रहित अधर्म कुट, धर्म जिनाज्ञा तार ॥ एह तत्व जाणी करो, धर्म जिनाज्ञा सार ॥ ए२ ॥ व्याख्याः— जिण आणाए— जिन आज्ञाए करीने धम्मो— क्षमा दयादिकरूप धर्म छे; आणा रहिआण— जिण आज्ञाए करी रहित जे पुरुष, तेने फुडं— प्रगटपणे अहमुत्ति— हिंसाक्रूर प्रकोपादिरूप अधर्म पाप व्यापार छे; इति— पद समाप्तिने अर्थे, इय— ए प्रकारे तत्तं— तत्वने एटले धर्मना स्वरूप अने अधर्मना स्वरूप एटले धर्म अधर्म बन्नेना स्वरूप प्रते मुणिऊण— जाणीने हे नइ, जिण आणाए— जिन आज्ञाए करीने सहित धम्मं— क्षमा दयादिकरूप धर्म प्रत्ये कुणह्रु— तमे करो. ॥ ए२ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां जिन आज्ञाएकरी धर्म करवो एम कह्युं, हवे जे तत्वज्ञानी सामग्री छतां पण तत्वने नथी सांभलता, नथी जाणवानो उद्यम करता

तेने दोष देखाडता छता कहेछे – मूल – साहीणे गुरु जोगे, जे नहु निसुणंति सुद्ध धम्मत्थं ॥ ते डुठ धिठ चित्ता, अह सुहडा जवजय विहूणा ॥०३॥ दोहा.– जवजय रहित सुजट तथा, डुष्ट धीठ नर तेय ॥ छते सुगुरु स्वाधीन जे, शुद्ध धर्म न सुणेय ॥ ०३ ॥ व्याख्या – साहीणे–स्वाधीन पणु छतां गुरुजोगे–शुद्ध धर्मोपदेशक गुरुनो योग समागम छता जे–जे पुरुष सुद्ध धम्मत्थ–शुद्ध धर्मार्थप्रते एटले विषय कषाय मलरहित सम्यक् ज्ञान क्रियारूप धर्म परमार्थने हु–निश्चे न नथी, निसुणंति–सांजलता ते–ते पुरुष केवा छे ? डुठधिठ चित्ता–डुष्ट धीठ चित्तवाला जाणवा एटले रागद्वेष मिथ्यात्व कदाग्रह सहित चित्त ते डुष्ट चित्त कहिये, अने वारवार कहिये तोपण कुचाल छोडे नही ते धीठपणु; ते धीठपणाए करीने सहित चित्त होय ते धीठचित्त कहिये एवा चित्तवाला अह–अथवा ते केवा जाणवा ? जवजय विहूणा–ससार भ्रमणरूप संग्रामना जयथकी विहूणा–रहित एवा सुहडा–सुजट एटले योधा जाणवा, घणुं शु कहिये ! दश दृष्टाते दोहेलुं एवु जे मनुष्यपणुं ते पामीने वली स्वाधीनपणु पामीने वली तत्वज्ञान प्रकाशिक सद्गुरुनो योग पामीने श्रीवीतराग जाषित निर्मल धर्मार्थने सांजलता नथी अने जे सांजले छे तेनी ऊपर डुष्टजाव करेछे माटेज कह्यु के ते जवजय रहित एवा सुजट योधाछे

अवतरण – हवे गुरु उपदेश सांजळ्याथी शु गुण थाय छे ते कहेछे – मूल.– सुद्ध कुल धम्म जाइवि, गुणिणो न रमंति लिंति जिण दिख्क ॥ तत्तोवि परम तत्त तेउवि उवयारउ मुख्क ॥ ०४ ॥ दोहा – सुकुल धर्म जाती गुणी, पर नर मे लिय सम्म ॥ पछे विसुद्ध चरण पछे, उपकारे शिव रम्म ॥ ०४ ॥ व्याख्या –सुद्ध कुल धम्म जाइवि–निर्मल कुल धर्म जातिवत्त एवा पण गुणिणो– धैर्य, गंजीर्य, औदार्यादि गुणे सहित एवा पुरुष होय ते गुरु उपदेश सांजल्याथी नरमंति–विषय कषायमा रमता नथी जिणदिख्क–जिन दीक्षाप्रत्ये एटले सम्यक्त्वने लिंति–ग्रहण करे छे तत्तोवि–त्यार पछी पण परमतत्त–परम तत्वने एटले जिनोक्त चारित्र धर्मने ग्रहण करे, तउवि–त्यारपछी पण उवयारओ–उपचारथी एटले शुद्धविधि धर्मोपदेश कर्याथी मुख्क–मोक्षने पामे छे ॥ ०४ ॥

अवतरण – वली सदगुरुनो उपदेश सांजल्याथी निश्चे निर्वेद थाय छे ते कहे छे – मूल – वन्नेमि नारयाउवि, जेसि डुख्काइ सजर ताण ॥ जव्वाण जणइ हरि हर, रिद्धि समिद्धीवि उद्धोस ॥ ०५ ॥ नीका नारक जेहनो, डख सुणि जवि जण केय ॥ हरि हर ऋद्धि समृद्धि पण, तनु उत्कट जणेय ॥ ०५ ॥ व्याख्या –

नारयाओवि–नारकी जीवोने पण वन्नेमि–हुं वर्णवुं छुं, एटले वखाणुं छुं. केमके जेसिं– जे नारकी जीवोना डुरकाइ– अनेक प्रकारनां जे दुःख, तेने संजरंताणं–सं जारनार अथवा चिंतन करनार एवा जे नवाण– नव्य जीव, तेना उछोसं–रोम कुपने हरिहर रिद्धि समिद्धी वि–विष्णु शंकरनी रुद्धि समृद्धि छे ते पण जणइ– उत्पन्न करे छे केमके, हरिहरादिकनी रुद्धि समृद्धि छे ते पण नरकादिक दुःखनी हेतु छे. माटे ते देखीने नव्य जीवोनां रोमांच ऊना थाय छे. ॥ ९५ ॥

अवतरणः– एम बे गाथाए करी संवेग निर्वेदनो स्वरूप कह्यो हवे जे ग्रंथोमां एनुं उपदेश छे, एवा उपदेश मालादिक सिद्धांत प्रकरण जे छे तेने सर्व साधु श्रावक माने छे; अने केटला एक कदाग्रही लोक मानता नथी; ते बन्नेना बे गाथाए करी स्वरूप कहेछेः–मूलः–सिरि धम्मदास गणिणा, रइअं उवएस माल सिद्धंतं॥ सव्वेवि समण सड्ढा, मन्नंति पढंति पाढंति॥९६॥ दोहाः–धर्मदासगणि रचित उप, देश माल सिद्धां त॥श्रमण श्राद्ध मानैसवी, पठे पाठवे खांत॥९६॥ व्याख्याः–सिरि धम्मदास गणिणा श्रीधर्मदास– आचार्यजीए रइअं–रच्युं छे, जे उपएसमाल सिद्धंतं–उपदेशमा ला नामे सिद्धांत प्रकरण तेने सव्वेविसमणसड्ढा–सर्व श्रमण सुसाधु श्राध्य सुश्रा वक जे छे तेउ मन्नंति माने छे, पढंति–पढेछे, अने पाढंति–नणावे छे. ॥ ९६ ॥

मूलः– तं चेव केवि अहमा, छलिया अइमाण मोह नूएण ॥ किरियाए ही लंता, ही ही डुरकाइ न गणंति ॥ ९७ ॥ दोहाः– मान मोह नूते छल्या, अधम केइ किरियाय ॥ तेह मालने हीलता, न गणे नव दुःख जाय ॥ ९७ ॥ व्याख्या अइ माण मोह नूएण–अभिमान मोहरूप नूतडायें करी छलिआ–छलाएला ए टले बेनान थएला एवा अहमा–अधम उत्सूत्र नाषी नीच माणस केवि–केटला एक चेव–निश्चे करीने तं– ते उपदेसमाला प्रकरणने किरियाए–तपादि कष्ट क्रिया ए करीने हीलंता–हीलना करे एटले एहवा प्रकरणमां शुं ज्ञान वैराग्य छे एम निंदा करेछे माटे ग्रंथकर्त्ता कहेछे के हीही–मोटी खेदनी वात छे के, डुरकाइ–न रकादिक जे दुःख छे तेने न गणंति–नथी गणता. एटले श्री धर्मदासगणि प्रमु ख महा पुरुषोना रचेला जे प्रकरण ते सिद्धांतरूप कह्यां छे, तेने जे नथी मान ता ते नरकादिकना दुःखथी नथी बीहीता. एम जाणीने मनमां एवुं थायछे के, तेओनी शी वले थशे? ॥ ९७ ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां कह्युं के, उपदेशमालादिक सिद्धांततुल्य प्रकरणनी हीलना करवाथी घणुं दुःख थायछे, ते दुःख कीयुं? ते कहेछेः– मूलः– इअराण

ठकुराणवि, आणा भंगेण होइ मरण दुह ॥ किं पुण तिलोअ पहुणो, जिणिंददे वाइ देवस्स ॥ ९८ ॥ दोहा – एक मर लघु नृपनी, आण भंगथी थाय ॥ सुंव ली त्रिभुवन नृपनी, आण हणे कहवाय ॥ ९८ ॥ व्याख्या – इयराण ठकुराण वि–इतर बीजापण ठाकुर सामान्य राजाओनी आणा भंगेण–आज्ञाभंग करवाथी मरण दुहं–मरणादिक दुःख होइ–होयछे तो तिलोयपहुणो–त्रिलोकना प्रभु एटले स्वामी एवा जिणिंद देवाहिदेवस्स–जिनेंद्र देवाधिदेवनी आज्ञा भंग करवाथी अ नंत जन्म मरण थाय ते दुःखनुं किंपुण–शुं वर्णन करिये! अनंत दुःख कही श काय नही संविज्ञ गीतार्थनी परंपराथी चालतो आवेलो जे अर्थ, तेने प्रमाण न करवु एटले मानवु नही ते आज्ञा भंग कहेवायछे ॥ ९८ ॥

अवतरण –पूर्व गाथामा जिन आज्ञानो भंग करवाथी अनंत दुःख थायछे एम कह्यु, पण जेओ दया धर्मनेविषे उद्यमवान होयछे, तेओने जिन आज्ञाएकरी शुं थायछे ते कहेछे – मूल – जग गुरु जिणस्स वयण, सयलाण जिआण होइ हिय करणं ॥ तातस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया ॥ ९९ ॥ दोहा – जगहितकर जिनवर वचन, ते कारण भविलोय ॥ तास विराधे धर्म किम, जीवदया किम होय ॥ ९९ ॥ व्याख्या – जगगुरु जिणस्स–त्रण जगना गुरु एवा जे श्रीजिनव र, तेमनुं–वयण–वचन कहेवु छे ? सयलाण जियाण– एकेंद्रियथी लईने जावत् पचेंद्रिय सकल जीवोने हिय करणं–हित करनार एटले कल्याणनु करनार होइ–छे. ता–ते कारणमाटे तस्स–ते जिनवचननी विराहणया–विराधना करवाथी एटले ख डना करवाथी नु–इति वितर्के कहधम्मो–धर्म ते क्यांथी! अने कह–क्याथीणु जीव दया–निज परजीवनी अनुकंपा एटले करुणा अपितु काईज नथी, जिनवचननी आराधनाएकरीनेज चारित्र धर्म अने दया प्रमाण छे, अन्यथा नथी ॥ ९९ ॥

अवतरण– पूर्व गाथामा जिन आज्ञानी विराधना कही, ते जिन आज्ञानो प्रकार देखाडता कहेछे – मूल – किरियाइ फुडा मोव, अहिय साहंति आगम वि हूण ॥ मुद्धाण रंजणछ, सुद्धाण हीलणछाए ॥ १०० ॥ दोहा – सूत्र रहित दर्शी अधिक, क्रिया तणो ममाण ॥ कुछ रंजण मुनि हीलवा, फिरे मूढगत त्राण ॥ १०० ॥ व्याख्या – आगम विहूण–सिद्धांतोक्त विधिये करीने रहित अने सिद्धातमांह नथी कह्यो जे प्रकार तेणेकरीने सहित एटले सिद्धांतमा पुष्प नै वेद्यादिक पूजा करवी, कही छे, ते न करवी एम कहे, वली जिनपूजा सामायक प्रतिक्रमणादिक धर्म कर्त्तव्य विधि पूर्वक करवु एम कह्यु छे, ते जेम तेम करवु,

विधि अविध प्रमुखने जोवुं नही एम कहे; इत्यादिक जे उत्सूत्र प्ररूपणा ते आगम विहीण कहियें, एवुं किरियाइं फडाडोवं—बाह्य तप नियम व्रतादि धर्म अनुष्टानरूप क्रियानो जे फटाटोप एटले आडंबर तेने मुनिराजथी अहियं—अधिक साहंति—साधेछे एटले करेछे; जे निन्हवादिक लिंगिया लोक छे ते, एम करेछे ते शा सारु आडंबर करेछे? मुद्धाण रंजणठं—मुग्ध लोक एटले जिन धर्मना अजाण भोळा लोकोना चित्तने रंजन करवाने अर्थे, तथा सुद्धाणं हीलणठाए—शुद्ध पुरुषोनी एटले सिद्धांत भाषित अर्थना कथनार पुरुषोनी हीलना करवाने अर्थे ते अज्ञानी मूढ सम्यक ज्ञान रहित क्रियानो आडंबर अधिकतर देखाडेछे ॥१००॥

अवतरणः—पूर्व गाथामां अशुद्ध धर्म देखाडवावाळाने मूढ तथा अज्ञानी कह्युं हवे जे शुद्ध धर्मनुं दान करेछे ते पुरुषो केवा होयछे ते कहेछेः— मूलः— जो देइ सुद्ध धम्मं, सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो ॥ किं कप्पद्दुम सरिसो, इयर तरू होइ कइयावि ॥ १०१ ॥ दोहाः— शुद्ध धर्मकूं जो दिए, सो जिनराज न और ॥ सुरतरु समतरु अन्य क्या! होय कहो किण ठोर ॥ १०१ ॥ व्याख्याः— जो—जे साधु श्रावक सम्यक् दृष्टि कोइ सुद्धधम्मं—निर्मल कषाय मल रहित श्री वीतराग भाषित धर्मप्रते देइ— दिये, सो— ते परमप्पा— परमात्मा छे एटले तीर्थंकरतुल्य छे हु— निश्चय जयम्मि— जगतनेविषे तेनी तुलना करनारो अन्नो— बीजो कोई नथी. ए वातमां कोई वितर्क करे तो तेने एम कहिये के, किं—शुं कप्पद्दुमसरिसो—कल्पवृक्षना जेवो इयरतरू—कोई बीजो वृक्ष कइयावि—कोई काले होइ—थाय! ते कहो. त्यारे ते वितर्क करनरो बोल्यो के कदापि न थाय. माटे तमे कह्युं ते सत्यछे.१०१

अवतरणः—पूर्व बे गाथामां अशुद्ध धर्म प्रकाशकनी उपेक्षा अने शुद्ध धर्मदायकनी प्रशंसा करवानुं जे जणाव्युं ते तो जे वस्तुनो गुण दोष जाणे ते करे; केम के, ते मध्यस्थ पुरुष होयछे पण जे वस्तुना गुण दोषथी अजाण होय ते मध्यस्थ पुरुषमां गणाय नही ते कहेछेः— मूलः—जे अमुणिअ गुण दोषा, ते कहअ वुहाण हुंति मज्झत्था ॥ अह तेवि हु मज्झत्था, ता विस अमिआण तुल्लत्तं. ॥ १०२ ॥ दोहाः—जे गुण दोष अज्ञान ते,किम बुधमें बुध होय॥ अथवा ते बुध होय तो, सम विष अमृत दोय ॥ १०२ ॥ व्याख्याः— जे—जे पुरुष अमुणि अगुणदोसा—वस्तुना गुण अने दोष नथी जाणता, ते—ते पुरुष बुहाण—बुध एटले पंडित पुरुषोनेविषे मज्झत्था— मध्यस्थ राग द्वेष रहित समचित्तवाळा कहअ—केम हुंति— थाय! एटले जे वस्तुना गुण तथा दोषने जाणतो नथी ते बुध मध्यस्थ पुरुषने तुल्य केम गणाय!

अपितु नहीज गणाय अह– वली तेवि–तेनेपण हु–जो मज्झ–मध्यस्थ कहिये, एटले वस्तुना अजाण जीवपण जो समचित्तवाला होय ता– तो विसअमिआण– विष अने अमृत बन्नेने तुल्लत्त– तुल्यता थाय पण एमतो कोई प्रकारे थाय नही. वस्तु धर्मने जे जाणनारो होय तेनेज मध्यस्थ पन्डित कहिये अने वस्तु धर्मनो जे अजाण होय तेने अमध्यस्थ पुरुष कहिये ए भावार्थ ॥ १०२ ॥

अवतरण – हवे गुणनो राग अने दोष त्याग पूर्वक उपदेशना मिसे करीने कहे छे – त्रण तत्व आराधवा योग्य छे – मूल – मूलं जिणिंद देवो, तव्वयण गुरुजण महासयण ॥ सेस पावठ्ठाण, परमप्पाण च वज्जेमि ॥ १०३ ॥ दोहा – मूल जिनेश्वर तद्वचन, गुरु जन गाढा सैन ॥ शेष पाप थानक तजू, निज पर नो दिन रेन ॥१०३॥ व्याख्या –मूलं–प्रथम जिणिंद देवो–जिनेंद्र देव बीजो तव्वयण–ते जिनेंद्र देवसबंधी वचन सिद्धात त्रीजा महा सयण–परम हितकारी माटे मोटा स्वजन एहेवा गुरुजण–गुरुजन एटले ते जिनेंद्र देवना साधु मुनिराज, ए त्रण तत्व सेववा योग्य छे सेस– शेष बीजा परमप्पाण च- पर संबंधी एटले अन्य दर्शनी सबंधी अने पोतासबंधी एटले लोकोत्तर मिथ्यात्व संबधी पावठ्ठाण-जे पाप स्थानक छे ते सर्वने वज्जेमि-हुं वर्जु छु एटले त्याग करु छु ॥ १०३ ॥

अवतरण – कोई कहेशे के, एकनो अंगीकार करवो अने बीजानो त्याग करवो; एम कहायी तमारामाज राग द्वेषनी प्राप्ति थशे? ते शका दूर करवाने कहे छे – मूल – अम्हाण राग रोस, कस्सुवरि नहि इह गुरु विसए ॥ जिण आणरया गुरुणो, धम्मह सेस वोसरिमो ॥ १०४ ॥ दोहा – राग रोस किन ऊपरे, नहि हमने छे एक ॥ धर्म हेत जिन आण रत, छे गुरु और विवेक ॥ १०४ ॥ व्याख्या – अह्मारे रागरोस–राग द्वेष कस्सुवरि–कोईनी ऊपर नहि–नथी गुरु विसए–गुरु सबंधी वार्त्ता, इह–एम छे जिण आणरया–जिनराजनी आज्ञामा रत अथवा तत्पर एवा गुरुणो–गुरु धम्मह–मोक्ष साधन जे धर्म तेने अर्थे अमारे सेववा योग्य छे सेस– शेष एटले बीजा जे जिनराजनी आज्ञायी बाहिर छे ते सर्वने वोसरिमो–अमे वोसराविए छेए, एटले त्याग करीए छेए जे वीतरागनी आज्ञामा होय तेने गुरु मानिये छैये, अने बीजाउनी ऊपर तो अमारे मध्यस्थ भाव वर्त्ते छे माटे हे भद्र, कोईनी ऊपर अमे राग द्वेष करता नथी ॥१०४॥

अवतरण – हवे गुरुनेविषे पण राग द्वेषनो अभाव होयछे तेज विशेष पणे कहेछे.– मूल – नो अप्पणा पराया, गुरुणो कइयावि हुंति सुद्धाण ॥ जिण वय

ए रयण मंमण, मंमिय सव्वेवि ते सुगुरु. ॥ १०५ ॥ दोहाः— निज पर गुरु न करे कदा, तत्व ज्ञात गत गर्व ॥ जैन वचन मणि मंमणे, मंमित ते गुरु सर्व ॥ ॥ १०५ ॥ व्याख्याः— अप्पणा—ए आपणा गच्छना गुरुणो- गुरु छे. माटे एमनेज वांदवुं अने एमनी पाशेथीज व्याख्यान सांजलवुं, तथा व्रत पच्चरकाण करवा ; अने पराया—ए परगच्छना गुरु छे माटे एने वांदवुं नही, एनी पाशेथी व्याख्यान सांजलवुं नही ; व्रत पच्चरकाण कांई न करवुं ; एवी चाल ते सुड्डाणं—सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोनी कइयावि—कदापि नो--नही. हुंति--होय. केमके, जिणवयण रयण मंमण मंडिय- जिन वचनरूप रत्नना मंमन एटले आजूषणे करी जे मंमित विजूषित छे ; ते सव्वे वि—ते सर्वेपण सुगुरु—रूडा गुरु छे ; सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोने वांदवा पूजवा योग्य छे. अने जे जिनवचनथी उपरांत चाले छे ते वांदवा पूजवा योग्य नथी.

अवतरणः— सुगुरुनुंज शामाटे ग्रहण करवुं ! ए शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— वलि किज्जामो सज्जण, जणस्स सुविसुद्ध पुन्नजुत्तस्स ॥ जस्स लहु संगमेवि, सुधम्म बुद्धी समुल्हसए ॥ १०६ ॥ दोहाः— शुद्ध पुन्य श्रुत सजन जन, तसु जइये बलिहार ॥ जसु लघु संगमथी हुवे, धर्म बुद्धि विस्तार ॥१०६ ॥ व्याख्याः— सुविसुद्ध पुन्न जुत्तस्स--अति निर्मल श्रुत चारित्र धर्मरूप पुन्य, तेणे करी संयुक्त एवा जे सज्जण जणस्स--परम हितकारी होवाथी सज्जन जन एटले साधु जन तेनी. वलि किज्जामो- वली पूजा तथा सेवा अमे करिये छैये ; एटले अमे तेनी बलिहारीये जैये छैये. जस्स- जेनो लहुसंगमेणवि- लघु एटले अल्पमात्र संगम एटले परिचय कस्याथी पण सुधम्म- जिनजाषित धर्मनी बुद्धि- विचारणा समुल्हसए- अति उल्हास एटले अति आनंदने अथवा अति विस्तारने पामेछे. ए कारण माटे सुगुरुज ग्रहण करवा योग्य छे. ॥ १०६ ॥

अवतरणः— सांप्रत सुगुरुनुं वर्णन करवाना अधिकारनेविषे स्मृतिना उपयोगमां आव्या जे श्रीजिनवल्लनसूरीजी, ते सुगुरु होवाथी तेमनी स्तवना करतां कहे छेः— मूलः— अज्जवि गुरुणो गुणिणो, सुद्धा दीसंति तडयडा केवि ॥ पहु जिणवल्लह सरिसो, पुणोवि जिणवल्लहो चेव ॥ १०७ ॥ दोहाः-- केइ आज पिण आकरा, दीसे गुणि गुरु शुद्ध ॥ प्रजु जिनवल्लन सारिखो, वलि जिनवल्लन बुद्ध ॥१०७॥ व्याख्याः— अज्जवि- आजपण एटले चालता समयमां पण गुणिणो- ज्ञानादि गुणेकरीने गुणवंत एवा सुद्धा- दंजरहित अथवा निर्मल चित्तवाला एवा, तडयडा- आकरी तप क्रियाना करवावाला सुक्का तथा लुरका-एवा, केवि—केटलाएक गुरुणो-

गुरु एटले साधुजन दीसती- देखीए ठेये, नजरे जोइये ठेये उपलक्षणथी साम्भली ये ठेये पुणोव--वली पण पहुजिणवल्लह सरिसो--प्रभु जिनवल्लभ सरखोतो जिण वल्लहोचेव- जिनवल्लभज सम्भलायछे, ने तेज कर्ण अचक्षुने दर्शनज थतु होयनी।

अवतरण --हवे जिनवल्लभ सूरिना जेवा सर्वोत्कृष्ट पुरुषोना वचनोथी पण के टलाएकने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थती नथी, ते दृष्टांतसहित कहेछे -- मूल -- वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसि न उल्लसइ सम्म ॥ अह कह दिणमणि तेय, उलु आण हरइ अधत्तं ॥ १०८ ॥ दोहा -- गुरु जिनवल्लभ वचनथी, उलसै सम्मन जास ॥ हरे घूककी अधता, केसे भानु प्रकाश ॥ १०८ ॥ व्याख्या -- सुगुरुजिण वल्लहस्स- सुगुरु जिनवल्लभजीना वयणेवि- वचनो ठता पण एटले उपदेश सा म्भलता ठता पण केसि- केटलाएक भारीकर्मी जीवोनुं सम्म- सम्यक्त्व ज्ञान चक्षु न उल्लसइ- उल्लासने पामता नथी एटले ऊघडता नथी अह--अथ एटले एनी ऊपर दृष्टांत कहेछे -- दिणमणितेय- सूर्यनु तेज सर्वत्र प्रकाश करतु ठता उलु आण- उलूक एटले घूवड पक्षीनो अंधत्तं--अंधकार कह- केम एटले कया प्रकारे हरइ- हरे एटले दूर करे, अपि तु नहीज करीशके ॥ १०८ ॥

अवतरण -- वली जे श्रीजिनवल्लभसूरीना वचनोथकी भवना स्वरूपने देखता ठता सम्यक्त्वने अगीकार करता नथी, तेवा पुरुषोना धिठपणाने धिक्कारता ठतां कहेछे -- मूल -- तिहुअण जण मरतं, दहूण निअति जे न अप्पाण ॥ विरमति न पावाउ, धिद्धी धिठत्तण ताण ॥ १०९ ॥ दोहा -- मरता जग जन जोइने, जे न करै वस मन्न ॥ पापथकी विरमे नही, ते नर धीठ अधन्न ॥ १०९ ॥ व्याख्या -- मरंत--मरता एवा जे, तिहुअण जण-- त्रण भवनना जन एटले लो कने दहूण-- देखीने जे-- जे पुरुष अप्पाण-- पोतानी आत्माने न निअति-- नथी देखता अने पावाओ--हिंसा तथा मृषादि पाप व्यापार थकी न विरमति-- विराम पामता नथी, एटले निवर्त्तता नथी, ताण-- ते पुरुषोना धिठत्तण--धीठ पणाने धिद्धी--धिक् धिक् होजो, एटले धिक्कार थाउ ॥ १०९ ॥

अवतरण -- हवे तेनाज कुस्नेहपणाने कहेछे -- मूल -- सोएण कदिऊण, कु ट्टेऊण सिर च उअरच ॥ अप्प खिवति नरए, तं पि हु धिद्धी कुनेहत्त ॥ ११० ॥ दोहा -- शोक विलाप करी उदर, शिर कूटी उर देह ॥ नाखै नरके जीवने, धिग् धिग् ते कुनेह ॥ ११० ॥ व्याख्या -- सोएण--शोकेकरीने कदिऊण--आक्रदन अ थवा विलाप कर्याथी च--वली सिर- मस्तक उअर--उदर एटले पेट च शब्दथी

तरु एटले तरादिक प्रते कुट्टऊणं--कूटी पीटीने नरए--नरकनेविषे जे अप्पं--आ त्माने खिवंति--क्षेपेछे एटले नाखेछे, हु--जे कारण माटे तेनुं जे कुनेहत्तं--कुस्नेह पणुं छे, तंपि--तेने पण धिद्धी--धिक् धिक् होजो एटले धिक्कार थाओ.॥ ११० ॥

अवतरणः-- हवे शोकादिक कीधाथकी उलटो अति दोष होयछे तेज कहेछेः-- मूलः-- एगं पिअमरणदुहं, अन्नं अप्पावि खिप्पए नरए ॥ एगंच मालपडणं, अन्नं लगुडेण सिरिघाउ ॥ १११ ॥ दोहाः-- प्रिय मरणनुं एक दुःख, बीजुं न रक मझार ॥ इकतो पडवुं मालथी, बीजो मस्त प्रहार ॥ १११ ॥ व्याख्याः-- ए गं--एक पिअमरणदुहं--पुत्र कलत्रादिक प्रियजन स्वजन लोकोना मरवानुं दुःख अन्नं--बीजुं नरए--नरकनेविषे अप्पा--आत्मा विखिप्पए--विक्षेपिये छैए एटले ना खीये छैए ए मोटो आश्चर्य छे. अहीं दृष्टांतकहेछेः-- एगंच--एक तो मालपडणं-- एकादि मालथकी पडवुं, अने अन्नं--बीजुं लगुडेण--लाकडीए करीने सिरिघाउ-- माथाऊपर घात करवो एटले जे पडयो तेनुं माथुं फोडी नाखवुं ए मोटो अन्याय छे

अवतरणः-- एम क्यांथी करे? एवी आशंका करीने हमणा सुगुरुवादिकनुं दु र्लभपणुं प्रगटकरतां छतां कहे छेः-- मूलः-- संपइ दूसम काले, धम्मत्थी सुगुरु सावया दुलहा ॥ नाम गुरु नामसड्ढा, सरागदोसा बहू अत्थी ॥ ११२ ॥ दोहाः-- धर्मार्थी दूषम समै, दुलभ साधुने श्राद्ध ॥ नाम साधु श्रावक बहू, हग रागादि सबाध ॥ ११२ ॥ व्याख्याः-- संपइ--सांप्रत एटले वर्त्तमान काल दूसम काले--दू सम कालनेविषे धम्मत्थी--श्रीजिन भाषित मोक्ष पद साधक शुद्ध विधि धर्मना अर्थी अभिलाषी एवा, सुगुरु सावया--सुगुरु सु साधुने श्रावक समणोपासक दु लहा--दुर्लभ छे; अने सराग दोसा--राग द्वेषे करीने सहित एवा, नाम गुरु--स म्यग् ज्ञानादि गुणे करीने रहित केवल नाम मात्र गुरु साधु, तथा नाम सड्ढा-- नाममात्र श्रावक तेतो बहु अत्थी-- घणा छे ॥ ११२ ॥

अवतरणः--हवे सुगुरु श्रावकपणानो हेतु कहे छेः-- मूलः-- कहियंपि सुद्ध धम्मं, काहिवि धन्नाण जणइ आणंदं ॥ मिच्छत्तमोहिआणं, होइ रई मिच्छ धम्मेसु ॥ ११३ ॥ दोहाः-- शुद्ध धर्मनी वात पण, धनने रति उपजाय ॥ मि थ्या मोहित मूढने, मिथ्यात्वे रति थाय ॥ ११३ ॥ व्याख्याः-- कहियंपि-- क ह्यो छे तोपण सुद्ध धम्मं--निर्मल वीतराग भाषित धर्म एटले विस्तार सहित क हेलो जे जिन धर्म ते काहिविधन्नाण-- केटलाएक धन्य पुरुषोने पण एटले थो डाकज धन्य पुन्यवंत प्राणीउने आणंद --आनंद एटले आत्मिक हर्ष जणइ--उत्प

न्न करेछे , केमके, धर्मरूप रत्ननो व्यापार करनारा थोडाज होय छे माटे , अने मिछ्छ त्त मोहिआण--मिथ्यात्वनेविषे मोहेला एटले मूर्छित थएला जे लोको तेउंनी र इ--रति एटले प्रीति मिछ्छधम्मेसु-- मिथ्यात्व धर्मनेविषे होइ--होय छे , ते अति घ णा छे, माटे सुगुरु तथा सुश्रावकनुं दुर्लभपणुं जाणवु ॥ ११३ ॥

अवतरण - हवे बीजु आ कालनेविषे जे वर्त्तेछे ते कहेछे — मूल — इक्कंपि महादुक्खं, जिण वयण विऊण सुद्धहिययाण ॥ ज मूढा पावाइ, धम्म भणिऊ ण सेवति ॥ ११४ ॥ दोहा — जिन मत जाण विमल हिये, तास एक गुरु दु ख ॥ धर्म कहीने सेवतो, पापप्रते जो मुरक ॥ ११४ ॥ व्याख्या — सुद्धहिययाण— जेनु निर्मल चित्त छे, एटले सर्व जीवोनेविषे जेने अनुकपा भाव वर्त्तेछे एवा जे जिणवयणविऊण—जिनवचन एटले जिनआगमनेविषे विद्वान एटले अति कुशल पुरुषोने आ कालमा इक्कपि महादुक्ख—एक मोटुं दु ख होयछे ज—जे कारणमाटे मूढा- मूर्ख अज्ञानी लोक जे छे ते पावाइ- जीव वधादिक पापप्रते धम्मभणिऊ ण- धर्म कहीने एटले देवगत्यादि पुन्य कहीने सेवति—सेवेछे, सेवीने ते वापडा दुर्गतिमा पडशे , ए एक मोटु दु ख ज्ञानी पुरुषोना चित्तमा वर्त्तेछे ॥ ११४ ॥

अवतरण — त्यारे शु बधाय मूढ पुरुषो छे, किंतु केटलाएक अमूढ पुरुषो पण छे ते कहेछे -- मूल — थोवा महाणुभावा, जे जिणवयणे रमति सविग्गा ॥ तत्तो भवभयभीया, सम्म सत्तीइ पालंति ॥ ११५ ॥ दोहा -- महा भाग जिन व चन रत, सवेगी भव भीत ॥ विरला जे समसक्तिए, व्रत पाले श्रुत रीत ॥११५॥ व्याख्या - जे--जे पुरुष जिणवयणे--जिन वचननेविषे रमति—रमे छे, एटले तरु ण सुखी नारी परिवारथी परिवर्यो पुरुष जेम किन्नर देवताना गीत सांभलवाने विषे प्रेम करेछे. तेम जे पुरुष जिन आगम सांभलवानेविषे अतिज प्रेम करेछे, वली जे सविग्गा--सविज्ञ एटले मोक्षना अभिलाषी छे महाणुभावा—ते महानुभाव पराक्र मवान पुरुष थोवा—थोडाछे तत्तो -ते पुरुषथी भवभयभीया--नरकादि चतुर्गति ससा रना भयथकी बीना जे पुरुष एवा, वली सम्म—जिनोक्त श्रद्धानरूप सम्यक्त्वप्रते सत्ती इ—यथाशक्तिएकरी पालति--पालता—आराधता एवा पुरुषअतिशयथोडाछे ॥११५॥

अवतरण — पूर्व गाथाए करी सम्यक्त्वनुं दुर्लभपणु देखाड्यु, हवे ते सम्य क्त्वविना धर्मकृत्य निष्फल छे, एम दृष्टाते करीने कहे छे — मूल —सव्वग पि हु स गम,जह न चलइ इक्क वडहिला रहिय ॥ तह धम्म फडामोव, न चलइ सम्मत्त परिहीण ॥ ११६ ॥ दोहा — इक धुर विण सर्वांग पण, शकट जेम न चलंत ॥

तेम धर्म मंमाण सब, विन समकित न फलंत ॥ ११६ ॥ व्याख्याः– इक्क वड हिला रहियं--गामानां पइडां रोकवानी खीलीए करी रहित एवुं, सव्वंग सगडं–स र्वांग शकट छतां पण एटले बीजां सर्व अंगेकरी सहित गाडुं छतां पण जह--जे म हु--निश्चे नचलइ–नथी चालतुं तह–तेम. सम्मत्त परिहीणं–सम्यक्त्व रहित ए हेवुं जे धम्मफमामोवं–दान दया शील तपादिक धर्मनो फटाटोप एटले जे आमंब र ते न चलइ--नथी चालतो, एटले अव्याबाध अक्षय मोक्ष फल नथी आपतो, उलटुं विशेषतर डुखनुं कारण थाय छे ॥ ११६ ॥

अवतरणः– शिष्य वितर्क करेछे के, जे सम्यक्त्वविना अन्य धर्म आमंबर छे, ते हितने करता नथी; एवुं वाक्य मिथ्यात्वीनेविषे रोषरूप थशे? ए आशंका दूर करवाने कहेछेः– मूलः– न मुणंति धम्मतत्तं, सढं परमछ गुणहियं अहियं॥ बालाण ताण उवरिं, कह रोसो मुणिय तत्ताणं ॥ ११७ ॥ दोहाः-- धर्म तत्व श्रुत आत्महित, अहित न जाणे जेह ॥ ते अजाण पर रोष किम, जिनमत कुस ल करेह ॥ ११७ ॥ व्याख्याः– धम्मतत्तं–जेमां जिनोक्त धर्मनुं स्वरूप रहेलुंछे, एवो जे सढं– शास्त्रसिद्धांत तेने जे पुरुष नमुणंति– नथी जाणता; वली जे पुरुष परम छ गुणहियं– परमार्थी जे मोक्षपद तेनुं साधन सम्यक् ज्ञानादिक गुण तद्रूप जे हित तेने जाणता नथी, वली जे पुरुष अहियं– अहित एटले मिथ्यात्व अविरति कषायादि नवभ्रमणनुं कारणरूप जे अहित तेने नथी जाणता; ताणबालाण– ते बाल अज्ञानी जीवोनी उवरिं–उपर मुणियतत्ताणं–जेउए जिन धर्म तत्व एटले परमार्थ जाण्यो छे; ते पुरुषोने कहरोसो–रोष केम थाय! अपितु नज थाय केम के, जे ज्ञाता पुरुष होय छे ते द्रव्य तथा भाव ए बे अनुकंपा सहितज होय छे॥११७॥

अवतरणः– हवे जे बाल अज्ञानी लोको छे तेउनुंज बालपणुं दृष्टांत सहित देखाडे छेः– मूलः– अप्पावि जाण वयरी, तेसिं कह होइ परजिए करुणा ॥ चो राण वंदियाणय, दिठ्ठंतेणं मुणेयव्वं ॥ ११८ ॥ दोहाः– जसु वैरी निज आतमा, तसु परदया न होय ॥ याचक चोरतणो इहां, उदाहरण जग जोय ॥ ११८ ॥ व्याख्याः– जाण–जे लोकोनो पोतानो अप्पा– आत्मा पण वयरी– वैरीछे; एट ले शत्रुनी तुल्य छे; केमके हिंसा असत्य अदत्त तथा परदारागमनादि अहित कार्य करेछे माटे, तेसिं--ते बाल अज्ञानी लोकोने परजिए–पर जीवोनी उपर क रुणा–दया कह–केम होइ–थाय! अपितु नज थाय; एटले जेने पोतानो आत्मा पण शत्रुनी पठे शत्रु वर्त्ते छे, तो तेने बीजा जीवोनी उपर दया ते केम वर्त्ते! अ

पितु नहीज वर्त्ते ते चोराण—चोरने वली वंदियाण—वंदिक पुरुषोने एटले परधन अभिलाषी पुरुषोने दिठंतेण—दृष्टाते करीने मुणेयव्वं—जाणवु एटले जेम चोरादिकनें परनी दया आवती नथी, तेम दुष्टाचारी इह परलोक विरोधकारी, उत्सूत्र नाषी जे होय तेने परजीवनी दया आवे नही ॥ ११८ ॥

अवतरण:— हवे बाल स्वनावप्रते विचार करीने ते बालना स्वरूप तथा लक्षणने कहेछे — मूल — जे रज्ज धणाईण, कारणनूया हवति वावारा ॥ तेवि हु अइपावजुया, धन्ना छड्डंति नवनीया ॥ ११९ ॥ दोहा — जे छे राज धनादिनो, हेतुनूत व्यापार ॥ ते अति पाप वणिज तजे, उत्तम नव नीतार ॥ ११९ ॥ व्याख्या — रज्ज धणाईण—राज एटले राजादि पदवीनो, धणीमादि धनादिकनो आदि शब्दथी शब्दादिक इंद्रियविषयनो कारणनूया—कारणनूत एटले हेतुरूप एवो जे-जे वावारा—व्यापार हवति—छे, एटले बाह्य व्यापार शत्रुहनन राजसेवा रूपी कर्म दतवाणिज्यादि, अने अंतर व्यापार पचाग्निताप अज्ञान कष्ट क्रियादिरूप तेवि—ते व्यापार पण हु—निश्चय अइपावजुया—नरक निगोदादिकना कारणमाटे अति पापसहित छे एम जाणीने ते व्यापारने धन्ना—जे धन्य पुन्यवत उत्तम पुरुष छे ते छड्डंति—छोडेछे एटले त्याग करेछे ते उत्तम पुरुष केहेवायछे —नवनीया—नवनीत छे एटले जे संसारथकी बीहीना छे, अने उदास रहेछे तेज महा सत्विछे ११९

अवतरण — धन्य पुन्यवत सत्ववत जे उत्तम पुरुष छे तेनुं स्वरूप कह्यु, हवे अधम पुरुष जे हीण सत्वि छे तेनु स्वरूप कहेछे —मूल —विइयाय सत्तरहिया, धणसयणाईहि मोहिया लुध्दा ॥ सेवति पावकम्म, वावारे उयर नरणठा ॥ १२० ॥ दोहा — मोहित धन सजनादिके, लुब्ध सत्व करि हीण ॥ पाप नजै व्यापारमे, मध्यम पेटाधीन ॥ १२० ॥ व्याख्या — विइयाय—प्रथम उत्तम पुरुष कह्यो, तेनी अपेक्षाएकरीने बीजा जे अधम पुरुष छे ते पावकम्म—स्वामी डोह, विश्वासघात, चोरी, परधन हरणादी तथा अंगार कर्मादि पदर कम्मादान तथा हिंसादि अष्टादश पापस्थानकने सेवति—सेवेछे, वावारे—व्यापारनेविषे उयरनरणठा—उदर एटले पेट नरवाने अर्थे, ते अधम पुरुष केवा छे — सत्तरहिया—सत्व एटले शुन पराक्रम रहित एवा, वली ते अधम पुरुषो केवा छे — धणसयणाईहिं धन स्वजनादिके करीने आदि शब्दथी शब्दरूपादिक इंद्रिय विषये करीने मोहिया—मोहित एटले मूढ थएला एवा, वली ते अधम पुरुष केवा छे? लुध्दा—लोनी एटले लालची अति छे एवा जाणवा ॥ १२० ॥

अवतरणः— बीजा अधम पुरुषनुं स्वरूप कह्युं हवे त्रीजा अधमाधम पुरुषनुं स्वरूप कहेछेः— मूलः— तइया हमाण अहमा, कारणरहिया अनाणगवेण ॥ जे जंपंति उसुत्तं, तेसिं धिध्धि पंमिच्चं ॥ १२१ ॥ दोहाः— अधम अधम कारण विना, करि अज्ञान अनिमान ॥ जे उत्श्रुत नापन करे, धिग धिग तेनुं ज्ञान ॥ ॥ १२१ ॥ व्याख्याः— तइया—त्रीजा अहमाण—अधमोनेविषे अहमा—अधम एटले त्रीजा अधमाधम पुरुष ते कारण रहिया—धनलान कुटंब पोषणादि कारण रहित छतां अनाणगवेण—अज्ञानना गर्वे करीने जे—जे उसुत्तं— उत्सूत्रप्रते जंपंति— जंपेछे अथवा बोलेछे तेसिं—तेना पंडिच्चं—पांमित्यने धिध्धि—धिक्कार धिक्कार थाओ. धनलानादि कारणे जे उत्सूत्र बोलवुं, ते दुर्गतिने देवावालुं छे, माटे कारणने लीधे पण उत्सूत्र बोलवानो निषेध छे त्यारे कारणविना तो विशेषपणे निषेधज जाणवो. माटे कारणविना अने अज्ञान अनिमाननी बुद्धिथी जे उत्सूत्र नापण करेछे ते अधमाऽधम पुरुष जाणवो. तेना पंडितपणाने धिक्कार धिक्कार छे. जे नीचथी पण नीच होय तेने अधमाधम कहिये. ॥ १२१ ॥

अवतरणः— उत्सूत्र बोलनारने शासारु अधमाधम कह्यो? अने तेना पंमितपणाने शासारु धिक्कार थाओ एम कह्युं? ते देखाडता छता कहेछेः— मूलः— जं वीरजिणस्स जिओ, मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ ॥ सागर कोडाकोडिं, हिंमइ अइनीमनवरणे ॥ १२२ ॥ दोहाः— जीव मरीची वीरनो, उतृश्रुत लेस उच्चार॥ सागर कोडा कोडि जो, नमिओ नवकांतार ॥ १२२ ॥ व्याख्याः— जं—जे कारण माटे वीरजिणस्सजीओ—वीर जिनेश्वरनो जीव मिरई—नरत पुत्र मरीचीने नवे उस्सुत्त लेस देसणओ—कपिले ज्यारे वारंवार पूछवा मांम्युं, त्यारे एम बोल्या के, हे कपिल रूपन जिणसाधुओनेविषे पण धर्म छे अने अहीं अमारामां पण धर्म छे; एतद्रूप उत्सूत्रनो जे लेश, तेनी देशना थकी अइनीमनवरणे—अति नीम रौद्र नव अरण्य जे संसार कांतार तेनेविषे सागर कोडाकोडी— सागरोपमनी कोडाकोडीसुधी एटले एक कोडाकोमी सागरोपमसुधी हिंमइ—हींमेछे एटले नमेछे, एम वर्त्तमान निर्देशनी अपेक्षाए कह्युं, परमार्थे तो नम्योछे एम जाणवुं. ॥ १२२॥

अवतरणः— हवे उत्सूत्रनुं निगमन करता छतां कहेछेः— मूलः— ता जइ इमंपि वयणं, वारंवारं सुणित्त समयम्मि ॥ दोसेण अवगणित्ता, उस्सुत्त पयाइ सेवंति ॥ ॥ १२३ ॥ दोहाः— वारवार ए श्रुत वचन, सांनलि जोतो हेय ॥ सेवै बहु उत्सुत्र पद, दोष न मानै जेय ॥ १२३ ॥ व्याख्याः— ता—ते कारणमाटे जइ—जो इमं—ए

प्रत्यक्ष, वयण—मरीचिशक उत्सूत्र वचनो प्रत्ये समयम्मि—सिद्धांतनेविषे वारवार—वारवार सुणीत्त—सुणीने एटले सांजलीने अपि—पण दोसेण—अभिनिवेष मिथ्यात्वादिक दोषेकरी अथवा द्वेषेकरी अवगणित्ता—अवगणनाए करीने एटले अपमानताए करीने उस्सुत्तपयाइ—उत्सूत्रना पदने सेवति—जे सेवेछे एटले जे बोलेछे ॥ १२३ ॥

मूल —ताण कह्जिण धम्म, कह नाण कह डुहाण वेरग्गं॥ कूमानिमाण पमिय, नडिया बुड्डति नरयम्मि॥१२४॥ दोहा —तसु जिन धर्म किहा थकी, ज्ञानसु डुख वैराग॥ कूटमान पडित्त नटित, नरके खेलत फाग॥१२४॥ व्याख्या —ताण—ते पुरुषोने कह—केम जिण धम्मो—जिन धर्म थाय! कह—केम नाण—यथार्थ ज्ञान थाय! कह—केम डुहाण—नरकादिकना डुःख थकी वेरग्ग—वैराग्य एटले उदासपणुं थाय! अपितु ते उत्सूत्र जाषीउंने जिनधर्मादिक कांई प्राप्तज न थाय केमके, जिन धर्म आज्ञाए करीने पूर्वे कह्युं छे ते कारण माटे कूमानिमाण पमिय—कूड अने अभिमान अथवा फूग अभिमान अहंकारे करी सहित जे पमित पणु ते कूटाभिमान पडितपणुं कहिये तेणे करीने ते पुरुष नडिया—नडेला एटले पीडायला नरयम्मि—नरकनेविषे एटले नरकरूप अंधकूपनेविषे बुड्डंति—बूडे छे एम जाणीने उत्सूत्र न बोलवु एज सार छे ॥ १२४ ॥

अवतरण —हवे जे उत्सूत्र जाषी जीव छे, तेने हितोपदेशनु दान देवु नही, केमके, ते ए दान लेवाने अयोग्य छे ते कहे छे — मूल — मामा जपह बहुअ, जे बद्धा चिक्कणेहिं कम्मेहिं ॥ सव्वेसि तेसि जायइ, हिउवएसो महादोसो ॥ १२५ ॥ दोहा - जे बाध्या खल कर्म करि, ते सबहीके थाय ॥ हित उपदेश सु दोष मय ॥ बहु मानण इण न्याय ॥ १२५ ॥ व्याख्या — उत्सूत्र जाषी कदाग्रही अयोग्य जीवने बहुअ—घणो हितोपदेश मामा जपह—कहेवो नही केमके, जे—जे पुरुष चिक्कणेहिं कम्मेहि—चीकणा कर्मे एटले अति क्लिष्ट ज्ञानावरणादिक कर्मे करि बद्धा—बांधेला अथवा निगडेला छे तेसि सव्वेसि—ते सर्वने हिउवएसो—हितोपदेश एटले मोक्ष मार्गनो उपदेश ते महादोसो—महा दोषरूप अथवा महा द्वेषरूप जायइ—थाय छे, माटे अयोग्य जीवने घणो हितोपदेश कहेवो नही ॥ १२५ ॥

अवतरण — धर्मने अयोग्य जीवने हितोपदेश करवाथी क्लेशमात्र थाय तेनु कारण कहे छे — मूल — हिययम्मि जे कुसुद्धा, ते कि बुज्झति धम्म वयणेण॥ ताताण कए गुणिणो, निरत्थय दमइ अप्पाण ॥ १२६ ॥ दोहा — जसु कुसुद्ध मन केम सो, जिन वचने बूजेय ॥ तो तेने अर्थे गुणी, फोकट आत्म दमेय॥१२६॥

व्याख्याः— हिययम्मि—हृदयनेविषे एटले चित्तनेविषे जे- जे पुरुष कुसुद्धा—कुसुद्धछे; एटले अशुद्ध छे; एटले अभिनिवेश मिथ्यात्वादिक दोषरूप कलंक पंके करीने मलिन छे; ते—ते पुरुष किं—केम धम्मवयणेण—जिनधर्मसंबंधी वचने करी बुझंति—बोध पामे! अपितु नहीज पामे; ता- ते कारण माटे ताणकए—ते दुष्ट चित्तवालाने अर्थे गुणिणो- ज्ञानादिक गुणेकरी गुणवंत पुरुषछे ते निरत्थयं- निरर्थक एटले फोकट अप्पाणं—आत्माने दमइ- दमेछे, एटले क्लेश उपजावेछे, अहीं फलीतार्थ एम समजवुं के, जे गुणी पुरुष होयछे ते परने गुण करवानी बुद्धिमाटे हितोपदेश कर्त्ता कांई पण पोताने क्लेश माने नही, पछी परने गुण थाओ वा न थाओ. ए गुणीनो सहज स्वभावछे माटे गुणी पुरुषनो कीधेलो उपदेश फोकट नथी ते उपदेश पोताने स्वाध्याय तप छे. १२६

अवतरणः-- गुणी पुरुष एम कहेछे के अहो भव्य, जिनधर्म करवादिक तो दूर रहो, पण एक जिन धर्मनुं श्रद्धान छे तेपण दुःखनुं हरण करनारुं छे; तेज कहे छेः-- मूलः-- दूरे करणं दूर,म्मि साहणं तह पभावणा दूरे ॥ जिण धम्म सद्दहाणं, पि तिरकदुरकाइ निठवइ ॥ १२७ ॥ दोहाः—करनो अरु साधन तथा, रहो प्रभावण दूर ॥ शुद्ध धर्म श्रद्धान पिण, हरै कठिण दुखपूर ॥ १२७ ॥ व्याख्याः-- करणं- विधिए करीने दान शील तप भावनारूप जिनधर्मनुं जे करवुं, तेतो दूरे—दूर रहो. तथा साहणं—पूर्वोक्त जिनधर्मनुं साधन एटले कथन करवुं तेपिण दूरम्मि—दूर रहो, तथा पभावणा—प्रावचनी धर्मकथी प्रमुख अष्ट प्रकारना प्रभावकपणे करीने जे जिनधर्मनी प्रभावना करवी एटले जिनधर्मनो महिमा उद्योत करवो तेपण दूरे—दूर एटले छेटे रहो; मात्र जिण धम्मसद्दहाणंपि—जिनभाषित धर्मनुं एक श्रद्धान रुचिपणुं पण तिरक दुरकाइ—तीक्ष्ण दारुण जे नरकादिक दुःख तेने निठवइ—निष्ठापेछे एटले नसाडेछे; अर्थात् बीजुं कांई न बने तो पण एक जैनधर्मनुं श्रद्धानकरवुं.१२७

अवतरणः— ते श्रद्धाननुं लक्षण ए के सिद्धांतनुं सांभलवुं, ते सिद्धांत सांभलवानी पोतासंबंधी इछा देखाडता छता कहेछेः— मूलः— कइया होही दिवसो, जइया सुगुरूण पायमूलम्मि ॥ उस्सुत्त लेस विसलव, रहिओ निसुणेसु जिण धम्मं ॥ १२८ ॥ दोहाः— ते दिन क्यारे आवशे, ज्यारे सद्गुरु पास ॥ उत्सूत्रांसे रहित जिन, धर्म सुणीसुं खास ॥ १२८ ॥ व्याख्याः— दिवसो—ते दिवस दिवस कहेवाथी ते घडी ते मुहूर्त्त ते पक्ष, ते मास ते वर्ष कइया—क्यारे होही—थशे! जइया—ज्यारे सुगुरूण—सुविहित गीतार्थ धर्माचार्य सुगुरुने पायमूलम्मि—पादमूल एटले समीपे जिणधम्मं—जिनभाषित धर्मने निसुणेसु—हुं सांभलीश. केवो थयो

थको हुं सानलीश ! तस्सुत्त लेसविसलव रहिओ–तत्सूत्रना लेशरूप विपलवेकरी ने रहित छतो एटले गुरुने समीपे सांभलवाथी मनमा रहेला जे तत्सूत्र वाक्य, तेना लेशरूप विषना लवेकरी रहीत थयो थको हुं सांभलीश ॥ १२८ ॥

अवतरण – ते दिवस क्यारे थशे एम शासारु कह्यु ? गुरुनुं तो कांई डर्लनप णुं नथी; केमके, गुरु तो जोवामां घणा आवेछे, ते उपर कहेछे – मूल.– दिठ्ठा वि केवि गुरुणो, हियए न रमति मुणिय तत्ताण ॥ केवि पुण अदिठ्ठुच्चिय, रमं ति जिणवल्लहो जेम ॥ १२९ ॥ दोहा – दीठा पण केइक गुरु, न गमे जाण हि येय॥ केइ अदीठाहि जगमे, जिम जिणवल्लन श्रेय ॥१२९॥ व्याख्या – केवि–केटला एक दिठ्ठावि–नजरे जोएला पण काने सांभलेलानी शी वात करवी ! गुरुणो–साधु समाचारीमांहे निपुण एषणीय आहारना लेवावाला एवा गुरु ते मुणियतत्ताण–जेणे जिनशासननो तत्वपरमार्थ जाण्यो छे, तेना हियए–हृदयनेविषे नरमति–रमता नथी एटले रुचता नथी, केमके तेना हृदयनेविषे तो जे सम्यक् ज्ञान क्रिया सवेग गुणे करीने सहित गुरु होय ते रुचेछे, पण एकलुं ज्ञान एकली क्रियादिक वाला रुचता नथी पुण–वली केवि–केटलाएक अदिठ्ठुच्चिय–नही दीठेला ज्ञानक्रिया स वेग सहित गुरु पण रमति–रमेछे रुचेछे, जेम–जिम जिणवल्लहो–ज्ञान क्रिया सवेग सहित जिनवल्लन सूरि नही दीठेलो अमारा चित्तनेविषे रुचेछे, तेमना र चेला ग्रंथो जोतां तथा तेमना सतानीक साधुनी समीपे तेओना ज्ञान वैराग्य क्रि यानुष्ठान सांभलता अति प्रिय लागेछे एम नेमीचद भंडारी कहेछे ॥ १२९ ॥

अवतरण – एम छतां पण जे पुरुष कुगुरुने पण सुगुरुनी पठे माने छे, तेनुं निराकरण करता छता कहेछे – मूल –अजया अइ पाविठ्ठा, सुद्ध गुरु जिण वरिंद तुल्लत्ति ॥ जो इह एव मन्नइ, सो विमुहो सुद्ध धम्मस्स ॥ १३० ॥ दोहा – आर म्नी अति पापिने, जिनवर सुगुरु समान ॥ जे जाणे ते जीव जिन, धर्म विमुख वेभान ॥ १३० ॥ व्याख्या – ते कुगुरु केवा छे ? अजया–यत्न रहित छे, एटले षट् जीवनि कायना वद्ध करवानेविषे जे तत्पर छे, ते कारण माटेज अइ पावि ठ्ठा–अति पापिष्ट छे, एटले पाप कर्म बांधवानेविषे प्रधान छे एटले मुख्य छे एवा जे कुगुरु छे, तेने पण सुद्ध गुरु जिणवरिंदतुल्लत्ति–निर्मल गुरु गौतम गणधरा दिकने सदृश अथवा घणुं शु कहिये जिनवरेंद्र तुल्य छे, एव–ए प्रकारे इह–ज गतनेविषे जो कोई मूढ पुरुष मन्नइ–मानेछे एटले जाणे छे, सो–ते पुरुष सुद्ध

धम्मस्स--श्री वीतराग भाषित श्रुत चारित्ररूप निर्मल जे धर्म, तेने विमुहो--विमुख जाणवो एटले अवज्ञा मुखवालो जाणवो. ॥ १३० ॥

अवतरणः-- धर्मने करतो थको पण धर्मथी विमुखपणुं केम कह्युं? ए आशंकानुं समाधान करतां कहे छेः— मूलः— जो तं वंदसि पुज्जसि, वयणं हीलेसि तस्स रागेणं ॥ ता कह वंदसि पुज्जसि, जणवाय ठिइंपि न मुणेसि ॥१३१॥ दोहाः— वांदे पूजे जेहने, हीले तेनो वैण ॥ वांदे पूजै किम तदा, जन थिति जूये सैन ॥ १३१ ॥ व्याख्याः— जो—जे जिनराजप्रते तं—तुं वंदसि—वांदे छे, पुज्जसि—पूजे छे, अने पोताना उत्सूत्र भाषी हीणाचार्य गुरुने रागेणं—रागे करीने तस्स—ते वंदनीयथी तो जिनराजनुंज वली वयणं—आगमरूप वचन हीलेसि—तेनी तुं हीलना करे छे, एटले निंदा करेछे; रे मूढ, जिनराजनां वचनोनी हीलना करे छे, ता—तो कह—केम जिनराजने वंदसि—तुं वांदेछे, पुज्जसि—तुं पूजेछे; जणवायठिइंपि—रे मूढ, तुं जनवादनी लोक व्यवहारनी स्थिति एटले मर्यादाने पण नमुणेसि— नथी जाणतो; के जेने वांदिए तेनां वचन जो न मानिये तो वांदवुं तथा पूजवुं व्यर्थ जाणवुं ए भावार्थ छे. ॥ १३१ ॥

अवतरणः-- लोकव्यवहारनी जे स्थिति छे ते कहेछेः-- मूलः-- लोएवि इमं भणियं, जो आराहिज्ज सो न कुविज्जा ॥ मन्निज्ज तस्स वयणं, जइ इच्छसि इच्छियं काउं ॥ १३२ ॥ दोहाः-- कह जन जे आराधिए, न कोपाइये तेह ॥ मानी जो तसु वेन जो, वंछित तुं वांछेह. ॥ १३२ ॥ व्याख्याः-- लोएवि—लोकोत्तरनी तो शी वात! लौकिक व्यवहारनेविषे पण इमं भणियं--एम कह्युं छे; जो—जे देव दानव राजादिक मोटा पुरुष आराहिज्ज—आराधिए, पूजिये, सो—ते देव दानव राजादिकने न कुविज्जा—कुपित न करिये एटले तेने जे वातथी कोप चढे ते वात न करिये. तस्स—ते देव दानव राजादिकनुं वयणं—वचन मानिये एटले प्रमाण करिये. इच्छियं काउं—इच्छित करवाने एटले पोताना मन वंछित पूरण करवाने जइ—जो इच्छसि—तुं इछेछे तो ए प्रकारे पुत्र मित्रादिकने लोक व्यवहारनेविषे लोक सीखामण दीए छे; तो लोकोत्तर व्यवहारनी वात तो मोटी छे. ॥ १३२ ॥

अवतरणः— एम भगवन् वचन सांभल्या छतां पण धर्म करवाने दोष कहीने हवे त्यांहां जे निश्चल पुरुष छे तेनी स्तवना करतो छतो कहेछेः— मूलः— दूसम दंमे लोए, सुदुक्ख सिद्धंमि दुक्ख उदयम्मि ॥ धन्नाण जाण न चलइ, सम्मत्तं ताण पणमामि ॥ १३३ ॥ दोहाः— दुष्ट उदय दुख प्रगट जन, दूसम दंढ छ

तेय ॥ तसु प्रणमुं जे धन्यनो, समकित गुण न चलेय ॥ १३३ ॥ व्याख्या – दूसमदंके–दूषमार्क एटले पाचमा आरारूप दन्न एटले वली मेधा सुख संपत्ति विद्या शुन्न दीर्घायु निरोगपणु इत्यादि विसिष्ट वस्तुना नाशरूप दन्न, तेणे करीने दंन्नाय ला एवा, वली सुडक्क सिद्धम्मि–तीक्ष्ण दुःखे करीने सिद्ध एटले निष्पन्न थएला एटले नीपजेला एवा, वली दुःखउदयम्मि–शरीरीने मानसी दुःख अति कष्टनो छे उदय जेने एवा, जे लोए–लोकतेनेविषे तथा ते लोकने थए छते जाणधन्नाण–जे जिनमत जावित मतिवान धन्य पुण्यवाननुं सम्मत्तं–तत्व श्रद्धान सम्यक्त्व न चलइ–नथी चालतु, ताण–ते पुरुषोने पणमामि–मन वचन कायाए करी हुं नमस्कार करुं छु वली हुंमाअवसर्पिणीना प्रनावे नस्मग्रहने उदये प्रगटयो जे डुपमा आरानेविषे असयत पूजा नामे दसमो आश्चर्य, तेणेकरी प्राए थयुं जे लोकोनु विरूप रूप ते सगपट्टादिक बीजा शास्त्रोथी जाणवु ॥ १३३ ॥

अवतरण – अही कोई आशका करेके, केटलाएक गुरुउने जोयां छतां पण विवेकी पुरुषोना मनमा रुचता नथी, अने केटलाएक नही दीठेला जिनवल्लनसूरिनी पठे लोकोना मनमां रुचेछे ते सत्य छे, पण अमे तमने पूछिए छैए के तमे कोई गुरुनी परिक्षा करीने निश्चे कर्यो अथवा जाण्यो छे ? तेने नेमीचंद्र प्रकरण कर्त्ता त्रण गाथाए करीने कहेछे – मूल – नियमइ अणुसारेण, ववहार नयेण समय सुद्धीए ॥ कालक्खित्तणुमाणेण, परिक्खिउ माणिउंअ गुरु॥१३४॥ दोहा – समयशुद्धि व्यवहार नय, निजमतिने अनुसार॥ काल क्षेत्र अनुमानथी, सुपरिक्षित गुरु धार ॥ १३४ ॥ व्याख्या – नियमइ अणुसारेण–पोतानी स्वान्नाविक बुद्धिना अनुसारे करीने पण अहं बुद्धिए करीने नही, ववहार नयेण–महाव्रत समिति गुप्ती प्रतिलेपणा स्वाध्याय विहारादिक साधुना जे व्यवहार तेणे करीने समयसुद्धिए–सिद्धांतनी शुद्धिए करीने कालखित्तणुमाणेण–संजम खप करता काल क्षेत्रने अनुमाने करीने उपलक्षणथी द्रव्य नावने पण अनुमाने करीने घणां गाम नगरादिकनेविषे खोलता खोलता कालने उचित जिनपतिसूरिगुरु मे परक्खिउ–परिख्या छे , अ–च एटलो वली माणिउ–मान्य कर्युं छे अने सारी रीते जाणी लीधुं छे॥१३४॥ मूल –तहवि हु नियजडयाए, कम्म गुरु त्तस्स नेव वीससिमो ॥ धन्नाणकयन्नाण, सुद्ध गुरु मिलइ पुन्नेण ॥१३५ ॥ दोहा –तो पण निज जमता करी, न गुरु कर्म विश्वास॥पुण्ये धन्य कृतार्थीने, मिले सुगुरु गुणरास॥१३५॥ व्याख्या – जो पण एम छे तहवि–तोपण हु–निश्चय हुंमा अवसर्प्पिणी कालादिकने जोगे

तादृशविशिष्ट बुद्धि नथी माटे नियजमयाए—पोतासंबंधी जडपणानो वली कम्मगु रुत्तस्स—प्रथम सुगुरु जोग न थवानी अपेक्षाए करीने कर्मना नारीपणानो नेव—न थीज वीससिमो—अमे विश्वास करता; केमके, पुन्नेण—तादृश विशिष्ट पुन्येकरीने धन्नाण—धन्य पुन्यवंत प्राणीउने कयत्थाणं—जेणे अर्थ सिद्ध कर्यो छे एटले जेणे बोध बीजरूप अर्थ नीपजाव्यो छे तेने सुद्ध गुरु—बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्मल गुरु मिलइ—मले छे. ॥ १३५ ॥

अवतरणः— वली कोई शिष्यादिक अथवा वादी वितर्क करे छे के एमां तमा रे शुं प्राप्ति थई? तेविषे कहेछेः— मूलः— अहयं पुणो अधन्नो, ता जइ पत्तो अ ह न पत्तो अ ॥ तहवि हु सो मह सरणं, संपइ जो जुग पहाण गुरू ॥ १३६ ॥ दोहाः— वलिहुं अपुन्य तदा जदी, लाधो नवि लाधोय॥ तेपिण ते मुज सरण अब, जुग प्रधान गुरु जोय ॥ १३६ ॥ व्याख्याः— पुणो—वली अहयं अधन्नो—हुं अपु न्य छुं एटले तादृश वसिष्ट पुन्येकरी रहित छुं ता—ते कारण माटे जइ—जो पत्तो—पूर्वोक्त गुरु में पाम्यो,अह—अथवा न पत्तोअ—न पाम्यो; तहवि—तोपण हु—निश्चे संप इ—संप्रति एटले वर्त्तमानकालनेविषे जो—जे जुगपहाणगुरु—जुगप्रधान गुरु छे,संविज्ञ गीतार्थ आचार्य छे, उपलक्षणथी तेमनी निश्राए जे उपाध्याय अथवा साधु छे सो—ते मह—अमारे सरणं—शरण आधारछे आत्मगुणवृद्धिने अर्थे विश्रामनुं गम छे. १३६

अवतरणः— कोई आशंका करे के, एवी सुगुरुनी प्राप्ति थवाथी पण शुं थयुं? एवो संशय दूर करवाने कहेछेः— मूलः— जिणधम्मं दुन्नेयं, अइसय नाणीहिं न ज्जाए सम्मं ॥ तहवि हु समय ठिईए, ववहार नएण नायव्वं ॥ १३७ ॥ दोहाः— सम्यक् जाणे केवली, जैनधर्म दुर्ज्ञेय ॥ तदपि जाणणा योग्य है, श्रुत व्यवहारे तेय ॥ १३७ ॥ व्याख्याः— जिणधम्मं—श्रुत चारित्र लक्षण जिनभाषित धर्म छे ते, दु न्नेयं—दुःखे जाणवा योग्य छे केमके, उत्सर्ग अपवाद निश्चय व्यवहारादिक अनेक डागमे नयोए करीने कहेलो छे माटे जिनधर्म दुःखे जाणवा योग्य छे; अइसय नाणीहिं—अवधिज्ञानी चौदपूर्वधर तथा दशपूर्वधरादि अतिशय ज्ञानीओने सम्मं—सम्यक् प्रकारे जिनभाषित धर्म नज्जाए—जाणीए छैए पण अनिपुण बुद्धिने गम्य नथी, माटे जिनधर्म दुःखे जाणवा योग्य कह्यो; एम निश्चयनये करीने छे तहवि—तोपण हु—निश्चय समयठिईए—सिद्धांतनी स्थिति मर्यादाए करीने ववहार नएण—सिद्धांतोक्त साधु श्रावक सम्यक् दृष्टिना व्यवहारे एटले व्यवहार नयेकरीने जिनभा षित धर्म नायव्वं—जाणवा योग्यछे, विधिपूर्वक यथाशक्तिए आराधवा योग्य छे. १३७

अवतरण – कोई आशंका करे के, एम कहेलुं छे ते केम मानवुं? तेने कहे छे.– मूलः– जम्हा जेणहि नणियं, सुय ववहार विसोहियं तस्स ॥ जायइ विसु ६ बोही, जिण आणाराहगत्ताओ ॥ १३७ ॥ दोहा – शोधित श्रुत व्यवहारनें, निर्मल समकित थाय ॥ जिण आणा राधन थकी, जे कारन जिनगाय ॥१३७ ॥ व्याख्या – जम्हा--जे कारणमाटे जिणेहिं–जिन तीर्थंकरोए नणियं--कह्यु छे।सुय ववहार--श्रुत व्यवहारे करीने एटले सूत्र निर्युक्ति वृत्ति नाष्य चूर्णि ए पांचने श्रुत कहिये, ते श्रुतना व्यवहारे करीने विसोहिय तस्स–चारित्रनी विशुद्धी करनार जे पुरुष, तेने विशुद्ध बोही–विशुद्धबोधी एटले अति निर्मल सम्यक्त्व जायइ– थाय श्याथी? जिण आणा राह गत्ताओ–श्रुतव्यवहारे करीने चारित्रनी विशुद्धि करवा रूप जिन आज्ञानुं आराधकपणु थवाथी ॥ १३७ ॥

अवतरण – कोई आशंका करे के, तमे कह्यु जे सिद्धांतनी स्थितिए करीने अने व्यवहार नये करीने जिनधर्म जाणवा योग्य छे, एवी रीते कहेवाथी जिन धर्म देखाडवावाला गुरु पण सिद्ध थाय छे, तेम छता तेनेविषे शी शंका छे? तेनो उत्तर कहेछे – मूल – जे जे दीसंति गुरु, समय परिरकाइ ते न पुर्जति ॥ पुणमेगं सद्दहण, डुप्पसहंत जउ चरण ॥ १३९ ॥ दोहा – जे जे गुरु अब देखिये, ते न मिले श्रुत न्याय ॥ पिण श्रद्धा इक छे चरण, डुपसह अंत गवाय ॥१३९ व्याख्या – सांप्रतकाले जेजेगुरु– जे जे गुरु धर्माचार्य उपाध्याय साधु दीसंति–देखाय छे; समय परिरकाइ–सिद्धांतनी परिक्षाए करीने एटले सिद्धांत कथित व्यवहार नयनी विचारणाए करीने जे धर्माचार्य गुरु छे ते नपुर्जति–ते नथी पूराता एटले नथी मिलता परिक्षाने नथी सहन करी शकता; शाथी? सिद्धात कथित अनुष्टानने यथार्थपणे न करवाथी अहीं कोई शका करे के, एम तो चारित्रनी नास्ति थई? त्यारे ग्रथकर्त्ता कहेछे के, पुणमेग सद्दहण–वली अमारे एक जिनवचननु श्रद्धान छे जउ जे कारणमाटे सिद्धांतमा कह्यु छे. डुप्पसहंत–डुप्रसहआचार्य साधु अतसुधी एटले डुप्रसह आचार्यसुधी चरणं–चारित्र वर्त्तशे. ए अमारे एक श्रद्धानछे माटे अमे चारित्र मानिये छैए चारित्रनो निषेध करता नथी, पण श्रुत व्यवहारे करीने प्रवर्त्ततो देखीए तो कहिये के, कुगुरुने सुगुरु केम कहेवाय १३९

अवतरण – जे श्रद्धान छे ते शु करवायोग्य छे ते कहेछे – मूल – ता एगो जुग पवरो, मज्ञछमणेहिं समयदिठीए ॥ सम्म परिरिकयव्वो, मुत्तूण पवाह हलबोल ॥ १४० ॥ दोहा – तो मध्यस्थ मनेथि इक, युग प्रधान श्रुत न्याय ॥ रूडी

ोते परिखवो, तजि प्रवाह हलवाय ॥ १४० ॥ व्याख्याः— ता— ते कारणमाटे वाह हलबोलं— लोकप्रवाह संबंधी जे हलबोल विचार रहित जे कलकल तेने, त्तूण— मूकीने वली समयदिठीए— श्री आचारांग निसीथ व्यवहारादिक सिद्धां नी दृष्टिए करीने मज्झत्थमणेहिं— मध्यस्थ राग द्वेष कदाग्रह रहित जेओनां मन ते पुरुषोए एगो जुगपवरो— एक जुगप्रवर एटले सम्यक् ज्ञान क्रियाएकरी सहित क जुग प्रधान आचार्य होय ते सम्मं—सम्यक् प्रकारे परिरिकयवो—परखवो निश्चय रवो ; पण आचार्यादिकना आचारे करि रहितने आचार्यादिक मानवुं नही. १४०

अवतरणः— कोई आशंका करे के, प्रवाह हलबोलने मूकीने एम कह्युं, पण लोक प्रवाहनो हलबोल जो पोते निपुण होइयें तो शुं करे? एवुं निवारण कर तां कहेछेः— मूलः— संपइ दसमछेरय, नामायरिएहिं जणिय जणमोहे ॥ सुद्ध ध म्मओ निउणवि, चलंति बहु जण पवाहाओ ॥ १४१ ॥ दोहाः— अब दशम अरज नामगणि, जनित नीच जन कर्म ॥ लोक प्रवाहे निपुण पण, पडिआ त जि शुभ धर्म ॥ १४१ ॥ व्यख्याः— संपइ—सांप्रत एटले वर्त्तमान दुषमा कालने विषे दसमछेरय— आरंभ परिग्रहमां आसक्त सदा ब्रह्मचारी असंयत थका संय त कहेवरावता तेओने जे पूजवुं तथा वंदन नमस्कारादिक करवुं, ते असंयत पूजा नामे दशमो आश्चर्यछे ; वली नामायरिएहिं—नाम मात्र आचार्य केवल लिं गोपजीवि द्रव्यथकी ने भावथकी साधुनी क्रियाए करीने रहित दशमो आश्चर्य ने नामाचार्य ए बन्ने जणिय—जाएयुं छे अथवा उपजाव्युं छे; जण—नीच पामर लोकोने उचित मोहे—मोह एटले अति राग तेने, एवा जे निउणवि—निपुण पण एटले धर्म कर्मनेविषे चतुर पण सुद्धधम्माउ—शुभ शिव कल्याणकारी जिन भाषित जे धर्म तेथकी चलंति—चलेछे ; भ्रष्ट थायछे ; तो बीजा अनिपुण पुरुषोनी शी वा र्त्ता! केमके, निपुण पुरुष पण धर्मथकी चलेछे, बहु जण पवाहाउ—घणा लोको नो जे प्रवाह गतानुगतिक एटले विवेकरहित बोलवुं चालवुं प्रवर्त्तवुं, तेणे क रीने ते निपुण पुरुष पण जिन धर्मथकी चलेछे पडेछे माटे लोक प्रवाहने मूकी ने छेटे रहेवुं, भ्रष्टाचार नामाचार्यनो पण परिचय न करवो जो जिनधर्मे विधिमा र्गनो अभिलाष राख्यो होय तो. ए भाव ॥ १४१ ॥

अवतरणः— एवी रीते जेओ लोक प्रवाहमां पडेला छे तेओनुं दुष्टपणुं देखा ड्युं, हवे जे जिनधर्मथी पडेलानुं आलंबन लिएछे तेनो दोष, अने जे नथी लेतां तेनो गुण बोलता छता कहेछेः— मूलः— जाणिज्ज मिछदिठो, जे पडणा लंबणा

ऽ गिल्हंति ॥ जे पुण सम्मद्दिठ्ठी, तेसि मणो चडण पयडीए ॥ १४२ ॥ दोहा – पडना लंबन आचरे, मिथ्यादृष्टि तेय ॥ जे समदृष्टि तेहनो, मनचडते पगथेय ॥ ॥ १४२ ॥ व्याख्या – जे–जे पुरुष पडणालवणाई–पडेला एटले जिनभाषित शुद्ध विधिमार्ग थकी भ्रष्ट थएला पासत्थादिकनी तथा तेउना श्रावक लोकोनी कुप्रवृत्तिनुं बहुमानरूप जे आलंबन तेने गिल्हंति–ग्रहण करेछे एटले एनीपासे भगवतनो वेष छे, जिनागम भणेछे भणावेछे, तथा समजावेछे माटे एने चैत्य वासादि करवाथी शु बगडेछे? इत्यादिक पडेला पुरुषोनी कुप्रवृत्तिनुं बहुमानरूप जे आलंबन तेने जे पुरुष ग्रहण करेछे, तेने मिछद्दिठी–मिथ्यादृष्टि जाणिव्व–अ हो भव्य, तमे जाणो पुण–वली जे–जे पुरुष सम्मद्दिठी–सम्यकदृष्टि छे, तेसिम णो–तेनुं मन चडणपयडीए–चडती पगथीए वर्त्ते एटले चडते चडते गुणस्थान मार्गे वर्त्ते, पण पापस्थाने वर्त्ते नही, कह्यु छे के जेणे अमृत चाख्युं होय, तेने बाकस बुकसनी रुचि केम थाय? अपितु नहीज थाय तेम जे सम्यक्त्व रसनो ज्ञाता पुरुष होय ते घणा कालथी सेवेलु मिथ्यात्वादि पापरूप कुभोजन तेने निंदे अने त्याग करे, पूर्व कर्मना योगथी जो काई पापरूप कुभोजन सेवेछे तो पण भावथी ते सम्यक्त्वरूप अमृत भोजननेज वाछे छे। अथवा करेछे, केमके, तेणे सम्यक्त्व अमृत प्रथम आस्वादेलुंज छे, माटे पाप कुभोजनने केम वाछे? अपि तु नहीज वांछे रूडा आलबन आदरे, पण खोटा आलंबन आदरे नही एवु सम्यक्त्ववानलुं लक्षण होय छे ए भाव ॥ १४२ ॥

अवतरण – हवे पडेला पासत्थादिक लोकोनुं बाहुल्यपणु जोईने सुमार्गे तत्पर पुरुषोनो समागम अति दुर्लभ छे, एम देखाडता छता कहे छे – मूल – सव्वपि जए सुलहं, सुवन्न रयणाइ वत्थु विछार ॥ निच्चंचिय मेलाव, सुमग्ग निरयाण ज ऽ दुलहं ॥ १४३ ॥ दोहा – सुलभ सकल पि कनकमणि, आदि वस्तु विस्तार मार्ग निपुणनो सग जग, अति दुर्लभ अवधार ॥ १४३ ॥ व्याख्या – जए–जग तनेविषे सुवन्न रयणाइ वत्थुविछार–सुवर्ण रत्नादिक वस्तुनो विस्तार सव्वपि सुलहं अनत वार पामवा माटे ते सर्व सुलभ छे, पण सुमग्ग निरयाण–सुमार्गेनिरता पुरुषोनो एटले जिनभाषित विधिमार्गनेविषे जे तत्पर ते पुरुषोनो निच्चचिय–नि त्यमेव एटले निरतरज मेलाव– मिलाप एटले समागम ते अऽदुलहं– अति दुर्लभ छे, केमके, ते सद्धर्म प्राप्तिनुं कारण छे माटे ॥ १४३ ॥

अवतरण – हवे मार्गतत्पर पुरुषोनो समागम छता पण जेने अभिमान उ

ते छे तेनुं स्वरूप कहे छेः— मूलः— अहिमाणविसोपसमछ यं च थुव्वंति देव गुरुणो य ॥ तेहिं पि जओ माणो, हीही तं पुव्व दुच्चरिअं ॥ १४४ ॥ दोहाः— मानविशोप समाववा, शुद्ध देव गुरु धर्म ॥ ते सेवे पण मद थयो. हा ते पूर्व कुकर्म ॥ १४४ ॥ व्याख्याः— देवगुरुणोय— अष्टार दोष रहित. द्वादश गुण सहित जे अरिहंत देव तेनी; तथा सत्ताविंश गुणालंकृत गुरु सुसाधु तेनी; थुव्वंति— स्तवनातथा उत्कीर्त्तना करवी, उपलक्षणथी अभ्युष्ठान भक्ति बहुमान वंदन नमस्कारादिक करवां ते अहमाण विसोपसोपछ यं च— जात्यादि अभिमानरूप विषने उपशमाववाने अर्थे छे. च शब्द थकी मिथ्यात्वादि दोष उपशमाववाने अर्थे छे. केम के, सुदेव सुगुरुनी स्तुति करवाथी अभिनिवेश कदाग्रह अज्ञान अभिमान टले अने शुद्ध सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय. एम आगममां कह्युं छे. तेहिंपि— ते देव गुरुयें करीने जओ— जो माणो— मान अभिमान देव गुरुविषे थयो. केम थयो ते कहे छेः— आ चैत्य मारा पूर्वजोना छे. एने मूकीने बीजा चैत्यमां उत्सवादिक करवाने केम जवाय? इत्यादिक देवविषे अभिमान; वली ए गुरु मारे अंगीकार करेलो छे, ए गीतार्थ क्रियावंत गुणवंत छे. तेविना बीजा गुरुओ भले गुणवान होय तो पण तेनी उपर राग धरे नही. उलटुं मछर भाव आणे. इत्यादि गुरु विषे अभिमान थयो; ही ही—ए मोटी खेदनी वात छे. तंपुव्वदुच्चरियं—तेपूर्वभवनुं दुष्कर्म चरित छे. एटले ते पोतानो दोष छे. एमां बीजा कोईनो दोष नथी ॥ १४४ ॥

अवतरणः— जेने खोटा अभिमानरूप धन छे; ते सदैव असद्भुत पदार्थ ने माने छे; तेने उपालंभ सहित प्रगट दोष जणावीने निर्भत्स्ना करता छता कहे छेः— मूलः— जो जिणआयरणाए, लोओ न मिलेइ तस्स आयारे ॥ हा हा मूढ करिंतो, अप्पं कह भणसि जिण पणयं ॥ १४५ ॥ दोहाः— जिन आचरण थकी जुदो, जे जण तसु आचार ॥ रे सठ करतो किम कहै, हुं जिन भगत उदार ॥ १४५ व्याख्याः— लोलोओ— जे पासछादिक लोक छे ते जिण आयरणाए— जिन भाषित आचरणानी साथे नमिलेइ— नथी मलता, तस्स— ते पासछादिकनो जे आयारे— निजमति कल्पित जे आचार छे तेने करिंतो— अंगीकार करतो छतो हा हा— मोटी खेदनी वात छे. मूढ— हे मूर्ख, अप्पं— पोताने जिणपणयं— जिनने विषे सुगुरुने विषे नमस्कार करवावालो, स्नेह करवावालो कह— केम भणसि— तुं कहे छे, जो जिनभाषित आचरणाने आचरतो होय तो तारुं कह्युं संभवे; माटे फुग बोलीने शासारु— फोकट आत्माने विटंबना करेछे. ॥ १४५ ॥

अवतरण – अहो कोई वितर्क करे के, जिन आचरणा मूकीने कोई पासत्था दिकनी कहेली आचरणा अंगीकार करता हशे, तेनो उत्तर कहेछे – मूल – ज चिअ लोओ मन्नइ, तंचिअमन्नंति सयल लोआवि ॥ ज मन्नइ जिणनाहो, तंचि अ मन्नंति किवि विरला ॥ १४६ ॥ दोहा – जाकू मानै लोक तस, मानै लोक अनेक ॥ माने जास जिनेंद्र तसु, माने कोइक छेक ॥ १४६ ॥ व्याख्या – लोओ– पासत्थादिक लोक जचिय- जेआचरणाने मन्नई- मानेछे सयल लोआवि–तादृशवि वेक विकल सकल लोक पण तचिअ–ते पासत्थादिकनी भापेली आचरणाने म न्नंति–मानेछे, जेम लींबडानो कीडो लींबडाने सारु मानेछे, तेम,वली जिणनाहो–जि ननाथ ज–जे आचरणानेमन्नइ–मानेछे, सम्यक् जाणेछे,तेम किवि विरला–केटलाए क विरला हलुकर्मी जीव तचिअ–ते जिनभाषित आचरणनेज मन्नंति–मानेछे, यथाशक्तिये पाले, आराधे छे, जिनधर्म पालवु ते नदीना पूरनी सामे जवा बरा बर छे माटे कोईक हलु कर्मी जीव जिनभाषित धर्म आचरणने मानेछे किंब हुणा एटले घणु कह्याथी शु ! ॥ १४६ ॥

अवतरण – अहो कोई वितर्क करे के, लोको प्रायेकरी लोकोनुंज कहेलुं मानेछे, जिनराजनु कहेलुं मानता नथी, एवो तेओनो स्वभावज छे, ते भले पण जिनराजनुं कहेलु न मान्या छता अने लोकोनुं कहेलुं मान्या छता जे दोष थायछे ते कहे छे – मूल – साहमि आउ अहिओ, बधसुआईसु जाण अणुराओ ॥ तेसि नहु सम्मत्त , विन्नेयं समयनीईये ॥ १४७ ॥ दोहा – साधर्मीथी अधिक जस, परि जन ऊपर प्रेम ॥ तास न समकित मानिये, आगम नीती एम ॥ १४७ ॥ व्या ख्या –जाण–जेने साहम्मिआउ–सम्यक्त्वादि गुणे करीने जे सरखा ते साधर्मी,कहि यें तेथीपण बधसुआइसु–बाधव पुत्रादिकनेविषे आदि शब्दथी माता पिताभार्यादिक नेविषे अहिओ–अधिक अणुराओ–अणुराग स्नेह वर्त्ते छे तो तेसि–तेने नहु–नही ज सम्मत्त–सम्यक्त्व,होय ए वात समयनीईये–सिद्धातनीतिएकरीने विन्नेय–विशेषप णे जाणवा योग्य छे साधर्मीनी साथे कोई प्रकारनो कलह अथवा क्लेश करवो नही वली साधर्मी सीदातो होय तो तेने सहाय करवु, केमके, शास्त्रमां कह्यु छे के, ससारमा साधर्मीना जेवु बीजु कोई सगपण नथी साधर्मीनी सेवा भक्ति वात्सल्यताए करीने सम्यक्त्व विशेष निर्मल थाय माटे बंधु सुतादिक सर्व स्वज ननो अनुराग ते करमबधनुं कारण ए दोष जाणी साधर्मीनेविषे अधिकतर धर्मा नुराग निरंतर राखवो एजश्रेय गुण छे ॥ १४७ ॥

अवतरणः– एवी रीते लोकाचारने माननारनो दोष प्रगट करीने हवे ते लोकाचार संबंधी निषेधनो उपदेश कहेछेः– मूलः– जइ जाणिसि जिण नाहो, लोयायारा विपरकए नूओ ॥ ता तं तं मन्नंतो, कह मन्नसि लोअ आयारं ॥१४७॥ दोहाः– जिनपति लोकाचारथी, जो तुं जाणे निन्न ॥ तो किम लोकाचारने, तुं माने प्रजु मन्न ॥ १४७ ॥ व्याख्याः– जइ–जो जाणिसि–तुं जाणेछे; जिणनाहो–जिननाथ एटले जिनवरेंड् छे ते लोआयारा–दर्शनज्रष्ट पासछादिक तथा चतुर्दर्शनी ब्राह्मण परिव्राजक त्रिदंडी तापसादिक जे लोक, तेओना आचारथकी विपरकए नूओ–विपक्षजूत छे, एटले न्यारो छे अथवा ते लोकोना आचारोनो जिननाथ विपक्ष जूत छे एटले शत्रुरूप छे. एम जो हे जड, तुं जाणेछे, ता–तो तं–तुं तं–ते जिननाथने मन्नंतो–मानतो अथवा जाणतो छतो लोअआयारं–लोकना आचारने कह–केम मन्नसि–तुं मानेछे. ॥ १४७ ॥

अवतरणः– तुं लोकाचारने केम मानेछे? एम कह्युं तेनेज फरी दृढ करेछे; तथा जिनेंड्ने मान्या थका पण जे मुग्ध लोको छे ते बीजा देवोने मानेछे ते देखाडता छता कहेछेः–मूलः– जे मन्नेवि जिणिंदं, पुणोवि पणमंति इअर देवाणं॥ मिछत्त सन्निवायग, गछाणं ताण कोविज्जो ॥ १४ए ॥ दोहाः– जिनवरने प्रणमी वली, जे प्रणमे अन देव ॥ सन्निपात मिथ्यात हत, तस कुण वैद इहेव ॥१४ए॥व्याख्याः– जे–जे मुग्ध तत्वना अजाण छे, ते जिणिंदं–जिनेंड् देवने पण मन्नेवि मानेछे अने पुणोवि–वली पण इयरदेवाणं–इतर जे जिनेंड् देवथी बीजा हरि हर ब्रह्मादिक रागी द्वेषी मिथ्यादृष्टि देव छे तेने पणमंति–प्रणमे छे एटले पूजे छे; ताण–ते मिछत्तसन्निवायगछाणं--मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगे करि ग्रस्त थएला गलायला अथवा व्याप्त थएलानो कोविज्जो–वैद्य कोण थाय! अपितु तेनो कोई वैद्यज नथी. केमके, जेने अमृत समान जिन धर्म पुरिस विषसमान मिथ्या धर्म जेवो थयो तेनो हितोपदेशक गुरु वैद्यराज शुं उपाय करे! ॥ १४ए ॥

अवतरणः– हवे मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगेकरी ग्रस्त थएला शुं करेछे ते कहेछेः-- मूलः– एगो अ गुरू एगो वि सावगो चेइआणि विवहाणि; ॥ तछय जं जिणदवं, परुप्परं तं न विछंति ॥ १५० ॥ दोहाः– गुरू एक वलि श्राद्ध इक, चैत्य विविध चित्रेव ॥ तामें जो जिनड्व्य ते, दिए परस्पर नेव ॥१५०॥ व्याख्याः–एगोअगुरू–एकज गुरू केमके लिंग आचार एक माटे एक गुरू, एगोवि सावगो–एक पण श्रावक कारणके सर्वना देवगुरु धर्म एक माटे श्रावक पण एक चेइआणि

विवहाणि— चैत्य देहरासर अथवा जिनप्रतिमा ते विविध अनेक छे, तथापि जिनेंड् देव सर्वे सरखा माटे चैत्य पण एकज; ए त्रणे एक एक थए थके पण तद्रय— त्या एटले ते श्रावकोनी पाशे ज— जे जिणदवं— जिन ड्व्य छे, उपलक्षणथी ज्ञान ड्व्य साधारण ड्व्य छे तं--ते ड्व्य परुप्पर—परस्पर एटले माहो माहे चैत्य ज्ञानादिक कार्य पडेछते न विक्कंति— नथी वेचता एटले नथी आपता, ते लोनी सुखना लालची गुरु निर्मल उपदेश तेने देता नथी, पण उलटु जेथी अहंकार ममकार पणु वधे तेवो उपदेश करे छे ए नाव छे ॥ १५० ॥

अवतरण — एम करता छता ते गुरु आदिक छे के नथी? ते विषे कहे छे — मूल — ते न गुरू नो सड्ढा, न पूइओ तेहि होइ जिणनाहो ॥ मूढाण मोह ठिई, सा नज्जइ समय निउणेहि॥१५१॥ दोहा — ते गुरु नहि श्रावक नही, नहि प्रभु पूजक तेय ॥ मोह थिती मूढोतणी, जाणी श्रुत निपुणेय ॥१५१॥ व्याख्या.— ते— ते नगुरु—तेगुरु नथी केम के, सुख दाक्षिणताएं करीने जिनोक्त निर्मल उपदेश नथी देता माटे तथा नो सड्ढा—ते श्रावकपण नथी, केम के, चैत्यादि ड्व्य चैत्यादि कार्य परुयाथी ममताने लीधे नथी वेची आपता माटे ते श्रावकपण नहो कहेवाय वली तेहि—तेणे जिणनाहो—जिननाथ पण नपूइओ होई—पूज्यो नथी एम छे केमके जे ममकारादिक क्लिष्टचित्तवाला यद्यपि पूजादिक करे तथापि तेने पूजादिक करवावाला न कहिये माटे शिष्य कहेछे तो तेने शु कहिये? गुरु कहेछे मूढाण—मूर्खोनी मोहठिई—मोहस्थिति कहिये सा—तेवात समय निउणेहि—सिद्धातमां जे निपुण पुरुषछे तेने नज्जइ—जणाय छे पण बीजा जाणता नथी ॥ १५१ ॥

अवतरण — पूर्वे गाथामा कह्यु नथी ते गुरु तेजवात प्रगट करता छता कहे छे —मूल.—सो न गुरू जुग पवरो, जस्स वयणंमि वट्टए नेओ ॥ चिय नवण सड्ढगाण, साहारण दवमाईण ॥ १५२ ॥ दोहा —चैत्य नुवन वलि श्राद्धजन, साधारण ड्व्यादि ॥ तास नेद जसु वचनमें, तेगुरु छे जगदादि ॥ १५२ ॥ व्याख्या — जस्स—जेगुरुना वयणंमि—वचने करीने एटले कुटिल उपदेशे करीने तथा पोतासबंधी चैत्यादि करावबु ते तमने प्रधान छे, एम साक्षात् उपदेश दीधाथी चियनवण—चैत्यनवनोने विषे एटले जिन प्रासादोने विषेतथा सड्ढगाण—श्रावकोने विषे वली साहारणदव्व माईण—साधारण ड्व्यादिकने विषे आदि शब्दथी ज्ञान ड्व्यने विषे नेओ—नेद वट्टए—वर्त्ते छे, एटले अहंकार ममकारनी बुद्धिएकरीने पोता सबधी चैत्य तथा श्रावकादिक थापीने माहोमाहे जे जगडा करावे छे, नेद

पाडे छे ते जुग पवरो जुग प्रधान गुरु–आचार्य न–नथी केम के, प्रथम जे विशेषण कह्युं ते कुगुरुनुं छे माटे ते जुगप्रधान गुरु न जाणवो ॥ १५२ ॥

अवतरणः–अहीं कोई वितर्क करे के, जेनां वचन थकी चैत्य भवनादिकोनो भेद वर्ते छे, ते जुग प्रवर गुरु न होय; एम जे कह्युं, ते तो तीर्थंकरादिकवर्त्ते ते कालनेविषे युक्त छे; पण हमणा तो भेद विना कोई पण मर्यादा नहोय ! ए आशंका दूर करवाने सांप्रतहमणा पण सिद्धांत कथित विधिनेविषे जे पुरुष नथी प्रवर्तता तेओना दोष देखाडता छता कहे छेः– मूलः– संपइ पहुवयणेणवि, जाव न उल्लसइ विहि विवेयत्तं ॥ ता निविड मोह मिछ त्त गंठिया दुठ माहप्पं ॥ १५३ ॥ दोहाः–प्रगटे न विधि विवेक अब, प्रभु वचने पण जाव ॥ ताव निवड मिथ्यात्वनी, गंठितणो अनुभाव ॥ १५३ ॥ व्याख्याः–संपइ–संप्रति एटले वर्त्तमान कालनेविषे पण पहु वयणेणवि–प्रभु भाषित जे वचन आगम ते सांभल्याथी जाव–ज्यां सुधी विहिविवेयत्तं–जिन द्रव्यादिकनुं जिनागम उक्त प्रकारे वधारवुं, खरचवुं, रक्षण करवुं, तथा द्रव्ये भावे पवित्र थईने आशातना टाली, अभिगम साचवी, जिनपूजा करवी, सुगुरु भक्ति करवी, तथा दोष रहित सामायक प्रतिक्रमण पोषध उपवास करवां, तथा निरतिचार सम्यक्त्व सहित सर्व व्रत पालवां, इत्यादिक विधिविवेक पणुं जेने न उल्लसइ–नथी उल्लासने पामतो, ता–ते कारण माटे ए निविडमोहमिछत्तगंठिया दुठ माहप्पं–निविड एटले अतिदृढ मोह मिथ्यात्वनी गांठनुं कोई दुष्ट माहात्म्य छे; एटले प्रभाव छे; एम जाणवुं. केमके छती समर्थाईयें सिद्धांतोक्त विधिनेविषे न प्रवर्त्तवुं ते प्रभुना वचननी आशातना छे. ॥ १५३ ॥

अवतरणः– ते कारण माटे हवे प्रभुवचननी आशातनानुं दुष्टपणुं कथन करतां छतां कहेछेः– मूलः– बंधण मरण भयाइं, दुहाइं तिरकाइं नेअ दुःरकाइं ॥ दुरकाण दुह निहाणं, पहुवयणा सायणा करणं ॥ १५४ ॥ दोहाः– बंधन मरण भयादि दुख, नहि तीक्ष्ण दुख जाण ॥ जे अविनय प्रभु वचननो, ते दुख दोष निधान ॥ १५४ ॥ व्याख्याः– बंधन–दोरडादिके करी बांधवुं, मरण–आयु अथवा प्राणनो नाश, भयाइ–इह लोकादिक सात भय इत्यादिक जे दुरकाइं–दुःख छे ते, तिरकाइं–तीक्ष्ण एटले आकरा दुरकाइं–दुःख नेअ–नथीज थोडाकाल रहेछे पण पहुवयणा सायणाकरणं–प्रभुनां वचननी आसातनानुं जे करवुं, ते दुःरकाण–जन्ममरणादिक दुःखनुं दुहनिहाणं–दुःख निधान छे; एना जेवुं बीजुं कोई संसारमां दुःख नथी ए भाव ॥ १५४ ॥

अवतरण – एवी रीते आशातनाना करनार संबंधी अनंत दुःख कह्या, हवे वर्त्त मानकालादि दोष थकी यथोक्त विधि करवाने असमर्थ एवो जे पोतानो आत्मा तेने निंदता छता कहे छे – मूल – पहुवयण विहिरहस्स, णाऊण जाव दीसए अप्पा ॥ ता कह सुसावगत्त, ज चिन्नं धीर पुरिसेहि ॥ १५६ ॥ दोहा –वीर वच न विधि सार लखि, जब निज आतम जोय ॥ तो कहँते गृहि धर्म जे, गृह्यो धीर पुरुषोय ॥ १५५ ॥ व्याख्या – पहुवयण विहि रहस्सं–प्रभुना वचन सिद्धांत नो जे विधिनो सार तेने नाऊण–जाणीने जाव–यावत् एटले ज्यांसुधी अमे अप्पा– पोतानो आत्मा दीसए–देखीए छैए ता–त्यारे एम विचार थाय छे के, मारेविषे कह–क्याथी सुसावगत्तं--सुश्रावकपणुं धीरपुरिसेहि--कामदेव अरणक श्रावकादिक धीर पुरुषोए ज चिन्नं–जे आचर्युं ते ॥ १५५ ॥

अवतरण – कोई वितर्क करेछे के, जो धीर पुरुषोए अंगीकार करेलुं श्रावक पणुं नथी तो शा कारणथी देवपूजादि अनुष्टानविधिनेविषे पोताना आत्मा ए प्रकारे पर्यासीए छैए एटले जोडिये छैए? ए आशकाए करीने कहेछे – मूल – जइवि हु उत्तम सावय, पयडीए चडण करण असमत्थो ॥ तहवि पहुवयण कर णे, मणोरहो मज्झ हिययम्मि ॥ १५६ ॥ दोहा – यदपि सुश्रावक सेढिए, चढण कढण असमर्थ ॥ तदपि मनोरथ मुझहियै कबहू करूं तदर्थ ॥१५६॥ व्याख्याः– जइवि–जोपण हु–निश्चे, उत्तम सावयपयडीए–पूर्वोक्त उत्तम श्रावकोनी पगथीए एटले श्रेणिए चडण करण असमत्थो–चडण करवाने एटले आरोहण करवाने अ समर्थ एवो हु हुं तहवि–तथापि एटले तोपण पहुवयण करणे–प्रभुनापित वच न अंगीकार करवानेविषे एटले श्रीवीतराग कथित जे विधिनुं करवु तेनेविषे म णोरहो–मनोरथ मज्झहियम्मि–मारा हृदयमा वर्त्तेछे, एटले जोपण उत्तम श्राव कोनी पदवीने आरोहण करवाने हुं असमर्थ छुं तो पण प्रभुवचन अगीकार क रवानो मनोरथ मारा हृदयमां वर्त्तेछे, अने पोतानी यथाशक्तिप्रमाणे आराधु छु, तेमाटे सम्यक्त्व प्राप्ति योग्य कोईएक श्रावकना भेदमा हु निश्चयतो श्रीवीत राग देव जाणे ॥ १५६ ॥

अवतरण – हवे वली ते जिनवचन अगीकार करवाना मनोरथनी वांछा कर ता छता कहेछे, जे कारण माटे प्रभुना वचन अगीकार करवानो अमारा मनमां मनोरथ छे – मूल – ता पहु पणमिअ चलणे, इक्कंपछेमि परम नावेण ॥ तुह व यण रयण गहणे, अइ लोहोमज्झ हुज्ज सया ॥ १५७ ॥ दोहा – तो सुन नावे

प्रभुनमत, चरणे जाचू एक ॥ होय सदा मुज तुम वचन, रतन लोभ अतिरेक. ॥ १५३ ॥ व्याख्याः– ता–ते कारण माटेज पहु–हे प्रभो, श्रीवीतरागदेव, चरणे–तमारा चरण जुगलने पणमिअ–प्रणाम करीने परम भावेण परम उत्कृष्ट भावथी इक्क–एक वस्तु पत्थेमि–हुं प्रार्थुं छुं एटले मांगु छुं, ते एक वस्तु तुह्यवयण रयण गहणे–तमारा वचनरूप दुःख दारिद्र दौर्भाग्यादिक दूर करवाथी रत्नीप णेरत्न, तेनुं ग्रहण करवानेविषे अइलोहो–अतिलोभ एटले अति ग्रध्पणुं मज्झ–अमारे हुज्ज–होय सया–सदा. ॥ १५३ ॥

अवतरणः– कोई वितर्क करे के, एवीरीते शासारु इच्छा करवी पडे? पोतानी मेलेज जिन वचनरूप रत्ननुं ग्रहण करवानेविषे लोभ थशे. ? ए आशंका करीने कहेछेः– मूलः– इह मिच्छवास निक्किठ भावउगलिअ गुरुवि वेआणं ॥ अम्हाण कह सुहाइं, संभाविज्जंति सुमिणेवि ॥ १५८ ॥ दोहाः– मिथ्यावास सुमलिन मन, गत विवेक हममांहि ॥ कहांथि सुख संभाविए, स्वपनविषे पण नाहि॥ १५८ व्याख्याः– इह–ए पांचमां दूषम कालनेविषे मिच्छवास–मिथ्यात्वनी वासनाए अध्याए करीने निक्किठ भावउ–निक्लीष्ट एटले अति मलिन भाव परिणाम थयो तेथी गलिअ गुरुविवेआणं-- गलायो छे एटले नाशने पाम्योछे तत्व अतत्व संबंधी प्रथग भाव एटले न्यारा न्यारा भाव, जे मोटा विवेक विचार जेना एवा जे अम्हाण-- अमे, तेने सुमिणेवि - स्वप्ननेविषे पण सुहाइं-- जिनवचनरूप रत्न ग्रहण करवुं ते सुख हेतु माटे सुख ते कह–शा प्रकारे करीने संभाविज्जंति–संभाविए एटले विचारिए अथवा थापिए? केमके, मिथ्यात्वे करीने वासित छे मति जेनी, अने गयो छे मोटो विवेक जेनो तेने तेवुं सुख क्यांथी थाय? ॥ १५८ ॥

अवतरणः–शीरीते क्यांथी होय ते रीत कहेछेः–मूलः–जं जीविअमित्तंपि हु, धरेमि नामं च सावयाणंपि ॥ तं पिपहु महा चुज्जं, इह विसमे दूसमे काले ॥ १५९॥ दोहाः– धरुं जो जीवित मात्र पण, नाम श्राद्धनो सार ॥ तेपण अति अचिरज प्रभु, दूसम काल मझार ॥ १५९ ॥ व्याख्याः– इहविसमे दूसमेकाले–आ विषम दूसम कालनेविषे जं–जो जीविअ मितंपि–देश संयमरूप जीवितमात्रने पण कोईक प्रकारना भंगे करीने हु–प्रकटपणे सावयाणंपि–सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत धारी श्रावकोनो च–वली नामं–नाम मात्रप्रते धरेमि–हुं धारण करुंछुं; तं पि–ते पण पहु–हे प्रभु, हेनाथ महा चुज्जं–मोटो आश्चर्य छे; बीजुं वधारे शुं कहिये? ॥

अवतरणः–ए प्रकारे कालादिकना अनुसारे करीने पोताना स्वरूपने कहीने हवे

पोतानु जन्म सफल करवाने अर्थे सुगुरुने विनती करता छता कहेछे – मूल – परिभा विऊण एव, तह सुगुरु करिज्ज अम्ह सामित्तं ॥पहुसामग्गि सुजोगो , जह सहलं होइ मणुअत्त॥१६०॥दोहा – इम विचार करि तिम सुगुरु, हमने करो सनाथ॥सुलभ होय जिम नरपणु शिव सामग्री साथ ॥ १६० ॥ व्याख्या – एव–दूषमा काळनेविषे जिन भाषित धर्मनुं दुर्लभपणु छे ए प्रकारे परिभाविऊण–परिभावीने एटले वीचारीने सु गुरु–हे सुगुरु, हे शोभन आचार्य एटले हे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण संपन्न सुगुरु तह–तेम अथवा ते प्रकार अम्हसामित्त–अमारा संबधी स्वामीपणाने करिज्ज–करो एटले ते प्रकारे अमारा ऊपर तमे स्वामीपणु धारण करो जह–जेम अथवा जे प्रकारे पहुसामग्गिजोगो–प्रभुदर्शनादिकनी सामग्रीनो एटले प्रभुभाषि त धर्मसामग्रीनो सारो योग थाय, ते थएथके मणुअत्त–मनुष्यपणुं सहल– सफल होइ–थाय, केमके, संसारमा चार अंग जीवने पामवा दुर्लभ छे, तेमा प्रथम मनुष्य पणु, बीजु सिद्धातनु साभळवु, त्रीजु सिद्धातने साभळीने जिन वचननी श्रद्धा करवी, श्रद्धा थया पछी तप संयमने विषे पराक्रम फोरववो, ए चार अंग दुर्लभ छे तेमां प्रथम मनुष्य पणु दुर्लभ कह्यु, पण ते मनुष्य पणु सफल क्यारे थाय, ज्यारे शेष त्रण अगनी प्राप्ति थाय माटे हे सुगुरो अमारा ऊपर तमे स्वामीप णु करो के जेम प्रभु भाषित धर्म सामग्रीनो रूडो जोग थाय, ते थवाथी मनु ष्यपणुं सफळ थाय? ॥ १६० ॥

अवतरण -- हवे समाप्तिने अर्थे ग्रंथकार पोतानुं नाम कथन पूर्वक तथा ते ना अध्ययनादिकथी थता फलना कथन पूर्वक अने स्मरणनी उपादेयता प्रते ए टले तेनु जे अंगीकारपणु तेने कहे छे -- मूल – एव भंडारिअ ने, मि चंदरइआ उ कइविगाहाउ ॥ विहि मग्गरया भव्वा, पढंतु जाणंतु जंतु सिवं ॥ १६१ ॥ दोहा नेमिचंद भंडारिकृत, गाथा केइक एम ॥ विधि मग मग्न भविक भणो, लखो ल हो शिव क्षेम॥ १६१ ॥ षष्टि शतक प्राकृत थकी, दोधक किया सुभास ॥ दोध क शोधक बुद्धिजन, सेवक मोहन तास ॥ १६२ ॥ व्याख्या –एव–ए प्रकारे सज्ज न भंडारीनो पुत्र अने जिनेश्वर सूरीनो पिता प्रसिद्ध एवो जे भंडारीअ नेमिचंद–एटले भंडारिक गोत्री नेमिचंद श्रावक तेणे रइआउ–रचिउ जे कइवि–केटली गाहाउ– गाथा? एकशो ने एकसठ, ते गाथाउने विहिमग्गरया–श्री वीतराग भाषित वि धिमार्ग एटले मोक्षमार्गनेविषे रत एटले तत्पर एवा जे भव्वा–भव्य जीव ते पढ तु–सूत्र थकी भणो, जाणंतु–अर्थ परिज्ञानेकरी जाणो, सूत्रार्थ बेहु सम्यक् प्र

कारे अभ्यासीने सिवं–शिवप्रत्ये एटले निरुपद्रव मोक्षने जाउ–पामो. ए ग्रंथ न एयाथी तथा ग्रंथनो सम्यक् प्रकारे अर्थ जाएयाथी निश्चल सम्यक्त्व थाय ले; निश्च ल सम्यक्त्वथी क्षायिक ज्ञान चारित्र थाय. ते क्षायिक ज्ञान चारित्रेकरी अनुक्रमे वंछि त अर्थनी सिद्धि थाय. वली वंछित अर्थ ले ते नव्य जीवोने शिव प्राप्तिज जाणवी; बीजो कोई वंछितार्थ नथी. तथा शिव शब्द ग्रंथना अंते अंगीकार कस्यो ते मंगल अ थवा कल्याणने अर्थे जाणवो. इति गाथार्थ ॥ १६१ ॥ इति श्रीषष्टी शतक समाप्त.

तपोरत्न श्री गुण सुंदर उपाध्यायकृत षष्टी शतकनी टीका ते श्रीशांति सागरजी महाराजजीनी समीपे श्रीराजनगरमध्ये श्री गुरु बुद्धिविजय महाराज जीनो उपासक जे यक्ष गोत्री उसवाल मोहनलाल, तेणे सांजली धारी विचारीने ते नो किंचित् नावार्थ ग्रहण करीने षष्टी शतकनो अक्षरार्थ केवल नाषारूप बालाव बोध कस्यो; तेमां श्री वीतरागनां वचनथी जे कांई अधिकुं उंबुं विपरीत लखाणुं होय, कोई प्रकारनुं उत्सूत्र लखाई गयुं होय, तथा कोई कानामात्रादि ह्रस्व दीर्घनो फरक पम्यो होय, तस्स मिछामि छक्कमं एटले तेनुं जे पाप मने लाग्युं होय, ते मिथ्या फोकट थाउ. वली स्याद्वाद श्री जिनमत निपुण परोपकार स्वनाववाला पुरुषोए मुफ अल्पमति उपर अनुग्रह करीने आ षष्टी शतकनो बालावबोध शोधी लेवो एज विनती ले. ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्री षष्टीशतक नामक ग्रंथ दो हा तथा बालावबोध सहित समाप्त.

॥ श्री वीरपरमात्मायनम ॥

सकलपंमित चक्रचक्रवर्त्तिपंमित श्रीक्षमाविजयगणि शिष्यमुख्यपंमित परषद मिनीजालतिलक पमित श्रीजिनविजयगणि गुरुन्योनम: सिद्धि बुद्धि विधायिने श्रीमत् गौतम स्वामिनेनम.

अथ श्री पंमित उत्तम विजयजीकृत संयमश्रेणीनुंस्तवन अर्थसहित प्रारंनियेछे.

श्रीवर्द्धमानंजिनंनत्वा ॥ वर्द्धमानगुणास्पद ॥
स्वोपज्ञसंयमश्रेणी॥ स्तवस्यार्थोवितन्यते ॥ १ ॥

॥ ढाल पहेली प्रथम गोवालातणेनवेजी एदेशी ॥

केवल ज्ञान दिवाकरूजी ॥ सिद्ध बुद्ध सुखदाय॥ आतम सं
पद नोगवेजी ॥ वर्द्धमान जिनराय ॥ गुणोदधि शासन ना
यक वीर॥ मेरू महिधर धीर॥ गुणो० ॥ शास० ॥१॥ एआकणी

अर्थ ॥ समस्त केवलज्ञानावरणी कर्मना क्षयथकी उपनुंजे केवलज्ञान तद्रूप सूर्यछे क्षायकनावें सकलगुण निष्पन्नसिद्धछे समस्त वस्तुस्वनावनुं बुद्धके० जाण छे उपकारीपणे सर्वसुखनुं दातारछे स्याद्वादपणे परिणमित अनतगुण पर्यायरूप आतमसपदाने नोगवेछे एहवो चोवीसमो तीर्थंकर सामान्य केवलीउमा राजा सरिखो श्रीवर्द्धमानस्वामी गुणोनोसमुद्र गुणरूप रत्नानी उत्पत्तिनुं स्थानक वर्त्तमान शासननु अधिपति श्रीवीरपरमेश्वरछे वली उपसर्ग परिसह आवेथके अनिगरह्या माटे मेरुनीपरे धीरछे ॥१॥ एटले वदनात्मक स्तवनात्मक अने वस्तुनिर्देशात्मक ए त्रणप्रकारना नमस्कारछे तेमां स्तवनात्मक इष्टसमुचित नमस्कारकखो ॥ १ ॥

अनुक्रमिं संयम फरसतोजी ॥ पाम्यो क्षायक नाव ॥
संयमश्रेणी फूलडेजी ॥ पूजु पद निष्पाव ॥ गु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अनुक्रमें उत्तरोत्तर प्रधान संयमस्थानक फरसतोथको यडुक्तं दशाश्रुत स्कंधेः— 'तस्सणंभगवंतस्स अनुत्तरेणंनाणेणं अनुत्तरेणंदंसणेणं अनुत्तरेणंचरित्तेणं अनुत्तरेणंआलएणं अनुत्तरेणंविहारेणं अनुत्तरेणंवीरिएणं अनुत्तरेणंअज्ञवेणं अनुत्तरेणंमद्दवेणं इत्यादिक मोहनीय कर्मनुं क्षयकरी उत्कृष्ट संयमस्थानरूप क्षीण मोह गुणस्थानक पाम्यो एहवो श्री वर्द्धमानस्वामी तेना पापरहित चरणकमल ने संयम श्रेणीरूप भावफूलेंकरीने पूजुंछे० अर्चुबुं एवंदनात्मक नमस्कार कर्यो॥२

वाचक जशविजयें रच्योजी ॥ संखेपें सज्झाय ॥ विस्तरि
जिन गुण गावतांजी ॥ जीहा पावन थाय ॥ गु० ॥३॥

अर्थ ॥ प्रथम संयमश्रेणीनुं सज्झाय तिक्ष्णबुद्धिवालाने गम्यथाय एवुंन्यायवादिओनेविषे मुकुटमणि समान उपाध्याय श्री जशोविजय गणियें रच्युंछे पण तेनी रचना शंक्षेपेकरीछे माटे विस्ताररुचीने अर्थे विस्तारें संयमस्थानक गर्भित जिनेश्वरना गुण गावतां जीभ तथा जन्म पवित्रथाय उत्तमजीवने एवोज मनोर्थ होयछे यडुक्तं चिरसंचिय पावपणासणीए भवसयंसहस्समहणीए चोवीसजिनविणि गायकहा वोलंतुमेदीहा एटले मंगल अभिध्यादिककह्यां ॥ ३ ॥

वारकषाय खय उपशमेजी ॥ सरव विरति गुण ठाण ॥
तेना आदिम ठाणमांजी ॥ पर्यवनुं परिमाण ॥गु०॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे आद्यना बारकषायने क्षयोपशमें एटलेजे दलिक उदयआव्यां तेनुं क्षयकरे अनेजे उदय नथीआव्या तेने उपशमावे अने प्रदेशें उदयआव्याने वेदे एहवी अवस्थायें वर्त्ततायकां अविरति देशविरतिप्रमुख बारकषायने अभावें उपनुंजे सर्वविरतिरूप छठो गुणस्थानक तेहना सर्वजघन्यमांजघन्य स्थानकमां एटले आदिमजे प्रथम स्थानक तेमां निर्विभाग भाग एटले जेना केवलीनी बुद्धियेंपण एकखंडना बे अंसनथाय एवाजे चारित्रनापर्याय अथवा अंस तेनुं प्रमाण जे संख्या तेकहेछे॥४॥

सरवाकाश प्रदेशथीजी ॥ अनंत गुणा अविभाग ॥
ब्हतकल्पना भाष्यमांजी ॥ भाषे तुं महा भाग॥गु०॥५॥

अर्थ ॥ लोकालोकना आकाशप्रदेश जेटलामें अनंतेछे एटले अनंतानी गणना अनंत प्रकारनीछे तेमां लोकालोकना आकाशप्रदेशनी गणनानुं जे अनंतुंछे तेने अनंतगुणो करियें एटला अविभाग छठागुणस्थानकना सर्वथी जघन्यमां जघन्य

स्थानक जे पहेलुं स्थानक तेमाहे एरीतें बृहत्कल्पनाजाष्यमां छे, महानाग्य म हापूज्य तु कहेले यडुक्त तेकत्तियापएसा सवागाससलमग्गणा होई, तेतत्तियापएसा अविजागतउ अनतगुणा ॥ १ ॥ इति ॥

एरीतें सर्वविरतिगुणस्थानना सर्वथी जघन्यमा जघन्य पहेला संयमस्थानमां एटला निर्विजागहोय ए निर्विजाग सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध देशविरति गुणस्थानकना निर्विजागथी समस्त जीव जेटले अनतेछे तेटले अनते गुणता जेटला अनताथा य तेटला जाणवा ग्रथातरे एमपण कह्युछे जे उत्कृष्ट, देशविरति विशुद्धस्थानक ना अविजाग दशहजार असत्कल्पनाये कल्पिये पछी सर्वजीवत्तो अनंताछे तेनेप ण असत्कल्पनाये एकशत प्रमाणकल्पिये पछीते परस्पर दशहजारने सोगुणाकरि ये तेवारें दशलाखथाय एटला अविजाग सर्वविरतिना प्रथम सयमस्थानकमाहे ॥५॥

जाग अनते आदिथीजी ॥ बीजे ठाणे वृद्धि ॥ इम

अनत जागुत्तरेजी ॥ थानकनि होय सिद्धि ॥गु०॥६ ॥

अर्थ ॥ एपहेला सयमस्थानथकी बीजा सयमस्थानकमा अनतमें जागें वृ द्धिहोय एटले पहेला सयमस्थानकमा जेटला अविजागछे ते जेटलाचवदराजलो कमां जीवछे ते सर्वजीवने सरखेजागे वहेंचीआपता एकजीवनेजागे जेटला सय मना अविजागआवे तेटला अविजागनी पहेला सयमस्थानना अविजागकरत्ता बीजा सयमस्थानमा वृद्धिथाय एवीरीते बीजा सयमस्थानथी वली त्रीजा संयम स्थानमा पण तेटलाज अविजागनी वृद्धिथाय तेम त्रीजाथी चोथामा यथोत्तर अनतजाग वृद्धिथाय तेमज आगलपण सयमस्थाननी निष्पत्तिथाय हवे एमवृ द्धि करता करता सर्व केटला सयमस्थानके एक कम्मकथाय तेकहेछे ॥ ६ ॥

अंगुल जाग असंखमांजी ॥ जे आकाश प्रदेश ॥ तेता

थानक नीपजेजी ॥ कम्मक तास निवेश ॥ गु० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ एक अंगुलमात्र आकाशक्षेत्रना असंख्यातमां जागमां जेटला आकाश प्रदेश छे तेटला अनतजाग वृद्धिना सयम स्थानक नीपजे के० नीपजावियें एटला सयमना स्थानकनो समुदाय तेने आगम परिजाषायें कम्मकनी स्थापना कहिये वक्तव कम्मतिएत्थनन्तई अगुलजागो असखिज्जो ॥ ७ ॥

बीजा कंडक ठाणमांजी ॥ आदि असंख्यांस जाण ॥
तदनंतरनंत भागनाजी ॥ थानक कंम्क माण ॥ गु० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवे पूर्वेजे अनंतभागवृद्धिना कंम्कनुं स्वरूपबताव्युं ते अनंतभाग वृद्धिकंम्कनी स्थापना ने अनंतर बीजो असंख्यातभाग वृद्धिना कंम्कनी स्थापना थाय ते आवीरीते जे पूर्वे अनंतभागवृद्धि कंम्कना चर्मस्थानकमां जेटला अविभागछे तेथकी आ बीजा कंम्कना आदिस्थानकमां असंख्यातमें भागें वृद्धिजाणवी. एटले पहेला कंम्कना चरमस्थानकमां जेटला अविभागछे ते असंख्याता लोकाकाश प्रदेशने वहेंची आपतां एकप्रदेशने भागे जेटला अविभागआवे तेटला असंख्यातभागनाअंसनी बीजाकंम्कना प्रथमस्थानकमां वृद्धिथाय तेने अनंतर वली अनंतभाग वृद्धिना स्थानक कंम्क प्रमाणथाय ते केम असंख्यातभाग वृद्धिना प्रथमस्थानथी अनंतमो भागवधे एवुं प्रथम स्थानक तेनुं अनंतमोभाग वृद्धिरूप बीजुं स्थानक एम यथोत्तर कंम्कप्रमाण होय एम आगलपण पाछला स्थानथी आगला स्थानमां भागवृद्धि तथा गुणवृद्धि पोतानी बुद्धेजाणवी.॥ ८ ॥

इम नंत भाग वृद्धिनेजी ॥ कंम्क कंम्क मध्य ॥ ठाण
असंख्यांस वृद्धिनाजी ॥ कंम्क माने लब्ध ॥ गु० ॥ ए ॥

अर्थ ॥ एम अनंतभाग वृद्धिना कंम्क प्रमाणस्थानक अने असंख्यातभाग वृद्धिनुं एकस्थानक एरीते अनंतभाग वृद्धि कंम्क कंम्कने विचालें असंख्यभागवृद्धिनुं एकेक स्थानक करतां असंख्यात भाग वृद्धिना स्थानक केटलाथाय ते कहेछे कंम्कमानेलब्धके० कंम्कप्रमाणेलाधा एटले एक कंम्क प्रमाण थयां एटले पद्वृद्धिमांहे असंखभाग वृद्धिरूप बीजीवृद्धि पूरीथई ॥ ए ॥

ते आगेंनंत भागनाजी ॥ थानक कंम्क मात ॥ तदनंतर
संख्य भागनुंजी ॥ थानक एक विख्यात ॥ गु० ॥ १० ॥

अर्थ ॥ ते असंख्यभागवृद्धि कंम्कना चरम स्थानकने आगेके० आगल अनंतर अनंतभाग वृद्धिना स्थानक कंम्कमात्रथाय एटले कंम्क प्रमाण करियें तेवारपछी संख्यातभागवृद्धिनुं एकस्थानक प्रसिद्धहोय एटले पूर्वेपाश्चातथयेला कंडकना चरमस्थानकमां जेटला अविभागछे तेने उत्कृष्ट संख्यातपद सार्थे भागदेतां एकनेभागें जेटलाआवे तेटलावधे एम आगलपण स्वबुद्धे जाणीलेवुं ॥ १० ॥

ते ऊपर द्वय वृद्धिनाजी ॥ जेता ठाण अतीत ॥ ते कीधे
संख्यभागनुंजी ॥ बीज्युं ठाण पवित्त ॥ गु० ॥ ११ ॥

अर्थ –हवेते संख्यातभाग वृद्धिना प्रथम स्थानकने ऊपर द्वयके० बे वृद्धिना स्थानक जेटला अतिक्रम्याछे एटले पूर्वे अनंतभागवृद्धि अने असंख्यातभागवृद्धि एरीते एवेवृद्धिना जेटला स्थानक गयाछे ते सर्वने आ पहेला सख्यातभाग वृद्धि नामा स्थानकने आगलकरिये ते करवापठी संख्यातभागवृद्धिनुं बीजुं स्थानक पवित्र सयम परिणामरूप आवे ॥ ११ ॥

इम वृद्धि द्वय अंतरेजी ॥ कम्मक माने इठ ॥ असंसं
स्याते वृद्धिनाजी॥ थानकजिनवर पुठ ॥ गु० ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ एजरीते आगलपण ते अनतभागवृद्धि तथा असंख्यातभागवृद्धि ए द्वयके० बे बे वृद्धिना स्थानकने विचमा एकेक सख्यातभाग वृद्धिनुं स्थानक करता कंम्मक प्रमाणनीपजे हेईष्ट हे प्राणवल्लभ ते संख्यातभाग वृद्धिना स्थानक हे जिनवीर हे वीतराग तुमे फरस्या ॥ १२ ॥

वलि पूरव द्वय वृद्धिनाजी॥ थानक सरव करेह ॥ आग
ल गुण संख्यातनुजी॥ थानक एक धरेह ॥गु०॥ १३ ॥

अर्थ ॥ सख्यातभागवृद्धि कम्मकना चरमस्थानकने आगलें पूर्वली बे वृद्धिना जेटला स्थानकगयाछे तेटला सर्वस्थानक करवा एटले करियें तेने आगल सख्यातभागवृद्धिनुं कम्मक पुरुंथयु तेमाटे तेने ठेकाणे सख्यातगुणवृद्धिनु एकसंयम स्थानकधरे एटले धरियें थापियें एटले पाछल अनंतभागवृद्धिनुं कम्मक गयुछे तेना चरम स्थानकमां जेटला अविभागछे तेने उत्कृष्ट संख्यात गुणाकरियें ते संख्यात गुणा करतां जेटला अविभागथाय तेटला अविभाग प्रथम संख्यातगुणवृद्धिना स्थानकमां वधे एरीते आगलपण सवुहे जाणवु ॥ १३ ॥

इम त्रिक वृद्धिने अतरेजी ॥ गुण संख्यातना ठाण॥कम्म
क माने नीपजेजी॥ जाणे तु वर नाण ॥ गु० ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एम त्रिकवृद्धिने विचालें एटले पूर्वेजे अनंतभागवृद्धि असंख्यातभाग वृद्धि संख्यातभागवृद्धि ए त्रण त्रण वृद्धिना सर्व स्थानकने विचालें एक एक सख्यातगुणनु स्थानक करियें एम करता सख्यातगुण वृद्धिना स्थानक कम्मक

प्रमाण नीपजे एटले पट्वृद्धि मांहे चोथी संख्यातगुणवृद्धि पूरीथई संयम स्था नक चारित्र परिणामरूप होवाने लीधे अरूपीछे तेमाटे हे सर्वज्ञ ते सर्वेतुं जाणोछे.

पुनरपि त्रिक वृद्धी तणाजी ॥ पूरी थानक सर्व॥असंख्या
त गुण वृद्धिनुंजी ॥ थानक एक अगर्व ॥ गु० ॥ १५ ॥

अर्थः– संख्यातगुण वृद्धिकंमकना चरमास्थानकथी आगल वली त्रणवृद्धिना एटले अनंतनागवृद्धि असंख्यातनागवृद्धि अने संख्यातनागवृद्धि ए त्रणवृद्धिना स्था नक जेटला पूर्वे गयांछे ते सर्व संयमस्थानक पूरीने नीपजावीने ते पछी असंख्या तगुण वृद्धिनुं एक संयमस्थानक आवे माटे हे अगर्व पाश्चात एटले पूर्वे थयला अनंतर कंमक ना चरम संयमस्थानकमां जेटला अविनागछे तेने असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाणे गुणाकार करतां जेटला अविनागथाय तेटला अविना ग प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानकमां वधे ॥ १५ ॥

चउरंतर चउरंतरेंजी ॥ थानक कंमक मेय ॥ असंख्यात
गुण वृद्धिनाजी ॥ पंमित वीर्य वरेय ॥ गु० ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ तेवारपछी वली आगलपण चार चार वृद्धिने विचालें एकेक असंख्या तगुण वृद्धिनुं संयम स्थानक नीपजे एम नीपजावतां कंमक मात्र थाय ए असं ख्यात गुणवृद्धिना संयम स्थानक एटले असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक पछी अनंतनागवृद्धि असंख्यनागवृद्धि संख्यातनागवृद्धि संख्यात गणवृद्धि एवां चार वृद्धिना स्थानक कखापछी असंख्यगुणवृद्धिनुं बीजुं स्थानक आवे एरीते चार चार वृद्धिने विचालें एकेंक असंख्यातगुण वृद्धिनुं स्थानक करतां कंमकमा त्रथाय एटले षट वृद्धिमांहे असंख्यगुण वृद्धिरूप पांचमी वृद्धि पूरीथइ ए सर्व संयमस्थानकरूप आतमगुण ते हे वीर हे परमेश्वर तुमें पंमित वीर्येंकरीने वश्या पाम्या माटे तुमे वंद्य पूज्य स्तुत्यछो तमारी स्तवना करतां एवां गुण पामियें॥ १६

उपर वली चउ वृद्धिनाजी ॥ फरसे थानक सार ॥ तद
नंतरनंत गुणनुंजी॥ थानक एक उदार ॥ गु० ॥ १७ ॥

अर्थः– हवेते असंख्यगुणवृद्धि कंमकना चरम स्थानकने उपर वली चारवृ द्धिना स्थानक एटले अनंतनागवृद्धि तथा असंख्यनागवृद्धि अने संख्यातनागवृ द्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए चार वृद्धिना सर्व स्थानक फरसे हे सार हे जगत उत्कृष्ट प्रभु तेवार पछी वली आंतरारहित अनंतगुणवृद्धिनुं एक प्रथम स्थानक

महोटु आवे एटले पाश्चात्य जे (पूर्वथयला) अनंतर संयम स्थानकमा जेटला अ विज्ञागछे ते सर्व जीवोनी सख्यारूपजे अनंतोछे ते अनंता साथे अनंतगुणकरता जेटला अविन्नागथाय तेटला अविन्नाग अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानकमा वधे

पच पच वुद्धी विचेजी ॥ ठाण एक इक जोय ॥ इम
अनंत गुण वुद्धिनाजी ॥ कन्दक माने होय ॥ गु० ॥ १८ ॥

अर्थ -- अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानक पछी अनंतर अनंतन्नागवृद्धि असंख्य नागवृद्धि सख्यातन्नागवृद्धि सख्यातगुणवृद्धि असख्यातगुणवृद्धि एवा पाच वृद्धि रूप समस्त संयम स्थानक उपजे तेवारपछी एक अनंतगुणवृद्धिनुं बीजु संयम स्था नक आवे एरीते पाच पाच वृद्धिने विचमा एक एक अनंतगुणवृद्धिनुं स्थानक नीपजे ते ज्ञान दृष्टिये जुउ एम करता अनंतगुणवृद्धिना संयमस्थानक केटलाथाय ते कहे छे कन्दक प्रमाणेहोय एटले अंगुलना असख्यातमा नागमा जेटला आकाश प्रदेशछे तेनाजेटला अनंतगुण वृद्धिना संयम स्थानक थाय ते कन्दक थयुं ॥ १८

उपर वली पच वृद्धिनाजी ॥ फरसे संयम ठाण ॥ प्रव
चन अनुसारें कह्युजी ॥ षट थानक परिमाण ॥ गु० ॥ १९ ॥

अर्थ - हवे अनंतगुणवृद्धिना चरम स्थानकने उपर वली मूलथकी पाचे वृ द्धिना सर्व संयमस्थानक फरसे पण पाचवृद्धि पूरी कर्यापछी प्रसंगे आव्युंजे अ नंतगुणवृद्धिनु स्थानक ते न करवु केमके षट स्थानक पूरुथयु तेमाटे, एरीते षट स्थानकना परिमाणनी परुपणा ते प्रवचनअनुसारेके० कल्पन्नाष्य तथा प्रवचन सारोद्धारनी टीकाने अनुसारे कही ॥ १९ ॥

असंख्य लोकाकाशनाजी ॥ प्रदेश ने परिमाण ॥ इक षट
थानक ऊपरेजी ॥ छे वलि षट ठाण ॥ गु० ॥ २० ॥

अर्थ - चऊदराज प्रमाण एक लोकाकाशछे एहवा असंख्याता लोकाकाश अलोकमा कल्पीये तेना जेटला आकाश प्रदेशनु समूहथाय तेटला प्रदेशने प्रमा णे एक प्रथमनु मूल षट स्थानक ने ऊपर ऊपर वली बीजा षट स्थानिक ऊपजे एटले असंख्यातिवार ऊपरा ऊपर षट स्थानकथाय उक्तंच छठाणग अवसाणे, अन्न छठाणय पुनो अन्नं, एव मसंखा लोगा, छठाणाण मुणेयव्वा ॥ १ ॥ ॥ २० ॥

ए संयम गुण ठाणमाजी ॥ जे वरते मुनि सोय ॥ वद्य
अपर नजना पणेजी ॥ नाष्यकल्पमा जोय ॥ गु० ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ ए संयमके० चारित्र गुणस्थानकमां एटले बहागुणगणाना आद्यना स्थानकथी मांमीने यथाख्यात चारित्ररूप चरम स्थानकपर्यंत तेमांजे मुनिराज वर्तेछे ते मुनि वांदवायोग्यछे पण वेशमात्रने वांदवानुं प्रयोजननथी उक्तंच वे सोवि अप्पमाणो, असंजमपएसु वट्टमाणस्स ॥ किंपरि अत्तियवेसं, विसं न मा रेइ खज्जंतं ॥१॥ इति माटे अपरके० बीजा जे संयमश्रेणीथी बाह्य ते नजनायें वंदनीक एटले कारणे वांदवायोग्य पण कारणविना वांदवायोग्यनही ए अर्थ बृहत्क ल्पनाष्यमां जोईलेवुं उक्तंच संयम गण ठियाणं, किइकम्मं बाहिराणनइ यवं ॥ २१ ॥

इहां षटस्थानकना नामकहेछे १ अनंतनागवृद्धि २ असंख्यनागवृद्धि ३ संख्यातनागवृद्धि ४ संख्यातगुणवृद्धि ५ असंख्यातगुणवृद्धि ६ अनंतगुणवृद्धि एमां नाग तथा गुण वृद्धिकही ते केवी संख्याये छे ते जाणवाने आगमनी गाथाकहे छेः— सव्व जिएहिं अनंतं, नागंच गुणं असंख लोगेहिं ॥ जाणअसंखं संखं, संखि ज्जेणं च जिठेणं ॥ १ ॥ एनोअर्थः— एषटवृद्धिरूप षट स्थानकनेविषे जे अनंत नागनुं स्थानक तथा अनंतगुणनुं स्थानक ए बे स्थानकनी संख्या ते सर्व चउद राजलोकमां जेटला जीवनी संख्याछे ते संख्याये नागतथा गुणनीवृद्धि करवी अने असंख्यनागवृद्धि तथा असंख्यगुणवृद्धि ए बे स्थानक ते असंख्यात लोकाकाश प्रदेश नी जेटली संख्याछे ते संख्यायें नाग तथा गुणनीवृद्धिकरवी अने संख्यात नागवृद्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए बे स्थानक ते उत्कृष्ट संख्यातानी जेटली संख्याछे तेटली संख्यायें नाग तथा गुणनी वृद्धिकरवी इतिनाव.

तथा जे संयमस्थानक अनंतनागवृद्धिने पामे ते पाछला संयमस्थानकना जेटला अविनाग होय तेने समस्त जीवोनी जेटली संख्याछे ते संख्यायें नाग आपतां जेटला अविनाग आवे तावत्प्रमाण अनंतनागे अधिक जाणवुं अने जे संयमस्थानक असंख्यातनाग वृद्धिनेपामे ते पाछला संयमस्थानकना निर्विनाग नाग जेटलाहोय तेने असंख्य लोकाकाश प्रदेशप्रमाणे नाग आपतां जेटला अविनाग लाने तावत् प्रमाण असंख्येयनागें अधिकजाणवुं तथा जे संयमस्थानक संख्यातनाग वृद्धिने पामे ते पाछला संयमस्थानकना जेटला अविनागहोय तेने उत्कृष्ट संख्यातायें नाग हरता जे अविनाग लाने तेटला संख्यातनागें अधिक जाणवुं वली जे संयम स्थानक संख्यातगुण वृद्धिनेपामे ते पाछला संयम स्थानक ना जे निर्विनागनागछे तेने उत्कृष्ट संख्यातगुणनी रासियेंगुणता जे अविनागथाय तावत्प्रमाण संख्यातगुणे अधिक जाणवुं तथा जे संयमस्थानक असं

ख्यात गुणवृद्धिने पामे ते पाछला सयमस्थानना जे अविभागछे तेने असख्यात लोकाकाशनाजे प्रदेशछे तद्गुणित करिये तावत् प्रमाण असख्यातगुणो अधिक जांणवु तथा जे सयमस्थानक अनतगुणवृद्धिने पामेछे ते पाछला सयमस्थानकना जेटला अविभागछे तेनें समस्तजीवोनी अनति सख्याये गुणतां जेटला अविभाग थाय तावत्प्रमाण अनतगुणो अधिक जाणवु इतिज्ञेय ॥ २१ ॥

पट थानक संयम तणाजी ॥ कहेतां स्तवतां वीर ॥ क्षमाविजय जिन भक्तिथीजी॥ उत्तम लहे भव तीर ॥ गु० ॥२२॥

अर्थ ॥ ए सयमना पटस्थानक कहेता थका तथा संयमश्रेणे गर्भित वीर परमेश्वरने स्तवता तथा वली क्षमागुणे करीने मोहलुं जेणे विजय कर्योछे, अणुत्तरा ए खंतिए इतिवचनात् एहवा जिनके० वीतराग जे श्रीवीरस्वामि तेनी भक्तिथी उत्तमजीव होय ते भवके० संसारसमुद्रनो पारपामे सिद्धपरमेश्वरथाय एटले पंडित श्री क्षमाविजयगणि तत्शिष्य पंडितश्री जिनविजयगणि तेमनी भक्तिथी मुनि उत्तमविजयजी ससारनो पारपामे एमपण जाणवु ॥ २२ ॥

अवतरण – पूर्वोक्त संयमस्थानक समजवाने सुगमथाय तेमाटे श्री वीरप्रभुनी स्तवनाकरता यत्रनो बीजोढालकहेछे इति सबंध ॥

ढाल बीजो सुरतीमहीनानीदेशी.

वस्तु स्वभाव प्रकाशक भाशित लोगालोग ॥ वीर जगत गुरु भोगवे रत्नत्रयीनो भोग ॥ सयमना पट थानिक सूक्ष्म बुद्धि गम्य ॥ स्व पर विबोधन हेते थापु यंत्र सुरम्य ॥ १ ॥

अर्थ – सदसदादिक अनतधर्मात्मक वस्तुस्वभाव तेनु प्रकाशक तथा केवलज्ञानरूप आरसीमा जेने लोकालोकनुं स्वरूप भास्योछे एहवो श्रीवीरपरमेश्वर त्रणजगत्नो गुरु भावरत्नत्रयीनो आस्वाद अनुभवेछे सम्यक्ज्ञान यथार्थविबोध सम्यक्दर्शन तत्वप्रतीति सम्यक्चारित्र निजस्वरूप रमण स्थिरतारूप इति रत्नत्रयी स्वरूप सयमनी पटवृद्धिना स्थानक तीक्ष्ण बुद्धियें गम्यछे तेमाटे पोताने तथा परने समजवाने अर्थ असत्कल्पनाये मनोहर यत्रथापुंछु तिहा अनंत भागवृद्धिने स्थानके मींडुं अने असख्यातभागवृद्धि स्थानके एकडा संख्यातभागवृद्धि स्थानके बगडा सख्यातगुणवृद्धि स्थानके त्रगडा असख्यातगुण वृद्धिस्थानके चोगडा

अनंतगुण वृद्धिस्थानके पांचडा एम असत्कल्पनायें चारमीडांयें अनंतभागवृद्धि कंडक चार एकडे असंख्यभागवृद्धि कंडक इत्यादिक संज्ञा जाणवी ॥ १ ॥

भाग अनंतह वृद्धिना ठाणाठे कंडक सार ॥ ठे यद्यपि ते अ
संख्य ठवुं तस बिंडु चार ॥ असंख्य भाग वृद्धिनुं थानक आ
गल एक ॥ तस ठामें ठवुं एको मन धरी अतिहि विवेक ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अनंतभागवृद्धिना स्थानक भलां कंडकमात्र अंगुल असंख्यभागगत आकाश प्रदेश प्रमाणठे एरीते जोपण ते अनंतभाग वृद्धिना स्थानक असंख्या ताठे तोपण असत्कल्पनायें तेना चारबिंडु स्थापुंवुं एटले अनंतभागवृद्धिनुं कंडक पुरुंथयुं तेथी आगल असंख्यातभागवृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठेकाणे मनमां अत्यंत विवेक धरीने एकडो थापुंवुं ते पूर्वोक्त स्थानकथी भिन्न पाडवा निमित्तें थापुंवुं एम सर्वत्रजाणवुं ॥ २ ॥

चउ चउ बिंडु अंतर इम होय एकाचार ॥ तदनंतर चउ बिंडु
सघलां वीस उदार ॥ आगल भाग संख्यातह वृद्धिनो बीठ
जाण ॥ इम चउ बिया ठवतां मींडां शत परिमाण ॥ ३ ॥
चउ बीआ वीस एका मींडा शत समुदाय ॥ भागनी वृद्धि मांहे
थयां हवे गुण वृद्धि कहाय ॥ संख्यात गुणनी वृद्धिमां तीठ
आदि नुदार ॥ इम सवि मींडा अंका विच ठवि तिआ चार ॥४॥

अर्थ ॥ वली आगल अनंतभाग वृद्धिना एक कंडक जेटला स्थानक थाय तेने ठेकाणे चारबिंडु थापीयें आगल असंख्यभाग वृद्धिनुं एक स्थानकठे तेमाटे वली एकडो थापीयें एरीतें चारचार बिंडुने आंतरे जेवारे चार एकडाथाय एटले असंख्य भाग वृद्धिनुं कंडक पुरुंथयुं तेवारपठी आंतरा रहीत ठेडानुं अनंत भागवृद्धिनुं कंडक आवे तेने ठेकाणे चारबिंडुथापीयें एटले सघला सरवाले चार एकडाने वीस मिंडांथया ते पठी आगल संख्यातभाग वृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठामे बगडानी थापना जाणीये एरीतें चार एकडा गर्भित वीसबिंडु अनंतर संख्यातभाग वृद्धिनुं एक एक बगडो आणतां जेवारें चार बगडाआवे तेवारें संख्यातभागवृद्धिनुं कंडक पुरुंथाय तेवारपठी वली ठेडे चार एकडा गर्भित वीस मींडाआवे एम संख्यातभाग वृद्धिपर्यंत सर्व समुदायें मींडा (१००) एकडा (२०) बगडा (४)

एतावता सख्यात नागवृद्धिनु कमक एक असंख्यातनागवृद्धिना कंमक पाच अ नतनागवृद्धिना कमक पचवीस एटला स्थानक असत्कल्पनाये नाग वृद्धिमाथया हवे गुणवृद्धिमाहे जे स्थानकथाय ते कहेछे हवे आगल संख्यातगुण वृद्धिनु ए क स्थानकआवे तेने ठेकाणे एक त्रगडो थापीये एटले सख्यातगुण वृद्धिमा प्रथम उत्तमस्थानकनो त्रगडोजाणवो एरीते वली पण पूर्वला चार बगडा वीस एकडा गर्भित शत्तमिम्रा थापीने तेने अनतर बीजो त्रगडोआवे एरीते जेवारे चार त्रगडा थाय तेवारे ते चार त्रगडे सख्यातगुण वृद्धिरूप कमक पुरुथयु चोथा त्रगडाने अनतर वली चार बगडा वीस एकडा अने शत मीडा थापीये ॥ ३ ॥ ४ ॥

वीस बीआ शत एका पण सय बिडु मान ॥ असख्यात गुण
वृद्धिनो चोको धुरि मंमाण ॥ इम चउ चोका आणता तिक वीस
दिक शत जोय ॥ पण सय एकडा मीडा पचवीससे होय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ इहा सख्यातगुण वृद्धिपर्यंत सर्वमली त्रगडा चार बगडा वीस अने एक डा शो तथा पाचसे मीमा एटले सख्यातगुण वृद्धिनु कमक एक अने सख्यात नाग वृद्धिना कंमक पाच असंख्यातनाग वृद्धिना कमक पचीस अनतनाग वृद्धि ना कमक एकसो ने पचीस थाय तेवार पठी असख्यातगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थान कनो चोगडो मांमीये फरी चार त्रगडा वीस बगडा एकसो एकडा सहीत पाचसो मीं मा गयेथके वली बीजो चोगडो मामीये ए परीपाटीये जेवारे चार चोगडाथाय एटले असख्यात गुण वृद्धिनु कमक पुरुथयु वली चोथा चोगडाने अनतर चार त्रगमा वीस बगडा एकसो एकडा अने पाचसे मीमा थापीये तो सर्वमली चार चोगडा वीस त्रगमा एकसो बगडा पाचसे एकडा पचीसोमीमा थाय एटले असख्यात गु णवृद्धिनु कमक एक सख्यात गुणवृद्धिना कमक पाच सख्यात नागवृद्धिना कम क पचीस असख्यात नागवृद्धिना कमक एकसोपचीस तथा अनतनागवृद्धिना कमक उसोने पचीस थया ॥ ५ ॥

हवे अनत गुण वृद्धि पदे ठवि पंचक चग ॥ पुनरपि पूरव रीते
मींडा अक सुरग ॥ तिवार पठी पंचक इम पचक चउ जव
थाय ॥ आगे पण पचवीससे मींमा अक कराय ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवे अनतगुण वृद्धिपदेके० अनतगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थानकने ठे काणे एक पाचमोथापीये पुनरपि पूर्वलीरीतें चार चोगमा वीस त्रगमा एकसो बग

डा पांचसो एकमा गर्भित पचवीससो मींमाथापीयें तेवारपछी बीजो पांचडो था पीयें एरीते अनुक्रमे जेवारें चार पांचडा थपाय तेवारें अनंतगुण वृद्धिरूप कंमक पुरुंथाय वली आगलपण चोथा पांचडाने अनंतर चारचोगडा वीसत्रगमा एकसो बगमा पांचसो एकडायें युक्त पंचवीससो मींमांकरीयें एटले एक षटस्थानक पुरुंथयुं.

पांचडा चोगडा त्रगडा बगडा एकडा बिंदु॥ षट थानकनां
यंत्रनी संख्या कहे जिनचंद ॥ चउ वीस सय पणसय पंच
वीस सय सार ॥ अंका मींडा गणतां साढा बारहजार॥ ७॥

अर्थः– हवे षटस्थानक मध्ये आंक तथा मिंमानी संख्याआवी ते पश्चानुं पूर्वियें कहियेंछे पांचडा चोगडा त्रगडा बगडा एकडा तथा बिंदु तेना समुदायरूप षटस्थानकना यंत्रनी संख्या ते श्री जिनचंद्रके० क्षपनादिके कही तेरीते हे वीर परमेश्वर तमे फरसी ते आवीरीते चारपांचडा वीसचोगडा एकसोत्रगडा पांचसो बगडा पचवीसो एकडा अने साढाबारहजारमिंमा सरवालेथाय एटले अनंतगुण वृद्धिनुं कंमक एक असंख्यातगुण वृद्धिना कंमकपांच संख्यातगुण वृद्धिना कंमक पंचवीस संख्यातजाग वृद्धिना कंमक एकसोपंचवीस असंख्यातजाग वृद्धिना कंमक छसोनेपंचवीस अने अनंतजागवृद्धिना कंमक त्रणहजार एकसोने पंचवीस ए सर्वमली (३९०६) कंमक थयां ए सर्वयंत्रप्रमाणे असत्कल्पनायें लख्युंछे पण परमार्थरीते तो आगला ढालमां कहीसुं ॥ ७ ॥

संयम श्रेणिमां श्रेणि क्षपक लहि सुक्क ध्यान॥ घाती करमनो
क्षयकरी पाम्यो पंचम ज्ञान॥ प्रवचनसारनी वृत्तिमां यंत्रनी
ठवणा दीठ॥ क्षमाविजय जिन वयणथी उत्तम चित्त पविठ्ठ ॥८॥

अर्थः–संयमश्रेणी आरोहतां अनुक्रमे क्षपकश्रेणीमां सुक्कध्यान पामीने घातियां चारकर्म क्षयकरतां यथाख्यात चारित्र केवलज्ञान केवलदर्शनरूप रत्नत्रयी पाम्या तदनुक्रमो यथा अप्रमत्तगुणठाणे अनंतानुबंधीनी चोकडी दर्शनमोह त्रिक एवं सातप्रकृति क्षयकरी अपूर्वकरण अनिवृत्ति गुणठाणे चढ्या तिहां अनिवृत्तिना प्रथमजागने अंते सोलप्रकृति खपावे तन्नाम थावरतिरिनरयाएव दुगथीणति गेगविगलसाहरंति इति वली बीजाजागने अंते अप्रत्याख्यानी चोकडी तथा प्रत्याख्यानी चोकडी एवं आठप्रकृति खपावे त्रीजेजागे नपुंसकवेद खपावे चोथे जागें स्त्रीवेद खपावे पांचमेंजागे हास्यछक्क खपावे छठेजागें पुरुषवेद खपावे सात

मेनागे संज्वलननुं क्रोधखपावे आठमेनागे संज्वलननुमान खपावे अने नवमेनागे संज्वलननी माया खपावे एरीतें नवमे गुणठाणे वीजापायाथी वीसप्रकृति खपावे पठी दशमेगुणठाणे सज्वलननु लोन खपावतो शुक्लध्याननु प्रथक्त्व वितर्क सविचाररूप प्रथमपाद तद्रूप अनलेकरी सकल मोहनीय नस्म शातकरे पठी क्षीणमोह गुण ठाणे चढे क्षायक चारित्रवतथाय तिहा एकत्व वितर्क अविचाररूप शुक्लध्याननुं बीजोपाद अनुनवी द्विचरम समय निद्राद्विगखपावी चरमसमये ज्ञानावरणीपांच दर्शनावरणीचार अंतरायपाच एव चउदप्रकृति ने क्षये अनत चतुष्टी विनूपित सिद्धवधु योग्यथाय इतिश्री सिद्धसेनदिवाकर कत प्रवचनसारोद्धारनी वृतिमा प टस्थानकना यंत्रनीस्थापनादीठी ते क्षमाये उपलक्षित जे दशविधधर्मे तेणेकरी विशेपे जयवता एवा जिनके० श्रुतकेवली अवधिजिन मनपर्यवजिन जे सुधर्मा स्वामी तेना वयणके० वर्तमान आगम तेथी उत्तम साधु साध्वीउने फरसनरूपे तथा उत्तम श्रावक श्राविकाने श्रद्धा मनोरथ रूपे सयमश्रेणी चित्तमांपेठी एटले पन्नितश्री क्षमाविजयगणि शिष्यरत्न पन्नितश्री जिनविजयगणि ना वचनथी मुनि उत्तमविजयना चित्तमा यत्रनीस्थापना पेठी एटले स्थिरपणेरही इति ए पण सोचवु

अवतरण – प्रथमढाले पटस्थानक परूपणाकीधी बीजाढालें तेनायंत्रनी स्थापनाकरता स्थूलबुद्धिनेपण सुखेसमजाय तेमकह्यु हवे एकातरादिक मार्गणाये कोईपूठे तेने सुखे कहीसकिये तेरीते वीरप्रनुनी स्तवनाकरता अधस्तन स्थान परूपणानो ढाल कहियेछे इति सवंध जाणवो ॥

ढाल त्रीजो एकवीसानी देशीनो

आतम रामीरे, शिव विसरामी नित्यनमु ॥ प्रनुजी स्तवतारे पाप पोताना निगमु ॥ पटथानिकरे जे अहठाण परूपणा॥ सुणो सयणारे वयणा कटपनी नाप्यना ॥ १ ॥ त्रूटक – आदि असंख अस वृद्धिथी कहो ॥ नाग अनंत अस केटला॥ हेठथानिक एम पूठत ॥ कहये कंमक जेतला ॥ नाग सख्यातह गुण सख्याते ॥ असंख अनंतह गुण वली ॥ तस प्रथमथी कहे अध अनंतर ॥ कमक माने केवली ॥२॥ इत्यनंतरमार्गणा

अर्थ ॥ शुद्ध निर्मल निकलंक आत्मस्वनाव रमणशील निरुपद्रव्यस्थान क्षेत्रथी उर्ध्व लोकाग्रनागथी निरावरणावस्था तेनेविपे विसरामी एवा श्री वीरप्रनुने नित्य

सदा नमस्कारकरुं ए प्रभुने स्तवतां अनेकभवोपार्जित पोतानाकर्यां खीरनीरनी परे अनेदरह्यां जे पापकर्म तेने निगमु के० गमावुं प्रभोर्नमस्कार स्तुतिफल मेतदेव संयम षट स्थानकनेविषे जे अनंतर एकांतरादिक अहगण परू पणाछेतेहे सम्यकूदृष्टी उत्तमसज्जनो तमे सांभलो ए वचन श्रीबृहत्कल्पना भाष्यनाछे. ॥ १ ॥

हे उत्तमजीवो तमे कहोके असंख्यात भागवृध्दिना प्रथम संयम स्थानकथी अनंतभाग वृध्दिना हेठला संयमस्थानक केटलागयां एम कोई पूछे तेने उत्तर जे अनंतभाग वृध्दिना हेठलास्थानक एक कंमक जेटला गयांछे केमके अनंतभागवृध्दि कंमकपूरुंथयुं तेने अनंतरेंज असंख्यभाग वृध्दितुं प्रथम स्थानक थयुंछे तेमाटेज एम केवुं. तेमज संख्यातभाग वृध्दिना प्रथम संयम स्थानकथी असंख्यभाग वृध्दिना हेठला संयम स्थानक केटलागयां तथा संख्यातगुण वृध्दिना प्रथम स्थानथी संख्यातभागवृध्दिना हेठला स्थानक तथा असंख्यातगुण वृध्दिना प्रथम स्थानकथी संख्यातगुण वृध्दिना हेठला स्थानक वली अनंतगुण वृध्दिना प्रथम स्थानकथी हेठला असंख्यातगुण वृध्दिना स्थानक केटला गयां ए रीते कोइ पूछे तेवारे सर्वत्र हेठलना आंतरा रहीत मार्गणायें कंमक प्रमाणे संयम स्थानक केवलीकहे य दुक्तं पंचसंग्रहे सव्वासिं वुड्ढिणं कंमक मेता अनंतरा वुड्ढि ॥ इत्यनंतरमार्गणा. ॥ २ ॥

एकांतररे मार्गणा सुणो सवि संतरे ॥ भाग संख्यातेंरे मूल था नकथी तंतरे ॥ हेठे थानिकरे भाग अनंतना भापीयें ॥ एककंमकरे कंमक वर्गते दापीयें ॥ ३ ॥ त्रूटक ॥ दापीयें गुण संख्या तथी वली ॥ असंख अनंत गुणथी तथा ॥ पढम ठाणथी एक अंतर ॥ कंमक वर्ग कंमक यथा ॥ इति एकांतर मार्गणा ॥ एक अंतर मार्गणा कही ॥ सुणो द्यंतर मार्गणा ॥ संख्यात गुण थी हेठथानक अनंत भागना सुभमना ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे एकांतर मार्गणा कहेछे ते हे सर्व संतजनो उत्तम पुरुषो तमे सांभलो के एकांतरमार्गणाते सुं जे एकवृध्दि विचमां पडतीमूकीने प्रछाकरवी ते एकांतर मार्गणा कहेवाय ते आवीरीते जे संख्यातभाग वृध्दिना मूलके० प्रथम स्थानकथी हेठल असंख्यातभाग वृध्दिनाजे स्थानकगयां तेनी प्रछानकरवी अने तेने हेठल वलीजे अनंतभाग वृध्दिना स्थानकगयांछे ते पूछवा एम कोईक एकांतरे पूछे ते

वारे एम कहिये जे एक कंमक अने कंमकवर्ग प्रमाण जेमां केवल असंख्यातनाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्र गयाछे तेमा एकेका असख्यातनाग वृद्धि स्थानकने केवल एकेक अनंतनाग वृद्धिनुं कंमकगयुछे अने असख्यातनाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रछे माटे कंमक कमक साथे गुणाकार करिये एटले कंमक वर्ग थाय तद्गुणोवर्ग इतिवचनात् अने असख्यनाग वृद्धि उपरे अनतनाग वृद्धिनुं एक कंमकथयुछे तेमाटे एकतो कमकवर्ग अने तेना उपर वली एक कंमकप्रमाण एटला अनतनाग वृद्धिना स्थानक गयांछे एम कहेवु ॥ ३ ॥

तेमज वली संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठे संख्यातनाग वृद्धिना स्थानकगयां तेमूकीने असंख्यातनाग वृद्धिना स्थानक पूछवा तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी केवल संख्यातगुणवृद्धिना स्थानक गया ते मूकीने सख्यातनाग वृद्धिना स्थानक पूछवा तेमज वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी केवल असंख्यातगुण वृद्धिनाजे स्थानकगया ते पडतामूकीने संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक एकातर मार्गणाये केटला पामीये एमकोई पूछे तेने एवु उत्तर आपिये जे कंमकवर्ग अने उपर एक कंमक जेम पूर्वे कह्याछे तेम कहेवा इति एकांतर मार्गणा यडुक्तं पचसग्रहे एगतराउवुड्ढी ॥ वग्गो कंमस्सकंमच इति एरीते एकातर मार्गणाकही हवे द्व्यंतर मार्गणा सानलो जे वे वृद्धि वचमा मूकीने पूछीयें ते द्व्यंतर मार्गणा कहिये ते आवीरीते के संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी अनतनाग वृद्धिना स्थानक केटला गया एमपूछवाथी हे शुनमना तेकहियेछे ॥४॥

कडक घनरे, कंडक वर्ग ङ्,गुणो करो ॥ एक कमकरे तस संख्या मनमा धरो ॥ ङग अतररे असख्य अनंत गुणथी लह्यां ॥ अध स्थानकरे पूरव परे जाणो कह्या ॥ ५ ॥ इति द्विकांतरमार्गणा त्रूटक – त्रिके अतर कोई पूछे ॥ आदि असंख्य गुण वृद्धिथी ॥ हेठे नाग अनत केरा ॥ ठाण कहो गुरु वयणथी ॥ कडक वर्गनु वर्ग कीजे ॥ कडक घन त्रिक उपरे ॥ कडक वर्ग त्रिक एक कडक ॥ होए ते मनमा धरे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कमक घन एक अने कंमक वर्ग वे तथा ते उपर एक कमक एटला स्थानक पामीये ए सर्व नेला करता केटली सख्याथाय ते मनमा धरोके० धारण

करो तेज विवरीने कहेछे इहां पहेलांतो संख्यातगुण वृद्धिना प्रथमस्थानकथी हेठ ला संख्यातभाग वृद्धिना एकेक स्थानकने हेठल प्रत्येकें एकेक कंमकाधिक कंमकवर्ग एटले एक कंमकवर्ग अने एक कंमक ते अनंतभाग वृद्धिना स्थानकनुं पामियें.

अने संख्यातभाग वृद्धि स्थानक कंमक प्रमाणछे माटे कंमकवर्ग जेवारें एक कंमक सार्थे गुणियें तेवारें कंमक घनथाय अने एक कंमकछे ते कंमक सार्थे गु णियें तेवारें कंमकवर्ग थाय अने संख्यातभाग वृद्धि स्थानकने हेठलें कंमकवर्ग अने एक कंमक पामियें ए सर्व भेला करत्तां सूत्रोक्त प्रमाणथाय.

एरीते आगलपण डुगअंतर मार्गणायें असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक थी तथा अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी यथाक्रमे हेठली असंख्यातभाग वृ द्धिना तथा संख्यातभाग वृद्धिना संयम स्थानक पूर्वे जेम कह्यांछे तेमजाणो यडुक्तं पंचसंग्रहे कंमं कंमस्स घनो वग्गो डुगुणो डुगंतरा एउ॥८॥ इतिद्विकांतर मार्गणा.

हवे त्रिकांतरमार्गणायें एटले त्रणवृद्धि विचमां मूकीने कोईपूछे के प्रथमजे असंख्यगुण वृद्धिनुं स्थानक तेथी हेठला अनंतभाग वृद्धिना स्थानक केटलाग यां ते सुविहित गीतारथ गुरुना वचन जाण्याहोय तो कहो. एक कंमक वर्गवर्ग एटले जेम असत्कल्पनायें चारआंकने कंमकनी स्थापना करियें तेनोवर्ग करतां चा रचोक सोलथाय वलीतेनो वर्ग करतां बशोने छपन्नथाय ते वर्गवर्ग कहियें एरीते असंख्यातनो समजवो केमके एक कंमकमां असंख्याता स्थानकछे माटे. हवे ए एकतो कंमक वर्ग वर्ग तथा तेनाउपर वली कंमक घन त्रण तथा वली कंमक वर्गत्रण अने वली उपर एक कंमक होय ते सर्व उत्तम श्रद्धा सहीत मनमां राखे

ए संख्या शीरीते जाणीयें तेरीत कहेछे प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक थी हेठलें संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक कंमकप्रमाण गयांछे तिहां एकेका स्थान कने हेठलें प्रत्येके अनंतभाग वृद्धिना स्थानक एक कंमकघन तथा कंमकवर्गबे तथा एक कंमक प्रमाण पामियें तेमाटे ए सर्वने कंमक गुणाकरीने सरवालो करीराखि यें पछी संख्यातगुण वृद्धि कंमकने उपर एक कंमकघन कंमकवर्गबे अने एक कं मकछे ते पूर्वली रासीमां प्रक्षेपीयें तेवारें यथोक्त मानथाय यडुक्तं पंचसंग्रहे कंम स्स वग्ग वग्गो घण वग्ग तिगुणिया कंमं इति ॥ ६ ॥

छठी वृद्धिनारे पहेला ठाणथी हेठलां ॥ बीय वृद्धिनारे थानक पूरव जेतलां ॥ इति त्रिकांतर मार्गणा, चउरंतररे अनंत गुणा

दिम ठाणथी ॥ हेठ थानकरे भाग अनत ना मानथी ॥ ७ ॥
त्रूटक, परिमाणथी ते अष्ट कंडक ॥ वर्गवर्गा षट घना ॥
चार कंडक वर्ग आगल ॥ एक कडक सोभना ॥ इति चतुरं
तर मार्गणा, पर्यवसाननी मार्गणा ते ॥ षट थानिक पूरे करे ॥
मूलथी सयम ठाण फरसी ॥ वीर विभू केवल वरे ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ एम ठगी अनंतगुण वृद्धिना पहेला स्थानकथी हेठलि बीजी वृद्धिना एटले असख्यात भागवृद्धिना स्थानक पण पूर्वे जेटला त्रिकांतर वृद्धिना अनत र कह्याछे तेटला जाणवा इति त्रिकातर मार्गणा

हवे चतुरतर मार्गणानेविषे अनतगुण वृद्धिना आदिमके० प्रथम स्थानकथी हेठला स्थानक अनतभाग वृद्धिना प्रमाणथी केटलाछे ॥ ७ ॥ तेपरिमाणथी आठ कंडकवर्गवर्ग तथा ठ कंडकघन तथा चार कंडकवर्ग तथा उपरें एक कंड क शोभन सयम परिणामरूपछे ए केवीरीते जाणीये ते समजावेछे.

अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठलि असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक कं डक प्रमाण गयाछे अने असख्यगुणना एकेक स्थानकने हेठल अनतभाग वृद्धि ना स्थानक कंडकवर्गवर्गएक तथा कंडकघनत्रण अने कंडकवर्गत्रण वली कंडक एक प्रमाण पामिये तेमाटे ए सर्वने कंडकगुणा करिये जेथाय ते सरवालो करी राखिये तथा असख्यातगुण वृद्धिने उपरे कंडकवर्गवर्गएक कंडकघनत्रण कंडक वर्गत्रण कंडकएक पामियेछे ते पूर्वली राशीमा प्रक्षेपियें तेवारे यथोक्त मान थाय यडुक्तं पचसग्रहे, अड कंड वग्गवग्गा, चत्तारि वग्गा ठ घनाकंडं ॥ चउ, अंतर वुड्ढीए, हेठ्ठाण परूवणाए ॥१॥ इति, कंडक सज्ञा चारतेने तद्गुणोवर्ग सोल वर्ग कंडकगुणो घन चोसठ वर्गवर्गा बसो ठपन्न घन कंडकगुणोपि बसो ठपन्न यथो चित स्थानके सख्याकरजो इति चतुरतरमार्गणा

हवे पर्यवशाननी मार्गणा कहेछे पर्यवशान जे छेहडो तेनी मार्गणा ते षट स्थानक पूरेथये जाणवी ए मूलथीके० धुरथी सयमस्थान फरसीने जगतनुं नायक जे श्रीवीरपरमेश्वर ते केवलज्ञानवर्या ॥ ८ ॥

उपर मध्यथीरे संयम थानिक जे भजे ॥ ते नियमारे हेठ उ
तरी पुनरपी सजे ॥ अतर्मुहूर्त्तनीरे वुद्धी हानि ठाणमां ॥ होय

मुनिनेरे ज्ञानीदेखे ज्ञानमां ॥ए॥ त्रूटक ॥ अप्पवहुअ विचार करतां अनंत गुणना थोडला ॥ तेहथी गुणह असंख्य केरा ॥ कंम्क वर्ग कंम्क नलां ॥ पच्छानुपूर्वि वुढि उत्तर एहन्यायें नावीयें ॥ क्षमाविजय जिन चरण उत्तम नक्तिनावें पावीयें ॥१०॥

अर्थ ॥ जे उपरना संयमस्थानक तथा वचमांना संयमस्थानक अनुक्रमे फरसे ते नियमा हेठ उतरीने कालांतरे पुनरपीके० वली सजेके० सावधानथाय संयमश्रेणीपामे यदुक्तं अंतोमुहुत्त मित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहि संमत्तं ॥ तेसिंअवढ्ढ पुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ॥ १ ॥ जो एमले तो संयम पाम्यानुं सुं कहेवुं इति अंतरमुहुर्त्त कालप्रमाणे अधस्तन संयमस्थान थकी उपरि स्तन संयमस्थानारोहरूप वृद्धि तथा उपर स्तन स्थानथकी अधस्तन स्थानावरोहरूप हाणी मुनिने थाय ते हे ज्ञानवान वीरपरमेश्वर तमे देखोठो यदुक्तं कल्पनाष्ये गाथाद्वयं एयं चरित्त सेढिं, पडिवज्जइ हेठ कोइ उवरिंवा ॥ जे हेग पवम्जिज्जइ, सिज्झइ णियमां जहा नरहो ॥ १ मज्झेवा उवरिंवा, नियमा गमणंतु हेठिमं ठाणं ॥ अंतो मुहुत्त वुढ्ढी, हाणीवि तहेव नायव्वा ॥ २ ॥ इति ॥ ए ॥

हवे अल्पबहुत्वनो विचारकरतां अनंतगुण वृद्धिना संयमस्थानक सर्वथकी थोडा जाणवा तेथकी असंख्यातगुण वृद्धिना संयमस्थानक कंम्कवर्ग अने एक कंम्क जेटलां एटले परमार्थे असंख्यातगुणा पश्चानु पुर्वीयें वृद्धि आगले आगले एरीते नावियें सर्वत्र अनंतर वृद्धिस्थानक असंख्यातगुणा इतिनाव क्षमानाविजय एवा जिनके० वीरपरमेश्वर तेना चरणकमलनी उत्तमविधि युक्त नक्तिना महिमा थकी संयमश्रेणी पामियें नवनिस्तार थइयें संसार समुद्रनो पारपामियें ॥ १० ॥

ढाल चोथो रागधन्याश्री कलसरूप

गायो गायोरे नलें वीर जगतगुरू गायो ॥ एआंकणीठे संयमश्रेणी थानक षटविधठवणा यंत्र बनायो ॥ अह गण परुपण करतां ॥ मनुज जनम फल पायोरे ॥ नलें० ॥१॥

अर्थ ॥ जगतनागुरु जगतनापुज्य एवा श्री महावीरप्रजु तेने नलेनावेकरी गायो स्तव्यो संयमश्रेणीना स्तवननी संग्रहगाथा कहेता (कहीने) कलस रचीयेठे प्रथम

ढाले संयमश्रेणीना षटस्थानपरूपणा बीजाढाले यंत्रस्थापना त्रीजाढाले अल्पग ण परूपणा करता मनुष्य जन्मनुं फल पाम्युं ॥ १ ॥

शुद्ध निरंजन अलख अगोचर ॥ एहिज साध्य सुहायो ॥ ज्ञा
नक्रिया अवलंबी फरसो ॥ अनुभव सिद्धि उपायोरे ॥ भले० ॥२॥

अर्थ ॥ शुद्धनिरावरण निरजन रागद्वेष अजन रहित अलख लिपि अगोचर ते जे स्वरूप चर्म चक्षुये जणायनही एवो परमात्मा स्वरूपानद विलासी परभाव उ दासी तेहीज अमारो स्वरूप अमने साध्यपणे सुहायो एटले रुच्यो हे आत्मन् हे जीव सम्यक्ज्ञान सम्यक्क्रिया अवलंबीने फरसो पामो जे स्वस्वरूपना विचारमां मनविसरामपामे अने अपूर्व रसस्वादउपजे एवोजे अनुभव ते सिद्धिनुं उपायछे यदुक्तं नाणकिरियाहिंमुक्खो इतिवचनात् ॥ २ ॥

श्रद्धा ज्ञान लह्याछे तोपण ॥ जोनवि जाय पमायो ॥
वंध्य तरु उपमते पामे ॥ सयमठाणजो नायोरे भले० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ संयमश्रेणीनुं महीमा कहियेछे जे सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान पाम्याछे तोपण जो प्रमादस्थानक नजाय तो वांझीया फलरहीत वृक्षनी उपमापामे केम के जोसंयमस्थानक न आव्योतो राजाश्रेणीक तथा सत्यकी विद्याधरनीपरे जाणवु.

जम खर चदन भारनो वाहक ॥ भारनो भागी कहायो ॥ ति
णिपरे ज्ञानी सयम हीनो ॥ सदगतीये नविजायोरे ॥ भले० ॥४॥

अर्थ ॥ जेम गर्दभ बावनाचदननो भारवहेतोथको भारनो भजनार कहेवाय पण सुगधनो भोगी न कहेवाय तेम ज्ञानीपुरुष चारित्रविना ज्ञाननो भोगीथाय पण सद्गतीजे मोक्ष तिहांजायनही यदुक्तं जहाखरो चदन भारवाही ॥ भारस्स भागी नहुचदनस्स ॥ एवपुनाणी चरणेणहीणो नाणस्सभागी नहु सुग्गईए ॥ १ ॥

आश्रव त्यागें सवर परिणति ॥ अविरति सरव ठगायो ॥ स्व
स्वरूपमां थिरता तेहिज ॥ सयम शुद्ध ठहरायोरे ॥ भले० ॥५॥

अर्थ ॥ सयमनु मूलस्वरूप कहियेछे पचाश्रवने त्यागे पचसंवर परणतिरूप मनकरणानियमुभजीववहो ए बार अव्रतिने अनावें पोताना स्वरूपमा स्थिरता रमण निश्चजानुभव तेहीज वीतरागे आगममा शुद्धसयम ठहरायो. ॥ ५ ॥

अनुनव सुरतरु फलने काजे ॥ कीजें आत्म अमायो ॥ सन
मुखनावें जेह प्रवर्त्तन ॥ तेह निवर्त्त निदायोरे ॥ नलें० ॥ ॥६॥

अर्थ ॥ अनुनवरूपजे कल्पवृक्ष तेनुंफलजे मोक्ष ते पामवाने अर्थे आत्मा मायारहीत करवो अथवा अनुनवसुखी जीवनमुक्तछे मोक्षने सन्मुखनावें प्रभुमार्गानुसारी जे प्रवर्त्तन तेहिज निवर्त्तननुं उपायछे यडुक्तं निर्जित मदमदनानां वाकाय मनो विकार रहितानां ॥ विनिवृत्त पराशानां मेहैव मोक्षसुविहितानां. ॥१॥६॥

ज्ञानक्रिया डुग चक्रें शोन्नित ॥ संयम रथ सुखदायो ॥ अनुनव
धोरी युत शिव नगरे ॥ जाता विघ्ननथायोरे ॥ नलें० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ज्ञान अने क्रियारूप वे चक्रके० पइडा तेणेकरी शोनित एवो संयम रूप रथ ते सुखदाईछे अने अनुनवरूप धोरियें जोड्यो तदारूढ आत्मा चिदानंदने शिवनगरियें जातां निरावरणथातां विघ्न अंतराय कोईनथाय ॥ ७ ॥

रायसिद्धारथ वंश विन्नूपण ॥ तिसलाराणीजायो ॥ अजअज
रामर सहेजानंदी॥ ध्यान नुवनमां ध्यायोरे ॥ नलें० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ उदितोदित राजा सिद्धार्थना वंशनो शोनावनारो शील सम्यक्त्व देसविरति एवी त्रिसलाराणीयें जन्म्यो अपुनरावृत्तियें योनिनिर्गम एटले हवे सिद्धावस्था कहीछे जन्मरहित जरामरण रहीत सहेज अकृत्रिम स्वस्वरूपानंदी एवो वीर परमात्मा तेने ध्यानरूप नाव घरमां ध्याव्यो चिंतव्यो ॥ ८ ॥

संवत नंद निधि मुनि चंदे ॥ देव दयाकर पायो ॥ प्रथम जिने
सर पारण दिवशे ॥ स्तवना कलश चढायोरे ॥ नलें० ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ नवनंद नवनिधि सातमुनि एकचंड अंकानांवामतोगतीतिवचनात् एटले संवत् १७९९ नावरसमां देवदयानो करनार पाम्यो अथवा तेनुं सासनपाम्यो जे दिवशे प्रथम जिनेश्वर श्री आदिनाथें वरसीतपनो पारणो इक्षुरसें श्रेयांसने हाथें कीधो ते दिवशें सयमश्रेणे गर्नित श्रीवीरप्रभुनुं स्तवनरूप प्रासादनेविषे कलसचढाव्यो एटले संपूर्णकीधो ॥ ९ ॥

विजयदेवसूरीस पटोधर ॥ विजयसिंह सवायो॥ सत्यशिष्याधर
कपूरविजयबुध ॥ क्षमाविजय पुण्य पायोरे ॥ नलें० ॥ १० ॥

हवे गुरुपरपरा लिखीयेछे श्रीवीरस्वामिना पांचमां गणधर श्रीसुधर्मस्वामि पट्टे ला पट्टोधरथया तिहांथी आठपाटलगे निर्ग्रंथविरुदधारी १ नवमेपाटे सूरिमंत्र कोटी वार जप्या माटे कोटीविरुदधारी २ पन्नरमेपाटें चंद्रसूरि चंद्रवत् घनुसोम्यथया माटे चंद्रगछा कहेवाणा ३ सोलमेपाटे सामतन्नद्राचार्य घणु निर्ममथया वनवासेरह्या माटे वनवासी विरुदथयु ४ छत्रीसमेपाटे सर्वदेवसूरिथया वडतलें आचार्यपद आप्युं अने तेना शिष्यजेथया ते वडसाखानीपरे परिवारे वध्या तेवली घणागुणे वध्या माटे वडगछाकहेवाणा ५ चुमालीसमेंपाटे आंबिल वर्द्धमान तपकीधामाटे राणाजीये तपाविरुददीधो तिहांथी तपाकहेवाण ६ अनुक्रमे बासठमेंपाठे आदेयनामधारी श्रीविजयदेवसूरि तत्पटप्रनावक सवाइ विजयसिंहसूरि तेनी साची ग्रहणा शिक्षा आसेवना शिष्याधारी अर्थात् पंमित सत्यविजयगणि गछनायकनी आज्ञा मागी क्रिया उद्धारकीधो श्रीआनंदघनसाथे वनवासरह्या अनेक तपकीधा. अनुक्रमेवृद्धावस्थाजाणीने अनिहलपुर पाटणमां रहेता धर्मोपदेशदेता तेमना शिष्य पंमित कपूरविजय अने पंमित कुशलविजय थया तेमा श्रीकपूरविजयगणितो अरिहंतप्रतिमा प्रतिष्टादिक अनेक धर्मकार्यकारी प्रनावक थया देश नगर पुर पाटणे विहार करता करता रह्या तेमना शिष्य पंमित वृद्धविजयगणि तथा पंमित क्षमाविजयगणि थया तेमा पंमित क्षमाविजयगणि तो देशनाआपवाना गुणेकरी अनेक नव्यजीवोने उपकारी पवित्र चरण कमल धारी थया ॥ १० ॥

सूरतमांहे सूरय मंमण॥ श्रीजिन विजय पसायो ॥ विजयद
यासूरिराजे जगपति॥ उत्तमविजय मल्हायोरे॥ नलेण॥११॥

अर्थ ॥ श्रीसूरतबंदरे सूर्यममण पार्श्वनाथनी स्मृति प्रणाति महिमाये तथा पंमित श्रीक्षमाविजयगणि शिष्य रत्न सप्रति विद्यमान चिरजीवी परमोपकारी पंमितश्री जिनविजयगणिये उद्यमकरी मने प्रथम अन्यास कराव्यो ते जेम माता पिता पुत्रने प्रथम पगमांमवा तथा बोलवा शिखवे तेम गुर्वादिके मने उपकारकीधो ए श्री तपागछधिराज नट्टारक श्रीविजयदयासूरिश्वरना राजमा जगत्पति जगत् परमेश्वर श्रीवीरस्वामिने मुनि उत्तमविजये मल्हायो गायो स्तवनागोचरकीधो ए स्तवन अमछरी गीतार्थ पुरुषो तमे सोधजो नणावजो नणता नणावता संयमश्रेणीये नूपितथइ सहेजानंदपामजो ॥ ११ ॥

इतिश्री संयमश्रेणी गर्नित वीरविनो स्तवनं समाप्त श्रीरस्तु.

॥ श्री जिनेंद्राय नमः ॥

अथ श्री लोकनालद्वात्रिंशिका बालावबोध सहित प्रारंभः

प्रथम बालावबोध कर्त्तानुं मंगलाचरणः—

श्रीमदार्हं प्रणम्यादौ, जगत स्थिति दर्शकं ॥
वक्ष्ये लोक विचारस्य, वार्त्तिकं समयानु गम् ॥ १ ॥

व्याख्याः— जगतनी स्थितिना देखाडनारा एटले जगतनी यथार्थ स्वरूप स्थितिना देखाडनारा श्रीवीतराग भगवानने प्रणाम करीने एटले नमस्कार करीने आ लोकना विचारनुं वार्त्तिक समयानुसारे एटले आगमोक्त प्रकारे हुं कहुं छुं॥१॥

जिण दंसणं विणाजं, लोअं पूरंति जम्म मरणेहिं ॥
भमइ जिओणंत भवे, तस्स सरूवं किमवि वुछं ॥ १ ॥

व्याख्याः— 'जिण'—जिन एटले श्रीतीर्थंकरदेव, तत्प्रणीत 'दंसण'—दर्शन एटले सम्यक्त्व, दर्शन अथवा तीर्थंकरनुं दर्शन ते मनोवचन तथा काय ए त्रिकरण भावे करी जे देखवुं ते छे. 'विण'—ते विना 'जं'—जे 'जम्ममरणेहि'—जन्म तथा मरणे करी 'लोअ'—लोक एटले सामान्यपणे चौदराज लोकने 'पूरंति'—पूरतो थको 'अणंत भवे'—अनंत भवप्रते 'जिओ भमइ'—जीव भमेछे, 'तस्ससरूवं'—ते लोकनुं स्वरूप, आकार, लांबी, पहोलाई तथा जाडाई 'किमवी'—कांईक स्तोकमात्र 'वुछं'—कहुं छुं. ॥ १ ॥

अवतरणः— अनंत प्रदेश अलोकाकाशनेविषे सामान्यपणे अल्पमात्र लोकनो आकार वखाणे छेः—

वइसाह ठाण ठिय पय, कडिछ कर युग नरागिई लोगो ॥
उप्पत्ति नास धुअ गुण, धम्माइ छ दव्व पडिपुन्नो ॥ २ ॥

व्याख्याः— 'वइसाह'—रवाइओ तेना 'ठाण'—विलोववाना समयनेविषे 'ठिय'—स्थित एटले स्थाप्या छे 'पय'—पद एटले बे चरण जेणे, वली विलोवतां 'कडिछ'—कटिस्थ एटले कटीनेविषे जे 'करयुग'—हस्थ युगल एवो जे 'नरागिई'—

नराकृति एटले मनुष्यना जेवो जेनो आकार छे, एवो लोक छे तथा विलोववाना अधिकारमाटे नर शब्देकरी प्रायें स्त्री जाणी लेवी स्त्री ज्यारे छास विलोवेछे, त्यारे बे पग मोकला राखेछे अने कटिप्रदेशनेविषे यथा बंध सकीर्ण थाय तेनी पठे लोक पण हेठल पहोळोछे तथा चढतो मध्य भागनेविषे सकीर्ण छे वली विलोव तां बन्ने हाथ कटि देशमा राख्यामा आवेछे, त्यारे बे कोणीना वचला भागमां कटि प्रदेशथी हृदयसुधी चढतो विस्तार थायछे. अने मस्तक दिशी सकीर्ण छे तेम लोक पण मध्य भागथी ऊपर चढतां पांचमां देव लोकसुधी विस्तार पामे लो छे त्यांथी वली सकीर्ण थायछे तेमाटे विलोवनारी स्त्रीना आकारनु दृष्टांत कह्यु छे हवे ए लोकमां कया कया पदार्थो छे? ते कहेछे –'उप्पत्ति'–उपजवुं, 'नास'–नाशने पामवु, 'धुअ'–ध्रुव एटले निश्चलपणुं अथवा स्थिति ए 'गुण, गुणो जेनेविषे छे, एवा 'धम्मइ'–धर्मास्तिकायादिक 'छदव'–छ द्रव्य एटले पदा र्थ जेमा 'पडिपुन्नो'–परिपूर्ण भर्या छे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशा स्तिकाय पुद्गलास्तिकाय जीवास्तिकाय तथा काल ए छ द्रव्य जाणवां ॥ २ ॥

अवतरण – केटलाएक परदर्शनी एम कहेछे के, लोक ब्रह्माए उत्पन्न कर्यो छे, विष्णु पालना करेछे, महादेव सहार करेछे, शेषनाग काछवो तथा काम धेनु धारण करी रह्यां छे, एम कहेछे तेनुं निराकरण करेछे –

केणवि न कउ न धउ, ऽणाहारो नहठिउ सयं सिद्धो ॥
अहमुह महमल्लग लवु, तउवरि सपुम सरिछो ॥ ३ ॥

व्याख्या – 'केणवि'–कोईए पण 'नकउ'–आ लोक उत्पन्न कर्यो नथी, 'नधउ' कोइए पण धर्यो नथी 'अणाहारो'–निराधार छे सर्व पदार्थ लोकने आधारे छे, 'नहठिउ'–ए लोक नभजे आकाश तेनेविषे स्थित छे, 'सयंसिद्धो'– तेथी स्वयंसिद्ध छे ए लोकनो आकार प्रकारांतरे कहेछे – 'अहमुह'–अधमुख एटले ऊधो कीधेलो जे मोटो 'महमल्लग'–महत् मल्लक एटले मोटो सराव, 'त उवरि'–तेनी ऊपर 'लघु सपुड'–न्हाना सरावनो सपुट कर्यो होय तेनी 'सरि छो'–सदृश एटले तेना सरखो आ लोकनो आकार छे. ॥ ३ ॥

पयतलि सग मह्लेगा, पण कुप्परि सिरतलेग रज्जु पिहु ॥
सो चउदस रज्जुओ, माघवइ तलाउजा सिद्धी ॥ ४ ॥

व्याख्याः– 'पयतलि'–पदतले एटले पहेलां जे वैशाख स्थान स्थित मनुष्यने आकारे लोक कह्यो; ते पगना तलियाने ठेकाणे चारेदिशिए सात राज प्रमाण पोलो छे; अने मध्य भाग जे पुरुषाकारनेविषे नाभिनुं ठाम छे, त्यांहां एक राज प्रमाण चारे दिशिए पोलो छे. बन्ने हाथनी कोणीना ठामनेविषे पांच राज प्रमाण पोलो छे; अने मस्तकने ठेकाणे एक राज प्रमाण पोलो छे; वली ते लोक हेठली माघवती सातमी नरक पृथ्वीना तलाथी ऊपर यावत् सिद्ध शिलासुधी जोतां चौद राज प्रमाण आ लोक ऊंचो छे ॥ ४ ॥

अवतरणः– हवे पहोलाणनी स्थिति कहेछेः–

सगरज्जु मघवइ तला, पएस हाणीय मझियले एगा ॥
तो वुड्ढि बंभजा पुण, पण हाणीजा सिवे एगा ॥ ५ ॥

व्याख्याः–माघवती जे सातमी नरक पृथ्वी, तेना तलाथी चारे दिशिनेविषे ए लोक सात राज प्रमाण पहोलो छे; त्यांथी प्रदेशनी हानी करतां ऊपर तिर्यगलोकनी मझी तलनेविषे आवे त्यारे चारे दिशिनेविषे एक राज प्रमाण विस्तार छे. त्यांथी वली ऊपर जातां वृद्धि थाय छे; ते पांचमो ब्रह्म नामे देवलोक छे त्यां चारे दिशाए पांच राज प्रमाण पहोलो छे. त्यांथी वली प्रदेश घटता छे. ते ज्यां सिद्ध शिला छे त्यां चारे दिशिए एक राज प्रमाण पहोलो छे. तथा हाणी वृद्धि जे छे ते तो प्रदेश मात्र कही छे. तो पूर्ण खांडुआ केम मांझिये छैए? त्यां ए विशेष छेः– जे बन्नेपासे प्रदेशनी हाणी छे तोपण ऊतरतां तथा चढतां बन्ने पासाना बे त्रिखूणा लई, अवला सवला जोडी खांडुआमां भेलीए त्यारे खांडुआं पूरां थाय. एम सर्वत्र जाणवुं. हवे विस्तारनो विवरो लखीए छैएः– सातमी नरक पृथ्वी सात राज प्रमाण, छठी साडा छ राज प्रमाण, पांचमी छ राज प्रमाण, चोथी पांच राज प्रमाण, त्रीजी चार राज प्रमाण, बीजी अढीराज प्रमाण तथा पहेली घम्मा नरक पृथ्वी एक राज प्रमाण पहोली छे. चारे दिशिउनेविषे ए विस्तार छे. ऊर्ध्वलोकनो विस्तार आगल कहीशुं. ए मान लोकनाल बत्रीशीने अनुसारे कह्युं छे. ग्रंथांतरनेविषे अन्यप्रकारेपण दीठामां आवेछे. निश्चयनी वार्त्तातो ज्ञानी जाणे. ॥ ५ ॥

अ०ः–हवे लोकनाल मांझवानो उपाय कहेतां प्रथम त्रस नाडीनो विचार कहेछेः–

सगवन्न रेह तिरिछ्रं, छवसु पणुड्ढ च रज्जु चउअंसे ॥
इग रज्जु विछरा यय, चउद्दस रज्जुच्च तसनाडी ॥ ६ ॥

व्याख्या —सत्तावन रेषा ऊभी स्थापीये, वली पांच रेषा ऊभी मांमिए, एम करतां ऊंचपणे चउ खूणा उपन्न खंम थाय, ऊभी सत्तावन्न रेषा छे तेमाटे तेना छप्पन खम्म थाय छे ऊभी पांच रेषा छे. तेना ऊभा चार खांमुआ थाय, चार खांमुए एक राज थाय, तथा ए त्रस नाडी पहोलाईए करी एक राज प्रमाण, अने लां ब पणे चौदराज प्रमाण जाणवी. ॥ ६ ॥

अवतरण — तथा लोकनो मध्य नाल ते त्रस नाडी तेमां बेंद्रियादिक त्रस जीव जन्ममरण पामे छे, माटे त्रस नाडी कहेवाय छे ए त्रस नाडीनी बाहार जे लोकोनो विस्तार छे, त्यां सूक्ष्म एकेंद्रिय निगोद सर्वत्र व्यापी रह्या छे ते बाहा रनो विस्तार अधोलोकनेविषे कह्यो हवे ऊर्ध्वलोकनेविषे खामुआनो विस्तारकहेछे

उर्द्धं तिरिअं चउरो, दुसु छ दुसु अठ दसय इक्किक्के ॥
वारस दोसु सोलस, दोसुं वीसाय चउसु पुढो ॥ ७ ॥

व्याख्या —ऊर्ध्व लोकनी श्रेणीनेविषे प्रथम रत्नप्रभा नरकपृथ्वी थकी ऊपर जे आठयावीश खामुआनी श्रेणी छे तेमा लोकना मध्यथी ऊपर पहेली बे श्रे णीनेविषे चार चार खांडुआ त्रस नाडीनाज छे पण त्रस नाडीथी बहार नथी. त्यार पछी वली तेथी ऊपर बे श्रेणीनेविषे छ छ खामुआ छे, एटले चार खामुआ त्रस नाडीना अने एकेको बन्ने पासानो खामुओ लेखवतां छ खामुआ थाय त्यार प छी ऊपर एक श्रेणीनेविषे आठ खामुआ छे. ते बबे खांमुआ बे पाशे तेनां चार खांमुआ अने त्रस नाडीना चार खामुआ ए आठ खामुआ छे वली तेनी ऊपर एक श्रेणीनेविषे दश खामुआ छे तेबन्ने पासे त्रण त्रणछे,अने त्रसनाडीना चार मली दश थाय छे त्यार पछी बे श्रेणीनेविषे बार बार खामुआ छे, त्यार पछी बे श्रेणीनेविषे शोल शोल खामुआ छे, तेमज चार श्रेणीनेविषे वीश वीश खामु आ छे ते बधा पृथक् एटले जुजुआ छे ॥ ७ ॥

अवतरण —एवी रीते ऊर्ध्व लोकनेविषे प्रदेशनी वृद्धिना खामुआ कह्या, एटले अगावीश श्रेणीमा चोद श्रेणी थई, हवे हानीना खामुआ कहे छे.—

पुणरवि सोलस दोसु, वारस दोसु च तिसु दस तिसु छ ॥
छडुसु डसुं चउ खमुअ, सवे चउरुत्तरा तिसया ॥ ८ ॥

व्याख्या —वली पदरमी तथा शोलमी ए बे श्रेणीनेविषे शोल शोल खांमुआ

छे. सतरमी तथा अढारमी ए बे श्रेणीनेविषे बार बार खांडुआ छे. ओगणीश मी, वीशमी तथा एकवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविषे दश दश खांडुआ जाणवा. बावीशमी त्रेवीसमी तथा चोवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविषे आठ आठ खांडुआ जा णवा. पचीशमी तथा छवीशमी ए बे श्रेणीनेविषे छ छ खांडुआ छे अने सत्यावीशमी तथा अठ्यावीशमी ए बे श्रेणीनेविषे चार चार खांडुआ त्रस माहेलाज छे ॥ ८॥

अवतरणः—एवी रीते ऊर्ध्व लोकनी अठ्यावीश श्रेणीना खांडुआनुं मान कह्युं ए प्रमाणे सर्व ऊर्ध्व लोकना खांडुआ त्रणशेने चार थाय छे. वली पण कहेछेः—

छयरीय लोअ मझा, चउ चउ ठाणेसु सत्त पुढवीसु ॥
चउर दस सोल वीसा, चउवीस छवीस अडवीसा ॥९॥

व्याख्याः—चौद राज प्रमाणनो मध्य एटले जे वज्रनो प्रदेशछे, त्यांथी अधोलो क प्रते ऊतरतां सात नरक पृथ्वीनेविषे प्रत्येके प्रत्येके चार चार श्रेणीनेविषे क हे छे ते केम? अधो लोकनी अठ्यावीश श्रेणीमां पहेली नरक पृथ्वीनी चार श्रेणी नेविषे चार खांडुआ छे. तेना शोल खांडुआ थाय छे. बीजी नरक पृथ्वीनेविषे चार श्रेणीए प्रत्येके प्रत्येके दश दश खांडुआ छे. तेने दश गुणा करतां चालीश खांडुआ थाय छे. त्रीजी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमां प्रत्येके प्रत्येके शोल शोल खांडुआ छे. तेना चोसठ थायछे, चोथी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमानी प्रत्येकमां वीश वीश खांडुआ छे. तेना एशी खांडुआ थायछे. पांचमी नरक पृथ्वीए चार श्रे णीमां प्रत्येके चोवीश चोवीश खांडुआ छे, तेना छनु थायछे. छठी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमां प्रत्येके छवीश छवीश खांडुआ छे, तेना एकशोने चार थायछे सात मी नरक पृथ्वीनेविषे चार श्रेणीए प्रत्येकमां अठावीश अठावीश खांडुआ छे. ते ना एकशोने बार थाय छे. एवी रीते शोल, चालीश, चोशठ, ऐंशी, छनु, एकशो ने चार तथा एक शें ने बार ॥ ९ ॥

अह पण सय बारुत्तर, खंडुअ सोलहिय अठसय सवे ॥
धम्माइ लोकमझं, जोयण असंख कोडीहिं ॥ १० ॥

व्याख्याः— अधोलोकना सर्व एकठा खांडुआ गणिए तो पांचशेने बार उपर थाय अने पूर्वे ऊर्ध्व लोकना त्रणसेने चार कह्या तेने साथें मलावीये तेवारे सर्व मली आठशेने शोल खांडुआ थायछे. हवे लोकना मध्यनुं ठाम कहे छेः धम्मा

नामनी प्रथम नरक पृथ्वीनेविषे असंख्यात योजननी कोडी मेरूना मूलनेविषे गो स्तनाकार रुचकथी हेठल लोकनो मध्यनाग जाणवो ॥ १० ॥

अवतरण –हवे चाद राजनेविषे अधो लोक, तिर्यक् लोक तथा ऊर्ध्व लोक मां कोण कोण रहेछे ते कहे छे –

सग रज्जु जोयण सया, अठार सुण सगरज्जु माण इहं ॥
अह तिरिय उड्ढ लोआ, निरय नर सुराइ नावुल्ला ॥ ११ ॥

व्याख्या –लोकना मध्यथी आठमा राजनेविषे समनूतलथी नवशें योजन ऊंचो तथा नवशें योजन हेठल ए अढारशें योजन प्रमाण तिर्यग् लोक कहेवाय छे. त्यारे ऊर्ध्व लोकना सात राज छे ते अढारशें योजन ऊर्ध्व लोकमां गयाथी हेठला सात राज ते अधो लोक कहेवाय, आढारशें योजन रहित सातराज प्रमाण ऊर्ध्व लोक कहेवाय छे. हवे अधो लोकनेविषे नारकी प्रमुख, तिर्यक् लोकनेविषे मनुष्यादिक, अने ऊर्ध्व लोकनेविषे देवता प्रमुख वशेछे यद्यपि नवनपत्यादिक देवता अधोलोकमां वशेछे तथापि नारकी घणा छे, माटे तेज अधोलोके कह्याछे.११॥

अह लोय निरय असुरा, वंतर नर तिरिअ जोइस तरुग्गी ॥
दीवु दहि तिरिअ लोए, सुर सिद्धा उड्ढ लोगम्मि ॥ १२ ॥

व्याख्या – पाछली गाथानेविषे 'निरय नर सुराइ'–ए वाक्यमां आदि शब्द आव्यो छे माटे आदिशब्द निरयादि त्रणे शब्दोनी साथे जोडिये. त्यारे निरयादिक नारकी असुर देवता अधोलोकमा वशेछे व्यतर नर मनुष्यादिक तिर्यच ज्योतिषी, तरु वनस्पतिकाय अग्निकाय एअसख्याता द्वीप समुद्ररूप तिर्यक लोकमा वशेछे. सुरादिक सुर देवता, सिद्ध कहिये मुक्त जीव ते सर्व ऊर्ध्व लोकमा रह्या छे ॥१२॥

इक्किक रज्जु इक्कि,क निरय सग पुढवि असुर पढमतो ॥
तह वतर तडवरि नर, गिरिमाइ अ जोइसा गयणे ॥१३॥

व्याख्या – एकेक राज प्रमाण एकेक नरक पृथ्वी छे एटले साते नरके सात राज थया. तथा पहेली नरक पृथ्वीमा असुर एटले नवन पति रहेछे, तथा प्रकारे व्यतर पण पहेली नरक पृथ्विमां रहेछे तथा प्रथम पृथ्वीनी ऊपर नर मनुष्य अनेक नगर गिरि एटले मेरु पर्वतादिक पदार्थना समूह छे. चद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारा ए पाच प्रकारना ज्योतिषी गयणेके० आकाशनेविषे रहेछे.॥१३॥

छसु खंडुगेसु अ डुगं, चउसु डुगं छसु अ कप्प चत्तारी ॥
चउसु चऊ सेसेसु अ, गेविज्ज णुत्तराय सिद्धंते ॥ १४ ॥

व्याख्या.– लोकना मध्यथी ऊपर छ खांडुआना ऊपरला भागनेविषे सौधर्म ईशान ए नामना बे देवलोक छे. एटले अही लोकना मध्यथी दोढ राज ऊंचा बे देवलोकछे. वली त्यांथी चार खांडुआ ऊपरना भागनेविषे सनत्कुमार तथा माहेंद्र नामना बे देवलोक छे. त्यांथी छ खांडुआमां अनुक्रमे ब्रह्म, लांतक, शुक्र तथा सहस्रार नामना चार देवलोक छे. त्यारपछी चार खांडुआनेविषे चार देवलोक आनत, प्राणत, आरण, तथा अच्युत नामना छे. बाकीना आठ खांडुआनेविषे नव ग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तर विमान छे. तेमां प्रथम चार खांडुआनेविषे नवग्रैवेयकछे ने उपरना चार खांडुआनेविषे पांच अनुत्तर विमानछे. अंतखांडुआना छेडानेविषे सिद्ध शिलाछे.

अवतरणः– एवीरीते ऊर्ध्व लोकनेविषे देवलोकनी स्थिति कही, तेविषे आगमनी साख कहेछे तथा चागमेः–

सोहम्मम्मि दिवड्ढा, अड्ढाइज्जा य रज्जु माहिंदे ॥
चत्तारी सहसारे, पणच्चुए सत्त लोगंते ॥ १५ ॥

व्याख्याः– लोकना मध्यथी सौधर्म देवलोक दोढराज ऊंचो छे; लोकना मध्यथी माहिंद्र देवलोक अढीराज ऊंचो छे; लोकना मध्यथी सहस्रार देवलोक चार राज ऊंचो छे; लोकना मध्यथी अच्युत बारमो देवलोक पांचराज ऊंचो छे; अने लोकना मध्यथी लोकांत सात राजऊंचो छे. ॥ १५ ॥

सम्मत्त चरण रहिया, सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं ॥
सत्तय चउदस भाए, पंचय सुय देस विरईए ॥ १६ ॥

व्याख्याः– सम्यक्त्व एटले देवनेविषे देवनी सद्दहणा, गुरुनेविषे गुरुनी सद्दहणा, दयामूल धर्मनेविषे धर्मनी सद्दहणा, चरण एटले पंचाश्रवथी विरमण, पांच इंद्रियनो निग्रह, अनंतानुबंधिया क्रोध, मान, माया तथा लोभनो त्याग; मनोदंड, वचन दंड. कायदंड, तेनी विरति एवा जे संयमना सत्तर भेद, तेणेकरी संयुक्त जे चारित्र तेणेकरि रहित एटले मिथ्यात्व कुगुरु, कुदेव, तथा कुधर्मना सद्दहनार अविरति एवा जे संसारी जीव तेने सम्यक्त्व चरण रहित कहिये, एवा जीवो चौद राजलोक प्रते सूक्ष्म तथा बादर जीव योनिमां फरता थका निरविशेष

पणे फरसे एटले चौदराजमां तिलमात्र भूमि अण फरसी न मूके, श्रुतज्ञानी जे यति छे ते लोकना मध्यथी उंचे सात राज फरसे छे, कारण के, श्रुत ज्ञानी ने उत्कृष्टी गति सर्वार्थ सिद्धि सुधी छे एवु सिद्धांतमां कह्यु छे ते सर्वार्थ सिद्धि लोकना मध्यथी काई एक ऊणा सात राज छे. ते स्तोकमात्र ऊणा होवा थी सामान्य पणे पूराज गण्यामां आव्या छे " छठमह सजयाण, छववाउं उ कोसउ असवछे ", एम कह्यु छे 'चउदस भागे पंचय, वली देशविरति बारव्रत धर श्रावक ते चौद राजना चौद भागमांथी, पाच भाग ऊर्ध्व लोकना फरशे, केमके, श्रावकनी उत्कृष्टी गति अच्युत नामना बारमा देवलोकसुधी कही छे ते बारमो देवलोक लोकना मध्यथी पाच राज उचो छे. तेमाटे पांच राज कह्या

अवतरण – हवे प्रथम सुचिरज्जु, प्रतररज्जु, घनरज्जु, तेउना अनुक्रमे प्रमाण कहेता प्रथम सातमी नरक पृथ्वीनी आदिथी मांमीने सुचिरज्जु कहेछे –

अडवीसा छवीसा, चउवीसा वीस सोल दस चउरो ॥ सुइ
रज्जु सत्त पुढविसु, चउ चउ भइआउ पयर घणा ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ सातमी नरक पृथ्वीनेविषे अगावीश सुचिरज्जु छे, छठी नरक पृथ्वीने विषे छवीश सुचिरज्जु, पाचमी नरक पृथ्वीनेविषे चोवीश सुचिरज्जु, चोथी नरक पृथ्वीनेविषे वीश सुचिरज्जु, त्रीजी नरक पृथ्वीनेविषे शोल सुचिरज्जु, बीजी नरक पृथ्वीनेविषे दश सुचिरज्जु तथा पहेली नरक पृथ्वीनेविषे चार सुचीरज्जु, जे चार खंडु आ श्रेणीबध, अने पहोलाईए एकज खडुओ होय तेने सुचिरज्जु कहिये सात मी नरकपृथ्वी चार खडुआ ऊंची छे, अने अगावीश खडुआ त्रीछी ओलीए छे, ए माटे अगावीश सुचिराज जाणवा एवी सर्वत्र भावना करवी हवे ए साते नरकपृथ्वीना सुचिरज्जुनुं मान जे एकछेने अगावीश थायछे ते चार भागे करीए तो प्रतर रज्जुनु मान मले वली ते प्रतर रज्जुनु आंक चारे भागे देतां जे फलितांक थाय तेटला घनरज्जु जाणवा चार चार खाडुआ चारे दिशिए, एटले अकेक राजलांबो तथा पहोलो अने पाराज जाडो होय ते प्रतररज्जु कहेवाय छे, तथा चार खांडुआ जाडापणे, लांबपणे तथा पोहोलपणे ते घनरज्जु कहिये पहेला प्रतर रज्जुनेविषे शोल खांडुआ होय घनरज्जुनेविषे चोशठ खाडुआ होय, ते आगल कहेवाशे ॥ १७ ॥

अडवीस सय छसयरि, अट्ठ उट्ठ चउ जुया छुमय सवे ॥
सुइ रज्जु पयर रज्जु, दुतीसि गुण वीस इगवण्णा ॥ १८ ॥

व्याख्याः– अधो लोकनेविषे पांचशेंने बार खांडुआ छे; तेना चार भाग करतां प्रत्येक भाग एकशोने अगवीशनो थाय तेटला सुचिरज्जु जाणवा. ऊर्ध्वे लोकनेविषे त्रणशेने चार खांडुआ छे तेना चार भाग करतां प्रत्येक भाग छोतेरनो थाय; तेटला सुचिरज्जु जाणवा. ते अधोलोकना एकशोने अगवीश सुचिरज्जु, तथा ऊर्ध्वे लोकना छोतेर सुचिरज्जु, ए बन्ने एकठा करिये त्यारे बशेने चार सुचिरज्जु थाय. अधोलोकना एकशोने अगवीश सुचिरज्जुने चार भाग दैये त्यारे बत्रीश प्रतररज्जु थाय; ऊर्ध्वे लोकना छोतर सुचिरज्जुने चार भाग दैये तो ओगणीश प्रतररज्जु थाय. ॥१८॥

अवतरणः– हवे घनरज्जुनुं मान कहेछेः–

घणरज्जु अठ हिठा, पभुण पणुड्ढं उभे पभुण तेर ॥
घण पयर सूइ रज्जु, खंडुअ चउसठि सोल चउ ॥१९॥

व्याख्याः–अधोलोकना बत्रीश प्रतररज्जु छे; ते चार भागे देतां आठ थाय; माटे अधोलोकनेविषे आठ घनरज्जु जाणवा. ऊर्ध्वे लोकनेविषे ओगणीश प्रतररज्जु छे ते चार भागे देतां पोणा पांच घनरज्जु छे. ते उभे कहेतां अध तथा ऊर्ध्व लोकना एकठा करिये तो पोणा तेर घनरज्जु थाय. हवे घन प्रतर तथा सुचिरज्जुनुं मान कहेछेः–चोसठ खांडुआनो एक घनरज्जु थाय, शोल खांडुआनो एक प्रतररज्जु थाय, चार खांडुआनो एक सुचिरज्जु थाय. ए सामान्य प्रकारे दृष्टांत मात्र चतुरस्त्र लोकनुं परिणाम देखाड्युं; पण लोकनुं स्वरूप वृत्ताकार मल्लकने आकारेछे, ते वृत्ताकारना खांडुआ यंत्रमां लखाय नही, माटे चौरस कह्यो छे. ॥ १९ ॥

अवतरणः–हवे मन कल्पनाए कृत वृत्ताकार लोकनेविषे घनरज्जु, प्रतररज्जु, तथा सुचिरज्जुनुं मान कहेछे, तेमां प्रथम खांडुआनी संख्या केहेछेः–

सयवग्गु सिंगुणे पुण, विसय गुणयाल हवंति घण रज्जु ॥
सड्ढ पणहत्तरि सयं, सड्ढ तिसठी अहुड्ढ कमा ॥ २० ॥

व्याख्याः– पोताना वर्गेथी खांडुआ गणीए. ते आ प्रमाणेः– सातमी माघवती पृथ्वीनेविषे हेठली श्रेणी ए अगवीश खांडुआछे; तेने अगवीशना आंकथी गुणीए त्यारे सातशेनें चोराशी खांडुआ एक श्रेणीमां थाय. एवी चार श्रेणी छे. तेथी सातशोने चोराशीने चारे गुणतां त्रण हजार एकशोने छत्रीश खांडुआ थाय. एम छठी नरक पृथ्वीनेविषे हेठलनी श्रेणीए छवीश खांडुआ छे. तेने छवीश

थी गुणता ढशोने ढोतेर थाय एवी चार श्रेणीउं ढे तेथी ढशोने ढोतरने चार थी गुणतां वे हजार सातशेने चार घनरज्जुना खांडुआ थाय पाचमी नरक पृ थ्वीनेविषे हेठलनी श्रेणीए चोवीश खांडुआ ढे तेने चोवीशथी गुणतां पांचशेने ढोतेर थाय एवी चार श्रेणी ढे तेथी पाचशोने ढोतरने चा रथी गुणता वे हजार त्रणशेने चार घनरज्जुना खांडुआ थाय चोथी नर क पृथ्वीनेविषे ठेली श्रेणीए वीश खांडुआ ढे तेने वीशथी गुणता चारशें थाय. एवी चार श्रेणी ढे तेथी चारशेने चारथी गुणता शोलशे घनरज्जुना खांडुआ थाय त्रीजी नरक पृथ्वीनेविषे ठेली श्रेणीए शोल खांडुआ ढे तेने शोलथी गुण ता वशेने ढप्पन थाय एवी चार श्रेणी ढे तेथी वशेने ढप्पनने चारे गुणतां ए क हजारने चोवीश घनरज्जुना खांडुआ थाय वीजी नरक पृथ्वीनेविषे ठेली श्रे णीए दश खांडुआ ढे तेने दशे गुणता एकशो थाय एवी चार श्रेणी ढे तेथी एकशोने चारे गुणता चारशो खांडुआ थाय अने पेली नरकपृथ्वीनेविषे ठेली श्रे णीए त्रस नाडीना चार खांडुआ ढे तेने चारे गुणता शोल थाय एवी चार श्रे णी ढे तेथी शोलने चारथी गुणता चोशठ थाय त्यारे पहेली नरकपृथ्वीनेविषे घनरज्जुना चोशठ खांडुआ जाणवा एवी रीते सात नरकपृथ्वीना खांडुआनो व र्ग करी सर्व अंक एकठा करीए तो अग्यार हजार वशोंने वत्रीश अधोलोकनेविषे घनरज्जुना खांडुआ थाय हवे ऊर्ध्वलोकनेविषे घनरज्जुना खांडुआनो विचार क हेछे –ऊपर लोकना मस्तकथी आदि लेवी ऊपरनी श्रेणीए चार खांडुआ त्रस नाडीना ढे तेने चारे गुणता शोल थाय एवी वे श्रेणीउं होवाथी शोलने वमणा करता वत्रीश घनरज्जुना खांडुआ थाय तेथी हेठलनी श्रेणीनेविषे ढ खांडुआ ढे. तेने ढ गुणा करतां-ढत्रीश थाय. एवी वे श्रेणीउं होवाथी ढत्रीशने वमणा करतां वो तेर थाय पढी आठने आठ गुणा करिये त्यारे चोशठ थाय एवी त्रण श्रेणीउं हो वाथी चोशठने त्रण गुणा करता एकशोने वाणु थाय त्यार पढी दशने दश गुणा करिये त्यारे एकशो थाय एवी त्रण श्रेणीओ होवाथी एकशोने त्र णथी गुणता त्रणशें थाय पढी वारने वार गुणा करिये त्यारे एकशोने चुमाली श थाय एवी वे श्रेणीओ होवाथी एकशोने चुमालीशने वमणा करता वशेंने अठयाशी थाय पढी शोलने शोलथी गुणता वशेंने ढपन थाय एवी वेश्रेणीओ होवाथी वशेंने ढपनने वमणा करतां पांचशेने वार थाय पढी वीशने वीशथी गुणता चारशे थाय एवी चार श्रेणीओ होवाथी चारशेने चारथी गुणतां शोलशें

थाय. वली त्यांथी घटतां शोलने शोलथी गुणतां बशेने छपन थाय. एवी बे श्रेणीओ होवाथी बशेंने छपनने बमणा करतांपांचशेने बार थाय त्यांथी हेठल बारने बारे गुणतां एकशोने चुमालीश थाय. एवी बेश्रेणीओ होवाथी एकशोने चुमालीशने बमणा करतां बशेने अगाशी थाय. त्यांथी हेठल दशने दशे गुणतां एकशो थाय. एवी एकज श्रेणी होवाथी एकशोज गणवा. त्यांथी हेठल आठने आठे गुणतां चोशठ थाय. एवी एकज श्रेणी होवाथी चोशठज गणवा. त्यांथी हेठल छने छथी गुणतां छत्रीश थाय एवी बे श्रेणीउ होवाथी छत्रीशने बमणा करतां बोतेर थाय. त्यांथी हेठला चारने चारे गुणतां शोल थाय. एवी बे श्रेणीउ होवाथी शोलने बमणा करतां बत्रीश थाय. ए सर्व अंक एकठा करतां उर्ध्वलोकनेविषे चार हजारने चोसठ घनरज्जुना खांडुआ थायछे. तेने पूर्वोक्त अधोलोकना अग्यार हजार बशो बत्रीस खांडुआनी साथें एकठा गणतां पंदर हजार बशोने छनु घनरज्जुना खांडुआ थाय. एवीरीते पोताना वर्गनी साथे गणतां चोशठ खांडुए एक घनरज्जुथाय छे. माटे पंदर हजार बशोछनुने चोशठ भागे वेंचतां बशोने ओगणचालीशनो भाग आवे. त्यारे ए वृत्ताकार लोकनेविषे बशेंने ओगणचालीश घनरज्जु थाय छे. हवे अधोलोकना तथा उर्ध्व लोकना घनरज्जुउ भिन्न भिन्न करी कहेछेः— 'सड्ढ पण हत्तरियं' अधोलोकनेविषे एकशोने साडी पचोतेर घनरज्जु थाय छे. 'सड्ढति सट्ठीअ दुड्ढकमा' ऊर्ध्व लोकनेविषे साडी त्रेसठ घनरज्जु थाय छे. अनुक्रमे ए मान जाणीलेवो. ए बन्ने एकठा करिये त्यारे बशोने ओगणचालीश घनरज्जु थाय ॥२०॥

अवतरणः— हवे घनरज्जुना खांडुआना प्रतररज्जु कहे छेः—

चउ गुणिय पयर रज्जु, सत्त डुरुत्तरय डुसय चउपण्णा ॥
अह उढ नव छप्पण्णा, सव्वे चउ गुणिय सुइ रज्जु ॥२१॥

व्याख्याः— अधोलोकनेविषे एकशोने साढी पचोतेर घनराज छे. तेने चारथी गुणतां सातशे ने बे अधोलोकनेविषे प्रतरराज थाय. ऊर्ध्व लोकनेविषे साडी त्रेसठ घनराज छे, तेने चारथी गुणतां बशेंने चोपन प्रतर राज थाय. एम अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना एकठा करिये त्यारे नवशे ने छप्पन प्रतरराज थाय. ए सर्व प्रतर राजने चोगुणा करतां जे अंक आवे ते सूचीरज्जुनुं मान जाणवुं. ॥ २१ ॥

अवतरण – हवे सूचीरज्जुनुं मान गाथाए करी कहेछे –

अडवीस सयछुत्तर, दस सोला अठतीस चोवीसा ॥
इय सवग्गिय लोए, तिह रज्जु खंडुआ नेया ॥२१॥

व्याख्या – अधोलोकनेविषे सातशे ने बे प्रतर रज्जु छे तेने चोगुणा करता बे हजार आठशें ने आठसूची रज्जु थाय. ऊर्ध्वलोकनेविषे बशेने चोपन प्रतर रज्जु छे, तेने चोगुणा करता एक हजारने शोल सूचीरज्जु थाय तथा अधोलोक अने ऊर्ध्व लोकना एकठा करता त्रण हजार आठशे अने चोवीश सूचीरज्जु थाय पोताना वर्ग गणित लोकनेविषे त्रिक रज्जु कहिये एम घनेरज्जु तथा प्रतररज्जु तथा सुचीरज्जु ए त्रण राजना खाडुआनी सख्या जाणवी ॥ २१ ॥ हवे वर्गना अकथी गणता जे खाडुआनी सख्या आवे ते सम्रह गाथामा कहेछे –

एगार सहस छसया, बत्तीसा चउसहस्स चउसठी॥ अ
ह उड्ढ सव्व पन्नर, सहस्स छन्नि सय छ न्नउआ॥ २२ ॥

व्याख्या – अधो लोकनेविषे वर्गने अकथी गणतां अग्यार हजार बशोने बत्रीश खाडुआ थाय ऊर्ध्व लोकनी श्रेणी वर्गना अकथी गणताचारहजार ने चोसठ खांडुआ थायतेबेहु एकठा करिये त्यारे पदर हजार बशे ने छपन्न थाय॥२२

अवतरण – हवे वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेछे –

अड छ चउवीस वीसा, सोल दस चऊ अ हुंहुं चउ छगा॥
दस चार सोल वीसा, सरिसक गुणाउ चउहि गुणे॥२४॥

व्याख्या – अही वीस शब्द त्रण ठेकाणे जोडचो ते आम – अठावीश, छवीश तथा चोवीश एम जाणवु तथा ए माघवती सातमी पृथ्वीथी आदि लईने जे अठावीशादिक अक त्रीजी श्रेणीनेविषे आवे ते पोतपोतानेसरखे अके गुणी ए अनेएकठा करिये पछी तेने चोगुणा करता जे अक आवे ते खांडुआनी सख्या जाणवी ते आवी रीते – सातमी नरक पृथ्वीने तळेथी अठावीशने अठावीशथी गुणतां सातशेने चोरासीथाय छवीशने छवीशथी गुणतां छशेनेछोतेर थाय चोवीशने चोवीशथी गुणतां पांचशोने छोंतेर थाय वीशने वीशथीगुणतां चारशों थाय, शोळने शोळथी गुणतां बशे ने छपन्न थाय; दशने दशथी गुणतां एकशो थाय, अने चारने

चारथी गुणतां शोल थाय ; ए साते स्थलना अंकोने एकठा करिये त्यारे बे हजार आ ठशो ने आठ थाय; तेने चोगुणा करतां अग्यार हजार बशें ने बत्रीस थाय. ए अधो लो कना खांडु आ जाणवा. हवे ऊर्ध्व लोकना खांडुआ कहेछेः—चार, छ, आठ, दश, बार, शोल तथा वीश ए अंकोने सरखा अंकथी गुणवा ; ते आवी रीतेः—चारने चार गुण कस्याथी शोल थाय. छने छथी गुणतां छत्रीस थाय ; आठने आठथी गुण तां चोसठ थाय ; दशने दशथी गुणतां एक शो थाय. बारने बारथी गुणतां एक शोने चुमालीस थाय ; शोलने शोलथी गुणतां बशोंने छपन थाय ; वीसने वीस थी गुणतां चारशे थाय ; ए सात स्थलोना अंक एकठा कस्याथी एक हजारने शोल थाय. तेने चारथी गुणतां चार हजार ने चोसठ ऊर्ध्व लोकना खांडुआनी संख्या थाय. पछी अधोलोकना तथाऊर्ध्व लोकना खांडुआ एकठा करिये त्यारे पंदर हजार बशोने छनु थाय. ॥ २४ ॥

अवतरणः— वली प्रकारांतरें वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेछेः—

चउ अडवीसा छप्प, सपयरसरिसंक गुणिय पिहुमिलिए ॥
सम दीह पिहुवेहा, छफुमहो खंफुआ नेआ ॥ २५ ॥

व्याख्याः— लोकना मस्तकनेविषे ऊपरली त्रीछी श्रेणीए चार खांडुआ छे. सा तमी नरक पृथ्वीनी छेली श्रेणी अठावीश खांडुआनी छे. एम चारथी आदिलइने छेली छपन्नमी श्रेणी अठावीस खांडुआनी छे एटले पुरुषाकार लोकनेविषे त्रीछी छपन प्रतरनी श्रेणी छे. आदि तथा अंतनी श्रेणीउनुं ग्रहण कस्या थी मध्यनी श्रेणीनुं पण ग्रहण थाय छे ; माटे छपन श्रेणी छे. जे श्रेणीनेविषे त्रीछी श्रेणीना जेटला खांडुआ छे, तेटला अंकथी गुणीए; जेमके, सर्वथी ऊपर नी मस्तक श्रेणीनेविषे चार खांडुआ त्रीछा छे. त्यारे चारने चारथी गुणतां शोलथाय एम छपन श्रेणीउ सरखे आंके गणी एकठी करिए त्यारे पूर्वोक्त पंदर हजार ब शेंने छनु खांडुवानी संख्या थाय. हवे खांडुआनुं परिमाण कहे छेः— लांबपणे, पोलाइए तथा जाडपणे कुंजीनी परे सरखा छे. एटले पोला, लांबा तथा जाडा पा राज प्रमाण ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोकना सर्व एवा खांडुआ जाणवा. ॥२५॥

अवतरणः— हवे वृत्ताकार लोक घन करवानो विधि कहेछेः—

दाहिण पास डुखंफा, छफुं वामे ठविज्ज विवरीया ॥
नाफी सहिय ति रज्जु, पिहु जाया सत्त दीहुच्चे ॥ २६ ॥

व्याख्या – ऊर्ध्व लोकनेविषे त्रस नाडीथकी दक्षिण बाजुए एटले जमणी बाजुना बे खण्ड, ते आम –ऊर्ध्व लोकनेविषे ज्या कोणीनी जगो छे, तेमध्यथी जोतां बारमी श्रेणी छे ते बारमी श्रेणीथी बे खण्ड करिये एटले ऊपरला खण्डनेविषे शोल श्रेणीओ रहे एवी रीते दक्षिण बाजूना जे बे खण्ड छे ते ऊर्ध्व लोकनेविषे त्रस नाडीनी डाबी बाजुनेविषे उलटा करी नाखीए ते आम – ऊपरना खण्डनी कूर्परनी जे दिशा, ते मस्तकनी तरफ करिये, अने हेठला खण्डनी कूर्परनी जे दिशा ते लोकना मध्य तरफ करिये एटले ऊपरलो खण्ड ऊपरनी दिशाए तथा हेठलो खण्ड हेठली दिशाए थापीए त्रस नाडी सहित डाबी बाजूए त्रीछा त्रण राज थायछे ते आम – त्रस नाडीथी बाहार कूर्परने ठेकाणे जमणी बाजूए आठ खांडु आ त्रीछा छे, तेना बे राज अने एक त्रस नाडीनु राज, एम त्रण राज पोला ईए थायछे, अने लांबपणे तथा उचपणे सात राज होयछे ॥ २६ ॥

हिट्ठाउ वाम खंडे, दाहिण पासे ठविज्ज विवरीअं ॥
उवरिम ति रज्जु खंडं, वामे ठाणे अहो ठिज्जा ॥ २७ ॥

व्याख्या – अधो लोकनी त्रस नाडीथी जे डाबी बाजुनो थाखो खंड छे, ते विपरीत एटले अवलो अथवा उधो हेठली त्रस नाडीनी जमणी बाजुनेविषे था पीए. एटले अधोलोकनेविषे जमणी बाजूए त्रीछा चार राज, अने लांबपणे सा त राज थया ते आ प्रमाणे – त्रस नाडीथी जमणी बाजुमा आधोलोकनी हेठे बार खांडुआ छे, तेना त्रण राज, अने त्रस नाडीनु एक राज, एम चार राज थाय पछी ऊर्ध्वलोकनो डाबी बाजुनो त्रीछो त्रण राज लांबो सात राज प्रमा ण खण्ड छे ते अधोलोकनी जे त्रस नाडी छे तेनी डाबी बाजूए दैए, एटले सर्व त्र पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशिओए तथा जाड पणे सातघनरज्जु प्र माण घन लोक थयो ॥ २७ ॥

इय मवट्टिय लोउ, वुद्धि कउ सत्त रज्जु माण घणो ॥
मग रज्जु अहिय द्दिठा, गिएहइ पासाइ पूरिज्जा॥ २८ ॥

व्याख्या – ए प्रकारे करी इय समचतुरस्र लोक वृत्ताकारे कीधो पण ते लोक वृत्ताकारे, ते केवी रीतेकीधो –बुद्धिए करी, मन कल्पनाए करी सात राज प्रमाण घन कीधो, तथा सात घनरज्जु थता लांबपणे, पोलपणे तथा ऊचपणे जे अधिक

खांडुउं थाय ते लईने हेवल जे जगोए ओछु होय ते पासूं पूरिये. एवीरीते चोरस सात घनरज्जु प्रमाण लोक कह्यो पण चोरस नथी. गोलाने आकारे लोक वृत्ताकार छे. पण घनलोक वृत्ताकार लखाय नही. तेमाटे चोरस कीधो छे ॥२८॥

अवतरणः— हवे ए समघन लोकनेविषे घनरज्जु, प्रतररज्जु, सूचीरज्जु अने खांडुआनी संख्या कहे छेः—

घण रज्जु तिसय तेया,ल तेर बावत्तरीय पयर सूइ ॥
चउपन्न डसी खंडुअ, सहसि गवीसा नवड पन्ना॥२९॥

व्याख्याः— ए वृत्ताकार घनीकृत चोरस लोकनेविषे त्रणशेंने तेतालीश घनरज्जु छे एक हजार त्रणशेने बोतर प्रतर रज्जु छे. पांच हजार चारशेने अठ्याशी सूची रज्जु छे. खांडुआनी संख्या कहेछेः— सातराज प्रमाण घनलोकना खांडुआ एकवीश हजार नवशे ने बावन जाणवा ॥ २९ ॥

अवतरणः— हवे घनरज्जु, प्रतररज्जु, सूचिरज्जु अने घनलोकना खांडुआ आणवानी करणी गाथाए करी कहेछेः—

सगवग्गो सग चउ तिग, गुणिए छन्नयं अहुट्ठ खंडु घणा ॥
छन्नूसउ सिआलं, चउ गुणिए पयर सुइ अंसा ॥ ३० ॥

व्याख्याः—ए सातघनरज्जु प्रमाण समचोरस जे लोक छे. ते सात सात वर्गथी गणिए ते सप्त वर्ग कहिये. त्यारे सातने सातथी गुणिये, त्यारे उगण पचास थाय एवी उगणपचाश घनरज्जुनी सात श्रेणीछे. ते ओगणपचाशने सातथी गुणतां त्रणशोने तेतालीश घनरज्जुनी संख्या थाय. पछी घनरज्जुनो आंक त्रण वार चोगुणो करिये त्यारे अनुक्रमे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना प्रतररज्जु, सुचीरज्जु, तथा खांडुआनी संख्या मलेछे; ते आ प्रमाणेः— त्रणशो तेताली घनरज्जुने चोगुणा करिये त्यारे एक हजार त्रणशेने बोतेर प्रतररज्जु थायछे. ते प्रतररज्जुनो आंक चोगुणो करिये त्यारे पांच हजार चारशे ने अठ्यासी सुचिरज्जु थाय. तथा सुचिरज्जुनो चोगुणो आंक करतां खांडुआनी संख्या एकवीस हजार नवसेने बावन थाय. हवे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकनी जुदीजुदी घनरज्जु. सुचिरज्जु प्रतररज्जु तथा खांडुआनी संख्या कहेछेः— अधोलोकनेविषे एक से ने छनुं घनरज्जु छे; अने ऊर्ध्व लोकनेविषे एक शो ने सुडतालीश घनरज्जु छे, एने वली त्रण वार चोगुणा करतां अनुक्रमे प्र

तररज्जु, तथा सुचिरज्जुना अंस एटले खाडुआनो मान अधोलोक तथा ऊर्ध्वलो कनेविषे भिन्न भिन्न मिली आवेछे. ॥ ३० ॥

अवतरण – अधो लोक तथा ऊर्ध्व लोकना खाडुआनो भिन्न भिन्न प्रमाणनो सग्रह करी कहेछे –

सग चुलसी पण असी, इग तीस छतीस तिविस बावन्ना ॥
पण चुअल जुआ वारस, हस्स चउण वइसय छ हिआ॥३१॥

व्याख्या – अधोलोकनेविषे एक शो ने छनु घनरज्जु छे , तेने चोगुणा करिये त्यारे सातशे ने चोराशी अधोलोकनेविषे प्रतररज्जु थाय अने ऊर्ध्व लोकनेविषे एक शो ने सुडतालीश घनरज्जु छे, तेने चोगुणा करिये त्यारे ऊर्ध्व लोकनेविषे प्रतररज्जु पाच शो ने अठ्याशी थाय अने अधोलोकनेविषे त्रण हजार एक शो ने छत्रीश सुचिरज्जु थाय ऊर्ध्व लोकनेविषे बे हजार त्रण शे ने बावन सुचिरज्जु छे हवे खाडुआनी संख्या कहेछे – अधोलोकनेविषे पण बार हजार पाँचशोने चुमालीस खाडुआछे ऊर्ध्व लोकनेविषे नवहजार चारसो ने आठ खांडुआ छे अधोलोक तथा उर्ध्वलोकना एकठा खाडुआ करिये तो एक वीश हजार नवशोने बावन पूर्वोक्त सख्या मले तथा अही त्रणशें ने तेतालीश राज कह्यां पण तेना खाडुआ नथी मात्र बशोनें ठगण चालीशराजना खाडुआ छे तेथी एकशोने चार घनरज्जु अधिक छे तेना खाडुआनो गम नथी पण एक विशेप छे, के ए घनलोक चोरस कह्यो छे, अने लोक वृत्ताकार छे त्यारे चारे दिशिना खूणा अधिक थाय, तोपण एवडो अतर पडे नही पण ए चोरसनुं जे परिमाण कह्यु छे ते अतरग वृत्ताकार लोकनुं मान धरीने कह्यु छे माटे खुणानो भाग अधिक थाय नही पछी प्रकारांतरनी वात तो ज्ञानी जाणे पण पूर्वोक्त वर्गना आक गणतां पंदर हजार बशोने छनु खाडुआ थाय तेने चोशठ भाग देतां घनराज थाय अधिक खांडुआ नथी त्यारे त्रणशोने तेतालीश राज केम थाय ते गीतार्थ विचारी लेवु, असख्यात योजननो एक राज थायछे अथवा सहस्त्र भार लोहनो गोलो कोईएक महर्द्धिक देवतापोतानी शक्तिए करी तेने नीचे नाखी दिये त्यारे ते गोलो छ मास, छ दिवस, छ पहोर , छ घडी अने छ पल जेटला काले नीचे आवीने पडे तेटलो एक राज थाय ए चारे दिशिछनेविषे राजनुं प्रमाण थाय ते जाणवु ॥ ३१ ॥

इय पयर लिहिय वग्गिय, संवट्टिय लोग सार मुवलप्न ॥
सुअ धम्म कित्तिअं तह, जय ह जहा नमह न इह भिसं ॥३१॥

व्याख्याः– ए प्रकारे करी जे ठपन प्रतर, ते प्रकारे लिखित वली संवर्गित एटले वर्गने आंके गणित लोक तेनो सार तत्व ज्ञानविचार यथार्थ पणे लोकस्वरूप सद गुरुथी पामीने ते प्रकारे यत्न एटले उद्यम करवो पूर्वे जे प्रकारे चौद राज लोक नुं प्रमाण कह्युं, ते लोकमां अनंत जन्ममरण पामता थका वारंवार अत्यर्थपणे मां भमो, एवो तीर्थंकर सकल जीव हितकर पारग परमेश्वरनो भव्य जीवने उ पदेश छे. लोकनो सार केवो छेः– ते श्रुतधर्म एटले जे सिद्धांत मार्गमां ज्ञानना बले करी ज्ञानवान तीर्थंकरे कहेलुं छे. ॥ ३१ ॥

श्रीमदाप्तोक्त विधिना, लोकनालस्य वार्त्तिकं ॥ धिमित्र धनराजस्य, गंगाख्य तनुजाकृते ॥ १ ॥ श्रीमत्सहज रत्ने न, व्याख्यात मुदयाब्धिना ॥ असंगत यदुक्तं, विशो ध्य धीधनैर्भृशं ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

इतिश्री लोकनाल द्वात्रिंशिका बालावबोध

समाप्त.

श्री क्लींकुंड पार्श्वनाथायनम

अथ

श्री सम्यक्त्व विचार गर्भित श्री महावीरजिनस्तवन बालावबोध सहित प्रारंभ.

मंगलाचरण

प्रणम्य परमानंद, ज्ञायकं जिननायकं ॥ वर्द्धमान चिदानंद, वर्द्धमान जिधा धर ॥ १ ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्यास्य, बद्धस्य लोकभाषया ॥ बालानामवबोधाय बालाबोध तनोम्यहं ॥ २ ॥

दोहा – प्रणमी पद जिनवरतणा ॥ जे जगने अनुकूल ॥ जास पसायें मे लह्यु ॥ समकित रयण अमूल ॥१॥ ते जिम वीरे उपदिस्यु ॥ परखद मझि अ नूप ॥ तिम हुं वर्णवसुं हवे ॥ समकित सुद्ध स्वरूप ॥ २ ॥

अर्थ –श्री देवाधिदेवना चरणकमल नमीने जेना चरणकमल सकल जीवने हितकारीछे अनुकूलछे जे श्रीवीरपरमात्माना चरणकमलने प्रसादे मे पण अमु लक सम्यक्त्वरत्न पाम्यु ॥ १॥ ते सम्यक्त्व जेम श्रीमहावीरे बार परषदामा प्र कास्यु तेम हु सम्यक्त्वनुं स्वरूप महारीबुद्धिप्रमाणे वर्णवीस ॥ २ ॥

ढाल पेहेलो एछिमीकिहा राखी एदेशी टीका

इगविध दुविध त्रिविध चउविधवलि ॥ पणविध दशविधजाणो ॥ ए समकि त शिवतरुनु बीजक ॥ सप्रति परे मन आणोरे ॥ प्राणी समकित शुध आरा धो ॥ जेम शिवमारग साधोरे ॥ प्राणी० ॥ सम० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ इगविध तुज आणा रुची दुविहा ॥ द्रव्य भावथी कहिये ॥ निश्चयने व्यवहारे अथवा ॥ समकित दुविध सहइये रे ॥ प्रा० ॥ २ ॥ सदहणा सुधी तुज आगम ॥ परमा रथ नवीजाणे ॥ समकित द्रव्यथकी तस कहिये ॥ भावथी तत्व वखाणेरे ॥ प्रा० ॥ ३ ॥ मिथ्यापुद्गल शुद्धनु वेदन ॥ समकित द्रव्य कहावे ॥ भावथि तत्व रु चिपण तिमहिज ॥ तत्व रुची परिभावेरे ॥ प्रा० ॥ ४ ॥ पुद्गलरूपी अरूपी अ पुद्गल ॥ ए पण द्विविध तु देखे ॥ क्षायोपशमिक वेदक पुद्गल ॥ शेष अपुद्गल लेखेरे ॥ प्रा० ॥ ५ ॥ निश्चय समकित शुद्ध, आतमनो ॥ ज्ञानादिक परिणाम ॥

अथवा आतम समकित कहिये ॥ गुण गुणी नेद न गमरे ॥ प्रा० ॥ ६ ॥ मिथ्या दृष्टीतणी संस्तवना ॥ त्यागादिक व्यवहार ॥ वर्जिय निसर्गोपर अधिगमथी॥ बिहुंनेदे निरधाररे प्रा० ॥ ७ ॥ जिम कोई मारग नूलो पंथी ॥ नमतो मारग आवे ॥ कोइक उपदेशादिक योगे ॥ कोइक थाग न पावेरे ॥ प्रा० ॥ ८ ॥ ज्वर पण सहेजे औषध योगे, जाये एक न जाय ॥ मारग ज्वर दृष्टांते समकित ॥ इणि परें द्विविधे थायरे ॥ प्रा० ॥ ए ॥ जाती समरण प्रमुख थकीजे ॥ तास निसर्ग विचारो ॥ गुरुउपदेशादिक थी आव्युं ॥ ते अधिगम चित्तधारोरे ॥ प्र०॥१०॥ कारक रोचक दीपकनेदे ॥ त्रिविधे पण ए नाख्युं ॥ अथवा उपशम क्षायोपशमिक ॥ क्षायिक नेदे दाख्युरे ॥ प्रा० ॥ ११ ॥ तें जिमनाख्युं ते तिमकीधुं ॥ ते कारक तस खास ॥ तुज धर्मोपरि रुचिथी रोचक ॥ नहि, किरिया, अन्यासरे ॥ प्रा० ॥ १२ ॥ मिथ्या दृष्टि थको पण पोते ॥ धर्मकथादिक सारे ॥ दीपक परें परने दीपावे ॥ ते दीपक उपचारेंरे ॥ प्रा० ॥ १३ ॥ ते समकित जिम फरस्युं जीवे ॥ तिम तुज आगल दाखुं ॥ तुज आगम नय न्याय सुधोदधि ॥ परमारथ रस चाखुंरे ॥ प्राणी समकित सुद्ध अराधो ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एकप्रकारनुं बेप्रकारनुं त्रणप्रकारनुं चारप्रकारनुं पांचप्रकारनुं अथवा दशप्रकारनुं सम्यक्त्वजाणवुं ए सम्यक्त्व मोक्षरूपवृक्षनुं बीजनूतजाणवुं संप्रतिराजानीपरें मनमांचिंतववुं यडुक्तंः– एगविह डुविह तिविहं, चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ मुरक तरुबीयनूयं, संपइ रायाव धारिज्ञा ॥ १ ॥

एकविधते तार्हरी आज्ञारुचिरूप बेप्रकारनुं सम्यक्त्वते एकद्रव्य सम्यक्त्व बीजुं नावसम्यक्त्व अथवा निश्चेसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व एपण बेप्रकार कहियें॥२॥

तेमांजे तमेवसच्चंनिस्संकंजंजिणेहिं पवेइयं इत्यादिकसद्दहणासूधीहोय पण परमार्थ कांईनजाणे जीवाजीवादि स्वरूपपण नसमजे तेने द्रव्यसम्यक्त्व कहियें नावेण सद्दहंतो अयाण माणेवि सम्मत्तंमितिवचनात् तथा तमेवसच्चं इत्यादिक सद्दहणासूधीहोय अने नवतत्वादिकना नेदानुनेदपण परमार्थे समजे तेने नावसम्यक्त्व कहियें जीवाइनवपयथ्थे, जोजाणइ तस्सहोइसम्मत्तमिति वचनात् ॥

अथवा रूपी द्रव्यसम्यक्त्व अने अरूपी नावसम्यक्त्व एप्रकारेंपण बेनेदथाय तेज विवरीनेकहेडे मिथ्यात्वना शुद्धपुजलनुंवेदन एटले मिथ्यात्वना त्रणपुंज कस्याडे तेमां जे सुद्ध पुंजनुंवेदवुं तेने द्रव्यसम्यक्त्व कहियें अने नावथी तत्वरुचिहोय तेने नावसम्यक्त्व कहियें ते उपशम क्षायिकादिक जाणवुं ॥ ४ ॥

अथवावली बीजेप्रकारे सम्यक्त्वनु द्विविधपणु देखाडेछे रूपी अने अरूपी ए बे भेदेजे सम्यक्त्वछे ते आवीरीतेजे एक क्षायोपशम अने बीजुंवेदक ए बे सम्यक्त्वरूपी पुग्दलरूपछे माटेएने रूपी कहिये अने शेष जे क्षायक, उपशम अने सास्वादन ए त्रण सम्यक्त्व पुग्गलरूपनथी माटे एने अरूपी कहियें यदुक्तं विचारपंचासिकायां धम्माधम्मा गासा, जीवाकालोय खाइमचेव ॥ सासायण उवसमियं, अपुग्गलाई तुएयाई ॥ १ ॥ उरालिय वेउव्विय, आहारग तेयस भुणी मणो ॥ उस्सासनिस्सासकम्मण कम्माणिठायतमो ॥ २ ॥ वग्गणअणतआयव, मिस्सखंधो अचित्त महखधो ॥ वेयग खाउवसमं, कज्जोय पुग्गलसुएजणियं ॥ ३ ॥ ए द्विविधपणुपण साक्षात् केवलज्ञाने हे भगवनतु देखेछे ॥ ५ ॥

हवे निश्चेसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व ए बे देखाडेछे निश्चयथी निश्चेनये ज्ञानादिमय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो शुभपरिणाम तेहिज सम्यक्त्वकहिये अथवा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो परिणाम ते आत्मारूपजछे तेमाटे आत्माज सम्यक्त्व कहिये इहा गुणगुणीनो अभेदोपचार लहियें गुणते ज्ञान दर्शन चारित्रादिक अने गुणीते आत्मा ए बे एकेकथी जूदानथी तेमाटे ए बे ने माहोमाहे भेदनथी अभेदरूपजछे यत आत्मैव ज्ञानदर्शन चारित्राण्यथवा यते यत्तदात्मकएवेष शरीरमधितिष्ठति ॥ ६ ॥

बीजु व्यवहार सम्यक्त्वते जे मिथ्यादृष्टिसघाते परिचयप्रमुख छांडे अथवा देवगुरुनी भक्तिप्रमुख साचवे व्यवहारथी सम्यक्त्वना दूषणटाले अने सम्यक्त्वना भूषणआदरे इत्यादिक लक्षणेकरी व्यवहारथी सम्यक्त्वधारि कहिये जेमाटे गुणस्थान क्रमारोहमा कह्युछे देवेगुरौच सघेच, सद्भक्तिशासनोन्नतिं ॥ अव्रतोपि करोत्येव, स्थितिस्तूर्ये गुणालये ॥ १ ॥

अथवा निसर्ग अने अधिगम ए बेभेदपण सम्यक्त्वना कहिये ते देखाडेछे जेम कोइकपुरुष मार्गथीभूलो कोईना उपदेशविना स्वयभमतो पोतानीमेलेज पोते मार्गप्रतेपामें एटले पोतानीमेले मार्गेआवे अने कोइकतो भूलोथको परनाउपदेशथी एटले बीजोकोई मार्गदेखाडे तेवारें मार्गेआवे अने कोइकतो मूलथी मार्ग पामेज नही एमज भूलोफरे अथवा ज्वरनेदृष्टांते भावबु जेम कोइकने ताप आवतोहोय ते पण कोइकतो पोतानीमेले परीपाकेजजाय अने कोइक औषधादिकने सयोगे जाय तथा कोइकज्वरतो जायजनही ए दृष्टाते सम्यक्त्वपण कोइकजीवतो जातिस्मरणादिके पोतानीमेलेजपामे अने कोइकजीव गुरुनाउपदेशथी पामे

तथा कोइकपासेजनही इहांतो मिथ्यात्वरूपज्वरछे ते कोइकने गुरुउपदेशें अथवा सहेजेमटीजाय अने कोइक अजव्यादिकने मटेजनही अने जल वस्त्र कोइव दृष्टांत त्रणछे ते पुंजत्रयनेविषे जावसे इहां मार्ग तथा ज्वर ए बेदृष्टांतनो प्रस्तावछे माटे बेज कह्यां ॥ ७ ॥ ८ ॥ ए ॥ १० ॥

हवे सम्यक्त्वना त्रण नेद कहेछे तेमां एक कारक बीजुं रोचक त्रीजुं दीपक अथवा एक क्षायक बीजुं उपशमिक त्रीजुं क्षायोपशमिक ॥ ११ ॥

हवे एना लक्षण कहेछे हे जगवन् हे वीतराग तें जेम कह्युंछे तेमज करवुं एटले ताहरी आज्ञाप्रमाणे चालवुं तेने कारक सम्यक्त्व कहियें अने करनार ते पण कारकसम्यक्त्ववंत थयो तेनेपण कारक सम्यक्त्व कहियें आधाराधेयाजेदोपचारें अने रोचक सम्यक्त्व तेतो ताहरा धर्मउपर ताहरा शासनउपर रुचीमात्रनुं करनार एटले धर्मउपर रुचीमात्र होय पण आचरी शकेनही तेमाटे रोचक कहियें॥ १२॥

त्रीजुं दीपकसम्यक्त्वते पोते मिथ्यादृष्टी अथवा अजव्य अंगारमर्द्दकादिकनी परें धर्मकथायेंकरी अथवा मातृस्थानानुष्ठानातिसयेकरी कोइक प्रकारें जिनोक्त तत्व परने दीपावे वीतरागना वचन परनेप्रकाशे तेथी कोइक सम्यक्त्व पामे दीपकनीपरें पोतानीपासें अंधकार अने परने प्रकाशस्थानीय सम्यक्त्व पमाडे तेमाटे दीपक सम्यक्त्व कहिये एनुं अपरनाम व्यंजक सम्यक्त्वपण कहियें ते मिथ्यादृष्टीनेपण परिणाम परिणमन ते उपचारथी कारणनेविषे कार्यनाउपचारथी सम्यक्त्व कहिये यडुक्तं यथायथा चाचरणं जिनोदितं, तथा तथा यत्र सतिप्रवर्त्तते ॥ तदंगसम्यक्त्वमिदं प्रचक्षते, तथा विशुद्धेःखलुकारकंजिनाः ॥ १ ॥ विहितानुष्टानं प्रतिजावविशुद्धे रतीवविमलायाः॥ प्ररोचयतीतिकृत्वा रोचकमिदमाह सम्यक्त्वं॥ २॥ स्वयंमिथ्यादृष्टि स्तदपिचजनंधर्मकथयामुहुः सम्यङ्मार्गे नयतिचहितं चैववदति ॥ तडुक्तं सम्यक्त्वं ह्यु पचरितवृत्या जिनमते तथा धर्म्मादीनांप्रकटनतया व्यंजकमिति ॥ ३ ॥ पुनरप्युक्तंः– विहियाणुठाणं पुण, कारगमिहरोयगंतु सद्दहणं ॥ मिछद्दिठीदीवइ, जंतत्तोदीवगंतंतु ॥ ४ ॥ इति.

ते सम्यक्त्व जेम जीवे फरस्युं अनुनव्युं पाम्युं तेम तमारा आगल वीनवुंछुं ते ताहरा आगमने अनुसारे एटले ताहरा आगमना नयजे नैगमादिकने न्यायशास्त्र संमत्यादिक तद्रूपजे सुधोदधि एटले अमृतसमुद्र तेनु परमार्थजे तद्रहस्य तेहिजरसने चाखुं अनुनवुं एटले तहारा आगमनुं परमार्थ लेइने तेने अनुसारे कहीसुं ॥ १४ ॥ ए पहेलो ढालनुं अर्थ पुरो थयुं.

वी० ॥ १७ ॥ मिथ्यामोह तणीस्थिति तेहनु ॥ अंतरमुहूरत एकोरे ॥ उदय क्ष ण उपरें उलंघी ॥ ते समरथ सुविवेकोरे ॥ वी० ॥ १९ ॥ अनिवृत्ति करण विशे षे अंतर ॥ मुहूरतकाल अनूपोरे ॥ अंतरकरण करे तिहां वेद्यजे ॥ दलिक अनाव सरूपोरे ॥ वी० ॥२०॥ जिमवनदवदग्धे घन उखर ॥ पामी गाम उल्हायरे॥ तिम मिथ्या वेदन वनदव सम ॥ अंतरकरणे थायरे ॥ वी० ॥ २१ ॥ अंतरकरण करे मिथ्यातनी ॥ थितियुग कहे जिन न्यानेरे ॥ अंतरकरण थकी थिति हेठी ॥ पहे ली मुहूरत मानेरे ॥ वी० ॥ २२ ॥ तेहथी उपरली थिति बीजी ॥ तिहां प्रथम स्थिति जाणोरे ॥ मिथ्यादलीकनुं वेदन तेहथी ॥ मिथ्यादृष्टी वखाणोरे ॥ वी० ॥ २३ ॥ अंतरमुहूरत ते थितिनाशे ॥ नही मिछादल वेदोरे ॥ अंतरकरणनो प्र थम समय तिहां ॥ लहे उपशम निरवेदोरे ॥वी०॥२४॥ परमानंद मगन होइ नटजि म॥जीती कटक अशेषरे॥न्यायवंत हरषेजिम गाढे॥न्याय धनागम पेखरे॥वी०॥२५॥

अर्थ ॥ हवे बीजाढालनी प्रथमगाथातो सुगमछे माटे बीजीगाथाथी अर्थ क हेछेः– इहां सदैवलोकाकाश प्रतिष्ठित अनादि अपर्य्यवसित नवचक्राख्य पुरोदर वर्त्ति तेमांहे वर्त्तता एवा पूर्वे सर्वप्राणी अनादिवनस्पतिमां सूक्ष्मनिगोद परपर्याय मांहे अनंता पुद्गलपरावर्त्तलगें जीव रह्यो साथें एकश्वासोश्वासमां सतरनव जाजेरा करे जन्ममरणादिक वेदनाना समूहने अनुनवे तथाविध नव्यप्राणी पण अनंतो काल अव्यवहाररासीमांरही कर्मपरिणाम राजानी आज्ञाथी तथाविध नव्यपणाने नियोगेकरी व्यवहाररासीमांहे प्रवेसकरे.

व्यवहाररासीते कोनेकहियें जे बादरनिगोद पृथ्वी पाणी तेज वायु प्रत्येकवन स्पति अने त्रस तेमांपण अनंतानंत कालसुधीरहे एप्रमाणे सकलदुःखपादप बी जनूत जे मिथ्यात्व तेणेकरी एटला काललगें चारगतिनुं संसार संबंधी छेदन ने दन ताडन नूषातृषादिसहन गुरुनाराक्रमण गर्नवशन जन्म जरा रोग शोकइष्टवियो ग अनिष्टसंयोग इर्षा विषाद मरणादिक दारुणदुःख प्रायें अनंतिवार अनुनवीने पालाने दृष्टांते पालुंते धान्यनरवानुं नाजनविशेषजाणवुं ते जेम कोइकपुरुष ते पालामां थोरुंथोरुं धान्यनाखे अने गणुघणुकाढे ते धान्य केटलेककाले खूटे तेम कर्मधान्यरूप पालामांहे जीव अनानोगथी थोमा कर्मबांधे एटले थोरुंघाले अने घणाकर्मनिर्जरे एटलेघणुंकाढे एरीते छेहलो एक पुद्गलपरावर्त्त जेणे नवस्थिति आणीराखीछे एवुंकोईक चारगति संबंधीजीव ते कथमपि महताकष्टे तथा नव्य त्व परिपाकना वशथकी गिरिसरिडपल घोलना (कल्प पर्वत नदी पथ्थर घोलना स

मान अनाभोग निर्वर्त्तित एवु यथाप्रवर्त्तिकरण करणपरिणामोत्रेतिवचनात् एहवु अध्यवसायविशेषरूप तेणेकरीने एक आयुवर्जीने सर्वज्ञानावरणादिक साते कर्म तेनी पल्योपमासंख्येयभागे न्यून एककोटीसागरोपमनी स्थितिछे जेहनी एहवांकरे ते सर्वकर्मनी उत्कृष्ट स्थितिकेटलीछे के जेमाथी बीजीन्यूनकरे ते गाथायेकरीकहे छे मोहे कोडाकोडी, सत्तरिवीसंचनामगोयाण ॥ तीसयराणि चउह्णु, तित्तीसयराणि आउस्स ॥ १ ॥ अत्रांतरे जीवने कर्मपरिणामजनित घन रागद्वेषपरिणामरूप कर्कश निविडचिरप्ररूढ गुपिल वल्कग्रथीनीपरे दुर्भेद अभिन्नपूर्वगांठीहोय.

तडुक्तं घस्सण घोलण जोगा, जीवेणजयाहविज्ज कम्मठिई ॥ खविया सव्वासागर, कोडाकोडी पमुत्तूण ॥ १ ॥ तब्बवियथोवमित्ते, खविये इत्थंतरमि जीवस्स हवइहु अभिन्नपुव्वो, गठीएव जिणाविंति ॥ २ ॥ गठित्तिसुडुब्भेउ, करकडघणरूढगूढगंठिव्व जीवस्स कम्मजणिउ, घणरागदोस परिणामो ॥ ३ ॥

ए गाठ सुधी अभव्यपण यथाप्रवर्त्तिकरणेकरी कर्मखपावी अनंतिवारआवे पणगाठने भेदेनही यडुक्तं प्रवचनसारोध्दारे करण अहापवत्त, अपुव्वमनियट्टिमेव भव्वाण ॥ इयरेसि पढमचिय, भण्णइकरणत्ति परिणामो ॥ १ ॥

ग्रंथीदेशवर्त्ततो भव्य अथवा अभव्य तिहा संख्यात अथवा असंख्यातोकाल रहे तिहारह्योथको द्रव्यश्रुत भिन्न दशपूर्वलगे अभव्यभणे ते तीर्थंकरनी ऋध्दिदेखी अथवा स्वर्गसुखादिकनो अर्थिथको जेवारे दीक्षालिये तेवारे पूर्वभणे तेमाटेज भिन्न दशपूर्वातश्रुत ते मिथ्याश्रुतपणहोय मिथ्यात्वेग्रह्यामाटे मिथ्याश्रुत कहेवाय अने जेने चउदपूर्व अथवा सपूर्ण दशपूर्वश्रुतहोय तेने नियमा सम्यक्त्व होय पण काइकउणा दशपूर्वधरादिकनेविषे सम्यक्त्वनी भजना जाणवी यडुक्तं कल्पभाष्ये चउदस दसय अभिन्ने, नियमा सम्मत्त सेसए भयणा ॥ इति तिहाथी द्रव्यसयमपाली जैननीक्रियानेबले नवग्रैव्यकेपणजाय पण मिथ्यादृष्टीमाटे संसारनो पारपामेनही यडुक्त आवश्यकटीकाया अभव्यस्यापि कस्यचित् यथाप्रवृत्तिकरणतो ग्रथिमासाद्यार्हदादि विभूतिदर्शनत प्रयोजनांतरतोवा प्रवर्त्तमानस्य श्रुत सामायिक लाभोभवति नशेपलाभइति

एम यथाप्रवर्त्ति करणेकरीने ग्रथीलगे भव्यपणआवे अने अभवपणआवे पण अपूर्वकरणादिकतो भव्यनेजहोय अपूर्वकरणे तो पथिक पिपीलिकयोर्ज्ञात यथा

जह इह तिन्निमणूसा, जतमविपह सहावगमणेण ॥ वेला इक्कमभिया, तुरति पताय दोचोरा ॥१॥ दठुमग्ग तडत्थे, तत्थेगोमासउ पडिनियत्तो ॥ बीउंगहिउ तइउ,

समइक्कंतो पुरंपत्तो ॥ २ ॥ अडवी नवो मणूसा, जीवाकम्मठिइ तह्योदीह्यो; गंठी यनयह्यणं ॥ राग होसाय दो चोरा ॥ ३ ॥ नग्गोठिइ परिवुड्ढी, गहिउं पुण गंठि उ गउ तइउ ॥ सम्मत्त पुरंएवं, जोइज्जा तिन्नि करणाइं ॥ ४ ॥ खिइ सानावियग मणं, थाणूसरणं तउ समुप्पयणं ॥ गणंगणुसिरेवा, ऊहरणं वा मुअंगीणं ॥ ५ ॥ खिइगमणं पिव पढमं. थाणुं सरणंच करण मपुव्वं ॥ उप्पयणंपिवतत्तो, जीवाणं करण मनियट्टिं ॥ ५ ॥ गणुव्व गंठिदेसो, गंठिय सत्तस्स तब्ब वह्याणं ॥ ऊपरणं पिवतत्तो, पुणोविकम्मठिइविवड्ढी ॥ ७ ॥

एम ए बे दृष्टांते त्रणकरण नाववां एकआयुकर्मवर्जिने बीजा सातकर्मनी उत्कृष्टी स्थिति खपावी बाकी एककोडाकोडी सागरोपमते पल्योपमने असंख्यातमेंनागें न्यून सातेकर्मनी स्थिति प्रत्येकें आणी राखी.

हवे कोइक महात्मा समासन्न परमनिर्वृत्ति सुख समुल्लसित प्रचुरडर्निवार वीर्यप्रसर तीक्ष्ण कुठारधारानीपरे अपूर्वकरणरूप आत्मानी परमविशुद्धें यथोक्त स्वरूप ग्रंथीनोन्नेदकरीने मिथ्यात्वमोहनीय कर्मस्थितिनु अंतरमूहुर्त्त उदयक्षणथी उपरें अतिक्रमिने अनिवृत्तिकरण संज्ञितविशुद्धि विशेपेकरीने अंतरमूहुर्त्तकाल-प्रमाण वेद्यदलिका नावरूप अंतरकरणकरे इहां यथाप्रवृतिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण नो अनुक्रम आवीरीतेंजाणवुं तेकहेछे यथा जागंठी तापढमं, गंठीसमइब्बउ नवेबीयं ॥ अनियट्टीकरणं पुण, सम्मत्त पुरस्कडेजीवे ॥ १ ॥ गंठिस म इब्बउत्ति ॥ ग्रंथि समतिक्रामतः निदानस्येत्यर्थः सम्मत्तपुरस्कडेति सम्यक्त्वं पुरस्कृतं येनतस्मिन् आसन्नसम्यक्त्वे एवजीवे अनिवृत्तिकरणं नवतीत्यर्थः

एटले जे करणेकरी गिरिसरि जलवेगालोड्यमान पाषाणनीपरें घंचना घोलनादिकेकरीने एकआयुकर्मवर्जि शेष सातेकर्मनी कांइकउणी एक कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिकरतो ग्रंथीदेशलगेआवे ते यथाप्रवृतिकरणकहियें अने जे अध्यवसाये अप्राप्तपूर्वकें घन रागद्वेष परिणतिरूप ग्रंथीने नेदवामांडे ते अपूर्व करण कहियें वली पूर्वप्राप्तथयाजे अध्यवसाय तेने अनिवर्तकें एवां अध्यवसायविशेषे ग्रंथीनेदकरीने सम्यक्त्वपामे ते अनिवृत्तिकरण कहियें हवे अंतरकरण करतिवेलायें मिथ्यात्व मोहनीयकर्मनी बे स्थितिकरे एक अंतरकरणथी हेठली प्रथम स्थिति अंतरमुहूर्त्तप्रमाण बीजी तेथी उपरली बाकीरहेली पल्योपमासंख्येयनाग न्यून कोडाकोडी सागरोपमरूप स्थितिजाणवी.

तेमां प्रथम स्थितिनेविषे मिथ्यात्वदलिक वेदनथी ए जीवने मिथ्यादृष्टीज क

हिये अंतरमुहूर्त्ते वली ते स्थितिगयेथके अंतरकरणनो प्रथम समय तिहांज सम्यक्त्वपामे मिथ्यात्वदलिक वेदनना अभावथीजेम वनमा दवलागोहोय ते जेवारे ऊखरभूमिपामे तेवारे पोतानीमेले उल्हाइजाय तेम मिथ्यात्व वेदनरूप वनदव तेपण अंतरकरणरूप ऊखरभूमिपामिने उल्हाइजाय तेवारे तेने उपशमसम्यक्त्वनो लाभ थाय

उक्तंच ऊसरदेसंदड्ढिं, ह्लिय च विज्झाइ वणदवोपप्प॥ इयमिच्छस्साणुदए, उवसमसम्मलहइजीवो ॥ १ ॥ टीका ॥ ग्रंथिभेदोहि मनोविघातपरिश्रमादिभिर्दुःखसाध्योवर्त्तते तदाहि सजीव कर्मरिपुमध्यगतस्त ग्रंथिप्राप्यातीव परिश्राम्यति,प्रभूतकर्मारातिसैन्यातरुत्वेन संजातखेदत्वात् संग्रामशिरसीवदुर्जयापाकृतानेक शत्रुनरनरेद्रभटवत्॥ यदुक्तं सम्यक्त्वस्तवे॥सोतम्मरणे सुहमो, व वेरिजयजणियपरमआणदो ॥ सम्मत लहइ जिउं, सामन्नेण तुह पसाया ॥ १ ॥ टीका ॥ सजीवस्तत्रानिवृत्तिकरणेरुते अंतरे हेनाथ तवप्रसादात् तवसाह्यात् सामान्यतो नतुक्षायिकादिवहिशिष्टतया सम्यक्त्व उपशमिकाख्य लभतेजीव कइवेत्याह रणे सुहमोवेत्ति वेरिजयेन जनितोय परमानदस्तंरणे सुभटइव॥तथाहि रणेभटो वैरिजयादानदमश्नुते तथैव रागद्वेष कर्मस्थित्यादि वैरिजयात्परमानद कल्पसम्यक्त्व लभते जीव तदुक्त पावति खवेऊण, कम्माइ अहापवत्त करणेण ॥ उवलनाएण कहमवि, अभिन्न पुव्वि तउंगंठि ॥ १ ॥ तगिरिवरवभेत्तु अपुव्वकरणुग्गवज्ज धाराए ॥ अंतोमुहुत्तकाल ॥ गंतुअनियट्टिकरणमि ॥ २ ॥ पइसमयसुभतो, खविउंकम्माइ तछ वहुआइ ॥ मिछत्तमिउइणे खीणेणुइयमि उवसते ॥३॥ ससारगिम्हतविउं, तत्तो गोसीसचदणरसोव्व ॥ अइपरम निवुइ कर, तस्सते लहइसम्मत्त ॥ ४ ॥ अतएव भव्याना मिथ्यात्वस्यानादिसातत्व ॥ तदुक्त मिछत्तमभवाण, तमणाइ मणतय मुणेयव्व ॥ भव्वाणतमणाइ, सपज्जवसियतु सम्मत्ते॥ए वीजाढालनी सोलमीगाथाथी मांडीने चोवीसमी गाथासुधी नवगाथानो अर्थकह्यो वीजाढालनोअर्थ पूरो थयो

॥ ढाल त्रीजो सहीरेसमाणी एदेशी ॥

॥ इणीपरे तुजथी समकित फरस्यु ॥ जेहथी भवजल तरस्युरे ॥ धनधन तुम सेवा ॥ एथी मन वंछीत फल लेवा ॥ तेकरवा मुज हेवारे ॥ ध० ॥ १ ॥ तिहां कोइ देश विरति तससरसी ॥ सर्व विरतिलहे हरिसीरे ॥ ध० ॥ मिछामयण कोद्रवा सरिसु ॥ उपशम ओषधपरखुरे ॥ ध० ॥ २ ॥ जल वस्त्रादिकनेदृष्टाते ॥ तुज आगम कहेखातेरे ॥ ध० मिथ्यापुजकरेत्रणसोधी ॥ उपशमकरीशुभबोधीरे ॥ ध० ॥ ३ ॥ शुद्धने अर्द्ध विशुद्धते वीजो ॥ अविशुद्ध मतरीजोरे ॥ ध० ॥ उपशमथी

पडिउंसमनवामे ॥ क्षायोपशमिक पामेरे ॥ ध० ॥ ४ ॥ मिश्र तथा मिथ्यात्वने फर से ॥ करममतीइम हरसेरे ॥ध० ॥बीजुंक्षायोपशमिक कहिये, उपशमपरिपणल हियेंरे ॥ध०॥५॥ मिछापुंजकरीत्रिण निरणे ॥ कोई अपूरवकरणेरे ॥ध०॥ शुद्धपुंज तिहांवेदतोज्ञानी, जिनवचनामृतपानीरे ॥ ध० ॥ ६ ॥ उपशमपाम्याविण तुजना मे ॥ क्षायोपशमिकपामेरे ॥ ध० ॥ यथाप्रवृत्तिकरणत्रयक्रमथी ॥ अंतरकरणेतुज थीरे ॥ ध० ॥ ७ ॥ जेजहेउपशम नवजल तरवा ॥ तसत्रणपुंजन करवारे ॥ ध० आलंबन अलहंती ईयल, जिमसंगण नमूकेरे ॥ ध०॥ ८ ॥ मिश्रपुंज अणजाणी उपशमे ॥ तिममिथ्याते ढूकेरे ॥ ध० ॥ उपशमसमकितथीतिणिपडिउ ॥ जइ मि थ्या गुण अडिउरे ॥ ध० ॥ ९ ॥ इम सिद्धांतीनिज मत खोले ॥ कल्पनाष्यपण बोलेरे ॥ध०॥ ते त्रणपुंजनुंसंक्रमजाणुं ॥ जिनवयणेमनराखुंरे ॥ ध०॥१०॥ मिथ्या दलिकथीपुजल खिंची ॥ समकितदृष्टींविंचीरे ॥ ध० ॥ संकरमावे समकित मीसें ॥ शुभपरिणामे हिंसेरे ॥ ध० ॥ ११ ॥ समकितदृष्टी मीस आकर्षी ॥ समकितमां हेहर्षीरे ॥ ध० ॥ संकरमावे मिथ्यादृष्टी ॥ मिथ्यामांगुंणप्रष्टीरे ॥ ध० १२ ॥ सम कित पुंजल मिथ्यामांहे ॥ पण मीसें नवि चाहेरे ॥ ध० ॥ मिछाखीण नहीछे जे हने ॥ ते त्रण पुंजछे तेहनेरे ॥ ध० ॥ १३ ॥ मिछाखीण थये दोय पुंजी ॥ मी स खये एक पुंजीरे ॥ ध०॥ क्षायक समकित पुजल नाशे ॥ जिन आगम इम भा सेरे ॥ ध० ॥ १४ ॥ सोधित मयण कोद्रवा थाने ॥ समकित पुजल मानेरे ॥ ध० ॥ तेहने विरुध तैलादिक पाशे ॥ शुद्धपणु तस नासेरे ॥ ध० ॥ १५ ॥ तिमज कु शास्त्र कुतीर्थिकसंगे ॥ तस किरिया मन रंगेरे ॥ ध० ॥ मिथ्या, मिश्रित समकित जाये ॥ ततक्षण मिथ्या थायरे ॥ ध० ॥ १६ ॥ समकितथी पडिकंजो पाछुं ॥ वली समकितलहे आछुंरे ॥ ध० ॥ ते त्रण पुंज करे तिहां फेरी ॥ मिछ अपूर विवेरीरे ॥ध०॥१७॥ अनिवृत्तिकरण बलें ते रसीउ ॥ समकित पुंजे वसीउरे ॥ ध०॥ समकित परेजिहां विरतिनेपावे ॥ आद्यकरण बे आवेरे ॥ध०॥ करण अपू रव कालने आगे ॥ विरतिलही तिहां जागेरे ॥ ध० ॥ १८ ॥ अंतर मुंहुरतमां तस लाधे ॥ निज परिणामे वाधेरे ॥ ध० ॥ ऊंचो नियम नहो तिहां कोई ॥ वृ द्धि हाणी सम होईरे ॥ ध० ॥ १९ ॥ अनाभोग परिणामनी हाणे ॥ गइ विरति नवी जाणेरे ॥ ध० ॥ अकृत करण थको ते प्राणी ॥ फिरी लहे विरति सुहा णीरे ॥ ध० ॥ २०॥ आभोगें जे विरतिथी खसिया ॥ तिमज मिथ्यागुणे वसिया रे॥ध०॥अंतरमुहूरतमां लहे आछी॥जघन्य थको फिरी पाछीरे ॥ध०॥२१॥उत्कर्षे व

हुकालें जाणी ॥ आद्य करणछे साखीरे ॥ ध० ॥ इणीपरे कर्मप्रकृति वृत्तिमाहे ॥ तिहा जोजो उछाहेरे ॥ ध० ॥ २२ ॥ कोइ विराधित समकेत फेरी ॥ ते लहे मिथ्या वेरीरे ॥ ध० ॥ छठीनरक लगे ते जाय ॥ समय मतें कहेवायरे ॥ ध० ॥२३ आक वयविना लहाहे ॥ फिरी समकित अवगाहेरे ॥ ध० ॥ वैमानिकविण आउ न बाधे ॥ कर्म मती मत साधेरे ॥ ध० ॥ २४ ॥ समकित पतित कहे मतबाधे ॥ उत्कृष्टी स्थिती बाधेरे ॥ ध० ॥ भिन्न ग्रंथिने आगम न्याने ॥ स्थिति उत्कर्ष न मानेरे ॥ध०॥ २५ ॥ इणीपरे भेद मतातर जाणे ॥ पण सदेह न आणेरे ॥ ध० नि शकित तुज वयण आराधे ॥ न्यायें तस गुण वाधेरे ॥ ध० ॥ २६ ॥

अर्थ – हवे त्रीजाढालनो अर्थ कहेछे हवे प्रथम सम्यक्त्व पामतो कोइक जीव सम्यक्त्वनी सायेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणु पामे ॥ उक्तंच शतकवृहद चूर्णौ ॥ उवसम सम्मद्दिठी, अतरकरणेठिउ कोइ ॥ देसविरयपिलभइ, कोइपमत्ताप मत्तभावपि सासाणोनकिपिलभेइति पछी ते ओषधसमान उपशम सम्यक्त्वे करीने कोईक जल वस्त्रने दृष्टाते मिथ्यात्व मोहनीयकर्म सोधीने त्रण प्रकारेकरे ते कहेछे १ शुद्धपुज २ अर्द्धविशुद्धपुज ३ अविशुद्धपुज

ते त्रण पुजमाथी जेवारे शुद्ध पुजनो उदय होय तेवारे शुद्धमिथ्यात्व पुजल वेदनथी क्षायोपशम सम्यक्त्व कहिये तेनु लक्षण कहेछे जेम कोद्रवा धोयाथका केटलाक मयणारहित थाय अने केटलाक लिगारेक मयणावालारहे अने केटलाक तो मयणासहीतज रहे अथवा पाणीपण केटलुक स्वछ निर्मल थाय अने केटलुक निर्मल तथा मेलु रहे तथा केटलुकतो मेलुजरहे तेमज वस्त्रपण धोयाथका कोइक निर्मलज थाय कोइक अर्द्ध मलीन रहे अने कोइकतो थाखु मलीनजरहे.

ए पूर्वोक्त दृष्टाते त्रण पुजपण छे तेमा जेवारे शुद्धपुजनु उदय होय तेवारे तेना उदयना वशथकी जीवने विशुद्ध अरिहतना तत्वनी श्रद्धाहोय तेथी ते जीव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पामे अने जेवारे वली अर्द्धविशुद्ध पुजनो उदय होय तेवारे ते उदयनावशथकी जीवने अर्द्धविशुद्ध अरिहतभापीतनु तत्व श्रद्धान होय तेवारे एजीव सम्यक् मिथ्यादृष्टी एटले मिश्रदृष्टीवत्त कहिये अने जेवारे अशुद्धपुजनो उदय होय तेवारे जीवने मिथ्यादृष्टीज कहियें तेवारे ते उदयनावशथकी वीतरागना शासनउपरे सर्वथा रुची नज होय

यथाप्रवृतिकरणादिकरणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे त्रणपुज तोजीव सर्वथा नजकरे तेमाटे उपशम सम्यक्त्वथी पडयो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय

हवे कर्मग्रंथिकनुं मतकहेछे कर्मग्रंथवाला एममानेछे के अनादि मिथ्यादृष्टीजीव सम्यक्त्वलाभकाले यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय पूर्वक अंतरकरणकरे तिहां उपशम सम्यक्त्वपामे तिहांत्रणपुंज अवश्यकरे तेकारणमाटेज उपशमथी पड्योजीव क्षायोपशमिकसम्यक्त्वपामे अथवा मिश्रपुंजेजाय अथवा मिथ्यात्वेजाय एचारगाथानो अर्थछे.

हवे पांचमीगाथाथी मांडीने नवमीगाथासुधी वली सिद्धांतिकनुंमत कहेछे कोई अनादि मिथ्यादृष्टी तथाविधसामग्रीना सद्भावें अपूर्वकरणेकरी त्रणपुंजकरे पछी शुद्धपुंजना पुद्गलनेवेदतो जीव उपशम सम्यक्त्व पाम्याविना प्रथमथीज क्षायोपशमिक सम्यक्त्वपामे अने बीजा घणाजीवतो यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे माटे त्रणपुंजतो जीव सर्वथानजकरे उपशमथी पड्यो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय ॥ यदुक्तं कल्पभाष्ये ॥ आलंबण मलहंताजह सट्ठाणं न मुंचएइलिया ॥ एवं अकयतिपुंजो, मिछंचिय उवसमीएई ॥ १ ॥ जेम गात्रसमुत्क्षिप्तकरेथके इलिकाजे गाभरते बीजास्थानकरूप आलंबनने अणपामति पोतानुं स्वस्थानकनमूके गात्रसंकोची तेजस्थानके रहे तेम उपशम सम्यक्दृष्टी उपशम सम्यक्त्वथीपड्यो त्रणपुंजकस्यानथी माटेमिश्रपुंज अने शुद्धपुंजलक्षण स्थानांतर अणपामतो वलीतेहीज मिथ्यात्वपुंजे आवे एसिद्धांतिकनुं मत कह्युं॥५॥६॥७॥८॥९॥

हवेपुंजत्रयनुसंक्रमण कहेछे कल्पभाष्यमां एमकह्युंछे के सम्यक्दृष्टीजीव मिथ्यात्वदलिकथकी पुद्गलआकर्षि प्रवर्द्धमान परिणामथको सम्यक्त्वपुंजमांहे अथवा मिश्रपुंजमांहे संक्रमावे अने मिश्रपुद्गलने सम्यक्दृष्टी सम्यक्त्व पुंजमांहे संक्रमावे अने मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वपुंजमां संक्रमावे तथा सम्यक्त्वपुद्गल पण मिथ्यात्वमांहेज संक्रमावे पण मिश्रमांनसंक्रमावे यदुक्तं मिछत्तासंकंती अविरुद्धा होइ सम्म मीसेसु ॥ मीसाउवादोसुं, सम्मामिछंन उणमीसं ॥ १ ॥ जेनो मिथ्यात्वक्षयपाम्युंनथी ते सम्यक्दृष्टी नियमा त्रिपुंजीजहोय अने मिथ्यात्वक्षीणथयेथके द्विपुंजीजहोय अने मिथ्यात्व तथा मिश्रबेक्षीणथयेछते एकपुंजीजहोय अने सम्यक्त्वपुंज क्षयकरेथके क्षपक एटले त्रणेपुंजनोक्षय कस्याथकां क्षायिक सम्यक्त्ववंत होय ॥ यदुक्तं कल्पभाष्ये मिछत्तेमिश्रखीणे, तीपुंजीसम्मदिठ्ठिणोनियमा ॥ खीणंमिउ मिछत्तेडएगपुंजीवखवगोवा ॥ १ ॥ जे सम्यक्त्वपुद्गल ते सोधित मदनकोद्रवा समानजाणवा तथा जेम सोधेला कोद्रवा विरुधतैलादिके भाव्याथका फरीपाछा मयणालाथाय तेम सम्यक्त्वपुद्गलने विरुधतैलादिक समान कुतीर्थसंसर्ग कुशास्त्रश्रवणादिक मिथ्यात्वेकरी वासीतकस्याथकां तत्क्षण मिथ्यात्वथाय.

वलीते सम्यक्त्वथी पडवडियो फरी सम्यक्त्वपामे तेवारे शीरीते पामे तेकहे छे प्रथम पडवडिया केटलाहोय अने ते केइगतिमालाने ते कहेछे

अनविय चउछणते, पंचमए दसणाइ परिवडिया ॥ सेसाउसिद्धिमाइ, अठम णतंमि तेवीस ॥ १ ॥ मतांतरेप्येव ॥ अनविय चउछणते, पचमिसमाइ परिवडी सिद्धा ॥ सेसाअठमणते, पञ्जयूलवणाइ वावीस ॥ २ ॥ चत्तारिय वाराउ, चउदस पुव्वीकरेइआहार ॥ ससारमिवसतो, एगनवे दुन्नि वाराउ ॥ ३ ॥ तिछयररिद्धिदस ण, सुहुमपयछावगाहणाहेउ ॥ ससयवुछेयछं, गमणजिणपायमूलंमि ॥ ४ ॥ स मउजहन्नमतर, उक्कोसेणहवति छम्मासा ॥ आहारसरीराण, उक्कोसेण नवसह स्सा॥५॥ जनरए असुराई, पुढवाइसु सयल विगल तिरिएसु ॥ वतर जोइविमाणे, सुपत्तेयइमेअसखिज्जा ॥ ६ ॥ सियसखसियमसखा, मणुएसु अणतया वणेनवर ॥ परिवडिअगया आहा, रग्गविलग्गति इह समए ॥ ७ ॥

जेवारेपण सम्यक्त्वथी पड्यो फरीपाछु सम्यक्त्वपामे तेवारे पण अपूर्वकरणेकरी पुनत्रणकरीने अनिवृत्तिकरणेकरी सम्यक्त्व पुजेजाय एटले क्षायोपशम सम्यक्त्व पामे इहां कोई पूछेजे अपूर्वकरण तो पूर्वे केवारेपण एवो परिणाम न आव्योहोय अने प्रथम नवोआवे तेने कहिये करणपरिणामविशेष इतिवचनात् अने अ पूर्वकरणतो ग्रंथीनेदेआव्योहतो तेहीज वली परिणामे फरी आव्यो तेवारे अपू र्वपणु केमथयु ? तेने उत्तरकहेछे अपूर्वमिवापूर्वस्तोक वारमेवलाभादितिवृद्धा अपूर्व नीपरे अपूर्व थोमावारज पाम्या माटे फरी अपूर्वकहिये जेम कोइक पदार्थ पुत्र ध नरत्नादिक पूर्वेथोरुपाम्याहोय ते फरीपामे तोपण तेने अपूर्व करीजमाने तेम अ पूर्वकरणरूप परिणामपण जीवने थोमीवारज आव्योछे तेमाटे तेपण अपूर्वज कहिये ए सिद्धातनु मतजाणवु

हवे सम्यक्त्वपाम्यानीपरे जेवारे कोइजीव देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपा मे तेवारेपण यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण ए बे करणकरे पण अनिवृत्तिकर ण करेनही अपूर्वकरणनो अतरमुहूर्त्तरूप काल समाप्तिने अनतर समयेज देश विरति सर्वविरति पडिवज्या, पछी अनतर अतरमुहूर्तलगे ते जीवने अवश्य प्रव र्द्धमान परिणामहोय पछी अतरमुहूर्त्त उपरात नियमनही कोइप्रवर्द्धमान परिणा मियकोजरहे अने कोइ स्वभावस्थजरहे तथा कोइ हीनपरिणामिपणथाय तेवली अनाभोगे कोइक परिणामनी हाणीथकी देशविरति अथवा सर्वविरति थकी पड्या ते अकृतकरणा एवताअनतेके० यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण कर्याविना

नाज वली देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपामे अने जेजीव आनोगेकरी पड्या अने अनोगेंकरीनेज मिथ्यात्वेंगयां ते जघन्यथी अंतरमुहूर्त्त अने उत्कर्षथी घणे काले यथोक्त करणपूर्वकज एटले पूर्वोक्त बन्नेकरणेकरीनेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणु वली फरीथीपामे एवुं कर्मप्रकृतिनी वृत्तिमां कह्युंछे ए दशमीगाथाथी मांमीने बावीसमी गाथासुधी तेरगाथानुं अर्थनेलो कह्यु ॥ २२ ॥

हवे सिद्धांतनुंमत अने कर्मग्रंथनुंमत जिन्नजिन्नकहेछे तेमां प्रथम सिद्धांतिक नामतेतो विराधित सम्यक्त्वी सम्यक्त्वथी पड्यो फरी सम्यक्त्व पाम्योथकोपण कोइक छठीनरकसुधीजाय अने कर्मग्रंथिकनामतेंतो छते सम्यक्त्वे वैमानिकविना बीजाछेकाणानुं आयुबांधेजनही यडुक्तं सम्मत्तंमिउलद्धे, विमाणवज्जं न बंधए आउ ॥ अहवन्न समत्त जढो, अहवन बंधाउ उपुव्विं ॥ १ ॥ वली कर्मग्रंथिकनेमतेंतो सम्यक्त्वपामीने पड्यो तेजीव उत्कृष्टस्थितिनी कर्मप्रकृतिबांधे तथा सिद्धांतिक मतेतो जिन्नग्रंथीवालाने उत्कृष्टीस्थितिनो बंधजनहोय.

यडुक्तं सैद्धांतिक मतेहि विराधित सम्यक्त्वे गृहीतेनापि सम्यक्त्वेन षष्ट पृथिवीयावत्कोप्युत्पद्यते अने कार्मग्रंथीकमतेतो वैमानिकेन्योन्यत्रनोत्पद्यते तेनगृहीतेनेत्युक्तं प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ अवाप्तसम्यक्त्वश्चतत्परित्यागे ॥ कार्मग्रंथिकमतेतो उत्कृष्टस्थितीः कर्मप्रकृतीर्बध्नाति सिद्धांतिकाजिप्रायतस्तुजिन्नग्रंथेरुत्कृष्टः स्थितिबंध एवनस्यादित्यादिन्नेद मतांतरे जाणे पण हठताणेनही जे जेम वीतरागनी आज्ञाहोय तेम प्रमाणकरे पण संदेहनआणे तेजीव ताहरी आज्ञानुं आराधक जाणवोए त्रेवीसथीमांमी छवीसमीगाथासुधी त्रीजाढालनो अर्थपूरोथयो.

॥ ढालचोथो विनयवहोसुखकार अथवा सालिन‍इ नोगीरहो एदेशीछे. ॥

॥ दर्शन मोह विनाशथीजी ॥ जेनिर्मल गुणगण ॥ ते समकित उंपे कह्युंजी ॥ ते नविपण हित आणरे ॥ जिन जी तुज आणासुंरंग ॥ मुज नगमे मिथ्यासंगरे॥ जि० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ मिछा दरसण मोहनीजी ॥ उपशमि उपशमजाण ॥ धुरग्रंथी नेदे कह्युंजी ॥ उपशमश्रेणी प्रमाणरे ॥ जि० ॥ २ ॥ नाश उदीरण मिछनोजी ॥ अनुदीरण समगम ॥ क्षयउपशमथी उपजेजी ॥ क्षयोपशमिका नामरे ॥ जि० ॥३॥ त्रिविधि मोह विनासथीजी ॥ त्रीजुंक्षायिकनाम ॥ क्षपकश्रेणी चढतांहुएजी ॥ जेहथी शिवपुर गमरे ॥ जि० ॥ ४ ॥ विपाक प्रदेशें वेदवुंजी ॥ द्विविध उदय विष्कंन ॥ उपशमतुं तेहने कहेजी ॥ आगममां थिरथंनरे ॥ जि० ॥ ५॥ नाश विपाकोदय थकी जी ॥ वेदन तेहनुंरे नाम ॥ उपशमि ते नवि संनवेजी॥

क्षायोपशमिक गामरे ॥ जि० ॥ ६ ॥ मिछा पुञ्ज वेदवाजी ॥ शुद्ध अशुद्ध तिहा दोय ॥ विपाक प्रदेशोदय थकीजी ॥ अनुक्रमे समजी जोयरे ॥ जि० ॥ ७ ॥ अण चउ छग मिछा तणाजी ॥ पुज खपावीरे होय ॥ शुद्धपुंज खपता तिहांजी ॥ अंतिम पुज्जल होयरे ॥ जि० ॥ ८ ॥ तस वेदन तेहने कह्युजी ॥ वेदक चोथुंरे नाम ॥ उपशम वमतां पाचमुंजी ॥ सासादन गुण धामरे ॥ जि० ॥ ९ ॥ अतरमुहूरत एकनीजी ॥ उपशम स्थिति उवेप ॥ उत्कर्षे पट आवली जी ॥ जघन्य समय होय शेपरे ॥ जि० ॥ १० ॥ अशुद्धपुज जावा तणीजी॥ इछाये तिहा तास॥अण कसाय उदये हुयेजी ॥ जेहथी उपशम नाशरे ॥ जि० ॥ ११ ॥ उपशमथी पमतायकाजी ॥ न गयो मिछारे जाव ॥ तावत सासादन कह्युजी ॥ उपशम स्वाद सहावरे ॥ जि० ॥ १२ ॥ अंतरमुहूरत कालनीजी ॥ उपशम स्थिति गुणखाण ॥ सासादन पट आवलीजी ॥ वेदक समय प्रमाणरे ॥ जि० ॥ १३ ॥ स्थिति सागर तेत्रीसनीजी ॥ साधिक क्षायक जाण ॥ वमणी स्थिति एहथी कहीजी ॥ क्षायोपशमिक गणरे ॥ जि० ॥ १४ ॥ उपशम सासादन कह्युजी ॥ आनव वेलारे पच ॥ वेदक एक वेला हुयेजी ॥ तिमहिज क्षायक सचरे ॥जि०॥१५॥ वार असख्य उत्कर्पथीजी ॥ क्षायोपशमिक होय ॥ हवे तस गुण गणा कहुंजी ॥ साम्भलजो सहु कोयरे ॥ जि० १६॥ उपशम अडगुण गणमाजी, अविरत गुण पडरेख ॥ क्षाइक गुण गणे सवेजी ॥ आदिम त्रणविणशेपरे ॥ जि० ॥ १७ ॥ अविरति गुणगणा थकीजी ॥ जावत सप्तम गण ॥ एक वेदक बीजु इहाजी ॥ क्षायोपशमिक जाणरे ॥ जि० ॥ १८ ॥ सासादन सासादनेजी ॥ नापे अंग उवग ॥ न्याये शिवसुख ते लहेजी ॥ जशतुज आण अनगरे ॥ जि० ॥ १९ ॥

अर्थ – हवे चोथा ढालनो अर्थकहेछे तेमा प्रथम बारगाथालगें उपशमादिक पांच सम्यक्त्वनुं सरूपकहेछे दर्शनमोहनीयना विनाशथकी जे आत्माने निर्मल गुणस्थानक उपजे ते निर्मल सम्यक्त्व कहियें ते उपशमादिक पाचप्रकारनुंछे

हवे उपशमसम्यक्त्व ते कोने कहिये ते ओलखावेछे उदीरणामिथ्यात्वनो क्षयथयाथी अने अनुदीरणा मिथ्यात्वनो उपशमथयाथी एटले विपाकप्रदेश वेदनरूप द्विविधें उदयने विष्कभपणे करीने नीपनुं ते उपशम सम्यक्त्व कहीयें

उदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेणत्वनुदीर्णस्य उपशमेविपाकप्रदेशवेदनरूपस्य द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कभणेन निर्वृत्ति, उपशमिक तदोपशमिकं सम्यक्त्व द्वि

धा ग्रंथिभेदसंभवं उपशमश्रेणि संभवंच ग्रंथिभेदसंभवंप्रसिद्धं उपशमश्रेणिसंभवं सम्यक्त्वं श्रीजिनभद्रगणिप्रणितगाथाभिरेव विभाव्यते.

उपशमसम्यक्त्व बे प्रकारनुंछे एकग्रंथीभेदेउपनुं बीजुंउपशमश्रेणीथी उपनुं तेमां ग्रंथीभेदनुं स्वरूपतो बीजाढालमां कह्युंछे अने प्रसिद्धपणछे अने उपशमश्रेणीथी उपनुंजे सम्यक्त्व तेनुं स्वरूपतो श्रीजिनभद्रगणि कृत गाथायेंज भावियेछे.

यडुक्तं उवसामग सेढीए, पठ्ठवउ अप्पमत्तविरउत्ति ॥ पज्जवसाणे सोवा होइ पमत्तोअविरउवा ॥ १ ॥ अन्नेभणंति अविरय, देसपमत्तापमत्तविरयाणं ॥ अन्नय रो पडिवज्जइ, दंसण समयंमि अनियट्टी ॥ २ ॥ संजलणाईण समो ॥ जुत्तो सं जो अणोदउजेउ ॥ तेपुवंचिय समिया ॥ नणुसम्मत्ताइ लाभंमि ॥ ३ ॥ आचार्या आसिखउवसमोसि, समो हुणा भणइ कोविसेसोसिं, नणुखीणंमि उइन्ने ॥ सेसोवसमे खउवसमो ॥४॥ सोचेव तणूवसमो ॥ उइए खीणंमि सेसए समिए॥सु हुमोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोयं ॥ ५ ॥ वेएइ संत कम्मं ॥ खउवसम्मे सु नाणुभावंसो ॥ उवसंत कसाउ पुण, वे एइन संतकम्मंपि ॥ ६ ॥ संजोअणा इयाणं ॥ नणूदउ संजयस्स पभिसिद्धो ॥ सच्चमिह सोणुभावं ॥ पडुच्च न पएस कम्मंतु ॥७॥ भणियं च सुए जीवो ॥ वेएइ नवाणुभाव कम्मंतु ॥ जं पुण पएस कम्मं ॥ नियमा वेएइ तं सवं ॥ ८ ॥ नाणुदियं निज्जरए ॥ नासंत मुदेइ जं त कुवसम्मं ॥ सवंपएसकम्मं ॥ वेएउं मुच्चए सवो ॥ ९ ॥ किहदंसणाइ घाउ ॥ न होइ संजोअणाइ वेययउ ॥ मंदाणु भावयाए ॥ जहाणु भावंपि विकहंचि॥१०॥ निच्च मुइन्नंपि जहा॥ सयल चक्क भाणिणो तदावरणं ॥ नविघाय मंदयाए ॥ पएस कम्मं तहा तेयं ॥ ११ ॥

हवे क्षायोपशमिकनुं स्वरूप कहेछे उदीरण मिथ्यात्वमोहनीयने विपाकोदयेंक रीने वेदितपणामाटे क्षयकरेथके अने अनुदीरण मिथ्यात्व मोहनीयने उपशमावे थके ए क्षय अने उपशमरूप ते क्षायोपशम सम्यक्त्व कहियें इहां पूर्वपक्षकरीने चर्चक पूछेछे के कहोजी क्षायोपशमिक अने उपशमिक सम्यक्त्वनो शो विशेषप णछे केमके उदीरण मिथ्यात्वनोक्षय अने अनुदीरण मिथ्यात्वनो उपशम ए तो बेहुनेविषे समानछे तेमछता बेहुना जूदाजूदा नाम केम कहोछो एकनाम केम के हेतानथी एम पूछनारने उत्तर कहेछे सांभलो क्षायोपशम सम्यक्त्वनेविषे शुद्धमि थ्यात्वपुंजना पुगल विपाकोदयें वेदीयें छे अने अशुद्धमिथ्यात्व पुंजना पुगल प्रदे

शोदय वेदीयेछे अने उपशमसम्यक्त्वनेविशेतो वली सर्वथा कांइयेपण नथीवेदता एटलु विशेषपणुं उपशम अने क्षायोपशमनु जाणवु

यडुक्तं – आसि खउवसमोसिसमोद्दुणा नणइ कोविसेसोसिं, तणु खीणमि उइन्ने ॥ सेसोवसमे खउवसमो ॥१॥ सोचेवनणूवसमो ॥ उइए खीणमि सेसएसमि ए॥सुद्धमोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोयं ॥२॥ वेएइ सतकम्म खउवसम्मे सु नाणु नावसो ॥ उवसत कसाउ पुण ॥ वेएइन संतकम्मपि ॥३॥ इत्याद्युक्त मस्ति

हवे क्षायक सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे सम्यक्त्व मिश्र अने मिथ्यात्वपुजरूप त्रिविध दर्शनमोहनीयनुं नि शेष क्षयलक्षण क्षायक सम्यक्त्वकहिये ते क्षायकसम्यक्त्व क्षपकश्रेणीपडिवजतानेहोय यडुक्त॥खीणे दंसण मोहे, तिविहमि विजव नि आण नूयंमि ॥ तिप्पच्चवायमतुलं, सम्मत्तं खाइयं होइ ॥ १ ॥ ते क्षायकसम्यक्त्व क्षपकश्रेणीने विषे आवीरीतेहोय ते कहेछे

यडुक्तं॥ पढम कसाये समय, खवेइ अतो मुहुत्त मित्तेण ॥ तत्तुच्चिय मिच्छत्तं, त उच्च मीसं तउसास ॥ १ ॥ वच्छाउ पडिवन्नो, पढम कसाय खए जइ मरिज्जा ॥ तो मिच्छत्तोदयउ, विणज्ज उज्जो न खीणमि ॥ २ ॥ तमिम उज्जाइ दिव, तप्परिणामो असत्तए खीणे ॥ उवरय परिणामो पुण, पच्छा नाणा मई गइउ ॥ ३ ॥ खीणमि दसणतिए, किंहोइ तउत्ति दसणाईउ ॥ नन्नइ सम्मदिट्ठी, समत्त खए क उ सम्म ॥ ४ ॥ निद्दलिय मयण कुद्दव, रूव मिच्छत्त मेव सम्मत्त ॥ खीए न उ जोनावो, सद्दहणा लक्कणो तस्स ॥ ५ ॥ सो तस्स विसुद्धयरो, जायइ सम्मत्त पुग्गल क्खयउ ॥ दिट्ठिव सण्ह सुद्ध, ञ्च पम्हल विगमे मणूसस्स ॥ ६ ॥ जह सुद्ध जलाणुगय, दहु सुद्धं जलक्खए सुतर ॥ सम्मत्त सुद्ध पुग्गल, परिक्खए दसण एव ॥ ७ ॥ तंमिञ्च तइय चउछे, नवमि सिभ्नंति खइय सम्मत्ते ॥ सुर निरय जुगलि सुगई, इमतुजिणकालिय नराण ॥८॥ पडिवत्तीए अविरय, देस पमत्तापमत्तविरयाण॥ अन्नयरो पडिवज्जइ, सुक्कज्जाणोव गयचित्तो ॥९॥ इति क्षायक सम्यक्त्व स्वरुप

हवे वेदकसम्यक्त्वनु खरुपकहेछे वेदकसम्यक्त्वते क्षपकश्रेणी पडिवजनारने होय चारअनतानुबंधीया कषाय तथा मिथ्यात्व अने मिश्र ए बे पुज खपावेथके अने सम्यक्त्वपुज खपावतोहोय एटले सम्यक्त्वपुजना छेलापुञ्ज खपाववाने उजमालथयो ते सम्यक्त्वनापुजनु वेदनकाल तेना चरमसमयनेविषे चरमपुञ्जनु वेदवु तेनुनाम वेदक सम्यक्त्व कहिये, जेम सूक्ष्मलोभना खम वेदनथी सूक्ष्मसपराय कहिये तेम जाणवु यडुक्त सम्मत्त चरम पुग्गल, अणुनवणावेयगंविंति इति वचनात्

हवे सास्वादन सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे पूर्वोक्त परमनिधान लाभ समानजे उपशम सम्यक्त्व तेनो अंतरमूहूर्त्तजे काल ते कालमांथी उत्कृष्टथी शेष छ आवलिका प्रमाण काल रह्यो होय अने जघन्यथी एकसमय अविशेषहोय तेवारें अशुद्धपुंजे जावानी इच्छायें कोइकने महा विभीषिकोत्थान कल्प अनंतानुबंधियानो उदयहोय ते अनंतानुबंधीने उदयें सम्यक्त्व वमतो गुलवमननीपरें अथवा मालपतननीपरे सम्यक्त्वने आस्वादे थातेथके सास्वादन सम्यक्त्वहोय एटले उपशमसम्यक्त्ववंत उपशमथी पडतोथको जिहांसुधी हजी मिथ्यात्वगुणठाणो नथी पाम्यो तिहांलगें सास्वादन सम्यक्त्व कहियें तदुक्तं उवसम सम्मत्ताउ, चयउ मिछं अपाय माणस्स॥सासायण सम्मत्तं, तयंतरालं मिछा वलिया ॥ १ ॥ एरीते चोथाढालनी बारगाथासुधी पांच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकह्युं हवे वली कांइकतेनोजविशेष कहेछे.

सम्यक्त्व ते सुं कहिये जे मिथ्यात्व विकारनुं अणउपजावनारो एहवो कोइ अतिशुद्ध अध्यवशायविशेष आत्मानुं परिणमन तेनेज सम्यक्त्व कहियें तेनाभेद क्षायक वेदक उपशमिक सास्वादन क्षायोपशमिक भेदव्याख्यान गाथायेंकहेछे.

खीणे दंसण मोहे, तिविहंमि विखाइयं भवेसम्मं ॥वेयग मिह सव्वोइय, चरमिल्लय पुग्गल ग्गासं ॥ १ ॥ उवसम सेढि गयस्सउ, होई उवसामियंतु सम्मत्तं ॥ जोवा अकयतिपुंजो, अ खविय मिछो लहइसम्मं ॥ २ ॥ उवसम सम्मत्ताउ, चयउमिछं अपाव माणस्स ॥ सासायण सम्मत्तं, तयं तरालं मिछा वलिया ॥ ३ ॥ मिछत्तंज मुइन्नं, तंखीणं अणुइयं च उवसंतं ॥ मीसीभावपरिणयं, वेइज्जं तंखउव समं ॥ ४ ॥ इत्यादि बारगाथाउनो अर्थ कह्यो.

हवे ए पांच सम्यक्त्वनी स्थिति कालमानादिक कहेछे तेमां उपशमसम्यक्त्वनो अंतरमुहूर्त्त स्थितिकालछे सास्वादननुं उत्कृष्टो छ आवलिकानुं अथवा जघन्यथी एक समयकालछे वेदकनो एक समय क्षायकसम्यक्त्वनो साधिक तेत्रीस सागरोपमकाल क्षायोपशम सम्यक्त्वनुं साधिक छाशठसागरोपमनुं काल जाणवुं.

एक सास्वादन सम्यक्त्व अने बीजुं उपशमसम्यक्त्व ए बे उत्कृष्टा पांचवार आवे तथा वेदक अने क्षायिक ए बे सम्यक्त्व एकवारज आवे अने क्षायोपशम सम्यक्त्व असंख्यातिवार आवे. यदुक्तं अंतमुहुत्तो वसमो, छावलि सासाण वेयगो समउं ॥ साहिय तित्ती सायर, खइउ डुगुणो खउवसमो ॥ १ ॥ उक्कोसं सासायण, उवसमिया हुंति पंचवाराउ ॥ वेयग खइगाइक्कसि, असंखवारा खउवसमो २

हवे प्रसंगागत कांइ विशेषता कहेछे सामायक चार प्रकारनुंछे सम्यक्त्व सा

मायक श्रुतसामायक देशविरतिसामायक अने सर्वविरतिसामायक तेमां जे सम्य क्त्वाचोनावते सम्यक्त्वसामायक श्रुतसिद्धांतनुं जाणवुं ते श्रुतसामायिक देशथकी विरमवुं ते देशविरतिसामायक सर्वथकी विरमवुं ते सर्वविरतिसामायक एरीते चार सामायक छे तेमां सम्यक्त्वसामायक श्रुतसामायक देशविरति सामायक ए त्रणने उत्कृष्ट आकर्ष एटले जे प्रथमपणे मूक्यानुं ग्रहण ते एकनवमां सहस्रपृ थक्त्व एटले बेहजारथी मांमीने नवहजारसुधी होय अने सर्वविरतिने शतपृथ क्त्व एटले बशोथी मांमीने नवसोसुधी होय ए उत्कृष्टथी कह्युं, ने जघन्यथी एक ज आकर्ष सर्वने होय ए एकजवआश्रयी कह्युं यडुक्तं तिह्लं सहस पुहुत्तं, सय प्पुहुत्तंच होइविरईए ॥ एगजवे आगरिसा, एवइया हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

हवे नानाजव आश्री आकर्ष कहेछे —ए उपरना त्रणसामायकने सर्वजवनेविषे उत्कृष्टा असख्याता सहस्र पृथक्त्व आकर्ष थाय अने सर्व विरति सामायकने सर्व नवमां सहस्र पृथक्त्व आकर्ष होय ए सर्वजव आश्री कह्युं यडुक्तं तिह्ल सहस मसखा, सहस पहुत्तंच होइ विरईए ॥ नाणजवे आगरिसा, एवइयाहुंति नायव्वा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

हवे ए पांचसम्यक्त्वने गुणगणाकहेछे बीजे सास्वादन गुणगणे सास्वादन स म्यक्त्वहोय अने चोथाथीमांमीने अग्यारमा गुणगणालगे आठगुणगणा उप शम सम्यक्त्वीने होय अने चोथाथीमांमी चउदमालगे इग्यारगुणगणा क्षायक सम्यक्त्वनेहोय अने चोथाथीमांमी सातमागुणगणालगे चारगुणगणा वेदक अ ने क्षायोपशमसम्यक्त्वनेहोय यडुक्तं बीयगुणे सासाणो, तुरियाइसु अडिगार चउ चउसु ॥ उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमाहुंति ॥ १ ॥

हवे चउदगुणगणानोअर्थ लेशमात्र गाथायेंज कहीदेखाडेछे गाहा ॥ जीवाइ पयडेसु, जिणोव इहेसु जा असद्दहणा ॥ सद्दहणावि य मिछा, विवरीय परुवणा जाय ॥ १ ॥ ससय करण जपिअ, जतेसु अणायरो पयडेसु, तं पचविह मिछ, त दिढिमिछविडीअ ॥२॥ उवसम अद्धाइ ठिउ, मिछ पमत्तो तमेयग तुमणो ॥ सम्म, आसायंतो, सासायण सो मुणेयव्वो ॥ ३ ॥ जह गुम दहीणिवि समा,इ जाव सहि याणि हुंति मीसाणि ॥ जुज तस्सततहोनय, दिठीडमीस दिठीउ ॥ ४ ॥ तिविहेविहु सम्मत्ते, थेवावि नविरइजस्स कम्मवसा, सो अविरउ त्तिजन्नइ देसे पुण देसविरई उ ॥ ५ ॥ विगहा कसाय निद्दा, सदाइरउ नवे पमत्तुत्ति ॥ पच समिउत्ति गुत्तो, अ पमत्त जई मुणेयव्वो ॥ ६ ॥ अप्पुव्व अप्पुव, जहुत्तर जोकरेइ ठिकंम ॥ रसकम म

ग्घायं, सोहोइ अप्पुव्व करणुत्ति ॥ ७ ॥ विनिवट्टंति विसुद्धि, सम्मग दइठवि जंमि अन्नन्नं ॥ तत्तोनियट्टिगाणं, विवरीय मउवि अनियट्टी ॥ ८ ॥ थूलाण लोह खंमा ण वेअगो बायरो मुणेयव्वो ॥ सुहुमाण होइसुहुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो॥ए॥ खीणंमि मोहणिज्जे, खीण कसाउ सजोगि जोगित्ति ॥ होइ पउत्तो अतउ, अपम त्तो होइह्रु अजोगी ॥ १० ॥ अविरय सासण मिछा, परन्नविया नउण सेस गु णगणा ॥ मिछस्स तिन्नि नंगा, बावलियं होइ सासाणं ॥ ११ ॥ तित्तीसयर च उर्छ, पुव्वाणं कोडि ऊण तेरसमं ॥ लहु पंचरकर चरिमं, अंतमुहू सेसगुण गणा ॥ १२ ॥ ए चोथाढालनो १७–१८–१ए–ए त्रण गाथानो अर्थ कह्यो.

॥ ढाल पांचमो शांतिसुधारस कुंममां तुंरमे मुनिवर एदेशी. ॥

धन धन शासन ताहरुं ॥ माहरुं जिहांमन लीनरे ॥ क्षण पण तसविण न विरहे ॥ जिमजल नर विण मीनरे ॥ धन० ॥ १ ॥ देशविरति दरशणथकी ॥ प लिय, पुहुत्तमां जाणिरे ॥ अनुक्रमे चरणश्रेणीविहुं ॥ संख्यसायर गुण खाणिरे ॥ धन० ॥ २ ॥ तेहिज नवेंहुए तेहने ॥ जेहनेसत्तगखीणरे ॥ चउतियन्नव उत्कर्ष थी ॥ पुव्वबद्धाउने पीणरे ॥ धन० ॥ ३ ॥ बद्धायु सुर नरगनुं ॥ तेहने तियन्नव तंतरे ॥ आउ असंख्यनर तिरितणु ॥ तसपण चउन्नवें अंतरे ॥ धन० ॥ ४ ॥ स मकित स्थितिहोए ओगथी ॥ अंतरमूहूरत एकरे ॥ साहिय खउंवसमासिरी ॥ सायर बासठि बेकरे ॥ धन० ॥ ५ ॥ इग अथवा बहु आसरी ॥ दरसणनो उप योगरे ॥ जघन्य उत्कृष्ट थकी कह्यो ॥ अंतरमूहूरत नोगरे ॥ धन० ॥ ६ ॥ दरस णलब्धि शुन सुरलता ॥ क्षयोपशमादिक रूपरे ॥ अंतरमूंहुरत माननी ॥ जघ न्यथी कहेजिनन्नूपरे ॥ धन० ॥ ७ ॥ बासठ सायर सविमली ॥ नरन्नव हिय उ तकृष्टरे ॥ तेहथी उर्द्ध जो नविदिए ॥ समकित रयणने घ्रष्टरे ॥ धन० ॥ ८ ॥ ते निश्चय शिवपदलहे ॥ ए एकजीवने योगरे ॥ जीवनानाश्रित सर्वदा ॥ दरस णनो उपयोगरे ॥ धन० ॥ ए ॥ अंतरमूहुरत एकनुं ॥ जघन्य अंतरमन आणरे॥ अर्द्ध पुजल परावर्त्तनुं ॥ तस उत्कृष्ट परिमाणरे ॥ धन० ॥ १० ॥ जीव नानाश्रि त नवि होए ॥ समकित अंतर लेशरे ॥ तत्र आवश्यक वृत्तिमां ॥ ए अधिकार विशेषरे ॥ धन० ॥ ११ ॥ दशविध सहज उपदेशथी ॥ उपशम प्रमुख जे पं चरे ॥ अहव निसग्ग रुइ नेदथी ॥ दशविध तस परपंचरे ॥ धन० ॥ १२ ॥ नि सग्गुवएस आणारुइ ॥ सुत्त बीयरुइ अनिरामरे ॥ अनिगमा नोग किरियारुई ॥ संखेव धम्म रुइ नामरे ॥ धन० ॥ १३ ॥ गुरुउपदेशविण सहेजथी ॥ जिनवय

णे परतीतरे ॥ जेह्ने तेह्ने जाणजो ॥ प्रथम निसर्ग रुचि रीतरे ॥ धन०॥१४॥ तेसवि गुरुउपदेशथी ॥ सद्दहे जे जण आपरे ॥ ते उपदेशरुचि नर कह्यो ॥ इम तुज आगम थापरे ॥ धन० ॥ १५ ॥ कारण प्रमुख अजाणतो ॥ मुज जिन आणाज खेमरे ॥ तश्य आणारुचि तुकहे ॥ माप तूपादिक जेमरे ॥ धन० ॥ १६ ॥ सूत्र नणतो समकितलहे ॥ प्रसन्न प्रसन्न परिणामरे ॥ गोविंद वाचकनीपरे ॥ सुत्तरुई तसनामरे ॥ धन० ॥ १७ ॥ देशरुई खउवसमथी ॥ सव्वरुई विस्तारिरे ॥ उदकमा तेलविंडुपरे ॥ वीयरुइ नवतारिरे ॥ धन० ॥ १८ ॥ अनिगमरुई सुअनाणने ॥ अरथथकी अवगाहेरे ॥ अंगपइन्न प्रमुखजे ॥ शास्त्र सर्वेनिरवाहेरे ॥ धन०॥ ॥ १९ ॥ इव्यना नाव जाण्याजिणे ॥ सर्व प्रमाणे असेसरे ॥ सर्वेनयेतिम तसकह्यु ॥ विस्तार रुई अकलेशरे ॥ धन० ॥ २० ॥ दशणनाण चारित वली ॥ तिमतिन यो नमकामरे ॥ सुमति गुपतिकिरियारुचे ॥ तेकिरिया रुइनामरे ॥ धन० ॥ २१ ॥ आगम कोविद नवीहुए ॥ कुमय कुदिट्ठीवि जुत्तरे ॥ सखेवरुई तेह्ने कह्यु ॥ जिमचिलातिय पुत्तरे ॥ धन० ॥ २२ ॥ धम्म अधम्म प्रमुख दव्व ॥ चरण सुय धम्मना नेदरे ॥ जेजिन नापित सद्दहे ॥ तेधम्मरुई निरवेदरे ॥ धन० ॥ २३ ॥ एदशविध दरशण कह्यु, उत्तराध्ययनमजाररे ॥ अध्ययने ते अडवीसमें ॥ न्यायसागर सुखकाररे ॥ धन० ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ ह्वे पाचमा ढालनो अर्थ कहेछे जेटली कर्मस्थिति छते पूर्वे सम्यक्त्वपणु पाम्योछे तेमांहेथी पल्योपम पृथक्त्व लक्षण स्थितिनाखम खपावेथके श्रावकपणु देशविरतिपणुपामे तेवारपछी ते कर्मस्थितिमाथीपण सख्यात सागरोपम कर्मस्थितिखम खपावेथके चारित्र उदय आवे तेवारपछी पण वली सख्यात सागरोपम स्थितिखम खपावेथके उपशमश्रेणी पडिवजे वली तेवारपछी पण सख्यातसागरोपम खपावेथके क्षपकश्रेणी थाय तडुक्त सम्मत्तमि उलद्धे, पलिय पुहत्तेण सावगो हुज्जा ॥ चरणोव सम खयाण, सायर सखंतराहुंति॥ १ ॥

ह्वे काइक लेशमात्र श्रेणीस्वरूपकहेछे पूर्वनोजाण पूर्वगतश्रुतनो धरनार अप्रमत्तगुणनुधणी आद्यनात्रण सघयणमाहेला सघयणनोधणी तेशुक्लध्यानना चारपाया छे तेनानाम कहेछे पृथक्त्ववितर्कविचार एकत्व वितर्क विचार सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति समुछिनक्रियानिवृत्ति तेमाहेला पृथक्त्ववितर्कविचार नामेप्रथमपायो ध्यातोउपशमश्रेणी पडिवजे यडुक्त पूर्वज्ञ शुद्धिमान् युक्तोह्याद्यै सहननैस्त्रिभि ॥सध्यायन्नाद्य शुक्लाशस्वाश्रेणि श्रयतिक्रमात् ॥१॥ अन्यनेमतेतो अविरतादिकपण श्रेणी आरनकछे

वली तेवारपछी अप्रमत्तांतगुणठाणे अनंतानुबंधीनी चोकडी अने त्रणमोहनीय ए सातप्रकृति उपशमावी एकसंज्वलननुं लोजवर्जी बाकी मोहनीयकर्मनी जे वीसप्रकृतिरही ते आठमे अपूर्वकरण तथा नवमें अनिवृत्तिबादर गुणठाणे उपशमावे पछी सूक्ष्मसंपरायने विषे लोजनुं अणुअणुकरीने उपशांतमोहनेविषे तेहिज लोजने उपशमावे. तडुक्तं अपूर्वादि द्वयैकैक, गुणेषु शमकः क्रमात् ॥ करोति विंशतेःशांतिं लोजाणुत्वंच तडमं ॥ १ ॥

तिहां प्रथम संघयणवालोतो उपशमश्रेणी अपरिसमाप्ते एटले श्रेणीपूरीकर्या विना मरेतो पंचानुत्तरविमानेजाय अने जो पुष्ट आउषावालोहोय तेवली उपशांतमोहलगें मोहनीय उपशमावे तिहां उपशमसम्यक्त्वहोय अने उपशमजाव चारित्रहोय ए बे उपशमजावना होय ए उपशमिक अवश्यपडे.

तडुक्तं शांतदृग् वृत्तमोहत्वादन्नौपशमिकाजिधे ॥ स्यातां सम्यक्त्वचारित्रे जावश्रोपशमात्मकः ॥ १ ॥ पततिचाय मवश्यं ॥ यत्तः ॥ वृत्तमोहोदयं प्राप्योपशमीच्यवते ततः ॥ अधःकृतमलंतोयं पुनर्मालिन्यमश्नुते ॥ २ ॥ अपिच ॥ सुअ केवलि आहारग, उजुमइ उवसंतगाविहुपमाया ॥ हिंमंति जव मणंतं, तयणंतरमेव चउगइया ॥ ३ ॥

इहां शिष्यपूछेछे स्वामी उपशमिकने तेहिजजवें मोक्षहोय किंवानहोय तेवारे गुरुकहेछेके होयपणखरुं तेकेमके सातलव अवशेषायुहोय एवो कोइ उपशमिक खंमश्रेणी करीनेज पाछोवले ते सातमेगुणठाणेआवीने वली क्षपकश्रेणीपडिवजे ते शातजवमां क्षीणमोहीथइ अंतगडकेवलीथाय पण एटलोविशेषजे एकवारज उपशमश्रेणी पडिवज्योहोय ते क्षपकश्रेणीपामे अने क्षपकश्रेणीपण पमिवजे पण जे बे वखत उपशमश्रेणी पमिवज्योहोय तेने तेहिजजवें क्षपकश्रेणी नथाय.

तडुक्तं जीवोहु इक्क जम्मंमि, इक्कसिं उवसामग्गो ॥खयंपि कुज्जा नोकुज्जा॥ दोवारे उवसामगो ॥ १ ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आजवं नूणं ॥ तापुण दो एगजवे, खवग स्सेणी पुणो एगा ॥ २ ॥ उक्तंच सप्ततिका चूर्णौ ॥ जोदोवारे उवसम, सेढिंपमिवज्जइ तस्स नियमात्तम्मि जवे, खवगसेढि नछिजो इक्कसिं उवसमसेढि पमिवज्जइ तस्स खवगसेढि बिहुज्जत्ति.

ए कार्मग्रंथिकनो अजिप्रायछे अने आगमनो अजिप्रायतो आवीरीतेछे जे एक जवनेविषे एकजश्रेणी पडिवजे. यडुक्तं कल्पजाष्ये॥एवं अप्परि वडिए, सम्मत्ते देव मणुअजम्मेसु ॥ अन्नयर सेढिवज्जं, एगजवेणंच सवाइं ॥ १ ॥ सव्वाइं के० सर्वे

देशविरत्यादिकहोय अन्यत्राप्युक्त ॥ मोहोपशमएकस्मिन् नवे हि स्यादसंतत ॥ यस्मिन् नवे उपशम क्षयोमोहस्य तत्रतु ॥ १ ॥

इहा शिष्य पूछेछे कहोस्वामी संयतने अनंतानुबंधियानुं उदय निषेध्योछे तो तेनुउपशम केवीरीते घटमानथाय ए संशयदूरकरो गुरु कहेछे हे माहानुनावतेतो अनुनागकर्म अंगीकारकरीने निषेध्योछे पण प्रदेशकर्मआश्रीने निषेध्योनथी तेमाटे प्रदेश कर्मोदयनु इहां उपशम जाणवो तेवारे फरी शिष्यबोल्यो जोतमे संयतने प्रदेशकर्मोदयनो उपशमकह्यो तो अनंतानुबंधिआना उदयथी दर्शननोविघात केम नथीथतु तेवारे गुरुकहेछे एना प्रदेशकर्मना मंद अनुनवपणामाटे तेम कोइकने अनुनागकर्मनो अनुनवपण अत्यंत विघात न करे जेम संपूर्ण मत्यादिक चतुर ज्ञानीने मत्यादि ज्ञानावरणोदय अत्यंत विघात नथी करतु इत्यादिक दृष्टांते दर्शननो विघात न थाय

तथाचाभ्यधायि परमगुरुणा – जीवेणनंते सयंकम्म कम्मंवेएइ गोयमा अछेगइयं वेएइ अछेगइय नोवेएइ सेकेणछेणंपुछा गोयमा ङविहे पन्नत्ते तंजहा पएसकम्मेय अणुनागकम्मेय तिछणंज पएस कम्म ते नियमा वेएइ तिछण ज अणुनागकम्म तं अछेगइय वेएइ अछेगइयनोवेएइ इत्यादि हवे वली विशेषथी कांइक उपशमश्रेणीनुंज स्वरूप ग्रथांतरथी कहेछे त्यां प्रथमथी अनंतानुबंधीनी उपशमना कहियेछे

अविरति सम्यक्त्वदृष्टी देशविरती प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो अन्यतमअन्यतमयोगनेविषे वर्त्ततो तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या मांहे अन्यतमलेश्या सहीत साकारोपयोगे उपयुक्त सागरोपम कोडाकोडीमाहे स्थितिसत्कर्माकरणकालथी पूर्वे पण अंतरमूहुर्त्तकाललगे अवदायमान चित्तसंतति एवो अवतिष्टेतिम अवतिष्टतोथको वली परावर्त्तमान प्रकृतिप्रते शुनजबांधे पण अशुननबांधे वलीजे अशुन प्रकृतिनुंरस चउठाणुंहोय तेने बे ठाणुकरे अने जे शुनप्रकृतिनुरस बे ठाणुहोय तेने चउठाणुकरे वली स्थितिबंधनेविषे पण पूर्णपूर्णथयेथके अन्यस्थितिबंधप्रते पूर्वपूर्वस्थितिबंधनी अपेक्षाये पल्योपमासख्येयनाग हीणोकरे.

ए प्रकारे करणकालथीपूर्वे अंतरमूहुर्त्तकाललगे रहीने तेवारपछी अनुक्रमे त्रण करणप्रत्येके अंतरमूहूर्त्तना तेप्रते करे ते आवीरीते जेम यथाप्रवृत्तिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण वली चोथो उपशांतकाल तिहा यथाप्रवृत्तिकरणनेविषे प्रवेशकरतो प्रतिसमये अनंतगुणवृद्धि विशुद्धेप्रवेशकरे वली तिहापण पूर्वोक्त शुन

प्रकृतिबंधादिकजकरे पण वली स्थितिघात रसघात गुणश्रेणी गुणसंक्रमण प्र तेनकरे केमके ते प्रतिसमय योग्य विशुद्धि नथी.

वली नानाजीवनी अपेक्षायें असंख्येय लोकाकाशप्रदेशमान अध्यवसाय स्थानकहोय वली बगण वधियाहोय बीजुं वली प्रथमसमयनी अपेक्षायें बीजासमयनेविषे अध्यवशायस्थानिक विशेषाधिकहोय तिहांथीपण त्रीजासमयनेविषे विशेषाधिकहोय ए प्रकारें जिहांलगें यथाप्रवृत्तिकरणनुं चरमसमयथाय तिहांलगें केवुं एम अपूर्वकरणनेविषे पण जाणवुं. एटलामाटेज ए अध्यवशायस्थानक स्थापतांथकां विषम चतुरस्र क्षेत्रप्रते आस्रणेव्यापे तेनी स्थापना.

१२००००००००००१६. इहां कल्पनायें बे पुरुष समकालें करण पडिवज्या
१०००००००००१५. विवक्षियें तिहां एक सर्वजघन्य विशोधि श्रेणी पडि
८००००००००००१४. वज्यो अने बीजो सर्वोत्कृष्टविशोधि श्रेणी पडिव
६०००००००००१३. ज्यो तिहां पहेलाजीवने प्रथम समयनेविषे जघन्य
४००००००००११. विशुद्धि सर्वथी अल्प जाणवी तिहांथी बीजासमयने
३००००००९. विषे जघन्यविशोधि अनंतगुणी तिहांथी त्रीजा समयने
२००००००७. विषे जघन्यविशोधि अनंतगुणी ए प्रकारे त्यांलगे कहेवुं जि
१००००५. हांलगे यथाप्रवृत्तिकरणना कालनो संख्यातमोभाग गयोहोय

तेवारपछी संख्येयभाग गयेथके चरमसमयनी जघन्यविशुद्धिना समीपथकी प्रथम समयनेविषे बीजाजीवनी उत्कृष्टीविशुद्धी अनंतगुणी तेवारपछीपण जेमाटे जघन्यविशुद्धि स्थानकथी निवर्त्यो तेवारपछी उपरलु जघन्यविशुद्धिस्थानक अनंतगुणो तेवार पछी द्वितीय समयनेविषे उत्कृष्टी विशुद्धी अनंतगुणी तेथी ऊपलुंजघन्यविशुद्धि स्थानक अनंतगुणुं तिहांथी तृतीय समयनेविषे उत्कृष्टविशुद्धि अनंतगुणी ए प्रकारें ऊपरलुं वली हेवलु एकेकु विशुद्धिस्थानक अनंतगुणपणे बे जीवने तिहांलगे जाणवुं जिहांलगें यथाप्रवृत्तिकरणना चरमसमयनेविषे जघन्यविशुद्धि स्थानक तेथी शेष उत्कृष्टा जे विशुद्धिस्थानक अनुक्तरह्यांछे ते निरंतर अनंतवृद्धे तिहांलगें जाणवा जिहांलगें चरमसमयनेविषे उत्कृष्ट विशुद्धिस्थानक ए यथाप्रवृत्तिकरण कह्युं.

हवे अपूर्वकरण कहियेछे त्यां अपूर्वकरणनेविषे प्रतिसमयें असंख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण अध्यवशाय स्थानकहोय प्रतिसमयवली बगणवलियाहोय तिहांप्रथम समयनेविषे जघन्यविशुद्धि सर्वथीथोडी तेवली यथाप्रवृत्तिकरणना चरमसतक उत्क

ष्टविशुद्धि स्थानकथी अनतगुणी तिहांथी प्रथमसमयनेविपेज जघन्यविशुद्धि अनतगुणी तिहाथीपण तेहिज प्रथम समयने विपेज उत्कृष्टविशुद्धि अनतगुणी

त्याथी पण बीजासमयनेविपे जघन्यविशुद्धि अनतगुणी त्याथीपण तेहिज बीजासमयनेविपे उत्कृष्टविशुद्धि अनतगुणी त्याथीपण वली त्रीजासमयनेविपे जघन्यविशुद्धि अनतगुणी ए प्रकारे जघन्य अने उत्कृष्टविशुद्धिस्थानक अनंतगुणवृद्धे त्यालगेजाणवा ज्यालगे अपूर्वकरणना चरमसमयनेविपे जघन्यथी उत्कृष्टविशुद्धि अनतगुणी स्थापनाचेयं एअपूर्वकरणनेविपे प्रवेशकरतोजीव स्थितिघात रस

२५००००००००२५ घात गुणश्रेणी गुणसंक्रम अने अन्यस्थितिबंध प्रते

२३०००००००२४ समकालें आरभे त्यास्थितिघात कहेताछता कर्मना अग्रि

२१००००००२२ मभागथकी उत्कृष्टथी प्रभूतसागरोपम शतपृथक्त्व मात्र अ

१९०००००२० ने जघन्यथी पल्योपमसंख्येयभागमात्र स्थितिखंमनादलिकप्रते

१७००००१८ खंमे वली हेठलीजे स्थिति खंमासे नही तिहाप्रक्षेपे अतरमूहुर्त्त कालें उकेरें (खडे) पूर्वोक्तप्रकारेज वली निक्षेपे ए प्रकारे अपूर्वकरणना कालनेविपे घणास्थितिखम सहस्रव्यतिक्रमे तेमछतापण अपूर्वकरणना प्रथमसमयने विपे जे स्थिति सत्कर्महतु ते तेनाज चरमसमयनेविपे सख्येयगुणहीनथयु ए स्थितिघातकह्यु

हवे रसघात कहेछे अशुभप्रकृतिनाजे अनुभाग सत्कर्म तेना अनतमभाग प्रते मूकीने शेषअनुभागनु अतरमुहूर्त्तकालमा विनासकरे खपावीनाखे त्याथी वली पण ते पूर्वे मूक्यो जे अनत भाग तेनो पण अनत भाग मूकीने शेष अनुभाग प्रते अतरमुहूर्त काले खपाडे एरीते अनेक सहस्र अनुभाग खम ते एकस्थितिखम नेविपे व्यतिक्रमे उलंघेतेस्थितिखमनेसहस्रेअपूर्वकरणपरिसमाप्तिथायएरसघातकह्यु

हवे गुणश्रेणी कहेछे अतरमुहूर्त्तस्थितिनी उपरलीजे स्थितिवर्त्तेछे तेमांथी दलिकलेइने उदयावलिकानी ऊपरली स्थितिमा प्रतिसमये असख्यातगुणपणे निक्षेपे तथया प्रथम समयनेविपे स्तोक बीजासमयनेविपे असख्यातगुणु त्रीजा समयनेविपे असख्यातगुणु एप्रकारे त्यालगेजाणवु ज्यालगे अतरमुहूर्त्तनो छेलो समय आवे ते अतरमुहूर्त्त अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणना कालथकी किंचित्‌मात्र अधिकजाणवु ए प्रथमसमयनेविपे लीधाजे दलिक तेनो निक्षेपविधि एप्रकारे छे के द्वितीयादी समयग्रहीत दलिकनो पण निक्षेप कहेतो बीजु गुणश्रेणी रचनाने अर्थे प्रथम समयनेविपे जे दलिक ग्रहीये तेथोडु तेथीपण बीजा समयनेविपे असख्यातगुणु तेथीपण त्रीजा समयनेविपे असख्यातगुणु एप्रकारे त्यांलगे जाणवु

ज्यांलगें गुणश्रेणी करवानुं चरमसमय आवे त्यांलगे; अपूर्वकरणना समयनेविषे वली अनिवृत्तिकरणना समयनेविषे अनुभवतांने अनुक्रमे क्षयपामतां गुणश्रेणी दलिक निक्षेपथाकते वेद्दुयेवली ऊपर वधेनही ए गुणस्थान कह्युं.

हवे गुणसंक्रम कहेछे अपूर्वकरणना प्रथम समयनेविषे अनंतानुबंधियादिक अशु भप्रकृतिना जे दलिक परप्रकृतिनेविषे संक्रमावे ते स्तोक तेवार पछी बीजा समयनेविषे परप्रकृतिमां असंख्यातगुणु संक्रमावे त्यांथीपण त्रीजासमयनेविषे असंख्यातगुणुं संक्रमावे ए प्रकारें त्यांलगेकहेवुं ज्यांलगे छेहलो समयआवे, तिम अन्यस्थितिबंध कहेतां अपूर्वकरणना प्रथमसमयनेविषे अन्यज अपूर्वस्थितिबंध आरंभियें स्थिति बंध अने स्थितिघात ए बे समकाले जे पुराथाय ते अन्यस्थितिबंध जाणवुं ए प्रकारे पांच पदार्थ अपूर्वकरणमां होय प्रवर्त्ते ए अपूर्वकरण कह्युं.

हवे अनिवृत्तिकरण कहियेछे जेमां प्रवेश करनार सर्व तुल्यकालना धणीनुं ए कज अध्यवसायस्थानिक होय ते आवीरीते के अनिवृत्तिकरणना प्रथमसमयेंजे वर्त्तेछे अने जे वर्त्या अनेजे वर्तसे तेसर्वेनु एकजरूप अध्यवसायस्थानक होय तेमज बीजा समयनेविषेपण जे वर्त्या वर्त्तेछे अने वर्तसे तेपण सर्वेनुं एकजरूप अध्यवसाय स्थानकहोय पण एटलोविशेषजे प्रथम समयनावी विशोधिस्थानकनी अपेक्षायें बीजा समयमां अनंतगुणाहोय ए प्रकारे त्यांलगें कहेवुं ज्यांलगें अनि वृत्तिकरणनो चरमसमयआवे. एटला माटेज ए करणनेविषें पेहा तुल्यकालनाधणी जेप्राणी ते संबंधी अध्यवसाय स्थानिकने परस्पर निवृत्ति अने व्यावृत्तिनथी तेमा टेज एनु अनिवृत्तिकरण एवुं नाम कहिये.

वली ए करणनेविषे जेटलासमय तेटला अध्यवसाय स्थानकहोय पहेला वे अध्यवसायस्थानकथी आगला अध्यवसायस्थानक अनंतगुणवृद्धेहोय ए मुक्ताव लीने स्थाने स्थापवा: इहांपणप्रथमसमयथी आरंभीने पूर्वोक्त पांचपदार्थ समकाले प्रवर्त्ते ए करणनाकालना असंख्याताभाग गयेथके एकभागथाकतेथके अनंतानुबं धियानेहेतुं आवलीकामात्रमूकीने अंतरमूहुर्त्तप्रमाण अंतरकरणप्रतें अभिनवस्थि ति बंधाद्धासमान अंतरमूहुर्त्तप्रमाण कालेंकरे.

वली अंतरकरण सत्कदलिक उत्कीर्यमाण बंधाद्धानी परप्रकृतिमां प्रक्षेपे प्र थमस्थितिगतदलिक आवलिकामात्र वेद्यमान परप्रकृतिमांहे स्तवुक संक्रमावे अंतर करणकरेथके द्वितीयसमयनेविषे अनंतानुबंधीयानी उपरली स्थितिनुंदलिक उप शमाववाने अर्थे आरंभे.

ते आवीरीते प्रथमसमये स्तोक उपशमावे तेथी द्वितीयसमये असंख्यातगुणु वली तृतीयसमये असंख्यातगुणु एम ज्यांलगें अंतरमूहुर्त्तनुकाल त्यांलगेकहेवु एटलेकाले सर्व अनतानुबधिया उपशम्या उपशमिताते शुकहिये जेमरेणुनु निकर एटले समूहते पाणीनाविङुआना समूहे सिच्यो घणादिके कूटचो निस्पदहोय ते म कर्मरेणुनु समूहपण विशोविरूप सलिलप्रवाहे सिचीने अनिवृत्तिकरणरूप घणथी कूटयोथको सक्रमण उदय उदीरणा निधत्त निकाचना एटला कारणोने अयो ग्यथाय एप्रकारे केटलाक अचार्योना मते अनंतानुबधीयानी उपशमनाकही

वली बीजातो एमपणकहेछे के अनतानुबधीयानी उपशमनानहोय पण विसं योजना एटले क्षपणाहोय ते आवीरीते इहा श्रेणी अणपडिवज्यापण अविरति तथा विरति चारेगतीवालालेवा ते आम – जेम नारकी तथा देवताते अविरतिस सम्यक्दृष्टी अने तिर्यंच तथा मनुष्यतेमां अविरति सम्यक्दृष्टी तथा देशविरत्तिसम्य क्दृष्टी अथवा सर्वविरति ते अनतानु बधियानी विसयोजनाने अर्थे यथा प्रव र्त्यादिक त्रणकरणकरेते करणीनी वक्तव्यता सर्व पाछलकह्याप्रमाणे जाणवी पण इहा एटलो विशेषजे अनिवृत्तिकरणमा प्रवेश कस्योथको अंतरकरण करेनही. उ क्तंच कर्मप्रकृतौ॥चउगइया पज्जत्ता, तिन्निविसजोयणे विसजोय ॥ तिकरणहितीहि सहिया, नत्तरकरण उव समोवा ॥ १ ॥ एनी अक्षरगमनिका चारगतीना नारकी तिर्यंच मनुष्य देवता सर्व पर्याप्तियेअपर्याप्ता एवा अविरति देशविरति अने सर्ववि रतिए त्रणेमा अविरति सम्यक्दृष्टी तो चारेगतीना तथा देशविरति तिर्यंच अथवा मनुष्य अने सर्वविरति तो मनुष्यज सयोजनना अनतानुबधीयाप्रते विसयोजे एटले विनाशे ते यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति बादरेसहितथको विना से पण इहा एटलो विशेषजे एक अतरकरण न कहेवु अथवा उपशम न कहेवो एटले उपशम अनतानुबधियानो न होय पण कर्मप्रकृति अभिहित सरूपे उद्दल ना सक्रमणे करीने हेठु आवलिकामात्र प्रते मूकीने उपर निरविशेष अनतानुब धियानु विनाशकरे अने आवलिकामात्रतो स्तिबुकसक्रमे करीने वेद्यमान प्रकृतिने सक्रमावे एटले अनतानुबंधियानी विसयोजनाकही

हवे दर्शनत्रिकनी उपशमना कहियेछे तेमा मिथ्यात्वनी उपशमना मिथ्याद ष्टीनेहोय सम्यक्त्वनी तथा मिश्रनी उपशमना वेदक सम्यक्दृष्टिनेजहोय, तेमां मिथ्यादृष्टीने मिथ्यात्वनी उपशमना प्रथम सम्यक्त्व उपजावतांनेहोय ते आवी रीते – जे सज्ञीसर्वपर्याप्तिये पर्याप्तो करणकालथीपूर्वेपण अंतरमुहूर्त्तकालसुधि प्र

तिसमयें अनंतगुणवृद्धिविशुद्धीए प्रवर्द्धमान अजव्यसिद्धिक विशुद्धिनी अपेक्षायें अनंतगुण विशुद्धिसहीत मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान अने विजंगज्ञान एमाहेलो अन्यतम साकारोपयोग तेनो उपयोगी अन्यतम योगनेविषे वर्त्तमान जघन्यपरिणामे तेजोलेश्यानेविषे मध्यमपरिणामे अने पद्मलेश्यानेविषे उत्कृष्टपरिणामे शुक्लले श्यानेविषे वर्त्ततो मिथ्यादृष्टी चारेगतीमाहेलो नारकी तिर्यंच मनुष्य अथवा देवता सागरोपमकोडाकोडीमांहे जेने कर्मस्थितिनी सत्ताछे तेने मिथ्यात्वनो उपशमना प्रथमसम्यक्त्वउपजावतां होय इत्यादिक पूर्वोक्त त्यांलगेंकहेवुं ज्यांलगें यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण परिपूर्णहोय त्यांलगे; पण इहां एटलोविशेष जे अपूर्वकरणमां गुणसंक्रम न केवो तोसुंकेवो स्थितिघात, रसघात स्थितिबंध गुणश्रेणी एटलावानाज केवा गुणश्रेणीनी रचनापण उदय समयथी आरंजीने जाणवी. तेवारपछी अनिवृत्तिकरणनेविषे पण एमजकहेवुं अनिवृत्तिकरणकालनां संख्याताजाग गयेथके अने एक संख्यातमजाग अवशेषरहेथके अंतरमूहुर्त्तमात्र हेठुंमूकीने मिथ्यात्वनुं अंतरकरण अंतरमूहुर्त्तमात्र प्रमाण प्रथम स्थितिथी कांइक समधिक अथवान्यून अजिनवस्थिति बंधाद्धासमान अंतरमूहुर्त्तकालेंकरे अंतरकरणसत्क वली दलिकप्रतें उकेरीने प्रथमस्थिति अने द्वितीयस्थितिमां प्रक्षेपे प्रथमस्थितिनेविषे प्रवर्त्ततो उदीरणाप्रयोगेकरीने जे प्रथमस्थितिगत दलिकछे तेने समाकर्षिने उदयनेविषे प्रक्षेपे ते उदीरणा अने वलीजे द्वितीयस्थितिना पासाथी उदीरणाप्रयोगेंज दलिकाकर्षिने उदयनेविषे प्रक्षेपेए उदीरणापण पूर्वसूरियें विशेषप्रतिपत्तिनेअर्थें आगालइत्युच्यते एवुंकहियें.

उदय उदीरणायेंकरीने प्रथमस्थितिप्रतें अनुजवतो त्यांलगेंगयो ज्यांलगे आवलिकाद्वयविशेषरहेछे तेरहेथके आगलव्यवछेदीयें तेवारपछी केवलउदीरणाज प्रवर्त्ते तेपणत्यांलगें ज्यांलगें शेष आवलिकानहोय अने आवलिकाशेषहोय तेवारें उदीरणापण निवर्त्ते तेवारपछी केवल उदयआवलिकामात्र अनुजवे आवलिकामात्रना चरमसमयनेविषे वली द्वितीयस्थितिगत दलिकप्रते अनुजागजेदेकरीने सम्यक्त्व मिश्र मिथ्यात्व ए त्रणप्रकारेकरे.

उक्तंच कर्म्मप्रकृतिचूर्णौ ॥ चरमसमय मिछदिट्ठीसेकाले उवसमसम्मदिट्ठीहोहीइ ताहेविइयठिइ तिहाणुजागंकरेइ तंजहा सम्मत्तंसम्मामिछतं मिछत्तं चेति स्थापना एएए तिवारपछी अनंतरसमयनेविषे मिथ्यात्वनाउदयना अजावथी उपशमिक सम्यक्त्व पामे.

उक्तंच कर्म्मप्रकृतौ मिच्छत्तुदयेखीणे, जहए सम्मत्त मोवसमियंसो ॥ लंभेण ज स्स लब्भइ, आयहिय मलद्ध पुवज ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं जात्यंधस्ययथापुंसश्चक्षुर्लाभेशुभोदये ॥ सद्दर्शनं तथैवास्य, सम्यक्त्वेसतिजायते, ॥१॥ आनंदो जायतेऽत्यंतं सात्विकोस्य महात्मन ॥ स द्व्याध्यपगमेयद्व्याधितस्य सदौषधात् ॥ २ ॥ ए प्रथम सम्यक्त्वनुं लाभ मिथ्यात्वना सर्वोपशमनथकी थाय उक्तंच सम्मत्तपढमलभो, सव्वोवसमाइति ए सम्यक्त्व पडिवजतो कोइकतो देशविरतिसहित पडिवजे अने कोइक सर्वविरति सहित पडिवजे

उक्तंच पंचसंग्रहे ॥ सम्मत्तेण समगं, सव्वदेसंच कोविपडिवज्जे ॥ बृहच्छतक बृहच्चूर्णावप्युक्तं उवसम सम्मदिट्ठी, अंतरकरणे ठिउं कोइ ॥ देसविरइं पिलहेइ, कोइ पमत्ता पमत्त भावपि ॥ १ ॥ सासाणो पुणनकिंपिलहेइति तेमाटे देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त संयतनेविषेपण मिथ्यात्व उपशांतलाभे

हवे वेदकसम्यक्दृष्टीनेविषे त्रण दर्शनमोहनीयनो उपशमना विधिकहिये छे इहां वेदक सम्यक्त्वदृष्टीजीव संयमनेविषे प्रवर्त्ततोथको अंतरमूहुर्त्तमात्रकाले दर्शनत्रिकउपशमावे ते उपशमावताने वली करणत्रिकादिकनी विधि जेम कर्म्म प्रकृतिनीटीकामा कहीछे तेमज जाणवी

एम उपशांतदर्शनमोहनीयत्रिक चारित्रमोहनीयने उपशमाववा वांछतो वली पण यथाप्रवृत्यादिक त्रणकरणेकरी उपशमावे ते करणनुस्वरूप पूर्वेनीपरेंजाणवु पण केवल इहां यथाप्रवृत्तिकरण ते प्रमत्तगुणठाणे जाणवु तेमज अपूर्वकरण अपूर्वगुणठाणे अने अनिवृत्तिकरण अनिवृत्तिबादरगुणठाणे तथा सूक्ष्मसंपरायगुणठाणे जाणवु इहां पण स्थितिघातादिक पूर्वेनीपरे प्रवर्त्ते पण एटलोविशेष जे इहा सर्व अशुभप्रकृति अबध्यमाननो गुणसंक्रम प्रवर्त्ते एम कहेवु अपूर्वकरणकालनो संख्यातमोभाग गयेथके निद्राप्रचलाना बंधनो व्यवछेद होय तेवारपछी प्रभूत स्थितिखंड सहस्र गयेथके अपूर्वकरण कालना संख्याताभाग गया होय एक अवशेष रह्योहोय वली इहा अंतराले देवगति देवानुपूर्वी पचेंद्रियजाति वैक्रियशरीर वैक्रियांगोपांग अहारक शरीर अहारकांगोपांग तैजस कार्मण समचतुरस्र वर्णचतुष्क अगुरुलघु उपघात पराघात उश्वास त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक प्रशस्तविहायोगति स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय निर्माण तीर्थंकर अस्त्री ए त्रीसप्रकृतिनुं बंध व्यवछेद थाय

तेवार पछी स्थितिखंड पृथक्त्व गयेथके अपूर्वकरण कालना चरमसमयनेविषे

तेना त्रण जाग करे तेमाथी बे जागने समकाले उपशमावे त्रीजा जागना सरख्या ताखन्न करे तेपण जूदे जूदे कालनेदें उपशमावे वली संख्याता खन्नना किट्टीएवु अपरनाम ठे तेना चरमखन्नना असरख्याता खन्नकरी सूक्ष्मकिट्टीएवु अपरनामकरे

तेवारपठी समय समयनेविषे एकेको खन्नकरे ते उपशमावे इहावली दर्शनस प्तक उपशमेथके निवृत्तिबादर एवुनामकहिये त्याथी कंचु अनिवृत्तिबादरकहिये ते ज्यालगे लोजनो असरख्येय अतिम चरमखन्नआवे त्यांलगे कहिये. ए अठावीसनेदें निन्नमोहनीयनी उपशमनाकही

हवे गाथानोअर्थ विवरियेठे इहा बन्नेश्रेणीना स्वरूपमा प्रथम उपशमश्रेणीनुं स्वरूपकहेठे उपशमश्रेणीनु प्रारन्नक अप्रमत्तसयमी ज होय अने बीजातो एमकहे ठेके अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो गमेतेहोय अने श्रेणीपरिस मार्प्ते पण श्रेणीथी पडे तेवारे वली पाठो अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो अन्यतम गमेते होय ते पहेलो समकाले अनंतानुबधिया क्रोध मान माया लोजने उपशमावे तेवारपठी मिथ्यात्व तथा सम्यक्मिथ्यात्व अने सम्यक् दर्शन ए त्रण समकाले उपशमावे तेवारपठी अनुदीर्णे पण नपुसकवेद उपशमावे तेमां जो पुरुष प्रारन्नक होय तो प्रथम नपुसकवेद पठी स्त्रीवेद पठी हास्यपट्क उपशमावीने पठी पुरुष वेद उपशमावे

अने जो स्त्री प्रारन्निका होय तो प्रथम नपुसकवेद पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि पट्क पठी स्त्रीवेद उपशमावे अने जो नपुसक प्रारन्नक होय प्रथम ए अनुदीर्णे पण स्त्रीवेद उपशमावे पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि पट्क तेवारपठी नपुसकवेद उपश मावे पठी बे क्रोध एकातरीत सज्वलन विशेष क्रोधातरित सदृशतुल्य उपशमावे

एटले एनो ए अर्थठे जे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बे क्रोध क्रोध पणे सरखा समकाले उपशमावे तेवारपठी एकलो सज्वलननोक्रोध उपशमावे प ठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बेमान शमकालें उपशमावे पठी सज्वल ननुंमान उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बे मायाने सम काले उपशमावे पठी सज्वलनीमाया उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्या ख्यानावरण ए बे लोन्न समकाले उपशमावे तेवारपठी संज्वलननुं लोन्न उपश मावे इहा उपशमश्रेणीनी स्थापनाकरवी

इहां चर्चकपूठेठे के कहोजी सज्वलनादिकने उपशमघटेठे पण अनतानुब धियाने तो सम्यक्त्व प्रातिपई त्याज उपशमाव्याठे तो इहाअनतानुबंधियानु उ

पशम केम घटमानथाय हवे गुरु उत्तरकहेछे दर्शनपमिवजतां त्यांअनंतानुबंधिया नो क्षयोपशमहतो अने इहांतो उपशमछे तेमाटे विरोधनथी वली शिष्यबोल्यो क्ष योपशम अने उपशममां शोविशेषछे गुरुकहेछे ज्यां क्षयोपशमछे त्यांतो उदीरणानु क्षय अने अनुदीरणानु विपाकानुभवनी अपेक्षाये उपशमछे अने वली प्रदेशानुभ वथीतो उदयछेज अने उपशमनेविषेतो प्रदेशानुभवपणनथी. यदाहपीयूषपाथोधिः वेएइसंतकम्मं, खउवसमिए छनाणुभावंसो ॥ उवसंत कसाउ पुण, वेएइ नसंत कम्मंपि ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं उवसंतं कम्मंजं, नतउ कड्ढेइ नदेइ उदएवी ॥ नय गमयई परमग्गइ, नचेवउकड्ढएतंतु ॥ १ ॥ एगाथानो लेशमात्रअर्थ कहेछे सर्वोप शमेजे उपसम्युं ते मोहनीयकर्मछे बीजाकर्मने सर्वोपशमनथी सव्वोवसमो मोहस्स चेवेति वचनात् तेनुं अपकर्षण पण नथाय.

एटले मोहनीयकर्म अपवर्त्तनाकरणेकरीने स्थितिरसेकरी हीनपण कोइ करीश केनही अपिशब्दने भिन्नक्रमपणामाटे उदयेंपण ते दिये एटले ते वेदेपणनही उ पलक्षणथी उदयने अविनाभावी उदीरणाने विषेपण नदीये एपणजाणवुं.

वली बध्यमान सजातीय परप्रकृतिप्रतें संक्रमणकरणेकरीने नगमें संक्रमावे प णनही वली तेकर्म्मेउपशमाव्युंथकुं उत्कर्षपणनही एटले उद्वर्त्तनाकरणेकरीने स्थि तिरसेंकरी वधारेपणनही निधत्ति निकाचन तो पूर्वे अपूर्वकरणकालेंज निवृत्तिछे तेमाटे इहां उपशांतपणे तेनु निषेध नकरीयें इहां शिष्यपूछेछे कहोजी संयतने अ नंतानुबंधियानुं उदय निषेध्योछे तो तेनुं उपशम केवीरीते घटमानथाय? तेवारे गु रुकहेछे के तेतो निश्चें अनुभागकर्म अंगीकारकरीने तेनुं उदयनिषेध्योछे पण प्रदेश कर्मआश्रीने अनंतानुबंधियानु उदय निषेध्योनथी.तथा चान्यधायि परमगुरुणा जीवे णंभते सयंकडं कम्मं वेएइ गोयमा इत्यादिक पाठपूर्वे एज तवनमां कहीगया छैये.

तेमाटे इहां प्रदेशकर्मानुभवना उदयनो उपशमजाणवो तेवारे वली शिष्यबो ल्यो जो एमसंयतने अनंतानुबंधियानो उदयहोय तो तेथी दर्शननो विघातकेमन थाय गुरुकहेछे प्रदेशकर्मनुं मंद अनुभवछे तेथी दर्शननो विघातनथाय तेम कोइ कने अनुभागकर्मानुभवेपण अत्यंत विघात नकरे जेम संपूर्ण मत्यादि चतुर्ज्ञानी ने मत्यादि ज्ञानावरणोदय विघातनथी करता तेम जाणवो तेवारपछी सूक्ष्मलो भ चरम किट्टिनो उपशम थयेथके संज्वलननो लोभ उपशांतथाय. यदुक्तं अणदं स नपुंसि छीवेय छक्कंच पुरिस वेयंच ॥ दोदोएगं तरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ १ ॥ ते समयेज ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण चतुष्क अंतराय पंचक यशः

कीर्त्ति उच्चैर्गोत्र एटली प्रकृतीनोबंध व्यवच्छेदथाय तेथी अनंतर समयनेविषे ए उपशांत कषाय गुण होय ते जघन्यथी एकसमयमात्र अने उत्कर्षथी अंतरमूहूर्त्तकाल लगे तेथी ऊर्ध्व नियमा ए उपशामक अवश्यपडे, तेपडवु बे प्रकारेछे एक नवने क्षये बीजु कालनेक्षये त्यानवक्षय मरतानेहोय अने कालक्षय उपशांतनो काल पूर्णथये होय जे कालक्षये पडेतेतो जेम चढयो तेमजपडे ज्याज्या बंधउदय उदी रणा व्यवछिन्नछे त्यात्यापडतोथको तेपाछा आरम्भीये एटलालगेपडतो थको क्या लगेपडे ज्यालगे प्रमत्तसयतगुणठाणोछे त्यालगेपडे वली कोइकतो तेथीपण हेठ ला बे गुणठाणेजाय अने कोइक सास्वादन नावपणपामे

वली जे नवक्षयेपडे ते प्रथमसमयेज सर्व बंधनादिक करणप्रवर्त्तावे ते करणना ना मकहेछे बंधन संक्रमण उद्वर्तना अपवर्त्तना उदीरणा उपशमना निधत्ति निकाचना

हवे ए बंधनादिक आठेना अर्थ कहेछे कर्म्मपुद्गलने जीवना प्रदेशसाथे अ ग्निलोह पिण्डनीपरे अन्योन्य मलवु ते बधन कहिये वली प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशने अन्यकर्मरूपपणे रह्याछे तेने अन्यकर्मरूपे व्यवस्थापन करवु ते संक्रमण कहिये तथा जे स्थिति अने अनुभागनु वधारवु ते उद्वर्त्तना कहिये अने स्थिति तथा अनुभागनुं घटाडवु ते अपवर्त्तना कहिये तथा जे कर्म पुद्गलने अकालप्राप्त ने उदयावलिकानेविषे प्रवेश न करवु ते उदीरणा कहिये वली कर्म्मपुद्गलने उदी रणा निधत्ति निकाचना करणने अयोग्यपणे व्यवस्थापवु ते उपशमना कहिये तथा उद्वर्तना अपवर्त्तना ए बे करण मूकीने बीजाकरणने अयोग्यपणे व्यव स्थापवु ते निधत्ति कहिये समस्त कर्मने अयोग्यपणे व्यवस्थापन करवु ते निका चनाकहियें एटले आठकरण माहेलो कोइ करण न लागे ते निकाचनाकहिये

यदुक्त कर्मप्रकृतिवृत्तौ॥बंधण संकमणु व्वट्टणाय अपवट्टणा उदीरणया ॥ उव सामणा निद्धत्ति, निकायणा चित्ति करणाइ ॥ १ ॥ तत्रबंधोनामकर्म पुद्गलानां जीवप्रदेशै सहवन्हयस्पिण्डवदन्योन्यानुगम १ संक्रम प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदे शाना अन्यकर्म्मरूपतयास्थितानामन्यकर्म्मरूपेण व्यवस्थापन २ स्थित्यनुभाग योर्बृहत्करण मुद्वर्तना ३ तयोरेव न्हस्वीकरणमपवर्तना ४ कर्म्मपुद्गलानामका लप्राप्तानामुदयावलिकाया प्रवेशनमुदीरणा ५ कर्म्मपुद्गलानामुदीरणानिधत्तिनिका चनाकरणायोग्यत्वेनव्यवस्थापनमुपशमना ६ उद्वर्तनाऽपवर्तनावर्ज्जशेषकरणा योग्यत्वेन व्यवस्थापन निधत्ति ७ समस्तकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापननि काचना ८ इति करणाष्टकस्वरुप प्रकृतिवृत्तिगत स्थानागवृत्तावपि संक्रमण

स्वरूपं त्वेवं यांप्रकृतिं बध्नाति जीवस्तदनुभावेन प्रकृत्यंतरस्थं दलिकं वीर्यविशेषे ण यत्परिणमयति ससंक्रमः तत्रप्रकृतिसंक्रमः सामान्यलक्षणावगम्यः मूलप्रकृती ना मुत्तरप्रकृतीनां वास्थितेर्य्यदुत्कर्षणमपकर्षणं वा प्रकृत्यंतरस्थितौवा नयनं सस्थितिसंक्रमः अनुभागसंक्रमोप्येव मेव यत्कर्म्मद्रव्यमन्य प्रकृति स्वभावेन परिणामेन परिणम्यते सप्रदेशसंक्रमः कर्म्मणि कर्म्मांतरानुप्रवेशः संक्रम करणात् उक्तंच मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणतउत्तराः प्रकृतीः ॥ नचात्मा मूर्तत्वादध्यव सायप्रयोगेण १ तथा मतांतरं ॥ मोत्तूण आउअंखलु, दंसणमोहंचरीत्तमोहंच ॥ सेसाणं पयडीणं, उत्तरविहिसंकमोभणिउ ॥ २ ॥

उत्कृष्टथी एक भवनेविषे बेवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने नियमा ते भवने विषे क्षपकश्रेणी न होय अने जे एकवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने क्षपकश्रेणी पण होय उक्तंच सप्ततिकाचूर्णौ जोदोवारे उवसम, सेढिंपडिवज्जई तसानियमा॥तंमि भवेखवग,स्से ढीनहिजोइक्कस्सिं॥१॥उवसम सेढिंपडिवज्जइ, तस्सखवगसेढिहुज्जत्ति॥

ए कर्मग्रंथीनो अभिप्राय कह्यो अने सिद्धांताभिप्रायेंतो एकभवमां एकजश्रेणी पडिवजे. उक्तंच कल्पाध्ययने॥ एवं अप्पडिवडिए, सम्मत्ते देव मणुअ जम्मसुरा॥ अन्नयर सेढिवज्जं, एगभवेणंच सवाई ॥ १ ॥ इहां सवाईके० सर्वं सम्यक्त्वि देश विरत्यादिक अन्यत्राप्युक्तं मोहोपशम एकस्मिन् भवेद्विः स्यादसंततः॥ यस्मि न् भवेतूपशमः क्षयोमोहस्य तत्रनइति उपशमश्रेणिः

हवे क्षपकश्रेणीनुं स्वरूपकहेछे इहां क्षपकश्रेणीनुं पडिवजणहार मनुष्य आव वर्षथी उपरनो अविरत देशविरत प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो कोइ अन्यतम अत्यं त विशुद्धपरिणामि उत्तम संघयणवालो पूर्वनोजाण अप्रमत्त शुक्लध्यानोपगतें पण पडिवजे अने बीजातो धर्मध्यानोपगतेंज पडिवजे एमकहेछे पडिवजवातुं अनुक्र म कहेछे अविरति देशविरति प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत ए माहेलोकोइ अन्यतम प्रथम अंतरमूहुर्त्तें अनंतानुबंधियानी चोकडी समकाले खपावे तेनो अनंतमभा ग मिथ्यात्वमांसंक्षेपीने तेवारपछी मिथ्यात्व तदंशेसंघातेज समकाले खपावे जेम अतिसंभृत दावानल निश्रें अर्द्धदग्धें इंधणांतरपामिने वेउनेबालेछे तेरीते ए क्षपक, पण तीव्रशुभपरिणाम पणाथी सावशेष अन्यत्र प्रक्षेपीने खपावे एमज वली स म्यक्त्व मिथ्यात्व, पण खपावे तेवारपछी एजअनुक्रमे सम्यक्त्वनेपण खपावे वली सम्यक्त्वनो चरमस्थितिखंड उत्कीर्णथके ए क्षपककृतकरण एवुं कहिये एकृतक रणाद्धानेविषे वर्त्ततो कोइक कालपण करीने चारगतिमांहे अन्यतमगतियें उपजे.

वली लेश्यानेविषे पण पूर्वे शुक्ललेश्यानेविषे हतो अने हमणा अन्यतम ले श्यानेविषेजाय तेमाटे प्रस्थापक मनुष्य अने निष्टापक चारेगतिनेविषेहोय उक्तच पठवयगोय मणुस्सो, निठवगो चउसुविगईसु, इहाजो बद्धायु क्षपकश्रेणीप्रतें आ रंभे तो अनतानुबंधियाना क्षयथी अनतरमरण संभवतो व्युपरमेविरमे तेवारप छी कदाचित् मिथ्यात्वनाउदयथी वली अनतानुबधियाने उपचिणे पाछा आरंभे केमकेअनतानुबंधिनुं बीजजे मिथ्यात्व ते हजी विनाश पाम्युं नथी माटे अने जेणे मिथ्यादर्शन क्षयकर्युंछे ते उपचिणेनही अनतानुबधिया फरीपाछा प्रारंभेनही एट ले अनतानु बधियानु बंधकरेनही केमके मिथ्यात्वरूप बीज नथी तेमाटे

वली क्षीणसप्तक तो अप्रतिपतित परिणाम माटे अवश्यदेवतामा उप जे अने प्रतिपतित परिणामतो वली नानापरिणाम संभवे तेमाटे जेवो परिणाम होय तेवी चारेगतिमाहेली अन्यतमगति उपजे उक्तच बद्धाऊ पडिवन्नो, पढम क सायरकए जइमरिज्जा ॥ तोमिछत्तोदयउ, विणिज्ज भूउन खीणमि ॥१॥ तमिमक्कजा... दिव, तप्परिणामोय सत्तए खीणे ॥ उवरय परिणामोपुण, पच्छानाणा मईगइ...पादा बद्धायुपण जो तिवारेकालनकरे तोपण सप्तकक्षीण थयो थको नियमारहेसंच॥१॥ ली चारित्रमोहनीय खपाववाने यत्न नकरे उक्तंच बद्ध... पडिवन्नो, नियम... देशे मि सत्तएगइत्ति इहा कोइपूछेजे मिथ्यादर्शनादिकनो दे... क्षपकने तेवारे ए समयने सम्यक्त्व रहीत कहियें किवा सम्यक्त्वसहीत कहीये त्यारेगुरुबोल्या सम्यक्दृष्टीज कहिये फरी परबोल्यो जे कहोजी सम्यक्दर्शननो परिक्षयथयो तो सम्यक्दृष्टीपणुं क्याथीहोय फरी गुरुकहेछे मयणालाटाली चोखाकर्या एवाजे कोद्रवा ते समान अपनीत मिथ्यात्वभाव एवा मिथ्यात्वना पुद्गल तेहिज सम्यक्दर्शन कहिये तेने प रिक्षयेवली तत्वश्रद्धान लक्षण परिणाम पर्ययोनथी तेमाटे साहमु श्लक्ष्णाभ्रप टल टलवाथी चक्षुदर्शननीपरे विशुद्धितरहोय

यदाह भाष्यसुधाम्भोधि ॥ खीणमिदंसणतिए, किंहोइ तउभिदंसणाईए ॥ भन्नइ सम्मदिठी, सम्मत्तखए कउ सम्म ॥ १ ॥ तिनिलीय मयण कुद्दव, रूवमिछत्तमेव सम्मत्तं ॥ खीण तउजोभावो, सद्दहणा लरकणोतस्स ॥ २ ॥ यदिवा ॥ जह सुद्ध जलाणुगयं, सुद्ध सुद्ध जलरकएसुतर ॥ सम्मत्त सुद्ध पुग्गल, परिरकए दंसण ए व ॥ ३ तम्मिय तइय चउछे, भवमि सिझति खइय सम्मत्ते ॥ सुरनर जुगली सु गई, इमतु जिण कालिय नराए ॥ ४ ॥

ए प्रकारे क्षीणसप्तकीनेविषे सम्यक्त्व पामिये जोवली अबद्धायु क्षपकश्रेणीने

आरंभे तोसप्तकक्षीणथये नियमा अनुपरत परिणामज चारित्रमोहनीय खपाववाने यत्नप्रते आरंभे. उक्तंच भाष्यकृता ॥ इयरो अणुवरउच्चिय, सयलिंसमाणेति तिहांजे सकलश्रेणीप्रतेकरे तेवा क्षपकने निजनिज भवनेविषे सुरायु नरकायु तिर्य्यगायु ए त्रण आउषाव्यवछेद्याजहोय. उक्तंच ॥ सुरनरय तिरिय आउ, नियय भवे सव्वजीवाणमिति एहिज कहेछे देवायु नारकायु तिर्यगायु लक्षणजे आयुत्रय ते क्षपक स्वल्प सम्यक्दर्शन अवशेषछे एहवोज अप्रत्याख्यानावरण अने प्रत्याख्यानावरण कषायरूप आठप्रकृति ते समकालें खपाववाने अर्थे आरंभे ए प्रकृति अर्द्धखपावेथकेज अंतराले नामकर्मनी तेरप्रकृति अने त्रण दर्शनावरणनी मली सोलप्रकृति खपावे तेना नाम कहेछे एकेंद्रियजाति, बेइंद्रियजाति, तेंद्रियजाति, चउरिंद्रियजाति, स्त्यानर्द्धित्रिक ते निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थिणद्धीए, स्त्यानर्द्धिरूप, उद्योतनाम तिर्यक्द्विक, नरकद्विक, थावरनाम, सूक्ष्मनाम, साधारण नाम, आप नाम, तेवारपछी आठ कषायनुं जेटलुं अवशेष रह्युं होय ते खपावे ए सर्वे मूहुर्त्तमात्रे खपावे ए सूत्रादेश जाणवो.

पडिवज्ज अन्नयर विरत्या
बीजा एमकहेछेके प्रथम सोलप्रकृतिज खपाववानेअर्थे आरंभे केवल ले आठकषायने खपावे पछी सोलप्रकृतिखपावे पछी नपुंसकवेद पछी स्त्री हास्यादिषट्क पछी पुरुषवेदना त्रणखंधकरे तेमांबेखंध समकालेखपावे अने त्रीजोखंध तो संज्वलनना क्रोधमांहेआक्षेपे एक्रम पुरुषप्रतिपत्ति होयतेवारेजाणवो.

अने स्त्रीप्रारंभिकाहोय तो प्रथम नपुंसकवेदकखपावे पछी पुरुपवेद पछी हास्यादिषट्क पछी स्त्रीवेदखपावे अने जेवारे नंपुसक प्रारंभकहोय तेवारे ए क्षपक अनुदीर्णेपण प्रथम स्त्रीवेदखपावे पछी पुरुषवेद पछी हास्यादिषट्क पछी नपुंसक वेद खपावे तेवारपछी संज्वलनना क्रोध मान माया लोभ लक्षण प्रत्येके अंतर मूहुर्त्तमात्र कालें पूर्वोक्तरीते खपावे श्रेणी परिसमाप्ति कालपण अंतरमूहुर्त्तनोज छे अंतरमूहुर्त्तना असंख्याताभेदछे त्यां लोभना चरमखंधना संख्याताखंध करीने पृथक् कालभेदेकरी तेने खपावे वली तेनो चरमखंध तेना असंख्याताखंधकरे तेपण समयसमय एकेको खंधखपावे.

इहां क्षीण दर्शन सप्तक निवृत्तिबादर कहिये त्यांथी उंचो अनिवृत्तिबादर ज्यांलगें चरमलोभखंधने खपावे त्यां लगें जाणवो त्यांथी उर्ध्ववर्त्ती असंख्येय खंधप्रते खपावतो सूक्ष्मसंपराय कहियें ते ज्यांलगे चरमलोभनो अणुउं क्षयथाय त्यांलगेजाणवो, त्यांथी ऊर्ध्वतो यथाख्यात चारित्रियो कहियें तेवली महत्प्रतरण

देस रज्जुगत्त परमाणुउंप्रते जीवफरसीने अनुक्रमेमूके तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्म पुज्ञल परावर्त्तथाय एटले चउदराजलोकमाहेला सर्वपरमाणु पुज्ञलने औदारिकशरीरपणे परिणमावे पछीवली तेमज सर्वपरमाणुपुज्ञल वैक्रियशरीरपणे परिणमावे एमज तेजस शरीरपणे नाषापणे सासोश्वासपणे मनपणे कार्म्मणशरीरपणे प्रत्येके अनुक्रमे आत्मापरिणमावे तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्मपुज्ञल परावर्त्तथाय अने केटलाएक आचार्यने मतेंतो ए सातमाहेला औदारिक वैक्रिय तेजस ने कार्म्मण ए चारशरीर माहेलु गमेते एकशरीरपणे सर्वपुज्ञल परमाणुआ प्रते आत्मा अनुक्रमे फरसीने मूके पणइहा व्युत्क्रमे फरस्याते लेखामां गणायनही जे अनुक्रमे फरस्यातेज परमाणुआ लेखामागणाय तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्मपुज्ञलपरावर्त्तथाय यडुक्त तत्संसकैककेनच, समस्त परमाणु [परिणतेर्यस्य, संसारे ससरत सूक्ष्मोमेजिनतदावर्त्त.॥१॥ मतांतरेतु सूक्ष्मस्त्वेकेन कायेन स्पृष्टासर्वेपि पुज्ञला येनुक्रमेण मुक्तास्तेगण्यंते व्युत्क्रमेणतु ॥१॥

हवे क्षेत्रथी सूक्ष्म अने बादर ए बे प्रकारनो पुज्ञल परावर्त्त कहेछे जेटला लोकाकाशना प्रदेश छे तेटला सर्व आकाशप्रदेशें जीवमरणपामे एटलासर्व मरणेकरीने जीव क्रमोत्क्रमे जेम तेमकरीने फरसे एटले जेटला लोकाकाशनाप्रदेशछे तेटला सर्वआकाशप्रदेश जेम तेम मरणेकरी फरसे तेवारे क्षेत्रथी स्थूल पुज्ञल परावर्त्तथाय

अने जेवारे एक आकाशप्रदेशनेविषे जीवमरीने तदनतर बीजा आकाशप्रदेशनेविषे मरे तेवारे ते मरणाश्रित आकाशप्रदेश लेखामागणाय पण तृतीयादिक आकाशप्रदेशेमरे ते आकाशप्रदेश लेखामागणायनही जोडना पासेना आकाशप्रदेशेमरे तेहिज आकाशप्रदेश लेखामागणाय एम अनुक्रमे सर्वलोकाकाशना प्रदेश मरणेकरीने फरसे तेटलेकाले क्षेत्रथी सूक्ष्मपुज्ञल परावर्त्तथाय यडुक्तं लोकाकाशप्रदेशाये म्रियमाणेन जतुना ॥ क्रमोत्क्रमेण सस्पृष्टा , सस्थूल क्षेत्रतोभवेत्॥ ॥१॥ मृत्वाक्षेत्रेयदेकत्र, म्रियतेतदनतर॥ क्रमेणजीव सर्वत्र, क्षेत्रेसूक्ष्म सउच्यते २

हवे कालथी सूक्ष्म अने बादर पुज्ञलपरावर्त्त कहेछे जेटला उत्सर्प्पिणीनेविषे समयहोय तेटला समय क्रमे अने उत्क्रमे अनुक्रमे अने अननुक्रमे जीव मरणेकरीने व्यापे फरसे तेवारे कालथी स्थूलपुज्ञल परावर्त्त थाय

अने ते उत्सर्प्पिणीने पहेले समयेमरीने वली बीजी उत्सर्प्पिणीनाबीजे समये मरे तेवारे ते समयलेखामांगणाय पण बीजी उत्सर्प्पिणीने त्रीजे अथवा पहेलेसमये मरे ते लेखामा गणाय नही वलीत्रीजी उत्सर्प्पिणीने त्रीजेसमयेमरे तो तेसमये लेखामां गणाय पण पहेले बीजे चोथे प्रमुख समयमामरे तेलेखामां

नावे एरीते जेटला एक उत्सर्पिणीना समयहोय तेटलासर्वे समय अनुक्रमे मरणे करीने फरसे तेवारे तेटले काले कालथी सूक्ष्मपुद्गल परावर्त्तथाय यदुक्तं यावंत उत्सर्पिण्यांस्युः, समयास्तान् स्वमृत्युना ॥ क्रमोत्क्रमेणव्याप्नोति, सस्थूलः कालतो भवेत् ॥ १ ॥ प्रथमे समये मृत्वोत्सर्पिण्यांस्तदनंतरं ॥ म्रियते यदि सर्वत्र, क्रमात्सूक्ष्मःसकालतः ॥ २ ॥

हवे भावथी सूक्ष्म अने बादर पुद्गलपरावर्त्त कहेछे इहां जगतमां एक समयने विषे जे पृथ्वीकायादिकनाजीव सूक्ष्म अग्नीकायमां ऊपजेछे ते जीव केटलाऊपजेछे असंख्येय लोकाकाशप्रदेश रासीप्रमाण ऊपजेछे एटले अलोकमांहे चऊदराजलोकना जेवा असंख्याता लोक कल्पीयें ते असंख्याता चऊदराजलोकना जेटला आकाशप्रदेशथाय तेटलाजीव एकसमयनेविषे पृथ्वीकायादिकमांथीचवीने सूक्ष्म अग्नीकायनेविषें ऊपजेछे ते जे पृथिव्यादिकथी अने बादर अग्निकायथी चवीने एकसमयनेविषे सूक्ष्म अग्निकायपणे ऊपजेछे ते लेवा पण जे सूक्ष्मअग्निकायपणे पूर्वेऊपनाछे वली तेहिजमरीने सूक्ष्मअग्निकायपणे ऊपजेछे ते लेवानही केमके ते तो पूर्वेज सूक्ष्मअग्निकायपणे रह्याछे ते केटलाछे एकसमयनेविषे जे सूक्ष्म अग्निकायनाजीव ऊपजेछे तेथी असंख्यातगुणा पूर्वे ऊपना सूक्ष्मअग्नीकायना जीवछे तेकेमके एक सूक्ष्मअग्निकायनोजीव ऊपनोथको अंतरमूहुर्त्तसुधी जीवेछे अने अंतरमूहुर्त्तमां जेटला समयछे ते समयसमयमां प्रत्येके पूर्वोक्त असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण सूक्ष्म अग्निकायपणे जीवो ऊपजेछे तेमाटे एकसमयमां सूक्ष्मअग्निकायना जे जीवऊपजेछे तेथी एजकायनेविषे पूर्वे ऊपजेलाजीव असंख्यातगुणाछे.

एटले एकसमयनेविषे ऊपना ते तथा अंतरमूहूर्त्तमांहे जे पूर्वे ऊपनाछे तेसर्वे भेलाकरीयें तेनीजे संख्याथाय ते सर्वसंख्याथी तेजजीवोनी कायस्थिति एटले तेहिज कायनेविषे मरीने अवतरवुं तेरूप कायस्थिति असंख्यातगुणीछे केमके एकेक सूक्ष्म अग्निकायनाजीवनी असंख्येय ऊत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काय स्थिति कहीछे माटे. वलीते कायस्थितिथीपण संयमस्थानक अने अनुभागबंधस्थानक प्रत्येकें असंख्यातगुणाछे एटले कायस्थितिथी संयमस्थानक असंख्यातगुणा अने अनुभागबंधस्थानकपण असंख्यातगुणाछे अने ए बे माहोमांहे तो तुल्यछे एटले जेटला संयमस्थानक तेटलाज अनुभागबंध स्थानकछे अने कायस्थितिनी परे असंख्याता स्थितिबंधछे अने एकेक स्थितिबंधनेविषे असंख्याता अनुभागबंध स्थानकछे. तेनोज स्वरूप कहेछे.

अनुभागबंध स्थानकते कोनेकहियें जे एक कषायिक अध्यवसायेंकरीने ग्र ह्याजे कर्मपुद्गल तेनुं विवक्षित एकसमय बंध रस समुदाय परिमाण तेने अनुभा गबंध स्थानककहीये ते अनुभागबंधस्थानक केटलाछे तो के चऊदराजलोक जे वो एकलोकाकाश तेवा असख्याता लोकाकाश अलोकमा कल्पीये तेना जेटलाप्र देशछे तेना जेटलाछे ते अनुभागबंधस्थानकना निष्पादक एटले नीपजावनार जे कषायोदयरूप अध्यवसाय विशेष ते पण अनुभागबध स्थानक कहिये तेपण ते टलाजछे जेटलेकाले क्रमोत्क्रमे करीने सर्व अनुभागबंधाध्यवसायनेविषे वर्त्ततोथ को जीव मूर्छ होय तेवारे तेटलेकाले बादर भाव पुद्गलपरावर्त्तथाय.

कोइकजीव सर्वजघन्य कषायोदयरूप अध्यवसाय स्थानकनेविषे मरणपाम्यो तेवारपछीजो तेहिजजीव अनताकालपछी पण ते प्रथम स्थानकथकी अनंतरबी जा अध्यवसाय स्थानकनेविषे वर्त्ततोथको मरणनेपामे ते मरणने लेखामांगणियें पण बीजा उत्क्रमनावी अनतामरण पण लेखामां न आवे एरीते अनुक्रमे सर्व अनुभाग बधाध्यवसाय स्थानक जेटलेकाले मरणेकरीने फरसे तेटले काले सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त्त कहिये इहा क्षेत्रथकी सूक्ष्म पुद्गलपरावर्त्त मार्गणानेविषे लेवु ने बीजा पुद्गलपरावर्त्तनो परूपणा मात्रछे

यदुक्तं – एक समयंमि लोए, सुहुमगणिजिआउ जे उपविसंति ॥ तेहुंति अस खलोग, पएस तुल्ला असखिज्जा ॥ १ ॥ तत्तो असख गुणिया, अगणिक्कायाउ ते सि कायठिई ॥ तत्तो सयम अणुभा,ग बधठाणाण सखाणि ॥ २ ॥ ताणिमतरेण जया, पुठाणि कमुक्कमेण सव्वाणि ॥ भावमि बायरोसो, सुहुमो अकमेण बोधव्वो ॥ ३ ॥ अन्यत्राप्युक्त ॥ भावेथ समये जीवा पृथ्वीकायपुरस्सरा ॥ सूक्ष्मेषु तेज कायेषु यावत प्रविशतिहि॥१॥ इहते स्युरसख्येय लोक प्रदेशतुल्यका ॥असख्यातास्त त पूर्वोत्पन्ना कायस्थितिस्तत ॥ तत स्थानान्यसख्यानि सयमाध्यवसाययो ॥ तानिस्पृशेद्यदाजीव किलगच्छन् नवातरे ॥ ३ ॥ बादरोव्युत्क्रमेणाय ज्ञेय सूक्ष्मक्र मेणतु ॥ अत्रक्षेत्र परावर्त्तेणा धिकार परैर्नतु ॥ ४ ॥

ए प्रकारे सम्यक्त्वरहित थको एणेजीवे अव्यवहार रासीमाहे एवां पुद्गलपरा वर्त्त अनताकर्या तेहिजजीव महताकष्टे व्यवहाररासीपाम्यो त्या व्यवहारराशीमां पण केटलाक कालसुधीरहेछे माटे हवे इहा प्रसगे कायस्थितिनु काइक स्वरूपकहेछे

तिर्यचनी गति असन्निया एकेंद्री वनस्पति अने नपुसक एटला मांहे एक आ वलिकाने असख्यातमेभागे जेटलासमयहोय तेटला पुद्गलपरावर्त्त उत्कृष्टोरहे एक

आवलिकाना पण असंख्यातासमय अने आवलिकाना असंख्याताभागनापण अ संख्याता समय जाणवा कारणके असंख्यातुं असंख्याते भेदेछे.

हवे व्यवहाररासीमां आव्यापछीपण सूक्ष्मपणे केटलो कालरहे ते कहेछे पृ थ्वी अप तेज वाउ अने वनस्पति ए पांच सूक्ष्ममां सामान्यपणे असंख्याता लोकाकाश प्रदेशप्रमाण उत्सर्प्पिणी अने अवसर्प्पिणी काललगे रहे एकसूक्ष्ममां रहे तोपण एटलोज काल अने पांचसूक्ष्ममांरहे तोपण एटलोज कालजाणवो.

हवेबादरमां सामान्यपणे रहेतो केटलो कालरहे तेकहेछे बादरमां अने बादरवनस्प तिमां अंगुलने असंख्यातमेभागे जेटलाप्रदेशहोय तेटलीउत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका ललगेरहे अनेबादरनिगोदमां अडीपुद्गल परावर्त्तरहे अनेपृथ्वीकाय अपकायतेउकाय वाउकाय प्रत्येक वनस्पतिकाय अने निगोदमां सितेर कोमाकोमी सागरोपम लगेरहे.

हवे विगलेंद्री अने सामान्यपणे पर्यात्तोबादर एकेंद्री एमां केटलोकालरहे ते कहेछे बेंद्री तेंद्री चोरेंद्रीमां संख्यातावरस सहस्रसुधीरहे अने सामान्यपणे पर्यात्तोबा दर एकेंद्री माटी पाणी वायरो प्रत्येक वनस्पति मांपण संख्यातावरस सहस्र सुधिरहे.

हवे बादरपर्याप्ता अग्निकाय अने विगलेंद्री तेनो कांईक विशेषकहेछे बादर अग्निकायनी भवस्थिति उत्कृष्टीतो त्रणअहोरात्री अने कायस्थिति उत्कृष्टीतो निरंतर सर्वभवकाल संकलनायें संख्याता दिवसनी जाणवी अने बेंद्रीमांहे भव स्थिति बारवर्षनी अने कायस्थिति सर्वभव काल संकलनायें संख्याता वरस होय अने तेंद्रीमांहे उगणपचासदिवश भवस्थिति ते एकभवनो उत्कृष्टो आउपानोकाल छे अने कायस्थिति सर्वभवसंकलनायें संख्यातादिवशनी छे वली चउरंद्रीमां उत्कृ ष्टी छ महीनानी भवस्थिति एकभवआयुरूपछे अने कायस्थिति तो संख्याता मही नानी छे अने त्रस मांहेतो बे सहस्रसागरोपम संख्यातेवरसे अधिक कायस्थितिछे.

हवे पंचेंद्रीनुं सामान्य विशेषपणे कायस्थितिनुं स्वरूपकहेछे पंचेंद्रीमांहे पंचें द्रीपणेजीवरहेतो उत्कृष्ट एकहजार सागरोपम जाजेरुंरहे अने देव तथा नारकी मां भवस्थिति अने कायस्थिति तेपण तेंत्रीससागरोपमज जाणवा सन्नीया अने पुरुषवेदमांहे वशे सागरोपमथी मांमीने नवशे सागरोपम जाजेरानी कायस्थिति छे सन्निया तिर्यंच सन्निया मनुष्यमांहे त्रणत्रण पल्योपम सातपूर्वकोडी सहित्त कायस्थितिहोय अने स्त्रीवेदमांहे एकशोदशपल्योपम अने पूर्वकोमी पृथक्त्वें अ धिक एटली कायस्थितिहोय तथा स्त्रीवेद अने नपुंसकवेदमां जघन्यतो एकसम य ते उपशमश्रेणीवालाने होय अने शेषबीजाथाकताने जघन्यकाल अंतरमूहुर्त्त

अपर्याप्ताने जघन्य अने उत्कृष्टो पण अतर मुहूर्त्तकाल पर्याप्ता सूक्ष्म अने वादर अनत कायने जघन्य अने उत्कृष्टो अतरमूहुर्त्तज काल जाणवो

यडुक्त कायस्थिति विचारस्तोत्रे अव्ववहारियमझे, नमिऊण अणंत पुग्गल परट्टे ॥ कहविवहाररासि, सपत्तोनाहतज्ञविय ॥ १ ॥ उक्कोसततिरियगइ, असन्नि एगिंदिवण नपुंसेसु ॥ नमिउं आवलि असंखि, नागसमपुग्गल परट्टी ॥ २ ॥ सामन्नं सुहमत्ते, उस्सप्पिणिउ असखलोगसमा ॥ नमिउ तहपिहुसुहमे, पुढविजलजलण पवणवणे ॥ ३ उहेण वायरत्ते, तह बायरवणस्सई सुताउ पुणो ॥ अंगुलअसखनागो, दोसहूपरट्टयनिगोए ॥ ४ ॥ वायरपुढविजलजलण, पवण पत्तेय वणनिगोएसु ॥ सत्तरि कोडाकोडी, अयराणनाह नमिउंह ॥ ५॥ सखिज्जवास सहसे, वितिचउरिंदीसुउंहउंअतहा ॥ पज्जत्त वाय रेगिदिभूजलानिल परित्तेसु ॥६॥ वायरपज्जिगवितिं चउ, रिंदिसुसखदिणवास? ठमासा, सखिज्जवास अहिया, तसे सुदोसागरसहस्से ॥ ७ ॥ अयरसहस्सअहिय, पणिंदिसुतित्तीसअयरसुरनिरए ॥ सन्निसुतहपुरिसेसु, अयरसयपुहुत्तमप्पहियं ॥ ८ ॥ सन्नितिरिनरेसु पुढो,पल्लतिगं सत्त पुव्व कोडिजुअं ॥ दसहिय पलिय सयं, थी सु पुव्वकोडि पुहुत्तजुअं ॥ ९ ॥ इत्थि नपुसे समउ, जहन्नो अंतो मुहुत्तसेसेसु ॥ अपज्ज सुक्कोसपिय,पज्ज सुहम थूल अणतेवि ॥ १० ॥ ए कायस्थितिकही

हवे प्रसगागत नवसंबध परस्परे नवगणनारूप कहेछे –परनवनुं अने तेनवनुं उत्कृष्ट अने जघन्य आयुने नेदेकरी चारनांगाथाय तेकेवीरीतेके ज्यां अवतरे त्यां उत्कृष्ट अने परनवनुपण उत्कृष्ट, ज्या अवतरे त्या जघन्य अने परनवनुपण जघन्य, ज्यां अवतरे त्या उत्कृष्ट अने परनवनु जघन्य, ज्या अवतरे त्या जघन्य अने परनवनु उत्कृष्ट, ए चारनांगाजीवने नवगणनाये जाणवा

सन्निउमनुष्य अने सन्निउतिर्यंच छ नरकमा उत्कृष्टो एकातरित आठ नवसुधि जाय, सन्निउ मनुष्य अने सन्निउ तिर्यंच ते नवनपति व्यंतर ज्योतषी अने आठमा देवलोकसुधी आठनव एकातरित उत्कृष्टोजाय अने जघन्यतो वे नवजाणवा, तिर्यच सातमीनरके सातवारजाय अने पूरण आउपे पाचवारजाय, अने जघन्यतो त्रणनवथाय, नवग्रैवेयक अने आनंत प्राणत आरण तथा अच्युत ए चारेदेवलोक लगे सातनवहोय, चारअनुत्तरमा पाचनवहोय, जघन्यतो त्रणनव होय, अनेसर्वार्थसिद्धे जघन्य अने उत्कृष्ट त्रणनवहोय, सातमीपृथ्वीये वेनवजघन्य, अने उत्कृष्टपण वे नवजहोय, इहा सर्वत्र पर्याप्ता मनुष्यजाणवा

युगलिया तिर्यंच तथा मनुष्य ते भवनपति व्यंतर ज्योतषी अने बे देवलोकना देवतामांजाय, पण इहां उत्कृष्ट अने जघन्यबेजभवहोय, असंन्निउ पर्याप्तोतिर्यंच ते प्रथमनरके अने भवनपति तथा व्यंतरमां उत्कृष्ट तथा जघन्य बेजभवहोय.

आठदेवलोकना देवता अने ठ नरकनानारकी ते पर्याप्ता अपर्याप्ता सन्निआ तिर्यंच तथा मनुष्यमां उत्कृष्टा आठभवकरे, सातमि नरकना नारकी तिर्यंचमां ठ भवकरे अने पूरण आउपे चारभवकरे. नवग्रैवेयकना देवता अने नवमांथी बार सांदेवलोकसुधीना चार देवलोकना देवता पर्याप्ता संन्निया मनुष्यमां ठ भवकरे.

चार अनुत्तर विमानना देवता मनुष्यमां चारभवकरे अने जघन्यथी बे भवकरे, तथा सर्वार्थसिद्धिना देवताने जघन्य अने उत्कृष्ट बेज भवहोय; भवनपति व्यंतर ज्योतषी अने बे देवलोकना देवताने माटी पाणी प्रत्येक वनस्पतिमां जघन्य अने उत्कृष्ट बे भवहोय. असंख्याता आउषावाला युगलिया तिर्यंच अने मनुष्यमाहे संन्निउ असंन्निउ तिर्यंच अने संन्निउ मनुष्य मिथ परस्परें बेभवजाणवा.

माटी पाणी वायु अने अग्नि एना जीव वनस्पति पृथ्व्यादिकमांहे मिथ परस्परें असंख्यातो कालरहे, अने पृथ्व्यादिकजीव वनस्पतिमांहे असंख्यातोकालरहे अने वनस्पतिनाजीव वनस्पतिमांहे अनंतोकालरहे, विगलेंडीनाजीव पांचपृथ्व्यादिकमांहे संख्यातो कालरहे पांच पृथ्व्यादिकना जीव विगलेंद्रियमा संख्यातो काल रहे; विगलेंडीनाजीव विगलेंडीमांहे संख्यातो कालरहे, उत्कृष्टआउपे त्रिभांगें आठ भवजाणवा, जघन्यतो सघले बे भवजाणवा.

संन्निया असंन्निया तिर्यंच तथा मनुष्यने विगलेंडीअने पांच पृथ्व्यादिकमां आठभव थाय, मनुष्य अने तिर्यंचमांहे विगलेंडीअने पृथ्व्यादिकना जीव आठभवआवे, ए चिहुं भांगें जाणवा; वली वायु अने अग्नीमां मनुष्यने उत्कृष्ट अने जघन्य तो बेज भव होय, एरीते परभव अने ते भवना आयुनो संबंध तेनी बंधस्थिति चिहुंभागे जघन्य अने उत्कृष्ट अनुक्रमे कही.

उक्तंच तत्रैव कायस्थितिविचार स्तोत्रेः— परभव तब्भवआऊ, लहु गुरु चउभंगि सन्निनरतिरिउ ॥ नरयछगे उक्कोसं, इक्कंतर भमइ अठभवे ॥ १ ॥ भवणवणजोइ कप्प,छ गेविज्य अडभवाउ ड जहन्ना; सगसत्तमीइतिरिउ, पण पुसासु यतिजहन्ना ॥ २ ॥ गेविज्जाणय चउगे, सग पणणुत्तर चउक्कितिजहन्ना ॥ पज्ज तरोति सवहे डहाडभवत मतमाइ पुणो ॥ ३ ॥ डजुगलिय तिरियमणुआ ॥ डभवा भवणजोइ कप्पडगे ॥ रयणप्पह भवणवणे, डह डभव असन्नि पजतिरिउ ॥ ४ ॥ पज स

सर्वपदार्थ परद्रव्यादिकेनथी पण स्वरूपे छतापणाथी एकेकाले निपेध विधि कल्पनाये अवक्तव्यजछे जेम सेलमी गोल खाड एने परस्परे यद्यपि भिन्नपणुजछे, अने माधुर्यपणानो अतरपणछे, अने सेलडीपणे ऐक्यछे, पण भिन्न अभिन्न एकेकही सकीयेनही, ए स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सप्तभगीनो छठोभेद जाणवो

सर्वपदार्थ स्वद्रव्यादिकेछताछे अने परद्रव्यादिके अछताछे पण समकाले विधि निपेध कल्पनाये अवक्तव्यजछे, जेम घट स्वद्रव्यादिके पोतानेरूपेछे अने पटादिकनी अपेक्षायेनथी, माटे एक समयेसद्रूप अने अणकहेवायोग्यपणेछे एम एकपदार्थनेविपे स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव लक्षण सतभगीनो सातमोभेदजाणवो

एकपदार्थनेविपे ए कल्पना केमघटे? त्याद्दष्टात—जेम कोईकने दूधनोनियमछे ते दूधविना दधिप्रमुख सर्वजातनो गोरसलिये, अने जेने दहिनो नियम छे ते दहि विना सकल गोरस लिये अने जेने गोरसनोनियमछे तेने दुधदहीप्रमुख समस्तगोरसकल्पेनही, तेमजे पूर्वे एकभेद स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यमेव लक्षण देखाडद्या तेने सकलितरूप सातमाभेदनो अतर जाणवो एमए सप्तभगी श्रीजिनेंद्रदेवे उपदेशी ते सर्वपदार्थनेविपे सम्मतछे ते सतभंग्यादि जेने सम्यक्प्रकारेरुचे, जे जेमकह्यु ते तेम सदहे, सद्सम्मत्या जातिस्मरणदिके स्वप्रतिभायेकरीने रुचे ते निसर्ग रुचि सम्यकत्वकहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

धर्मास्तिकायादिक पटद्रव्यना समस्तभाव एकत्व पृथक्त्वादिक अशेप पर्यायरुप ने प्रत्यक्षादिकप्रमाणे जेनो जिह्वाव्यापार तिहा तेजप्रमाणे प्रतीति प्रसिद्ध जेणे पाम्याछे, अनेवली सर्वनयविधिये नैगमादिकभेदे द्रव्यनासर्वभाव जाण्याछे ते विस्ताररुचि प्रमुखने धर्म धर्मीना अभेद उपचारे विस्ताररुचि सम्यक्त्व कहिये

हवे काईक प्रमाण अने नयनी विशेपता कहेछे—त्यांप्रथम प्रमाण एटलेसुं? ते कहेछे.—प्रमानुकरण ते प्रमाणकहियें. जे 'यथार्थानुभव प्रमा' यथार्थज्ञान ते प्रमा कहिये ते प्रमानुं करण अतिशयितकारण ते प्रमाणकहिये ते जैनमते एकप्रत्यक्ष अने बीजो परोक्ष ए बे प्रमाणछे अने नास्तिकमति एकप्रत्यक्षप्रमाणजमाने तथा सुगत बोध कणाद अने वैशेपिक प्रत्यक्ष ने अनुमान ए बे प्रमाणमाने पारमार्प सांख्य, प्रत्यक्ष अनुमानने शब्द ए त्रणप्रमाणमाने अक्षपादनैयायिक प्रत्यक्ष अनुमान उपमान अने शब्द ए चारप्रमाणमाने प्रभाकर, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति ए पाच प्रमाणमाने, भट्ट, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति अने अभाव ए छ प्रमाणमाने यदुक्तं रत्नाकरावतारिकाया चार्वाकोध्यक्षमेक सु

चेष्टाये करी इंद्रियनुं मूलथकी बल गमावीने नपुंसक थया होय ते अने त्रीजा जे जन्मथीज नपुंसक थया होय ते ए त्रणेने लोको नपुंसक कहेछे परंतु परमार्थे जोता पहेला बे ने नपुंसकपणुं नथी केमके, तेउनेविषे पुरुष वेदनो अभिलाष होयछे, भोगने अर्थे स्त्रीनी इच्छा करे छे, परंतु पुरुषनी इच्छा करता नथी पण शुं करे के तेउनां अवयव सावचेत होता नथी तेथी योनि भोग न थाय एउ नपुंसक पणाने बीजी कुचेष्टाथी पाम्या छे, माटे पुरुषवेद छे, नपुंसक वेद नथी नपुंसक वेद तो जे जन्म जात होयछे तेनेज कहिये ते नपुंसकने पुरुष तथा स्त्री ए बन्नेने भोगववानी अभिलाषा थायछे, माटे तेज वास्तविक नपुंसक कहेवाय अत्रवृद्ध आचार्य एम कहेछे के, जे स्वभावे जन्मजात नपुंसक होय तेने चारित्र आवे नही, त्यारे तेने मोक्ष पदनी प्राप्ति ते केम थाय ! माटे कृत्रिम नपुंसक लेवो अने नवीन आचार्य एम कहेछे के, जे कृत्रिम होय ते नपुंसक न कहेवाय जेने नपुंसक वेद उदयागत होय तेनेज नपुंसक कहिये कृत्रिमने तो पुरुष वेद उदयागत होयछे, तेथी तेने तो पुरुषवेदज कहिये एवुं विवेचन करी लेवुं एवा नपुंसकलिंगे जे मोक्ष थया ते नपुंसक सिद्ध कहेवाय छे

(११) जे रजोहरण तथा मुखवस्त्रिका प्रमुख छतां कैवल्य पद पामे ते स्वलिंग सिद्धकहेवायछे (१२) जे तापसादिक प्रमुख बीजा चिन्हवान छतां लोकांत स्थित थयाछे ते अन्य लिंग सिद्ध जाणवा. (१३) जे भरत प्रभृति गृहस्थ वेषधारी छतां लोकना मस्तकनेविषे स्थित थएला छे ते गृहि लिंगी सिद्ध जाणिये (१४) जे एक समयनेविषे एकलोज सर्वोत्कृष्ट सुखना धामने पाम्यो होय ते एकाकी सिद्ध छे. (१५) अने जे एक समयनेविषे अनेक जीवो सिद्धत्व पाम्या होय ते अनेक सिद्ध कहेवाय छे वली जे सिद्धावस्था पाम्या पछी बीजो कोई समय थई गयो न होय किंतु तेज समयछे ते अनंतर सिद्ध कहिये, अने जेने सिद्धावस्था पाम्याने समयथी उपरांत काल थई गयो होय ते परंपर सिद्ध कहिये इत्यादिक सिद्ध जीवोना भेद छे

हवे बीजा संसारी जीवोविषे आम समजवुं —ते संसारी जीव बे प्रकारनाछे:— एक स्थावर बीजा त्रस तेमां स्थावर पांच प्रकारना छे —पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वाउकाय ने वनस्पतिकाय ए पांचेना वली सूक्ष्म अने बादर ए बेबे भेद छे. अने त्रस जीवो चार प्रकारना छे —बेंद्रिय, तेंद्रिय, चउरिंद्रियने पंचेंद्रिय तेमां पंचेंद्रिय चार प्रकारना छे —देव, मनुष्य, नारक ने तिर्यंच ए बधा जीवोविषे सविस्तर जीववि